AYURVED
MAHA SA.
PATRIKA.

VOL 1

1955

HARDWAR

079528

COMPILE

Diamond Book Binding House
Moh. Karachh B.H.E.L. Road Jawalapur

जनवरी
१९५५

पौष
२०११

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

079528

४२२८९

25-1-55

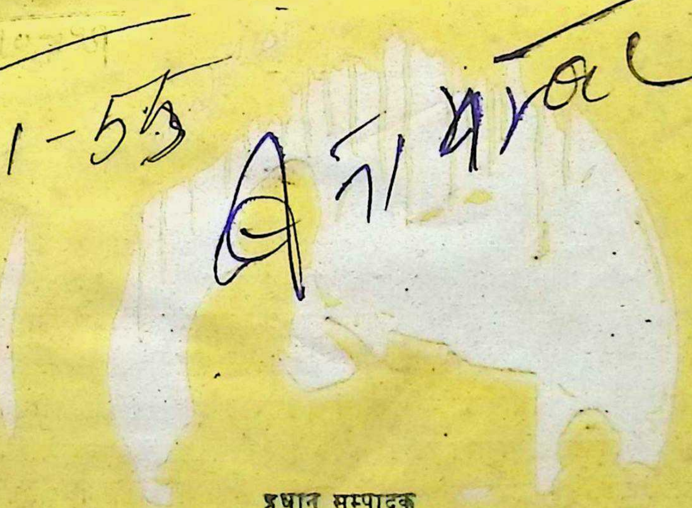

प्रधान सम्पादक

कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि

संस्कृत-विभाग सम्पादकः

वा. बा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः

विषय-सूची

क्र० सं०	विषय		पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय		१
२.	स्थायीसमिति का कार्यविवरण		३
३.	रोगोत्पत्तौ वातादिदोषा जीवाणवो वा उभयं वा निदानानि	शंकरलाल शर्मा	९
४.	Otitis Media	Ravindra Chandra Chaudhry	१३
५.	आयुर्वेदोन्नति के रचनात्मक सुझाव	गोपालसिंह	२२
६.	आयुर्वेदीय शिक्षा की समस्या	देवशर्मा	२५
७.	हमारा आहार	सोमदेव शर्मा	२८
८.	गाजर	गौरीशंकर गुप्त	३२
९.	क्षीणा दोषा रोगोत्पत्तौ नैव प्रभवन्ति	पाण्डुरंग हरिदेश पाण्डे	३६
१०.	भवद्गिरामवसरप्रदानाय वचांसि न	रणजितराय	४०
११.	नि० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय		४३
१२.	आयुर्वेदलोक		४७

महासम्मेलन का ४०वां वार्षिक अधिवेशन

३९ वें महासम्मेशनाधिवेशन में स्वीकृत प्रस्तावानुसार ४० वें महासम्मेलनाधिवेशन को त्रिवेन्द्रम (त्रावणकोर-कोचीन) में करने की तैयारियां पूर्णवेग से प्रारम्भ हो गई हैं। महासम्मेलन विद्यापीठ के अध्यक्षों के चुनाव के कार्य का श्रीगणेश किया जा चुका है। प्रथम चुनाव में वहुमत प्राप्त करने वाले पांच पांच महानुभावों के नाम पाठक इसी पत्रिका में प्रकाशित स्थायीसमिति के कार्यविवरण में पढ़ेंगे। अन्तिम चुनाव अब शीघ्र ही सम्पन्न होगा। मतदाताओं की सूची प्रकाशित हो गई है और जो महानुभाव चाहें १) अग्रिम भेज कर प्राप्त कर सकते हैं। आशा है अधिवेशन ९, १० तथा ११ अप्रैल को सम्पन्न होगा, किन्तु निश्चित तिथियां आगामी पत्रिका द्वारा घोषित की जायेंगी।

वामनराव दीनानाथ वैद्य प्रधानमन्त्री

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि ।
संस्कृत विभागसम्पादकः—वा. वा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४१
अंक १
दिल्ली, पौष २०११, जनवरी १९५५
वार्षिक ५)
एकप्रति ॥)

सम्पादकीय--

डाक्टरों की हठवादिता

अभी हाल ही में मेडिकल एसोशियेशन का वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ। हमें आवश्यकता नहीं थी कि ऐलोपैथिक चिकित्सा व्यवसाय-से सम्बन्वित इस अधिवेशन के कार्यविवरण पर हम विशेष ध्यान देते किन्तु उसके अध्यक्षपद से भाषण देते हुए अध्यक्ष महोदय ने हमारी अपनी चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद के प्रति जो अनर्गल प्रलाप किया इसी से हमें यह पंक्तियां लिखने को वाध्य होना पड़ा है। मैडिकल एसोशियेशन के लिए उचित तो यही था कि वे अपनी ही चिकित्सा पद्धति की सफलताओं और विफलताओं, अच्छाइयों और बुराइयों पर विचार करते किन्तु दुर्भाग्यवश आयुर्वेद जिसके विषय में उनका ज्ञान शून्य के बराबर है, के प्रति कुछ न कुछ कहने की अनधिकार चेष्टा करने की प्रवृत्ति उनमें ऐसी बद्धमूल हो गई है कि वे ऐलोपैथी चिकित्सा के महानतम विद्वानों की प्रवल उक्तियों की भी उपेक्षा कर आयुर्वेद को हीन और अवैज्ञानिक कह कर अपने अज्ञान का प्रदर्शन किए बिना नहीं रहते। अधिवेशन के मंच से एक ओर जहां श्री मुंशी और पंत जैसे बहुपठित, अनुभवी और विचारशील विद्वान राजनीतिज्ञों ने आयुर्वेद को जीवित और उपादेय विज्ञान कह कर उसकी उपेक्षा करना अनुचित बताया और पश्चिम के इन अन्धानुयायियों को पश्चिम पर आश्रित न रहने की सलाह दी वहां उसी मंच से अधिवेशन के सभापति श्री सेन ने आयुर्वेद विज्ञान पर गहरे प्रहार किए और उसके शिक्षण और प्रशिक्षण को अनावश्यक बताकर सरकार को चेतावनी दी

कि देश में केवल एक ही चिकित्सा पद्धति अर्थात् ऐलोपैथी का ही प्रचलन हो सकता है। उनके सम्प्रदाय के व्यक्तियों द्वारा समय समय पर ऐसे ही तथा इससे भी गम्भीर आघात आयुर्वेद पर सदा ही किए जाते रहे हैं और अब ऐसे निस्सार वक्तव्यों पर हम विशेष कुछ कहना भी उचित नहीं समझते। किन्तु इन ऐलोपैथिक भक्तों, अतिरंजित विदेशी प्रचार साहित्य के सहारे निर्धन जनता को भ्रम में डालने वालों को हम यह चेतावनी देना आवश्यक समझते हैं कि वो जितना शीघ्र ही आयुर्वेद के विषय में अपनी अज्ञानपूर्ण जड़ हठवादिता का परित्याग कर आयुर्वेद को मिटाने के स्वप्न देखना छोड़ दें उतना ही अच्छा। डाक्टर महोदय को शायद अभी स्मरण होगा कि कुछ दिन पूर्व पाश्चात्य वैज्ञानिकों की एक कान्फ्रेन्स में इस तथ्य को स्वीकारा गया था कि मानव कल्याण के हेतु खोजी गई औषधियों के बावजूद भी रोगों में कमी नहीं हुई बल्कि नये नये रोगों की उत्पत्ति और प्रसार बराबर बढ़ रहा है। उसी कान्फ्रेन्स में यह भी स्पष्ट माना गया था कि तीव्र औषधि मानव को लाभ के साथ साथ हानि भी पहुंचाती है। नये नये रोगों की उत्पति करने वाली तथा हानिदायक औषधि को तो भारतीय चिकित्सा शास्त्र में विशुद्ध औषधि ही नहीं माना जाता। हमारा शास्त्र तो

प्रयोगः शमयेत् व्याधि यः अन्यं अन्यमुदीरियेत्।
नः असौ विशुद्धः, शुद्धः तु शमयेत् यो न कोपयेत्॥

उपर्युक्त सूत्र के अनुसार उस ही औषधि को शुद्ध औषधि मानता है जो एक रोग को शान्त करके दूसरे रोग की उत्पत्ति नहीं करती। रोग के कारण, लक्षण, प्रशमन और रोग के पुनरागमन को दूर करने के विषय को जानने वाला वैद्य ही श्रेष्ठ वैद्य माना जाता है।

ऐलोपैथी के प्रणेताओं, अन्वेषणकर्ताओं में जो विदेशी हैं जहां ऐसी शंकापूर्ण विचारधारा अपने विज्ञान के प्रति विद्यमान है वहां भारत का डाक्टर जिसके अपने कुछ विचार नहीं, जिसने विज्ञान में कोई खोज कर नई देन संसार को आज तक नहीं दी और जो विदेशों के साहित्य पर ही निर्भर रहता है बड़े गर्व के साथ ऐलोपैथी को सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा विज्ञान कह कर आयुर्वेद की खिल्ली उड़ाता है—इसे निरी हठवादिता ही कहा जा सकता है। शिष्टाचार की दुनिया में उसका और कोई उत्तर नहीं है।

शाश्वत सिद्धान्तों, सदियों से प्रमाणित उपयोगिता और महानतम आदर्शों से अभिहित आयुर्वेद काल के बलवान थपेड़ों को सहता हुआ जब आज तक जीवित रह कर अपनी उपयोगिता को सिद्ध कर रहा है तो उसे मिटाने के स्वप्न देखना डाक्टर बन्धु छोड़ दें, अन्त में पुनः यही हमारी चेतावनी है। हमारा आग्रह नहीं है कि वे गलत को स्वीकार करें बल्कि जो सही है वास्तविक और उपयोगी हैं उसे भी गलत कहकर ठुकराना बुद्धिमानी नहीं।

आयुर्वेद जगत से हमारा निवेदन है कि वह जागरूक रहे और समय की गति को पहिचान कर हर स्थिति के मुकाबले के लिये तैयार रहे। —कैलाशचन्द्र अग्रवाल

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यकारिणी तथा स्थायी समिति का

सम्मिलिताधिवेशन

विचार्य विषय—

१—गताधिवेशन के कार्यविवरण की स्वीकृति ।

२—नवीन सम्बद्धता तथा सदस्यता स्वीकृति ।

३—त्रावणकोर-कोचीन में होने वाले ४० वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की तिथियों का निश्चय ।

४—४० वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन तथा तदन्तर्गत शिक्षा सम्मेलन के सभापति पदों के लिए प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलनों से प्राप्त मत-पत्रों की श्री प्रधानमंत्री जी द्वारा गणना तथा बहुमत प्राप्त करने वाले पांच पांच नामों की घोषणा ।

५—अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रादेशिक संगठन की स्थिति पर विचार ।

६—महासम्मेलन सदस्यता-वृद्धि तथा आय-वृद्धि के साधनों पर विचार ।

७—नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ द्वारा संचालित आयुर्वेदीय परीक्षाओं को कतिपय प्रादेशिक रजिस्ट्रेशन बोर्डों द्वारा अमान्य किए जाने से उत्पन्न स्थिति तथा उसके निराकरण के उपायों पर विचार ।

८—महासम्मेलनान्तर्गत पुस्तक विक्रय विभाग के प्रसार तथा उसके द्वारा किन किन आयुर्वेदीय पुस्तकों का संग्रह एवं विक्रय किया जाय, इस सम्बन्ध में सामान्य नीति का निर्धारण ।

९—उत्तरप्रदेशीय कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन सम्बन्धी निर्वाचन समिति के अध्यक्ष की रिपोर्ट पर विचार ।

१०—उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन के बरेली विशेषाधिवेशन द्वारा नियुक्त कार्यवाहक समिति के संयोजक वैद्य श्री पं० अमरनाथ जी, देहरादून, के उस पत्र पर विचार जिसमें उन्होंने उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन की सदस्यता मध्ये महासम्मेलन द्वारा प्राप्त समस्त धनराशि की मांग की है ।

११—बिहार राज्य में महासम्मेलन की प्रादेशिक शाखा, बिहार प्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलन, मोतीझील, मुजफ्फरपुर, के विरोध में एक अन्य बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की विद्यमानता से उत्पन्न स्थिति पर विचार ।

१२—अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की बराबरी में खड़ी होने वाली "अखिल भारतीय" शब्द का प्रयोग करने वाली अन्य संस्थाओं के प्रति महासम्मेलन

सदस्यों के सम्बन्ध की नीति पर विचार।

१३—बाबा काली कमलीवाला पंचायत क्षेत्र, ऋषिकेश, ने अपने दिनांक १-८-५३ के प्रस्ताव द्वारा अ. भा. आयुर्वेद विश्वविद्यालय ऋषिकेश में बनाने के महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के प्रस्ताव को स्वीकार कर रामनगर में विश्वविद्यालय स्थापन का कार्य शीघ्र प्रारम्भ कराने का निश्चय किया था किन्तु पश्चात् समय पर कार्य में बाधा उपस्थित कर महासम्मेलन तथा विद्यापीठ को उनके द्वारा पहुँचाई गई आर्थिक तथा अन्य प्रकार की हानि पर विचार।

१४—केन्द्रीय सरकार द्वारा लोक सभा में प्रस्तुत किए जानेवाले उस बिल पर विचार जिसके अनुसार आयुर्वेदीय आसव अरिष्टों को मादक पेयद्रव्यों की श्रेणी में रख कर उन पर भी टैक्स लगाने की व्यवस्था की गई है।

१५—अन्यान्य विषय अधिवेशनाध्यक्ष जी की अनुमति से।

कार्य विवरण

स्थान—आयुर्वेदिक कालेज, त्रिवेन्द्रम (ट्रावनकोर कोचीन)।

समय—सोमवार, ता० १० जनवरी, १९५५, २ बजे अपराह्न से।

उपस्थिति—श्री डा० वाई पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर। श्री वा० बा० नटराज शास्त्री, त्रिचनापली। आर्यवैद्य श्री एस० वारियार, कोट्टकल। आर्यवैद्य श्री एस० आर० आयर, कोट्टकल। श्री एस० वी० राधाकृष्णन, तिरुचिरापल्ली। श्री पी० एन० शर्मा, सुचीन्द्रम। श्री कविराज विद्यानारायण शास्त्री, पटना। श्री कमलाप्रसाद मणि त्रिपाठी, पटना। श्री डा० ए० लक्ष्मीपति, मद्रास। श्री एन० एस० मूस, कोट्टायाम। श्री वामनराव दीनानाथ वैद्य, बम्बई।

अधिवेशनार्थ निम्नलिखित महानुभावों के सम्मति पत्र प्राप्त हुए:-सर्वश्री वैद्य पं० हरगोपाल शास्त्री, उगोके, जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, प्रयाग, लालमणि मिश्र, मौदहा; नानक चन्द्र शर्मा, देहली, नित्यानन्द आचार्य, पिलानी, सूर्यकान्त शर्मा, भगवतगढ़, वासुदेव शास्त्री, उज्जैन, बदरी विशाल त्रिपाठी, कानपुर, महाराज चरणतीर्थ, गोंडल, वेदवृत शर्मा, कासगंज, कालिदास चटोपाध्याय, कलकत्ता, पूर्णानन्द शास्त्री, श्री माधोपुर, सुधन्वा जी, देहली, प्रभुदत्त शास्त्री, सीकर ख्यालीराम द्विवेदी, इन्दौर, हरिराम बराटे, भुसावल, बाघ जी के० सोलंकी, मुन्द्रा, चन्द्रप्रकाश शास्त्री, देहली, घासीराम, गणपतराम जोशी, देवास, यमुनाप्रसाद शास्त्री, जबलपुर, बिहारीलाल वैद्य, बडरुखां, शम्भुनाथ शास्त्री, कानपुर, राधाकृष्ण, जीरा, शिवशंकर उपाध्याय, लहेरिया सराय, शिवजी जेठा भाई, मांडवी, स्वामी ब्रह्मानन्द, व्यास, रामदेव ओझा, मुजफ्फरपुर, चुन्नीलाल रेवाशंकर, बड़ौदा, पद्मनाभ शास्त्री, बीकानेर, गणेशदत्त शास्त्री, मेरठ, जोगेन्द्रसिंह, भादसां, रामदयाल जोशी, पटना, एन० रामा वैद्यार, मदुराई, एम० जी० जोशी, पूना, ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल, सुखराम प्रसाद, पटना, पी० पी० वैद्यार, कोझीकोड, लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण शास्त्री, अहमदाबाद, कपिलदेव त्रिपाठी,

पटना, किशोरी मोहनदास, कलकत्ता, पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, हैद्राबाद, यू० वेंकट शास्त्री, विजयवाड़ा, खण्डपरशु छत्रसिंह वारोट, बड़ौदा, माधोप्रसाद आचार्य, रतलाम, सिद्धिशंकर शर्मा, कनेछन, जगन्नाथ रथ, पुरी, रक्षपाल मिश्र, इन्दौर, सत्यनारायण मिश्र, कानपुर।

श्री प्रधानमन्त्री जी के प्रस्ताव पर तथा श्री वा० वा० नटराज शास्त्री के अनुमोदन पर श्री डा० वाई पार्थनारायण पंडित की अध्यक्षता में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

विषयांक १—गताधिवेशन का कार्यक्रम पढ़ा गया और सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

विषयांक २—निम्नलिखित नवीन सम्वद्धतायें एवं सदस्यतायें स्वीकार की गईं—

(क) सम्बद्धता—मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्यमंडल, नागपुर।
आल केरल आयुर्वेदिक कांग्रेस, कोजीकोड।

(ख) सदस्यता—

१ संरक्षक सदस्यता—श्री कृष्णकान्त नागर, मथुरा।

२ आजीवन सदस्यता—

१. श्री महाशंकर बी० ठाकुर, बम्बई। २. श्री विश्वेश्वर शाह, हजारीवाग। ३. श्री रामभाऊ भोंगे, बम्बई। ४. श्री विद्यानारायण शास्त्री त्रिपाठी, पटना। ५. श्री कमलाप्रसाद मणि, पटना। ६. श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल, देहली। ७ श्री पारसकुमार जैन, कनखल। ८. श्री एन०एस० मूस, कोटायाम।

३ मान्य सदस्यता—

जिनका सदस्यता शुल्क १० जनवरी १९५५ तक कार्यालय द्वारा प्राप्त किया जा चुका है।

विषयांक ३—निश्चय हुआ कि त्रिवेन्‍ म में होने वाले ४० वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये तिथियों की घोषणा महासम्मेलन के अध्यक्ष से परामर्श करके स्वागत समिति नियमानुसार यथासमय कर दे।

विषयांक ४—४० वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन तथा तदन्तर्गत आयुर्वेद शिक्षासम्मेलन के सभापति-पदों के लिये १७ प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलनों से प्राप्त मतपत्र श्री प्रधानमन्त्री द्वारा खोले गये और मतों की गणना के फलस्वरूप उभय सभापति पदों के लिये सदस्यों द्वारा अन्तिम निर्वाचनार्थ निम्नांकित पांच पांच नाम घोषित किये गये:—

(क) आयुर्वेद महासम्मेलन:—

१—वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा, बम्बई, १३ प्रादेशिक सम्मेलनों द्वारा प्रस्तावित।
२—श्री डा. वाई पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर ८ " " " "
३—वैद्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य, बम्बई ६ " " " "
४—वैद्यरत्न श्री कविराज प्रतापसिंह जी, इन्दौर ६ " " " "
५—श्री डा० ए० लक्ष्मीपति, मद्रास ४ " " " "

(ख) आयुर्वेद विद्यापीठः—

१–श्री वैद्य भिकाजी विनायक डेग्वेकर, जबलपुर	६	प्रादेशिक सम्मेलनों द्वारा प्रस्तावित
२–श्री पं० हरिदत्त शास्त्री, बम्बई	६	" " " "
३–श्री पं० श्रीदत्त शर्मा, ऋषिकेश	५	" " " "
४–कविराज श्री उपेन्द्र नाथ दास, देहली	४	" " " "
५–श्री कैप्टन जी० श्रीनिवास मूर्ति, मद्रास	३	" " " "

विषयांक ५ तथा ६–इन दोनों विषयों पर एक साथ विचार विमर्श करना उचित समझा गया। विचारानन्तर यह सुझाव दिया गया कि महासम्मेलन के प्रादेशिक संगठन को बल देने के लिये एवं इसकी सदस्यता वृद्धि के लिये संस्था के प्रधान कार्यालय में एक वैतनिक संगठन मन्त्री नियुक्त किया जाय जो क्रमशः प्रान्तों का दौरा करे और संस्था के सदस्य बनाये, जिस से साथ २ प्रादेशिक संगठनों को भी सहायता मिले।

(ख) यह भी निश्चय हुआ कि प्रत्येक प्रान्त में वहां के किसी अवैतनिक अधिकारी के आधीन वैतनिक प्रचारक रक्खे जायें जिनपर उन्हीं के द्वारा प्राप्त की गई आय का चतुर्थांश तक व्यय किया जाय।

विषयांक ७–नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षाओं की मान्यता के विषय में निश्चय हुआ कि जिस जिस राज्य में कठिनाई खड़ी हो वहां २ महासम्मेलन के अध्यक्ष बोर्डों से पत्र व्यवहार करके मान्यता प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

विषयांक ८–महासम्मेलन कार्यालय के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय विभाग के संचालन एवं प्रसार के विषय में निश्चय हुआ कि महासम्मेलन के संयुक्त मन्त्री एवं विद्यापीठ के उपमन्त्री मिलकर इस विषय में योजना बनायें और उस पर आगामी अधिवेशन में विचार किया जाय।

विषयांक ९ तथा १०-उत्तर प्रदेश कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन निर्वाचन समिति के अध्यक्ष की रिपोर्ट का सारांश सुनाया गया और पुरातन सम्मेलन के विवाद के शान्त होने पर सभी ने सन्तोष प्रकट किया। निश्चय हुआ कि उत्तर प्रदेश कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन सम्बन्धी सदस्यता शुल्क के जिस शेषांश की मांग है उसमें से महासम्मेलन कार्यालय द्वारा किये गये सभी व्यय एवं उत्तर प्रदेश के सन् १९५३-१९५४ एवं १९५५ वर्षीय सम्बद्धता शुल्क मध्ये सभी धनराशियोंको काटकर शेष धन उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन को दे दिया जाय।

विषयांक १२–अ०भा०आयुर्वेद महासम्मेलनकी बराबरीमें खड़ी होने वाली "अखिलभारतीय" शब्द का प्रयोग करने वाली अन्य संस्थाओं के प्रति महसम्मेलन सदस्यों के सम्बन्ध की नीति पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि "महासम्मेलन के सर्व साधारण सदस्यों को आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका द्वारा सूचना दी जाय कि वे अ०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के सदस्य रहते हुए अन्य किसी अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन, आयुर्वेदिक कांग्रेस, वैद्य–हकीम महासम्मेलन अथवा वैद्य-हकीम कांग्रेस आदि की

सदस्यता स्वीकार न करें, क्योंकि ऐसा करने से अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के संगठन एवं सत्ता को हानि पहुँचती है ।

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के जो सदस्य किसी भ्रान्तिजनक आन्दोलन के कारण उपर्युक्त प्रकार कि किसी संस्था के सदस्य बने हों वे उनसे त्यागपत्र देकर पृथक् हो जायें ।

यह भी निश्चय हुआ कि इस प्रश्न पर आगामी महासम्मेलन में पुनः विचार किया जाय और तब तक के लिये महासम्मेलन के अध्यक्ष को अधिकार दिया जाय कि वह इस प्रस्ताव द्वारा दिये गये आदेश की अवज्ञा करने वाले महासम्मेलन के सदस्यों के समितियों और चुनावों में मतदान के अधिकारों को जब उचित समझें स्थगित कर दें ।

विषयांक ११–बिहार के विषय पर दीर्घ विचार विमर्श के अनन्तर निश्चय हुआ कि बिहारी से इतर एक सदस्य द्वारा निर्मित एक समिति बिहार जाय और वास्तविक विषय को विभिन्न पक्षों से जानकर अपनी रिपोर्ट स्थायी समिति के समक्ष प्रस्तुत करे । यह भी सुझाव दिया गया कि आयुर्वेद के राजनैतिक भविष्य के हित में इस कठिन समय में सभी विरोधी संस्थायें परस्पर मिलकर आयुर्वेद के कार्य में अग्रसर हों ।

विषयांक १३–आयुर्वेद विश्वविद्यालय, ऋषिकेश, की स्थापना में विघ्न बाधा के विषय पर जो कुछ हुआ उससे स्थायी समिति को अवगत कराया गया । स्थायी समिति का यह मत बना कि अध्यक्ष इस प्रश्न को स्वयं अपने हाथ में लें तथा आयुर्वेद महासम्मेलन एवं आयुर्वेदिक व्यवसाय के हितार्थ दोनों पक्षों में एक कार्यनिर्वाहक समझौता करा दें । यह अधिवेशन इस विषय में सभी आवश्यक कार्यवाही करने का श्री अध्यक्ष जी को अधिकार देता है ।

विषयांक १४–केन्द्रीय सरकार द्वारा आसव और अरिष्टों पर कर लगाने का विषय उपस्थित हुआ तथा इस पर निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार हुआ :—

"स्थायी समिति का यह अधिवेशन केन्द्रीय तथा कुछ प्रान्तीय सरकारों द्वारा आसव और अरिष्टों को मादक पेयद्रव्यों की श्रेणी में सम्मिलित किये जाने के विषय में अपना प्रबल विरोध प्रस्तुत करता है तथा सरकार से सानुरोध प्रार्थना करता है कि इस विषय में आयुर्वेद विरोधी तत्वों के गलत परामर्श और स्वार्थ युक्त प्रचार के फलस्वरूप आयुर्वेद व्यवसाय के मार्ग में लगाये गये इस प्रकार के प्रतिबन्धों को शीघ्र ही हटाये तथा आसव एवं अरिष्टों को मादक पेय द्रव्यों की श्रेणी में से निकाल दियां जावे ।"

मिश्रित–विषयांक १५–निश्चय हुआ कि श्री श्रीकृष्ण प्रभाकर, सह-सम्पादक महासम्मेलन पत्रिका तथा महासम्मेलन कार्यालय के वर्तमान प्रमुख कार्यकर्त्ता को १ जनवरी १९५५ से स्थायी किया जाय।

श्री सभापति तथा अन्य समागत सदस्यों द्वारा औपचारिक धन्यवाद के अनन्तर रात्रि को ७-३० पर सभा सानन्द बिसर्जित हुई।

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधानमंत्री,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।

महालक्ष्मी मार्केट,
चांदनी चौक, देहली।

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleton) आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल टिकयां व गोलियां बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकल इन्स्ट्रूमेन्ट, आदि के मिलने का पता:—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स क०
दयाल बाग़ (आगरा)

रोग पर जादू की भांति तत्काल असर करने वाले

मार्तण्ड के आयुर्वेदिक इंजेक्शन

मार्तण्ड की समस्त वैज्ञानिक साधन सम्पन्न और आधुनिक मशीनों से सुसज्जित प्रयोगशाला में उच्च शिक्षित आयुर्वेदज्ञों और विदेशी रसायनज्ञों की देख रेख में निर्माण हुए ये आयुर्वेदिक इंजेक्शन अपना तत्काल असर करते हैं, इनका प्रभाव स्थाई होता है, रक्खे रहने पर भी ये कभी नहीं बिगड़ सकते, इनकी आशुगुणकारिता और शुद्धि की पूरी गारंटी है। सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगाइये।

निर्माताः **मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत, उत्तर प्रदेश**
(रिसर्च इंस्टीट्यूट आफ इंडियन मेडिसन्स)

रोगोत्पत्तौ वातादिदोषा जीवाणवो वा उभयं वा निदानानि

लेखकः—वैद्य शंकरलाल शर्मा, भिषगाचार्य फतेहपुरम्।

आधुनिका एलोपैथीचिकित्सकाः प्रतिपादयन्ति यद् व्याध्युत्पतौ विभिन्ना जीवाणव एव कारणानि न च वातपित्तश्लेष्माणो दोषा यतो हि विभिन्नव्याधिपीड़ितानां मानवानां शरीरस्थरक्तादिषु विभिन्ना जीवाणवऽणुवीक्षणादियन्त्रसाहाय्येन प्रत्यक्षमवलोक्यन्ते। तथाहि विषमज्वर (मलेरिया) वातश्लैष्मिक (इन्फ्लुएञ्जा) ज्वरादिषु रक्तश्लेष्मादिषु जीवाणवः समुपलभ्यन्ते तत्तज्जीवाणुनाशकभेषजानां प्रयोगेण च जीवाणुनाशात् उक्तव्याधीनामपि नाशो भवत्येव, अतोऽनुमीयते यज्जीवाणव एव रोगनिदानानि न च वातादिदोषाः। अत्र शास्त्रं प्रमाणीकृत्य किञ्चिद्विचारयामः।

चरके महारोगाध्याये व्याधिवर्णनप्रसंगेऽभिहितम् चत्वारो रोगा भवन्ति—"आगन्तु वातपित्तकफनिमित्ताः सूत्रेऽस्मिन् वातादिदोषातिरिक्तं आगन्तुकारणमपिलिखितम्। आगन्तु कारणानि च बहूनि सन्ति तेषु भूतोपसर्गोऽपि हेतुरेकोऽस्ति। तत्र भूतानामुपसर्गः भूतोपसर्ग इत्यर्थे भूतशब्देन जीवाणव एव गृह्यन्ते आचार्यगणनाथसेनमहोदयैरपि "केचिद्भूताभिषंगोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम्" अस्य सूत्रस्य व्याख्यानप्रसंगे भूतशब्देन जीवाणव एव गृहीताः। आगन्तुकारणानि च संक्षेपतश्चरके लिखितानि तानि यथा—"मुखानि तु खल्वागन्तोर्नखदशनपतनाभिचारभिशापाभिषङ्गाभिघातवधबन्धनपीडनरज्जुदहनशस्त्राशनि भूतोपसर्गादीनि" इति

वाग्भटेऽपि लिखितम्—

"निजागन्तुविभागेन तत्र रोगा द्विधा स्मृताः" इत्यस्मिन् सूत्रेऽपि निजाश्च आगन्तुश्च तयोर्विभागस्तेनेत्यर्थे निजशब्देन वातादिदोषास्तथा आगन्तुशब्देन च वाह्यकारणानि गृह्यन्ते।

न च "सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिताः मलाः" तथा "दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम्" इत्यादिवाग्भटीयसूत्रेषु रोगोत्पत्तौ केवलं वातादय दोषा एव स्वीकृता नच रोगकारणत्वेन जीवाणवोऽपि प्रतिपादिता अतश्च पूर्वापरग्रन्थविरोधो भवतीति चेन्न आगन्तुव्याधिष्वपि उत्पत्त्यनन्तरं दोषप्रकोपोभवत्येव अतएव दोषाणामेव प्रधानकारणत्वं स्वीकृतमुक्तसूत्रयोस्तथाच चरके—"आगन्तुर्हि व्यथापूर्वं समुत्पन्नो जघन्यं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यमापादयति, निजे तु वातपित्तश्लेष्माणः पूर्वं वैषम्यमापद्यन्ते जघन्य व्यथासभिनिर्वर्तयन्ति।" निजागन्तुभेदप्रतिपादकमपरमपि चरकीय सूत्रम्—

"स्वधातुवैषम्यनिमित्तजा ये विकारसंघाः वहवः शरीरे। न ते पृथक् पित्तकफानिलेभ्य आगन्तवस्त्वेव ततो विशिष्टाः।

आधुनिकैरिव पूर्वाचार्यैरपि कुष्ठादीनां जीवाणव कुष्ठादिपीडितानां शोणिते दृप्टा एव तथा च वाग्भटे—"रक्तवाहिशिरास्थानरक्तजा जन्तवोऽणवः......षट् ते कुष्ठैककर्माणः" तथा च सुश्रुताचार्येणापि स्पष्टं प्रतिपादितमेव—

प्रसंगात् गात्रसंस्पर्शात् निःश्वासात् सहभोजनात्।
सह शय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्दं एव च ।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥

अत्र प्रसंगादिभिः कारणैः कुष्ठादीनां व्याधीनां नरान्नर संक्रमणमभिहितमेव। संक्रमणञ्च संक्रमणकारणम्विना नैव भवितुं शक्यते तच्च संक्रमणे कारणं जीवाणव एव। प्रायेणैतदवलोकितं बहुधा यद् आन्त्रिकज्वरपीडितानां परिचारकेष्वपि आन्त्रिकज्वरसंक्रमणं भवति। विषूचीवातश्लेष्मिकग्रन्थिकज्वराणां मारकरूपेण प्रादुर्भावे सति स्वस्था अपि उक्तरोगाक्रान्ता भवन्ति। गतवर्षे अस्मिन् प्रान्ते वातिककासः (कालीखांसी) जनपदव्यापी संजातस्तदा वातिककासाक्रान्तबालकेभ्य अन्येष्वपि बालकेषु संक्रमित उक्तव्याधिः। उक्तंच चरकेऽपि जनपदोध्वंसनीयेऽध्याये देशकालजलानिलानां विकृत्या स्वस्था अपि रुग्णा भवन्तीति ।

आधुनिकैरिव पूर्वाचार्य्यैरपि व्रणितस्य रक्षार्थं बहव उपायाः प्रतिपादितास्तेषु रक्षोघ्नधूपा अपि सन्ति तथा च सुश्रुते—"ततः शास्त्रमवचार्येत्यादिना वेदनारक्षोघ्नैर्धूपैर्धूपयेत् इत्यन्तेन। रक्षोघ्नधूपश्च गुग्गुल्वगुरुसर्जरसबचागौरसर्षपलवणनिम्बपत्रादीनां भवति। चरकेऽपि प्रसूतायास्तथा नवशिशोः जीवाणुभ्यो रक्षार्थं प्रतिपादितेषूपायेषु रक्षोघ्नधूपो लिखितः। उभयत्र रक्षश्शब्देन सूक्ष्माः जीवाणव एवाभिप्रेताः।

आमगर्भपाते, रक्तातिस्रुतौ, अभिघाते च सति अपतानको व्याधिर्भवति, तत्र चोक्तास्ववस्थासु गर्भाशयादिषु व्रणाः भवन्ति तेषु जीवाणूनां संक्रमणाद् उक्तरोगो भवति अत एव आधुनिकाः पूर्वोक्तास्ववस्थासु "एन्टी टैटिनस" नाम्नो भेषजस्य प्रक्षेपः सूच्या शरीरान्ते कुर्वन्ति। आयुर्वेदे तु एतादृग् अपतानक असाध्यः प्रतिपादितः। तथाच सुश्रुते—

गर्भपातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः।
अभिघातनिमित्तश्च न सिद्ध्यत्यपतानकः ॥

ननु यदि वातादिवज्जीवाणवोऽपि रोगकारणानि तदा मसूरिकाव्याधौ नाद्यावधि कश्चिज्जीवाणुरन्वेषितः केनचिदपि वैज्ञानिकेन परं रोगस्तु मसूरिकाख्यो भवत्येव तत्र दोषा जीवाणवो वा कारणानीति महान् सन्देहः। यदि जीवाणव एव कारणानि तदा कथन्न

समुपलभ्यन्ते तद्रोगपीडितेषु तत्र "सौक्ष्म्यात् केचिददर्शनाः" इति आचार्यवाग्भटोपदेशेन मसूरिकाया जीवाणव अतीव सूक्ष्माः सन्ति ये अणुवीक्षणयन्त्रेणापि नावलोक्यन्ते । दोषाणान्तु पश्चात् सम्बन्धो भवत्येव । यत आगन्तुव्याधिष्वपि पश्चाद् दोषकोपो भवतीति पूर्वं प्रतिपादितमेव ।

आचार्य गणनाथसेनमहोदयेनापि रोगाणां कारणं द्विविधमेव प्रतिपादितम्—

"मिथ्याहारविहारादि सामान्यं समुदाहृतम् ।
विशिष्टं विषशस्त्राग्निकृमिव्यालादि कीर्तितम् ॥"

अतएव सर्वव्याध्युत्पत्तौ न केवलं जीवाणवो नवा वातादिदोषाः कारणानि परमुभयमेव कारणम् । तत्र वातादिदोषा निजकारणत्वेनाभिहिताः, जीवाणवश्चागन्तुकारणानीति ।

निजागन्त्वोश्च परस्परमतिसम्बन्धोऽभिहितश्चरकाचार्येण—

"आगन्तुरन्वेति निजं विकारं निजस्तथागन्तुमपि प्रवृद्धः ।
तत्राऽनुबन्धं प्रकृतिञ्च सम्यग् ज्ञात्वा ततः कर्म समारभेत ॥"

अथर्ववेदेऽपि ज्वरादिव्याधीनां जीवाणवः प्रतिपादिता एव, परमत्र विस्तरभयान्न लिख्यत इति विस्तरेणालम् ।

संपादकस्य निवेदना—

रोगाणां जीवाणुकारणतावादस्य समर्थने सिद्धान्तनिदाने श्रीगणनाथसेनमहाशयेन प्रपञ्चितानेव विषयान् एते निबन्धारः स्ववचसा अत्रानूदितवन्त इति, स्वतन्त्रविमर्शरसिकाः पाठकाः, स्वतन्त्रविमर्शांशस्य मृग्यत्वादेतस्मिन् निबन्धे, माभूवन् क्षणं विप्रिया इति सादरं निवेदयामः ।

रोगाणां जीवाणुकारणतावादे श्रीगणनाथसेनमहामहोपाध्यायात् परं शास्त्रीयपरीक्षावादो नैव सम्यक् प्रावर्त्तत वैद्यविद्वन्मण्डले । सिद्धान्तनिदानात् परमद्ययावन् निदानस्कन्धे कोऽपि नूतनः स्वतन्त्रग्रन्थः संस्कृते न केनापि विदुषा विरच्य प्रकाशितो मम श्रुतिगोचरो भवति । हिन्दीभाषायां प्रकाशिताः केचन नूतनग्रन्थाः, वैद्यकमासिकपत्रिकासु प्रकाश्यमाना निदाननिबन्धाश्च, आलोपाथिकनव्यवैद्यकप्रपञ्चितानां जीवाणुसंबद्धविषयाणाम् अर्थतः शब्दतश्च संग्रहणानुकरणमात्रपर्यवसायिनो दृश्यन्ते । न कोऽपि विपश्चित् आयुर्वेदिकालोपाथिकनव्यवैद्यकीये व्याधिकारणविज्ञानविषयस्य प्रमाणपरीक्षणपुरस्सरं समन्वयसमुच्चयकरणे यथावत् परिश्रमं प्रारब्धवानद्य यावत् । अधुना अत्यर्थमपेक्षिततमे तादृशे परीक्षासमन्वयसमुच्चये विबुधभिषजां प्रवृत्तिं प्रार्थयमाना वयं अस्मिन्नधिकारे प्रथममेतं निबन्धं प्रकाशितवन्तः ।

एतन्निवन्धकर्त्तृभ्यो विशेषप्रार्थना—'अथर्ववेदेऽपि ज्वरादिव्याधीनां (हेतुत्वेन) जीवाणवः प्रतिपादिता एव विस्तरभयान्न लिख्यन्ते' इत्युपसंहृतं युष्माभिः मा भूद्वो विस्तरभीतिः । अथर्ववेदे अन्येषु च वेदेषु स्मृतिषु पुराणेषु च व्याधिसामान्यं प्रति व्याधिविशेषं प्रति वा जीवाणूनां कारणत्वं यत्र यत्र यावत् प्रपञ्चितं संसूचितं वोपलभ्यते तदखिलं कृपया संकलय्य प्रेषयत । वैद्यकविज्ञानस्य महदुपयोगिनं तादृशं विषयमतिविस्तृतमपि प्रकाशयितुमियं सम्मेलनपत्रिका सर्वदा सोत्कण्ठा भवति ।

किञ्च, यदुच्यते युष्माभिः । चरकसुश्रुतादिसंहितासु रक्षःशब्देन सूक्ष्मा जीवाणव एवाभिप्रेता इति तस्य प्रमाणं शास्त्रयुक्तिभ्यां सर्वप्रकरणसामञ्जस्येन समालोच्य, भूत-रक्षः-जीवाणु शब्दानां शक्तीः विविच्य निवन्धाननुप्रेषयत प्रेक्षावतां प्रीत्यै इति ।

(वा० बा० न)

"हमारे थोक भाव"

काश्मीरी शिलाजीत, हमारे कारखाने में प्रतिवर्ष करीब २०० मन शास्त्र विधि अनुसार शुद्ध की जाती है । भाव-शुद्ध ३२) सेर, अशुद्ध पत्थर ६५) प्रति मन, लोह भस्म २४), वंग भस्म ३६), प्रवाल भस्म ३२), अभ्रक बज्रभस्म ४६), कांत लोह भस्म २८). स्वर्ण माक्षिक भस्म २८), रस सिन्दूर ६०), स्वर्णराज बंगेश्वर ८८), लौह भस्म २;, खभस्म ७), श्रगं भस्म १४), कर्पादिका भस्म ८), मुक्ता शुक्ती प्रति तोला), गोदन्ती भस्म ३।।।), चन्द्रप्रभा वटी २८), प्रति सेर, स्वर्ण सिन्दूर ३), प्रति तोला ।

नोटः—इन भावों पर २० तोला से कम कोई वस्तु न भेजी जावेगी, सूचीपत्र मुफ्त ।

च्यवनप्राश; ५ सेर का २१), १० सेर का ३८), २० सेर का ६५). रु०

काश्मीर आयुर्वैदिक वर्क्स,

(थोक आयुर्वेदिक औषधियों के बनाने का बड़ा कारखाना)

जी० टी० रोड, अमृतसर

वैद्य बन्धुओ, अपनी आय बढ़ाओ

बिना पूँजी, बिना परिश्रम, बिना किसी व्यय के आय बढ़ाना चाहें, तो हम से पत्र व्यवहार करें । हमारा कारखाना भारत भर में थोक परिमाण में सस्ती एवं उत्तम सर्व प्रकार की आयुर्वेदिक औषधिएं सप्लाई करने में प्रसिद्ध है । कई प्रान्तीय गवर्नमेण्टें **हमारी ग्राहक हैं । काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, अमृतसर ।**

OTITIS MEDIA or कर्णविद्रधि, कर्णसंस्राव or कर्णपाक

By

Kj. Ravindra Ch. Chaudhury, B. A., Kavyatirtha, L. A. M. S.,
Bhisagratna, Principal Sanatana Dharma Ayurveda
Vidyalaya And Aushadhalaya, Mirzapur, U. P.

Otitis Media is defined as the inflammation of the lining membrane of the middle ear which comprises (1) the middle ear consisting of the upper-most portion of the attic, the middle portion otherwise known as the middle ear proper and the lower-most portion known as the hypotympanic space, (2) the eustachian tube, (3) the mastoid antrum and cells. The whole middle ear ought to be taken as one unit as whenever there is any inflammation anywhere in it, there is every probability of the reaction being felt in almost every part, even to the mastoid antrum.

The disease which, at first, may be catarrhal, may soon turn purulent. So it is difficult to determine when a non-infective case may become infective.

Clinically, it is divided into two classes, namely "Acute" and "Chronic", according to the progress of the cases.

According to Ayurveda, it is very difficult to identify any particular disease as described in Ayurvedic text-books, as otitis Media. The term कर्ण विद्रधि may approach Acute Otitis Media or Acute Furuncle of the ear to a large extent.

In सुश्रुत, its signs and symptoms are as follows:—

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथादोषकृतोऽपरः पुनः ।
सरक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत् प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥

As abscess or furuncle of the ear may be due to some wound, trauma or due to the three Doshas. In it there is bloody secretion, some times red, sometimes yellow or reddish. There is intense pain as well as smoky, burning sensation. कर्णपाक appears to be an inflammation of the ear, external or middle of a lesser degree.

According to चरक, पैत्तिक कर्ण रोग comes very near to Acute Otitis Media as is mentioned below :—

शोफः सरागो दरणं विदाहः सपीत पूति स्रवणं च पित्तात् । १२८ च. चि.२६अ.

Chronic Otitis Media may be likened to श्लैष्मिक कर्ण रोग as shown below:

वैश्रुत्य कण्डू स्थिर शोफशुक्ल स्निग्धास्रुतिः श्लेष्मभवेऽल्परुक् च ॥
१२८ च. चि. २६ अ.

In पैत्तिक कर्ण रोग there are red swelling, sensation of a splitting and burning character and yellow, offensive secretion.

In श्लैष्मिक कर्ण रोग, there are dullness of hearning, itching sensation, more or less stable swelling, white and oily secretion and pain is less.

सान्निपातिक कर्णरोग may also sometimes be called Acute Otitis Media, as the signs and symptoms of the three Doshas supervene in it.

Aetiology: Children are mostly the victims. Generally, nasopharyngeal disease is the cause of the infection. The infection spreads from the nose, tonsils, adenoids or throat through the eustachian tube to the middle ear. Gravitation helps in extending the infection from the throat to the ear. General catarrhal condition or other unhealthy conditions are often responsible for the inflammation. Chronic infective diarrhoea in children is supposed to cause the infection of the middle ear. If there is old Otitis Media for which syringing is done or if it is left uncared-for, Acute Otitis Media may be set up. Infection may spring up either from within or without.

According to सुश्रुत who only among Ayurvedistis, has dealt with ear-diseases elaborately, the causes of Otorrhoea are as follows:—

शिरोऽभिघातादथवानिमज्जतो जले प्रपाकादथवाऽपि विद्रधेः ।
स्रवेत्तुपूयं श्रवणोऽनिलावृतः स कर्णसंस्राव इति प्रकीत्तितः ॥ १०
सु. उ. २० अ०

Due to (I) some trauma on the head (2) diving in water, (3) suppuration of an absoess, the ear in which वायु or air is confined, exudes pus or any secretion. This is called कर्ण संस्राव.

As the description goes, कर्ण संस्राव is nothing but otorrhoea or running from the ears.

That the Otologists or Ayurveda were aware of the connection between the ear and nasopharynx is well evidenced by the following verse in the same chapter

सकर्णं विट्को द्रवतां यदा गतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते ।
तदा सकर्णं प्रतिनाह-संज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽभितापनः ॥

When the wax of the ear, on account of स्नेह, स्वेद, वायु or कफ due to the three दोष's (according to Dalhana) melts and finds its way to the nose or the mouth, it causes head-ache and is called कर्णं प्रतिनाह.

When there are signs of पित्त with sloughing, it is called कर्णं प्रतिनाह, as:—

भवेत् प्रपाकः खलु पित्तकोपतो विकोथविक्लेदकरश्च कर्णयोः । सु. उ. २० अ.

पूतिकर्णं is nothing but strong otorrhoea, as is shown below, the special characteristic being offensive smell which is accompanied with the profuse, thick discharge.

स्थिते कफे स्रोतसिपित्त तेजसा विलाप्यमाने भृशसंप्रतापवान् ।
अवेदनो वाऽप्यथवा सवेदनो घनं स्रवेत् पूति च पूतिकर्णकः ॥

In otorrhoea where maggots grow, it is called पूतिकर्णक.

Signs and symptoms:—In the acute stage, pain is the most troublesome symptom. It depends on the degree of tension of the drum accumulation of fluid, inflammation of the drum itself or the formation of bullae there. The pain is of a sharp and lancinating character and does not usually radiate. It is relieved as soon as tension is lowered by the bursting out of pus. In the early stages, hearning is not impaired. As the disease progresses, the hearing deteriorates, indicating the seriousness of the disease. The temperature may rise up. The patient feels unwell and the pulse is rapid. In the case of infants, there are fretfulness and other signs of cold which often mask the ear-trouble. The infant cries, specially at night, raises the hand to the head or ear, rolls the head on the pillow. The disease may remain undiagnosed till the discharge from the ear settles the diagnosis when the troubles subside to some extent.

Sometimes the patient complains that he seems to speak through some barrel. There is noise in the ears.

Diagnosis:–For proper diagnosis, the drum requires to be examined. The drum loses its lustre, looks greyish pink, pink or bright-red. As pus accumulates, the drum bulges, looking rather as a doubled roll, the drum's outline being almost lost. In the centre, there is a dimple denoting the attachment of the malleus. The colour finally is yellowish. In advanced and complicated cases, the mastiod bone may become involved and may show softening. If the pus gets out and the tenderness over the mastoid area subsides, the prognosis is rather good and the mastoid need not be the cause of concern. But to get a proper and correct view of the drum is not a very easy affair, on account of various causes. As the whole adjoining area is tender, it is very difficult to insert the speculum. More over, the vision is often occluded by wax or furunculosis which lies before the drum. To remove them by mops or syringing is also a painful and difficult affair. On the other hand, syringing, unless done by expert hands and cautiously, may exacorbate the inflammation, thus giving added trouble to the patient. In some cases, syringing may give rise to dizziness of the patient and he or she may feel unconsious. So utmost gentleness and caution require to be exercised in examining the ear.

If perforation has taken place, the discharge may on mopping, be seen to becoming from a perforation. The discharge moves with the pulse.

In mastoiditis, the pain is behind the ear; whereas in furunculosis or otitis externa, the pain is of a dull and aching kind and is usually localised in fron of or below the ear.

Chronic Otitis Media is rather an advanced stage of Acute Otitis Media. It may clinically be termed Otorrhoea or running ear of long standing where there is no sign of Acute inflammation. Chronic cases may present granulations and polypi.

Treatment:—Prophylaxis consists in prevention of cold or when there is the attack of cold, treating the cold so that the ear may not be affected. Excessive use of sweets or sugar should be discouraged. Children should not be allowed to keep their heads on pillows in such a manner as to help infection to gravitate from the nasopharynx.

Antibiotics and sulphadrugs have proved a great sheet-anchor of Otitis Media in these days. But their indiscriminate use, though may effect immediate good results, may cause loss of hearing. It is necessary to watch the condition, while administering them, as they often relieve the symptoms leading to adhesions and loss of hearing.

When pus has formed, it is wise to do the operation.

The patient should be given rest in a warm room.

For relief of pain, Glycerine with carbolic acid 4% is much effective. Other local anesthetics may also be given. Sedatives as "seridan" may be given.

Mercurochrome solution is sometimes beneficial in the acute as well as the chronic stage.

According to Ayurveda, let us see what सुश्रुत who has dealt with elaborate treatment of ear diseases, says. Chakradatta has simply reproduced slokas from Sushrut and hence it is needless to make separate mention of the slokas of Chakradatta. Sushrut enjoins taking of ghee, रसायन, rest, continence and forbids bath and talking. Thus he says:—

सामान्यं कर्णरोगेषु घृतपानं रसायनम् ।
अव्यायाम: शिर: स्नानं ब्रह्मचर्यमकत्थनम् ॥

To relieve pain, his different applications are very much effective. I cite below some which I have found effective.

(1) Leaves of Peepul (अश्वत्थ) tree besmeared with oil (mustard) and made into a pot with burning charcoal inside, leave the hot oil below which poured into the painful ear, at once relieves the pain.

अश्वत्थपत्रखल्वं वा विधाय बहुपत्रकम् ।
तदंगारै: सुसम्पूर्णं विदध्याच्छ्रवणोपरि ॥९
यत्तैलं च्यवते तस्मात् खल्वादंगारतापितात् ।
तत् प्राप्तं श्रवणस्रोत: सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥१०, सु. उ. २१ अ.

[2] Juice of ginger, honey, rock-salt, oil [mustard] applied warm to the ear soothes pain.

शृंगबेरञ्च मधु च सैन्धवं तैलमेवच ।
कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनाऽपहम् ॥ चक्र० क० रोग–२

[3] Among the eight urines, I have found goat's urine soothing.

अष्टानामिह मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेवतु ।
कोष्णेन पूरयेत् कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥ २७, सु. उ. २१ अ.

Among the shastric rasa medicines which are efficacious, special mention may be made of लक्ष्मी विलास रस, श्लेष्मशैलेन्द्र रस, समीरपन्नग रस all of which are effective in the acute stage and partially so in the chronic cases too.

When perforation has occurred or discharge has begun to come out, the treatment should be directed towards the stopping of the discharge. Here local treatment is more effective than constitutional treatment. Penicillin or sulpha-drugs may prove beneficial in the beginning but not later on. If the discharge collects in the external meatus, it should be removed. Two methods are advised-the dry method and the wet method. The dry method consists in mopping the secretion with swabo again and again and the wet method consists of the instillation of Hydrogen peroxide drops. As soon as the accumulated discharge is loosened, it is syringed out by boric lotion and the ear is made dry. In the chronic stage, boric acid drops twice daily [15 grs of boric acid in 1 oz of spirit] are good. But boric acid with iodine [$\frac{3}{4}\%$ iodine in boric powder] is a better remedy in chronic cases.

Sushrut advises purgatives of the head of the patient, that is, शिरोविरेचन (नस्य) fumigation (धूपन), instillation of drops, mopping (प्रमार्जन) washing (धावन) as the case demands.

कर्णस्रावे पूतिकर्णे तथैव कृमिकर्णके ।
समानं कर्म्म कुर्वीत योगान् वैशेषिकान ॥
शिरोविरेचनं चैव धूपनं पूरणं तथा ।
प्रमार्जनं धावनं च वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥ ३६-४१ सु. उ. २१ अ.

In otorrhoea or running ears, I have found a particular application very much effective. I am rather emboldened to say that I did not find it ineffective in any of the fifty cases where I had the opportunity to make use of it uptill now, I am still making use of it extensively. With extensive use, its method of application too may undergo variation, to suit different casas. In my experience, this probably ranks the best among all applications Ayurvedic or Allopathic. The administration of the drug also is very easy. No syringing or washing with Hydrogen peroxide is necessary. The dry method or simple mopping with cotton swabs, is necessary before instillation of the drop. The formula is given in the following line of सुश्रुत:—

क्वाथं पंचकषायं तु कपित्थरसंयोजितम् ।
कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह ॥ ४२-४३ सु. उ. २१ अ.

Here the decoction of the barks has been alluded to. But चंद्रदत्त has mentioned the powder of them. वाग्भट too supports it. I have here used the powder of barks of five Kasayas as वरगद, पिपल (अश्वत्थ), प्लक्ष, आम्र and जम्बु having replaced पारीष and उदुम्बर by आम and जाम. The change is my own and the benefit is all the better. भावप्रकाश has enumerated the properties of पंचवल्कल or पंचकषाय thus;

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपारीषप्लक्षपादपा: ।
पंचैते क्षीरिणो वृक्षास्तेषां त्वक् पंचवल्कलम् ॥
क्षीरिवृक्षा हिमा व्रण्या योनिरोगव्रणापहा: ।
रूक्षा: कषाया मेदोघ्ना विसर्पामयनाशना: ॥
शोथपित्तकफास्रघ्ना: स्तन्या भग्नास्थियोजका: ।
त्वकपंचकं हिमं ग्राहि व्रणशोथविसर्पजित् ॥

From this, it appears that barks of these five trees are good astringents and are beneficial in any ulceration what-so-ever.

I have administered the 3% solution of these barks in glycerine, after having given seven भावना's (Saturation) of कपित्थरस to the powders of these barks taken in equal quantities, dried up and mixed with glycerine afterwards. The powder generally precipitates at the bottom. So it is necessary to shake the phial before instillation. After instillation, it is necessary to plug the ear with cotton. Where there is copious discharge, it is advisable to instil the drops thrice daily. Otherwise the drops may be instilled once or twice daily. Other hygienic precautions should be taken, for example, exposure to cold, taking of sweet things and bath should be forbidden. Its superiority over the boric iodine powder, tannoglycerine has been proved in many cases, (1) in one case, of a boy of 4, all shorts of Allopathic treatment failed to respond, Boric-iodine alone proved ineffective. Later it was effective only when supplemented with ostocalcium tablets (glaxo) internally (2) Another boy of 5 years suffered long from otorrhoea. Ordinary ear drops supplemented with vitamin B complex cured the boy.

But this कषाय-कपित्थ योग as I call the above application of Ayurveda, can cure otorrhoea even if nothing is taken by mouth. (3) A boy of ten years had been suffering from running ears for about seven years. All treatment, Ayurvedic and allopathic, failed. Lastly I gave this कषाय कपित्थ योग. The boy is improving.

This पंचकषाय powder too may be given. But it should be followed by honey or glycerine.

If there is pain, carbolic acid glycerine drop may be combined with कषाय कपित्थ योग.

I have used the अपामार्गक्षार तैल in otorrhoea but the results were not encouraging.

शम्बूकतैल which has been so highly spoken of, in ear diseases has not neen found so much effective by me in chornic Otitis Media or running ears.

शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत् ।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाड़ी प्रशाम्यति ॥ चक्र. क. रो. ३७

I have prepared शम्बूक तैल in different ways, by boiling flesh of snails in mustard oil as well as boiling its decoction in the oil. I have seen that शम्बूकतैल is efficacious in some cases only but it is not an invariable remedy. It is more effective if it is supplemented with boric-iodine in otorrhoea. It is rarely effective in Acute Otitis Media.

The efficacy of शम्बूकतैल is more pronounced in cases of deafness, specially partial deafness where there is no apparent Otitis Media or Otorrhoea.

In cases of Otorrhoea where maggots have supervened, it is necessary to use some carbolic acid preparation as phenyle or oil turpentine and to pick out the maggots as far as can be seen and wash the ear. When the maggots are no more, the discharge may be controlled by instillation of कषाय कपित्थ योग .

Summary:—Otitis Media has been divided clinically into (1) Acute and (2) Chronic varieties,

According to Ayurveda, Acute Otitis Media may be called कर्ण विद्रधि and chronic Otitis Media may be called कर्ण संस्राव or कर्णपाक.

In the early stages, it is a very painful disease but when the pus has come out. the pain subsides.

Antibiotics and sulpha drugs prove effective in the early stages no doubt but rarely later on. Caution need be exercised in their use lest serious harm be done.

To stop discharge, iodine in boric acid (75%) is much effective.

Among the Ayurvedic preparations, कषाय-कपित्थ योग is probably the best, perhaps better than allopathic drops or powders.

References:-(1) Diseases of the nose, throat and ear by Simson Hall.
(2) Hand-book on diseases of children by Bruce williamson.

(3) Charak-Samhita
(4) Sushrut-Samhita
(5) Bagbhat-Samhita
(6) Chakradatta
(7) Madhav-Nidana
(8) Bhava-Prakash.

चिकित्सकों व धर्मार्थ औषधालयों को

विशेष सुविधा

सभी प्रकार के उत्तम, गुणकारी भस्म, रस, मात्रा, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी गुग्गुलु, गुटिका, आसवारिष्ट, अवलेह आदि नित्योपयोगी औषधों का थोक व सस्ते भाव में मिलने का—

विश्वसनीय स्थान—

बोध चिह्न

नवशक्ति आयुर्वेदालय
लिमिटेड, भुसावल.

शाखा--जब्बलपुर (म० प्र०)

आयुर्वेदोन्नति के रचनात्मक सुझाव

लेखक—वैद्य गोपालसिंह

जब से भारत स्वतंत्र हुआ, देश के सभी फिरके के लोग, अपने-अपने विज्ञान एवं कला की समुन्नति की ओर आकर्षित होने लगे। स्वास्थ्य मानव जीवन का सर्वोपरि विज्ञान है, इसके रहते सांसारिक सब सुख सार्थक हैं। इसकी अनुपस्थिति अनेक आपदाओं की आमन्त्रक व जीवन का अन्त करने वाली है, स्थायी स्वास्थ्य चिर जीवन प्रदान करने वाला होता है, और उसकी उपलब्धि देश काल एवं प्रकृति के अनुकूल वातावरण तथा जलवायु पर अवलंबित है।

देश में पिछले दो सौ वर्षों से यूरोप के महाप्रभुओं का साम्राज्य रहा, उन्होंने अपने देश-काल एवं प्रकृति के अनुकूल, अपने स्वास्थ्य के उद्देश्य से अपने यहां की चिकित्सा पद्धति इस देश में प्रचलित कर उसे व्यावसायिक स्वरूप प्रदान किया। विज्ञान की उत्तरोत्तर उन्नति हुई। यूरोप के अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिकों ने अपने देश में प्रचलित चिकित्सा विज्ञान को, जो कि एक समय यूनानी स्वरूप में था, काफी उन्नत कर उसका प्रसार करना प्रारम्भ किया। आज भारत भी उसकी चकाचौंध से ओझल नहीं। उनकी इस क्रांति को देखते हुए हमें गीता का एक वाक्य स्मरण आता है कि, "स्वकर्मणा समभ्यर्ध्य सिद्धि विन्दति मानवा:" मनुष्य अपने कार्यों के द्वारा सदा सिद्धि को प्राप्त होता रहता है। मनोरथों से नहीं।

अशोक काल के बाद से हमारे अपने विज्ञान की उन्नति एवं अनुसंधान कार्य प्राय: कुंठित ही रहा। इसके पूर्व हमने अपने विज्ञान में किस प्रकार से उन्नति कर देश का सभी स्थितियों में समृद्धिशाली निर्माण किया हुआ था, यह आज इतिहास प्रसिद्ध बात है।

आज हम पत्र-पत्रिकाओं में तथा जन संभाषणों में उपर्युक्त वाक्य के महत्व को आत्मविस्मृत करते हुए दूसरों पर सदा दोषारोपण करते हैं। दूसरों की कृति को दोषपूर्ण शोषक आदि अनेक अपवादों से परिपूर्ण बतलाते हैं। साथ ही शासन को भी जो कि उसकी ओर पूर्व परंपरा से आकर्षित है, दोषी बताते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा स्थायी रचनात्मक पथ-प्रदर्शन बिल्कुल नहीं, जिससे कि आज का हमारा शासन अपनी ओर आकर्षित होवे।

मिश्रत शिक्षा प्रणाली, आयुर्वेद के गलित अंगों की पूर्णता करने के उद्देश्य से देश के कर्णधारों द्वारा देश में आई किन्तु उसका परिणाम आज देश में लाभकर न होते

पुस्तकालय
०७९५२८
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

(3) Charak-Samhita
(4) Sushrut-Samhita
(5) Bagbhat-Samhita
(6) Chakradatta
(7) Madhav-Nidana
(8) Bhava-Prakash.

चिकित्सकों व धर्मार्थ औषधालयों को

विशेष सुविधा

सभी प्रकार के उत्तम, गुणकारी भस्म, रस, मात्रा, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी गुग्गुलु, गुटिका, आसवारिष्ट. अवलेह आदि नित्योपयोगी औषधों का थोक व सस्ते भाव में मिलने का—

विश्वसनीय स्थान—

बोध चिह्न
नवशक्ति आयुर्वेदालय
लिमिटेड, भुसावल.

शाखा—जब्बलपुर (म० प्र०)

आयुर्वेदोन्नति के रचनात्मक सुझाव

लेखक—वैद्य गोपालसिंह

जब से भारत स्वतंत्र हुआ, देश के सभी फिरके के लोग, अपने-अपने विज्ञान एवं कला की समुन्नति की ओर आकर्षित होने लगे। स्वास्थ्य मानव जीवन का सर्वोपरि विज्ञान है, इसके रहते सांसारिक सब सुख सार्थक हैं। इसकी अनुपस्थिति अनेक आपदाओं की आमन्त्रक व जीवन का अन्त करने वाली है, स्थायी स्वास्थ्य चिर जीवन प्रदान करने वाला होता है, और उसकी उपलब्धि देश काल एवं प्रकृति के अनुकूल वातावरण तथा जलवायु पर अवलंबित है।

देश में पिछले दो सौ वर्षों से यूरोप के महाप्रभुओं का साम्राज्य रहा, उन्होंने अपने देश-काल एवं प्रकृति के अनुकूल, अपने स्वास्थ्य के उद्देश्य से अपने यहां की चिकित्सा पद्धति इस देश में प्रचलित कर उसे व्यावसायिक स्वरूप प्रदान किया। विज्ञान की उत्तरोत्तर उन्नति हुई। यूरोप के अनुसंधानकर्ता वैज्ञानिकों ने अपने देश में प्रचलित चिकित्सा विज्ञान को, जो कि एक समय यूनानी स्वरूप में था, काफी उन्नत कर उसका प्रसार करना प्रारम्भ किया। आज भारत भी उसकी चकाचौंध से ओझल नहीं। उनकी इस क्रांति को देखते हुए हमें गीता का एक वाक्य स्मरण आता है कि, "स्वकर्मणा समभ्यर्ध्य सिद्धि विन्दति मानवा:" मनुष्य अपने कार्यों के द्वारा सदा सिद्धि को प्राप्त होता रहता है। मनोरथों से नहीं।

अशोक काल के बाद से हमारे अपने विज्ञान की उन्नति एवं अनुसंधान कार्य प्राय: कुंठित ही रहा। इसके पूर्व हमने अपने विज्ञान में किस प्रकार से उन्नति कर देश का सभी स्थितियों में समृद्धिशाली निर्माण किया हुआ था, यह आज इतिहास प्रसिद्ध बात है।

आज हम पत्र-पत्रिकाओं में तथा जन संभाषणों में उपर्युक्त वाक्य के महत्व को आत्मविस्मृत करते हुए दूसरों पर सदा दोषारोपण करते हैं। दूसरों की कृति को दोषपूर्ण शोषक आदि अनेक अपवादों से परिपूर्ण बतलाते हैं। साथ ही शासन को भी जो कि उसकी ओर पूर्व परंपरा से आकर्षित है, दोषी बताते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा स्थायी रचनात्मक पथ-प्रदर्शन बिल्कुल नहीं, जिससे कि आज का हमारा शासन अपनी ओर आकर्षित होवे।

मिश्रत शिक्षा प्रणाली, आयुर्वेद के गलित अंगों की पूर्णता करने के उद्देश्य से देश के कर्णधारों द्वारा देश में आई किन्तु उसका परिणाम आज देश में लाभकर न होते

हुए, उद्देश्यपूर्ति करने वाला नहीं निकला, उलटा पहिले से ज्यादह शोषक होने लगा। आज बम्बई सरकार शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम को स्वीकृति प्रदान कर अपने राज्य में प्रचलित कर रही है। साथ ही वह यह भी देख रही है कि वैद्य समाज के द्वारा इसका प्रसार समूचे भारत में किस प्रकार फैलकर कहां तक सफलता प्राप्त करे। आज देश के आयुर्वेद के कर्णधार वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी, आयुर्वेद सम्मेलन अध्यक्ष एवं आचार्य श्री डेग्वेकरजी शास्त्री अपने विशुद्ध पाठ्यक्रम के द्वारा शासन की इस योजना को पूर्णतः सफल बनाने में आत्मीय भाव से प्रयत्नशील हैं। आपका यह प्रयत्न सराहनीय है। किन्तु इसके साथ सुझावात्मक निवेदन है कि गुरुपरम्परा के अनुसार प्रत्येक योग्य चिकित्सक के यहां पर आयुर्वेद के अष्टांगों की शिक्षा-दीक्षा का परिपूर्ण ज्ञान देने के साधन सांप्रत में संभव नहीं। न शासन ही उन्हें पृथक् रूप से प्रदान करने में समर्थ रहेगा। दूसरे कोई बनौषधि विशेषज्ञ, कोई रोग विशेषज्ञ, कोई शल्य शालक्य विशेषज्ञ यथाभिरुचि प्राचीन परंपरा से पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ आत्रेय सम्प्रदाय, सुश्रुत सम्प्रदाय, धन्वन्तरि सम्प्रदाय आदि आदि। प्राचीन समय में उक्त आश्रम गुरुकुल के रूप में विद्यार्थियों को सामूहिक शिक्षण प्रदान कर अष्टांग चिकित्सा विज्ञान का ज्ञान दे स्नातक निर्माण करते थे।

आज भी यह नितान्त आवश्यक है कि शासन का सहयोग प्राप्त कर भारत के बाम्बे, बनारस, कलकत्ता, हरिद्वार एवं अवंतिका इन प्रमुख पांच स्थानों पर आयुर्वेद विश्वविद्यालय (यूनिवर्सिटी) आश्रम के स्वरूप में यथाशीघ्र स्थापना करने का अनुग्रह करें।

इन विश्वविद्यालयों में आयुर्वेद के अष्टांगों का विशुद्ध रूप से एवं विशेष योग्यता का एकसूत्रीय ज्ञान दिया जाने का पाठ्यक्रम रखा जावे। आवश्यकतानुसार शल्य शालक्य कार्यों में इन्हें आधुनिक ज्ञान से अनभिज्ञ भी न रखा जावे।

भारत भर के सभी प्रान्तों के आयुर्वेद विद्यालय एवं आयुर्वेद पाठशालायें इन विश्वविद्यालयों के नियंत्रण में रखी जावें। तथा इनके आदेशानुसार अपने विद्यालयों में साधारण योग्यता का ज्ञान प्रदान करें। तथा विशेष ज्ञान इन विश्वविद्यालयों द्वारा ही देने की यथाशीघ्र व्यवस्था की जावे।

इसका परिणाम यह होगा कि देश में बिखरे हुए आयुर्वेदीय विज्ञान के क्षेत्र में एकसूत्रता आ जावेगी और धीरे-धीरे आयुर्वेद का एक ऐसा प्रतिभाशाली पाठ्यक्रम निर्माण हो जावेगा कि जिससे समस्त देश प्राचीन परम्परा के अनुकूल अपने आपको तक्षशिला, नालंदा आदि विश्वविद्यालयों के अनुरूप पूर्णतः विकसित व सफल कर सकेगा।

द्वितीय चिकित्सा सम्बन्धी सुझाव

यदि देश का वैद्य-समाज यह चाहता है कि उनके विज्ञान को सरकार अनिवार्य रूप से स्वीकर करे, तो भारत भर के सभी प्रान्तों की आयुर्वेद संस्थाएं एवं जिला तथा तहसील सभायें मिश्नरी सेवा प्रणाली के अनुरूप अपने-अपने क्षेत्रों में जनता की निःस्वार्थ

सेवा करने के चिकित्सा-केन्द्र धन्वन्तरि मिशन के रूप में यथाशीघ्र स्थापन करने का अनुग्रह करें। वैद्यसमाज इन केन्द्रों के द्वारा भारत भर के समस्त ग्रामीण जनता की निस्वार्थ सेवा के लिये प्रवृत्त होवे।

उन्हें भारतीय आरोग्य शास्त्र के स्वास्थ्यकर मौलिक सिद्धान्तों का ज्ञान दें। विद्यालयों में स्वास्थ्य पाठ का उपदेश करना प्रारम्भ करें।

जनपदोध्वंसकर रोगों के प्रसार के अवसरों पर उन्हें औषधि वितरण कर पूर्ण स्वस्थ बनाने में तत्पर रहें।

इस प्रकार निःस्वार्थ सेवा के द्वारा वैद्य समाज अपने आप सिद्धि को प्राप्त करे, एवं जनता के हृदय में अपना स्थान पूर्ववत् पुनः प्राप्त करने का अनुग्रह करे।

शासन तथा जनता के सहयोग से प्रत्येक जिलों के प्रमुख स्थानों पर आयुर्वेद के सर्वोपचार संपन्न रुग्णालयों के स्थापन करने की व्यवस्थाएं की जावें। जिनमें ग्राम औषधालयों से असफल रोगी आरोग्य लाभ प्राप्त कर सकें। इसका परिणाम यह होगा कि देश का द्रव्य विदेश में न जाकर देश में कंगाली पैदा न करेगा।

भारतीय औषधि विज्ञानानुसार औषधियों के अनुसंधान-भवन कायम किये जावें। दीर्घ रोगों की प्रतिबन्धक एवं संहारक औषधियों का तथा कई स्थानों के जल व मिट्टी में जो प्राकृतिक रोग प्रतिबन्धक गुण हैं, उनकी यथार्थता से जनता को परिचित किया जावे।

प्राकृतिक-स्वास्थ्यालय (सेनोटोरियम) की स्थापना जनता तथा शासन के सहयोग द्वारा की जावे। उनमें क्षय, कुष्ठ एवं प्रमेह के दीर्घ रोगियों को बकरी, हरिण तथा अन्य उपयोगी वृक्षों की वीथिकाओं में स्वच्छ जलवायु सम्पन्न खुले प्रदेशों में रखा जावे। हवन विधानुसार उन्हें रोगकर कीटाणुओं से मुक्त कर पूर्ण स्वस्थ व दीर्घजीवी आचार्यों के आदेशानुसार, यथाशीघ्र बनाने का उपक्रम प्रारम्भ किया जावे।

शासन को चाहिये कि वह भारतीय संस्कृति की गुणगरिमा को देखते हुए उसके उत्थान में आत्मीय भाव से पूर्ण सहयोग प्रदान करे। आज केन्द्र के आयुर्वेद सम्बन्धी शासन के बजट को देखते हुए शासन का आयुर्वेद के प्रति अत्यन्त उपेक्षापूर्ण व्यवहार पाया जाता है। यह बड़े खेद की बात है।

अन्त में वैद्य समाज से विनम्र निवेदन है कि दूसरों की भर्त्सना करने एवं प्रच्छन्न रूप से उनके अनुगामी बने रहने पर हमारे अपने विज्ञान का उत्कर्ष संभव नहीं। हमारे पूर्व महर्षियों ने अपने त्याग एवं तपस्या के बल पर अपने विज्ञान को हर तरह से उन्नत कर समृद्धिशाली बनाया था। उनकी स्पष्ट घोषणा ही यह थी कि "नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्"—हमें राज की अभिलाषा नहीं, न स्वर्ग की। वे किसी शासक के पास याचना करने नहीं गये। कारण चमत्कार को ही नमस्कार है। कटुभाष्य के लिये क्षमाप्रार्थी हूं।

079528

आयुर्वेदीय शिक्षा की समस्या

लेखकः—वैद्य पं० देवशर्मा आयुर्वेद विशारद, बम्बई

अभी कुछ मास पूर्व बम्बई सरकार ने शुद्ध आयुर्वेद की शिक्षा को मान्यता प्रदान की है। अब तक इस मिश्रशिक्षा के विरुद्ध सभी योग्य विद्वान वैद्यों ने आन्दोलन चलाया और उनके अथक परिश्रम के फलस्वरूप इस प्रकार की मान्यता से आयुर्वेद सम्बन्धी उचित शिक्षा व ज्ञान बढ़ाने का वैद्य समाज को पूरा मौका मिल गया है।

कुछ वर्षों से आयुर्वेद तथा एलोपैथी के समन्वय का जोर शोर से प्रचार चल रहा था। डाक्टरों के बार बार कहने तथा नित नयें नये होने वाले आविष्कारों, नवीन नवीन उपकरण एवं यन्त्र सामग्रियों की चकाचौंध में हमारे वैद्यगण भी एलोपैथी को समुन्नत एवं उपादेय मानने लगे थे। आयुर्वेद में उन्हें चारों तरफ कमी ही कमी दिखाई पड़ रही थी। इस कमी की पूर्ति के लिये उन्होंने समन्वय की रट लगाना आरम्भ कर दिया था। समन्वय के चक्कर में पड़ कर आयुर्वेद को खींचतानं, तोड़ मरोड़, छील-छाल एवं काट-कूट कर एलोपैथी में फिट करना आरम्भ कर दिया था। जो वस्तु एलोपैथी से सिद्ध होती थी वह सही बाकी गलत मानी जाने लगी थी।

इसी समन्वय को आधार मान कर मिश्रशिक्षण का समर्थन किया जा रहा था। जहां पर आयुर्वेद बोर्ड एवं फेकल्टियां बनी वहां अभी तक मिश्रशिक्षण के अनुसार ही शिक्षा दी जा रही है। इस प्रणाली के अनुसार आयुर्वेद छात्रों को सर्जरी, मेडिसिन, मिडवाइफरी, एनाटमी, फिजियालोजी, पैथालोजी आदि कई विषय सर्वथा पाश्चात्य ढंग से अध्ययन करने पड़ते हैं। इनके लिये प्रवेश योग्यता 'इण्टर साइन्स' रखी गई है। इस मिश्रशिक्षण द्वारा शिक्षित छात्र की परिस्थिति प्रायः इस प्रकार होती है।

ये विद्यार्थी 'इन्टर साइन्स' होने पर अंग्रेजी शिक्षा दीक्षा के प्रभाव से आयुर्वेद को असभ्य एवं अर्धसभ्य लोगों की पद्धति समझने लगते हैं। अधिकांश छात्र तो एलोपैथी के कोलेजों में प्रवेश न मिलने के कारण येन केन प्रकारेण चिकित्सा का प्रमाणपत्र लेने को लिये ही आयुर्वेदिक कोलेजों में प्रविष्ट होते हैं। इसलिये ये छात्र एलोपैथी में सर्वात्मा परिश्रम करते हैं परन्तु आयुर्वेद की अत्यन्त उपेक्षा कर देते हैं। इधर भौतिकवाद के आकर्षण में आने के कारण साँख्य न्यायादि के सिद्धान्तों में उनकी बुद्धि नहीं पैठ पाती। आयुर्वेद का इन्हीं पञ्चमहाभूतिकों से सम्बन्ध होने के कारण वे इसके प्रति और भी उदासीन हो जाते हैं। आयुर्वेद के विषयों में उत्तीर्ण होने तक ही उनके समस्त आयुर्वेदाध्ययन

की इतिश्री हो जाती है जिसके लिये वे अध्यापक महोदय के लिखाये हुए संक्षिप्त नोटों को पढ़ने में ही अपने को धन्य समझते हैं। इधर ऐसे कौलेजों में समन्वयवादी अध्यापक भी आयुर्वेद की वास्तविक वस्तुका ज्ञान न करा कर केवल एलोपैथी का अनुवाद मात्र ही कर देते हैं। इन सब कारणों से छात्रों में एलोपैथी के प्रति पूर्व श्रद्धा अधिक दृढ़ हो जाती है। तथाकथित आयुर्वेदिक कौलेजों के ये स्नातक उत्तीर्ण होने पर डाक्टरी दवाखानों व अस्पतालों में शेषज्ञान प्राप्त कर एलोपैथिक औषधों एवं इन्जेक्शनों द्वारा ही अपनी चिकित्सा चलाते हैं। यदि यही परिस्थिति बनी रही तो जिन पुराने एवं वृद्ध वैद्यों ने अब तक आयुर्वेद को बनाये रखा उनके साथ ही आयुर्वेद का अन्त हो जायगा।

इसलिये समय रहते ही वैद्य समाज की महासम्मेलन एवं विद्यापीठ को चेत जाना चाहिये। विद्यापीठ के वर्तमान पाठचक्रम में आमूल परिवर्तन कर एक पंचवर्षीय पाठचक्रम निर्धारित करना चाहिये। इस में बृहत्रयी का सटीक अध्ययन अनिवार्य बनाना चाहिये। इसके लियें निम्नलिखित तरीका अधिक सुविधाजनक होगा।

प्रथमवर्ष

शारीरः—चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट के शरीर विषयक अंश। रसयोग-सागरीय उपोद्घात। प्रत्यक्ष शारीर समग्र।

दोषधातु मल विज्ञानः—चरकादि ग्रन्थों से विस्तृत अध्ययन। आहार पाक, श्वासोच्छ्वास। रक्तभ्रमण व धातुपोषण आदि शारीरिक क्रियाओं का विस्तृति विवरण दोषधातु मल के कार्य रूप में वर्णन करके बतलाना आवश्यक है।

सांख्य एवं तर्कसंग्रह:—यथावश्यक विषय, प्रकृत पुरुष तथा पञ्चमहाभूतादि का विस्तृत विवेचन।

अष्टांगहृदय--(पूर्वार्द्ध) निदान स्थान तक सटीक।

द्वितीय वर्ष

१ **स्वस्थवृत्त** वैयक्तिक स्वस्थवृत्तों के साथ साथ, जनपदोद्ध्वंस को रोकने के लिये सामुदायिक स्वस्थवृत्त का विवरण।

बनौषधि शास्त्र–रस, गुण, वीर्य विपाकादि का समुचित वर्णन आवश्यक है। भाव-प्रकाश, कैयदेव, राजनिघण्टु धन्वन्तरिनिघण्टु आदि के साथ वामन गणेश देसाई नाडकर्णी आदि लिखित ग्रन्थों का समावेश होना चाहिये। इस गुण आदि के अनुसार औषध द्रव्यों के प्रभाव व कार्य का निर्णय करना लाभदायक सिद्ध होगा।

रसशास्त्र–भस्मों व रसों की निर्माण क्रिया का पुनरुज्जीवन करना चाहिये। पारद की शुद्धि क्रिया को पुन: आरम्भ करना चाहियें।

अष्टाङ्ग हृदय (उत्तरार्द्ध) सम्पूर्ण सटीक ।

तृतीय वर्ष

शल्यः—यथा शक्य आयुर्वेदीय ग्रन्थों से प्राप्त सम्पूर्ण अंश तथा अत्यन्त आवश्यक प्रचलित संक्षिप्त शल्य कर्म की शिक्षा भी देनी चाहिये । यह तो एक हस्तकौशल मात्र है । इसलिये सदैव काम में आने वाले शल्य कर्म का प्रात्यक्षिक ज्ञान देना अत्यावश्यक है ।

शालाक्यः—शालाक्य रोगों का विस्तृत विवरण भी इष्ट है ।

प्रसूतितन्त्र
कौमार्यमृत्य) यह भी एक हस्तकौशल है । इसका भी प्रत्यक्ष ज्ञान अनिर्वाय होना चाहिये ।

सुश्रुत संहिता—सम्पूर्ण सटीक ।

चतुर्थ एवं पञ्च वर्ष

१ निदान ।

२ चिकित्सा ।

३ चरक संहिता सम्पूर्ण सटीक ।

दो वर्ष तक विद्यार्थी को निरन्तर रोगनिदान व चिकित्सा में प्रात्यक्षिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । आयुर्वेद में रोगों का नामकरण, विशेष नहीं किया है, क्योंकि स्थान व दोष को देखकर प्रधानतया चिकित्सा होती है । नवीन नवीन उत्पन्न रोगों का भी ज्ञान होना जरूरी है ।

इस प्रकार की शिक्षा से ये स्नातक एलोपैथी के चिकित्सकों की पूरी टक्कर ले सकते हैं ।

महासम्मेलन के अध्यक्ष का यह परम कर्तव्य है कि वे शीघ्र ही प्रत्येक प्रान्त में महासम्मेलन की शाखा स्थापित कर प्रान्तीय सम्मेलन के संगठन को मजबूत बनावें। साथ ही प्रत्येक राज्य के मन्त्री व अन्य सरकारी अधिकारियों से मिलकर आयुर्वेदीय शिक्षा की स्वतन्त्र सत्ता को मान्य करावें। अबतक जितने भी अधिवेशन आदि हुए हैं उनमें वास्तविक कर्तव्य का अभाव ही रहा है अतः महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के अधिकारियों को तथा वैद्य समाज को अपनी चिरनिद्रा को त्याग कर सुसंगठित रचनात्मक कार्य करना चाहिये । यदि अभी न चेतेंगे तो फिर भविष्य अन्धकारमय है ।

हमारा आहार

लेखकः—श्री सोमदेव शर्मा सारस्वत, साहित्य आयुर्वेदाचार्य, ए० एम० एस०,
डी० एस० सी० (ए) संकरी टोला, बानवाली गली, चौक, लखनऊ।

सृष्टि में प्राणियों के शरीर की उत्पति स्थिति और विनाश का प्रधान कारण आहार[1] (भोजन) है इतना ही नहीं अपितु प्राणियों के शरीर की वृद्धि, बल, वर्ण, इन्द्रियों की प्रसन्नता ओज तथा **स्वास्थ्य** का कारण[2] भी भली भांति प्रयुक्त आहार ही प्रमाणित हुआ है। इसलिये शरीर को धारण करने वाले तीन उपस्तम्भों को ही सर्वप्रथम गिना गया है। जैसे "त्रय उपस्तम्भा इत्याहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति। (चरक सूत्र अ. ११/३४)

आहार की परिभाषा—

द्रव (दुग्ध जल आदि) तथा अद्रव (अन्न आदि कठोर वस्तु) रूप जो पदार्थ मुखमार्ग से गले और अन्न प्रणाली में होता हुआ आमाशय में पहुँचता है वह आहार[3] कहलाता है।

आहार का स्वरूप—

इस पाञ्चाभौतिक जगत की भांति आहार भी पाञ्चभौतिक४ होता है।

आहार के भेद—

यह आहार शीत वीर्य और उष्णवीर्य के भेद से दो प्रकार का, मधुर, अम्ल, कटु लवण कषाय, तथा तिक्त के भेद से छै प्रकार का तथा ★अशित, पीत, लीढ़, खादित भेद से चार प्रकार का होता है।

१—(अ) आहाराद्यत्राश्च सर्वप्राणिनः।
(आ) ब्रह्मादेरपि च लोकस्याहारःस्थित्युत्पत्तिविनाशहेतुः। (सुश्रुत सूत्र अ. ४६।३)

२—(अ) प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च। (सुश्रुत सूत्र अ. १।२६)
(आ) आहारादेवाभिवृद्धिर्बलमारोग्यं वर्णेन्द्रियप्रसादश्च। (सुश्रुत सूत्र अ. ४६।३)
(इ) आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद्देहधारकः॥
आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोऽग्निवर्द्धनः। (सुश्रुत चि. अ. २४।६८)

३—आह्रियते मुखादिना यः स आहारः।

४ तत्र पाञ्चभौतिकस्य चतुर्विधस्य षड्रसस्य द्विविधवीर्यस्य।
वाऽनेकगुणयुक्तस्योपयुक्तस्याहारस्य……… (सुश्रुत सूत्र. अ. १४।३)

★(अ)–विविधमशितपीतलीढखादितं जन्तोर्हितम्। (चरक सूत्र. अ. २८. ३)

आहार का वर्गीकरण—

जो आहार हमारे शरीर को धारण करने में नित्यप्रति उपयोगी होता है वह गेहूँ जौ, चावल दाल तथा फल आदि कठिन अद्रव पदार्थ तथा जल, दूध, मठा आदि व (पतला) पदार्थ के भेद से दो प्रकार का होता है उसको मुनिवर चरक, आचार्य वाग्भट तथा सुश्रुत मुनि ने निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया है—

चरक	वाग्भट	सुश्रुत	
१—शूकवर्ग	१—शूकवर्ग	१—शालिवर्ग २—कुधान्यवर्ग	अद्रव (कठिन) आहार
२—शमीधान्यवर्ग	२—शिम्बीवर्ग	३—वैदल (शमीधान्य) वर्ग	
३—मांसवर्ग	३—मांसवर्ग	४—मांसवर्ग	
४—शाकवर्ग	४—शाकवर्ग	५—शाकवर्ग, ६—पुष्प वर्ग, ७-कन्दवर्ग	
५—फलवर्ग	५—फलवर्ग	८—फलवर्ग	
६—कृतान्नवर्ग	६—पक्वान्नवर्ग	९—कृतान्नवर्ग, १०—भक्ष्यवर्ग	
७—हरितवर्ग	७—औषधिवर्ग	११—लवण (लवणादि) वर्ग	
८—अम्बु (जल) वर्ग	८—तोयवर्ग	१२—तोयवर्ग	द्रव (पतला) आहार
९—गोरस (दुग्ध) वर्ग	९—क्षीरवर्ग	१३—क्षीरवर्ग, १४-दधिवर्ग १५—तक्रवर्ग	
१०—इक्षुविकारवर्ग (इक्षुवर्ग)	१०—इक्षुवर्ग	१६—घृतवर्ग,	
११—आहार योनि वर्ग	११—तैलवर्ग	१७—इक्षुवर्ग, १८—मधुवर्ग	
१२—मद्यवर्ग	१२—मद्यवर्ग	१९—तैलवर्ग २०—मद्यवर्ग, २१—मूत्रवर्ग	

हितकर तथा अहितकर आहार—

यह आहर हितकर तथा अहितकर भेद से दो का प्रकार भी होता है।

१—हितकर आहार—

जो आहार शरीर के सब वायु पित्त और कफ धातुओं को प्राकृतिक दशा में रखता है तथा विषम धातुओं को समान करता है,[1] वह शरीर और मन के लिये प्रिय लगने वाला उपयोगी आहार हितकर अथवा पथ्य आहार कहलाता है।

२—अहितकर आहार—

जो आहार हितकर के विपरीत गुणवाला अर्थात् धातुओं को विषम करने वाला होता है वह अहितकर आहार कहलाता है।

(आ) तस्याशितपीतलीढखादितभेदस्य नानाद्रव्यात्मकस्यानेकविधप्रभावस्य (आहारस्य)……। (सुश्रुत. सूत्र. अ. ४६।३)

१—यदाहारजातमग्निवेश ! समांश्चैव शरीरधातून प्रकृतौ स्थापयति, विषमांश्च समीकरोतीत्येतद्धितं विद्धि। (चरक सूत्र स्थान. अ. २५।३३)

२—पथ्यं पथोऽनपेतं यद्यच्चोक्तं मनसः प्रियम्। (चरक सूत्र. अ. २५।४३)

आहार द्रव्यों का हितकर तथा अहितकर होना[3] स्वभाव तथा संस्कार पर भी निर्भर होता है ।

जैसे--साठी चावल और मूँग की दाल स्वभाव से ही लघु (पचने में हल्की) होती है । खील, संस्कार (धान की भाड़ में भूनने की क्रिया) द्वारा पचने में लघु हो जाती है । इसी प्रकार लकुच (बडहल का फल, स्वभाव से ही अहितकर होता है और राब, संस्कार (ईख के गन्ने के रस को अग्नि पर पकाने की क्रिया) से अहितकर हो जाती है ।

सर्वोत्तम हितकर आहार--

चावलों में से साठी चावल तथा रक्त शाली, व्रीहि में जौ तथा गेहूँ, शिम्बीवर्ग (दालों) में मूँग, अरहर, मोंठ तथा मसूर, फलवर्ग में अंगूर,अनार, आमला, खजूर, फालसा खिरनी तथा नीबू, शाकवर्ग में बथुआ, चौलाई, छोटी मूली,मटर, मण्डूकपर्णी और जीवन्ती, कन्द वर्ग में अदरक, दुग्धवर्ग में गाय का दूध, घृतवर्ग में गाय का घृत, लवणवर्ग में सैन्धव-नमक. इक्षुवर्ग में मिश्री तथा खांड या चीनी, जल वर्ग में गांग जल (आश्विन मास में हुई वर्षा का कपड़े से छान कर एकत्र किया हुआ जल) तैलवर्ग में तिल का तेल, और मधुर पदार्थों में शहद उत्तम होता है ।

अहितकर आहार--

जई, उड़द, सरसों का शाक,भेंड़ का दूध और घृत, कसूम का तेल,घुइयां के बड़े,कन्द (बड़ोका) सूखे शाक, बड़हल का फल, राब तथा वर्षा ऋतु में नदी का जल यह सब वस्तुयें अहितकर हैं । इनके अतिरिक्त निम्नलिखित परस्पर विरुद्ध पदार्थों का एक साथ सेवन करना भी अहितकर है ।

शाकाहारियों के लिये दूध के साथ दही,कांजी आदि खट्टे पदार्थ मूली,लहसुन,करौंदा, बड़हल का फल. केला, नारियल, अनार, अखरोट, काशीफल(सीताफल) करौंदा, सूखे शाक तेल तथा नमकीन पदार्थों का भोजन करना विरुद्ध होने से अहितकर है । मूली के साथ उड़द, और मक्खन, बड़हल के फल, दही,उड़द, गुड़,शहद,तथा घृत के साथ केला का दही मठा और ताड़ के फल के साथ मठा, दही, शहद, और भिलावा का गर्म पदार्थों के साथ, शहद, घृत, तेल, चर्बी और जल का समान मात्रा में सेवन करना, खीर को सत्तू के साथ शीतल और गर्म, नवीन और पुराने अन्न तथा कच्चे और पक्के पदार्थों को साथ-साथ सेवन करना विरुद्ध गुण होने के कारण अहितकर है क्योंकि ऐसे आहार के सेवन करने के कुछ समय पश्चात् मनुष्य का रक्त आदि दूषित (खराब) हो जाने से फोड़ें,सूजन (शोथ) फफोले, ज्वर, रक्तपित्त (नाक आदि से खून गिरना), गुल्म,(वायगोला), राजयक्ष्मा, वात-व्याधि (वायु के रोग), अश्मरी (पथरी), कुष्ट, प्रमेह, उदर रोग (जलोदर आदि), भगन्दर,

---

३-- इह खलु यस्माद् द्रव्याणि स्वभावत: संयोगतश्चैकान्तहितान्येकान्ताहितानि हिताहितानि च भवन्ति । (सुश्रुत सूत्र. अ. २०।२)

अर्श (बवासीर), ग्रहणी, नपुंसकता,अन्धापन, उन्माद (पागलपन), मूर्च्छा (बेहोशी), पाण्डु, अम्लपित्त, उदरशूल तथा विशूचिका (हैजा) ग्रादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार दूध का कुलथी ग्रौर कटहल के साथ तथा दूध ग्रादि में गर्म हुग्रा दही, रात्रि में सत्तू ग्रों को खाना तथा मांसाहारिग्रों के लिये दूध का मछली तथा बकरी ग्रादि के मांस के साथ सेवन करना भी ग्रहितकर है। अधिक मात्रा में भोजन करना भी ग्रहितकर है। सड़ेंगले फलों का खाना, घुना हुग्रा ग्रन्न तथा बासी भोजन, भीगने से ग्रंकुर उत्पन्न हुये चने आदि का सेवन करना ग्रौर कांसे के वर्तन में दसदिन तक रखा हुग्रा घृत विषैला होने से खाना ग्रहितकर है।

उपर्युक्त विरुद्ध भोजन विषैला प्रभाव रखने के कारण ग्रहितकर होता है।

इस प्रकार हितकर तथा ग्रहितकर ग्राहारको जान कर हितकर ग्राहारसेवन करने से हमारा स्वास्थ्य ठीक रहने से हम नीरोग रह सकते हैं इसलिये स्वास्थ्य रक्षा के लिये ग्राहार के महत्व की ओर सब को ध्यान देना चाहिये।

मलेरिया के लिये कुनीनकी जगह

एल्स्टो पिल्स

(सप्तपर्णवटी)

यह गोलियां सप्तपर्ण, कालमेघ, कुटकी, कुचलात्वक आदि के घनसत्वों से तैयार की हैं। सप्तपर्ण (Alstonia Scholaris) के लिये डीमक वोल्युम २ पृ. ३८७–८८ पर लिखा है कि इसमें कुनीन जैसा डीटेन नामक सत्व है जो मलेरिया, शीतज्वर, विषम-ज्वर, ग्रादि में ग्रत्यन्त उपयोगी है। पब्लिक होस्पीटल ग्रौर खानगी, दवाखाने में डाक्टरों ने इस्तेमाल करके देखा है कि **परदेश से ग्राने वाले कुनीन सल्फ से यह दवा हजार गुनी ग्रच्छी है** कालमेघ, कुटकी आदि भी बुखार में ग्रत्यन्त लाभदायक हैं। ६ से १२ गोली देने से बखार उतर जाता है। कुनीन की तरह बहिरापन ग्रादि नहीं होता।

कीमत ४२ गोली ०।।= तो० १० (गोली ४५० लगभग) रु० ३–८–०

ऊंझा फार्मेसी लि०, ऊंझा (गुजरात), जबलपुर (मध्य प्रदेश)

गाजर

लेखक—गौरीशंकर गुप्त, प्रधान मंत्री, राष्ट्रकवि परिषद्, गायघाट, काशी (उ० प्र०)
प्रधान संपादकः आयुर्वेद (मासिक)

गाजर गरीबों का भोजन तो है ही, इसमें विटामिन ए० बी० सी०, लोह, गन्धक तथा फास्फोरस पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। यही नहीं, इसमें 'केरोटीन' नामक तत्व भी पाया जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक इस तत्त्व की प्राप्तिके लिए गाजर के स्वरस-पान की सलाह देते हैं।

गाजर काफी सस्ता कन्द है और स्वस्थ व्यक्तियों को इसका अधिक सेवन करना चाहिए। स्वास्थ्यदायक कन्द के रूपमें तो वह प्रसिद्ध है ही, आहार-संतुलन की दृष्टि से भी विशेष उपयोगी है। यह आबाल-वृद्ध सभी के लिए सम-उपादेय है। शारीरिक विकास एवं वृद्धि के लिए इसका उपयोग अवश्य करना चाहिए। बीमारियों के आक्रमण से रक्षा तथा रोगों से सुरक्षित रखना गाजर का अपना विशेष गुण है।

गाजर के भेद

गाजर प्रायः सभी जगह पायी जाती है। यह देसी और विलायती प्रकार की होती है। देशी गाजर विशेष लाल तथा काली एवम् विलायती गाजर पीले तथा लाल रंग की होती है। विलायती गाजर देशी गाजर से अधिक उपयोगी होती है और उसका स्वाद भी देशी की अपेक्षा अच्छा होता है।

खेती और उपज

गाजर की खेती नरम तथा भुरभुरी मिट्टी में होती है और नमकीन मिट्टी इसकी उपज की दृष्टि से उपयोगी है। भाद्रपद से कार्तिक पर्यन्त बोयी जाने के कारण गाजर की खेती में विशेष सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती।

गाजर का कन्द मूली के आकार जैसा छोटा, लाल अथवा पीले रंग का और स्वाद में तीक्ष्ण तथा मधुर होता है। इसकी पत्तियों को भाजी के रूप में भी प्रयोग करते हैं।

रासायनिक तत्व

गाजर में ८६ प्रतिशत जल, १.१ प्रतिशत खनिज पदार्थ, ०.१ प्रतिशत प्रोटीन, ०.१ प्रतिशत वसा १०.७ प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट ०.०८ प्रतिशत चना, ०.०३ प्रतिशत फास्फोरस १.६ मिलीशाम प्रतिशत ग्राम लोह २०२० से ४३०० इ. यू. विटामिन ए. प्रतिशत ग्राम ६० इ. यू. विटामिन बी. १ प्रतिशत ग्राम, तथा ३ मिलीग्राम विटामिन सी. प्रतिशत ग्राम विद्यमान है।

गाजर की पत्तियों में भी ८३.३ प्रतिशत जल २.८ प्रतिशत खनिज पदार्थ, ५.१ प्रतिशत प्रोटीन, ०.१ प्रतिशत वसा, ८.३ प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, ०.३४ प्रतिशत चूना, ०.११ प्रतिशत फास्फोरस तथा ८.८ मिलीग्राम प्रतिशत ग्राम लोह सुरक्षित है।

रासायतिक विवेचन

लोह गन्धक तथा प्रोटीन की प्रचुरता होने के कारण आज की सर्वश्रेष्ठ लोह प्रदायिनी औषधियों की जगह गाजर का प्रयोग सफल हो सकता है। शरीर में औषधियों से मिलने वाले लोह की अपेक्षा रक्त में शीघ्रता से मिलकर शारीरिक त्रुटियों की पूर्ति करने वाली शक्ति गाजर में भरी पड़ी है। साग भाजियों तथा फलों से उपलब्ध होने वाले खनिज क्षारों में सीधे रक्त में घुल-मिलकर आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला अद्भुत गुण हैं और औषधियों के रूप में प्रयोग किये जाने वाले खनिज क्षार शरीर में मुश्किल से मिल पाते हैं तथा उनका अधिकांश अघुलनशील होने के कारण शेष रह जाता है जिसे बाहर निकालने में शरीर को प्रचुर शक्ति लगानी पड़ती है।

गाजर में प्रोटीन की अल्प मात्रा होने पर भी पूर्ण आहार के गुण हैं। फल शर्करा, चीनी पर्याप्त मात्रा में करीब १० प्रतिशत रहती है। केरोटीन में लाल कण तथा लोह फास्फोरस गन्धक तथा खनिज क्षारों के अतिरिक्त गाजर के रस में पेक्टेन, अलव्यूमिन एवं एक प्रकार का उड़नशील तैल रहता है, जो औषधि रूप गुणों का कारण हैं। इस प्रकार गाजर एक उत्तम पौष्टिक कन्द शाक माना जाता है।

विभिन्न रोगों में गाजर

नेत्र तथा कर्ण रोगों के अतिरिक्त नासूर सरीखा भयानक रोग तो इसके सेवन करनें रहने से हो ही नहीं सकता। शारीरिक सौन्दर्य वृद्धि करने तथा गुर्दों की जलन मिटाने में भी गाजर अद्वितीय है। प्रातःसायं ३ से ४ छटांक तक गाजर का रस पीने से अम्ल विकार शान्त होता है। उदर तथा आंतों के घाव की तो गाजर रामबाण औषधि है। भयंकर कोष्ठबद्धता के निवारण का विलक्षण गुण गाजर में भरा है। जिगर की बीमारियों पित्त-विकार, पाण्डु रोग, गुर्दे के रोग, मूत्र में रेत आदि रोगों में कच्ची गाजर पका कर अथवा इसका रस विशेष परिमाण में पिलाने से लाभ होता है।

केवल गाजर १५-२० दिन ही खाने से चर्म रोगों में विशेष लाभ होता है और गाजर रस तो खुजली में विशेष उपयोगी है। उबाल कर निकाले हुए गाजर के रस में छोटे-छोटे टुकड़े करके मन्दी आंच पर रखकर और उसमें गुड़ मिलाकर पीने से स्वादिष्ट लगता है। गाजर पका कर निकाला हुआ रस बच्चों के लिए लाभप्रद है।

रक्तालपता घेघा तथा रक्त-विकारों में गाजर विशेष उपयोगी है। पके हुए पुराने घाव पर गाजर का गूदा उबाल कर बांधने से शान्ति मिलती है। कच्ची गाजर कुचल कर उसमें आटा मिला कर छालों तथा जलन वाले घावों पर बांध दिया जाय तो अवश्य लाभ होता है। सूजन के स्पर्श से होने वाली गरमी तथा पीड़ा में भी इसके प्रयोग स

शांति मिलती है।

पित्त, शूल, दाह तथा तृषा-निवारक गुण भी गाजर में पाये जाते हैं। इससे तीक्षण कृमि नष्ट होते हैं, रुचि बढ़ती है और शरीर की आंतरिक सड़न क्रिया भी सुधरती है। पुरानी संग्रहणी में भी इसका उपयोग लाभप्रद है ' मधुमेह, के रोगियों के लिए गाजर लाभप्रद होते हुए भी, यक्ष्मा के रोगियों के लिए खनिज चून की पर्याप्त मात्रा तथा शर्करा चीनी की दृष्टि से गाजर का रस अत्यन्त लाभप्रद है।

इसके बीज कामोदीपक, पौष्टिक एवं नाड़ियों को शक्ति देते हैं। गर्भस्राव के लिए भी गाजर के बीजों का उपयोग होता है।

टमाटर तथा पातगोभी के साथ गाजर खाने से विटामिन ए० की पूर्ति होती है और गाजर के साथ तनिक सी काली मिर्च का प्रयोग करने से गाजर का भारीपन एवं वायु-दोष मिट जाता है।

गाजर की जड़ और पत्तियों में अद्‌भूत गुण भरे पड़े हैं। इसकी जड़ स्त्री के दूध में पीस कर उसे नाक से खींचने से हिचकी मिटती है और इसकी पत्तियों के दोनों ओर घी चुपड़ कर उसे गर्म करके तथा उसका रस निकाल कर एक-एक बूंद कान तथा नाक में डालने से आधाशीशी (अधकपारी) का कष्ट दूर होता है।

पाचन क्रिया की खराबियों से आंतों में विषैले पदार्थ संचित हो जाते हैं और उनके सड़ने से भयंकर कीटाणु उत्पन्न होते हैं। किन्तु गाजर का सेवन करने से नष्ट होती है और कीटाणु भी नहीं रहने पाते। गाजर में विटामिन ए. अत्यधिक मात्रा में होने के कारण दूध, काड मछली के तेल तथा लालपान के तेल के पूरक के रूप में इसकी गणना होती है। अतएव मछली के तेल आदि का प्रयोग न करने वाले भी इससे लाभान्वित हो सकते हैं।

गाय तथा घोड़ों की जाति के पशुओं के लिए भी गाजर में पोषक तत्व है। दूध गाढ़ा, स्वादिष्ट, मधुर करने तथा बढाने के लिए गाय को गाजर खिलायी जाती है।

कुछ आवश्यक बातें

बासी की अपेक्षा ताजा गाजर में सभी गुण सुरक्षित रहते हैं। खुले पात्र में तलने से अथवा घृत में तलने से इसका विटामिन ए. नष्ट हो जाता है। अतएव तलने अथवा पकाने के समय इसे हवा से बचाना चाहिए।

सूखी हुई अथवा मुरब्बे के रूप में गाजर में वे गुण नहीं रहने पाते, जो ताजा गाजर में होते हैं। अधिकांश लोग हलुआ, मुरब्बा, अनार, तरकारी इत्यादि के रूप में भी इसका प्रयोग करते हैं, किन्तु पकाने से विटामिन नहीं रहने पाते। अतएव पूर्ण लाभान्वित होने के लिए गाजर को कच्ची ही खानी चाहिए।

गाजर के बीच का काष्ठमय भाग नहीं खाना चाहिए। रस निकालने के लिए गाजर

को उबालने से भी विटामिन नष्ट हो जाता है इसलिए कच्ची गाजर को कुचलकर तथा कपड़े में छान कर रस निकालना चाहिए । अच्छी बड़ी गाजर से आधपाव तक रस निकल सकता है ।

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

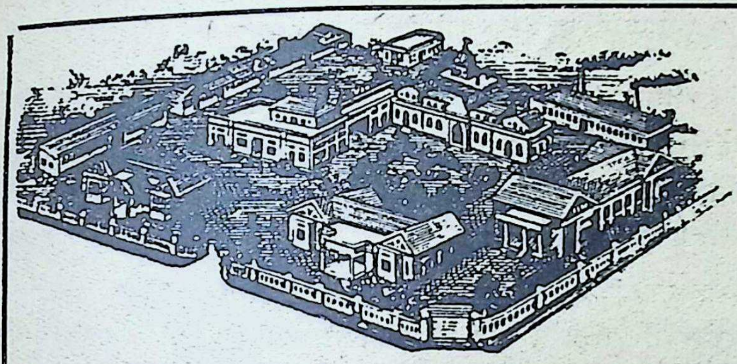

४५ वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम REGD

गोंडल, सौराष्ट्र ।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार के भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, तैल, मलम, अंजन, अवलेह, आसवारिष्ट तथा पेटेंट वगैरह सैंकड़ों आयुर्वेदिक औषधियाँ हाथ से तथा उपलों की अग्नि से बड़े जत्थे में तैयार की जाती हैं । यहां की दवाइयां सरकारी, म्युनिसिपल तथा धर्मार्थ दवाखानों आदि में तथा विदेशों में प्रचुर प्रमाण में जाती हैं । विद्वान वैद्य, हकीम तथा एलोपैथ डाक्टर गोंडल रसशाला की औषधियों के उपयोग से रोगियों को रोगमुक्त कर यश तथा धन कमा रहे ह । प्रजा के हृदय में रसशाला ने विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है । रोग के लिए सलाह मुफ्त दी जाती है, हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी सूचीपत्र आज मंगाइये । बम्बई की शाखायें :—

शाखा नं० १ गोंडल रसशाला औषधाश्रम,
छोटालाल भवन, ४१६ कालबा देवी रोड,
मुंबई २ ।

शाखा नं० २ गोंडल रसशाला औषधाश्रम
१७ कोमरश्यल चेम्वर्स, मस्जिद बंदर रोड,
जकरिया मस्जिद, सामने मुंबई ३ ।

क्षीणदोषा रोगोत्पत्तौ नैव प्रभवन्ति

(ले०—आयुर्वेदाचार्यः पाण्डुरङ्ग हरि देशपाण्डे, पूना–२)

अस्यां पत्रिकायां प्रकाशितं "कथं क्षीणा दोषा रोगात्पादने समर्थाः ?" इत्यम् मदीयं लेखमनुसृत्य श्रीमद्भिरायुर्वेदाचार्यैर्जगदीशशर्मभिः कार्तिकमासीयायां महासम्मेलनपत्रिकायां "क्षीणादोषावृद्धदोषा इव रोगेत्पादने समर्थाः" इत्येवं प्रत्यपादि। तदर्थं च तैस्तानि तान्युपबृंहकानि प्रमाणान्यपि पुरतो न्यस्यन्ते।

आदौ तावन्मामकीनः सर्वेषां क्षीणदोषरोगकारित्ववादिनां पुरतोऽय विद्यते प्रधानः प्रश्नो, यत्क्षीणदोषाश्चेद्रोगोत्पत्तौ समर्थाः, कुत्र वर्णिताविद्यते तत्प्रक्रियाऽऽर्षग्रन्थेष्विति। सुश्रुतेन य आदिश्यते रोगक्रमस्तत्र "संचयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम्।" इत्ययमेव वर्ण्यते क्रमः। स्थानसंश्रयान्त एव रोगाभिव्यक्तिरितिवर्णयता तेन, प्रसरान्ते स्थानसंश्रयः, स च प्रसरः प्रकोपान्ते, प्रसरस्तु पुनः संचयान्त एवेति वर्ण्यते। संचयोनामवृद्धिरिति परिचितं सर्वेषां भिषजाम्। यथोक्तं वाग्भटेन "चयो वृद्धिः स्वधाम्न्येव" इति (अ० हृ० सू० १२।२२)। वाग्भटः प्रसराद्यवस्था अनिर्दिश्य केवलं प्रकोपान्त एव रोगसंभव इत्याचक्षीत्। यथोक्तं तेन–"कोपस्तून्मार्गगामिता। लिङ्गानां दर्शनं स्वेषामस्वास्थ्यं रोगसंभवः।" (अ० हृ० सू० १२।२३) इति। सुश्रुतोऽपि कुपिता दोषा एव रोगकारणमित्याचक्षिष्ट। यथोक्तं तेन–"कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्। यत्र सङ्गः स्ववैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते।" (सू० २४।१०) "कृत्स्नेऽऽर्थेवयवे वाऽपि यत्राङ्गे कुपितोभृशम्। दोषोविकारं कुरुते रेव वर्षमिव तोयदः॥" इति। (सू० २१।२९) अतश्चोभयोर्मतमनुसृत्य यो वा को वा भवतु रोगस्तस्य दोषवृद्धिरेव कारणमिति स्पष्टमादिष्टं शास्त्रकृद्भिरिति निश्चप्रचम्।

अथ यानि चोपन्यस्यन्ते प्रमाणानि श्रीमद्भिर्जगदीशशर्मभिस्तान्येव मा विचिन्त्य चतुष्पञ्च लेखाल्लिंखित्वा (नाशिकस्थानामायुर्वेदपत्रिकायां) इमं सिद्धान्तमहं प्रापयत्क्षीणा दोषारोगोत्पत्तौ न प्रभवन्तीति। परन्तुसम्मेलनपत्रिका पाठकानां कृते पुनरेव वर्तते आवश्यकता तानि विचारयितुम्। क्रमेणैव तानि समालोचयिष्ये:।

(१) "शरीरगुणाः···तत्र मलभूतास्ते ये शरीरस्य बाधकराः स्युः ······प्रकुपिताश्च वातपित्तश्लेष्माणेः।···।" अस्यां चरकोक्तौ चक्रपाणिनैवं व्याख्यातं—"कुपिताश्चेति पदेन वातादयः सामान्यतः क्षीणा वृद्धा वा गृह्यन्ते।" कथं चक्रपाणिः "प्रकुपित" पदस्य क्षीणार्थं प्रतिपादयतीति न ज्ञायते। अग्रिमेसूत्रे "तेषा सर्वेषामेव वातपित्तश्लेष्माणो दुष्टा दूषयितारो भवन्ति दोषस्वभावात्" इत्येवं यच्चरक आचष्टे तदुपरि स्वयमेव चक्रपाणि "दुष्टाः स्वहेतूप-

चिता" इत्येवं व्याचक्षिष्ट । उपचिता नाम वृद्धा इतिस्पष्टोऽर्थः । "क्षीणास्तु नानादुष्टि
दोषाः कुर्वन्तीति प्रतिपादितमेव" इत्येतत्तादग्रेचक्रपाणेर्व्याख्यानम् । एकदादुष्टेरुपचयकारण-
त्वं वर्णयित्वा पुनरेव क्षीणदोषत्वमपि दुष्टिकारणं प्रतिपादयता चक्रपाणेर्व्याख्यानं सुधी-
भिरेव विभावनीयम् ।

वृद्ध्यैव दोषाणां प्रकोप इति शास्त्रकृतां निर्धारः । उक्तं च चरकेण—"रूक्षलघु
...षडिमे वातगुणा भवन्ति ।...एवं गुणैरेवं प्रभावैश्चकर्मभिरभ्यस्यमानैर्वायुः प्रकोपमा-
पद्यते । समानगुणाभ्यासो हि धातूनां वृद्धिकारणमिति ।...वातप्रकोपनानि खलु रूक्षलघु-
शीतदारुणखरविशदशुषिरकराणि शरीराणां, तथाविधेषु शरीरेषु वायुराश्रयं गत्वाऽऽप्या-
यमानः प्रकोपमापद्यते... ।" (च० सू० १२।४-६७) वाग्भटेनापि प्रत्येकं दोषस्य वृद्धेरनन्तरं प्रकोपस्यप्रक्रियाऽपि विद्यते वर्णिता । यथा—"उष्णेन युक्ता रूक्षाद्या वायोः कुर्वन्ति संच्चयम् । शीतेन कोपम्...॥" "शीतेन युक्तास्तीक्ष्णाद्याश्चयं पित्तस्य कुर्वते । उष्णेन कोपम् ...॥" "शीतेन युक्ताः स्निग्धाद्याः कुर्वते श्लेष्मणश्चयम् । उष्णेन कोपम्... ॥ इति अत्र वाग्भटः स्पष्टींकरोति यत्केवला वृद्धिरेव न कोपः, किन्तु वृद्ध्या हेतुभूतया यः सञ्जायते विकृतिविशेषः स एव कोप इति । अतस्तेन वृद्धस्तु कुरुतेऽनिलः' इत्याद्यारभ्य वातादीनां वृद्धिलक्षणानि वर्णयित्वा "स्रंसव्यासव्यधस्वापसादरुक्तोदभेदनम्" इत्यादीनि पृथगेव सन्ति वर्णितानि तेषां प्रकोपलक्षणानि । (अ० हृ० सू० १२।४६-५४)

एतद्वाग्भटवर्णनं सौश्रुतवर्णनेन सम्यक्संवदति । यथोक्तं सुश्रुतेन—"एतानि खलु दोषस्थानानि । एषु सञ्चीयन्ते दोषाः ।...प्राक्सञ्चयहेतुरुक्तः । (प्रागितिऋतुचर्याध्याये—डल्हनः) ।...अत ऊर्ध्वं प्रकोपणानि वक्ष्यामः । तत्र बलवद्विग्रहातिव्यायामवेगविघातादिभिर्विशेषैर्वायुः प्रकोपमापद्यते ।" "क्रोधशोक...अम्लकटवरप्रभृतिभिः पित्तं प्रकोपमापद्यते ।" "दिवास्वप्न...समशनाध्यशनप्रभृतिभिः श्लेष्मा प्रकोपमापद्यते ।" (सु० सू० २१।१८–१९–२१–२३) इति । एवं कुत्रापि चेन्निक्षिप्यते दृष्टिस्तत्र वृद्ध्यनन्तरमेव (विकृत्या) प्रकोप, इत्येवं दृष्टिपथमागच्छेत् । प्रकोपावस्थैव रोगकारणमित्युक्तमेव प्राक् । कथं तर्हि क्षीणदोषाणां रोगकर्तृत्वं कुत्र च वर्तते तत्प्रतिपादितमिति स्वहपधीरहं न ज्ञातुं शक्नोमि ।

(२) चरकेण वृद्धवत्क्षीणदोषाणामपि विधीयते परिगणनेति न कोऽपि नानुमन्यते । परन्तु न तेन ते क्षीणादोषा रोगनिर्माणे समर्था इत्येवं वक्तुं शक्यते । क्षीणदोषत्वं खलु रोगावस्थायां तारतम्येन जायमान एको विकल्प एव । यथोक्तं चरकेणैवाग्रे—"वृद्धिक्षयकृतश्चान्यो विकल्प उपदेक्ष्यते ।" इति ।

(३) "क्षयः स्थानं च वृद्धिश्च दोषाणां त्रिविधा गतिः ।" अनेन सूत्रेण किं सिद्ध्यति ? केवलं दोषाणां त्रिविधाऽवस्थैव । यथोक्तं व्याख्यात्रा चक्रपाणिना—"गतिः प्रकारोऽवस्था वा" इति ।

(४) "वातेपित्तेकफे चेव क्षीणे लक्षणमुच्यते । कर्मणः प्राकृताद्धानिर्वृद्धिर्वाऽपि विरोधिनाम् ।।" इदं प्रमाणं तावत्क्षीणदोषरोगकर्तृत्ववादिनां प्रतिकूलमेवेति मन्ये । तत्र तु

क्षीणदोषस्य प्राकृतकर्मणोऽपि हानिर्वर्ण्यते । चक्रेणाप्युक्तं यथा—"कर्मणः प्राकृतादिति वातादि प्रकृति कर्मत्वेनोक्तादुत्साहादेः" अन्यत्रापि तेन क्षीणा हि दोषा हानिमात्रविकाराः स्वं लिङ्गमधिकं कर्तुं न समर्थाः" इत्येवमपि लिख्यते (च० चि० ३।२७)। अतो यः प्राकृतान्यपि कर्माणि कर्तुं न प्रभवति स क्षीणो दोषः कथं वृद्धवद्रोगमभिनिर्मातुं समर्थो भवेत् ? क्षीणदोषस्य लक्षणान्यपि विरोधिदोषस्य वृद्ध्यैव ज्ञायन्ते इत्युक्तवताऽऽचार्येण तत्ताद्दोषस्य क्षीणत्वान्न केवलं तस्य रोगोत्पादनानर्हत्वं, यावत्तद्धेतुभूतानां विरुद्धदोषाणां वृद्धिस्तेनैव रोगोत्पत्तिरिति स्पष्टमेव दृश्यत आदिष्टम् । "लिङ्गं क्षीणेऽनिलऽङ्गस्य··। श्लेष्मवृद्ध्युक्तामय संभवः ।।" इत्यादिना वाग्भटेन वातादीनां क्षीणावस्थायां तत्प्रत्यनीकश्लेष्मादीनामेव रोगकर्तुत्वमिति स्पष्टं प्रतिपाद्यते ।

(५) "वर्धनेनैकदोषस्य क्षपणेनोच्छ्रितस्य वा "इत्यस्मिंश्चरकसूत्रे यच्छ्रीमज्जगदीशशर्मभिश्चक्रपाणेर्व्याख्यानमुद्धृतं तन्न तेषां मतसमर्थनाय पर्याप्तम् । यतो हि तेनैव चक्रेण· "क्षीणवृद्धदोषविकल्पकृत···ज्वरानारम्भकत्वमेव" इत्यस्याग्रे "तेन न केवलं तत्र वृद्धस्य ज्वरारम्भकस्य वा चिकित्सा कर्तव्या, किन्तु स्वमानक्षीणवर्द्धनमपि तत्र कर्तव्यं भवतीति स्वमानक्षीणद्वादशसन्निपातस्य ज्वरारम्भकत्वमेव" इत्यधिकं व्याख्यातम् । एतच्चेदेतैर्महाभागैरुद्धृतं स्यात्तन्मतमुपबृंहितं स्यात् । किन्तु तेषां कृते मयोद्धृतम् । एवं त्वेऽपि यदत्र क्षीणदोषाणामपि दृश्यते ज्वरारम्भकत्वं तत्रेदं तावदादौ वर्तते विचारणीयम् ।—या खलु परिस्थितिरेकदोषजे ज्वरे, सैव बाहुल्येन त्रिदोषजे । यथा ह्यैकदोषज एकस्य, तथैव त्रयाणां दोषाणां विकृतिः सन्निपाते । अतः सन्निपातेऽपि त्रयाणामपि दोषाणामादौ वृद्धिस्ततश्च विकृतिर्भवितुमर्हति । अथ या तत्र क्वचित्क्षीणताऽन्यतमस्यान्यतमयोर्वा, सा तारतम्येनैव । वृद्धतमदोषेणहेतुभूतेन सतैव तत्प्रत्यनीकदोषदोषयोः क्षीणतेति । यदि न स्यादयं वृद्धतमो दोषो, न स्यादीदृश्यन्यतमयोः क्षीणता । वस्तुतो वृद्धो वृद्धौ वा दोषौ क्षीणाविव भातः । न चेदन्यतमस्य वृद्धतमत्वं, इतरस्यान्यतरस्येतरयोर्वाऽन्यतमोस्तदवस्थितौ वृद्धिनाम्नैव व्यपदेशः स्यात् । या चोक्ता क्षीणदोषोपरि चिकित्सा, साऽपि वृद्धतमदोषस्य न्यूनतासाहाय्यार्थमेव ।

(७) अथैतदन्तरं श्रीमज्जगदीशशर्मभिः क्षयजशिरोरोगे क्षीण दोषकारणत्वं दर्शयते । एतद्विषये मया प्रथम एव लेखे (दृश्यतां नासिकस्थाया आयुर्वेदपत्रिकायाः १९५४ फेब्रुबारीमासीयोऽङ्कः)लिखितमासीद्यन्न चेत्सर्वेषां रोगाणां कारणत्वंः यावत्क्षयरोगे क्षयजन्यरोगे वा क्षीणदोषस्य कारणता मयाऽवश्यमंगीक्रियते । अपि तूपचारे क्रियमाणे, क्षीणदोषवर्धनेन साकं या साक्षाज्जायते विकृतिः, सैव प्राधान्येन चिकित्सितव्या भवति । सा च क्षीणप्रत्यनीकदोषस्य वृद्धेर्ह्रासात्मिकैव । अनुलोमराजयक्ष्मणि—कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु इत्येषा विद्यते सम्प्राप्तिः । तां दूरीकर्तुं कफनाशनाः कफवातनाशनाश्चोपयुज्यन्त उपाया दशमूलादिकाः सिन्दूरादिका वा । नो चेत्केवलैर्बृंहणोपायैरामलक्यादिभिर्मांसाहारादिभिर्वा, क्षयरोगेऽपि जायमानानि श्लेष्मनिचयव्रणविस्फोटविद्रध्यादिकानि लक्षणानि नैव संशम्यन्ते । अत एवोक्तं क्षप-

येद्बृंहयेच्चापि दोषधातुमलान्भिषक् । तावद्यावदरोगः स्यान्नरो रोगसमन्वितः ॥" इति ।

(७,९,१०,११) "दोषादीनां यथास्वं च...वर्धनेन च ।" इत्यारभ्य "य एव देहस्य... रक्षणीयाः" इत्यन्तं श्रीमज्जगदीशशर्मभिरुध्दृतानि प्रमाणानि केवलं दोषाणां क्षयवृद्धिज्ञापकमात्राण्येव । न तैःक्षीणदोषेण व्याधिर्जायत इति सिद्ध्यति अतस्तेषां विचारे मा क्षपणीयः समयः ।

(८) अथावशिष्यते सूत्रं "यदन्नं द्वेष्टि वृद्धिक्षयौ जयेत् । इति "किन्त्वनेन शरीरे दोषसाम्यं रक्षणीयमित्येव प्रतिपाद्यते । यथोक्तं व्याख्यात्रेन्दुनाऽष्टाङ्गसङ्ग्रहे—यतो दोषा वातादयो देहे वृद्धाः सन्तः स्वगुणैर्विपरीत आहारजाते भूयिष्ठं प्रायो रुचिमभिलाषं कुर्वते । तव एव क्षीणाः समानगुणेऽभिलाषमाहारे कुर्वते । भूयिष्ठं प्रायेणैतच्च दोषस्वरूपमबुधाः स्वल्पप्राज्ञा भिषजो न लक्षयन्ति यदयं दोषस्वरूपानुगतोऽभिलाषो यन्नेति न केवलमन्नरुचिरेव दोषाणां वृद्धिक्षयपरिज्ञानकारणं यावत्स्वरूपमपि एतत्प्रदर्शनार्थमाह—यथाबलमिति ।

(अ. सं. सू. १९)

(११) अवशिष्टानि काश्यपीय सूत्राणि केवलँ क्षीणदोषजन्यव्याधिविकल्पमात्राण्येव । यतो ह्रि न क्षीणदोषजन्यव्याधीनां नाम्नाऽप्यत्रोल्लेखः । का वा वार्ता तत्प्रक्रियायाः ? अत एतानि सूत्राणि प्रमाणत्वेनापि पुरस्कारं नार्हन्ति ।

एवं वर्तते क्षीणदोषरोगकर्तृकत्ववादिनां प्रमाणानां परिस्थितिः । अतो यावन्न ते स्पष्टतया क्षीणदोषजानां रोगाणां ग्रन्थोद्दिष्टवर्णने तदुत्पत्तौ च प्रक्रियायां वर्णने प्रयतन्ते न तावत्ते स्वपक्षप्रस्थापने यशो लभन्त इत्यलमतिविस्तरेण ।

--:o:--

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य
सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिये पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें

तार का पता : आयुर्वेद
फोन : ३१७९६

पता : शा॰ जादवजी लालूभाई एण्ड को॰
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई

भवद्गिरामवसरप्रदानाय वचांसि नः ।

वैद्य रणजितराय

दिसम्बर १९५४ की आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में 'शरीरक्रिया विज्ञान के लेखक से' शीर्षक लेख बीकानेर के आयुर्वेद कालेज के श्री पद्मनाभ शास्त्री का प्रकाशित हुआ है । मुझे लेख पढ़ कर दो कारणों से अत्यन्त आनन्द हुआ ।

पहला कारण - अपने दोष देखने का सामर्थ्य मुझ में अति अल्प है । अत: कोई निष्पक्ष भाव से मेरी भूल दिखाए तो इतना सौजन्य मुझ में है कि अपनी भूल समझ सकूँ तो तदनुरूप सुधार कर लूँ । इससे मेरी बुद्धि का विकाश और सत्कीर्ति रूप फल तो मिलते ही हैं, परम्परया आयुर्वेद की विशुद्धि भी अनुषाङ्गिक फल के रूप में होती है ।

आनन्द का दूसरा कारण–श्री पद्मनाभ शास्त्री जी के लेख को देख कर यह भाव स्फुरित हुआ कि शास्त्री जी में आयुर्वेद का शास्त्र और तर्क शुद्ध एवं नव्यमत से अनभिभूत पाण्डित्य तथा उसे प्रस्तुत करने की सरल होते हुए भी मनोरम शैली का मणिकाञ्चन संयोग है । मैं जानता हूँ, ऐसे अन्य भी विद्वान् भारत में विद्यमान हैं । शास्त्री जी से तथा उन सब से इस प्रसंग में करबद्ध विनय करता हूँ कि आयुर्वेद के पुनर्जीवन के लिए थोड़ा-थोड़ा समय निकाल कर ग्रन्थ नहीं तो लेखों के रूप में योग दें । मुझे विश्वास है कि ऐसे विद्वानों का सहयोग होगा, तो आयुर्वेद आशातीत काल में वह प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगा जिसकी कि उस में योग्यता है ।

अब एक दो शब्द प्रस्तुत शंकाओं के सम्बन्ध में—'राजवदासीत' का अर्थ मेरा किया नहीं है । कविराज हाराणचन्द्र जी का है । मैं समझता हूँ, उन्हें आयुर्वेद की प्राचीन परम्परा प्राप्त हुई थी । उसी के अनुसार उन्होंने यह अर्थ किया होगा । कविराज जी ने जो राजासन की व्याख्या दी है उससे वह उत्कटुकासन ही प्रतीत होता है । चिरकाल बैठना अभीष्ट नहीं है । उदर पर थोड़ा दवाव पड़कर वायु की ऊर्ध्वाध: शुद्धि होकर, अन्न की आमपच्यमानाशय में ससुख स्थिति हो जाए तभी तक इस स्थिति मे बैठने की बात है । सिद्धासन में घुटने उपर नहीं, पृथ्वी तल के समानान्तर ही रहते है । अपरंच बैठने के वाद सौ पद चलने और पश्चात् वाम शयन कीं बात हैं । तृतीय चर्या से सुखासन स्वयं हो जाता है. अत: प्रथम चर्या राजासन का यह अर्थ मान लेना अयोग्य नहीं समझा । विशेषकर, जब कि उसे हाराणचन्द्र जी का परम्परागत समर्थन प्राप्त है ।

तथापि, विद्वज्जन विचार कर निर्णय करेंगे तो मै तदनुसार सुधार कर दूंगा । अपने विचार को मैं सिद्धान्त नहीं मानता; किन्तु योग्यता न होते हुए मी मैं जो लिखता

हूं, उसका प्रयोजन इतना ही है कि—शास्त्री जी सदृश सच्चे विद्वान् अपनी वाणी और लेखनी को प्रवृत्त करें—भवद्गिरामवसरप्रदानाय वचाँसि नः (माघ)।

अब दूसरा विषय। मैं मानता हूं, नये ग्रन्थ विशेष कर नवीन ज्ञान विज्ञान प्रतिपादक ग्रन्थ लिखते हुए एक अर्थ के लिए एक ही संज्ञा रखनी चाहिए। परन्तु, प्राचीनों ने तो एक-एक संज्ञा का व्यवहार अनेक२ अर्थोंमें किया है। सो किस प्रकरण में किस संज्ञा का प्रयोग किस अर्थ में हुआ है, यह तो दर्शाना ही होगा। इससे विद्यार्थी गड़बड़ और भ्रम में कैसे पड़ेंगे ? इससे तो प्रकरण की स्पष्टता ही होगी। कदाचित् मेरे या अन्य किसी के लेख से ऐसा होने की सम्भावना हो तो भी मुझे आयुर्वेद के अध्यापक वर्ग में पूर्ण श्रद्धा है, जिसमें श्री पद्मनाभ शास्त्री जी सदृश रत्न विद्यमान हैं। वे ऐसे भ्रम के अन्धकार को अपनी किरण से उच्छिन्न कर देंगे। यह चाटूक्ति नहीं, सत्य वस्तु का स्पष्ट प्रकाशन है।

रोम का राक्षस बनने की हिम्मत मुझ में नहीं है। शरीरक्रिया विज्ञान के संशोधित एवं नाम और रूप दोनों दृष्टियों से परिवर्तित संस्करण (आयुर्वेदीय क्रिया शास्त्र) में मैंने वही दृष्टि अपनायी है, जिसका दिग्दर्शन शास्त्री जी ने अपने लेख में किया है। इस दृष्टि को और विकसित करने का नम्र प्रयास मैं कर रहा हूँ। शास्त्री जी के आशीर्वाद मुझे मिलेंगे, यही अभ्यर्थना है।

रही प्रकरण विशेष में आमाशय का मुख अर्थ भी ग्रहण करने की बात। उसका स्पष्ट प्रमाण मेरे पास नहीं है। सम्भव है, मैं नव्यमताभिभूत हो गया होऊं। तथापि, चरक चिकित्सा स्थान १५।९–११ पर चक्रपाणि ने तन्त्रान्तर से एक पद्य उद्धृत किया है—

मधुरो हृदयादूर्ध्वं रसः कोष्ठे व्यवस्थितः।
ततः संवर्धते श्लेष्मा शरीरबलवर्धनः॥

इसका अर्थ है—कोष्ठ में हृदय से ऊपर मधुर रस स्थित होता है। इसके कारण शरीरके बल की वृद्धि करनेवाला श्लेष्मा पुष्ट होता है। आयुर्वेदके प्राप्त तन्त्रों में आमाशय में ऐसे श्लेष्मा की उत्पत्ति की बात लिखी है। नव्य मत से इसकी व्याख्या कुछ इस प्रकार हो सकती है कि—मधुर रस हृदय के ऊपर, कोष्ठ में अर्थात् मुख में लाला रस की क्रिया से बनना आरम्भ होता है। निर्माण की यह क्रिया आधे घण्टे तक आमाशय में भी चालू रहती है। इस मधुरता के कारण ही शरीर में श्लेष्मा की वृद्धि होती है।

मैंने जो और जैसा समझा, लिख दिया है। तथापि, अमुक ही मत को पकड़े रखने का मेरा आग्रह नहीं है। इस विषय में भी विद्वान् जो मत निर्णय कर प्रस्तुत करेंगे, उसे ग्रहण करने को मैं उद्यत हूं।

शास्त्री जी ने लिखा है कि, यह ग्रन्थ जयपुर के आयुर्वेद विशारद और भिषग्वर प्रथमखण्ड में निर्धारित है। मेरे लिए यह समाचार है। इसके लिए मैं पाठ्यक्रम निर्मा-

ताओं का हृदय से ऋणी हूं। आशा है भविष्य में भी उनकी कृपा मुझ पर बनी रहेगी। श्री शास्त्री जी ने भी लेख के आरम्भ में जो सम्मति पुस्तक के लिए व्यक्त की है, उसके लिए भी मैं कृतज्ञ हूँ, यद्यपि प्रमोद तो उनकी व्यक्त की हुई शंकाओं से ही मुझे हुआ है।

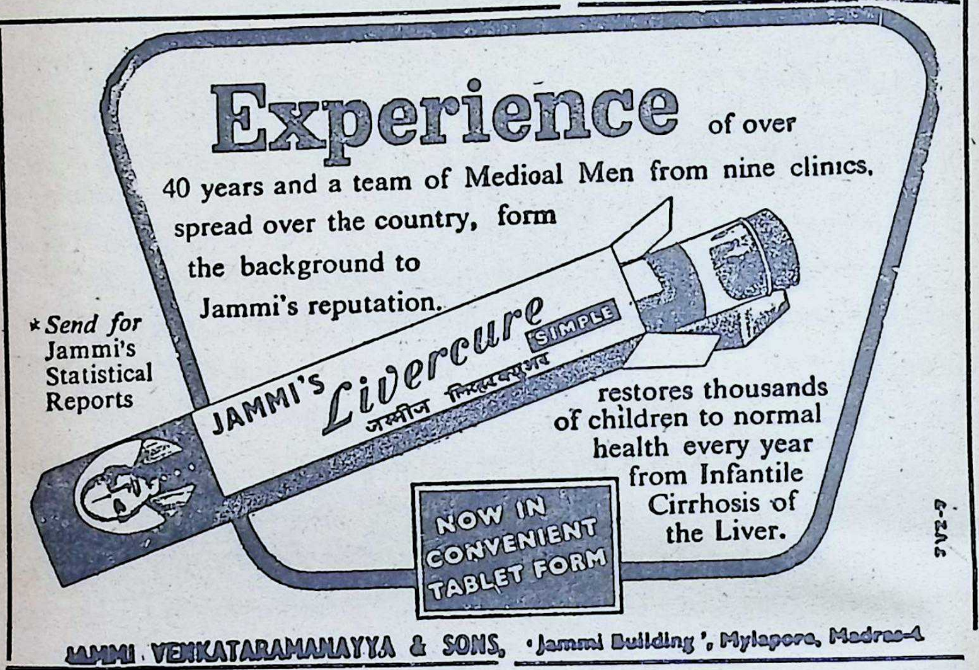

Experience of over 40 years and a team of Medioal Men from nine clinics, spread over the country, form the background to Jammi's reputation.

★ Send for Jammi's Statistical Reports

restores thousands of children to normal health every year from Infantile Cirrhosis of the Liver.

NOW IN CONVENIENT TABLET FORM

JAMMI VENKATARAMANAYYA & SONS, 'Jammi Building', Mylapore, Madras-4

मलेरिया शत्रु—सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरियां नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य आधा पौंड ६) रु० **सफेद कोढ़**--की पेटेन्ट दवा—मूल्य ५) रुपया दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर तथा हकीम धन-मान कमा रहे हैं। विवरण पत्र मुफ्त मंगाकर देखें।

वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन

मु० पो०-मंगरूलपीर, जि० आकोला (बरार) म० प्र०

नि० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय

समस्त भारतीय वैद्यों से प्रार्थना

वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह डी० एस० सी०

प्रिंसिपल, राजकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज इन्दौर

मुझे आयुर्वेद महामण्डल की पत्रिका में रायबहादुर पं० श्रीदत्त जी, मन्त्री, नि०भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के लेख पढ़कर अत्यन्त खेद हुआ। आयुर्वेद महामण्डल समस्त भारतीय आयुर्वेद-जगत् का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु न उसका कोई स्थायी भवन है, न पुस्तकालय है, न प्रदर्शनालय है, न वनौषधि वाटिका है, न विद्यालय है, न आतुरालय है, न और किसी बात का प्रबन्ध है, जिससे आयुर्वेद विषयक ग्रन्थियां सुलझाने में वैद्यों को सुविधा हो।

जब तक वास्तविक कार्य न हो. तब तक बाह्य राजनैतिक शब्दाडम्बर से राज्य व जनता पर प्रभाव नहीं पड़ता, यह सर्वविदित है। किसी ने सच कहा है,

गुणेषु यत्नः क्रियतां. किमाडम्बैः प्रयोजनम्।
विक्रियन्ते न घण्टाभिः, गावः दुग्धविवर्जिताः ॥

आयुर्वेद वाले जब तक अपने गुणों की अभिवृद्धि नहीं करेंगे, तबतक उनका चिकित्सा जगत् में सम्मान नहीं होगा। आज की चिकित्सा संसार में अपने तीक्ष्ण, उष्ण, तीव्र प्रयोगों से पाश्चात्य चिकित्सकों ने सुदूर पूर्व में भी प्रभाव जमा रखा है और दिनों दिन अभिनव आविष्कारों से संसार में अपना आधिपत्य जमा रहे हैं।

ऐसी दशा में आयुर्वेद जगत् अपनी स्थाई संस्था बनाकर पंचकर्म चिकित्सा, धारा कल्प, विष चिकित्सा, रस चिकित्सा, अग्निकर्म, क्षारकर्म, कुटी प्रावेशिक रसायन, वातातपिक रसायन और अनेक प्रकार की कल्प चिकित्साएं करके संसारको जब तक यह न दिखा सकेगा कि शोधन और शमन चिकित्सा का प्रभाव क्या है ?तब तक आपकी चिकित्साका माहातम्य जगत् के सम्मुख नहीं आ सकेगा। आप चाहे जितना प्रचार कार्य करें, आपका शुष्क प्रभाव क्षणिक ही रहेगा।

मैंने आयुर्वेद महामण्डल के अध्यक्ष होते ही यह प्रयत्न किया था कि मण्डल का स्थायी कार्यालय बन जाय और एक आयुर्वेद विश्वविद्यालय बनाने का मसविदा बनाकर प्रकाशित भी किया था, किन्तु दौर्भाग्य से वैद्यों की आपस की दुर्बलता के कारण सफलता नहीं मिली। अब इस युग की विषम समस्या को देखकर रायबहादुर श्रीदत्त जी ने अत्यन्त परिश्रम कर नि० भा० आ० महामण्डल व विद्यापीठ के वार्षिक अधिवेशन में प्रस्ताव पास कराकर आयुर्वेद विश्वविद्यालय बनाने की आयोजना ऋषीकेश में की है। वहाँ भी वही

निज की दुर्बलता के कारण सफल नहीं हो रहे और समाज के सामने अपनी व्यथा की गाथा महामण्डल पत्रिका द्वारा गा रहे हैं। क्या आयुर्वेद जगत् समय की मांग को समझेगा ?

यदि यह समय आपस की खेंचा तानी से हाथ से निकाल दिया गया तो फिर आयुर्वेद का उद्धार होना सम्भव नहीं है। वैद्यरत्न शिवशर्मा जी जैसे प्रभावशाली प्रमुख आपको प्राप्त हैं। ये भगवान् की कृपा से राजकीय प्रतिक्रिया को भली प्रकार समझ कर जनता के सामने उसके रहस्य का उद्घाटन कर अपना प्रभाव पैदा कर सकते हैं। बम्बई की सरकार पर आपने अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से शुद्ध-आयुर्वेद का स्वरूप छाप दिया है और उसको सजीव मूर्ति बना कर व्यवहारोपयोगी भी कर रहे हैं। इस समय आयुर्वेद विद्यापीठ का विश्वविद्यालय बन गया है और आयुर्वेद महामण्डल के स्थायी कार्यालय का निर्माण हो गया तो आयुर्वेद में जीवन का संचार हो जायेगा। अन्यथा आयुर्वेद की प्रगति होना सम्भव नहीं है।

अत: मैं समस्त भारतीय आयुर्वेदाभिमानियों से नम्र निवेदन करता हूँ कि समय की आवश्यकता को समझकर रायबहादुर श्रीदत्त जी को पूर्ण सहयोग दें, जिससे वे आयुर्वेद विश्वविद्यालय व महामण्डल का स्थायी कार्यालय बनाने में समर्थ हो सकें।

यह जानकर आनन्द हुआ कि श्री पं० ठाकुरदत्त जी ने पांच हजार रुपया विश्वविद्यालय के निर्माण के लिये प्रदान करने का वचन दिया है। और मैंने भी एक कमरे का वचन दिया है। आशा है इसी प्रकार अन्य बैद्य महानुभाव भी अपने अपने नाम से अथवा अपने पूर्वजों के नाम पर भवन निर्माण कराकर शीघ्र विश्वविद्यालय निर्माण में योग देंगे। एवं आ० महामण्डल का स्थायी कार्यालय ऋषीकेश में बनाकर भारतीय परम्परा संस्कृति की रक्षा करेंगे। चरकादि शास्त्रकारों ने हिमालय के प्रांगण में बैठकर ही आयुर्वेद का संशोधन, अभिवर्द्धन और अनुशीलन किया था। क्या हम स्वतन्त्र भारत में प्राचीन गौरव की रक्षा में समर्थ होने का यत्न करेंगे ? समय यह कलियुग का है, "यह कलयुग नहीं करयुग है, इस हाथ दे उस हाथ ले।" इसलिये इस युग में आपके कर्मठ होने की आवश्यकता है। जितना आप स्वयं करेंगे, उतना आप दूसरों से पायेंगे। Charity begins at-home." यह कहावत आज भी अंग्रेजों में प्रसिद्ध है। यदि हम "स्वल्पारम्भ: क्षेमकर:" इस सिद्धान्त को भी अपना लें, तो हजारों वृद्ध वैद्य अपनी संचित सम्पत्ति मृत समय आप को देकर और गवर्नमैण्ट की death duty (मृत्यु कर) से बचाकर आपकी संस्था को समर्पण करेंगे।

अधिक क्या लिखूं ? आप लोग मेरी इस प्रार्थना पर विचार करेंगे।

आयुर्वेद विद्यापीठका विश्वविद्यालय--

वैद्य श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, प्रयाग

आयुर्वेद विद्यापीठ को स्थापित हुए लगभग ५० वर्ष हुए। आरम्भसे ही इसका

उद्देश्य एक महाविद्यालय खोलना रहा है और इस प्रगतिके युगमें अब विश्वविद्यालय स्थापित करना उसका ध्येय है। यों तो आरम्भमें ही नासिक में एक विद्यालय खोल दिया गया था और नागपुर में भी एक विद्यालय कई वर्ष तक चला है। प्रयाग में भी सन् १९१७ में एक विद्यालय खोला गया था; किन्तु सम्मेलन का कार्यालय मद्रास जाने के कारण बेजवाड़ाके सम्मेलन में उसे बन्द कर देने का प्रस्ताव पास हुआ! कानपुर में भी जब सम्मेलन कार्यालय था, तब स्थानिक प्रयत्न से एक विद्यालय खोला गया था। इधर दिल्ली में कार्यालय आने के बाद फिर इस विषय की चर्चा नये सिरे से उठी। दिल्ली और गाजियाबाद में भूमिकी तलाश हुई; किन्तु सफलता नहीं हुई। इन्दौर सम्मेलन के समय रायबहादुर पं० श्रीदत्त शर्माजी ने ऋषिकेश में महाविद्यालय खोलने का बीड़ा उठाया। आप बाबा कालीकमली के क्षेत्र और संस्था के संयुक्त मन्त्री भी हैं और सम्मेलन की परीक्षाएं दिलाने के लिये वहां बाबा रामनाथ जी ने एक आयुर्वेद विद्यालय स्थापित किया था और वह अब भी चल रहा है। इसलिये वहां महाविद्यालय या विश्वविद्यालय खोलना सरल और सुविधाजनक भी है।

पं० श्री दत्तजी को प्रारम्भिक प्रयत्न में सफलता भी हुई। आप इस समय सब झंझटों से अलग रह वाणप्रस्थी जीवन बिता रहे है और केवल आयुर्वेद के प्रयत्नों में ही योगदान करते हैं। कालीकमली वाले क्षेत्र की अवैतनिक सेवा इसी आशा से कर रहे हैं कि इस संस्था के द्वारा कुछ आयुर्वेद की सेवा हो सके। आयुर्वेद की सेवा की भावना से ही आपने आयुर्वेद विद्यापीठ का मन्त्रीपद स्वीकार किया है। यदि इस कार्य में आपको सफलता न हुई तो आपका दिल टूट जायगा और आप इस भार को वहन करने में भी अनिच्छुक हो जायंगे। आपके प्रयत्न से कालीकमली क्षेत्र की जो भूमि ऋषिकेश से दक्षिण लगभग २ मील विस्तार की है, उसमें से ७५ एकड़का टुकड़ा विश्वविद्यालय के कार्य के लिये कालीकमली की प्रबन्ध समिति ने कानूनी सलाह लेकर देना स्वीकार किया और सरकार ने भी इस प्रस्ताव को पसन्द कर लिया। किन्तु जिस समय विश्वविद्यालय के शिलान्यास का अवसर आया, उस समय कुछ प्रतिक्रियावादी सदस्यों ने इसमें अड़ंगा लगाया और शिलान्यासका काम नहीं हो सका। यही नहीं बल्कि ऋषिकेश आयुर्वेद विद्यालय के स्वामी दयानिधि जी सम्मेलन के उपाध्यक्ष होते हुए भी उनसे यथेष्ट सहयोग की आशा पं० श्रीदत्तजी को नहीं है। ऐसी दशामें स्वभावतः पं० श्री दत्तजी पूछ रहे हैं कि अब ऋषिकेश में विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय अथवा नहीं? अब यह भी निश्चय है कि कालीकमली क्षेत्रकी सहायता न मिलने से आप उसके संयुक्त मन्त्रीपद से भी त्यागपत्र दे देंगे।

पं. श्री दत्ताजी का कहना है कि उत्तरप्रदेशीय सरकार विश्वविद्यालय स्थापित करने के पक्षमें है और यदि वैद्य लोग १० लाख रुपया बैंकमें जमा कर दें तो वह भी इतनी ही सहायता देगी। इतना तेल हो जाय तो फिर राधा नाचें, इसके पहले वह पेश-

वाज कसे ही रह जायँगी । खैर हमारा कहना है कि अपना विश्वविद्यालय तो होना ही चाहिये । यदि कालीकमली वालों की सहायता अनिश्चित है तो उसके भरोसे रहना उचित नहीं है । यदि हरिद्वार ऋषिकेश पर भूमि मिल जाती है तो उसे लेने में चूकना नहीं चाहिये । यही नहीं १० लाख रुपये एकत्र करने का प्रयत्न किया जाय; किन्तु उसके जमा होने तक रुका न जाय । जितना रुपया अभी सम्मेलन के पास है उससे कार्यारम्भ कर दिया जाय । रुपया जमा करने का उद्योग भी होता रहे । जब स्वदेशी सरकार है तब कभी न कभी उसका ध्यान इधर आकर्षित होगा ही । ऋषिकेश सेवासमिति और उसके विद्यालयका सहयोग मिलेगा ही । यदि वह है और कालेज भी है तो परीक्षाएं तो सम्मेलन की ही होंगी ? फिर अलग कैसे रह सकता है ? कुछ निस्वार्थ कार्यकर्ता निकल पड़ेंगे तब कोई पाषाणहृदय वैद्य न होगा जो सहायता न करे । उत्साही कार्यकर्ता होने से कार्यकी सफलता में सन्देह नहीं है । मनका फेर है, नहीं तो इसके पहले ही झांसी विश्वविद्यालय के सहयोग से भी सम्मेलन कार्य कर सकता था । अपना स्वतन्त्र बनाना चांहे ता वह भी अभिनन्दनीय ही है । (सुधानिधि से)

सर्व प्रकार की आयुर्वेदिक पुस्तकें

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन
कार्यालय, महालक्ष्मी मार्केट,
चांदनी चौक, दिल्ली, से प्राप्त करें ।

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ परीक्षाओं की

प्रश्न पत्र पुस्तकें

छप कर तैयार हैं तथा महासम्मेलन कार्यालय देहली अथवा विद्यापीठ कार्यालय, ऋषिकेश से अग्रिम मूल्य भेज कर प्राप्त की जा सकती हैं । मूल्य प्रति पुस्तक आयुर्वेदाचार्य २), आयुर्वेद विशारद २) तथा आयुर्वेद भिषक १॥) । डाकव्यय पृथक्

आयुर्वेद लोक

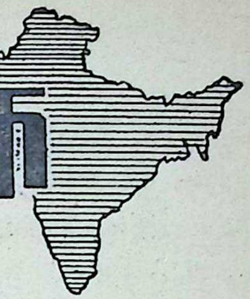

(इस स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित समाचार-सूचनाओं में व्यक्त विचारों से हमारी सहमति होना आवश्यक नहीं है –सम्पादक)

आयुर्वेद शास्त्रचर्चा परिषत्––

द्रविडप्रान्तीयेन (तामिलनाड) आयुर्वेद महामडण्लेन आयुर्वेदीय शास्त्रसिद्धान्त-जिज्ञासाय, शास्त्रीयेषु विषयेषु चर्चां विधातुं स्वकीयेषु वार्षिकसंमेलनेषु पूर्णः अवकाशो दीयते । तथापि तदा तदा, तादात्विक लौकिकविषयसरंभेण तद्विद्य भाषापरिषतं न यथाप्रतीक्षं प्रचालयितुं पार्यत इति कृत्वा वत्सरमध्ये शास्त्रचर्चार्थमेव पृथगधिवेशनं संपादनीयमिति गते वार्षिकाधिवेशने निश्चितमभूत् । तदनुसारेण, गते नवंबर् मासे १८–१६ दिनयोः तिरुचिरापल्ली जिल्लान्तर्गते करूरनगरे शास्त्रचर्चा परिषत् प्रचालिता । मद्रासदेशस्य विभिन्नेभ्यः कोणेभ्यः पण्डिता आयुर्वेदभिषजः समवेता आसन् । महामण्डलस्य भूतपूर्वाध्यक्षः आश्रयदाता च श्रीमान् पण्डितो नारायण अय्यंगार् महोदयः चर्चापरिषदोऽध्यक्षोऽभूत् । आयुर्वेदः सत्कार्यवादश्चेति विषयमधिकृत्य प्रथमे दिने वादः प्रावर्तत । विशिष्टाद्वैतिनां सांख्यानां च सत्कार्यवादं, सुश्रुत संहितायाः सूत्रे व्रणप्रश्नाध्याये 'भूयोऽत्र जिज्ञास्यं इत्यारभ्य कृतं कार्यकारणनित्यसंबन्धवादं चाधिकृत्य आयुर्वेद मते सत्कार्यवादाङ्गीकरणें दोषा गुणो वा इति विषयः विवादाय स्वीकृतः विशिष्टाद्वैतिनां सांख्यानां तार्किकाणां च सत्कार्यवादविषये प्रवृन्त्तान् विमर्शाननूद्य आयुर्वेद मते तद्विषयकं विमर्शं च सम्यक् प्रत्यपादयादध्यक्षः पण्डित श्री नारायण अय्यंगार् महाशयः ।

शास्त्रचर्चापरिषदा वादाय स्वीकृतोऽन्यो विषयः "त्रिदोषाः,तेषां दूषकता धारकता चेति ।" एतद्विषये विवादाय काचन प्रश्नपत्रिका पूर्वमेव सदस्येभ्यःप्रेषिता श्रीमता अध्यक्षेण, यदाधारेण वादः प्रवृत्तोऽभूत् । दूषणात्मका वातादयः धारकश्च ते भिन्ना वा ? यद्यभिन्नाः, तर्हिकथं एकांशेन दूषणं, अन्यत्र धारणं च ? क्वचित् दोषाणां हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वस्थत्वं, क्वचित्पञ्चधा भिन्नानां तेषां पृथक् पृथगवस्थितत्वं, क्वचिच्च, वायोरस्थनि, पित्तस्य स्वेदरक्तयोः श्लेष्मणः शेषेषु धातुषु चावस्थितिः, इति भिन्नं भिन्नं धाम कथ्यते कथ तत्र समन्वयः, इत्यादयो बहवः प्रश्ना अवतारिताः, शास्त्रदृशा समाहिताश्च ।

चर्चासु प्राधान्येन अमीपण्डिताः भागिनोऽभूवन् वैद्य पण्डित श्री नारायण अय्यंगार महाशयः, (करूर्) श्री.त.बी. राधाकृष्ण शास्त्री, (त.आ. महामण्डलस्यध्यक्षः,) आयुर्वेदाचार्य श्री.वा.बा. नटराजशास्त्री, (महासमेलन पत्रिका संस्कृत विभागसंपादकः) श्री. एस्.वी.

राधाकृष्ण शास्त्री, महासम्मेलन पत्रिका-संस्कृतविभागोपसंपादकः, त.आ. महामण्डलस्य प्रधानकार्यदर्शी च) वैद्यवाचस्पति श्री पी. एस्. रामशर्मा, वैद्यविशारद, आयुर्वेद साहित्यशिरोमणि श्री वेंकटसुब्रह्मण्य शास्त्री, वैद्यविशारद आर. वी. रामार्यः, पण्डित श्री मे सुन्दरराजाचार्यः (वैद्यचन्द्रिका संपादकः) वैद्यभूषण,गणपतिशास्त्री,श्रीजी.श्रीनिवास अय्यंगार, वैद्यविशारद श्री कृष्णशर्मा इत्यादयः ।

परिषदर्थे समवेतानां सर्वेषामपि पण्डितानां शक्तिविलासवैद्यशालाध्यक्षः, महामण्डलस्योपाध्यक्षश्च वैद्यवाचस्पति श्री पी. एस. रामशर्ममहोदयः, वैद्यविशारदः, आर. वी. रामार्यश्च भोजनादिसत्कारमकुर्वताम् ।

निवेदकः—एस. वी. राधाकृष्णशास्त्री
द्रविड प्रान्तीयायुर्वेदमहामण्डलस्य
प्रधानसचिवः ।

आवश्यकताएं

(१) श्री राजकुमार सिंह आयुर्वेदिक कालेज के लिए प्रिंसिपल की जो बी० आई०एम० एस०, संस्कृत में शास्त्री अथवा इनके समकक्ष गवर्नमेन्ट बोर्ड की परीक्षा में उत्तीर्ण हों एवं इंग्लिश में बी० ए० तक की योग्यता हो। अध्यापन, चिकित्सा और शिक्षा संस्था के संचालन का न्यूनतम ५ वर्ष का अनुभव हो।

(२) आयुर्वेदिक औषधालय के लिए प्रधान चिकित्सक की जो आयुर्वेद की उच्चतम परीक्षा उत्तीर्ण हों और जिन्हें चिकित्सा का १५ वर्ष का न्यूनतम अनुभव हो। तथा रस, भस्म आदि निर्माण करने में सिद्धहस्त हों। उक्त दोनों स्थानों के लिए आयु ३५ वर्ष से कम न हो।

(३) केमिकल वर्क्स के लिए मैनेजर की, जिन्हें कूपी, रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, टेबलेट्स, एक्सट्रेक्ट, टिंचर आदि के निर्माण का तथा फार्मेसी के संचालन का पूर्ण अनुभव हो।

उक्त तीनों कार्यों को सफलतापूर्वक सामूहिक अथवा पृथक २ रूप में संपादन कर सकने वाले मय प्रमाणपत्रों के प्रार्थनापत्र ता० ८-२-५५ तक भेजें। वेतन योग्यतानुसार दिया जावेगा।

सेक्रेटरी
सर सरूपचंद हुकुमचंद पारमार्थिक संस्थाएं
जवेरीबाग, इन्दौर।

वैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ, जो अभी प्रकाशित हुआ है

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान

(पूर्वार्ध)

आयुर्वेद-मार्तण्ड वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य—बम्बई,

किसी भी रोग की चिकित्सा के पूर्व रोगों के निदान का ज्ञान होना परमावश्यक है। रोग के सम्यक् निर्णय के बिना रोगी की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

इसीलिए व्याधि विज्ञान (निदान-रोग विनिश्चय) आयुर्वेद के प्रधान विषयों में सम्मिलित एक उपयोगी विषय है। इस ग्रन्थ में व्याधि विज्ञान के साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधियाँ कितने प्रकार की होती हैं; निज, स्वाभाविक और आगन्तुक व्याधियों में क्या भेद है, स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियों के स्वरूप क्या हैं; प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और समुत्थान भेद से १० प्रकार के रोगानीक कैसे हो जाते हैं; रोगों का आश्रय क्या है, आदि अनेक ज्ञातव्य बातें इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णित हैं। यह पूर्वार्ध खण्ड पांच अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें अध्ययन कर लेने के बाद निदान सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य-सिद्धान्त करामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं। आयुर्वेदीय प्रेमी विद्वान् और विद्यार्थी, दोनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है।

इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

डिमाई साइज के ११२ पृष्ठ की सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का
मूल्य मात्र २।।)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

डाबर
अशोकारिष्ट
प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी
बहु परीक्षित दवा
डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता

अनुरोध—
प्रदर, ऋतुविकार
दूषित गर्भाशय इत्यादि
रोगोंसे जकड़ी हुई महिलाओंसे
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेका हमारा
अनुरोध है

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—दीपक प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली।

[illegible]

फरवरी
१९५५

माघ
२०११

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

५/
४२६१६
23-12-

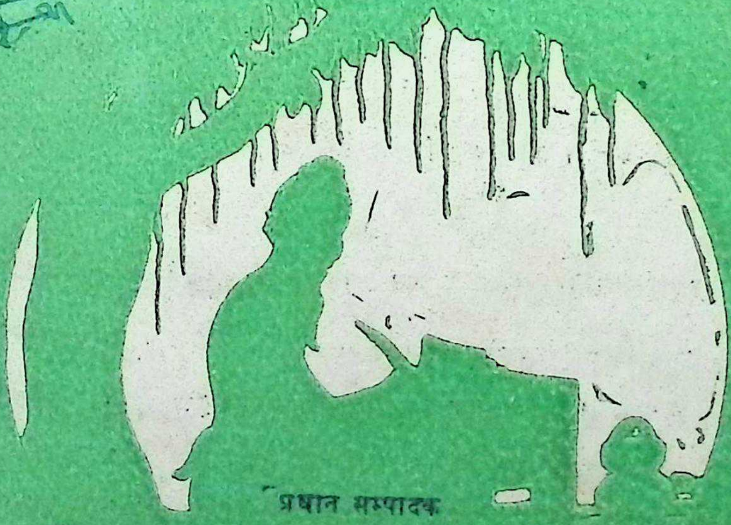

प्रधान सम्पादक

कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि

संस्कृत-विभाग सम्पादक

वा. वा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः

विषय-सूची

क्र० सं० विषय — पृष्ठ संख्या

१ कांग्रेस अध्यक्ष श्री ढ़ेबर और आयुर्वेद — ४९

२. सम्पादकीय — ५१

३. अन्य प्रादेशिकराज्यशासका बंबईराज्यमनुकुर्वन्तु — ५३

४. राष्ट्रकर्णधारों की दृष्टि में आयुर्वेद — ५५

५. जन-स्वास्थ्य और विदेशी औषधियां — पं० शिवराम द्विवेदी — ५७

६. दोषा रोगाश्च — वी० एस० वेंकटसुब्रह्मण्यशास्त्री — ६०

७. Sciences in Ancient India — Dr. A. Lakshmipathi — ६६

८. Role of Corallacarpus Epigeous on Malarial Parasites. — Antu Bhai Vaidya — ७१

९. प्राचीन चिकित्सा पद्धति बनाम आधुनिक चिकित्सा-पद्धति — क० प्रभाकर चैटरजी — ७५

१०. आयुर्वेद और वैद्यराज — गौरीशंकर गुप्त — ८३

११. राजवैद्य पं० नन्दकिशोरजी का स्मारक — प्रभुदत्त शास्त्री — ८६

१२. आयुर्वेद-लोक — ८८

१३. शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम समितिः, बम्बई राज्यम् — १००

सदस्यता तथा सम्बद्धता शुल्क शीघ्र भेजिये

महासम्मेलन मान्य सदस्यों तथा सम्बद्ध संस्थाओं से निवेदन है वे अपना अपना सदस्यता अथवा सम्बद्धता शुल्क शीघ्र कार्यालय में भेज दें। जिन सदस्यों का शुल्क १५ मार्च १९५५ तक भी कार्यालय में नहीं पहुंचेगा उनकी सेवा में पत्रिका का मार्च मासीय अंक वी० पी० द्वारा भेज दिया जायेगा, जिसमें सदस्यो को व्यर्थ ही आठ आने का अतिरिक्त व्यय करना पड़ेगा। अतएव हमें आशा है सभी सदस्य अपना-अपना शुल्क १५ मार्च तक अवश्य कार्यालय में भेज देने का कष्ट करेंगे।

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक— कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि।
संस्कृत विभागसम्पादकः—वा. वा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली।

वर्ष ४१ अंक २ | दिल्ली, माघ २०११, फरवरी १९५५ | वार्षिक ५) एकप्रति ॥)

कांग्रेस प्रमुख श्री ढेबरभाई और आयुर्वेद

कांग्रेस के अवाडी अधिवेशन के नए चुनें गए प्रमुख श्री 'ढेबर' को आयुर्वेद जगत बहुत कम जानता हैं किन्तु वे आयुर्वेद के पक्ष के प्रबल समर्थक हैं और अच्छे प्रवक्ता भी हैं। वे शुद्ध आयुर्वेद के अग्रणी है। अपने जीवन में पूरे सिद्धान्त निष्ठ हैं और आयुर्वेद समर्थकों को भी सिद्धान्त निष्ठ रहने की हिमायत करते हैं।

श्री ढेबर अब तक सौराष्ट्र के प्रमुख मन्त्री थे। अपने शासनकाल में उन्होंने आयुर्वेद को प्रतिष्ठा देने के लिए ठीक ठीक प्रयत्न किए। परिणामतः सौराष्ट्र में आज आयुर्वेद नियामक श्री वासुदेव वैद्य एलोपैथी से पूर्णतया स्वतन्त्र रूप में १५० औषधालयों, २ आयुर्वेद विद्यालयों तथा १००० से भी अधिक आयुर्वेदीय औषध पेटियों द्वारा समग्र सौराष्ट्र में आयुर्वेद का कार्य कर रहे हैं। केवल वैद्यों द्वारा निर्मित बोर्ड शुद्ध आयुर्वेद के अभ्यास को आगे बढ़ा रहा है। श्री ढेबर आयुर्वेद विभाग के समस्त कार्यों में पूरी दिलचस्पी लेतें हैं।

श्री ढेबर आयुर्वेद के अच्छे अभ्यासी नहीं है किन्तु उन्होंने अच्छे अच्छे विद्वान वैद्यों का सम्पर्क पाया है। राजकुमारी अमृतकौर जब आरोग्य परिषद् में राजकोट आई थीं तब सौराष्ट्र वैद्य सभा ने उनके लिए स्वागत समारम्भ रखा था। उस समय श्री ढेबर ने आयुर्वेद की वकालत करते हुए कहा था कि दूसरे सभी विज्ञान क्यों (Why) और किस रीति से (How) इन दो प्रश्नों का उत्तर देते हैं किन्तु आयुर्वेद इनके साथ किस

लिए What for प्रश्न का उत्तर भी देता है और इस सम्बन्ध में भौतिक और मानसिक क्षेत्र से आगे बढ़कर आयुर्वेद नैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में भी आगे ले जाता है। दूसरे विज्ञानों के लिए अभी शरीर, मन और आत्मा का समन्वय करना बाकी है। आयुर्वेद ने यह कार्य प्रारम्भ से ही किया है।

श्री ढेवर जब काँग्रेस के प्रमुख चुने गए तब जामनगर में एक स्वागत समारम्भ में उन्होंने वैद्यों को कहा, "देश में करोड़ों मनुष्य निर्धन हैं। उन सब को आज ही औषधि पहुंचा सकने की सामर्थ्य आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में है। एलोपैथी को प्रतिष्ठा देने वाले मिशनरी लोग थे। मैं चाहता हूं कि वैद्य भी मिशनरी भावना से आयुर्वेद को निर्धन जनता में आगे बढ़ायें।" आयुर्वेदिक कालेज के छात्रों को कहा कि युवक आज चैम्पियन होना चाहते हैं किन्तु उसी कार्य में जिसमें कि जीत दृष्टि के समक्ष हो। उन्हें Lost Cause पिछड़े हुए कार्य को अपनाना चाहिए। सैंट्रल रिसर्च में कार्य करने वाले वैद्यों को सम्बोधन करते हुए उन्होंने कहा कि आज समुदाय युग है। देश के एक भाग को खर्चीली चिकित्सा मिले और दूसरे भाग को वैद्यकीय सहायता देने की राज्य की गुंजाइश ही न रहे इस परिस्थिति को समाज सहन नहीं करेगा। इसलिए रिसर्च करके ऐसी चिकित्सा पद्धति को समाज के सामने रखना चाहिए जिससे कि सारे देश को एक ही पद्धति से वैद्यकीय सहायता मिले। मुझे श्रद्धा है कि आयुर्वेद ऐसी चिकित्सा पद्धति है। किन्तु आप लोग यदि रिसर्च की दृष्टि से बतायेंगे तो आप न केवल भारत पर परन्तु सारे जगत पर महत् उपकार करेंगे।"

आयुर्वेद का समर्थन करते करते श्री ढेवर इतने प्रवृत्त हुए कि वे देश की अग्रणी आयुर्वेदीय संस्था श्री गुलाबकुंवर बा आयुर्वेदिक सोसाइटी के सभ्य बन गए हैं। सोसाइटी की नवीन कार्यकारिणी में उन्होंने अध्यक्ष बनना भी स्वीकार किया है। उनके प्रयत्न से बम्बई राज्य के मुख्य मन्त्री श्री मोरार जी देशाई भी सोसाइटी के सभ्य बन गए हैं।

वे कहते हैं कि हमारा कार्य आयुर्वेद की प्रतिष्ठा बढ़ाने का है। आयुर्वेद का विज्ञान बढ़ाना वैद्यों का कार्य है। यह शक्ति संयोग राष्ट्रीय रूप में हो जाय तो आयुर्वेद की विजय निश्चित है।

आज श्री ढेवर राजकीय दृष्टि से अत्यन्त महत्व के पद पर हैं। उनके सहयोग से अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन बहुत कुछ कर सकेगा। श्री ढेवर का सौजन्य, कौशल और ध्येय निष्ठा सम्मेलन और भारत सरकार के बीच जो अन्तर है उसे हटा सकती है।

श्री ढेवर राष्ट्र के हैं, आयुर्वेद के भी हैं। ईश्वर उन्हे सफलता दे।

सम्पादकीय——

विज्ञापन नियन्त्रण कानून और भारतीय भेषज्-उद्योग

केन्द्रीय सरकार ने लोक-सभा में एक आपत्तिजनक विज्ञापन नियन्त्रण कानून स्वीकृत कराया है। इस बिल का मुख्य उद्देश्य सामाजिक भ्रष्टाचार को प्रश्रय देने वाले विज्ञापनों को रोकना बताया जाता है। गन्दे और अश्लील विज्ञापन समाज में प्रचलित न हों——यह तो सभी विचारशील व्यक्ति चाहेंगे और इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त सरकार को सहयोग भी देंगे। किन्तु स्वास्थ्य-मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित उक्त कानून से सम्बन्धित नियम जितने कड़े हैं और उनका क्षेत्र जितना व्यापक है उससे प्रतीत यह पड़ता है कि सरकार ने उक्त कानून बनाते समय बुद्धिमत्ता और विवेक से काम नहीं लिया। कानून को जब अधिकार सौंपे जाते हैं तो उनका उपयोग करने में वह स्वतन्त्र भी होता है और उचित अनुचित सभी उसकी पकड़ में आ सकते हैं। इस कानून के लागू होने पर जहां गन्दे और अश्लील विज्ञापनों पर रोक लगेगी वहां समाज के हितु चिकित्सा-विज्ञान-विशेष कर आयुर्वेद व्यवसाय पर इसका घातक प्रभाव भी पड़ेगा। उक्त कानून को इतना व्यापक रखा गया है कि वह सभी औषधियों के विज्ञापनों पर लागू हो जाएगा और इस प्रकार भारत की अनेक छोटी-बड़ी औषध निर्माणशालाओं द्वारा प्रस्तुत शास्त्रीय, प्रामाणिक और सुपरीक्षित योगों के विज्ञापनों पर भी रोक लग जाने से जनता को उनसे परिचित नहीं कराया जा सकेगा। अतः यह कानून न केवल औषध निर्माताओं के लिए ही अहितकर है बल्कि जनता के लिए भी इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। भारतीय भेषज्-उद्योग में लगे हुए लाखों व्यक्ति बेकार हो जायेंगे। समाचार-पत्रों तथा विज्ञापन-संग्राहकों को जो आर्थिक क्षति इससे पहुंचेगी उसका अनुमान तो सहज ही लगाया जा सकता है। हम सरकार से अनुरोध करते हैं कि वह अपनी वर्जित विज्ञापन-सूची में आवश्यक संशोधन करके ही उसे लागू करे और भेषज्-उद्योग को, जो देश का एक प्रधान उद्योग है विनष्ट होने से बचाए।

औषध निर्माताओं को इस कानून का संगठित विरोध करना चाहिए। विज्ञापन-एजेन्सियों तथा समाचार-पत्रों एवं जनता को भी चाहिए कि वे भी इस बिल का सक्रिय विरोध करें ताकि सरकार इसे सही मायनों में उपयोगी बनाने में विवश हो।

आसव-अरिष्टों पर भी आबकारी टैक्स

ज्ञात हुआ है कि सरकार लोक-सभा में एक ऐसा विधेयक भी प्रस्तुत करने वाली है जिसमें आयुर्वदिक आसव-अरिष्टों को भी मादक-पेय-द्रव्यों की श्रेणी में रखा गया है और उन पर टैक्स लगाने की व्यवस्था की गई है। सरकार भली प्रकार जानती है कि

भारतीय जनता का अधिकांश आयुर्वेद द्वारा ही स्वास्थ्य लाभ करता है और आसव अरिष्ट आयुर्वेदिक चिकित्सा के विशेष अंग है। इस व्यापकता से लाभ उठाकर सरकार चाहती है कि उन्हें भी मादक द्रव्यों की श्रेणी में रखकर तथा उन पर टैक्स लगाकर कुछ रुपया वसूल कर लिया जाय। यह तथ्य किसी से छिपा हुआ नहीं है कि आसव-अरिष्टों में लेषमात्र भी मादकता नहीं होती—यहां तक कि यदि कोई व्यक्ति उनका इस ध्येय से अन्धाधुन्ध प्रयोग भी करे तो भी वे मादकता उत्पन्न नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था में सरकार का उन्हें मादक द्रव्यों की श्रेणी मे गिनना एक अत्यन्त अयुक्त और निन्दनीय कार्य है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि सरकार द्वारा यह पग आयुर्वेद-विरोधियों के गलत और स्वार्थमय परामर्श के परिणाम स्वरूप ही उठाया जा रहा है, जिनका कार्य सदैव ही आयुर्वेद विज्ञान तथा व्यवसाय के मार्ग में बाधाएं खड़ी करना रहा है। सरकार यदि निष्पक्ष भाव से तथा आयुर्वेद विपक्षियों के प्रभाव से दूर हट कर मादक-पेय द्रव्यों की परिभाषा पर विचार करे तो निसन्देह आसव-अरिष्टों को उस श्रेणी में नहीं पाएगी। अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति ने एक प्रस्ताव द्वारा इस प्रस्तावित कानून का विरोध करते हुए सरकार से आसव-अरिष्टों को मादक-पेय-द्रव्यों की श्रेणी में से निकाल देने का अनुरोध किया है। आयुर्वेद जगत को चाहिए कि वह इस प्रकार के कार्यों से सचेष्ट रहे और संगठित हो कर इनका विरोध करे।

—कैलाशचन्द्र अग्रवाल

सर्व प्रकार की आयुर्वेदिक पुस्तकें
अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन
कार्यालय, महालक्ष्मी मार्केट,
चांदनी चौक, दिल्ली, से प्राप्त करें।

महासम्मेलन पत्रिका में विज्ञापन
देकर लाभ उठाइये।

अन्य देशिकराज्यशासका बंबईराज्यमनुकुर्वन्तु

बंबईराज्यशासकाः प्रजानामारोग्यपरिपालने आयुर्वेदस्य प्रभावं अपरिहार्यत्वं च सम्यग् विज्ञाय, तत्रापि आलोपाथिकादिबाह्यवैद्यकासंकरितं सुशिक्षितसंपूर्णायुर्वेदैर्वैद्यै रेव जनानां यथावदारोग्यपरिपालन शक्यसंपादमिति च बहुवर्षानुभवात् परं विनिश्चित्य, विशुद्धायुर्वेदशिक्षापद्धतिप्रदान् बहूनायुर्वेदविद्यालयान् स्वकीये प्रदेशे तत्र तत्र संस्थापितवन्तः परुत्।

भारतवर्षे प्रादेशिकराज्येषु आयुर्वेदालोपाथिकसंकरशिक्षाप्रदविद्यालयस्य सर्वप्रथमतः प्रतिष्ठापनकीर्तिः मद्रासराज्यस्यैव। द्वात्रिंशत्संवत्सरेभ्यः पूर्वमेव हि मद्रासराजकीयैः प्रारब्धः आलोपाथिकसंकरित आयुर्वेदविद्यालयः। ततः परमेव तादृशसंकरायुर्वेदविद्यालयाः अन्य प्रदेशेषु वाराणसीविश्वविद्यालये च स्थापिताः शासकैः। विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामासवानरमितिवत् आयुर्वेदशिक्षायामालोपाथिकवैद्यकसांकर्यप्रवृत्तिः आयुर्वेदं नितरामदूषयत् अक्षपयञ्च। राज्यविप्लवान्मन्दप्रभावः आयृर्वेदः सांकर्यात् पुनः प्रदूष्यते चेदयं कथंकारं स्यात् जनतायाः स्वास्थ्य संरक्षणक्षमः? अमूमायुर्वेदसांकर्यदोषदुष्परिणतिमुपज्ञाय विसंकरं विशुद्धायुर्वेदशिक्षायाः सर्वप्रथमतः प्रवर्त्तितत्वकीर्त्तिस्तावत् भारते वंबई राज्यशासकवर्गस्यैव।

भारतीयं अतीतपञ्चाशद्वर्षकालिकं आयुर्वेदेतिवृत्तं अनुसन्धातृणामिदं सुविदितं यद् अयुर्वेदस्य विद्याप्रदानचिकित्साचरणकार्येषु सर्वनियामकोत्तमाधिकारिपदव्यां सर्वत्र भारते आलोपाथिकभिषजो नियोजनेनैव ईषन्मन्दतयावा ज्वलिताया। आयुर्वेदप्रभायाः निर्वापणमेव समापतदिति। अधुना प्रबुद्धैः कतिपयैः प्रादेशिकराजकीयैः अमुं मूलदोषमपाचिकीर्षुभिः आयुर्वेदविभागनिर्वाहाधिकारेषु आयुर्वेदविदां नियुक्तिः समारब्धा भवति। उत्तरप्रदेशे- राजस्थाने सौराष्ट्रे च क्रमशः आयृर्वेदविभागस्य संपूर्णनिर्वाहे सुयोग्या आयुर्येदाभिज्ञा यदा अधिकृताः, तदाप्रभति तेषु प्रदेशषु आयुर्वेदस्य यथार्थसमुद्धरणसूचना सन्दृश्यत एव।

इदानीं बंबई राज्ये, यत्र आयुर्वेदस्य असंकरशिक्षापद्धतिः परुत् प्रवर्त्तिता, आयुर्वेदतिभागव्यवस्थापकाधिकारे बहुश्रुतसुयोग्यस्य आयुर्वेदमहाविदुषः पण्डित श्रीहरिदत्तशास्त्रिमहाशयस्य नियुक्तिः कृता भवति।

साधारणतो दृश्यत एव बहुधा राज्यशासने कतिपय वाचाटानां मुखमुद्रणाय स्वाभीप्सितव्यक्तेर्जीविकादानाय वा हृदयेन व्यक्तिविशेषनियुक्तिपूर्विका कर्मस्थानविशेषस्य नूतना सृष्टिरपि। मैवं बंबईराज्यशासकानामस्मिन् कर्मणि किञ्चिदपि शंकाम्। आयुर्वेदविभागनिर्वाहाय पण्डित श्रीहरिदत्तशास्त्रिणोवरणं शासकैः कृतं तावत्, नूनं राजकीयानां आयुर्वेदसमुन्नयने वास्तविकीं हार्दीं श्रद्धामेवाविष्करोति। अन्यथा आलोपाथिकभिषगेव हि आयुर्वेदशिरसि नियुक्तः स्यात्। पण्डित श्रीहरिदत्तशास्त्रिणः राजकीयप्रार्थनास्वीकृतिरपि

परं प्रशंसनीया । धर्मन्यायानुवर्त्तनतत्परतया कार्यनिर्वाहे क्रियमाणे नानाप्रकारक्लेशानुपतनं प्रतिपदं संभवार्हं हि एतादृशेषु लौकिककर्मसु । अतः श्रीहरिदत्तशास्त्रिणः एतन्निर्वाहकपदस्वीकारः शास्त्रिणो गरीयसीमायुर्वेदसेवातत्परतां स्पष्टयति ।

बंबई राज्ये य इमे नूतना वस्तुत आयुर्वेदोन्नायका बहवः प्रयत्नविशेषाः सांप्रतं दृश्यन्ते, ते तावत् अ. भा. आयुर्वेदमहासम्मेलनाध्यक्षस्य पं श्रीशिवशर्ममहाभागस्य बंबई प्रदेशे बहुकालिकनिरन्तर समुचित प्रचाराणां फलभूता एवेति अ. भा. आ. महासम्मेलनस्य संहर्षातिशयः ।

नूनं विश्वसिमोवयं बंबईराज्यशासकैर्यथा आयुर्वेदवृध्द्यै सुयोग्यविद्वद्वैद्यस्य वरणं कृतं तथैव वृतस्य लक्ष्यसिद्ध्यै सर्वप्रकारः सहायः प्रधानतमोपकरणात्मकं धनं च पर्याप्ततया समुपड्रियेत । श्रीहरिदत्तशास्त्रिणश्च प्राप्तमिमं आयुर्वेदसेवासंदर्भं पुष्कलफलं वितन्युः, स्व प्रभावेण प्रमाणयेयुश्च आयुर्वेदस्य विशुद्धा तात्विकी आशु च परिपूर्णसमुन्नतिः सुदशायुर्वेदिकैकसाध्या नैवालोपाथिकभिषग्भिरिति ।

इदमिह वयं पुनरावेदयामः—यदि विश्वस्य आरोग्यसंपदो यथावत् परिरक्षणे राज्यशासकानां सत्यतः समीहा, तर्हि आयुर्वेदस्य प्रभायाः पुनः प्राप्त्यै प्रयतन्ताम् । यद्यायुर्वेदस्य प्रभाप्राप्तौ सत्यतः प्रयत्नस्तर्हि सर्वे प्रादेशिकराज्यशासकाः बंबई राज्यमनुकुर्वन्तु ।

वा. बा. न. शास्त्री

दुःखद निधन

वैद्य समाज में यह समाचार बड़े दुःख के साथ सुना जायेगा कि त्रावणकौर कोचीन राज्य के प्रथम आयुर्वेद डायरेक्टर तथा त्रिवेन्द्रम आयुर्वेद कालेज के प्रिंसिपल श्री वीं० के० जी० मेनन का आकस्मिक देहावसान हो गया है । श्री मेनन आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान थे और त्रिवेन्द्रम में होने वाले आगामी ४०वें महासम्मेलनाधिवेशन के आप प्रमुख कार्य-निर्वाहक थे। आपके असामयिक निधन से अधिवेशन एक मास तक स्थगित हो जाने की सम्भावना है । हम उनके दुःखी परिवार तथा स्नेही मित्रों के प्रति सहानुभूति संवेदना प्रकट करते हुए उनकी वियुक्त आत्मा की सद्गति की कामना करते हैं ।

राष्ट्रनायकों की दृष्टि में आयुर्वेद

आयुर्वेदज्ञ अपने गुणों को प्रमाणित करें

मैं यह मानता हूं कि आयुर्वेद में बड़ी शक्ति है। उसके पास ऐसी औषधियां हैं कि जिनका लोग अभी मुकाबिला नहीं कर सकते। मेरा विश्वास है, शीघ्र ही समय आयेगा जब सब लोग आयुर्वेद को अपनायेंगे। मैं आशा करूंगा, जिस तरह से आज तक आप वैद्य लोग खड़े रहे हैं उस तरह से इस कठिन काल में भी आप लोग सजग रहेंगे। इस समय जिस चकाचौंध में लोग पड़े हैं वह अधिक समय नहीं रह सकेगा।

जब आप उनकी और अपनी चीजों का ठीक अध्ययन कर आजकल की भाषा में अपने तथ्य सामने रखेंगे तो देखेंगे, आप सबसे आगे हैं। इस समय वैद्य मण्डल में सच्ची लगन वाले विद्वानों की आवश्यकता है, जो खोज कर आयुर्वेद के मर्म लोगों को बताएं।

हमारे यहां नाड़ी देख कर, चेहरा व पिशाब देखकर रोग का निदान होता था। उसे भुलाएं नहीं, परन्तु उसका प्रचार करें। अब समय है, जब आप अपने गुण प्रमाणित कर सकते हैं।

यह दृष्टिकोण ही उल्टा है कि जनसंख्या पर चिकित्सालय हों। मैं समझता हूं रोगी होना अच्छी बात नहीं है और फिर अधिक अस्पताल होना और भी बुरी बात है, क्योंकि जितने अस्पताल बढ़ेंगे उतने ही रोगी बढ़ेंगे। सच्चा आयुर्वेद तब होगा जब चिकित्सालयों की आवश्यकता ही न होगी।

—राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद।

आयुर्वेद और सन्त विनोबा

विनोबा जी आयुर्वेद के पूर्ण समर्थक हैं और इस सम्बन्ध में 'हरिजन' में आपका लेख भी छप चुका है। एक बार किसी गांव के कुछ लोगों ने विनोबा जी से शिकायत की कि हम लोग अस्पताल चाहते हैं, किन्तु सरकार ने उसकी मंजूरी नहीं दी। इस पर विनोबा जी ने कहा—"बहुत अच्छा हुआ। यदि अस्पताल खुलता तो देश का पैसा विदेशी दवाओं के लिए विदेश जाता। किन्तु रोगनाश के लिए भगवान ने हमारे देश को अनन्त जड़ी-बूटियां दे रखी हैं। हमें देशी औषधियों का ही उपयोग करना चाहिए।"

विनोबा जी ने आयुर्वेद का हार्दिक समर्थन करते हुए कहा कि जिला वैद्य सम्मेलनों की ओर से प्रत्येक जिले के किसी स्थान में औषधियां लगाई जायें और संग्रहीत की जायें तथा उनका पूरा प्रचार-प्रसार किया जाय। उनके प्रयोग और परीक्षण की सूचना प्रादेशिक सरकार को भी दी जाय। इससे आयुर्वेद का प्रभाव विस्तार होगा। आयुर्वेद का प्रचार

प्रसार वैद्यों और जनता द्वारा ही किया जा सकता है। सरकार को तो निमित्त मात्र के लिए इसमें सहायक बनना उचित होगा।

पं० रविशंकर जी शुक्ल, मुख्य मंत्री, मध्य प्रदेश के विचार

"हमारे अपने कुछ विशिष्ट तरीके थे जिनके द्वारा हम रसायन शास्त्र के कार्य को पूर्ण करते थे। प्राध्यापक पी० सी० राय ने जो कुछ किया था वह भारतीय रसायनशास्त्र के इतिहास में अविस्मरणीय है।" यह शब्द मध्य प्रदेश के वयोवृद्ध मुख्यमंत्री माननीय श्री पं० रविशंकरजी शुक्ल ने नेशनल अकेडेमी आफ साइन्स के सागर अधिवेशन में उद्घाटन भाषण देते हुए व्यक्त किए। आपने कहा, "प्राचीन रसायन शास्त्र तब चरम सीमा पर था जब हमारे रसायन शास्त्रज्ञ हाथों से औषधि का निर्माण करते थे। इनमें चरक सुश्रुत और वाग्भट अपनी खोजों के इतिहास में अमर हो गए हैं। उनके कार्य योग्य प्रयोगों तथा खोजों के आधार पर अतुल ज्ञान का भण्डार बन गए। हमारे प्राचीन औषधि शास्त्र का मुख्य गुण था उसके लेने की पद्धति। उस विशिष्ट पद्धति के द्वारा लोहे और पारे के औषिद, क्लोराइडस् और गंधिद (Sulphide) का उपयोग करना अपना सानी नहीं रखता था।"

"नागार्जुन का रसरत्नाकर रसायनशास्त्र का सर्वोच्च कार्य है। धातुशास्त्र का ज्ञान हमारे यहां मेघस्थनिज के समय से ही पाया जाता है। डेमास्कस का पाट (Blades) इस बात का उदाहरण है। हमारे धातुशास्त्र का ज्ञान अरब और परसियनों के द्वारा पश्चिम में ले जाया गया। कुतुबमीनार के पास जो लोह स्तम्भ है उस पर अभी तक जंग नहीं लगा यद्यपि वह आज से १४ शताब्दी पूर्व बनाया गया था। फौलाद में लोहे का प्रमाण कितना हो यह हमारे यहां लोहारों को अच्छी तरह पता था।"

भारतीय योगशास्त्र के सम्बन्ध में कहते हुए आपने बताया कि योगी लोग योग की क्रिया से शरीर की सम्पूर्ण शक्तियों को एक स्थान पर एकत्रित कर लिया करते थे और इस प्रकार वे जीवित अवस्था में ही शरीर से आत्मा को मुक्त कर दिया करते थे। यह था भारतीयों का रसायन-शास्त्र के क्षेत्र में कार्य।"

जन-स्वास्थ्य और विदेशी औषधियाँ

आयुर्वेदाचार्य पं० शिवरामजी द्विवेदी

भारतीय स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा है। रोगों की वृद्धि हो रही है। स्वस्थ पुरुष आज बिरला ही नजर आता है। बालकों की हालत और भी खराब है। प्रत्येक बालक जीर्ण-शीर्ण, मुरझाया हुआ, अस्वस्थ दिखाई पड़ता है। किसी न किसी सामान्य व्याधि से वह ग्रस्त होता है। कम से कम ६० प्रतिशत बालकों की यही हालत है। इस निरन्तर गिरते हुए भारतीय स्वास्थ्य के कई कारण हैं। समुचित पोषक पदार्थों का अभाव, रहन-सहन का निम्नस्तर, अस्वच्छ वातावरण आदि कारण तो हैं ही नये विज्ञान के नाम पर प्रचलित नयी औषधियां भारतीय स्वास्थ्य को और भी जर्जर किये डाल रही हैं। उक्त औषधियाँ देश सम्बन्धी शीतोष्ण भेद और अपने गुण-धर्म-प्रभाव से भारतीयों की प्रकृति के विरुद्ध पड़ती हैं। इनसे तात्कालिक लाभ तो दिखाई पड़ता है, किन्तु बाद में प्रतिक्रिया बहुत भयंकर होती है। इसका कोई लेखा-जोखा स्वास्थ्य विभाग में कदाचित् नहीं रहता।

इन नयी औषधियों की बहुतायत सन् ३० के बाद शुरू हुई। सल्फा ड्रग्स के विभिन्न परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप हमारे सामने आये। एक की हानि छिपाकर और दूसरी को अमृत बताकर विदेशी एलोपैथिक कम्पनियों ने भारत की जो आर्थिक लूट की वह तो प्रत्यक्ष ही है; किन्तु इनसे जो स्वास्थ्य सम्बन्धी हानि हुई, वह विचारणीय है। एम० बी० ६९३, एम० बी० ७६०, सिबाजोल, सल्फानोलामाइड, सेप्टेनिलम्, सल्फागोनेडीन, सल्फाथियोजोल, पेनिसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन टेरामाइसीन, आरोमाइसीन, क्लोरोमाइस्टीन, पी० ए० एस० (पाराअमीनो सैलिसिलिक एसिड) और बी० सी० जी० इत्यादि को उदाहरण के रूप में रखा जा सकता है।

सल्फा औषध साधारण जुकाम को तीन दिन में अच्छा कर देती है; किन्तु रोगी पर इनकी विषैली प्रतिक्रिया हो जाने पर जो रोग उत्पन्न हो जाते हैं, वे तीन साल में भी अच्छे नहीं होते। पेनिसिलिन, थायोयुरेसिल, एँड्रोजंज तथा ईस्ट्रोजंज जैसी औषधियों की प्रतिक्रिया का निःशेष रहस्य अब भी गुप्त है। रोग से उतना भय नहीं, जितना भय इन विषाक्त औषधियों से है। रोग साधारणतः सामान्य रूप से शरीर में एकत्र हुए विकृत पदार्थों को निकालने के लिये होते हैं। उनसे उतना भय नहीं, किन्तु शरीर में इन विषाक्त औषधियों को पहुँचा देने से जो प्रतिक्रिया होती है, वह बड़ी ही भयंकर होती है।

तीन साल हुए, चिकित्सा-विज्ञान में क्रान्तिकारी नये युग का प्रादुर्भाव कोर्टिसोन नामक औषध के आविष्कार से हुआ। वह युग की उत्कृष्टतम औषध मानी जाने लगी।

भारतीय डाक्टरों के प्रत्येक नुस्खे में उसका उल्लेख मिलने लगा। इस दवा ने तीन साल के अन्दर ही हजारों आदमियों को निकम्मा कर मौत के घाट उतार दिया। लाभ किसी को नहीं हुआ, वास्तव में सभी की हानि हुई। अन्त में कोर्टिसोन का भंडा फूटा और उसके निर्माताओं और वैज्ञानिकों के क्षमायाचना के पत्र प्रकाशित हुए। हजारों की प्राण-हानि का वदला उन्होंने क्षमायाचना द्वारा दे डाला। खैर, अब भारतीय डाक्टरों के नुस्खे में कोर्टिसोन के दर्शन नहीं होते, यही क्या कम है।

स्ट्रेप्टोमाइसिन के गुण-दोष

इनके प्रयोग से हजारों अच्छे, स्वस्थ आदमी क्षयार्त बनाये गये। प्रतिशत १० आदमियों को कुछ शान्ति भी मिली पर शेष ९० प्रतिशत क्षय के चंगुल में जा फंसे। यह हाल देखकर विगत वर्ष २६ जुलाई को ब्रिटेन की चिकित्सा-अनुसन्धान परिषद् ने यह विचार व्यक्त किया कि 'जिस स्ट्रेप्टोमाइसिन का बहुत शोर है, वह साधारण रूप से कीटाणुओं को मारने में भी असमर्थ है। इतना ही नहीं, इसके व्यर्थ हो जाने पर उसी दवा मे कीटाणु पलने लगते हैं। स्ट्रेप्टोमाइसिन में रहने के अभ्यस्त हो जाने पर, कीटाणुओं को इससे उत्तम आहार भी दूसरा नहीं मिलता। साधारणतया जिस शक्ति की औषध से कीटाणु मर सकते हैं, उसकी कई गुनी शक्तिशाली औषध देने पर भी उन अभ्यस्त कीटाणुओं का कुछ नहीं बिगड़ता। उलटे उतनी ही अधिक संख्या में वे बढ़ने लगते हैं। परिषद् की रिपोर्ट में कहा गया है कि 'स्ट्रेप्टोमाइसिन की जरूरत कीटाणुओं को अपनी पूर्ति के लिए होने लगती है। कई रोगियों के मामलों में देखा गया है कि राजयक्ष्मा से उनकी रक्षा तभी हो सकी जब स्ट्रेप्टोमाइसिन छुड़ाकर अन्य औषध की व्यवस्था की गई।

फिर क्लोरोमाइस्टीन औषध-विज्ञान का एक नया चमत्कारिक युग लेकर आयी। यह औषध टाइफाइड ज्वर को २४ घंटे में ही उतार देती है। इसका प्रयोग भी अन्धाधुन्ध होने लगा। अनेक रोगियों पर इसकी भी भयंकर प्रतिक्रिया हुई। शरीर के श्वेताणु (ह्वाइट कोर्पसुल्स) यह नष्ट कर देती है। उसका यह सामान्य प्रभाव तो सब पर ही है, उतरने के वाद इसके विष की प्रतिक्रिया अन्य रोगोत्पादक होती है। इस भांति सैकड़ों के प्राण इसने भी लिये। हाल ही में एक व्यक्ति को टाइफाइड हुआ। वे पूर्ण स्वस्थ, हट्टे-कट्टे थे। उनके और कोई रोग न था। टाइफाइड उतारने के लिए उन्हें क्लोरोमाइस्टीन दी गयी। २४ घंटे में ज्वर तो उतर गया किन्तु इतनी भयंकर प्रतिक्रिया हुई कि लखनऊ मेडिकल कालेज के चिकित्सक भी दंग रह गये। उस व्यक्ति के शरीर में एक भी श्वेताणु शेष नहीं रह गया, उनका मस्तिष्क संज्ञाशून्य हो गया, ज्वर बढ़ कर साढ़े पांच डिग्री हो गया और श्वास-प्रश्वास में विक्रिया उत्पन्न होकर फेफड़े कफाच्छादित हो गये। चिकित्सक डाक्टरों ने बहुत-सा खून भी दिया किन्तु फेफड़े अग्राही हो गये थे। सभी उपाय व्यर्थ हुए। उनका देहान्त हो गया। क्लोरोमाइस्टीन की यह भयंकर प्रतिक्रिया मैंने अपनी आंखों से देखी है।

चिकित्सा के नाम पर पहले गरीब भारत का जितना रुपया विदेश को जाता था, उससे अब चार पांच गुना अधिक जाता है। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार आन्दोलन इसी बात पर किया था कि देश का करीब ७० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष विदेश जाता है, इसे रोकना चाहिए। उन दिनों मैं महात्मा गांधी से मिलने गया था। आन्दोलन सम्बन्धी निष्क्रिय प्रतिरोध तथा सक्रिय प्रतिरोध पर विस्तृत बातें हुई। मैंने कहा कि 'बापू जी, जितना रुपया वस्त्रों द्वारा विदेशों को जाता है, करीब उतना ही रुपया विदेशी दवाइयों के नाम पर विदेश जाता है। इस पर आन्दोलन क्यों न किया जाय? इस पर बापू ने मुस्कराते हुए कहा "बात ठीक है, किन्तु औषध-बहिष्कार आन्दोलन व्यापक न होगा। विदेशी औषधियों को लोग जानते ही नहीं, सर्वसाधारण समाज उसे समझता ही नहीं, वस्त्रों से सब का सम्बन्ध है। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार आन्दोलन व्यापक होगा। आगे भी वही आन्दोलन छेड़ने होंगे, जिनका सम्बन्ध सर्वसाधारण से हो। अब रही विदेश को औषधियों द्वारा रुपया जाने की बात। स्वतन्त्र भारत उसे आसानी से ठीक कर लेगा। औषधियों की अपेक्षा मैं प्रकृति पर रहना पसन्द करता हूँ। विषाक्त औषधियाँ चाहे विदेशी हों या स्वदेशी, सभी परिणाम में स्वास्थ्यनाशक ही होती हैं। प्रकृति प्रदत्त पदार्थ या मिट्टी और जल-वायु ही स्वास्थ्य को ठीक रख सकते हैं। रोग निवारण में उनका प्रयोग करना चाहिए।"

स्वतन्त्र भारत में विदेशी कम्पनियों की लूट और भी बढ़ गयी है। विगत वर्ष में ही करीब तीन अरब रुपया इसी वैज्ञानिक इन्द्रजाल से विदेश गया। गरीब भारत की यह स्वास्थ्य और अर्थ की हानि उपेक्षणीय नहीं।

('सचित्र आयुर्वेद' से साभार)

मलेरिया शत्रु— सर्फ एक मात्रा में ही मलेरियां नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है।
मूल्य आधा पौंड ६) रु० **सफेद कोढ़**--की पेटेन्ट दवा—मूल्य ५) रुपया
दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर तथा हकीम धन-मान कमा रहे हैं। विवरण
पत्र मुफ़्त मंगाकर देखें।
वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन
मु० पो०-मंगरूलपीर, जि० आकोला (बरार) म० प्र०

दोषा रोगाश्च

(आचार्य वी० एस० वेंकटसुब्रह्मण्यशास्त्री, साहित्यायुर्वेदशिरोमणिः, वैद्यविशारदः
आयुर्वेदाध्यापकः, वेंकटरमणायुर्वेदकलाशाला, मैलापूर, मदरास्)

अत्र केचित्—

विकारो दोषवैषम्यमिति श्रूयते । वैषम्यगमनं हि दोषाणां वृद्धिह्रासगमनमिति व्याख्यातम् । तत्र वृद्धिविकृता दोषा ज्वरादीन्व्याधीनारभंते,तथा क्षयेण विकृतिं गताश्च शरीरं रोगाक्रान्तं कुर्वन्ति । द्विषष्टिं दोषभेदान् रोगहेतुत्वेन परिगणयन्तो ह्याचार्याः दोषाणां व्याध्यारंभकत्वमभ्युपगच्छन्त्येव । तथा चैव सिद्ध्यति-यत्क्षीणा दोषा अपि, वृद्धा दोषा इव रोगोत्पादने समर्था इति ।

तत्रोच्यते—

“सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः” इति दोषकोपकृता एव सर्वे रोगा इति सर्वत्र अप्रतिहता खल्वियमाचार्याणां प्रतिज्ञा । अत्र सर्वेषां रोगाणामिति दोषक्षयत्वेनाभिमन्यमानानां दोषवृद्धिकृतानां चेत्यविशेषेण सर्वेषां रोगाणां इत्येव वक्तव्यम् तत्र कुपिता मला इति तु वृद्धिरूपां विकृतिं गता एवाभिमताः । वृद्धानामेव प्रभविष्णुत्वात् क्षीणानां स्वयमेवालब्धात्मकानां व्याधिनिर्वर्तने अशक्तत्वात् । उच्यते च—

‘वाते पित्ते कफे चैव क्षीणे लक्षणमुच्यते
कर्मणः प्राकृताद्धानिः वृद्धिर्वापि विरोधिनाम् ॥’

इति । क्षीणा हि दोषाः स्वानि प्राकृतधारणलिंगानि जहतीत्यव, न तु ज्वरादिं निर्वर्तयन्तीति । किञ्च वाग्भटवचनमनुपदं विमृश्यताम् । “तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् । अहितं त्रिविधो योगः त्रयाणां प्रागुदाहृतः ।” इति विवृण्वन् भूयश्च ‘तिक्तोषण, कषायाल्प··· प्रकुप्यति समीरणः ।” इत्यादि दोषकोपवर्गं वर्णयन् वाग्भटः यथास्वं तत्तद्दोषवर्धनमेव निदानवर्गं वक्ति । निर्वहति च ‘प्रतिरोगमिति क्रुद्धा रोगाधिष्ठानगामिनीः । रसायनीः प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते ।” इति । तथा च सर्वेषामेव रोगाणामिति सर्वविधरोगनिदाननिरूपणं प्रतिजानन्, ‘प्रतिरोगमिति क्रुद्धा’ इत्यादिना सर्वेषां रोगाणां एवंरूपां वृद्धदोषकृतामेव संप्राप्तिं निर्वहन् वाग्भटः, तथा तत्र तत्रान्येऽप्याचार्याः वृद्धैरेव दोषैः सर्वविधानां रोगाणां निष्पत्तिमभिप्रयन्ति ।

न चैतावता क्षीणानां दोषाणामकिञ्चित्करत्वम् । धातूनां क्षीणानां लक्षणमुच्यते,प्राकृतात्कर्मणो हानिः वृद्धिर्वेति । तत्रेदमाकूतम् । क्वचिद्धि धातूनां क्षीणानां प्राकृतकर्महानिर्लक्षणम् । क्वचिच्च विरोधिनां वृद्धिः । क्वचित्तूभयम् । न तु सर्वत्र समुच्चितमिदं क्षीणलक्षणम् । यत्र तु

प्रतिनियतधातूनां प्राकृतधारणात्मक कर्महानिमात्रं,न तु व्याधिविशेषानुत्पत्तिः, तत्र यथास्वलक्षणोत्पादकशक्तेरभावात् लक्षणादर्शनं स्वयं सिध्यति । न तु तत् क्षीणैर्दोषैः क्रियते । दीपो हि ज्वालामालया विलसन्, ज्वालासन्ततिनिर्वृत्तये हेतुभूतां स्नेहधारां वर्तिसंपत्तिं चापेक्षते । निर्वाणे दीपे, तदभावं प्रति न स्नेहधारा वर्तिसंपत्तिः तदभावो वा कारणम् । तस्य स्वभावतः सिद्धेः । 'प्रवृत्तिहेतुर्भावानां न निरोधेऽस्ति कारणम्' इत्यादिना, विनाशे द्वितीयक्षणविद्यमानत्वलक्षणे सहजसिद्धे न हेत्वन्तरं अपेक्ष्यते । यथा न स्वाभाविकरूपे हेत्वन्तरापेक्षा भवति । तदेवं प्राकृतधारणात्मकस्य धातोःक्षये स्वभावत एव तत्कार्याणां वैकल्ये विनाशे वा प्राकृतकर्मणां हानिर्मरणं वा भवति । क्षयरूपं वैषम्यं हि सर्वशोऽवयवशो वा भवति । तत्रावयवशःक्षये,यथाबलं प्राकृतकर्महानिरवयवशः । सर्वशः क्षये तु एकदेशतोऽपि धारणासंभवे पञ्चत्वं भवति । तदपि विकलं धारणं न क्षीणेन दोषेण क्षीणावयवकृतम् । किन्तु अक्षीणेन प्राकृतैकदेशेनैव । क्षीणो ह्यवयवः स्वकृतधारणाभावं प्रति निमित्तं वा संभवदपि, स्वधर्महानिं न निर्वर्तयति । अभावस्य पूर्वोक्तन्यायेन स्वभावतः सिद्धेः । सर्वशः क्षयेण पञ्चतापत्तौ च न सर्वशः क्षीणानां दोषाणां मरणारंभकत्वम् । धारणस्य सर्वश एवाभावे मरणस्य धारणाभावलक्षणस्य स्वयमेव सिद्धत्वात् । 'केचित्त्वत्रापि मन्यन्ते हेतुं हेतोरवर्तनम् ।' इत्यादिना कार्याभावं प्रति कारणाभावं हेतुत्वेन केचित् मन्यन्त इत्यारभ्य "न नाशकारणाभावाद्भावानां भावकारणम् । ज्ञायते नित्यगस्येव कालस्यात्ययकारणम् । शीघ्रगत्वाद्यथा भूतस्तथाभावो विपद्यते । निरोधे कारणं तस्य नास्ति नैवान्यथा क्रिया ।" इत्यादिना, तथा "नह्येको वर्तते भावो वर्तते नाप्यहेतुकः । शीघ्रगत्वात्स्वभावात्तु अभावो न व्यतिवर्तते ॥" इत्यादिना च, भावानामेव हेत्वपेक्षा, अभावस्तु भावहेत्वभावे स्वयमेवोत्पद्यते इति व्याचक्षाणैराचार्यैः, दोषक्षये प्राकृतकर्महानिलक्षणमभावं प्रति स्वभावस्यैव हेतुत्वमालक्ष्यते, न तु तत्र हेतुसापेक्षत्वम् । अस्तु वा केषाञ्चिन्मतानुसारेण कारणाभावस्य कार्याभावहेतुत्वांगीकारः, तत्रापि दोषक्षयेणावयवशः सर्वशो वा दोषस्वलक्षणापादनाभावेन यथास्वं प्राकृतकर्महानिलक्षणः अवयवशः सर्वशो वा अभावः, तथापि दोषक्षयः तत्र निमित्तं, न तु साक्षात्तत्र दोषो हेतुः । यथाहि दीपाभावेन तिमिराविर्भावे न दीपो हेतुः,किन्तु तदभावो निमित्तं,तथा प्राकृतकर्महानिं प्रति दोषक्षयस्य निमित्तत्वं वा अभ्युपगन्तव्यम् । न तु क्षीणैर्दोषैरारभ्यते प्राकृतकर्महानिः । तथा च न व्याध्यारंभकत्वं वृद्धदोषसमकक्षं क्षीणदोषाणामिति सिद्धम् ।

उक्तं च चक्रपाणिना—'क्षीणा हि दोषाः स्वलिङ्गहानिमात्रविकारा नाधिकं ज्वरादिकं कर्तुं समर्थाः' इति । तथा लिंगं स्वं जहतीत्यनेन क्षीणानां दोषाणां प्रकृतिलिंगक्षयव्यतिरिक्तविकारकर्तृत्वं नास्तीति दर्शयति, यतो वृद्धा उन्मार्गगामिनो दोषा दूष्यं दूषयन्तो ज्वरादीन्कुर्वन्ति, न क्षीणाः स्वयमेव दुःस्थितत्वात्'' इत्यादि च ।

दोषाणां वृद्धिसाम्यक्षयलक्षणप्रस्तावे च 'वृद्धस्तु कुरुतेऽनिलः ।' 'अनुगृह्णत्यविकृतः' इति धातोः यथायथं कर्तृत्वं कण्ठरवेण निर्दिशन् वाग्भटः 'लिंगं क्षीणेऽनिले' इत्यादि क्षयलक्षणं व्याकुर्वन्, क्षीणस्य वायोः कर्मेति न निर्दिशति, किन्तु क्षीणे वायौ लिङ्गमिति । एवं पित्तादिष्वपि । तथा'वायोः कर्माविकारजं'इत्यादिप्राकृतवातादिगुणकर्मवर्णनप्रस्तावे वातादेः

साक्षादेव हेतुतां व्याकुर्वाणा आचार्याः "वाते पित्त कफे चैव क्षीणे लक्षणमुच्यते । कर्मणः प्राकृताद्धानिः" इत्यादिना क्षये क्षीणानां लक्षणानि निर्दिशन्ति । न तु तेषां लक्षणानां यथायथं क्षीणैर्दोषैः साक्षादेवारभ्यमाणत्वम् । अपावृतद्वारत्वं, भृत्यानां स्वस्वव्यापारेषु अनवहितत्वं, लूतादिभिः उपहतभूयिष्ठदेशत्वं,मलिनप्रायत्वं चेत्यादीनि अस्वामिकस्य गृहस्य लक्षणमित्युक्ते, न खलु तानि असन्निहितेन स्वामिना क्रियमाणानि; स्वामिनोऽसन्निधानं तु तत्र निमित्तं भवितुमर्हति । न त्वेतादृशलक्षणारंभकत्वं असन्निहितस्य स्वामिनः तदसन्निधानस्य वा । असन्निहितस्य स्वामिनः तदसन्निधानस्य वा तल्लिगमिति तु वक्तुं शक्यत एव । एवमेव क्षीणदोषलक्षणकीर्तनमपि व्याख्येयम् ।

यथा वा मृतशरीरे शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगलक्षणस्य आयुषोऽभावस्य लक्षणं शीतस्तब्धकर्कशगात्रत्वादिकं इत्युक्ते, नहि तादृशं लक्षणं क्षीणेन आयुषा, आयुषः क्षयेण वा क्रियते । तल्लिगोत्पादस्तु स्वभावात् । क्षयः, क्षीणं वा आयुः, तत्र निमित्तं तु भवत्येवेति । काचित्क्षतिः ।

तदेवं क्षीणे दोषे न ज्वरादिरोगोत्पादः. क्षयबलातुसारेण तु प्राकृतधारणवैकल्यं मरणं वा, न तत्र क्षीणादोषास्तल्लक्षणारंभकाः, किन्तु धातुक्षयेण धारणलक्षणोत्पादकाभावे धारणवैकल्यं विनाशो वा स्वभावतः ।"

यत्र तु 'वृद्धिर्वापि विरोधिनाम्' इति, तत्रापि विरोधिनां गुणानां कर्मणां वा वृद्ध्युत्पादनं, धारणलक्षणस्यातिमात्रवैकल्येन प्रत्यनीकभावानां निष्प्रतिबन्धमुन्मेषात्संभवति । न च तत्रापि क्षीणा दोषा आरंभकाः । न हि कश्चिदपि स्वप्रत्यनीकलक्षणोन्मेषप्रयोजको भवति । लोके हि यथा सत्वरजस्तमसां यथायथं परिच्छिन्ने समुन्मेषे परस्परेण व्याहतात्मकत्वेनैव, परिच्छिन्नप्रकाशप्रवृत्तिमोहजनकत्वम् । अन्यतमस्यांशतो वैकल्ये तावता अंशेन अन्यस्य अतिरिक्तलक्षणप्रदर्शनं चेत्युच्यते । तथा धातवोऽपि परस्परव्याप्तिप्रतिबन्धकाः परस्परव्याप्त्यनुग्राहकाश्च । तत्र एकतमस्यांशतः क्षये, अन्यस्य ततो विपरीतगुणस्याभिव्यक्तिर्व्याप्तिश्च संभवतीति, क्षीणदोषप्रत्यनीकगुणकर्मोन्मेषस्तत्र वृद्धदोषेणैवारभ्यते । त्रयाणां दोषाणां क्षये कथमिति चेत् सर्वावयवशः त्रयाणां क्षये सर्वथा धारणहानिर्मरणं च । अंशतः क्षये, त्रयाणां समे क्षये, यथास्वं धारणाभावेऽपि अक्षीणावयवकृतं धारणं विद्यत एव विकलम् ।

ननु क्षीणे यद्धारणाभावो नाम स रोगो गण्यते न वा ? 'विकारो धातुवैषम्यमित्यत्र वैषम्यं वृद्धिह्रासरूपमुभयात्मकम् । तदुभयं च विकारो निर्दिष्टः । विकारशब्दश्च रोगपर्यायः । ततश्च वृद्धानां दोषाणां विकारत्वं ज्वरादिविकारकर्तृत्वं च, तथा क्षीणानां दोषाणामपि विकारत्वं क्षयजविकारकर्तृत्वं च नापलपितुं शक्यते । इति चेदुच्यते । वृद्धानां दोषाणां विकारकर्तृत्वं प्रति न विप्रतिपत्तिः । क्षीणानां तु तत्र विकारव्यपदेशः न व्याध्यारंभकत्वप्रयोजकः । व्याख्यातं च तत्रैव चक्रपाणिना-स्वमानक्षीणा दोषाः किञ्चद्विकारं नजनयन्ति । क्षीणलक्षणं वैषम्यमेव परं यान्ति ।" इति । तथापि तेषामभिवर्धनेनोपक्रमणीयत्वात् दोषसाम्ये सत्येवारोग्यसिद्धेश्च, क्षीणानामपि गौणो विकारव्यपदेशः । यदि तादृशवैषम्यस्य रोग-

शब्दो मुख्यः स्यात्, तर्हि "इत्यशेषामयव्यापि यदुक्तं दोषलक्षणं" इति सर्वरोगसामान्यदोषलक्षणेषु कतिपयैस्तत्र भाव्यम् । तेषामप्यामयशब्दाभिधेयत्वस्य मुख्यस्य सत्वात्। तानि च लक्षणानि, स्रंसव्यासव्यधस्वाप—'इत्यादि प्रपंचेन कीर्तितानि सर्वाणि च यथास्वं वृद्धानामेव वातादीनां कर्माणि, न तु क्षीणानां लक्षणानि । तादृशलक्षणेषु कतिपयानामुपलंभे तत्तद्दोषाणां वृद्धानां तानि कर्माणीत्यवसेयम् ।

तथा सर्वेषां रोगाणां सम्प्राप्तिर्हि सञ्चयप्रकोपप्रसरस्थानसंश्रयव्यत्यादि क्रमेणैव दोषाणां संपद्यते । ते च संचयप्रकोपादयः वृद्धानामेव दोषाणां संभवन्ति, न तु क्षीणानामिति नेदमविदितं संप्राप्ति तत्वज्ञानाम् । सत्येवं, क्षीणदोषस्य तदात्वे जायमानप्राकृतकर्महानेर्वा न रोगव्यपदेशो मुख्यः । क्षीणानां क्षीणत्वनिवृत्तौ साम्यसंपादने चैव आरोग्यलक्षणसिद्धेः, तावत्पर्यन्तं यथास्वं दोषवर्धनस्यावश्यकत्वात् रोगवच्चिकित्सागोचरत्वमस्तीत्यतस्तत्र तेषां गौणमपि रोगशब्दं विकृतशब्दमेव वा प्रयुञ्जते ।

इयमेत्रोपपत्तिः क्षीणदोषाणामपि द्विषष्टिदोषभेदनिरूपणे प्रस्तावस्य ।

ननु क्षीणानां दोषाणां रोगारंभकत्वं साक्षादेव निबन्धकारैः प्रतिपाद्यते । तथाहि—सन्निपातज्वरे वातादिदोषाणां क्षये तस्य पृथग्लक्षणानि दोषजान्युक्तानि । यथा—

"भ्रमः पिपासा दाहश्च गौरवं शिरसोऽतिरुक् ।
वातपित्तोल्वणे विद्यार्ल्लिगं मन्दकफे ज्वरे ॥"

अत्र गौरवं शिरसो गात्रस्य वा हीनत्वेन निर्दिश्यमानस्यापि कफस्यैव कर्म, न वायोः पित्तस्य वा । तथा

"शैत्यं कासोऽरुचिस्तन्द्रा पिपासादाहरुग्व्यथाः ।
वातश्लेष्मोल्वणे व्याधौ लिंगं पित्तावरे विदुः ॥"

इति हीनेनापि पित्तेन पिपासादाहारंभकत्वं कीर्त्यते । एवमादिषु कथं समन्वय इति चेत् मिथ्या चिन्त्यते । तत्र कीर्त्यमाना त्रयोदश सन्निपातस्य भेदास्ते सर्वेऽपि वृद्धैरेव दोषैर्जायमानाः । स्वप्रमाणवृद्धानां दोषाणां तारतम्यप्रदर्शनमात्रपरं हीनत्वादिकीर्तनमत्र । न तु स्वप्रमाणक्षीणत्वोद्देशेन । अतो हीनः कीर्त्यमानोऽपि दोषस्तत्र स्वप्रमाणादधिक एवेति तत्कृतलक्षणोत्पादो न दुष्यति । "सन्निपातज्वरस्योर्ध्वं त्रयोदशविधस्य हि । प्राक् सूत्रितस्य वक्ष्यामि लक्षणं वै पृथक् पृथक् ।" इति खलु तत्र प्रतिजानीते । प्राक् सूत्रितं च "द्व्युल्वणैकोल्बणैः षट् स्युःहीनमध्याधिकैश्च षट् । समैश्चैको विकारास्ते सन्निपातास्त्रयोदशः इति तथा निर्वहति च "तैर्वृद्धैर्व्याधयः पञ्चविंशति" इति ।

ननु वातादीनां क्षयोपि प्रकोपशब्देन कीर्त्यते, व्याध्यारंभकश्च । तथाहि चरकः—" मलमुतास्ते शरीरस्याबाधकराः स्युः, तद्यथा शरीरच्छिद्रेषूपदेहाः ।···प्रकुपिताश्च वातपित्तश्लेष्माणः, ये चान्येऽपि शरीरस्योपघातायोपपद्यन्ते ।" इति । व्याख्यातं च चक्रपाणिना—'कुपिताश्चेति पदेन वातादयः सामान्येन, क्षीणा वृद्धा वा गृह्यन्ते । विकृतिमात्रं हि

वातादीनां कोप"इति। तत्सिद्ध्यति क्षीणानामप्याबाधकरत्वं कुपितत्वव्यपदेशश्चेति चेत्सत्यम्। क्षयरूपविकृतेराबाधहेतुत्वं पूर्वोक्तन्यायेन प्राकृतकर्महानौ, प्रत्यनीकगुणोन्मेषे च निमित्तभूतत्वादेव, न तु साक्षाद्व्यध्यारंभकत्वात्। स्वास्थ्यानुपलंभे उपलभ्यमानं धारणाभावादिकमपि प्रतीकार्यत्वेन विकार एवेत्यतः, तत्र निमित्तमात्रस्यापि गौणः प्रकोपशब्दव्यपदेश इत्यभ्युपगम्यते बहुप्रकरणसिद्धस्य—"कोपस्तून्मार्गगामिता' इत्यादेःतेषां कोपे तु कारणेमित्यादि प्रस्तावोक्त वातादि कोपकारणोपन्यासादिना च सिद्धेनार्थेनाव्याहतये।

"क्षयः स्थानं च वृद्धिश्च दोषाणां त्रिविधा गतिः" इत्यपि न क्षीणदोषाणां वृद्धदोषतुल्यकक्ष्यत्वेन व्याध्यारंभकत्वमभिप्रैति। दोषाणां त्रिविधा अवस्थाः इत्येव तात्पर्यात्। तत्र 'गतिः प्रकारोऽवस्था वा' इति चक्रपाणिव्याख्याऽप्यत्रानुसन्धेया।

"क्षपयेद्बृंहयेच्चापि दोषाधातुमलान् भिषक्। तावद्यावदरोगःस्यान्नरो रोगसमन्वितः।' इत्यादिना क्षीणदोषाणामुपक्रमवर्णनमपि साम्यसंपिपादयिषयैव। तदैव प्राकृतधारणसिद्धिरिति। न तु तावता वृद्धदोषवत् साक्षाद्व्याध्यारंभकत्वं भवति क्षीणानाम्। ननु "वसाबलासक्षतसंभवानां शिरोगतानामिह सक्षयेण। क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभिताप' इति क्षयकृतो रोगोऽस्ति वर्णित इति चेत्, पूर्वोक्तन्यायेन तत्र क्षयस्य निमित्तामात्रत्वम्। न तु व्याध्यारंभकत्वम्। उद्भूतलक्षणव्याध्युन्मेषस्तु तत्र यथायथं वृद्धेन शोषपरिपोषितेन वातेन, सौम्यधातुक्षयसमुदीर्णपित्तेन, उभाभ्यां वा क्रियते। 'क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभिताप' इत्यत्र प्रवृत्तशब्दो निपुणं प्रयुज्यते। न खलु क्षयकृत इति। अत एव तच्चिकित्सिते क्षीणधातुवर्धनं विवृण्वता "पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नमधुरैः शृतं" इत्युपदिश्यते वृद्धदोषचिकित्सा च।

न नु "कुर्वंते हि रुचिं दोषा विपरीतसमानयोः। वृद्धाः क्षीणाश्च" इति क्षीणदोषाणां स्वसमाने रुचिकर्तृत्वं साक्षादेवातिस्पष्टमुच्यमानं कथमपलपनीयमिति चेदुच्यते। अत्र भूयिष्ठमिति वाक्यशेषं प्रयुञ्जानो लक्षणस्यास्यासार्वत्रिकत्वं अभिप्रैति वाग्भटाचार्यः। न हि यत्र यत्र वायुर्वृद्धः, तत्र सर्वत्र मधुरस्निग्धाभिप्रायता व्यवस्थिता। व्याख्यातं चारुणदत्तेन—'भूयिष्ठमित्यनेन प्रायिकत्वमस्या अवस्थाया इतिदर्शयति। तेन दोषगतिवैचित्र्यादन्यथापि क्वचिद्भवति' इति। हेमाद्रिश्चाह —"भूयिष्ठं प्रायेण। कदाचिदन्यथापि रुचिद्वेषौ भवतः। तथा वक्ष्यति सामे वायौ "कटुरूक्षाभिलाषेण तद्विधोपशयेन च" इत्यादि। तथा च नेदं व्यवस्थितं वृद्धानां क्षीणानां वा दोषाणां कर्म। ननु यत्र संभवस्तत्र क्षीणदोषाणां कार्मुकत्वमंगीकर्तव्यमेवेति चेत्, न हीयता हीयते किञ्चित्। न ह्येतावता क्षीणदोषाणां व्याध्यारंभकत्वं सिद्ध्यति। दोषेषु क्षीणेषु कुतो नाम समाने रुचिरुदेतीति तत्वं पुनरत्र विमर्शनीयम्। यदा हि वायोः क्षयः तदा तत्समानेषु रूक्षकषायादिषु रुचिरापद्यते। तद्विपरीतेषु स्निग्धमधुरादिषु द्वेषश्च। न ह्येतत्सर्वथा वायोः कर्म भवितुमर्हति। वायोः रौक्ष्यादिगुणस्वलक्षणस्य तद्विपरीतस्नेहादिष्वेव रुच्युत्पादकत्वस्यौचित्यात्। वायोः क्षये तद्विपरीतगुणानां स्नेहादीनां प्रतिबन्धकहानेः स्नेहादिलक्षणश्लेष्माद्युन्मेषात् स्वलक्षणोन्मेषो भवति, घटीयन्त्रनियत्या। रूक्षकषायाद्यभिप्रायत्वं वृद्धस्य श्लेष्मणः कर्म। क्षीणस्तु वायुस्तत्र निमित्तं च भवत्येव।

अतःक्षीणलक्षणे तथा कीर्तितम् । "लिंगं क्षीणेऽनिलेऽङ्गस्य सादः" इत्यादिषु 'श्लेष्मवृद्ध्युक्तामयसंभवः' इत्यादिसन्दर्भश्च तदैव स्वरसतः संगच्छन्ते ।

एवमन्यत्रापि क्षीणलक्षणे प्रत्यनीकगुणोन्मेषात् यथास्वं तल्लक्षणानां दोषाणां वृद्ध्यैव लिंगानां दर्शनं स्वेषाम् ।

ननु स्वमानक्षीणदोषगणने त्रयाणां दोषाणां क्षयलक्षणे सन्निपाते, एकतमस्यापि स्वमानवृद्धत्वाभावात् स्वलक्षणाविष्कारासंभवे जायमानलक्षणानां क्षीणा एव दोषा आरंभका इति चेत्, तत्र धारणाभावो धारणवैकल्यं वा भवति, दोषक्षयस्य कार्त्स्न्ये अवयवशो वा क्रमेण । न तु ज्वरादिर्व्याधिः । एतादृशसन्निपातस्य तु परिगणितस्यापि विरलत्वमेव । सर्वात्मना संभवे तु धारणस्य सर्वथा विहतेर्मरणमेव । अत एव चोक्तं "त एव दोषा विषमा वधाय...क्षयाद्धिवृद्धेरिव रक्षणीयाः ।" इत्यादि ।

एतेन यदि वृद्धा एव दोषा रोगकरास्तर्हि क्षीणानां वर्धने को हेतुः ? तेषामकिञ्चित्करत्वादित्यादि वादाः प्रत्युक्ताः । साम्यस्यैवारोग्यनिर्वर्तकत्वात् । क्षयस्य वृद्धेर्वा तद्वैरूप्यात्, परिहरणीयत्वाच्च ।

ननु "स्रंसनं त्रीनपि मलान् बस्तिपक्वाशयाश्रितान् । प्रक्षीणकफपित्तस्य त्रिकपृष्ठकटीग्रहे" इति वदन् वाग्भटः क्षीणकफपित्तकृतं त्रिकपृष्ठकटीग्रहं स्पष्टमाचष्ट इति चेत्; भ्रान्तिरेव । नहि तत्र त्रिकपृष्ठकटीग्रहः कफपित्तकृत इत्युच्यते । तद्धि पद्यं ज्वरचिकित्सिते निरूहानुवासनयोग्यसन्दर्भप्रतिपादनप्रस्तावे पठ्यते । श्रूयतां, तत्र पूर्वोत्तरपद्यशेषसहितम् । "निरूहस्तु बलं वह्निं विज्वरत्वं मुदं रुचिम् । दोषे युक्तः करोत्याशु पक्वे पक्वाशयं गते । पित्तं वा कफपित्तं वा पक्वाशयगतं हरेत् । स्रंसनम्, त्रीनपि मलान्बस्तिः पक्वाशयाश्रयान् । इति निरूहावसरमुपवर्ण्य अनुवासनावसरमाह—"प्रक्षीणकफपित्तस्यत्रिकपृष्ठकटीग्रहे । दीप्ताग्नेर्बद्धशकृतः प्रयुञ्जीतानुवासनम् ।" इति । ज्वरे आमाद्यवस्थानुसारेण यथायथं लंघनादिक्रममुपदिश्य, वमनविरेचनादिकमप्युक्त्वा तैरुपायैः क्रमेण कफपित्तयोः निर्जितयोः, शोधनादिना वृद्ध्यंशपरिहारेण प्रायः प्रकृतिं गमिते जीर्णज्वरे संभवानुसारेण वातचिकित्साकालत्वं अभिप्रेत्य, तत्र बस्तिप्राधान्यं प्रतिपिपादयिषुःप्रक्षीणकफपित्तस्य (शोधनशमनोपायैः क्षपितकफपित्तस्य पुरुषस्य) बद्धशकृतः त्रिकपृष्ठकटीग्रहे (अनिर्हृतवातदोषस्य तल्लक्षणलक्षितस्य प्रतिक्रियार्थं तस्यामवस्थायां) दीप्ताग्नेः(मन्दे वह्नौ अनुवासनानौचित्यात्) अनुवासनं प्रयुञ्जीत इति प्राकरणिकोऽर्थः । न खलु तत्र बद्धशकृत्त्वं त्रिकपृष्ठकटीग्रहश्च क्षीणकफपित्तकर्म, किन्तु वायोरेवेति नेदमज्ञातार्थबोधनम् ।

तथा च वृद्धैरेव दोषैः रोगा आरभ्यन्ते, क्षीणास्तु यथायथं तत्र निमित्तभूता अपि न तु वृद्धदोषा इव रोगोत्पादने समर्था इति ।

एतादृशा हि विषया भिषजां ज्ञानविद्यावयोऽभ्यासादिमहितानां मिथः संभूय संभाषयैवाध्यवसेयाः, न तु एतादृशेन लेखोपन्यासादिमात्रेणेति मे नम्रस्य क्षमामभ्यर्थयमानस्याभिसन्धिः ॥

Sciences in Ancient India

PUBLIC HEALTH

By

Dr. A. Lakshmipathi, B. A. M. B. & C. M., Bishagratna,
43, Harris Road, Madras—2.

India is a very ancient land with a great civilization. The excavations of the underground drainage system in the streets of Mohan-jo-dharo, an ancient city dug out in the North of Sind, which relate to the pre-historic times, show the extent to which sanitation through the State Organisation progressed in India even in those days. The drainage channels in the streets were built of strong masonry work and these channels were regularly connected by pipes with the outlets from the bath rooms, inside the buildings.

In Charak Samhita-a text book on Ayurveda, the prevalence of epidemic diseases due to contamination of food, water and air and to direct contact with infected persons, was clearly described.

"Sprisya Abhyavahaara Doshaat.

Methods of preventing these epidemics were also described in detail in this work, which was compiled more than two thousand years ago. The influence of the seasons on the prevalence of epidemics was carefully recorded.

The Ayurvedists claim that the greatest merit of Ayurveda lies in the hygienic principles that it teaches.

These principles were religiously enforced by the code of laws called Dharma-Rules of good conduct.

In the Artha Sastra of Koutilya, we find that very heavy fines were imposed upon those who disobeyed the sanitary laws.

"Whoever throws dirt in the street shall be punished with a fine of one-eighth of a pana-a gold coin, whoever causes mire or water to collect in the street shall be fined one-fourth of a pana, whoever commits the above offences in the Raaja Veethi (public road) shall be punished with double the above fines, whoever polutes places of pilgrimage, reservoirs of water, temples and royal buildings shall be punished with fines rising from one pana and upwards according to the nature of the offences."

"When a person deliberately sells rotten flesh, he shall have his hand cut off or shall pay a fine of 900 panas."

So rigorous were the laws of public Health.

There were hospitals and places for protection of men and animals on the Trunk Roads situated at a distance of half a Kros (i. e.) one and a quarter mile. The aged, the poor and the helpless and pregnant women and children were looked after by the state. The rich people competed with each other in constructing choultries, tanks, wells and temples for the use of travellers on high roads. The state took great care in growing, preserving and dispensing medicinal herbs. Cruelty to animals and birds was severely punished. Heavy fines were imposed upon those, who cut off the tender sprouts of fruit trees and branches of flowering and shady plants in the parks.

Systematic sweeping of the streets, lanes and back-yards and sprinkling cow-dung water freely over the whole area, with a religious fervour and decorating the streets with floral designs with chunam powder and rice flour (Muggu) in the orthodox way, made the villages clean and beautiful.

What is health ? The World Organisation defined health as a state of complete physical, mental and social well-being and not merely absence of disease or informity. Even this definition of Health of W. H. O. falls short of the definition of Positive Health given in Ayurveda two thousand years ago. The definition of health according to Ayurveda includes, not only physical, mental and social welfare, according to the definition of W H.O but also moral and spiritual welfare. Susruta defines a healthy man as follows:

Samadoshaa Samaagnischa
Samadhaatu Malakriyaah,
Prasanna Aatmendriyah Manaah
Swasta Ityabheedheeyate,

One should have his senses, mind and soul clear and bright-prasanna Aatma Indriya Manaah.

In addition to the health of the physical body, Positive Health should include, the normal condition, in the mental and spiritual planes as well. The importance of a peaceful and contended mind cannot be properly understood by materialists who do not believe in the existence of the soul, as the owner and director of the body. Happiness or misery is not to the body but to the whole man (Purusha) -an integration of the body, senses, mind and soul. The Hindu Civilization stands by Ayurveda, which insists on this basic spiritual training It does not accept atheism.

Tatra Buddhimaan Nasstikya
Buddhim Jahyaat — Charaka 1, 11.

Charaka describes a healthy man as follows:

Naro hitaahaara vihaarasevee
Sameekahyskaaree vishayeshu asaktah
Daata samah satyaparah kshamavaan
Aaptopaseveecha bhavaatyarogah.

One who has suitable 'food and habits (Hitaahaar Vihaara Sevee), who acts always after proper reflexion (Sameekshyakaaree), who does not entangle himself in the objects of his senses (Vishayeshu asaktah), who is charitable Daata i. e. who is not greedy, who behaves equally towards all living creatures (Samaah), who is devoted to truth (Sathya parah), who is forgiving (Kshamavaan) and who is contended with what he has (Aaptopasevee). Such a man is nev er subject to any disease (Charaka Viman-4)

Beware of the Industrial Civilization. If today the Western Nations appear to be in advance, the advancement is not real. There is no mental peace. Jealousy, anxiety, greed, discontentment and fear of war are dreadful diseases in themselves. Although half-starved and ignorant, the masses of people in India are happier on the whole, than the civilized people of the West.

Alexis Carrel, who was famous as a great scientist says,

"The growth of Indian Civilization is leading the Western Nations towards their downfall. The sons of the rich in America, to-day, possess wealth, without having had to earn it. Wealth is just as dangerous to health as poverty. Modern Civilization with the comfort, soft living, hospitals, physicians, nurses and sanitary fittings has kept alive many human beings of poor quality. These weaklings and their descendants-Alexis Carrell says-contribute in America, in a large measure, to the enfeeblement of the white races. He says, that they are witnessing the physical, moral, intellectual and social failure. They are now realising that they have been living under a delusion. They have began to understand that they are decaying when compared to the hardy races."

(Man the Unknown. Page 198)

In the place of infective diseases, degenerative diseases such as softening of the brain, diabetes, liver, heart and kidney diseases are now cropping up. It is easy to conjuncture that the premature wearing out of the modern man is due to mental worries, lack of economic security, over work, absence of physical and moral descipline and excesses of all sorts without self-control.

Body Building is Nation Building. All schools in the country should primarily be schools of physical education where all children should be first taught how to build up a strong and beautiful body.

Susruta says,

Saktivantan cha Evan ghaatwa,
Yadha Varnam Vidyaam Graahyet.

First see that the child is strong and then initiate the child in education suitable to the tradition and status of the family and to the capacity of the child to grasp.

The importance of physical education in promoting the Positive Health of the Nation should be sufficiently recognised. The aim of Vyaayaam-physical culture in India is not merely to develop the brute strength of the body, but also to promote self control. The system of practising Aasanaas affords great opportunities for both.

The revival of the old Talimkhanas (Akhadaas) and the opening of new ones, the utilisation of the physical training experts (Ustaads) and Masseure-Samvaahakaas are urgently needed for the promotion of positive Health of the Nation.

The modern experts who do not know these traditions are loud in their public utterances that Ayurveda has no hygiene at all and that India should learn everything from the West. Ignorance cannot go further.

The rules of health (Swastha Vrittam) and good conduct (Sadvrittam) should be taught to the child in the cradle, through the lullaby songs as in ancient days in India. Regular health education should begin in the elementary schools and not in the medical colleges.

There is a great need for a re-orientation of the plans for promoting the public health of the Nation. The present system of dividing the medical and health departments into water-tight compartments has failed to produce the desired results. There should be a comprehensive state health organisation, where medical practitioners of all systems and health officers of all grades, should work together with the co-operation of school teachers, physical training experts, (Ustaads, Masseurs (Samvaahakas), Nurses and Midwives (Daayis), in order to make the people develop ideas of perfect cleanliness, body building, self-control (Indriya Jayam), and self reliance (Aatma Viswassam), self sacrifice (Aatma Tyaagam), peace (Shanti) and contentment. People should depend on themselves and not on the doctors for the maintenance of a robust health of the body and the mind.

Modern advances in Medical Sciences or in any department of knowledge should be integrated into the indigenous methods wherever possible. The village Vaidya who is the custodian of the health of the masses of people in the rural India, should be trained in the most up-to-date methods of firs Aid, Rural Sanitation, Maternity and Child Welfare.

मलेरिया के लिये कुनीनकी जगह

एल्स्टो पिल्स

(सप्तपर्णवटी)

यह गोलियां सप्तपर्ण, कालमेघ, कुटकी, कुचलात्वक आदि के घनसत्वों से तैयार की हैं। सप्तपर्ण (Alstonia Scholaris) के लिये डीमक वोल्युम २ पृ. ३८७–८८ पर लिखा है कि इसमें कुनीन जैसा डीटेन नामक सत्व है जो मलेरिया, शीतज्वर, विषमज्वर, आदि में अत्यन्त उपयोगी है। पब्लिक होस्पीटल और खानगी, दवाखाने में डाक्टरों ने इस्तेमाल करके देखा है कि परदेश से आने वाले कुनीन सल्फ से यह दवा हजार गुनी अच्छी है कालमेघ, कुटकी आदि भी बुखार में अत्यन्त लाभदायक हैं। ६ से १२ गोली देने से बखार उतर जाता है। कुनीन की तरह बहिरापन आदि नहीं होता।

कीमत ४२ गोली ०॥= तो० १० (गोली ४५० लगभग) रु० ३–८–०

ऊंझा फार्मेसी लि०, ऊंझा (गुजरात), जबलपुर (मध्य प्रदेश)

ROLE OF CORALLACARPUS EPIGEOUS, C. B. C. (PATALGARUDI) ON MALARIAL PARASITES.

By Shri Antu Bhai Vaidya, Bombay.

Name :

SANSKRIT :— Patalgaruddi, Nahi, Katwnahi, Chhilhinda, Mahamula, Vatsadini, Somavalli, Tickatanga, Mochakbhinda, Takhari, Sonparni, Garudi, Dirghakanda, Mahabala, Dirghavalli, Drulata.

HINDI :— Akashganddala, Rakasganddha.

GUJRATI : Kadvinai, Mahikunda.

MARATHI :— Akashgarunda.

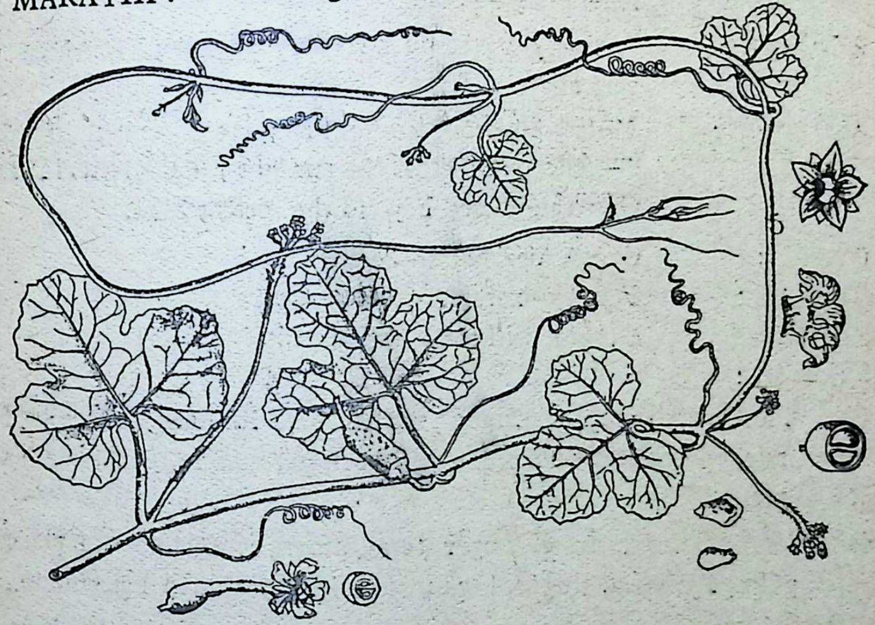

Natural Order : Cucurbitaceae.

Genus : CORALLACARPUS WELW.

Description : It is a climbing perennial herb.

ROOT : Large ; yellowish—white ; turnip-shape and marked externally with circular rings.

STEM : Slender, glabrous and grooved ; Tendrits ; Slender ; Simple and glabrous.

LEAVES : Simple, 2 in. diametre, 3-5 lobed cordate, PETIOLES, 1 in. long, glabrous, BASE-deeply corelate, MARGIN-irregularly denate and sinuous ; SURFACE—Roughly hairy ; COLOUR—Light green above and paler beneath ; VENETION—Multicostate.

Inflorscence : Simple.

Flowers : Monoecius, minute.

(Male :—Crowded at the apex of a long straight stiff glabrous pudncle, small 1½—2 in.; 5—15 at the apex, FEMALE—usually solitary 1¼—1 in.; stout, glabrous, shortly pedicelled, Calyx & Corolla as male).

CALYX ; Erect, distinct, subalate, TUBE—hairy, broadly campanulate ; LOBES—5, short ; TEETH minute.

COROLLA : Greenish yellow, 5 partite ; SEGMENTS—1 mm. long, ovate—oblong.

STAMENS : 3, free, inserted on a large calyx tube; FILAMENTS-very short.

ANTHERS : Yellow, glabrous and entire ; one 1—celled, the other 2—celled, CELLS—straight ; CONNECTIVES—Green produced beyond the cells ; bifid.

OVARY : Ovoid, beaked, 2—3celled,

OVULES : Few, horizontal.

STYLE : Straight without a based disk.

STIGMA : 3—4 lobed.

Fruits : Fleshy, stalked, 3/8 in. long ; BEAK—1/4 in. long ; ellipsoid, rostrate, operculately dehiscent, scarlet in the middle; Beak and base—green.

Seeds : More than six, more longer than broad, simple in orange colour pulp ; Pyriform, turgid, broan with whitish corded margin.

Etymology : Cordliocarpus (CORALLA—CARPUS) is derived from the Green word "Corallas" meaning the petal-whoral of the flower, which indicates the distinguishing character of the flower.

Source : It is considered that the source of this plant is Egypt which arrived in India sometime in 1600 B.C.

Habitat : Hills, mountains, and plateau ranging between 5000 to 7000 ft. elevation.

Distribution : Gujerat, Rajputana, Sind, Deccan and Ceylon.

Flowering Season : June to September.

Part used : Root.

Doses : (1) One drachum in 24 hours (powder)
(2) One to two ounce in 24 hours (Arka)

Conception of Properties :

(a) AYURVEDIC : Taste (rasa)-Sweet, bitter (sub-acidic); POTENCY (Veerya)—Cooling ; PROPERTIES (Guna)—Emetic alexipharmic anthelmint ; laxative; and alteralive, END PRODUCT (Vipak)—Sweet, SPECIFIC ACTION—useful in dysentery, rheumatism, mucous enteritis, DOSH REMOVER—Vata—Peeth.

(b) ALLOPATHIC : The root of this creeper is said to possess alternative and laxative properties. It is usually given in syphilitic rheumatism and later stages of dysentery.

Preparations :

(a) AYURVEDIC : The renowned official preparation is 'PATAL-GURDYARKA' which is considered to be most useful in Rheumatic diseases of any lesion. Generally it is used as an Catalytic agent in various official preparations by Ayurvedic physicians.

(b) ALLOPATHIC : It is not included in the B.P. and U.S.P. But in certain section of allopathic practitioners it is used externally for choronic rheumatism. It is made into a LINIMENT with Cumin seed, onion and caster oil.

Chemical Constituents : The root contains a bitter active principle allied to 'BRYONIN'.

Plant Pathology : Usually Rot-type of disease is found in the young shoot of the plant.

Further Reading :

(1) "Ainslie remarks that the Vytaians hold it in great estimation, and prescribe it in the later stages of dysentery, and old venereal complaints.

(2) In the Deccan and in Mysore, the root has repute as a remedy for snake bite, it is administrated internally, and applied to the bitten part.

(3) The root is useless in the antidoted treatment of snake-bite. MHASKAR-CAVIS".

Conclusive Notes : The native of Gujerat, especially the inhabitants living in the vicinity of Porbunder consider the **root of this plant a sheet anchor for dysentery and any type of pyrexia.** It contains the active principals in destroying the malarial parasites. It is usually administrated internally in powder with piper lingum and piper nigrum.

The mode of action is unknown. But it is extensively used by the Ayurvedic and allopathic practitioners of Gujerat for Pyrexia ;

"छिलिहिण्डो महामूलो पातालगरुडाह्‌वयः ।
छिलिहिन्डः परं वृष्यः कफघ्नः पवनाह्‌वयः ॥"--भावप्रकाश
"वत्सादनी तु मधुरा पितदाहास्रदोषनुत् ।
वृष्या सन्तर्पणीरुच्या विषदोषविनाशिनी ॥"—राजनिघण्टु
"पातालगरूडीजोऽर्को वृष्यो वातगदापहः"।

Bibliography :

(1) The dictionary of economic products of India by J. Watt. Vol. II, Page 533.
(2) The Flora of British India by Hooker Vol. II Page 628.
(3) The Poisonous plants of Bombay by Surgeon Major K R. KIRTIKAR, F.L.S. Vol. II Page 482.
(4) The Indian Medicinal Plants by Kirtikar & Basu, Vol.II Page 1166.
(5) The Indigenous drugs of India by Co. L. Chopra, Page 487.
(6) Bhavaprakash Part II.
(7) Rajnighantoo.
(8) Nighantoo Ratnakar.

* * *

प्राचीन चिकित्सापद्धति बनाम आधुनिक चिकित्सापद्धति

राजवैद्य प्राणाचार्य कविराज डा० श्री प्रभाकरचटर्जी एम० ए०, डि० एस-सि०,
आयुर्वेदबृहस्पति

वैदिक युग में यौगिक औषधियों का व्यवहार विशेषरूप से प्रचलित नहीं था। यौगिक औषधियों (विभिन्न द्रव्यों के संयोग से प्रस्तुत) के बदले मन्त्र, बलि, होम और पञ्चकर्म का व्यवहार व्याधियों के प्रतिकाररूप में होता था। पञ्चकर्म अर्थात् वात में बस्ति, पित्त में विरेचन कफ में वमन, शिरोरोग में नस्य एवं सर्वाङ्ग की विबद्धता में स्वेद का प्रयोग चलता था। अर्थात् नाभि के निम्नभाग में किसी प्रकार की बीमारी होने पर गुह्यद्वार अथवा प्रस्रावद्वार में डूश देकर उसकी चिकित्सा की जाती थी। नाभि के ऊपर और फुफ्फुस के नीचे भाग की किसी जगह में रोग होने पर विरेचन द्वारा चिकित्सा की जाती थी। फुफ्फुस के ऊपरी भाग में किसी भी प्रकार का रोग होने पर वमन प्रयोग द्वारा चिकित्सा की जाती थी। ऊर्ध्वजत्रुगत विभिन्न प्रकार के रोग अर्थात् मुख, नाक, गला और माथे के विभिन्न प्रकार के रोगों में नस्य प्रयोगद्वारा चिकित्सा की जाती थी। शरीर की विभिन्न प्रकार की विबद्धता व अभिघातजनित व्याधियों के निवारण के लिये स्वेद प्रयोग किया जाता था। व्याधि उत्कट और दीर्घकाल तक स्थायी होने पर बड़े बड़े यज्ञ, पूजा, बलि, होम और मन्त्रपाठ प्रभृति प्रायश्चित्तमूलक दैविक कार्य किये जाते थे। किन्तु कालक्रम के अनुसार लोकसंख्या में वृद्धि, अमिताचार एवं सर्वोपरि काल के प्रभाव से जनसमाज में अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होने लगीं। फिर पञ्चकर्म, जप, पूजा, होम और मन्त्र की सहायता से व्याधियां अच्छी नहीं होने लगीं। तब ऋषिगण ने एक साथ मिलकर आयुर्वेदशास्त्र का प्रणयन कर बहुत सी औषधियों से अनेक प्रकर के घृत, तैल, आसव, अरिष्ट, चूर्ण, मोदक, पाचन, वटिका आदि प्रस्तुत करके रोग को अच्छा करने की व्यवस्था की थी। किन्तु कालक्रम से व्याधिसमूह की उत्पत्ति के कारण चिकित्सकों द्वारा आविष्कृत औषधियां प्रभावहीन हो गयीं, बौद्धधर्मानुशासन के फलस्वरूप राजा की आज्ञानुसार धन्वन्तरि सम्प्रदाय वालों का स्वत्वाधिकार विलुप्त हो जाने से. रसेश्वर दर्शन सम्प्रदाय वाले योगीगण ब्राह्मणों द्वारा रसौषधियों का आविष्कार हुआ था। सुतरां देखा जाता है कि मानव समाज में विभिन्न समय में विभिन्न प्रकार के प्रयोजन के अनुसार हर तरह की औषधि और हर तरह की चिकित्सापद्धति का आविर्भाव होता आ रहा है। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है।

रस-चिकित्सा का प्रभाव

अतीतकाल में भारत का चिकित्सासम्प्रदाय दो प्रधान दलों में बँटा हुआ था। एक दल का नाम आत्रेय सम्प्रदाय (School of Physicians) एवं दूसरे दल का नाम धन्वन्तरि सम्प्रदाय (School of Surgeons) था । आत्रेय सम्प्रदायपति का नाम चरक और धन्यन्तरि सम्प्रदायपति का नाम सुश्रुत था । इन दोनों सम्प्रदायों के चिकित्सकगणों ने रोगों के लक्षणों को विशेष रूप से विचार कर कई रोगों को असाध्य समझ उसकी चिकित्साविधि को लिपिबद्ध नहीं किया एवं बहुत से निषेध वाक्यों द्वारा अपने अनुवर्ती चिकित्सकों को इन सब रोगों की चिकित्सा करने को भी मना कर दिया। किन्तु रससिद्ध योगीगण ने निषेध वाक्यों को अमान्य बतला कर अपनी रसचिकित्सा की गवेषणा द्वारा बहुत तरह की रसौषधियों का आविष्कार कर उनका प्रयोग किया और जो रोग असाध्य समझे जाते थे, उनमें उन रसौषधियों का प्रयोग करके आशातीत सफलता प्राप्त की । किन्तु अभिशाप वाक्यों का ऐसा ही प्रभाव है कि ११०० ईस्वी अर्थात् चक्रपाणिदत्त लिखित "चक्रदत्तसंहिता" प्रणीत होने के आगे तक, इन सब औषधियों का प्रयोग आत्रेय और धन्वन्तरि सम्प्रदाय वाले चिकित्सकों ने नहीं किया । किन्तु द्रव्य की अन्तर्निहित शक्ति की उपेक्षा नहीं की जा सकती । "फलेन परिचीयते वृक्षः" अर्थात् फल की उपादेयता ही वृक्ष का प्रकृष्ट परिचय है । रसौषधियों की अन्तर्निहित शक्ति के कारण ही आज यह उभय सम्प्रदाय वाले चिकित्सकों का प्रधान अवलम्बन स्वरूप है ।

बौद्धयुग के 'नित्यनाथ तथा नागार्जुन जैसे प्रमुख भारतीय योगीगणों ने इस अनुसन्धान कार्य को शुरू करके रासायनिक गवेषणा द्वारा उन्मुक्त किया । वर्तमान समय में पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिकों ने उसी उन्मुक्त द्वार के द्वारा रासायनिक गवेषणा-गृह में प्रवेश कर अनेक प्रकार की रत्नराशियों को लोगों के समक्ष लाना शुरू किया है । और हम लोग, उसी सिद्ध ब्राह्मण सम्प्रदाय के अधम उत्तराधिकारीगण, निश्चेष्ट बैठे हुए हैं । भला इससे बढ़कर और अधिक दुःख या परिताप क्या हो सकता है ? पाश्चात्य जगत के केमोथेरापि प्रसूत गन्धक और सोमल निर्मित जिस एन्टीवायोटिक्स की उज्ज्वलता से आज सारा संसार उद्भासित है, उसकी उत्पत्ति हमारे भारतवर्ष में बहुत पहले हो चुकी थी । विश्वविख्यात रासायनिक डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय महोदय की विलायत यात्रा के आगे तक जो योरोपीयगण भारतीय रसायनशास्त्र के अतिसाधारण संमिश्रण कज्जली (पारद और गन्धक के संमिश्रण से कज्जली तैयार होती है) के स्वरूप से परिचित नहीं थे केवल ५० वर्ष की चेष्टा से वे रसायन विज्ञान में क्या उन्नति कर सकते हैं ? भारत के रासायनिकों ने जिन रसायन सूत्रों को रचा था, उसी का योरोपीयगण फल प्राप्त कर रहे हैं । जो सब Antibiotics और Sulphonamides सम्भूत योगावली समग्र पृथ्वी के औषधीय बाजारों पर छा गयी है, उनके मूल सूत्र

आयुर्वेदीय रसार्णव में निहित थे। आचार्य डा० प्रफुल्लचन्द्रराय और आचार्य डा० वृजेन्द्रनाथ शील "हिन्दू रसायनशास्त्र के इतिहास" में यह विषय विस्तृतभाव से वर्णन किये हैं।

अथर्ववेद के ऋषि ज्वर होने पर सप्ताहकाल तक कोई दवा करते थे, बल्कि उसकी जगह लंघन की व्यवस्था करते थे। सप्ताह काल लंघन के कारण शरीरस्थ दोष, धातु और मल का परिपाक होकर शरीर निरोम हो जाने से, शरीर औषध ग्रहण करने के उपयुक्त हो जाता है एवं उसके बाद औषध प्रयुक्त होने पर ज्वर निराकृत होकर अपौनर्भव हो जाता है।

भारतवर्ष के सर्वप्रथम आयुर्वेद संहिताकार महर्षि अग्निवेश ने कहा था—

"हेतौ लिङ्गे प्रशमने रोगानामपुनर्भवे।
ज्ञानं चतुर्विधं यस्य स राजार्ह भिषग्तमः॥"

अर्थात् प्रत्येक रोगों के कारण, लक्षण, प्रशमन का उपाय और जिन सब उपायों का अवलम्बन करने से रोग की फिर उत्पत्ति नहीं होती उन सब विषयों का जिन्हें सम्यक् ज्ञान है, उन्हें ही यथार्थ में राजवैद्य कहा जा सकता है।

चिकित्साविज्ञान की अवनति और एण्टीवायोटिक्स का क्रमवर्द्धमान प्रभाव

बौद्धयुग के चरम विकास के पहले तक ज्वर चिकित्सा विषय में आत्रेय सम्प्रदायवालों का अनुशासन भारतवर्ष में सुप्रचलित था। उसके बाद वर्तमान युग के एण्टीवायोटिक्स प्रस्तुतकारकगणों की तरह रसतांत्रिकगणों ने भारताकाश में धूमकेत के समान आविर्भूत होकर रससिन्दूर, मृत्युञ्जयरस, महामृत्युञ्जयरस, सूचिकाभरणरस हरिताल भस्म प्रभृति सूक्ष्म धातुभस्म आविष्कार करके दुन्दुभीनाद से घोषणा की,—

"न रोगाणां न दोषाणां न पुंसाञ्च परीक्षणम्।
न देशस्य न कालस्य कार्य्यं रसचिकित्सिते॥"

अर्थात् रसचिकित्सा में दोष की सामता-निरामता, रोग, व्यक्ति, देश और काल इनके सम्बन्ध में कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं होती। ज्वर होते ही औषध खाने से कल ठीक १० बजे आफिस में उपस्थित हो सकेंगे। यह औषध "मन्त्रवत् संप्रयोक्तव्यः न मीमांस्यः कथञ्चन।" उक्त औषधियों को मन्त्रवत् प्रयोग करे, किसी भी प्रकार के विचार की आवश्यकता नहीं है। वाक्समैन और अलेक्जण्डर फ्लेमि आविष्कृत सिद्धयोगों को बङ्गदेश के एक गांव में बैठकर कोई भी डाक्टर बिना सोचे समझे "मन्त्रवत्" राम, श्याम, यदु आदि किसी भी मनुष्य पर प्रयोग करते हैं। पात्रापात्र या क्षेत्राक्षेत्र के विचार की कोई आवश्यकता नहीं है।

रसतान्त्रिकगण विगत तीन हजार वर्षों के आयुर्विज्ञान की साधना से उद्भूत निदानशास्त्र अर्थात् रोग के पूर्वरूप, रूप, उपशय, सम्प्राप्ति और पथ्यापथ्य विचार आदि वैज्ञानिक विचार बुद्धि के मूल में कुठाराघात कर द्रव्यविशेष के विशेष प्रभाव के ऊपर

निर्भरशील हुए । एवं यहीं प्राचीन वैज्ञानिक पद्धति की अग्रगति की समाप्ति हो गई ।

भारत में, विशेषभाव से बङ्गदेश में रसतान्त्रिक और आत्रेय सम्प्रदाय वाले कायचिकित्सकगणों के बीच में बहुत समय तक विवाद चल रहा था । आत्रेय सम्प्रदाय वाले बहुत दिन तक रससिद्धगणों को अपांक्तेय कर रखा था । उसके बाद ११०० ई० में चरक के विख्यात टीकाकार चक्रपाणिदत्त ने अपने चक्रदत्त–संहिता में "रसेन्द्रगुटिका" और "ताम्रयोग" नामक दो सिद्धयोगों को सन्निवेशित करके अपांक्तेय रस वैद्यगणों को पांक्तेय किया । किन्तु बङ्गदेश में यह विवाद और भी अनेक दिन प्रचलित रहा । कारण मुर्शिदाबाद के ऋषिकल्प गंगाधर कविराज रसतान्त्रिकगणों का बड़ियाल[*] बोलकर उपहास करते थे । गंगाधर शास्त्रज्ञ सिद्धपुरुष थे । वे पेटेण्ट औषध प्रयोग के विरोधी थे । विशेष विचार कर देखने से पता चलता है कि गंगाधर वास्तव में वैज्ञानिक दृष्टि वाले थे । आयुर्वेद विज्ञान के अनुसार पञ्चभूतात्मक पितृशुक और मातृशोणित के संयोग से मनुष्य उत्पन्न होता है । पञ्चविंशति तत्त्वात्मक प्रकृतिजात मनुष्य सत्त्वः, रजः और तमोगुणात्मक होता है । इस त्रिगुणात्मक जीव गुण के तारतम्यानुसार विभिन्न प्रकृतिवाले एवं सदा ही परिवर्तनशील एवं पूर्वजन्म के कर्मानुसार से विभिन्न प्रकार के भाग्य और भोग्य के अधिकारी हुआ करते हैं । अतएव जीवमात्र के ही गुण और कर्मानुसार से प्रकृति स्वतन्त्र है । इसलिए विभिन्न गुण प्रकृति विशिष्ट व्यक्ति के पक्ष में एक हीं प्रकार का प्रयोग, योग, औषध या एण्टीवायोटिक्स एक प्रकार का फल उत्पन्न नहीं कर सकता है । कार्यक्षेत्र में देखा जाता है कि राम महीने में एक दिन नहाता है, श्याम प्रतिदिन एकबार स्नान करता है और लक्ष्मण जल का कीड़ा है अर्थात् सब समय ही जल में पड़ा रहना चाहता है अर्थात् दारुण शीत में भी दिन में अनेक बार स्नान करता है । दोष, धातु, प्रकृति अर्थात् गुण के परिणाम की विभिन्नता ही एवंविध विभिन्ता का मूल कारण है । इनके उपचार अर्थात् चिकित्सा भी विभिन्न प्रकृति के होंगे । सुतरां मूल कारण के प्राधान्यवशतः ही प्रत्येक रोग की उत्पत्ति होती है एवं प्रत्येक रोगी हीं चिकित्सक के निकट एक–एक पृथक् जटिल समस्या है । एवं इस समस्या के समाधान करने का नाम चिकित्सा है । शास्त्रज्योतिः प्रकाशन, दर्शन एवं स्वकीय विवेकबुद्धि के द्वारा अनुप्राणित होकर चिकित्सा करने सें चिकित्सक का कोई अपराध नहीं होता ।

असाध्य व्याधि की चिकित्सा की व्यवस्था करने को ही वर्तमान समय में "रिसर्च" कहते हैं । रोगी की निज की, उसके रिश्तेदारों की एवं जनसाधारण की यही इच्छा रहती है कि रोगी जिन्दा रहे । रोग के याप्य होने पर भी यदि रोगी कुछ दिन जीवित रहकर संसार के असमाप्त कर्त्तव्यकर्मों को करता रहे, तो वह भी उसके लिये एवं उसके आत्मीयस्वजनों के लिये परम लाभ का विषय है । यदि रोग भावा-

---

[*] दवाई की गोली बेचने वाला ।

न्तर प्राप्त हो एवं रोगी कुछ दिन के बाद स्वस्थता लाभ करे, तो वह भी रोगी के लिये परम हर्ष का विषय है । कारण, रोग भावान्तर प्राप्त होने से रोगी के सामयिकभाव से बच जाने की आशा रहती है । आशा लेकर मनुष्य जीवित रहता है । आशाहीन के लिये जीवन नहीं है । सुतरां लौकिक दृष्टि से विचार करने पर समझा जाता है कि, जो चिकित्सापद्धति या जो औषध रोगी के जीवन काल की सीमा कम से कम कुछ दिन के लिये भी बढ़ा सकती है उसका आदर कौन नहीं करेगा ? कारण कोई भी व्यक्ति आशाशून्य होकर निष्ठुर भाग्य की परिणति के लिये अपेक्षा कर बैठे रहना नहीं चाहता । इसीलिये मनुष्य फल के क्षणस्थायित्व और भविष्य में होने वाली दुर्घटना को लक्ष्य न रखकर कैन्सर मे रेडियम एवं राजयक्ष्मा में स्ट्रेप्टोमाइसिन व्यवहार करते बिन्दुमात्र कुण्ठित नहीं होते एवं उनकी विफलता प्रत्यक्षीभूत होने पर, दूसरे प्रकार के एण्टीवायोटिक्स की खोज करने लगते हैं । मानव चरित्र की शाश्वत दुर्बलता ही स्ट्रेप्टोमाईसिन, आरोमाईसिन, क्लोरोमाईस्टीन जातीय औषधियों के आविष्कार की प्रधान प्रेरणा है । अतएव पता चलता है कि, प्राचीन शास्त्रकारगण आपाततः मधुर और परिणाम में ग्लानिकर औषध, पथ्य और अन्नपानादि के सम्पूर्ण विरोधी थे । वे चिरस्थायी सत्यसुन्दर की आविष्कृति के लिये आजीवन गवेषणा कर चले गये । एवं इसीलिये ही आपाततः मनोरम प्रयोग समस्त आविष्कारों की चेष्टा को सम्पूर्ण सफल चेष्टा बोलकर अभिहित नही किये है । किन्तु इस चिकित्सापण्य–विक्रय के युग में आयुर्वेद को बचे रहने के लिये इसकी मौलिक चिन्ताधारा में आंशिक परिवर्त्तन कर इसके परवर्त्ती रसतान्त्रिकगणों का अवलम्बित मार्ग अनुसरण कर इसके सिद्धनागार्जुनानुमोदित औषधियों का बहुत प्रचार करके प्रतियोगी चिकित्साशास्त्र के विज्ञापित औषधियों के साथ प्रतिद्वन्द्विता के क्षेत्र में उतरना होगा । इसे छोड़कर आयुर्वेद की रक्षा का और कोई उपाय नहीं है ।

आयुर्वेद के सम्बन्ध में आधुनिक लोगों के विचार

आयुर्वेद के सम्बन्ध में आधुनिक शिक्षित समाज में कोई बात उठने से ही, अर्थात् जो बृटिश स्थापित विश्वविद्यालयों से उपाधि लेकर बहुत से विषयों का स्वल्प ज्ञान प्राप्त करके ऊपरी चाल से ही (सैयद मुजतबाअली की भाषा में अपर राइस (Upper Rice) से बाजी मात करने के अभ्यस्त हैं, वे कह उठते हैं "आयुर्वेद में कुछ नहीं है, इसका कोई रिसर्च नहीं है, कोई सर्जरी नहीं है, यह अवैज्ञानिक है, असम्पूर्ण है, युगोपयोगी नहीं है, पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति ही भारत के लिये एकमात्र उपयोगी चिकित्सा पद्धति है इसके सिवाय भारतवासियों के बचने का कोई उपाय नहीं है । अगर भारतवासी रोगों से बचना चाहते हैं तो उन्हें पाश्चात्य चिकित्सा का घर घर में प्रचार करना होगा, हर नगर और एक ग्राम में अस्पताल बनाने होंगे, अस्पतालों में शय्या की सख्या बढ़ानी होगी, विदेशी औषधियों के सुलभ और सहज प्राप्ति के लिये

सर्वत्र विदेशी औषध प्रस्तुत करने के लिए बड़े बड़े कारखाने बनाने होंगे एवं भारतवासियों के रोग, औषधि व पथ्यापथ्य की विधि व्यवस्था करने के लिए विदेशों से बड़े बड़े वेतनों वाले बड़े बड़े विशेषज्ञों को लाना होगा तभी तो भारतीयों के स्वास्थ्य की उन्नति होगी। एह! आयुर्वेद भी कोई चिकित्सा है। जिसका न कोई रिसर्च, न कोई कालेज, न अस्पताल और न कुछ है। फेंक दो इन सब पुरानी बातों को विस्मृति के अतुल जल में एवं उसकी जगह पर नित्य नूतन तथ्य और चमकप्रद औषधावलि सम्बलित पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र को स्थापित करो। वेदचतुष्टयमूलक और षड्दर्शनपूत आयुर्वेदशास्त्र के स्थान पर पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र को प्रतिष्ठित करो।" विगत एकशत वर्षों से स्वार्थनिष्ठ विदेशी वणिक सम्प्रदाय व बृटिश राज्यशक्ति के विरोधी प्रचार के फलस्वरूप वर्तमान राष्ट्र के राष्ट्रपति व प्रधान मंत्री से लेकर गांव के चौकीदार तक सभी आयुर्वेद के सम्बन्ध में कम या अधिक उपर्युक्त विचार रखते हैं।

लार्ड मेकाले और आयुर्वेद

किन्तु पाश्चात्य पंडितों की धारणा आयुर्वेद के सम्बन्ध में बिलकुल विपरीत है। विगत १८३० ई० तक कलकत्ता संस्कृत कालेज में संस्कृत विद्या के अन्यान्य अंगों के साथ आयुर्वेद की भी पढ़ाई होती थी। भारत सरकार के शिक्षा विषय के उस समय के परामर्शदाता लार्ड मेकाले ने ३३, चौरंगी, कलकत्ता, के दफ्तर से परामर्श दिया, "अब से संस्कृत कालेज में आयुर्वेद नहीं पढ़ाया जायगा और आयुर्वेद के स्थान पर कलकत्ता में पूर्णांग पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा देने के लिये मेडिकल कालेज की स्थापना की जायेगी।" कलकत्ता एशियाटिक सोसायटी के रेकार्ड से पता चलता है कि लार्ड मेकाले जब तक कलकत्ता में रहे उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा। यहां की आबहवा को वे सहन नहीं कर सके। इसके अलावा सब प्रकार की भारतीय शिक्षा-दीक्षा और संस्कृति के विषय में उनके तीव्र विचारों से प्रायः सभी परिचित हैं। भारत के दुर्भाग्य अथवा सौभाग्य से जो भी कहिये यही एक ऐसा व्यक्ति था जिसने संस्कृत के माध्यम से शिक्षा देने की पद्धति उठा दी और उसके बदले में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने की पद्धति चला दी। ग्रीष्मप्रधान कलकत्ता में विभिन्न प्रकार के रोगों को भोग कर वे इस देश की सब तरह की संस्कृति के विरुद्ध हो गये।[१] अवश्य राजनैतिक उद्देश्य ने ही उसे इन सब कार्यों की अधिकतर प्रेरणा प्रदान की थी। इस व्यक्ति की इच्छा के अनुसार ही सन् १८३५ ई० में आयुर्वेद शास्त्र का पठन

---

[१] "We have our share of the miseries of life in this country; we are annually baked four months, boiled four months more and allowed the remaining four to become cool, if we can. Insects and undertakers are the only living creatures which seem to enjoy this climate." —Lord Macaulay

पाठन संस्कृत कालेज में हमेशा के लिये बन्द हो गया और उसके स्थान पर कलकत्ता मेडिकल कालेज की स्थापना हुई। उस समय के संस्कृत कालेज के अंग्रेज़ अध्यक्ष ने उस समय की भारत सरकार को जो स्मारक लिपि प्रदान की थी, वह विशेष सराहनीय है। उसने लिखा था “आयुर्वेदशास्त्र एक उपादेय चिकित्साशास्त्र है। वर्तमान संसार में इसके समान उन्नत चिकित्साशास्त्र दूसरा नजर नहीं आता। यहां के वैद्यगण अतिशय उच्च शिक्षित एवं तीक्ष्ण बुद्धि सम्पन्न हैं। आयुर्वेद के अतिरिक्त भी बहुत से विषयों के ये मर्मज्ञ हैं। मेरे खुद के रोगों में इनकी चिकित्सा से चामत्कारिक लाभ हुआ है। मेरी राय में भारतीयों की चिकित्सा आयुर्वेद के द्वारा होना आवश्यक है। एवं इस देश में आयुर्वेद चिकित्साशास्त्र की शिक्षा देने के लिये कालेज स्थापित करना उचित है। इस देश के चिकित्साशास्त्रों में जिन विषयों की कमी है, पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र में से उन विषयों को लेकर एक पूर्णाङ्ग आयुर्वेदीय विद्यालय स्थापित करना चाहिए। एवं इस कालेज में पाश्चात्य शस्त्र–चिकित्सा, प्रसूतितन्त्र और अस्पताल परिचालना की नियमावली आदि विषयों की शिक्षा देनी चाहिए। आयुर्वेद के पठन-पाठन को एकदम बन्द करना मैं अत्यन्त गर्हित काम समझता हूँ। कारण देशी चिकित्सा से भारत के चिकित्सकगण अतिदुरूह रोगों को भी कम खर्च में अतिशय दक्षता के साथ आरोग्य कर देते हैं। अतः इस चिकित्साशास्त्र के पतन को मैं समीचीन नहीं समझता। वरंच यूरोपीय प्रथानुयायी अस्पताल खोल कर उसके साथ देशी चिकित्सा विद्या की पूर्णाङ्ग शिक्षा की व्यवस्था करना उचित है।” उक्त विदेशी पण्डित के सारगर्भित उपदेश को उस समय के राष्ट्रकर्णधारों ने नहीं सुना। १८३५ ई० में उन्होंने कलकत्ता मेडिकल कालेज की स्थापना की। उसके बाद आयुर्वेद के स्वनामधन्य अध्यापक मधुसूदन गुप्त के द्वारा मेडिकल कालेज में लाश को चिरवा कर कलकत्ता फोर्टविलियम से तोपध्वनि की गई। एवं उस तोपध्वनि के साथ ही आयुर्वेद के निधन-यज्ञ की पूर्णाहुति प्रदान की गई। इस दिन से ही बृटिश फार्माकोपिया जगद्दल पत्थरों की तरह भारत की छाती पर जम कर बैठ गया है।

विख्यात ऐतिहासिक श्री रमेशचन्द्र मजुमदार की राय में नाज़ी नेता हर हिटलर, नेताजी सुभाषचन्द्र बसु एवं महात्मा गांधी इन तीन महापुरुषों की चेष्टा से भारत से बृटिश शासन हट गया किन्तु भारत से इस बृटिश चिकित्सापद्धति के हटने का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। आयुर्वेद को पुनः स्थापित करने के लिए उक्त तीन महापुरुषों की तरह सर्वत्यागी महापुरुषों की आवश्यकता है। आयुर्वेद में सभी कुछ है, नहीं है तो केवल संघबद्ध प्रचार। “संघे शक्ति कलौ युगे”। इस प्रचाराभाव का सुयोग लेकर विदेशी वणिकवृन्द नित्य नई औषधियों का निर्माण कर भारतीयों के खून का शोषण कर रहे हैं। आयुर्वेद के विरुद्ध में बोलने वाले बहुत से हैं। किन्तु इनके विरूद्ध में बोलने वाला कोई नहीं। “इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदा अवतीर्य्याहं करिष्याम्य-

रिसंक्षयम् ॥" चण्डी में देवी भगवती ने कहा है कि इस प्रकार पृथ्वी पर जब भी दानवों से जनता सताई जायगी, तभी मैं अवतीर्ण होकर समस्त असुरशक्ति का नाश करूंगी। मैं अब व्यग्रता से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूं।

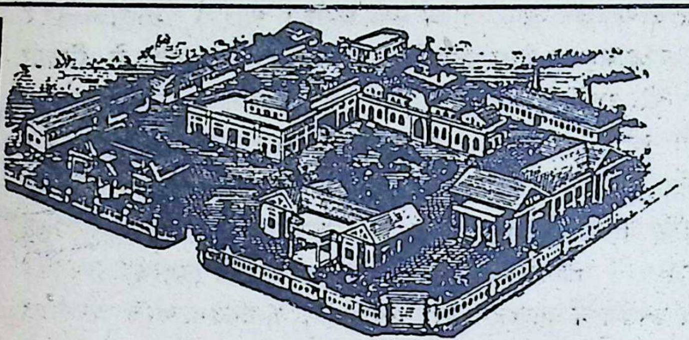

४५ वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम REGD

गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार के भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, तैल, मलम, अंजन, अवलेह, आसवारिष्ट तथा पेटेंट वगैरह सैकड़ों आयुर्वेदिक औषधियाँ हाथ से तथा उपलों की अग्नि से बड़े जत्थे में तैयार की जाती हैं। यहां की दवाइयां सरकारी, म्युनिसिपल तथा धर्मार्थ दवाखानों आदि में तथा विदेशों में प्रचुर प्रमाण में जाती हैं। विद्वान वैद्य, हकीम तथा एलोपैथ डाक्टर गोंडल रसशाला की औषधियों के उपयोग से रोगियों को रोगमुक्त कर यश तथा धन कमा रहे हैं। प्रजा के हृदय में रसशाला ने विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। रोग के लिए सलाह मुफ्त दी जाती है, हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी सूचीपत्र आज मंगाइये। बम्बई की शाखायें :—

शाखा नं० १ गोंडल रसशाला औषधाश्रम,
छोटालाल भवन, ४१६ कालवा देवी रोड,
मुंबई २।

शाखा नं० २ गोंडल रसशाला औषधाश्रम
१७ कोमरश्यल चेम्वर्स, मस्जिद बंदर रोड,
जकरिया मस्जिद सामने, मुंबई ३।

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleton) आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल टिकयां व गोलियां बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकल इन्स्ट्रूमेन्ट, आदि के मिलने का पता:—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स क०
दयाल बाग़ (आगरा)

आयुर्वेद और वैद्य समाज

लेखक : गौरीशंकर गुप्त, प्रधान सम्पादक : आयुर्वेद (मासिक), प्रधानमन्त्री, राष्ट्रकवि परिषद्, गायघाट, काशी (उ० प्र०)

मानव अपने जीवन के आरम्भ काल से ही एक खोजी प्रकृति का जीव रहा है। एक दिन उसका निवास पर्वतों की कन्दराओं में था। कभी उसने अपने शरीर को पेड़ों की छालों से आच्छादित किया, कभी उसके जीवन की स्थिरता के लिए वन्य जीवों का मांस ही एकमात्र उपाय रहा। जैसे–जैसे समय बदलता गया, उसकी जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। उसने नई–नई खोजें की, नये–नये आविष्कार किये। उसने अपने को एक ऐसी दुनिया में बदल दिया कि जहां से वह अपनी हलकी से हलकी ध्वनि को भी पलक झपकते दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुंचा सकता है।

आज हम बीसवीं शताब्दी में निवास कर रहे हैं, जिसका प्रतिपल विज्ञान से गठबन्धन किये ईश्वर तक को चुनौती दे रहा है। मानव की सर्वतोमुखी जिज्ञासा, उसकी अपार भूख से भरी हुई खोज कहाँ जाकर दम लेगी, कोई नहीं जानता। "जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ" की कहावत के अनुसार हमारे पूर्व पुरखाओं ने सर्वस्व भेंट चढ़ाया। उस युग में, जब आज की भाँति न तो चमचमाती हुई सड़कें और न वायु से मुकाबला करने वाले द्रुतगामी वाहन ही थे, अपने पैरों पर संसार की खाक उन्होंने छानी, अपनी सर्वतोमुखी जिज्ञासा को पेड़ों से, पत्तों से, फलों से, जड़ों से और कंकर-पत्थरों से कसकर टकराया। उनसे उनकी कहानी पूछी और उसे अमर संगीत में परिणत कर दिया। आज भी हम साभिमान उन गाथाओं को गाते हुए थकते नहीं। उनकी दी हुई रोटियों से अपना पेट भरकर हम चैन की वंशी बजा रहे हैं। किन्तु अपने हृदय पर हाथ रखकर खुद से पूछें कि क्या हम वस्तुतः उनके उत्तराधिकारी हैं? उनके आंशिक अनुयायी है? तो उत्तर नकारात्मक के सिवा और कुछ न मिलेगा। भले ही हम अपनी झूठी शान से अपने को ही धोखा देते रहें; पर आज का युग—"हमारे बाप ने घी खाया था, हमारा हाथ सूँघ देखो" मानने को तैयार नहीं है।

आयुर्वेद के उपलब्ध कोष में जो सामग्री मिलती है, वह इतनी प्राचीन है कि उसने अपने जीवन में प्रकृति के अनेक प्रलय देखे हैं। फिर यह कैसे माना जा सकता है कि आज भी उसकी उपयोगिता ठीक वैसी ही है जैसी उसके जन्म या यौवन काल में थी।

संसार परिवर्तनशील है। उसका जर्रा–जर्रा हर मिनट बदल रहा है। आज का

बालक कल जवान बन, परसों दुनिया से कूच करता नजर आता है। तब भी हम अपना ही राग अलाप रहे हैं। कितनी हास्यप्रद दशा है। मैं बड़े विनम्र शब्दों में अपने श्रद्धेय वैद्यवर्ग से पूछना चाहता हूं कि महाशय, आपका द्रव्यगुण शास्त्र, जिसपर आपकी चिकित्सा की इमारत खड़ी है, क्या इस युग के अनुकूल सुसंस्कृत है ? क्या आप बतला सकते हैं कि आपने किसी भी रोग विशेष के लिए कोई ऐसा अचूक रत्न ढूंढ़ निकाला है जिस की कीर्ति इस समय लोगों की जिह्वा पर अपना घर कर चुकी हो ? काष्ठ द्रव्यों के प्रकरण को ही लीजिए, क्या उनका विश्लेषण आज इस योग्य है, जिस पर हम कुछ भी नाज कर सकें ? इसी भांति हमारा रस संसार भी अस्तव्यस्त है। भले ही बिल्ली के भाग्य से छींका टूट पड़े, मारपीटकर हम किसी रोगी को कुछ अच्छा भी करलें; किन्तु यह ऐसा उदाहरण नहीं, जिसका लोक अनुकरण करने को तैयार हो सके।

पीड़ा की निवृत्ति के लिए फोड़े का उच्छेदन तो करना ही होगा। यदि हम साहस के साथ व्रणच्छेद कर सकें तो जहां हमें स्थायी शांति और सुख की प्राप्ति होगी, वहां हम संसार को भी एक अलौकिक प्रकाश दे अपनी ओर अनुरागित कर सकेंगे। किन्तु यह कार्य पड़ेगा महंगा। हमें अपना स्वार्थ छोड़ना होगा और बलिदान के बकरे की तरह कर्तव्य की वेदी पर अपना सिर झुकाना होगा। हो सकता है, हम में से सैकड़ों को अपने घरों से सिर से कफन बांध कर इस जलती आग में कूदना पड़े। सैंकड़ों को अपने घरों से हजारों रुपये पानी की तरह इस कार्य-सिद्धि के लिए बहाने पड़ें। हम पीछे न हटें, कदम पर कदम आगे बढ़ाते हुए अपनी तूफानी टक्करों से सारा वातावरण कंपित कर दें।

अब मैं अपनी सोची हुई व्यावहारिक योजनाएँ आपके सामने रखकर प्रार्थना करूंगा कि आप विशुद्ध हृदय से इन पर विचार करें और यदि ये युक्तिसंगत जँचे तो अपने दायरे में इन्हें अमली जामा पहनावें, कार्य रूप में परिणत करें।

१—अपने-अपने स्थानों पर वैद्यगण संगठित रूप में सभाएँ कर अपनी प्रान्तीय सरकारों पर ऐसा जोर डालें जिससे सरकार आयुर्वेदिक औषधियों के विश्लेषण के लिए एक बृहत् प्रयोग शाला (Laboratory) प्रान्त में स्थापित करे। वहाँ काष्ठ तथा धातुवीय द्रव्यों का वैज्ञानिक विधि से विश्लेषण हो। उनके मौलिक तत्त्वों की खोज कर निघण्टु (द्रव्य गुण-शास्त्र) का पुनः संशोधन हो।

२—उत्तमोत्तम काष्ठ तथा रस औषधियों का एक वृहत् संग्रहालय सरकार अपनी देखरेख में स्थापित करे अथवा अन्य संग्रह करने वालों को लाइसेंस शुदा करे तथा वर्ष में कई बार ऐसे संग्रहालयों की जाँच-पड़ताल होती रहे, जिससे वे हीनवीर्य या अनर्गल औषधियां जनता में बिक्री न कर सकें। इस समय काष्ठ औषधियों की समस्या इतनी जटिल हो गई है कि उत्तम और शुद्ध वीर्य औषधियां मिलना कठिन है नहीं वरन् असम्भव सा हो गया है। अत्तार लोग वर्षों की सड़ी गली हीन-वीर्य औषधियाँ जनता को मढ़कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। यद्यपि कुछ फार्मेसी वालों ने काष्ठ औषधि स्तम्भ अपने

यहाँ खोल रखा है, किन्तु उनके यहां भी अन्धेर ही चलता है। हमारा वैद्यसमुदाय स्वयं भी अनेक औषधियों की पहचान से अपरिचित है। उन्होंने पुस्तक से कोई योग चुना और अत्तार के हवाले किया; फिर भले ही वह कूड़ा-कर्कट कुछ भी बांध दे-रोगी का भाग्य, जिये या मरे! इस प्रकार हमारा यह काष्ठ स्तम्भ, जो प्रायः ९० प्रतिशत भारतीय निर्धनों का आधार है, प्रायः पंगु सा हो चुका है। यदि इसकी उचित व्यवस्था नहीं हुई तो हमारी चिकित्सा पद्धति का सफल होना अत्यन्त कठिन है।

३—यद्यपि देश में चारों ओर इस समय व्यावसायिक फार्मेसियों की धूम-सी है, किन्तु औषधि तैयार करने का वैज्ञानिक मांप किसी का नहीं! सब अपनी-अपनी हांकते हैं। फलतः इस समय विदेशी औषधियों से बाजार सर्वत्र ठसाठस भरे हैं और उनके सामने देशी औषधियों की बिक्री नहीं के बराबर है। प्रायः हमें रोज ही यह शिकायत सुनने को मिलती है कि अमुक कम्पनी का च्यवन प्राश हमने खरीदा, पर काम कुछ न हुआ। अमुक कम्पनी तो "बड़ी लुटेरी है।" आदि आदि। अतएव जब तक आधुनिक प्रणाली से समन्वय करती हुई हमारी औषध निर्माण पद्धति में सुधार न होगा, तब तक यह दोष दूर नहीं हो सकता। इसलिए सरकार सब दवा बनाने वाली कम्पनियों की एक कान्फ्रेंस बुलाये और उसमें एक निश्चित औषधि निर्माण का मान (Standard) कायम करें, जिसका अनुकरण कानूनन सब पर लागू हो।

४—सरकार एक ऐसी अन्वेषण संस्था (Research Institute) की स्थापना करे, जो रोगों की नवीनतम शोध नित्य किया करे और इसमें जो नवीनताएँ दृष्टिगोचर हों, उन्हें वैद्य-समाज को समझाती रहे।

उपर्युक्त योजनाएँ बहुत कुछ सरकार की आर्थिक स्थिति पर अवलंबित हैं; अतः देश का वैद्यवर्ग स्वतः इस ओर कदम उठाए तथा संगठित रूप से धन एकत्र कर अन्वेषणशाला खोलें। अन्त में मैं अपने सहयोगी वैद्यवर्ग से प्रार्थना करूँगा कि अब हमारी राष्ट्रीय सरकार देश में शासनारूढ़ है और वह आयुर्वेद के उद्धार के लिए विचार भी कर रही है; अतः हमें भी जागरूक होकर अपने प्रयास शुरू कर देने चाहिए ताकि यह लांछन हमारे सिर न मढ़ा जाये कि वैद्य स्वयं ही अकर्मण्य हैं। जय आयुर्वेद!

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

—o—

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ परीक्षाओं की
प्रश्न पत्र पुस्तकें
छप कर तैयार हैं तथा महासम्मेलन कार्यालय देहली अथवा विद्यापीठ कार्यालय, ऋषिकेश से अग्रिम मूल्य भेज कर प्राप्त की जा सकती हैं। मूल्य प्रति पुस्तक आयुर्वेदाचार्य २), आयुर्वेद विशारद २) तथा आयुर्वेद भिषक १।।)। डाकव्यय पृथक्

अखिल भारतीय आयुर्वेद-विद्यापीठ के सभापति तथा राजस्थान राजकीय आयुर्वेद विभाग के प्रमुख संचालक स्वर्गीय पूज्यपाद प्राणाचार्य, आयुर्वेद मार्तण्ड, भिषग्रत्न

राजवैद्य पं० नन्दकिशोर जी महाराज भिषगाचार्य का

स्मारक

लेखक—प्रभुदत्त शास्त्री भिषगाचार्य, प्रिन्सिपल, श्री परशुरामपुरिया राजस्थान-आयुर्वेद कालेज, सीकर (राजस्थान)।

विगत जेष्ठ शुक्ल ६ सं० २०११ तदनुसार ता० ६ जून सन् १९५४ की सन्ध्या आयुर्वेद जगत में काल रात्री का स्वरूप धारण करके आई थी जिसने अकस्मात् अकल्पित रूप से हमारी निधि को हम से छीन कर अपने अंक में समेट लिया। किसी को स्वप्न में भी ऐसी सम्भावना न थी अन्यथा हम सावधान होकर कुछ और तरीके से सन्नद्ध हो जाते। आयुर्वेद सेवा का व्रत अङ्गीकार कर अस्वास्थ्यमय परिस्थिति में भी गुरूवर्य्य कठोर परिश्रम और सुदूर की यात्रा का कष्ट किसी प्रकार सहन कर चुके थे। किन्तु छोटी-सी बाल तोड़ फुन्सी ने उग्र रूप धारण कर सम्पूर्ण आशाओं पर तुषारापात कर दिया। राजस्थानीय वैद्य बन्धुओं को अपना कर्णधार खोजाने पर अकथनीय मर्माघात पहुँचा। उससे कहीं अधिक समस्त वैद्य संसार में संवेदना व्याप्त हो गई।

अखिल भारतीय आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना के महत्वपूर्ण, किन्तु नाजुक प्रसंग पर जिनके नेतृत्व की परमावश्यकता थी, वर्षों से जिनके हृदय में विद्यापीठ का स्वतन्त्र विद्यालय स्थापित करने की उत्कट अभिलाषा जागृत हुई थी। अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ के सभापति पद से कोट्टकल अधिवेशन में दिये गये जिनके ओजस्वी संस्कृत भाषण का निनाद अभी कर्णकुहरों में गूंज रहा है, जिनके सुपरिष्कृत लेखन, सम्भाषण, चिकित्सा, अध्यापन, प्रबन्ध, नेतृत्व आदि गुणगणों से प्रभावित प्रशंसकों की लेखनी की स्याही अभी सूखने भी न पाई है, परमश्रद्धेय श्री यादव जी महाराज का प्रमाण-पत्र जो कोट्टकल से लौटते समय राजवैद्य जी ने शिरोधार्य किया था, जिनके हृदय में सुदृढ़ आयुर्वेद सेवा का मन्त्रोपदेश करने लगा था, ऐसे मध्याहन में अपनी प्रखर प्रभा-रश्मियों से उद्दीप्त प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व को काल के बादलों ने क्षणभर में घेर लिया। इस लोक में सहस्रों आतुरजनों द्वारा प्रतीक्षित होने पर भी सहसा परलोक वासियों की चिकित्सा के लिये उठाकर ले जाया गया। अस्तु।

किसी भी वस्तु का मूल्य उसके खो जाने पर विशेष समझ में आता है। आज राजस्थान में आयुर्वेद विभाग की स्थिति स्वतः उनके अभाव को खटकता हुआ महसूस करा रही है। जिन योजनाओं का सूत्रपात वे कर चुके थे, उनके फलीभूत होने का अवसर अब उपस्थित है। कितनी सहिष्णुता से कांटों के ताज को पहनकर नीलकण्ठ भगवान् की भांति उन्होंने "अयुर्वेदोऽमृतानाम्" के लिये हलाहल विष की घूंठों को पीया? जिन्हें इसका अनुभव प्राप्त है, वे ही समझ सकते हैं। श्रद्धेय गुरुवर्य्य के कार्य व्यवहार में उदात्त भावना, कल्याण कामना, चिकित्सा चातुर्य्य को सन्निकट रूप से कुछ क्षणों के लिये भी देखने का सुअवसर जिन्हें प्राप्त हुआ है, वे उनके आदर्श चरित्र से प्रभावित हुए बिना न रहे होंगे। आज आठ नौ महीने का दुःखदायी समय वर्षों के समान व्यतीत हो पाया है, इतने समय में तो पद-पद पर सभी ने उनकी पवित्र आत्मा का स्मरण कर लिया है। देश में श्री राष्ट्रपति जी से लेकर आपामर सभी ने अपने २ सन्देशों में उनकी विशेषताओं पर विभिन्न दृष्टियों से झलक डाली है।

स्वयं प्रसिद्धि से कोसों दूर रहने पर भी जिन्होंने आजीवन महापुरुषों के प्रति कृतज्ञता का प्रशस्त परिचय तो क्या, अनेकों मूर्त्त उदाहरण प्रस्तुत किये, उनकी महान आत्मा को अपने २ भावों की श्रद्धाञ्जली किस रूप में चिरस्थायिनी बनाकर समर्पित करना है, यह सोचना अब हमारा कर्तव्य रह गया है। एतदर्थ, शीघ्रातिशीघ्र श्रद्धास्पद राजवैद्य जी महाराज के स्मारक के निमित्त योजनाबद्ध कार्यक्रम बना लेना परम आवश्यक है। उनके कुटुम्बीजनों द्वारा जितना सहयोग प्राप्तव्य है वह तो मिलेगा ही। वे अपने सब के थे। "वसुधैव कुटुम्बकम्" के अनुसार शतशः शिष्य, प्रशिष्य, सहाध्यायी, इष्ट, मित्र, श्रद्धालु, सेवक, आर्त्तजन, राजा, रईस, सेठ, साहूकार, लोकनेता, प्रेमी, व्यवहारी, सज्जन जितनी अधिक संख्या में उनके बहुमूल्य जीवन से शोभान्वित होकर अपने को धन्य तथा हितचिन्तक समझने वाले होंगे, वे सभी महानुभाव अपना हार्दिक सहयोग तथा सत्परामर्श प्रदान कर इस पुनीत कार्य में अवश्य सहायक होंगे, ऐसा विश्वास स्थापित कर आप कृपालु महाशयों से नम्र-निवेदन करने का साहस करता हूँ। पूज्य श्री सद्गुरुवर्य के स्मारक के विषय में आप जो भी सुझाव उचित समझें उसका निर्देश करने का श्रम अवश्य स्वीकार कीजिएगा। भावनाओं की मूर्त्तरूप में इस प्रकार प्रतिष्ठा हो सकेगी। यदि आपके पास अथवा आपकी जानकारी म अन्यत्र कहीं राजवैद्य जी महाराज के कोई भी स्मृति चिन्ह उपलब्ध हों, जैसे—पत्र व्यवहार, लेख, कविता, प्रयोग, चिकित्सा विधि, फोटो आदि, तो उन्हें संग्रहीत करके सुरक्षित रखने का प्रयत्न अवश्य कीजियेगा। सूचना मिलने पर वे स्मारक के किसी प्रयोजन में आ सकेंगे।

हमें प्रबल विश्वास ही नहीं आशा भी है कि, आप उक्त विषय में अपना महत्वपूर्ण परामर्श देकर हमें कृतार्थ करेंगे।

आयुर्वेद लोक

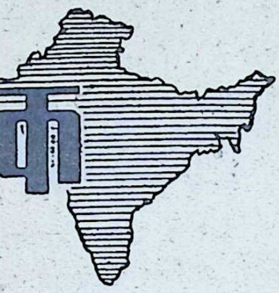

(इस स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित समाचार-सूचनाओं में व्यक्त विचारों से हमारी सहमति होना आवश्यक नहीं है —सम्पादक)

नवम अलीगढ़ जिला वैद्य सम्मेलन

आयुर्वेद विश्वविद्यालय ऋषिकेश के लिए २५००० रु० की घोषणा

(हमारे विशेष संवाददाता द्वारा)

यह सम्मेलन रायबहादुर श्री पं० श्रीदत्त जी विद्यापीठ मन्त्री की अध्यक्षता में अलीगढ़ में तारीख ३१ जनवरी को सम्पन्न हुआ। अलीगढ़ के जिलाधीश श्री बी० एन० माहेश्वरी ने इसका उद्घाटन किया और उन्होंने आयुर्वेद के उत्थान के लिए यत्न करने तथा आदान-प्रदान की परम आवश्यकता बताई।

रायबहादुर पं० श्रीदत्त जी ने सभापति के नाते भावपूर्ण गम्भीर भाषण दिया और बताया कि आयुर्वेद अब तभी जीवित रह सकता है जबकि आयुर्वेद विश्वविद्यालय बन जाय। इसके लिए वैद्यसमाज को भागीरथ प्रयत्न करना होगा। लगभग २००० वर्ष से आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला था और आशा की जाती थी कि स्वराज्य होने पर आयुर्वेद का विकास होगा, किन्तु स्वास्थ्य मन्त्रिणी राजकुमारी अमृतकौर के बल पर उन्नति के स्थान में डाक्टर सेन जैसे महानुभाव आयुर्वेद का गला घोटने को तैयार बैठे हैं।

अलीगढ़ जिला के वैद्यों पर इस भाषण का प्रभाव पड़ा और सर्वप्रथम यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया—

"जिला वैद्यसम्मेलन का यह नवम वार्षिक अधिवेशन अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन द्वारा प्रचारित आयुर्वेद विश्वविद्यालय योजना को राष्ट्र की स्वास्थ्य-समस्या सुलझाने के लिए तथा आयुर्वेद के उत्थान की दृष्टि से परमावश्यक मानता है।

यह अधिवेशन श्री बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र के द्वारा आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना के प्रति प्रत्यक्ष अवरोध पर खेद प्रकट करता है। ऐसा करना

उस क्षेत्र के नाम पर कालिमा पोत देना है। उक्त क्षेत्र के सम्मान को जिन व्यक्तियों ने गिराया है उनसे तथा क्षेत्र के अधिकारियों से यह अधिवेशन अनुरोध करता है कि वे आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना में अपने पूर्व निश्चय को पूर्ण करें और आयुर्वेद सेवा समिति का ९५ हजार रुपया जो काली कमली के हाथ में है उसको इस विद्यालय के निर्माण कार्य में देकर सहायक हों।

साथ ही यह अधिवेशन यह भी घोषणा करता है कि कार्य प्रारम्भ होने पर अलीगढ़ जिला वैद्य सम्मेलन २५ हजार रुपया एकत्र करके विश्वविद्यालय की ठोस सेवा करेगा और भी आवश्यकता होने पर धन एकत्रित करेगा।

प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया तथा वहीं कविराज पन्नालाल वार्ष्णेय ने एक हजार तथा श्री कुन्दन लाल मोहता ने एक हजार रुपया देने का वचन दिया।

बम्बई के आयुर्वेद डाइरेक्टर के पद पर पं० श्री हरिदत्त शास्त्री की नियुक्ति

वैद्यसमाज में यह समाचार बड़े हर्ष से सुना जायेगा कि बम्बई सरकार ने पंजाब के सुप्रसिद्ध वैद्यराज श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री को बम्बई के आयुर्वेद डाइरेक्टर पद पर नियुक्त किया है। इस नियुक्ति के लिए बम्बई सरकार तथा शास्त्री जी का हम अभिनन्दन करते हैं। शास्त्री जी आयुर्वेद डाइरेक्टर के रूप में स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करेंगे किन्तु कार्य-संचालन में एक वर्ष तक सर्जन-जनरल का हाथ रहेगा। इनका कार्यालय इसी लिए अभी सर्जन-जनरल के आफिस में ही रखा गया है।

पं० हरिदत्त जी शास्त्री का जन्म १९०३ में जालन्धर में हुआ। इन्होंने १९२१ में पंजाब युनिवर्सिटी से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। १९२५ में बनारस में रह कर सुविख्यात वैद्यरत्न स्व० पं० त्र्यम्बक शास्त्री जी से आयुर्वेद तथा दर्शनशास्त्र का गूढ़तम अध्ययन किया। १९२८ में नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ से आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इसी वर्ष आयुर्वेद-रहस्य-हेतु सर्जक नामक एक उत्तम निबन्ध लिखने पर इन्होंने कराची में सुवर्णपदक प्राप्त किया। १९३२ से ३५ तक लाहौर आयर्वेद कालेज में काय-चिकित्सा, रसायन-शास्त्र और चरक संहिता इन विषयों में अध्यापन के लिए आप नियुक्त हुए। १९३७ से १९४१ तक अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के मन्त्री रहे। नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के आप दो बार अध्यक्ष भी रहे हैं। इन्होंने रत्नावली भैषज्य जैसे अनेक उत्तम निबन्ध लिखे हैं। आप अभी तक पुनर्वसु आयुर्वेद विद्यालय के आनरेरी प्रिंसिपल थे। आप हिन्दी तथा संस्कृत के उत्तम ज्ञाता तो हैं ही, साथ-साथ अंग्रेजी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं पर भी अपना काफी प्रभुत्व रखते हैं। आयुर्वेद-डाइरेक्टर पद पर नियुक्ति से पूर्व दो वर्ष से आप बम्बई में आयुर्वेद के विकास के लिए स्थापित युनिवर्सल हैल्थ इन्स्टिट्यूट में अपनी सेवाएं प्रदान कर रहे थे।

जापानी की आयुर्वेद में श्रद्धा

एक ६२ वर्षीय जापानी बौद्ध विद्वान डा० ओसावा ने कलकत्ते की एक सभा में बतलाया कि जापान में कुछ समय पूर्व तक आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति प्रचलित थी, परन्तु अब वहां आयुर्वेद का विशेष प्रचार नहीं है। उन्होंने कहा कि मैंने आयुर्वेद चिकित्सा से कैन्सर, क्षय, दमा सरीखे कष्टसाध्य रोगों को सफलतापूर्वक ठीक किया है। मेरी पद्धति पथ्य से ही सब रोगों का इलाज करने की है जो मूलतः आयुर्वेदिक है।

आप आयुर्वेद की ओर कैसे आकृष्ट हुए यह पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि १८ वर्ष की आयु से ही मैं आयुर्वेद का प्रेमी हूँ। उस समय मुझे क्षय रोग था और उस रोग से करीब-करीब मेरा सारा परिवार नष्ट हो गया था। जब मैं जीवन से निराश हो चुका था तब मेरे हाथ आयुर्वेद की कुछ किताबें लग गईं जो २००० वर्ष पूर्व चीन के जरिये जापान में मंगाई गई थीं। मैंने उन्हें पढ़ना शुरू किया और उनके निर्देश के मुताबिक मैंने अपने आप को दो वर्ष में अच्छा कर लिया। तब से मैंने अपना शेष जीवन आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन में बिताने का निश्चय कर लिया है। डा० औसावा ने अपना शेष जीवन भारत में आयुर्वेद की प्रैक्टिस करते हुए बिताने का निश्चय किया है।

आयुर्वेद संशोधन परिषद्, बम्बई

आयुर्वेद संशोधन परिषद् बम्बई का प्रथम अधिवेशन बम्बई नगर में ही निकट भविष्य में होगा।

संशोधनकर्ता महानुभाव अपने संशोधन का परिणाम अथवा ब्यौरा निम्नलिखित विषयों पर लिख कर भेजें।

१–वनस्पति। २–रोग। ३–आयुर्वेद सिद्धान्त। ४–मानव शरीर और पार्थिव द्रव्य। ५–रस रसायन। ६–आयुर्वेद इतिहास।

निबन्ध आने के पश्चात् एक मास के भीतर संशोधन परिषद् की निश्चित तिथि की सूचना दी जायगी। जिनके निबन्ध मान्य होंगे उनको अपना निबन्ध परिषद् में पढ़ने की अनुमति समयानुकूल दी जायगी।

संशोधकों को यह सूचित किया जाता है कि वे अपना पूरा निबन्ध ३००० शब्दों वाले लेख के साथ भेज सकते हैं।

आवश्यकतानुसार परिषद् में पूरा लेख पढ़ने का भी अधिकार दिया जा सकता है।

परिषद के पूर्ण होने के अनन्तर सब उत्कृष्ट लेखों को एक ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया जायगा। जिसकी एकेक प्रति मान्य लेखकों को बिना मूल्य दी जायगी।

संशोधन मान्य कराने के जिए लेखक को रोग निदान के संपूर्ण वैज्ञानिक प्रमाण तथा प्रयोग का हितकर-अहितकर फल एवम् औषध प्रयोग के वैज्ञानिक प्रमाण इन सब को प्रकट करना होगा।

उक्त विषयों में से हर एक विषय में जिसका लेख उत्कृष्ट (सर्वोत्तम) माना जायगा उसको एकेक तोले का स्वर्ण पदक दिया जायगा। ताकि भविष्य में ऐसे संशोधकों का उत्साह बढ़े।

संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी भाषाओं में से किसी एक भाषा में लिखा हुआ लेख स्वीकृत किया जाएगा।

उपरोक्त निबन्धों का परीक्षण करने के लिए एक समिति बनाई गई है। जिसम सम्मिलित होने के लिए निम्नलिखित महानुभावों की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है।

पूज्य वैद्यराज यादवजी त्रिकमजी आचार्य, वैद्य हरिदत्त शास्त्री, वैद्यराज भिकाजी विनायक डेग्वेकर, वैद्य पु० वी० धामणकरजी, वैद्य वल्लभरामजी, वैद्य लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण शास्त्री, वैद्य नागरदास मोहनलाल पाठक, वैद्य वेणिमाधव शास्त्री जोशी आदि। अन्य विद्वानों से पत्र व्यवहार चालू है।

आप निबन्ध कौन से विषय पर लिखेंगे या लिख रहे हैं इसकी सूचना हमें शीघ्र ही निम्न पते पर भेजने की कृपा करें।

वैद्य वामनराव दीनानाथ
४५, कैथेड्रल स्ट्रीट, बम्बई-२

नियमावलि

१—संशोधन सम्बन्धी लेख ३००० शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए।

२- संशोधन से सम्बन्धित विषयों के अतिरिक्त अन्य चर्चा इस परिषद् में न हो सकेगी।

३—परिषद् अध्यक्ष की सम्मति बिना कोई भी महानुभाव किसी विषय पर चर्चा नहीं कर सकेंगे।

४—परिषद् कार्यवाहकों का निर्णय ही अन्तिम और निश्चित होगा।

५—निर्दिष्ट विषयों के संशोधन को पूर्णरूप से सिद्ध (प्रमाणित) करना होगा। पूर्णतः सिद्ध न हो सकने वाला लेख अमान्य रहेगा।

६—कम से कम १० (दस) रोगियों पर प्रयुक्त प्रयोग ही मान्य होंगे।

७--संशोधन लेख का विद्वत् समिति द्वारा परीक्षण किया जाएगा और उनका अन्तिम निर्णय आपको भेज दिया जाएगा।

८—संशोधनात्मक लेख की प्राप्ति का अन्तिम दिन ता० २५ फरवरी १९५५ होगा।

९—किसी भी संशोधन में प्रयुक्त औषध का नाम और प्रयोग के विधि का विस्तृत ब्योरा न होगा तो वह लेख स्वीकार नहीं किया जाएगा।

१०— निबन्ध पृष्ठ के एक ही बाजू लिखा हुआ हो और वह सुवाच्य, सुस्पष्ट हो।

गैर रजिस्टर्ड वैद्यों की चिकित्सा पर प्रतिबन्ध

केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद की कार्यकारिणी ने निश्चय किया है कि आयुर्वेद तथा यूनानी के गैर रजिस्टर्ड चिकित्सकों पर सारे भारत मे प्रतिबन्ध लगा दिया जावे। राज्य सरकारों से इस विषय पर परामर्श मांगा गया है। उनके उत्तर आ जाने पर सरकार इस सम्बन्ध में एक नया कानून बनाने का विचार रखती है।

देशी चिकित्सा पद्धति विकास

राज्य सभा में श्री कृष्णकांत व्यास के एक प्रश्न के उत्तर में राजकुमारी अमृतकौर ने बताया कि देशी चिकित्सा पद्धति के लिए पंचवर्षीय योजना में ४१ लाख रुपए रखे गए हैं। यह रकम जामनगर के आयुर्वेदिक एसोसियेशन तथा झाँसी आयुर्वेदिक कालेज को दी गई हे।

श्री व्यास ने पूछा कि क्या यह सच नहीं है कि स्वास्थ्य विभाग को देशी चिकित्सा में विश्वास नहीं। इससे उसकी उन्नति नहीं होती। राजकुमारी अमृतकौर ने कहा कि यह कहना बिलकुल गलत है। विश्वास तो सबूत के बाद होता है। परन्तु अनुसन्धान करने के लिए ठीक लोग ही नहीं मिलते।

कोट्टकल आर्य वैद्य पाठशाला का पदवीदान समारोह

कोट्टकल आर्य वैद्य समाज का ५४वाँ वार्षिक अधिवेशन और आर्यवैद्य पाठशाला का पदवीदान समारंभ का सम्मिलित समारोह कोट्टकल कैलाश मन्दिर के आंगन में मलयालम के प्रसिद्ध महाकवि साहित्यनिपुण श्री० वी० उण्णि कृष्णन नायर जी के सभापतित्व में गत जनवरी ३० को मनाया गया। सौराष्ट्र राज्य के आयुर्वेद मेडिकल सर्विस के डाइरेक्टर श्री० वासुदेव, यम० द्विवेदी जी की विशेष उपस्थिति ने समारोह की शोभा बढ़ायी। आर्य वैद्य समाज के मन्त्री श्री० पी० वी० ईश्वर वारियर जी ने गत वर्ष का कार्य विवरण पढ़कर सुनाया। प्रिंसिपल श्री० रामुण्णि मेनन ने "आर्यवैद्य" उपहार ग्रन्थ सभा की सेवा में रक्खा।

पाठशाला के चारों दर्जों में कुल मिला कर १०६ छात्र शिक्षा पा रहे हैं। इस साल २८ छात्र 'आर्यवैद्य' पदवी के योग्य निकल आये। पाठशाला की निधि में जो कमी हुई उसे स्व० पी० एस० वारियर जी के वसीयतनामे की धाराओं के अनुसार आर्य वैद्यशाला की निधि से १००० से अधिक रुपये लेकर पूरा किया था।

अध्यक्ष महोदय ने स्नातकों को प्रमाण-पत्र और पुरस्कार दिये। श्री० पी० सी० एहनुण्णि राजा ने दीक्षांत भाषण दिया। उन्होंने स्नातकों को—

"सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः ।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत् ॥

इस आचार्य वचन को सही अर्थ में पालने का उपदेश दिया।

श्री० द्विवेदी जी ने सभा को अपनी वक्तृता से अनुगृहीत किया। उन्होंने अपने भाषण में यह कहा था—

जो आयुर्वेद के बारे में जरा भी ज्ञान नहीं रखते, वे यदि उसकी बुरी तरह आलोचना करने बैठें तो उससे बढ़कर कोई विपत्ति हो ही नहीं सकती। चरक, सुश्रुत आदि मौलिक ग्रंथ अवधानता से पढ़ने पर मालूम होगा कि आयुर्वेद के सिद्धान्त आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सा रीति से हू-ब-हू मिलते हैं। पांडु रोग में लोहे और तांबे का प्रयोग और बकरे की यकृत का प्रयोग आयुर्वेद में कहा गया है। आज की वैज्ञानिक रीति में भी इनका प्रयोग होता है। इस तरह दूसरे रोगों की चिकित्सा में भी आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सा सिद्धान्तों और आयुर्वेद के सिद्धान्तों में समानता दिखायी पड़ती है। आयुर्वेदको अवैज्ञानिक मान कर उसका तिरस्कार करने की नीति पर उन्होंने खेद प्रगट किया।

श्री० द्विवेदी जी केरल में ज पंचकर्म से अनुबद्ध चिकित्सा प्रणाली चली आती है उसका निरीक्षण करने आये थे। वे केरल के कई आयुर्वेद केन्द्रों को देख आये थे। कोट्टकल आर्यवैद्यशाला और पाठशाला की व्यवस्था देख कर उन्होंने सन्तोष प्रगट किया।

शाम को सात बजे सभा विसर्जित हुई, इसके बाद पाठशाला के विद्यार्थियों ने एक मलयालम नाटक का अभिनय किया।

श्रीं वैष्णव आयुर्वेद शोध संस्थान का वार्षिकोत्सव

शमी (जाँट) वृक्ष पर महत्वपूर्ण अन्वेषण

श्री वैष्णव आयुर्वेद शोध संस्थान का वार्षिकोत्सव वैद्य विरञ्चिलाल जी आयुर्वेद वाचस्पति की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। संस्थान के कार्यवाहक अध्यक्ष बावा जयरामदास जी ने वार्षिक विवरण पढ़ते हुए बताया कि शेखावटी में सब से अधिक पैदा होनेवाले शमी (जाँट) वृक्ष पर होनेवाला अन्वेषण पूरा हो गया है। पहले पहल शमी की जड़ की अन्त:छाल में तीसरा भाग काली मिर्च डाल कर गोलियां बनाई गई। उनका प्रयोग विभिन्न रोगों पर किया गया। पक्वातिसार के रोकने में सफल सिद्ध हुई। फिर शमी के केवल पत्तों की ही गोलियां बनीं। इससे भी उक्त रोग को रोका जा सकेगा। आगामी वर्ष में 'फोगले' पर इसी प्रकार के प्रयोग होंगे।

वैद्य विरंचिलाल जी ने सभापति पद से शोध संस्थान की विभिन्न प्रवृत्तियों की प्रशंसा करते हुए कहा कि इस प्रकार के प्रयत्नों से ही आयुर्वेद में लुप्त अनेक प्रक्रियाओं और जड़ी-बूटियों को पुन: प्रचलित किया जा सकेगा।

इसी अवसर पर 'अष्टांग आयुर्वेद परिष्कार परिषद' का अधिवेशन आचार्य नित्यानन्द जी की अध्यक्षता में हुआ। आचार्य जी ने बतलाया कि आयुर्वेद के प्रत्येक अंग के विद्वानों को एक स्थान पर इकट्ठा करना उतना सरल नहीं जितना कि 'श्री आयुर्वेद

शोध संस्थान' ने समझा था फिर भी यह कार्य अत्यन्त आवश्यक है और प्रत्येक अवस्था में हमें करना ही है । प्रारम्भिक योजना पर विचार-विमर्श के बाद एक प्रतिनिधि मण्डल स्थापित किया गया जो कि आयुर्वेद के आठ अंगों के प्रसिद्ध विद्वानों के मौखिक विचार भारत भर में घूम कर जानेगा और अपना विवरण प्रस्तुत करेगा । फिर जो कार्य सम्भव होगा । उस पर शोध संस्थान की ओर से अमल किया जावेगा ।

अन्त में शोध सस्थान के कार्यकर्ता श्री श्रीराम शर्मा एम० ए० विशारद ने आगन्तुक आयुर्वेदीय विद्वानों तथा प्रेमियों को धन्यवाद दिया ।

झुंझुन जिला वैद्य सम्मेलन में आचार्य नित्यानन्द का भाषण

"आज के चिकित्सक रोगी के भावी स्वास्थ्य का ध्यान न रखकर केवल लक्षणों की चिकित्सा करते हैं, क्योंकि आपके रोगी आहार-विहार के संयम से दूर रह करके स्वास्थ्य को बाजार की साधारण वस्तु की भाँति खरीदना चाहते हैं । यही कारण है कि पाश्चात्य चिकित्सक नित नई औषधि का आविष्कार करने में लगे हैं । हमारी सरकार भी एलोपेथी की चकाचौंध में फंस गई है । फलतः राजस्थान की अलग अलग रियासतों में आयुर्वेद का जितना बजट था, वह बढ़ने के स्थान पर घटता जा रहा है । ऐसी स्थिति में वैद्यों को कठिन साधनों की जरूरत है । यदि वैद्य गरीबों की सेवा का व्रत ले लें तो आयुर्वेद अजेय है ।"

उपर्युक्त उद्गार कैड़ में गत ता० २६ सितम्बर को सम्पन्न हुए झुंझुनू जिला वैद्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए आचार्य नित्यानन्द जी ने प्रकट किए थे । वैद्यराज श्री मन्नालाल जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य अधिवेशन की अध्यक्षता कर रहे थे ।

अपना भाषण जारी रखते हुए आचार्य जी ने अन्त में दृढ़ विश्वास प्रकट किया कि एक दिन आयुर्वेद ही प्राकृतिक चिकित्सा के सहयोग से हमारी स्वास्थ्य समस्या को हल करेगा । भाषण देते हुए श्री शास्त्री जी ने बताया कि हम सब को राग-द्वेष से परे रह कर आयुर्वेद की सेवा करनी है । हमारे पास साधन सीमित हैं फिर भी अपनी लगन से आयुर्वेद की उन कमियों को दूर करना है जो कालक्रम से आज के आयुर्वेद में घुस आई हैं । अपने भाषण के अन्त में सभापति जी ने झुंझुनू जिले में आयुर्वेद प्रसार की योजना प्रस्तुत की । सम्मेलन के साथ ही आगुर्वेद वाचस्पति श्री विरंचीलाल शर्मा की अध्यक्षता में रहस्यमय रोग परिषद हुई । परिषद ने विचार-विमर्श के बाद घोषणा की कि आयुर्वेद के अनुसार रहस्यमय रोग में रहस्य की कोई बात नहीं है । आयुर्वेद सिद्धान्त से यह पित्तोष्ण सन्निपात है । यह रोग कोई नया नहीं है किन्तु आजकल बच्चों में पोषक तत्वों की कमी के कारण यह रोग रहस्यमय और शीघ्रकारी हो रहा है ।

लोहार्गल पर्वत की ११३ जड़ी-बूटियों का उद्घाटन बाबा जयरामदास द्वारा करने के बाद संदिग्ध बनौषधि परिषद प्रो० के० आर० टंडन की अध्यक्षता में हुई ।

सम्मेलन में कुल आठ प्रस्ताव स्वीकृत हुए जिनमें से एक के द्वारा वैद्यों का रजिस्ट्रेशन शीघ्र किए जाने का अनुरोध किया गया। दूसरे में विगत तीन वर्षों से राजस्थान वैद्य सम्मेलन का वार्षिकाधिवेशन न होने पर तीव्र असन्तोष प्रकट किया गया। सम्मेलन के आगामी अधिवेशन के लिए बगड़ रतन सहर और सुलताना के निमन्त्रणों में से सुलताना का निमन्त्रण स्वीकार किया गया।

निखिलोत्कल वैद्य सम्मेलन का संक्षिप्त इतिवृत्त

विदेशी शासनकाल में जब कि ऐलोपैथिक चिकित्सा के प्रबल आघात से आयुर्वेद प्रचलन घटने लगा था, उस समय प्रान्त के प्रमुख वैद्यों के प्रयास से आयुर्वेद के प्रचार, शिक्षित वैद्यों की संख्या में वृद्धि, वैद्यों का संगठन, प्रचारार्थ पत्रिका का प्रकाशन, लुप्त आयुर्वेदीय ग्रन्थों की खोज, संकलन और प्रकाशन तथा सरकार के सहयोग से शिक्षा संस्थाओं की स्थापना आदि उद्देश्यों को लेकर सन् १९२८ में निखिलोत्कल वैद्य सम्मेलन का संगठन किया गया। शिक्षित वैद्यों की संख्या वृद्धि के लिये इस संस्था द्वारा वैद्यभूषण तथा विद्यानिधि नाम की दो परीक्षायें संचालित की गई और अब तक उक्त दोनों परीक्षाओं के प्राय: ८०० प्रमाण पत्र दिये जा चुके हैं। दातव्य औषधालयों की स्थापना करके यह संस्था जनपद ध्वंसक रोगों से जनता की रक्षा का सेवा कार्य भी करती आ रही है। नवाखाली में साम्प्रदायिक दंगे के समय महामानव महात्मा जी के आह्वान से वहां दातव्य औषधालय खोलकर विपदग्रस्त जनता की सेवा की थी और पूज्य बापू जी का प्रशंसापत्र प्राप्त किया था। संस्था के आग्रह से तात्कालिक ब्रिटिश राज्य ने बिहारोत्कल सरकार द्वारा प्रतिष्ठित संस्कृत एशोशियेशन द्वारा परिचालित पुरी संस्कृत महाविद्यालय में आयुर्वेदिक कक्षायें खोलना स्वीकार किया और तत्पश्चात् संस्था ने कांग्रेस राज्य के स्वास्थ्य विभाग द्वारा "गोपबन्धु आयुर्वेद विद्यापीठ" नामक एक पूर्णाङ्ग शिक्षा संस्था का गत ३ वर्ष से संचालन प्रारम्भ कराया जिसमें निर्माणशाला, अन्त: और बहिश्चिकित्सालय हैं। प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर दातव्य औषधालय खुलवा दिये गए हैं। अब सम्मेलन द्वारा स्वतन्त्र आयुर्वेदिक बोर्ड की स्वतन्त्र आयुर्वेद डायरेक्टर की अधीनता में स्थापना का प्रयत्न किया जा रहा है।

सम्मेलन के अनुरोध से सरकार के शिक्षाविभाग ने पुरी संस्कृत महाविद्यालय में शुद्ध आयुर्वेद विभाग खोलकर चिकित्सालय और निर्माणशाला बना दी है। एक रसशाला के लिये भवन निर्माण तथा उपकरण इत्यादि के लिये १६०००रु० की स्वीकृति प्राप्त कर ली गई है और शीघ्र ही रसशाला का निर्माण भी हो जायेगा।

सम्मेलन द्वारा आयुर्वेद प्रचार के लिए "स्वास्थ्य-साधन" नामक एक मासिक मुखपत्र भी प्रकाशित किया जा रहा है जिसमें विद्वान् लेखकों की सुन्दर रचनायें प्रकाशित की जाती हैं। संस्था को सन् १९३५ में रजिस्टर्ड कराया गया था और अब राज्य सरकार द्वारा प्रदेश के वैद्य समाज की प्रतिनिधि संस्था स्वीकृत है।

सम्मेलन की कार्यकारिणी सभापति सहित १५ सदस्यों से संगठित है—१० सहयोगी सभ्य हैं। कार्यकारिणी तथा प्रदेश के मुख्य मुख्य चिकित्सकों को लेकर ६० सदस्यों की एक प्रादेशिक समिति बनाई गई है तथा ११ विज्ञ चिकित्सकों को लेकर सम्भाषा परिषद् बनाई गई है।

महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्यमण्डल

दि० १७.१०.५४ रविवार को रात्रो ७ बजे नाशिक क्षेत्र में आयुर्वेद सेवा-संघ के आमन्त्रण से म. प्रा. वै. मं. की कार्यकारी और स्थायी संमिश्र सभा प्रान्ताध्यक्ष वैद्य दत्तात्रय शास्त्री जी के सभापतित्व में हुई। जिसमें निम्नलिखित निश्चय किए गए:—

प्रस्ताव १—मण्डल के माननीय मन्त्री वै० ब्रह्मदत्त शर्मा जी ने गत सभा का वृतान्त और बम्बई के विशेषाधिवेशन का वृतान्त उपस्थित किया, उसी तरह बम्बई के विशेषाधिवेशन का आय-व्यय पत्रक पढ़कर सुनाया, उस पर वै. दाते शास्त्री और वै. रामैया द्वारा उठाई गई शंकाओं का निरसन होने पर सर्वसम्मति से पास हुए।

प्रस्ताव २—बम्बई जिला वैद्य मण्डल की स्थापना के लिए बम्बई वैद्य मण्डल की ओर से वै. क. के. कानिटकर के आए हुए पत्र पर विचार हुआ और यह निश्चय हुआ कि बम्बई जिला वैद्य मण्डल बनाने की अनुमति दे दी जाय।

प्रस्ताव नं. ३—गत वर्ष पूना वैद्य मंडल ने पूना में सम्मेलन करने का आमन्त्रण दिया था। जब ग्रीष्मकाल में पूना में म. प्रा. वै. मण्डल की स्थायी सभा हुई तो सम्मेलन के लिए कुछ महीने की और अवधि मांगी। अब पुनः १९५५ में सम्मेलन बुलाने की पूना वैद्य सभा के अध्यक्ष व मंत्री की प्रार्थना को यह सभा अस्वीकृत करती है और पूना वैद्य सभा का सम्मेलन कराने का अधिकार स्थगित करती है।

प्रस्ताव नं. ४—यह सभा आगामी म. प्रा. वै. मंडल के अधिवेशन का आमन्त्रण स्वीकृत करने का मण्डल के अध्यक्ष को अधिकार देती है।

प्रस्ताव नं. ५—नि. भा. आयुर्वेद महामण्डल की ओर से आए हुए प्रान्तीय संस्थाओं को सम्मिलित होने के पत्र पर आगामी अधिवेशन में विचार किया जाय, ऐसा इस सभा का मत है।

प्रस्ताव नं. ६—इस सभा का मत है कि वै. म. द. करमरकर अन्य सदस्यों ने जो विधान में संशोधन की सूचना दी है वह आगामी अधिवेशन में उपस्थित की जाय।

प्रस्ताव नं. ७—सम्मेलन का अधिवेशन जनवरी से लेकर मई तक ही कराने की व्यवस्था हो जिससे बाद बरसात की तकलीफ न हो, ऐसा सभा का मत है।

प्रस्ताव नं. ८—यह सभा बम्बई सरकार से यह प्रार्थना करती है कि बम्बई प्रान्त में शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्य-क्रम के अनुसार चलने वाले विद्यालयों को व मान्य गुरुओं को आर्थिक सहायता देने की शीघ्र व्यवस्था करे।

प्रस्ताव नं. ९–यह सभा बम्बई की शिवशर्मा सत्कार समिति के उद्देश्य का समर्थन करते हुए उसके कार्य को सम्मति देती है।

प्रस्ताव नं. १०–यह सभा देशी वैद्यक बोर्ड से प्रार्थना करती है कि भविष्य में रजिस्टर्ड वैद्यों से रिन्यूअल फीस लेना बन्द कर दे।

प्रस्ताव नं. ११–आयुर्वेद सेवा-संघ ने सब सदस्यों का उचित आदरातिथ्य व सभा की सम्पूर्ण व्यवस्था उत्तम प्रकार से की, उसके लिए यह सभा उनका धन्यवाद करती है।

संक्षिप्त-समाचार

—मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्य सम्मेलन, नागपुर का अधिवेशन आगामी २६ तथा २७ फरवरी को अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन के अध्यक्ष वैद्यरत्न पं. शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हो रहा है। अधिवेशन का उद्‌घाटन मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री पं. रविशंकर शुक्ल जी कर रहे हैं तथा तदन्तर्गत स्वास्थ्य परिषद का उद्‌घाटन मध्यप्रदेश के स्वास्थ्य-मन्त्री श्री कन्नमवार जी करेंगे। आयुर्वेद के विख्यात तत्वज्ञ श्री भीकाजी विनायक डग्वेकर जी की अध्यक्षता में शिक्षा परिषद भी की जारही है जिसका उद्‌घाटन मध्यप्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष माननीय पं. कुंजीलाल जी दूबे द्वारा किया जाएगा। इसे अवसर पर एक विशाल आयुर्वेद प्रदर्शनी का आयोजन भी किया जारहा है। हम अधिवेशन की पूर्ण सफलता की कामना करते हैं।

—चिड़ावा में आरोग्य केन्द्र का उद्‌घाटन राजस्थान के शिक्षा एवं कस्टम-विभाग के मंत्री श्री भोलानाथ जी द्वारा सम्पन्न किया गया। इसी के तत्वावधानमें एक धर्मार्थ औषधालय भी खोला गया है तथा शीघ्र ही श्री यादव चिकित्सा मन्दिर (सेनिटोरियम) का भी आरम्भ किया जाएगा।

—श्री नथमल जी जोशी सेठिया दातव्य औषधालय का रजत-जयन्ती महोत्सव अत्यन्त समारोह के साथ गत १० अक्तूबर को राजस्थान के स्वास्थ्य-मन्त्री श्री कुम्भाराम जी आर्य की अध्यक्षता में मनाया गया। औषधालय से गत वर्ष एक लाख रोगियों ने लाभ उठाया। इस अवसर पर जड़ी-बूटियों की एक प्रदर्शनी भी की गई, जिसमें सरदार शहर और समीप के क्षेत्र में होने वाली सभी वनस्पतियों का संग्रह किया गया था।

—रामघाट में श्री विश्वनाथ आयुर्वेदाश्रम का सप्तम वार्षिकाधिवेशन पं. हरिनाथ जी मिश्र के सभापतित्व में ता. १७-११-५४ को मनाया गया।

—ता. १६-११-५४ को बारासीवनी तहसील अग्रगामी वैद्य मण्डल की बैठक श्री हर्षुल जी मिश्र, मन्त्री मध्यप्रान्तीय अग्रगामी वैद्य मण्डल, बालाघाट की अध्यक्षता में हुई जिसमें संस्था को मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्य मण्डल से सम्बद्ध करने का प्रस्ताव पास किया गया। आगामी वर्ष के लिए श्री पं. चौथमल शर्मा अध्यक्ष तथा पं. हरिशंकर तिवारी वैद्यराज मन्त्री चुने गए।

—श्री आयुर्वेद महाविद्यालय, कानपुर द्वारा विद्यालय के स्नातकों की सूची प्रकाशित करने का आयोजन किया जा रहा है। विद्यालय के स्नातक अपना वर्तमान पता विद्यालय

में भेज दें। विद्यालय की रजत जयन्ती तथा श्री पं. जुगलकिशोर जी शास्त्री की स्वर्ण जयन्ती मनाने का आयोजन भी किया जा रहा हैं। विद्यालय द्वारा एक मासिक पत्रिका निकालने का विचार भी है। विद्यालय के स्नातक इस सम्बन्ध में अपने अपने सुझाव भेज सकते हैं।

—श्री बनवारीलाल विद्यालय, देहली के मन्त्री रा० स० श्रीराम बैरिस्टर के निमन्त्रण पर पर देहली के प्रसिद्ध वैद्य हकीमों की एक सभा क० हरिरंजन मजूमदार के सभापतित्व में ता० १८-१२-५४ को हुई जिसमें विद्यालय की वर्तमान आर्थिक अवस्था पर विचार किया गया। विद्यालय की उन्नति के लिए एक समिति का निर्माण किया गया। क० वी० एन० सरकार ने विद्यालय की सहायतार्थ १०००) देने का वचन दिया।

—आयुर्वेद क्रांग्रेस कमेटी केकड़ी ने देहली आयुर्वेदिक रजिस्ट्रेशन बोर्ड द्वारा वैद्यों पर रिन्युअल फीस लगाने के विरोध में एक प्रस्ताव पास कर स्वास्थ्य मंत्रालय, देहली सरकार को भेजा है। प्रस्ताव में इस निर्णय को बदलने की प्रार्थना की गई है। एक अन्य प्रस्ताव द्वारा २० अगस्त १९५४ को केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् की बैठक द्वारा देशी चिकित्सा-पद्धति के लिए बनाई गई समिति में डाक्टरों को रखने का विरोध किया गया।

—जिला वैद्य सभा बीकानेर प्रादेशिक वैद्य समिति के संयोजक वैद्य श्री ठाकुर प्रसाद शर्मा आयुर्वेदाचार्य ने एक वक्तव्य देते हुए देश के समस्त वैद्य समाज से अपील की है कि हमें द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद की सर्वांगपूर्ण योजना अपने अपने जिलों के तत्सम्बन्धी अधिकारियों द्वारा भारत सरकार के आयोजन विभाग को भिजवानी चाहिए और इस प्रकार आने वाली योजनाओं में आयुर्वेद को प्रमुख स्थान दिलाने में यत्नशील होना चाहिए। आपने कहा कि प्रतिद्वन्दी चिकित्सा प्रणालियों के मुकाबले में हमारी योजनायें सस्ती व सुलभ तो अवश्य हों किन्तु ऐसी न हों कि सस्तेपन व सुलभता के दृष्टिकोण को लेकर हमारे मापदंड को गिराने वाली प्रमाणित हों।

—श्री वैष्णव शोध संस्थान बड़ागांव की ओर से आचार्य श्री नित्यानन्द जी, पिलानी की आयुर्वेदिक सेवाओं विशेषकर वैदिक कालीन आयुर्वेद के अनुसंधान के उपलक्ष्य में उनका अभिनन्दन करने का निश्चय किया गया है। इस अवसर पर उनको एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जाएगा जिसमें आयुर्वेदिक विषयों पर ठोस लेख रहेंगे। ग्रन्थ का सम्पादन श्री वैद्यराज विश्वनाथ जोशी करेंगे। अभिनन्दन सम्बन्धी कार्य को सुचारू रूप से सम्पन्न करने के लिए बाबा जयरामदास जी के संयोजकत्व में एक समिति बना दी गई है। हम आयोजन की सफलता चाहते हैं।

—वैद्य मण्डल बड़ौदा तथा बड़ौदा जिला वैद्य मण्डल की ता० २१-११-५४ की संयुक्त सभा में नये वर्ष के लिए वैद्य श्री धीरजलाल मा० शाह—अध्यक्ष, श्री सुमंतलाल एम० पटेल तथा मगनलाल शास्त्री—उपाध्यक्ष तथा श्री मणिभाई नारायण भाई—मंत्री, निर्वाचित हुए।

—रतलाम के प्रतिष्ठित वैद्य पं० चतुर्भुज व्यास का गत ७-१-५५ को देहावसान हो गया। आप कैंसर की व्याधि से पीड़ित थे हम शोकाकुल परिवार के साथ संवेदना प्रकट करते हुए दिवंगत आत्मा की शान्ति की प्रार्थना करते हैं।

—सिरसा आयुर्वेद मण्डल का चुनाव ता० ७-१-५५ को शिवकुमार जी की अध्यक्षता में हुआ और वैद्य श्री नेतरामजी प्रधान, वैद्य शिवकुमार जी, उपप्रधान, वैद्य कन्हैयालालजी, मन्त्री तथा वैद्य विद्याधर जी कोषाध्यक्ष चुने गए।

—वैद्यमण्डल अमृतसर का वार्षिक निर्वाचन ता० २६-१२-५४ को सम्पन्न हुआ जिसमें श्री पं० श्रीधर मायाधारी शास्त्री, प्रधान, श्री पं० मदनमोहन पाठक तथा श्री जयदेवजी प्रभाकर–उपप्रधान, वैद्य श्री ज्ञानचन्द जोशी–प्रधानमन्त्री, श्री बाबूराम जी वैद्यराज–मन्त्री तथा श्री बा० गुरुचरणदास जी कोषाध्यक्ष निर्वाचित किए गए।

—जामनगर के गुलाब कुंवरबा आयुर्वेद महाविद्यालय को भारत सरकार अपने नियन्त्रण म लेकर आयुर्वेद का पोस्ट ग्रेजुएट कोर्स वहां प्रारम्भ करने पर विचार कर रही है।

—बम्बई राज्य सरकार ने वैद्यों के रजिस्ट्रेशन की रिन्युअल फीस लेन की अवधि को ३ माह आगे बढ़ा दिया है। राज्य के वैद्य-हकीमों में इस फीस के प्रश्न को लेकर घोर असन्तोष व्याप्त है।

—केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय न कुछ चुने हुए विस्तार खण्डों में ८५ स्वास्थ्य केन्द्र खोलने की योजना तैयार की है। योजना के लिए ५० लाख रुपया दिए गए हैं।

—:०:—

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य
सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम
हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य
हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान
विस्तृत विवरण के लिये पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें
तार का पता : आयुर्वेद
फोन : ३१७९६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई

शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम समितिः, बम्बई राज्यम्

शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम शिक्षणार्थम्

अध्यापक एवं शिक्षणसंस्थानां स्वीकृति नियमाः

१. गुरुयोग्यता

(१) गुरुर्नाम

(अ) ऐसवीयात् १७।९।५३ दिनात् प्राक् विंशति वर्षाणि यावत् कृताध्यापनकर्मा ।

(ब) राजमान्य-परीक्षासु अन्यतमायां कस्यांचन परीक्षायां उत्तीर्णः पंच वर्षाणि यावत् गृहीताध्यापनकार्यानुभवः । (राजमान्यपरीक्षा नाम "बी" संज्ञक परिशिष्टसंगृहीताः) ।

(२) दशमक्रमांकनियमानुसारं प्राप्तराजमान्यत्वेन गुरुणा अधोनिर्दिष्टवत्स्थलसाधनयोः व्यवस्था करणीया ।

१. अध्यापनयोग्यं स्थलम् ।
२. योग्यो भेषजालयः ।
३. नियमित–ग्रंथाः संदर्भग्रंथाश्च ।
४. प्रतिदिनं उपस्थितरुग्णानां रुग्णपत्रिकादिस्थापनम् ।
५. एकदा पंचाधिका विद्यार्थिनो न स्वीकार्याः ।
६. प्रत्यधिवेशनं त्रिशत् रूप्यकाधिकं विद्यार्थिशुल्कं न ग्राह्यम् ।
७. शुद्धायुर्वेदाध्ययनार्थं प्रात्यक्षिकार्थं च आवश्यकानि इतरसाधनानि ।

संस्थायाः कृते

दशमक्रमांकनियमानुसारं संप्राप्तराजमान्यताभिः संस्थाभिः अधोनिर्दिष्टवत्स्थलसाधनयोः व्यवस्था करणीया ।

१. अध्यापनयोग्यानि स्थलानि ।
२. संग्रहालयः—(अ) शारीरचित्राणि । प्रतिमाः । छेदिताः शरीरावयवाः ।
    (आ) अभ्यासक्रमोपयोगिनी रसशाला ।
    (इ) द्रव्यगुणविषयार्थं स्वतन्त्रं सुसज्जं स्थलम् ।
    (ई) स्वस्थवृत्तार्थं चित्राणि ।
३. योग्यः आतुरालयः । अप्रविष्टरुग्णकृते भेषजालयः । उभयोः सुसज्जं सुव्यवस्थितं लेखनादि ।
४. अध्यापकानां विद्यार्थिनां च कृते उपयुक्तो ग्रंथालयः ।

५. अध्यापकानां विद्यार्थिनां च कृते विश्रान्तिस्थलविभागः ।

६. स्वतन्त्रः कार्यालयः ।

७. (अ) प्रधानाध्यापकयोग्यता–मान्यगुरुवत् ।

(आ) अध्यापकयोग्यता–वर्षद्वयं यावत् अध्यापनानुभवः तथा बी-संज्ञकपरिशिष्टान्तर्गतद्वितीय–नियमानुसारं समितिमान्यपरीक्षासु अन्यतमां कांचन परीक्षां उत्तीर्णः ।

(इ) संस्कृताध्यापकयोग्यताः–प्रधानाध्यापकमान्यत्वम् । प्रधानाध्यापक एव तन्मान्यतां निर्णेतुं प्रभवति ।

८ प्रतिवर्षं नूतनतया प्रविष्टाः विद्यार्थिनः प्रतिरुग्णशय्यं विद्यार्थिद्वयं एतत्प्रमाणाधिका न भवेयुः ।

'ब' संज्ञकं परिशिष्टम्

१ आयुर्वेदाचार्य	अखिलभारतीय–आयुर्वेद–महामंडलविद्यापीठ	दिल्ली
२ आयुर्वेदाचार्य (बनारस)	बनारस हिन्दू यूनिव्हर्सिटी	बनारस
३ आयुर्वेदाचार्य (जयपुर)	महाराजा संस्कृत कालेज	जयपुर
४ आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि	आयुर्वेदिक व युनानी तिब्बी कालेज	दिल्ली
५ आयुर्वेदालंकार	गुरुकुल युनिव्हर्सिटी	कांगड़ी
६ आयुर्वेद चिकित्सक	आयुर्वेद प्रसारक मंडली	सातारा
७ आयुर्वेद रत्न	श्रावणमास दक्षिणा परीक्षा समिति	बड़ोदा
८ आयुर्वेदशास्त्री	महाराजा संस्कृत कालेज	जयपुर
९ आयुर्वेदतीर्थ	आयुर्वेद विद्यापीठ संस्था	अहमदनगर
१० आयुर्वेद उत्तमा	श्रावणमास दक्षिणा परीक्षा समिति	बड़ोदा
११ आयुर्वेद विद्वान्	गवर्नमेंट आयुर्वेदिक व युनानी कालेज	मैसूर
१२ आयुर्वेद विशारद	अखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडल विद्यापीठ	दिल्ली
१३ आयुर्वेद विशारद	राजकीय संस्कृत महाविद्यालय	बड़ोदा
१४ आयुर्वेद विशारद	आयुर्वेद प्रसारक मंडली	सातारा
१५ आयुर्विद्या पारंगत	तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ	पुणे
१६ आयुर्विद्या विशारद	तिलक महाराट्र विद्यापीठ	पुणें
१७ भिषगाचार्य	महाराजा संस्कृत कालेज	जयपुर
१८ भिषगाचार्य	जे० बी० अष्टांग आयुर्वेदिक कालेज	कलकत्ता
१९ भिषगाचार्य धन्वन्तरि	आयुर्वेदिक व युनानी कालेज	दिल्ली
२० भिषग्वर (जयपुर)	महाराजा संस्कृत कालेज	जयपुर
२१ भिषग्वर	प्रभुराम आयुर्वेदिक कालेज	मुंबापुरी
२२ गृहीतायुर्वेद	आयुर्वेद विद्यालय संस्था	अहमदनगर

२३	गृहीतायुर्वेदशास्त्र	य्० पी० आयुर्वेद महाविद्यालय	पाटन
२४	गृहीतायुर्वेदशास्त्र	य्० पी० आयुर्वेद महाविद्यालय	पाटन
२५	वैद्यभानु	प्रेम विद्यापीठ	तुंगभद्रा
२६	वैद्यभूषण	श्राबणमांस दक्षिणा परीक्षा समिति	बड़ौदा
२७	वैद्यगुरु	प्रेम विद्यापीठ	तुंगभद्रा
२८	वैद्यकलानिधि	गव्हर्नमेन्ट आयुर्वेदिक कालेज	त्रिवेंद्रम
२९	वैद्यरत्न	श्रावणमास दक्षिणा परीक्षा समिति	बड़ोदा
३०	वैद्यशास्त्री	महाराजा संस्कृत कालेज	जयपुर
३१	वैद्यवाचस्पति	दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज	दिल्ली
३२	वैद्यविद्याविशारद	धूतपापेश्वर आयुर्वेद महाविद्यालय	पनवेल
३३	L. I. M.	बोर्ड आफ एक्झमिनेशन इन् इन्डियन मेडिसिन्	मद्रास
३४	D.A.S.F. (Bom.)	फैकल्टी आफ आयुर्वेदिक एन्ड युनानी तिब्बी सिस्टम आफ मेडिसिन्स्	मुंबापुरी

'क' संज्ञकं परिशिष्टम्

(दशम (१) नियमानुसारम्)

अध्यापकत्वमान्यतायाः कृते प्रार्थनापत्रम् ।

अयि मान्याः मुंबापुरीस्थ–शुद्धायुर्वेद–पाठ्यक्रमसमितेः अध्यक्षमहोदयाः—

प्रस्तौमीदं भवदीयसेवायां निम्नांकितनिवेदनसंहितं अध्यापकत्वमान्यताकृते प्रार्थनापत्रम् ।

(१) १ संपूर्णं नाम मुखविलासश्च ।

२ वयः ।

३ शैक्षिणिकी योग्यता ।

(अ) उत्तीर्ण परीक्षायाः नाम । दिनांक :

(ब) संस्थाया नाम ।

(क) गुरोर्नाम ।

(ड) अध्ययनस्य कालः ।

४ व्यवसायस्य कालः ।

५ संपादितं वा कस्यांचित् रोगचिकित्सायां प्रावीण्यम् ।

६ अध्यापनस्य पूर्वानुभवः ।

७ वर्तमानं अध्यापनस्थलम् ।

८ चिकित्सापद्धतिः शुद्धा, मिश्रा वा ?

९ आयुर्वेदीयो ग्रन्थसंग्रहः कियान् वर्तते ?

कानि कानि च पुस्तकानि इति सविस्तरं निवेदनम ।

१० रुग्णालयान्तर्गतस्य चिकित्सानुभवस्य सविस्तरं वर्णनम् ।

११ शारीरं, दोषधातुमलविज्ञानं, वनस्पतिपरिचयः, द्रव्यगुणविज्ञानं, रसशास्त्रम् एतेषां प्रत्यक्षज्ञानविषये कानि कानि साधनानि वर्तन्ते ? ।

१२ स्वतंत्रतया कश्चन ग्रन्थः प्रबन्धो वा लिखितो न वा ? ।

भाषांतरितः कश्चन ग्रन्थः प्रबन्धो वा ? ।

१३ किमपि आयुर्वेदीय–संशोधनकार्यं कृतं न वा ? ।

१४ स्वनिर्मितानि परनिर्मितानि वा औषधानि उपयुज्यन्ते ? ।

१५ सामान्यतया दैनंदिनी रुग्णोपस्थितिः चिकित्सालयगता ।

१६ चिकित्सालयस्य कृते अध्यापनस्य कृते च पर्याप्तं स्थलम् ।

१७ एतद्व्यतिरिक्तं किमपि विशिष्टतया उल्लेखनीयं चेत् ।

(२) समितेः नियमाः निर्बंधाश्च मम संमताः ।

भवदीयः

दिनांक :— स्वाक्षरी

"हमारे थोक भाव"

काश्मीरी शिलाजीत, हमारे कारखाने में प्रतिवर्ष करीब २०० मन शास्त्र विधि अनुसार शुद्ध की जाती है । भाव-शुद्ध ३२) सेर, अशुद्ध पत्थर ७५) प्रति मन, लोह भस्म २४), वंग भस्म ३६), प्रवाल भस्म ३२), अभ्रक वज्रभस्म ४६), कांत लोह भस्म २८). स्वर्ण माक्षिक भस्म २८), रस सिन्दूर ८०), स्वर्णराज बंगेश्वर ८८), मंडूर भस्म २०), शंखभस्म ७), शृंग भस्म १४), कर्पादिका भस्म ८), मुक्ता शुक्ती प्रति तोला), मोदन्ती भस्म ३।।।), चन्द्रप्रभा वटी २८), प्रति सेर, स्वर्ण सिन्दूर ३) प्रति तोला ।

नोटः–इन भावों पर २० तोला से कम कोई वस्तु न भेजी जावेगी, सूचीपत्र मुफ्त।

च्यवनप्राश; ५ सेर का २१), १० सेर का ३८), २० सेर का ६५). रु०

काश्मीर आयुर्वैदिक वर्क्स,

(थोक आयुर्वेदिक औषधियों के बनाने का बड़ा कारखाना)

जी० टी० रोड, अमृतसर

वैद्य बन्धुओ, अपनी आय बढ़ाओ

बिना पूंजी, बिना परिश्रम, बिना किसी व्यय के आय बढ़ाना चाहें, तो हम से पत्र व्यवहार करें । हमारा कारखाना भारत भर में थोक परिमाण में सस्ती एवं उत्तम सर्व प्रकार की आयुर्वेदिक औषधिएं सप्लाई करने में प्रसिद्ध है । कई प्रान्तीय गवर्नमेण्टें हमारी ग्राहक हैं । काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, अमृतसर ।

चिकित्सकों व धर्मार्थ औषधालयों को

विशेष सुविधा

सभी प्रकार के उत्तम, गुणकारी भस्म, रस, मात्रा, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी गुग्गुलु, गुटिका, आसवारिष्ट, अवलेह आदि नित्योपयोगी औषधों का थोक व सस्ते भाव में मिलने का—

विश्वसनीय स्थान—

बोध चिह्न

नवशक्ति आयुर्वेदालय
लिमिटेड, भुसावल.

शाखा——जब्बलपुर (म० प्र०)

रोग पर जादू की भांति तत्काल असर करने वाले

मार्तण्ड के आयुर्वेदिक इंजेक्शन

मार्तण्ड की समस्त वैज्ञानिक साधन सम्पन्न और आधुनिक मशीनों से सुसज्जित प्रयोगशाला में उच्च शिक्षित आयुर्वेदज्ञों और विदेशी रसायनज्ञों की देख रेख में निर्माण हुए ये आयुर्वेदिक इंजेक्शन अपना तत्काल असर करते हैं, इनका प्रभाव स्थाई होता है, रक्खे रहने पर भी ये कभी नहीं बिगड़ सकते, इनकी आशुगुणकारिता और शुद्धि की पूरी गारेंटी है। सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगाइये।

निर्माता: **मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत, उत्तर प्रदेश**
(रिसर्च इंस्टीट्यूट आफ इंडियन मेडिसन्स)

वैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ, जो अभी प्रकाशित हुआ है

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान

(पूर्वार्ध)

आयुर्वेद-मार्तण्ड वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य–बम्बई,

किसी भी रोग की चिकित्सा के पूर्व रोगों के निदान का ज्ञान होना परमावश्यक है। रोग के सम्यक् निर्णय के बिना रोगी की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

इसीलिए व्याधि विज्ञान (निदान-रोग विनिश्चय) आयुर्वेद के प्रधान विषयों में सम्मिलित एक उपयोगी विषय है। इस ग्रन्थ में व्याधि विज्ञान के साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधियाँ कितने प्रकार की होती हैं; निज, स्वाभाविक और आगन्तुक व्याधियों में क्या भेद है, स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियों के स्वरूप क्या हैं; प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और समुत्थान भेद से १० प्रकार के रोगानीक कैसे हो जाते हैं; रोगों का आश्रय क्या है, आदि अनेक ज्ञातव्य बातें इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णित हैं। यह पूर्वार्ध खण्ड पांच अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें अध्ययन कर लेने के बाद निदान सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य-सिद्धान्त करामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं। आयुर्वेदीय प्रेमी विद्वान् और विद्यार्थी, दोनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है।

इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

डिमाई साइज के ११२ पृष्ठ की सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का
मूल्य मात्र २॥)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

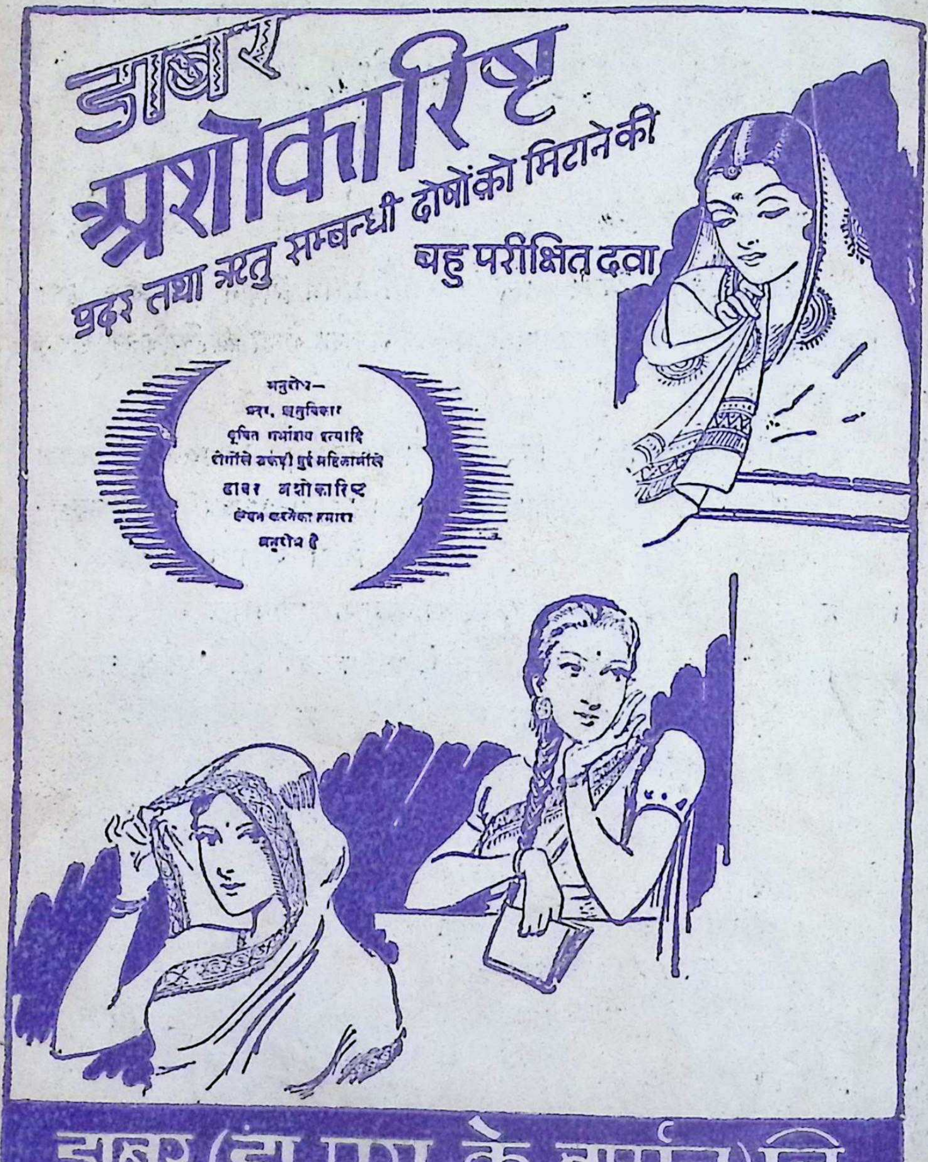

डाबर
अशोकारिष्ट
प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी
बहु परीक्षित दवा

अनुरोध—
प्रदर, ऋतुविकार
दूषित गर्भाशय इत्यादि
रोगोंसे जकड़ी हुई महिलाओंसे
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेका हमारा
अनुरोध है

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—दीपक प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली।

82602
25-3-55
5/

मार्च
१९५५

फाल्गुन
२०११

ॐ
आयुर्वेद
महासम्मेलन पत्रिका

प्रधान सम्पादक

कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि

संस्कृत-विभाग सम्पादकः

वा. वा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः

स्वर्ण सुअवसर से लाभ उठावें !

१. इंजेक्शन—इसमें सभी एलोपैथिक इंजेक्शनों का सविस्तार सचित्र वर्णन है। मू० १०)

२. एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका-पुस्तक पाँच खंडों में है, पाँचों खंड एक साथ हैं। यह सरल हिन्दी में अत्यन्त ही लाभदायक है। इसमें सभी एलोपैथिक दवाओं का सविस्तार वर्णन है। मू० १२)

३. एलोपैथिक चिकित्सा-इसमें एलोपैथिक मत से चिकित्सा करना सविस्तार बताया गया है। मू० ८)

४. सचित्र नेत्र रोग विज्ञान-इस पुस्तक में आँख के सभी रोगों का वर्णन एवं उसकी चिकित्सा तथा आपरेशन करना सचित्र बताया गया है। मू० ८)

५. एलोपैथिक सफल औषधियाँ-इसमें सभी एलोपैथिक रामबाण औषधियों का वर्णन है। मू० ३)

६. मल, मूत्र, रक्तादि परीक्षा-इसमें पैखाना, पेशाब, थूक, वीर्य आदि की जाँचने की विधि बतायी गई है। मूल्य २५)

७. एलोपैथिक पाकेट गाइड-इसमें रोगों का निदान एवं उसका इलाज करना बताया गया है। मू० २॥।)

८. मिकश्चर-इसमें एलोपैथिक दवाओं का मिकश्चर बनाने की विधि है। मू. २।)

९. एलोपैथिक पेटेण्ट मेडिसिन-इसमें सभी एलोपैथिक पेटेण्ट दवाओं का वर्णन है। मू० ३।)

१०. मलेरिया एवं कालाजार-इसमें मलेरिया और कालाजार की चिकित्सा सविस्तार है। मू० १॥।)

११. होमियो कम्परेटिव प्रिंस मेटेरिया मेडिका-इसमें होमियोपैथिक सभी दवाओं का सविस्तार तुलनात्मक वर्णन है। यह होमियोपैथिक की सबसे प्रधान एवं अद्वितीय पुस्तक है। उ० प्र० सरकार ने इस पर इनाम भी दिया है। मू० ८)

१२. होमियो पारिवारिक चिकित्सा-इसमें रोगों का लक्षण, निदान एवं उसकी चिकित्सा बतायी गई है। मू० ५)

अन्यान्य भी कई एलोपैथिक, होमियोपैथिक एवं आयुर्वेदिक पुस्तकें हम से लें।

सूचीपत्र मुफ्त मांगें—

मेडिकल पुस्तक भवन, ६ डी०, बनारस।

डाबर
अशोकारिष्ट
प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी
बहु परीक्षित दवा

अनुरोध—
प्रदर, ऋतुविकार
दूषित गर्भाशय इत्यादि
रोगोंसे जकड़ी हुई महिलाओंसे
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेका हमारा
अनुरोध है

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—दीपक प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली।

बैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ, जो अभी प्रकाशित हुआ है

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान

(पूर्वार्ध)

आयुर्वेद-मार्तण्ड वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य—बम्बई,

किसी भी रोग की चिकित्सा के पूर्व रोगों के निदान का ज्ञान होना परमावश्यक है। रोग के सम्यक् निर्णय के बिना रोगी की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

इसीलिए व्याधि विज्ञान (निदान-रोग विनिश्चय) आयुर्वेद के प्रधान विषयों में सम्मिलित एक उपयोगी विषय है। इस ग्रन्थ में व्याधि विज्ञान के साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधियाँ कितने प्रकार की होती हैं; निज, स्वाभाविक और आगन्तुक व्याधियों में क्या भेद है, स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियों के स्वरूप क्या हैं; प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और समुत्थान भेद से १० प्रकार के रोगानीक कैसे हो जाते हैं; रोगों का आश्रय क्या है, आदि अनेक ज्ञातव्य बातें इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णित हैं। यह पूर्वार्ध खण्ड पांच अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें अध्ययन कर लेने के बाद निदान सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य-सिद्धान्त करामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं। आयुर्वेदीय प्रेमी विद्वान् और विद्यार्थी, दोनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है।

इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

डिमाई साइज के ११२ पृष्ठ की सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य मात्र २॥)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ

१९५५ वर्षीय परीक्षा सम्बन्धी सूचना

१–परीक्षायें २८ मार्च से प्रारम्भ होकर २ अप्रैल तक चलेंगी।

२–परीक्षा समय ११ बजे पूर्वान्ह से २ बजे अपरान्ह तक रहेगा।

३–सभी परीक्षार्थियों के परीक्षा-प्रवेशपत्र (क्रमांक-रोल नम्बर) १२ मार्च तक उनके अध्यापक महानुभावों के पास भेजे जा चुके हैं। विभिन्न केन्द्रों में परीक्षास्थलों का सूचना पत्र एवं परीक्षाओं का तिथिपत्र भी उक्त क्रमांकों के साथ भेजे जा चुके हैं। जिन परीक्षार्थियों को अभी तक प्रवेशपत्र न मिले हों उन्हें चाहिये कि वे अपने अपने अध्यापक महानुभाव से पूछताछ करने के वाद ही विद्यापीठ कार्यालय को लिखें।

४–परीक्षा केन्द्रों को परीक्षा सम्बन्धी सभी सामग्री १९ मार्च तक सभी केन्द्राध्यक्ष महानुभावों के पास भेजी जा चुकी है। २५ मार्च तक जिन केन्द्राध्यक्ष महानुभावों को कोई सामग्री न मिली हो वे विद्यापीठ कार्यालय को तुरन्त सूचित करें।

५–विद्यापीठ कार्यालय का तार का पता केवल "आयुर्वेद विद्यापीठ ऋषिकेश" मात्र है। डाक का पूरा पता—नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ, आत्मविज्ञान भवन, ऋषिकेश (देहरादून) है।

श्रीदत्त शर्मा
आयुर्वेद मार्तण्ड, रायबहादुर
विद्यापीठ मन्त्री

ALL INDIA AYURVED VIDYAPEETH

1955 Examinations

1. The examinations will commence from 28th March and continue till 2nd April, 1955.
2. The examination hours will be 11 a. m. to 2 p. m. every day.
3. The admission cards and roll numbers etc. of all the candidates together with date sheets & the list of examination places at various centres have been sent on or before 12th March 1955 to their respective teachers. Candidates who have not received their admission cards so far should write to the Vidyapeeth office only after enquiring from their teachers.
4. All the material necessary for the examinations has been sent to the examination centres on or before 19th March 1955. The centre Superintendents who do not receive it by March 25 should inform the Vidyapeeth office immediately.
5. The telegraphic address of the Vidyapeeth office is only "Ayurved Vidyapeeth Rishikesh" and the full postal address is "Nikhil Bhartiya Ayurved Vidyapeeth, Atma Vigyan Bhawan, Rishikesh (Dehradun).

Shri Dutt Sharma
Ayurvedmartand, Rai Bahadur
Vidyapeeth Secretary

ALL INDIA AYURVEDA VIDYAPEETH
PRAJA VAIDYA EXAMINATION

The Praja Vaidya Examination of the All India Ayurveda Vidyapeeth will be held only at those Centres of the Vidyapeeth Examinations which lie within the borders of the States of Andhra, Madras, Hyderabad, Mysore and Travancore-Cochin.

This examination is held twice a year—once with the Annual Examinations of the Vidyapeeth in the month of March and secondly in the month of September.

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ
प्रजावैद्य परीक्षा

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की प्रजावैद्य परीक्षा केवल हैद्राबाद, आन्ध्र, मद्रास, मायसोर, एवं ट्रावनकोर-कोचीन राज्यों के अन्तर्गत स्थित विद्यापीठ परीक्षा केन्द्रों में ही होगी। उक्त परीक्षा वर्ष में दो बार होती है—एक तो विद्यापीठ की परीक्षाओं के साथ मार्च मास में और दूसरी बार सितम्बर मास में।

श्रीदत्त शर्मा
आयुर्वेद मार्तण्ड, रायबहादुर
विद्यापीठ मन्त्री

आत्म विज्ञान भवन,
ऋषिकेष, देहरादून।

मलेरिया के लिये कुनीन की जगह

एल्स्टो पिल्स

(सप्तपर्णवटी)

यह गोलियां सप्तपर्ण, कालमेघ, कुटकी, कुचलात्वक आदि के घनसत्वों से तैयार की हैं। सप्तपर्ण (Alstonia Scholaris) के लिये डीमक वोल्युम २ पृ. ३८७–८८ पर-लिखा है कि इसमें कुनीन जैसा डीटेन नामक सत्व है जो मलेरिया, शीतज्वर, विषमज्वर, आदि में अत्यन्त उपयोगी है। पब्लिक होस्पीटल और खानगी दवाखाने में डाक्टरों ने इस्तेमाल करके देखा है कि **परदेश से आने वाले कुनीन सल्फ से यह दवा हजार गुनी अच्छी है** कालमेघ, कुटकी आदि भी बुखार में अत्यन्त लाभ दायक हैं। ६ से १२ गोली देने से बुखार उतर जाता है। कुनीन की तरह बहिरापन आदि नहीं होता।

कीमत ४२ गोली ०॥= तो० १० (गोली ४५० लगभग) रु० ३–८–०

ऊंझा फार्मेसी लि०, ऊंझा (गुजरात), जबलपुर (मध्य प्रदेश)

१९५५ खिस्ताब्दीयायुर्वेदविद्यापीठपरीक्षाणां तिथिपत्रम्

आयुर्वेदविद्यापीठस्य १९५५ खिस्ताब्दीया आयुर्वेदाचार्य-वैद्याचार्य-आयुर्वेदविशारद-वैद्यविशारद-भिषक् तथा प्रजावैद्यपरीक्षाः मार्चमासस्यान्तिमसोमवासरात्, ता० २८-३-५५ तः समारब्धा भविष्यन्ति । तासामधोनिर्दिष्टः समयविभागः ।

परीक्षाकालः—११ वादनतः २ वादनपर्यन्तम्

	आयुर्वेदाचार्य तथा वैद्याचार्य		आयुर्वेद विशारद तथा वैद्य विशारद		आयुर्वेद भिषक्		प्रजा वैद्य
	प्रथम खण्ड	द्वितीय खण्ड	प्रथम खण्ड	द्वितीय खण्ड	प्रथम खण्ड	द्वितीय खण्ड	सम्पूर्ण
सोमवारः २८-३-५५	सुश्रुतसंहिता (सम्पूर्णा)	चरक संहिता (सम्पूर्णा)	शारीरम्	कायचिकित्सा	स्वस्थवृत्तम् त्रिदोषविज्ञानञ्च	कायचिकित्सा	आयुर्वेद सनिदान चिकित्सा
मंगलवारः २९-३-५५	शारीरम्	रोगविज्ञानम्	स्वस्थवृत्तं त्रिदोष विज्ञानञ्च	शल्यतन्त्रंशालाक्यतन्त्रञ्च	रोगविज्ञानम्	शल्यतन्त्रंशालाक्तयन्त्रञ्च	स्वस्थवृत्तम् व्याधिप्रतिरोधञ्च
बुधवारः ३०-३-५५	द्रव्यगुण विज्ञानम् रस शास्त्रञ्च	कायचिकित्सा	द्रव्यगुणविज्ञानम् रसशास्त्रञ्च	प्रसूतितन्त्रम् कौमारभृत्यञ्च	शारीरम्	प्रसूतितन्त्रम् कौमारभृत्यञ्च	प्रसूतितन्त्रम् कौमारभृत्यञ्च
गुरुवारः ३१-३-५५	शल्यतन्त्रंशालाक्यतन्त्रञ्च	अगदतन्त्रम् (व्यवहारायुर्वेदादयः)	रोगविज्ञानम्	अगदतन्त्रादयः	द्रव्यगुणविज्ञानम् रसशास्त्रञ्च	व्यवहारायुर्वेदः अगदतन्त्रञ्च	प्राथमिक चिकित्सा सुलभशास्त्र चिकित्साच
शुक्रवारः १-४-५५	प्रसूतितन्त्रम् कौमारभृत्यञ्च	आयुर्वेदेतिहासः दर्शनादिकञ्च	अष्टाङ्गहृदयम् (पूर्वार्धम्)	अष्टांगहृदयम् (उतरार्धम्)	×	×	×
शनिवारः २-४-५५	मौखिकम्	मौखिकम्	मौखिकम्	मौखिकम्	मौखिकम्	मौखिकम्	मौखिकम्

श्रीदत्त शर्मा
(आयुर्वेद-मार्त्तण्ड, रायबहादुर)
मन्त्री, नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ ।

चिकित्सकों व धर्मार्थ औषधालयों को

विशेष सुविधा

सभी प्रकार के उत्तम, गुणकारी भस्म, रस, मात्रा, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी गुग्गुलु, गुटिका, आसवारिष्ट, अवलेह आदि नित्योपयोगी औषधों का थोक व सस्ते भाव में मिलने का—

विश्वसनीय स्थान—

बोध चिह्न

नवशक्ति आयुर्वेदालय
लिमिटेड, भुसावल.

शाखा—जब्बलपुर (म० प्र०)

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य
सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिये पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें

तार का पता : आयुर्वेद
फोन : ३१७६६

पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई

आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना का प्रश्न

(१२-४-५५ को विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति की मीटिंग)

१—उपर्युक्त विषय पर अपने दो वक्तव्य मैं ने आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के गत अक्तूबर तथा नवम्बर मासीय अंकों द्वारा क्रमशः वैद्यसमाज के समक्ष प्रस्तुत किये थे। उनके आधार पर वैद्य समाज के प्रमुख व्यक्तियों, जिनमें कविराज श्री प्रतापसिंह जी (इन्दौर), श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल (प्रयाग), श्री पं० ठाकुरदत्त जी अमृतधारा (देहरादून), राजवैद्य पं० रामप्रसाद जी (पटियाला), श्री स्वामी जयरामदास जी (जयपुर), वैद्यराज श्री मुन्शीराम जी (भटिण्डा), श्री शिवनाथ जी (देहली), श्री राम दयालु जी जोशी (वैद्यनाथ भवन, पटना), श्री गुलराज शर्मा (नागपुर), श्री पं० हरि दत्त जी शास्त्री (बम्बई), श्री नित्यानन्द जी सारस्वत (पिलानी), श्री वैद्यनाथ मिश्र (मुजफ्फरपुर),के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं, की ओर से मुझे बड़ा प्रोत्साहन मिला है, और उन्होंने इस बात को बल दिया है कि वर्तमान परिस्थिति में आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना ऋषिकेश में ही की जावे। वैद्य समाज का सारांश में यह मत व्यक्त हुआ है कि श्री बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र ने आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना में सहसा विघ्न डाल कर भारत, भारतीय राष्ट्र, आयुर्वेद विज्ञान तथा वैद्यसमाज को बड़ी हानि पहुंचाई है, अतः अब उनके सहयोग के बिना भी ऋषिकेश में विद्यापीठ का स्वतन्त्र विश्वविद्यालय स्थापित होना चाहिये।

२--वैद्य समाज के उपर्युक्त आशय को लेकर ऋषिकेश में काली कमली क्षेत्र से बाहर भूमि प्राप्त करने का यत्न किया गया, जिसके फल-स्वरूप आत्म विज्ञान भवन की सीमा से मिली हुई और गंगा जी के एक दम तट पर १२५ बीघा भूमि थोड़े ही व्यय पर लेने का प्रबन्ध किया गया है। विश्वविद्यालय योजना के उत्तरोत्तर विकास के लिये भी यहां पर्याप्त गुंजायश है।

३--इसी प्रकार जहां काली कमली क्षेत्र ने भूमि देनी स्वीकार की हुई है, उसीके ठीक बराबर हरिद्वार रोड पर भी थोड़े ही मूल्य पर भूमि मिल रही है।

४—परन्तु पूर्व इसके कि उपर्युक्त पैरा सं० २ तथा ३ में उल्लिखित भूमिखण्ड प्राप्त करने के अन्तिम निश्चय किये जायें यह विधानतया आवश्यक है कि वैद्य महानुभाव ऋषिकेश में स्वयं उपस्थित होकर इस भूमि को मौके पर देख लें और अपना उत्तरदायित्व पूर्ण निश्चय करें। एतदर्थ मैंने विद्यापीठ की कार्यकारिणी समिति की एक सभा आगामी १२ अप्रैल के लिये निश्चित की है। सभा का एजण्डा नियमानुसार यथासमय प्रकाशित किया जायगा।

५--मैं यहां वैद्य समाज की सूचनार्थ यह भी निवेदन कर देना चाहता हूं कि श्री बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र की विश्वविद्यालय स्थापना विरोधी कार्यवाही के विरोध में मैं इससे तथा आयुर्वेद सेवा समिति से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर चुका हूं, अब मेरा इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। अब मैं एक मात्र आयुर्वेद विश्वविद्यालय

की स्थापनार्थ एक मात्र वैद्य समाज ही को अपनी सेवायें अर्पित कर रहा हूं परन्तु यदि वैद्य समाज भी विश्वविद्यालय के स्थापना के विषय में अभी असमञ्जस में हो तो मेरे विद्यापीठ-मन्त्री बने रहने में कोई अर्थ ही नहीं रह जाता, क्योंकि मैंने विद्यापीठ के कार्यालय के संचालन के लिये यह मन्त्रित्व स्वीकार नहीं किया था। अतः एव वैद्यसमाज से सानुरोध प्रार्थना है कि इस विषय पर अब जहां तक मेरा और आयुर्वेद विश्व- विद्यालय की स्थापना का सम्बन्ध है, शीघ्र ही उत्तरदायित्वपूर्ण विचार करके अन्तिम निश्चय करें।

जो वैद्य महानुभाव विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के सदस्य न हों उनसे इस वक्तव्य द्वारा विशेष प्रार्थना है कि वे भी ११ अप्रैल को उपर्युक्त अवसर पर ऋषिकेश पधारें और अपने अमूल्य परामर्श से आयुर्वेद जगत को लाभान्वित करें।

आत्म विज्ञान भवन,
ऋषिकेश, ता० १४-३-५५

श्रीदत्त शर्मा
विद्यापीठ मन्त्री

विषय-सूची

क्र० सं०	विषय		पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय		११२
२.	आयुर्वेद और उसका उद्देश्य	श्री गौरीशंकर गुप्त	११३
३.	त्रिदोषवाद और त्रिधातु सिद्धांत की व्यापकता	श्री कृष्णपद भट्टाचार्य	११५
४.	कैंसर पर हीरा	श्री अन्तुभाई वैद्य	११९
५.	शरीर को स्वस्थ रखना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है	पं० रामगोपाल मिश्र	१२०
६.	परिवार नियोजन से हानियां	श्री कमलाकांत त्रिपाठी	१२४
७.	क्षीणा दोषा वृद्धदोषा इव रोगोत्पादनेऽसमर्था	श्री शंकरलाल शर्मा	१२८
८.	क्षीणा दोषा अपि नूनं रोगोत्पादने समर्था भवन्ति	श्री जगदीश प्रसाद शर्मा	१३२
९.	स्रोतोदोषविशेषः	पं० पी. एस. राम शर्मा	१३५
१०.	स्थायी समिति का अधिवेशन		१४१
११.	आचार्य यादवजी का हीरक जयन्ती समारोह		१४५
१२.	राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन		१५३
१३.	A. I. A. Congress, Trivandrum.		१५५
१४.	Biographical Note–Dr. A. Lakshmipathi.		१५८

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि ।
संस्कृत विभागसम्पादकः—वा. बा. नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४१
अंक ३
दिल्ली, फाल्गुण २०११, मार्च १९५५
वार्षिक ५)
एकप्रति ।।)

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ४०वें वार्षिक अधिवेशन की तिथियां निश्चित

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का ४०वां वार्षिक अधिवेशन इस वर्ष त्रिवेन्द्रम (त्रावणकोर-कोचीन राज्य) में ता० २९ अप्रैल से १ मई १९५५ तक समारोह पूर्वक मनाया जा रहा है ।

केरलीय वैद्य महा-मंडलम के तत्वावधान में निर्मित एक सुदृढ़ और प्रभावशाली स्वागत समिति द्वारा अधिवेशन की सफलतापूर्वक सम्पन्नता के लिए पूर्णवेग से तैयारियां की जा रही हैं । आशा है वैद्य बन्धु बड़ी संख्या में उपस्थित होकर आयुर्वेद की अभ्युन्नति, प्रचार, प्रसार एवं उसे राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के स्थान पर प्रतिष्ठित कराने के महासम्मेलन के प्रयत्नों में अपना सहयोग प्रदान करेंगे । अधिवेशन का विस्तृत कार्यक्रम तथा निमन्त्रण पत्र शीघ्र ही स्वागत समिति की ओर से सदस्यों की सेवा में पहुंचेगा । जो महासम्मेलन सदस्य अधिवेशन में प्रस्ताव उपस्थित करने के इच्छुक हों वे अपने अपने प्रस्ताव शीघ्र ही महासम्मेलन कार्यालय में प्रेषित करने की कृपा करें ।

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधान मन्त्री

सम्पादकीय—

इन्दौर में मेडिकल कालेज का उद्घाटन करते समय राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने आयुर्वेद के सम्बन्ध में कुछ ही शब्दों में सब कुछ कह डाला। "आयुर्वेद स्वास्थ्य-जीवन का एक दर्शन शास्त्र है"। इसके साथ ही आयुर्वेद की वर्तमान अवस्था और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों की आयुर्वेद के प्रति उपेक्षावृत्ति पर चर्चा करते हुए उन्होंने कहा "केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारें जितना स्वास्थ्य विभाग पर खर्च करती हैं उसका १ प्रतिशत भी वे सम्भवत: आयुर्वेद के संरक्षण या संवर्धन पर अथवा गवेषणा या आयुर्वेदिक औषधियों के वितरण पर खर्च नहीं करती"। भारत के राष्ट्रपति के ये उद्गार कितने स्पष्ट हैं इसके लिये कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। आयुर्वेद के प्रति सरकारों की वास्तविक मनोवृत्ति का यह सही दिग्दर्शन है। प्रश्न उठता है इसके लियें कौन उत्तरदायी है ? जनता अथवा राज्यतन्त्र ? जहां तक जनता का प्रश्न है उसकी आयुर्वेद के प्रति भक्ति से सभी परिचित हैं। आयृर्वेद उसके संस्कारों में बसा है। राष्ट्र के वर्तमान अधिकारियों ने भी सत्ता संभालने से पूर्व आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित करने की प्रतिज्ञा ली थी, परन्तु सत्ता प्राप्त होने के बाद उन्होंने उसे पूर्णतया भुला दिया। केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारों में रहते हुये वे पाश्चात्य चकाचौंध में ऐसे फंसे कि उन्हें उचित अनुचित की जानकारी प्राप्त करने की भी आवश्यकता प्रतीत न हुई और आयुर्वेद को पूर्णतया उपेक्षित कर दिया। देशरत्न राजेन्द्र बाबू के हृदय से निकले यह उपर्युक्त शब्द वर्तमान सरकारों के लिये एक सामयिक चेतावनी है। संसार जानता है कि हमारे राष्ट्रपति वही शब्द बोलते हैं जो उनके अन्तरतम की पुकार होती है राजनैतिक प्रपंच से वह परे हैं। इसलिये इस सन्त पुरुष के मुख से निकले शब्द भारत के हर व्यक्ति के लिये विचारणीय हैं—सरकारों को तो उनपर विशेषतया ध्यान देना चाहिये—क्योंकि राष्ट्र की मूल सत्ता तो राष्ट्रपति जी के हाथों में ही है--राज्याधिकारियों के लिये उनके शब्द महत्व रखते हैं--शासन की दृष्टि से भी, राजनैतिक दृष्टि से भी और नैतिक दृष्टि से भी।

आजकल केन्द्र तथा प्रान्तों की विधान सभाओं में वार्षिक बजट उपस्थित हैं। कुछ प्रान्तों तथा केन्द्र के स्वास्थ्य सम्बन्धी धन व्यवस्था की जानकारी हमें मिली है। उसे देखकर तो हमें निराशा ही होती है। एक प्रान्त के बजट में ४० आयुर्वेदिक औषधालयों के लिये जितने धन की व्यवस्था की गई है उतने ही धन की व्यवस्था ४ एलोपैथिक डिस्पेंसरियों के लियें की गई है। कुछ प्रान्तों की सरकारों ने तो आयुर्वेद के लिये व्यय करना आवश्यक ही नहीं समझा। ऐसी परिस्थिति में हमें अधिक आशा तो नहीं, फिर भी हम केन्द्रीय तथा प्रान्तीय स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों का ध्यान राष्ट्रपति जी की इस पंक्ति "आयुर्वेद स्वास्थ्य जीवन का दर्शन शास्त्र है" की ओर पुनः दिलाते हैं। इन शब्दों को ध्यान में रख कर बजट की मांगों को स्वीकृत करायें। साथ ही संसद तथा विधान सभाओं के सदस्यों से भी हमारा यह निवेदन है कि बजट पर बहस करते समय आयुर्वेद को न भूलें—उसकी उन्नति तथा प्रसारार्थ अधिक से अधिक सहायता दिलाने का प्रयत्न करें, यह जनता की मांग है जिसकी पूर्ति के निमित्त प्रयत्न करना उनका नैतिक कर्त्तव्य है।

आयुर्वेद और उसका उद्देश्य

श्री गौरीशंकर गुप्त

मरना कोई नहीं चाहता, जीना सब चाहते हैं; वह भी सुखपूर्वक और चिरकाल तक! इसके लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है। संसार में आकर यदि मनुष्य कोई पुरुषार्थ न करे, सहस्रों वर्ष नीरोग अवस्था में जीकर भी उसका जीवन व्यर्थ है। अनन्त पुरुषार्थ मनुष्य के करने योग्य है। उनका चार विभागों में वर्गीकरण किया गया है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन्हीं को चतुर्वर्ग कहते हैं। जिससे ये पुरुषार्थ बन जायं, वह मनुष्य है। इनके साधन के लिए ही शरीर नीरोग होना चाहिये। अस्वस्थ और बल-हीन शरीर से कोई पुरुषार्थ नहीं बन सकता। श्रुति भी कहती है :—"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"। इसी दृष्टि से कविकुलगुरु कालिदास ने कहा है :—"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्"।

शरीर को अस्वस्थ करने वाले रोग होते हैं और वे उन्हीं को होते हैं, जिनमें उनके प्रतीकार की क्षमता नहीं होती। मनुष्य में रोगों के प्रतीकार की क्षमता बनी रहे और संयोगवश रोगों का आक्रमण हो ही जाय, तो उनका शमन किया जा सके, इसी उद्देश्य से आयुर्वेद का आविर्भाव हुआ है। यह अनादि ऋग्वेद का उपवेद है और मानव जाति का कल्याण करना उसका उद्देश्य है। प्राचीन महर्षियों ने किसी भौतिक साधन की सहायता न लेकर अपनी योगशक्ति से आयुर्वेद के शल्य, शालाक्य, काय, भूत, कौमार भृत्य, अगद, रसायन और बाजीकर इन आठ अंगों को लेकर अनेक आयुर्वेदिक तंत्र ग्रंथ निर्माण किये। उनका पठन-पाठन दुरूह होने के कारण कालान्तर में उन्हीं के आधार पर वृन्द, माधव, भावमिश्र, चक्रपाणि, मल्लिनाथ, शिवदास, वङ्गसेन आदि आयुर्वेद विशारदों ने अश्विनी, अत्रि, काश्यप, ब्रह्म, चरक, वाग्भट, हारीत आदि संहिताएँ बनाई और आयुर्वेद का अध्ययन-अध्यापन सरल कर दिया। इस देश में आयुर्वेद का प्रचार सहस्रों वर्षों से है और वह मुसलमानी शासन काल तक बना रहा। यद्यपि उस समय ग्रीस (यूनान) की चिकित्सा-प्रणाली यहाँ प्रचलित हो गई थी, किन्तु उसका मूल आधार आयुर्वेद ही होने के कारण आयुर्वेदिक चिकित्सा पर किसी प्रकार का आघात नहीं हो सका। वह राजमान्य थी और सर्वसाधारण में भी उसका आदर था।

जगत् (गच्छतीति जगत्) और संसार (सम्यक् सरतीति संसारः) इन शब्दों का अर्थ है,- आगे बढ़ने वाला। यह

जगत् या संसार आगे बढ रहा है। समय एक सा कभी नहीं रहता। वह परिवर्तन शील है। उसके साथ-साथ जो नहीं चलता, वह पिछड़ जाता है। अपने देश का समय बदल गया। मुसलमानों के स्थान में अंग्रेज शासक आ गये। नये शासक पुरानी सभी बातों को बदल देना चाहते हैं। जब कि, डाक्टर के नाते ही अंग्रेजों ने इस देश में प्रवेश किया था और ईसाई पादरियों ने अस्पताल खोलकर परोपकार और सेवा का यहाँ स्वांग रचा था, तब अपनी चिकित्सा की धाक जमाये रहने के लिये उन्होंने शासनसूत्र हाथ में आते ही आयुर्वेद पर ही सबसे पहले हाथ साफ करने के लिए कमर कस ली। परिणामतः राजाश्रय और लोकाश्रय के अभाव से, आयुर्वेद विद्या का दिन-दिन ह्रास हो चला। अनेक आघात-प्रत्याघातों को सहकर यह विद्या अभी तक जी रही है, यह उसके चिर-जीवन का प्रमाण है। सत्य तथ्य कभी मर नहीं सकता। वह ज्वार-भाटे में भले ही आ जाय।

यह सभी जानते हैं कि, पश्चिमी चिकित्सा की औषधियाँ आशुफलदायी होती हैं, परन्तु रोग को पूर्णरूप से उन्मूलन करने की उनमें शक्ति नहीं होती। प्रायः लोग आशुफल चाहते हैं, इसी से विदेशी चिकित्सा का यहाँ बोलबाला है और आयुर्वेद की अवहेलना की जाती है। परन्तु जिनको पूर्णतया नीरोग होना है, उन्हें आयुर्वेद की ही शरण लेनी पड़ती है और कितन ही असाध्य रोगों के डाक्टर आयुर्वेदिक चिकित्सा से लाभ उठा चुके हैं।

प्रकृति की रचना बड़ी विलक्षण है। जहाँ विषैली वनस्पतियाँ अधिक होती हैं उसीके आसपास उनके विष का दमन करने वाली औषधियाँ भी पायी जाती हैं। जहाँ साँप अधिक होते हैं वहीं सर्प-विषहारी वनस्पतियाँ भी पायी जाती हैं। यद्यपि मनुष्य जाति के सर्वसामान्य रोग समान ही होते हैं, तथापि देश-भेद से उनमें कुछ-कुछ अंतर होता ही है जौर उनके निवारण के लिए उसी देश की औषधियाँ कार्यकारी हुआ करती हैं। इङ्गलैण्ड जैसे ठण्डे देश की चिकित्सा भारत जैसे उष्ण देश के अनुकूल नहीं है। एक ही देश के विभिन्न प्रान्तों में भी वायु के अनुसार औषध–योजना करना आवश्यक हो जाता है। एक पर्वत की जड़ी-बूटी दूसरे पर्वत के निवासियों के उपयुक्त नहीं होती। आयुर्वेद ने इन सब बातों का सूक्ष्म विचार किया है और वही इस देश के लिए हितकारी है।

सौभाग्य से अब स्वराज्य हो गया है। इस समय राजप्रथा और जनता दोनों का ध्यान आयुर्वेद की ओर आकृष्ट हो रहा है और तदनुसार कुछ कार्य भी होने लगा है। इस परिस्थिति में आयुर्वेदिक बारीकियों को समझाने और सर्वाङ्गीन आयुर्वेद के महत्त्व का प्रतिपादन करने की आवश्यकता है। पश्चिमी और पौर्वात्य औषधि-निर्माण की रीति विभिन्न होने पर भी औषधियाँ एक होती हैं। हम पोदीने का काढ़ा पिलाते हैं और वे पोदीने का सत। बात एक ही है। पश्चिमी प्रणाली से भी हमें ग्रहण करने योग्य अनेक बातें हैं। उदाहरणार्थ, हमारी शल्य-चिकित्सा लुप्त हो गयी है, उसका पुनरुज्जीवन होना चाहिए। रोगियों की व्यवस्था में भी उनका अनुकरण हमारे लिये उपयुक्त

होगा। औषधियों की जाँच और निर्माण के लिए यन्त्र—सामग्री का उपयोग करना हितकर है। सबसे महत्त्व की बात यह है कि पौर्वात्य और पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली का सूक्ष्म आयास होना चाहिये और आयुर्वेद का महत्त्व बताकर उसके प्रचार की पूरी चेष्टा होनी चाहिये। सरकार और सर्वसाधारण को ऐंसी बातें सुझायी जानी चाहियें, जो काम में लायी जा सकें। किसी वस्तु का नष्ट कर देना उतना कठिन नहीं है, जितना उसके बदले में वैसी ही या उससे बढ़कर वस्तु खड़ी करना। हमें यह बात नहीं भूलनी चाहिये कि आज स्वदेशी सरकार एक आज्ञा पत्र के द्वारा विदेशी चिकित्सा-प्रणाली बन्द कर सकती है; परन्तु आज आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली उसका स्थान ग्रहण करने में समर्थ नहीं हो सकती। उसके समर्थ बनाने का उद्योग होना चाहिए और वह भी संगठित रूप से। अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाने का हमारे देश के वैद्यों को अभ्यास हो गया है। उनको एक सूत्र में लाना होगा। इस महत्त्वपूर्ण कार्य में सरकार और जनता दोनों का सहयोग और सहायता अपेक्षित है। प्रभु हमें ऐंसी बुद्धि और शक्ति प्रदान करें जिससे हम अपने उद्देश्य साधन में सफल हों और हमसे जनता-रूपी जनार्दन की अखण्ड सेवा होती रहे। जय आयुर्वेद!

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

त्रिदोषवाद और त्रिधातु सिद्धांत की व्यापकता

आचार्य श्रीकृष्णपद भट्टाचार्य

विज्ञान की प्रगति

जमाना तेजी से बदल रहा है। पढ़े लिखे आदमी कहते हैं कि हम तरक्की की आखिरी मंजिल की ओर तेज रफ्तार से बढ़ रहे हैं। लेकिन तरक्की की आखिरी सीमा तक पहुंच जाने के बाद क्या होगा आज तक किसी भले आदमी ने इस दिशा में सोचने का कदम नहीं उठाया। लोग कहते हैं युक्ति देते हैं साइन्स (मौलिक विज्ञान) की बदौलत हम हर मामले में उन्नत हो रहे हैं। एक मास का मार्ग भी अब एक दिन में तय करने की हिम्मत बंध गयी है। पर उस साइन्स की कृपा से जब मौत भी आती है तो एक साथ सभी को आसानी से खा जाती है। जैसे आये दिन सुनने में आता है हवाई दुर्घटना से या हैदराबाद की गाड़ी पुल से नदी में गिर जाने से साइन्स के बदौलत जल्द चलने वाले हजारों आदमी मौत के घाट जल्द उतर गए हैं। उसी भाँति उद्जन बम की कृपा से करोड़ों की एक साथ

हत्या की आयोजना भी हो चुकी है सिर्फ जमाने का पैंतरा बदलना शेष रह गया है। अस्तु, साइन्स के चिकित्सा भाग या मेडिकल विभाग भी उस तरक्की से पीछे नहीं है। पहले के जमाने में यानी आत्रेय अग्निवेश, सुश्रत, चरक, भावप्रकाश, वाग्भट या उन लोगों के शिष्य प्रशिष्यों के जमाने में मानव प्रकृति की ही नहीं बल्कि समूचि जीव प्रकृति की ही त्रिधातु सिद्धान्त के अनुसार विचारणा की जाती थी और अलग-अलग प्रकृति के जीव पृथक-पृथक भोजन पथ्य सेवन द्वारा जीवन सम्वर्धन करते थे हालांकि आज भी खाने पीने में पुरानी रीति रिवाज मौजूद है।

जीवों की प्रकृति भिन्न होने से भोजन तथा औषधि में भिन्नता

अस्तु, जहां रोजाना के खान पान में प्रत्येक जीव एक ही चीज को अलग अलग ढंग से अपनी प्रकृति के अनुसार पकाकर खाना पसन्द करता है एक ही किस्म के गेहूं के आटे से बनी रोटी प्रकृति के अनुसार किसी के लिये मोटी, किसी के लिये पतली बनकर सात्म्य बनती है वहां एक ही किस्म की औषधि द्रव्य एक ही रीति से सभी प्रकृति में सात्म्य कैसे बन सकती है, यह बात आज तक मेरे साथी डाक्टर लोग मुझे समझा नहीं पाये। गलती मेरी है या उनकी ईश्वर ही जाने।

अस्तु, आजकल हमारे आयुर्वेदज्ञ लोगों ने त्रिधातु सिद्धान्त या प्रकृति सिद्धान्त को छोड़कर मौडर्न साइन्स के अनुसार त्रिदोष सिद्धान्त या विकृति सिद्धान्तको ग्रहण कर लिया है। त्रिदोष सिद्धान्त और कीटाणु में भेद इतना ही है कि प्रकृति (त्रिधातु-वायु पित्त और श्लेष्मा की प्रकृति अवस्था) की विकृति (त्रिदोष-वायु पित्त और कफ की विकृति अवस्था) अवस्था को त्रिदोष कहा जाता है। और उस विकृति से जो कीटाणु या जीवाणु पैदा होकर स्वास्थ्य भंग या रोगोत्पादन करता है उसे कीटाणु सिद्धान्त कहा जाता है। आजकल त्रिधातु सिद्धान्तों को एकदम भूलने की कोशिश की जा रही है पर चरकसंहिता के प्रारम्भ में ही त्रिधातु सिद्धान्त को स्मरण करके कहा गया "अथातो दीर्घजीवितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः"। फिर चिकित्सा स्थान प्रारम्भ करते हुये महर्षि कहते हैं। "अथातो...... रसायनपादं व्याख्यास्यामः"॥

चिकित्सा का उद्देश्य-त्रिधातु का पोषण तथा त्रिदोष का शमन

सभी को विदित है कि 'स्वस्थयस्यौजस्करं यत्तु तद्वृष्यं तद्रसायनम्' यानी स्वास्थ्य शक्ति को जिन द्रव्यों के सेवन के कारण दीर्घ-आयु स्मृति मेधा आरोग्य रूप यौवन या स्थिर यौवन आदि आदि की प्राप्ति होती है उसे रसायन कहा गया है और त्रिधातु (प्रकृति) एवं त्रिदोष (विकृति) या कीटाणु (विकृति से उत्पन्न) वाद को प्रत्येक स्थान में अलग से चमकाया गया है। पहिले महर्षि ने कहा अब हम दीर्घजीवी बनने के उपायों पर सोचेंगे, यानी रोग न होने के त्रिधातु या प्रकृति सिद्धान्त पर विचार करेंगे। फिर चिकित्सा स्थान प्रारम्भ करते हुये भी कहते हैं, पहले हम प्रकृतिवाद पर विचार करेंगे। फिर विकृतिवाद (त्रिदोष और त्रिदोष से उत्पन्न जीवाणु कीटाणुओं पर) पर विचार होगा।

इसलिए औषधि द्रव्य के विभाग में भी कहा गया है कि "स्वस्थ्यस्यौजस्करं किंचित्किंचिदार्तस्य रोगनुत्" यानी कुछ द्रव्य तो प्रकृति या त्रिधातु का पोषक है और कुछ विकृति या त्रिदोष का शामक है ।

चरकसंहिता के प्रारम्भ में ही (सूत्रस्थान में) भोजन-पथ्य द्वारा प्रकृति को विकृति से बचाने के लिए सभी द्रव्य को औषधि तक कह दिया गया है और त्रिधातु वाद (वायु अग्नि और जल से उत्पन्न शरीरान्नवर्ती शुद्ध वायु शान्त पित्त और संयोगी श्लेष्मा) के अनुसार प्रत्येक मानव को अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार दिन, तिथि, नक्षत्र, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु एवं काल के अन्य नियमों के मुताबिक स्वस्थ रखने और रोगों से बचाने की व्यवस्था की गई है । त्रिधातु या त्रिदोष वाद को कीटाणु की भांति जानने के लिए किसी प्रकार माइक्रोसकोप की आवश्यकता नहीं होती बल्कि एक मामूली आदमी भी समझ सकता है, एक चिकित्सक के लिए तो बहुत ही आसान है, दवाखाने में अनेकों मरीज आते हैं, एक कहता है हजूर मुझे ठंडी दवा दीजिए । पौष की ठंड में भी इतना पसीना आता है क्या बताऊं । डाक्टर वैद्य को समझना चाहिए कि पित प्रकृति विकृति (दोष) की ओर दौड़ रही है यानी पित्त धातु पैत्तिक दोष में रूपान्तरित हो गया है । अब इससे शरीर में कीटाणु भी पैदा हो सकते हैं । एक ने कहा सरकार—गर्म दवा दीजिए इस ग्रीष्म ऋतु में भी खांसी सताती है । तीसरे ने कहा वर्षा शुरू होते ही सर में दर्द होने लगता है मालूम होता है नीचे से सारी हवा ऊपर खिंच आई है । कोई कहेगा न गर्म दवा ही दीजिए न ठंडी । यानी रोगी स्वयं अपनी बीमारी के अनुसार बता रहा है । पर वैद्य या डाक्टर यदि उस प्रकृति वाद (त्रिधातु वाद) या विकृति वाद से सम्बन्धित द्रव्यों से प्रकृति के अनुसार परिचित हों तभी वे प्रकृति के पोषक और विकृति के शामक दवा दे सकते हैं । जैसे देशी चिकित्सा की एक औषधि मकरध्वज को ही लीजिए । मकरध्वज सर्व रोगों में चलने वाली दवा है पर अलग अलग प्रकृति के अनुसार अलग अलग द्रव्य के साथ देने का विधान है ।मेरे बड़े भाई साहब को सिर दर्द है मकरध्वज वायु प्रकृति के अनुसार उन्हें मधु त्रिफला के जल के साथ सात्म्य है । मुझे भूख नहीं लगती हाथ पैर में भी जलन रहता है टट्टी में (अपक्व) आम आता है पित्त श्लैष्मिक प्रकृति के अनुसार विकृति के शामक पटौल पत्र स्वरस और अजवायन के चूर्ण और मधु के साथ देने का विधान है । मेरे छोटे भाई को खांसी आती है स्थूल शरीर है—श्लेष्म प्रकृति की विकृति के शामक सोंठ चूर्ण और मधु के साथ मकरध्वज देने का विधान है ।

त्रिधातु सिद्धान्त तथा त्रिदोषवाद की व्यापकता

त्रिधातु सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्रकृति के पोषक द्रव्य के साथ मकरध्वज सेवन से धातुओं में शक्ति वृद्धि होकर रोगाक्रमण शक्ति सदैव के लिए नष्ट हो जाती है, और त्रिदोपसिद्धान्त के अनुसार विकृति के शामक द्रव्य मकरध्वज के देने से

विकृतिस्थ धातु प्रकृतिस्थ बन कर रोग कीटाणुओं को नष्ट कर देता हैं। आयुर्वेद के चिकित्सा भाग के द्रव्य सिद्धान्त की यही विशेषता है इसलिए वैदेशिक चिकित्सा सिद्धान्त या वैदेशिक व्यापार बृद्धि इस देश में आने से पहिले यहां त्रिधातुवाद के अनुसार मानव भोजन पथ्य रूप औषधि द्रव्यों द्वारा स्वस्थ रहता था पर अब 'ते हि नो दिवसाः गताः'।

मेरे डाक्टर भाई तथा मिलावटी (मिश्रित) प्रणाली से शिक्षित अर्ध डाक्टर तथा वैद्य लोग मुझे आज तक समझा नहीं सके कि पैन्सलीन के सभी रोगों में अन्धाधुन्ध प्रयोग में क्या सिद्धांत है। पैन्सलीन पूर्वोक्त भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले व्यक्तियों की बीमारियों में जो कार्य करता है जिसका प्रयोग सुई द्वारा शिराओं में किया जाता है, उसका परिणाम भिन्न भिन्न प्रकृति के मानव के स्वास्थ्य तथा जीवनी शक्ति पर किस प्रकार निकलेगा ? इस सम्बन्ध में कोई भी चिकित्सक योग्य उत्तर दे नहीं पाते।

दूसरी दवाइयां जैसे स्टैप्टोमाइसीन और बी० सी० जी० का टीका

सभी को विदित होगा कि यक्ष्मा और क्षय एक चीज नहीं। राजयक्ष्मा त्रिधातु की पूर्ण विकृति से या भोग के परिणाम से या अधिक वीर्य पूर्ण ओज क्षय से होता है। यह रोग प्राचीन काल में धनी लोगों को होता था और गरीबों में उसका नाम क्षय रोग है। भेद इतना ही है कि त्रिधातु या प्रकृति के पोषक अन्नाभाव से सभी धातु-उपधातु क्षयको प्राप्त होकर स्वतः ही किसी के फेफड़े में, किसी के हड्डी में या किसी के पेट में उपद्रव मचाता रहता है और उसे रोकने के लिए उचित पोषक पदार्थ की आवश्यकता होती है। चरकसंहिता के प्रारम्भ में क्षयनाश के लिए नाना प्रकार के मांस वर्ग तथा घृत दूध मक्खन मलाई आदि की व्यवस्था की गई है जो अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार सात्म्य होता है। यक्ष्माधिकार की कोई भी अच्छी दवा आज योजनाभाव से क्षय पीड़ित गरीब मानव शरीर पर उत्तम ढंग से कार्य नहीं करती। बल्कि बाजीकरण और रसायनाधिकार की दवा के साथ उत्तम भोजन तथा अच्छी हवा और निवास बदलने से क्षय आरोग्य हो जाता है। स्टैप्टोमाइसीन या बी० सी० जी० वैदेशिक चिकित्सक अपने देश के यक्ष्मा रोगियों के लिये आविष्कार किये हैं। हालांकि कीटाणु सिद्धान्त के अनुसार शीत प्रधान देश के लिए भी ये दवाइयां कहां तक साथ में हैं वहां के आविष्कारक आज तक बता नहीं सके। ऐसी स्थिति में भारतीय जनता के लिये यक्ष्मा रोग की ये दवाइयां क्या मृत्यु का पैगाम नहीं हैं।

आयुर्वेदिक औषधियों से ही भारतीय जनता का कल्याण हो सकता है

मेरी सम्मति में भारतीय जनता को बचाने के लिए औषधि नियन्त्रण अति आवश्यक है। कोई भी दवा हो जब तक पता नहीं चल जावे कि उससे प्रकृति में क्या विकार आ सकता है उसका प्रयोग नहीं होना चाहिये। क्योंकि अन्धाधुन्ध औषधि प्रयोग से जन-स्वास्थ्य तेजी से बिगड़ता जा रहा है। जहां डाक्टर वैद्य तथा औषधि का पूर्ण रूपेण अभाव है

वहां की— जनता आज भी स्वस्थ है। डाक्टर वैद्यों को चाहिए कि भारत में उत्पन्न वस्तुओं से दवा बनावें। आज हम आजाद हैं अलग अलग मेडिकल कौंसिल की जरूरत ही क्या है सभी एक ही जगह बैठकर सोचें कि राष्ट्र नीरोग कैसे बनें। आज ३५ करोड़ भारतवासियों के अन्दर जो बीमारियां हैं उसके दो कारण हैं (१) भोजन पथ्य में प्रकृति के पोषक पदार्थ का अभाव तथा (२) अन्धाधुन्ध देशी विदेश पेटेण्ट औषधियों का प्रयोग। जब तक इन दोनों से जनता की रक्षा न की जायेगी और प्रकृति विकृति न समझ कर मानव शरीर की विचारणा तथा प्रकृति के अनुकूल औषधि प्रयोग न होगा तब तक जन स्वास्थ्य की उन्नति असम्भव है चाहे राजकुमारी जी देश के कोने कोने में डाक्टर ही डाक्टर तथा बी० सी० जी० क्यों न फैला दें—सत्य दर्शन होना चाहिए असत्य से देश बचेगा नहीं।

—:०:—

कैंसर पर हीरा

आचार्य श्री अन्तूभाई वैद्य आयुर्वेदबृहस्पति

कैंसर में हीरा की भस्म का प्रयोग करने से ३० प्रतिशत रोगियों में लाभ हो सकता है। कैंसर का कारण अभी तक ठीक-ठीक विदित नहीं हुआ। आयुर्वेद के वर्णन के अनुसार कैंसर अर्बुद रोग मालूम पड़ता है। एलोपैथी के सारकोमा (Sarcoma) को मांसार्बुद समझना चाहिए। कैंसर की उत्पत्ति कोष (Cell) में से होती है। इसकी वृद्धि होती रहती है, किन्तु वर्षों तक पता नहीं लगता। हीरा की भस्म १ या १॥ महीना तक लेनें से लाभ होने लगता है, पीड़ा कम होने लगती है और कैंसर की गांठ छोटी होने लगती है। मधुमेह के कारण गले में जो अर्बुद (कारसिनोमा टानसिलस) होता है उसमें भी हीरे की भस्म देने से लाभ होता है। एक स्त्री की कमर की हड्डी, श्रोणिफलक में गांठ, ट्यूमर (मायलोमा Myeloma) था। १० वर्ष बीमारी भोगने के बाद हीरा की भस्म दी गई। २२ दिनों में संतोषजनक परिणाम दिखा। रोगी चलने फिरने लगा। मालूम पड़ता है, हीरा में जो कार्बन होता है, उसीके कारण एसा असर होता है। हीरा भस्म के साथ गोखरू, वरुण, कांचनार, शिलाजीत, खुरासानी अजवायन, अमरबेल और पुनर्नवा का मिश्रण यथावश्यक किया जाता है। बाहरी लेप के लिए शुद्ध भिलावा का चूर्ण, कली के चूने के पानी के साथ मधु मिलाकर लगाना चाहिए। रोगी को शीत स्थान में नहीं रहना चाहिए। बिछौने में लेटे रह कर विश्राम करना चाहिए। शारीरिक श्रम नहीं करना चाहिए और न भोजन में खट्टी वस्तुएं लेनी चाहिएं। जो कैंसर स्तन में हो या गर्भाशय के मुख में (Cancer of the breast and Cervix) हो, उसमें यह प्रयोग ९० प्रतिशत सफल होता है। हीरा के प्रयोग से कैंसर के कोष आगे नहीं बढ़ सकते। हीरे की भस्म से शरीर के स्वस्थ कोषों को कोई हानि नहीं पहुँचतीं। भस्म बनाने के लिये चूर्ण लेने के बदले समूचा हीरा लेना चाहिये। हीरे का शोधन पहले तूतिया के पानी में, फिर कुलथी के क्वाथ में, फिर अगस्त के क्वाथ में करके सलफ्यूरिक एसिड में रखना चाहिए। फिर आक (रूई) के दूध की भावना देकर इक्कीस बार गजपुट में फूकना चाहिए। मात्रा :—साधारण आधे चावल की रखें और अगस्त के क्वाथ का अथवा गोखरू आदि औषधियों का अनुपान रखें तो थोड़ी मात्रा से काम चल जाता है। गोखरू १॥ माशा, वरुण १ आना भर (६ रत्ती), कचनार १॥ माशा, शिलाजीत १॥ माशा, खुरसानी अजवायन १॥ माशा, अमरबेल १ आना भर और पुनर्नवा २ आना भर ले कर सबको आधा पाव पानी में पकावें। जब १ छटाँक रहे तब उतार छान कर सवेरे शाम हीरा की भस्म लेने के बाद पीवें। लेप के लिए भिलावा, कली (चूना) के साथ टुकड़े करने से दर्प रहित हो जाता है और मधु के साथ लेप करने से छाले नहीं पड़ते और लाभ होता है।

शरीर को स्वस्थ रखना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है

पं० रामगोपाल मिश्र

शरीर को स्वस्थ रखना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। और वह इसी अर्थ में कि आयुर्वेद में कथित स्वास्थ्य रक्षणीय उपदेशों के पालन में दत्तचित्त मानव पथ्य सेवी बना हुआ जब अपने शरीर को स्वस्थ रखने में समर्थ होता है तब ही "यतोभ्युदय निःश्रेयसः सिद्धिः सधर्मः" (धृ-धारणे बोधना लक्षणार्था धर्मः) धर्म की ऐसी परिभाषा से लाभ उठा सकता है। अनेक जन्मों की अर्जित सुकृति के फलरूप प्राप्त नर देह का मूल्य आंक सकता है। न्यायोपार्जित सत्यपूत द्रव्योपार्जन से अपने में संतोष को धारण करने की शक्ति सम्पादन कर जीवन नौका को सुखपूर्वक खेते हुये आवश्यक भौतिक वस्तुओं की इच्छानुरूप प्राप्ति के साथ नाना भोगों को सानन्द भोग सकता है। एवं परमार्थ साधन में लगा हुआ मोक्ष भी सहज साध सकता है। इसी आधाराश्रय पर तो "धर्मार्थ काममोक्षाणा शरीरं मूलमुत्तमम्" कहा गया है।

किन्तु आज तो यह बात स्वप्न सी हो गई है। आज तो भारतीय मानव का स्वास्थ्य बहुत गिरी दशा में है। एक समय वह भी था जब कि यहां के निवासी रणस्थल में ही घायल और आक्रान्त हुये देखे जाते थे आज के समान नाना रोगों

से आक्रान्त हुये नहीं। अपवाद रूप क्वचित कोई असंयमी रोगाक्रान्त हो भी जाता था तो केवल ज्वरादि सामान्य व्याधि से ही कुछ पीड़ित हो जाता था। आज के समान सामूहिक रूप से कठिन असाध्य और महारोगों से पीड़ित नहीं। कारण यही कि उस काल के मानवों के संयम, नियम और पथ्य सेवन की दृढ़ता से प्राप्त शक्ति के आगे रोग उनपर आक्रमण कर उन्हें रोगी बनाने में असमर्थ रहते थे। उस समय के लोगों के रक्त में रोग बीज को नष्ट कर देने वाले रक्ताणुओं की मात्रा अत्यधिक हुआ करती थी। उनपर विप्रकृष्ट निदान अर्थात् मोसमी सरदी, गर्मी, वर्षा के हीन, मिथ्या, अतियोगादिकों का प्रभाव सहज में नहीं पड़ता था।

क्योंकि उस समय के लोग अपने आहार और विहार का उपयोग अपनी प्रकृति और निसर्ग को समझ कर पटने योग्य सात्म्य (सुखावह) प्रकार वाला किया करते थे। सूक्ष्म और स्थूल दोष त्रय के भेदों को कुपित करने वाले काल, अर्थ और कर्म से हीन, मिथ्या अतियोगों से संयम नियम पूर्वक सदा सावधान रहते थे। प्रज्ञापराध से भी वे सदा बचा करते थे। दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, आचार और विचार का वे आयुर्वेदिक विधि के अनुसार निर्वाह करते थे।

इसीलिये वे प्रवर सत्व, मध्य सत्व वाले, उच्चतम सारयुक्त, पूर्ण स्वस्थ, बलवान् , ओज, तेजयुक्त मेधावी, काँतिमान, दृढ़, पुष्ट और सुडौल, गठीले शरीरी धीर, वीर और दीर्घजीवी होते थे, हीन सत्व (निर्बलपन) वाले रससार पर अवलम्बित जीवन वाले नहीं।

उनका शरीर ऊंचा, तगड़ा, सुडौल और दर्शनीय होता था। उनमें पुरुषार्थ की फड़क, कर्तव्यशीलता, व्रतपालन की दृढ़ता, साहस, सत्य, न्याय, धर्म पालन की अभिरुचि होती थी। मानव धर्म को पालन करने में वे सदा सावधान रहते थे, मानवी प्रेम को सम्पादन करने में दक्ष होकर वे विश्व बन्धुत्व को स्थाई बनाते थे। वे औषधियों से निर्मित पाक आदि सेवन कर बल संचय करने के आदि न थे। वे सदा नियमित समय पर विधिवत सुपाच्य अन्न से निर्मित भोजन करते थे। उनके भोज्य, भक्ष्य, लेह्य, चोष्य और पेयपान में जीवन सत्व की मात्रा अच्छे प्रमाण की होती थी। वे मादक द्रव्यों, पेयपानों, कुत्सित आहार, विहारों, धूम्र पानादि सदा दूर रहते थे। वे व्यर्थ की चिन्ता, शोक, भय, लोभ, मोह, क्रोध को पास फटकने नहीं देते थे। वे अपने जीवन निर्वाह से लगाकर नगर, गांव, देश के संरक्षण का काम तन, मन और धन से सामूहिक रूप से परस्पर में मिलकर करते थे। इसीलिये उनमें निरोगता शान्ति और सुख विराजते थे। उनका जीवन सादा और दीर्घजीवी होता था।

एक समय आज है कि उन्हीं भारतीयों की महान शोचनीय दशा देखने में आ रही है। जिसको देखो उसको क्षय ने घेर रखा है, कुष्ट ने अपनी चपेट में दबोच रखा है। मृगी, उन्माद, मंदाग्नि, संग्रहणी, अतिसार, विषम ज्वर के भेदों ने लोक स्वास्थ्य पर धावा बोल रखा है। परिदर

(पायोरिया) जन जन के दांत उखड़वाने में लगा हुआ है। पूयमेह (गनोरिया) उपदंश (सिफलिस) वात व्याधि, पाण्डु, उदरशूल, आमवात से प्रतिव्यक्ति त्रस्त होता जा रहा है। प्रदर, प्रसूत रोग, सूतिका क्षय से स्त्रियों को भी त्राण मिलना दुरूह हो रहा है। डाक्टरों के झुण्ड सबको त्राण देने झुके हुए हैं, वे टोंच भोंक से लोकों के स्वास्थ्य लाभ और स्वास्थ्य रक्षण का जी जान से प्रयत्न कर रहे हैं, तो भी सफलता हाथ नहीं पड़ रही है। उनकी सिद्ध औषधियें फेल होती जा रही हैं, नित नया आविष्कार एक ओर होता है दूसरी ओर गिरता जाता है। अपेयपान, अभक्ष्य भक्षण, असेव्य सेवन का मार्ग प्रशस्त होता जा रहा है, संयम नियम, आचार, विचार और सदाचार, ब्रह्मचर्य को कोई कौड़ी मोल पूछने को तैयार नहीं है। आयुर्वेद के उपदेशों और वैद्यों की सलाह सुनने, लेने को कोई खाली नहीं है।

भारत में जिधर देखो उधर लोग नाटीकद के घुच्चू, कृशांग, कुरूप, रोगी, आलसी, अल्पायु, डरपोक, निर्बल दिखाई देते हैं। समस्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जा रही है। ज्यों ज्यों औषधियों के नये नये आविष्कार होते जा रहे हैं त्यों त्यों हठी रोगों ने भी नित नये नये रूप धर कर सिर उठाना आरम्भ कर रखा है। और "मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों ज्यों दवा की" यह कहावत चरितार्थ होने लगी है।

ऐसा क्यों? इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि, एक समय वह था, अतीत का नहीं, धर्मराज युधिष्ठिर के राज्यकाल का नहीं अपितु पृथ्वीराज चौहान, शिवाजी और छत्रसाल जिस समय हो गये हैं उस समय तक प्रत्युत उनके बाद भी बीतने वाले बहुत काल तक भारतीय मानव समाज स्वास्थ्य रक्षण का आधार स्तम्भ और शक्ति सम्पादन के नीव की दृढ़ शिला ब्रह्मचर्य के महत्व को जानता था। वीर्य रक्षा के लाभ को समझता था, प्रज्ञापराध रूप महादोष से अहर्निश बचने का प्रयत्न सावधानी पूर्वक करता था। "धी धृति स्मृति विभ्रष्टः कर्मयत् कुरुतेऽशुभम्। प्रज्ञापराधं तं विद्यात्सर्वदोष प्रकोपणम्॥" (च० सं० शा० स्था० अ० १ सू० १००) अपनी बुद्धि, धारणा शक्ति और स्मरण शक्ति से भ्रष्ट हुआ अशुभ (खोटे) कर्मों को नहीं करता था। निकृष्ट कर्मो की ओर आकृष्ट करने वाले मनोरंजनों से सदा बचा रहता था। वैसे पथ से चलने वाले चरित्र भ्रष्टों से दूर रहता था। अपने नित्य और नैमित्तिक कर्मों को निश्चित समय में ही पूर्ण करता था। मल, मूत्र, जँमुवाई, छींक, डकार, 'अपान वायु', आदि के वेगों को नहीं रोकता था। अचेष्टित कर्मों को करने से सदा सर्वदा दूर रहता था। प्रजोत्पादन की भावना से ही प्रेरित हुआ ऋतु काल में निश्चित अवधी पर स्त्री सहवास करता था। कामुक मनोवृत्ति से अपने वीर्य का अतिव्यय, अपव्यय, अपक्व वीर्य व्यय नहीं करता था। कर्मकाल का पात नहीं होने देता था। मिथ्या कर्म का आरम्भ भूल कर भी नहीं करता था। विनय, सदाचार, आचार और विचार का त्याग, माता, पिता, गुरु-

जन और वृद्धों का अपमान, अहितकर स्वास्थ्य घातक विषयों का सेवन, कुसंग और निन्द्यस्थल का भ्रमण, निन्दित कर्मों द्वारा मित्रता का निर्वाह, इन्द्रियोपयुक्त सद्व्रत का त्याग, ईर्षा, मान, मद, क्रोध, लोभ, मोह और भ्रम तथा उनसे उत्पन्न निन्दित दैहिक और मानसिक कर्म, रजोमोह से उत्पन्न होने वाले नाना दुष्कर्म स्वप्न में भी पसन्द नहीं करता था।

किन्तु संसार परिवर्तनशील है। परिवर्तनीय संक्रमण काल आ पहुंचा। मुगलों का पदार्पण यहां हो चुका। यहां की प्रशस्ती लुप्त होने लगी, संस्कृति बदलने लगी, व्यभिचार और वेशभूषा के परिवर्तन की बाढ सी आ गई। आयुर्वेद पर घातक प्रहार होने लगा। फिर भी यहां के लोक समाज ने बड़े धैर्य से अपने स्वास्थ्य रक्षणीय विधि विधान का संयम और नियम पालन का साहसपूर्वक निर्वाह किया और अपनी सभ्यता को बचाकर रखा।

किन्तु अंग्रेजों के पदार्पण के बाद उनकी मर्यादा का बांध टूट गया। वे नयी सभ्यता की चकाचौंध में फंसने लगे और शनै-शनै अपने घर का सामान अपने को कभी फिर काम देगा इस बात को भूलने लगे परिणाम यह हुआ कि यहां का मानव स्वार्थांध बनकर अपने मानव धर्म को ही भूल गया जो कि विश्वबन्धुत्व का हामी था। त्याग की शिक्षा देनेवाले वर्णाश्रम धर्म की शृंखला झटक झटक कर तोड़ी जाने लगी। परिणाम यह निकला कि मानव ने मानव के साथ मानवोचित कैसा व्यवहार करना चाहिए इसे भी जाननें समझने में यहां का मानव समाज असमर्थ हो गया। उसमें भारतीयता को सुशोभित करने वाले न तो सद्गुण रह गये न अपने स्वास्थ्य रक्षण योग्य शक्ति। यहां के मानव समाज ने पाश्चात्यों के पद चिन्हों पर चलने की ठान कर उनकी ही पूरी नकल करना ठान लिया। भारतीय स्वास्थ्य रक्षणीय विधि विधान, वेशभूषा और सभ्यता को तिलांजली ही दे दिया है।

जिस भारत में गौ धन, बाजि धन, गज धन, स्वर्ण और रत्न धन की अपेक्षा संतोष धन को महत्व दिया जाता था, जहां अन्न, गोरस की विपुलता थी, जहां के कृषकों और व्यापारियों की समता कोई देश नहीं कर सकता था जो कभी संसार का मुकुटमणि गिना जाता था, उसी देश में आज वहां का मानव समाज अस्वस्थ, रोगाक्रान्त और भूखों मरता होने पर भी श्वान शूकरवत व्यभिचार रत, स्वार्थ रत, गृहकलहरत, भेदबुद्धिरत, हिंसा और असत्य रत हो रहा है।

जिस समय यहां के मानव समाज को दूध, दही, मलाई, माखन, घी, सुपाच्य अन्न तथा वस्त्र, प्राप्त होने में विपुल प्रकार वाली सुविधा थी और जब वह स्वस्थ, बलीष्ट, सौन्दर्यवान था तब तो व्यभिचार से और व्यतिरेकात्मिका व्यभिचारिणी बुद्धि से दूर रहकर अन्वयात्मिका अव्यभिचारिणी समान बुद्धि का अवलम्ब लिये विश्व प्रेम को देने की सामर्थ्य रखता था और अपनी चढ़ी बढ़ी स्वस्थ बुद्धि और मन की गुण गरिमा के प्रताप से भारतीय भू को देव भूमि, स्वर्ण भूमि और कर्म भूमि कहलवाने का

अधिकारी बना हुआ था। ऐसा होने में कारण केवल उस समय में वह आयुर्वेदीय स्वास्थ्य रक्षण में सहायक उपदेशों को मानकर चलता था इसलिये स्वस्थ था। स्वस्थ होने से ही उसके मन, बुद्धि, इन्द्रियों में विकार का नाम उत्पन्न नहीं होता था।

रोगी मन, बुद्धि, शरीर के होने पर ही मानवी स्वभाव में कृति और कर्म में नाना विकारों का प्रादुर्भाव सम्भव होता है। यहां का मानव समाज आज रोगी है—अस्वस्थ है और इसीलिये उसमें अपनी मानवता को समझने वाली बुद्धि शक्ति का ह्रास हो चुका है, मन कर्तव्य पथ से भ्रष्ट हो चुका है। व्यभिचार और वर्ण संकरता बढ़ाने का इच्छुक हो कर असवर्ण विवाह और पाश्चात्य दोषपूर्ण भारतीय संस्कृति का अधःपतन करने वाली शिक्षा दीक्षा का उपासक बन बैठा है। यद्यपि आधुनिक काल की उच्च शिक्षा से पुरुषवर्ग और स्त्रीवर्ग को लाभ है पर फिर भी यह तो स्पष्ट है कि जितना लाभ उससे है उसकी अपेक्षा हानी अधिक है। कारण यही की वह उच्चशिक्षा पाश्यात्यों के ढ़ंग में पगी हुई है, भारतीय मानवसमाज को भारतीय संस्कृति के साथ पटने योग्य नहीं है।

(क्रमशः)

* * *

परिवार नियोजन से हानियां

आयुर्वेदाचार्य कमलाकान्त त्रिपाठी

सरकारी परिवार नियोजन योजना या सन्तति निरोध की कार्य शृंखला तीन वर्ष से उत्तर प्रदेश में चल रही है। अन्य प्रदेश में भी यह प्रकट और गुप्त रूप से चलाई जा रही है। किन्तु उत्तर प्रदेश में चलती हुई इस योजना पर यहाँ के स्वास्थ्य मन्त्री जी ने बताया है कि राज्य में ७६ परिवार नियोजन क्लिनिक स्थापित किये गये हैं। ५२७ स्त्री-पुरुषों के आपरेशन हुए जिनमें ४४२ स्त्रियाँ और ८५ पुरुष हैं। यह लेखा आपने एक वर्ष का दिया है। माननीय मन्त्री महोदय ने इन बनाये जाने वाले नपुन्सकों और बन्ध्याओं की विधि क्रिया, उपाय और परिणामों पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। इसके प्रयोग करने वाले डाक्टरों ने भी इसके सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण नहीं किया है।

यह लघुतम संख्या तो स्वेच्छापूर्वक नपुन्सक या बन्ध्या बनाये जानेवालों की है। किन्तु इस मुहीम में सरकारी वृत्ति भोगी डाक्टरों द्वारा चिकित्सा के नाम पर अनिच्छापूर्वक कितने नपुन्सक और बन्ध्यायें बनाई गई हैं उनका कोई लेखा-जोखा प्रकाश में नहीं आया है।

पर्याय – हिन्दी में सन्तति निरोध के और भी कई नाम हैं जैसे—परिवार निरोध, जन्म संरोध, जन्म शासन, जन्म

संयम, गर्भ नियन, सन्तान निग्रह, जनन निवारण आदि ।

अंग्रेजी में इसे कन्ट्रोल, कन्ट्रासेप्शन, फेमिली लिमिटेशन प्रिवेन्सन, आदि कहते हैं । डाक्टर मेरी स्टोप्स के शब्दों में परिवार नियोजन–बर्थ कन्ट्रोल, पुरुष और स्त्री द्वारा किसी भी 'प्रकार के उस प्रयोग को कहते हैं जिससे सम्भोग––पुरुष और स्त्री का सहवास तो होता है परन्तु साथ ही साथ स्त्री डिम्बाणु से शुक्रकीट के संयोग को रोका जाता है जिसमें गर्भ स्थिति नहीं रहती है । तात्पर्य यह है कि स्त्री और पुरुष में सम्भोग अवश्य हो परन्तु उसके फलस्वरूप स्त्री गर्भवती न हो जाय ।

पुराना इतिहास—प्राचीन ग्रन्थों से प्रमाणित है कि गर्भ निरोध विधियां हजारों वर्ष पहले उन्नत रूप में वर्तमान थीं । भारत के प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख है जैसे नागरसर्वस्वम्, उड्डीय तन्त्र, प्राणकृष्णोषधावली, इन्द्रजालादि संग्रह, दत्तात्रेयतन्त्र, कामसूत्रादि । भारत में सन्तति निरोध के इतिहास को मुख्यरूप से दो भागों में बांटा जा सकता है ।

प्राचीनकाल—पुराने समय में अनेक प्रकार की गर्भ निरोध विधियों का ज्ञान प्रचलित था । योनि में शहद का प्रयोग करना बहुत प्राचीन काल से होता आया है । रूई में कड़वा तेल लगा कर योनि में रख कर विषय भोग करने से शुक्रकीट उसीमें मर जाते हैं । यह विधि आज भी किसी न किसी रूप में देहातों में प्रचलित है । खाने तथा लगाने की ऐसी अनेक औषधियां थीं और हैं जिनके लगाने और खाने से स्त्री स्थाई और अस्थाई बन्ध्या हो जाती है । इन्द्रायण, धतूरा, पान, चित्रक की जड़, गेरू, पीपल, जायफल,, रेड़ी, मूली, सोया, गाजर के बीज, हींग आदि अनेक ऐसी दवाएं हैं जिनके आभ्यन्तरिक और वाह्य प्रयोग से स्त्री स्थाई या अस्थाई रूप से बाँझ हो जाती है । प्राचीन काल में ब्रह्मचर्य द्वारा गर्भ निरोध का अधिक महत्व था ।

आधुनिक काल—वर्तमान समय में भारतवर्ष में जन्म निरोध का अभ्यास पाश्चात्य सभ्यता की उपज है । जन्म निरोध का आन्दोलन पाश्चात्य देशों में फैलते हुए भारत में भी फैल रहा है । इस जन्म निरोध के निम्न भेद हैं :—

१ **यान्त्रिक विधियाँ**—इसमें स्त्री पुरुष एक प्रकार के यन्त्र का प्रयोग अपनी जननेन्द्रिय पर करते हैं जिससे सम्भोग तो होता है परन्तु शुक्रकीट स्त्री डिम्ब से नहीं मिल पाते हैं ।

२. **रासायनिक विधियाँ**—इसमें सम्भोग के पहले या बाद में रासायनिक पदार्थों के प्रयोग किये जाते हैं । इससे शुक्रकीटों को नष्ट किया जाता है ।

३. **यन्त्र रहित तथा रासायनिक पदार्थ रहित विधियाँ**—इन विधियों में सम्भोग साधारण रूप से होता है परन्तु या तो वीर्य स्खलन नहीं होता या योनि पथ के बाहर होता है । यह अस्वाभाविक विधियाँ हैं । स्त्री के मासिक धर्म के नियत समय में सम्भोग किया जाता है और नियत समय पर बन्द कर दिया जाता है । जिन दिनों सम्भोग किया

जाता है उसे सुरक्षित काल कहते हैं। इस काल के निश्चित करने में भी मत-भेद हैं।

४. नपुन्सकीकरण या बन्ध्यात्व आनयन—इसकी विधियों में स्त्री पुरुष को बन्ध्या अथवा नपुन्सक बना दिया जाता है। इस श्रेणी की विधियों को पांच भाग में विभक्त किया जाता है—१ अस्त्रोपचार २ वायोकेमिकल विधि या इञ्जेक्सन देने की विधि ३ औषधि प्रयोग की विधि ४ एक्सरे की विधि ५ रेडियोलोजी की विधि। इस नपुन्सकीकरण के कई भद हैं। स्त्रियों का गर्भाशय निकाल डालना, रजोवहा नाड़ियों का छेदन, वेधन, शुक्रकोषों की क्रिया में व्याघात उत्पन्न कर देना, अण्डकोष को निकाल कर बधिया बना देना इत्यादि अनेकों उपाय हैं, जिन्हें प्रयोगों में लाया जा रहा है। आयुर्वेद के मतानुसार ये क्रियाएँ हानिकर हैं। इस प्रकार नपुन्सक या बन्ध्यात्वकरण से शरीर में नीचे लिखे विकार कम-वेश रूप में अवश्य होते हैं जिन्हें जान लेना परमावश्यक है। नपुन्सक ५ प्रकार के होते हैं-–

आसेक्यश्चं सुगन्धीश्च
कुम्भीकश्चेस्यर्कस्तथा।
स रेतसंस्त्वनी ज्ञेया
अशुक्र षण्डसंज्ञितः॥

इनमें पूर्व के चार रेतस् कहलाते हैं जिनके अन्दर कुछ अप्राकृतिक विभत्स क्रियाओं द्वारा कामेच्छा उत्पन्न होती है। पांचवां अशुक्र षण्ड कहलाता है। इसकी कामेच्छा नहीं जाती और वैकारिकी कामेच्छा के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इन षण्डों, नपुन्सकों के अतिरिक्त आज कल के कृत्रिम उपायों द्वारा जो अशुक्र षण्ड वनाए जाते हैं उनकी संज्ञा षण्ड मण्ड हैं।

इन षण्ड मण्डों के शुक्राण्ड और शुक्र प्रणालियाँ विकृत हो जाने पर इनका शुक्र-सार नष्ट हो जाता है, जिसके कारण इनमें निम्नलिखित भयंकर विकार उत्पन्न हो जाते हैं। असौम्यता, रूक्षनेत्रता, आन्तरिक अप्रसन्नता, अस्निग्धता अतीक्ष्ण और असंहतदन्तता, वर्णस्वर में अस्निग्धतता, अनिर्मलता अकांतित्व, श्लथनितम्बत्व, विस्मृत्व, नास्तिकत्व, अदक्षत्व, अधीरत्व, विषादत्व, हतोत्साहत्व, भीरुत्व, अस्थिरगतित्व, अकल्याणाधिनिवेशित्व, और बुद्धि का मेधावीपन जाता रहता है। विचार विशृंखलता, असम्बद्ध वाग्विचेष्टा और विदूषकता उत्पन्न हो जाने के कारण उन्हें षण्ड-मण्ड कहते हैं।

नारी शरीर में ६ धातुएं नहीं अपितु सातवां धातु शुक्र उनमें भी होता है किन्तु अदृष्ट रहता है। उसीके द्वारा डिम्बाणुओं और आर्तवाणुओं की उत्पति होती है और वह शुक्रधातु पुरुषों की भाँति स्त्रियों का भी पोषण, सम्वर्द्धन, और मनोभाव-स्थैर्य प्रदान करता है। अतः शल्य कर्म द्वारा बन्ध्या की हुई स्त्रियों में भी उपर्युक्त सभी दोष तो आ ही जाते हैं, किन्तु अनेक प्रकार के योनि रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। साथ में मोटापा वगैरह दोष भी हो जाते हैं।

पुरषों की अपेक्षा इस वैकृत क्रिया से

स्त्रियों को अधिक हानि पहुंचती है । कारण यह है कि उनका शरीर मुख्यतः सन्तानोत्पादन क्षमतायुक्त होता है । उनके सारे शरीर का संगठन ही सृष्ट्युत्पादन परिवर्द्धन संरक्षण क्षम है । कन्या काल व्यतीत हो जाने के बाद नारी शरीर त्रिविध दायित्वपूर्ण बनता है—(१) आत्म पोषण, (३) गर्भपोषण, (२) स्तन्यसम्पत् या दुग्ध-बीज निर्माण कार्य क्षमता ।

एक गर्भ स्थिति के बाद शरीर के ६ वर्ष पोषण और शिशु सम्बर्द्धन में व्यतीत होते है । गर्भाधान के बाद कार्यद्वय--आत्मपोषण और गर्भपोषण के अतिरिक्त मासिक धर्म के अवरुद्ध हो जाने पर आर्तव का विशुद्धांश स्तन्याशय में आकर दुग्ध बीज बनाने लगता है । ६ या १० मास में उसका यह कार्य धीरे-धीरे बराबर होता रहता है । 'तस्माद्गर्भिण्यः पीनोन्नत पयोधराभवन्ति ।' एक दिन के बने दुग्ध बीज शिशु के ६-६ दिन पीने के काम में आते हैं । इस भाँति ५ साल के बाद द्वितीय सन्तान काल माना गया है । इसके पहले जो मैथुन करके गर्भधारण करती है वह शरीर की क्रियाओं में व्याघात करती है । गर्भस्थिति के बाद मैथुन वर्जित है किन्तु फिर भी मैथुन करना गर्भस्थ शिशु को दुर्बल व लिवर आदि की व्याधियों से ग्रसित करता है । प्रसव से पांच साल तक का समय शिशु के लिए मातृदेय काल है । इस काल में माता की प्रसन्नता और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है । नारी सौभाग्य यही है । नारी आयु इसी से हितायु और सुखायु बनती है । इस प्रकृति प्रदत्त दायित्व के साथ नारी शरीर को प्रकृतिदत्त सुविधा भी प्राप्त है । सुविधा नारी शरीर का स्वाभाविक नैरुज्य है । पुरुषों में रोग हों लेकिन नारी शरीर में तो रोग होना ही नहीं चाहिए क्योंकि इसके लिए उनका मासिक काल बना है । महीने भर में जो दोष विकार या फारेन मैटर नारी शरीर में संचित होते हैं, मासिक धर्म के साथ ही उन सबका बहिष्कार स्त्री शरीर कर देता है । इनकी क्रियाओं में कुछ भी गड़बड़ी होने से नारी शरीर दोषयुक्त हो जाता है । फिर इस नारी शरीर क्रियाओं को कृत्रिम सन्तति निरोधादि कार्यों से खराब करना नारी की सुविधा और स्वास्थ्य दोनों को चौपट करता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।

मलेरिया शत्रु—सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरियां नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है ।
मूल्य आधा पौंड ६) रु० **सफेद कोढ़**--की पेटेन्ट दवा—मूल्य ५) रुपया
दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर तथा हकीम धन-मान कमा रहे हैं । विवरण
पत्र मुफ्त मंगाकर देखें ।
वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन
मु० पो०-मंगरूलपीर, जि० आकोला (बरार) म० प्र०

क्षीणा दोषा वृद्धदोषा इव रोगोत्पादनेऽसमर्था

श्री शंकरलाल शर्मा

संप्रति आयुर्वेदीयपत्रेषु क्षीणा दोषा रोगोत्पादकाः सन्ति न वेति वादश्चलति। अस्मिन् विषये विदुषां भिषजां पक्षविपक्षात्मका बहवो निबन्धाः सम्मेलनपत्रिकायाम् प्रकाशिता अभुवन्। "क्षीणा दोषा रोगोत्पादनेऽसमर्थाः" इति शीर्षको मदीयो निबन्धोऽपि अक्टूबर मासीय सम्मेलन पत्रिकायाम् प्रकाशितोऽभूत्। नवम्बरमासीय पत्रिकायाम् "क्षीणा दोषा अपि वृद्धदोषा इव रोगोत्पादने समर्थाः" इति निबन्धमधीत्य मन्मानसे समुत्पन्नोऽयमभिलाषो यदहम्भूयोऽपि स्वमतं दृढ़ीकरणार्थं किञ्चिल्लिखामि। तत्र वृद्धदोषा इव क्षीणा दोषा रोगान्नोत्पादयन्ति न च बृहत्त्रयीषु क्षीणदोषाणां व्याधिकर्तृत्वं प्रतिपादितम्। तथाहि चरकः—

"वातपित्तकफा यस्य युगपत् कुपितास्त्रयः।
जिह्वामूलेऽवतिष्ठन्ते विदहन्तः समुच्छ्रिताः।
जनयन्ति भृशं शोथं वेदनाश्च पृथग्विधाः।
तं शीघ्रकारिणं रोगं रोहिणीति विनिर्दिशेत्॥

अत्र भृशं कुपिता वातपित्तकफा रोहिणी व्याधिं समुत्पादयन्ति इति प्रतिपादितम्। वातादीनां कोपश्च संचयम्विना नैव भवितुं शक्यते। संचयश्च दोषस्य स्वस्थाने वृद्धिः। तथा च वाग्भटे—"चयोवृद्धिः स्व धाम्न्येव" इति। सुश्रुतादिभिश्चयावस्थायामेव दोषाणां हरणं प्रोक्तम्। तथा च —

संचयेऽपहृताः दोषा लभन्तेनोत्तरां गतिम्।
ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तमाः।

यदि हि संचयम्विनैव दोषाणां कोपो भवेत्तदा सुश्रुताचार्यस्योक्तिर्व्यर्थैव स्यात्।

अन्यच्च—"हेमन्तिकं दोषचयं वसन्ते प्रवाहयन् ग्रैष्मिकमभ्रकाले।
घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक् प्राप्नोति रोगान् ऋतुजान्न जातु॥"

अत्राऽपि हेमन्तादिषु संचितान् दोषान् वसन्तादिषु वमनादिना आशु सम्यक् च निर्हरणं प्रोक्तम्। अत्र आशु सम्यक् इति विशेषणाभ्याम् संचयावस्थायामेव प्रकोपात् प्राक् दोषाणां हरणं सम्यग् विधेयम्। नो चेत् समुत्पन्नायां प्रकोपावस्थायां अवश्यमेव प्रादुर्भावो भवेन्नाम व्याधेः एवञ्च यदा स्वकारणैः रूक्षादिभिर्वातादयः स्वमानापेक्षया अधिका भवन्ति तदैव तेषां कोपो भवति न तु कथमपि क्षीणानाम्। यथा हि वृद्धो जलौघ एव सेतुमवदारयितुं शक्नोति न च क्षीणमपि जलम्। सुश्रुताचार्येणापि दोषकोप एव व्याधिहेतुत्वेनाङ्गीकृतः। तथाच—

"कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्।
यत्र संगःखवैगुण्यात् व्याधिस्तत्रोपजायते॥"

अस्मिन् सूत्रेऽपि कुपितानां दोषाणां शरीरपरिधावनात् व्याध्युत्पत्तिरभिहिता। शरीरपरिधावनं च वृद्धानामेव दोषाणां

संभवति न च कथमपि क्षीणानाम् । सर्वं एव जानन्तीदं यद् बलवन्त एव परिधावितुं शक्नुवन्ति न च क्षीणबला अपि । अन्यच्च—

कृत्स्नेऽर्धेऽवयवे वापि यत्राङ्गे कुपितो भृशम् ।
दोषो विकारं कुरुते रेव वर्षमित्र तोयदः ॥

अत्रापि शरीरे यत्र कुत्रापि दोषाणां भृशं कोपोभवति तत्रैव रोगोभवति । नात्यर्थं कुपितो दोषस्तु स्रोतःसु लीन एव तिष्ठति । तथाहि—

नात्यर्थं कुपितश्चापि लीनः स्रोतःसु तिष्ठति ।
निष्प्रत्यनीकः कालेन हेतुमासाद्य कुप्यति ॥

एवञ्च पूर्वं दोषा स्वहेतुभिः संचिता भवन्ति पुनः प्रकुपिताः सन्तः व्याधिं समुत्पादयन्ति ।

ननु यदि वृद्धा दोषा एव रोगोत्पादकास्तदा द्विषष्ठिदोषभेदेषु वृद्धदोषाणामिव क्षीणदोषाणामपि भेदाः प्रातिपादिता एव तथा च चरकः- -

“यथा वृद्धैस्तथाक्षीणैः दोषैः स्युः पंचविंशतिः।
वृद्धिक्षयकृतश्चान्यो विकल्प उपदेक्ष्यते ॥”

एवञ्च क्षीणा अपि वृद्धा इव रोगोत्पादकाः सन्ति इति चेन्न “रूपाणि जहति क्षीणा” इति वाग्भटोक्ता क्षीणानां स्वलक्षणत्याग एव भवति। चरकेऽपि —

दोषाः प्रवृद्धा स्वं लिङ्गं दर्शयन्ति यथाबलम्
क्षीणा जहति लिङ्गं स्वं समा स्वं कर्म कुर्वते।

अस्य व्याख्यायाम् श्री चक्रपाणिनाऽपि प्रोक्तम् “लिङ्गं स्वं जहति” इत्यनेन क्षीणानां प्रकृतिलिङ्गक्षयव्यतिरिक्तं विकारकर्तृत्वं नास्तीति दर्शयति । यतः वृद्धा उन्मार्गगामिनो दोषा दूष्यं दूषयन्तः ज्वरादीन कुर्वन्ति न तु क्षीणाः स्वयमेव दुःस्थितत्वात ।

तथाचामवाते माधवाचार्योऽपि—

युगपत कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ ।
“स्तब्धञ्च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते”

अत्राऽपि कुपितौ आमवातौ आमवाताख्यं रोगमुत्पादयितुं क्षमौ न च क्षीणौ । एवञ्च क्षीणानामपि वृद्धानामिव रोगोत्पादकत्वं न सम्भवति ।

यच्च पुनः “शरीरगुणाः पुनर्द्विविधा इत्यादितः प्रकुपितांश्च वातपित्तश्लेष्माणा ये चान्येऽपि कंचिच्छरीरे तिष्ठन्तो भावविशेषाः शरीरस्योपघातायोपपद्यन्ते” इत्यस्य व्याख्यायाम् कुपिताश्चेति पदेन वातादयः सामान्येन क्षीणा वृद्धा वा गृह्यन्ते इति श्री चक्रपाण्युक्तिरूपन्यस्ता प्रतिवादिभिः सा त्वसंगतैव प्रतिभाति यतः क्षीणदोषाणां कोपासम्भवात् । तथा च “कोपस्तून्मार्गगामिता” इति वाग्भटीयकोपलक्षणे वृद्धानामेव दोषाणां यदा शरीरप्रदेशान्तरगतिस्तदैव तेषां कोपो भवति, क्षीणानान्तु न शरीरप्रदेशान्तरे गमनसामर्थ्यम् । यथा क्षीणः पुरुषः अपरस्य सहाय्यम्विना पदमेकमपि गन्तुमसमर्थस्तथैव क्षीणदोषोऽपि न कुप्यति अपि तु स्व लक्षणान्येव जहाति। किञ्च चरके ज्वरचिकित्सायाम् “वर्धनेनैकदोषस्य क्षयणेननोच्छ्रितस्य च” इत्यस्य व्याख्यायाम् श्री चक्रपाणिनैवोक्तं यत् स्वमते क्षीणद्वादशसन्निपातेषु तु ज्वरारम्भकत्वं नास्ति । क्षीणा हि दोषाः स्वलिङ्गहानिमात्रविकारा नाधिकं ज्वरादिकं कर्तुं समर्था इति । यदि हि क्षीणा दोषा अपि कुपिताः भवेयुस्तदा कथन्नते ज्वरादिकं कर्तुं समर्था यतः दोषप्रकोपे सति व्याधेः प्रादुर्भावोऽवश्यम्भावी; नो चेत् ऋतुचर्य्यायाम् वमनादिना दोषहरणं व्यर्थमेव कुपित दोषस्याकिञ्चित्करत्वात् । कश्चित्प्रतिवादीमहोदय इत्थं प्रतिपादयेद् यथा क्षीणानां पुरुषाणामपि कोपो

भवत्येव तथैव क्षीणानां दोषाणामपि कोपो भवितुं शक्यते, सत्यमेतत् परं क्षीणपुरुषाणां कोपो न कस्यचिदपि किमपि अनर्थं कर्तुं प्रभवेदपितु स्वस्यैवाधिकां क्षीणतामुत्पादयति यतः क्रोधात् पित्तं वृद्धं सदधिकं रक्तादीन् धातून् शोषयेत् तथैव क्षीण दोषस्य कोपोऽपि अकिञ्चित्कर एव ।

"यथा वृद्धैस्तथा क्षीणैः दोषैः स्युः पञ्चविंशतिः इत्यादिना दोषाणां केवलं भेदा एव प्रतिपादिताः चरकाचार्येण न तु क्षीणानामपि व्याधिकर्तृत्वमिति प्रतिपादितम् ।

तथा—"क्षयः स्थानञ्च वृद्धिश्च
दोषाणां त्रिविधा गतिः"

अनेन सूत्रेणापि दोषाणाण्तिस्रोऽवस्था एव प्रतिपादिताः ।

वाते पित्ते कफे चैव
क्षीणे लक्षणमुच्यते ।
कर्मणः प्राकृताद्धानिः
वृद्धिर्वापि विरोधिनाम् ॥

अस्मिन् सूत्रे केवलं क्षीणानां वातादीनां लक्षणमात्रमेव प्रतिपादितम् । न च क्षीणानां लक्षणमात्रकथनेनैव रोगोत्पादकत्वमपि कथनं सम्भवति । क्षीणानामपि लक्षणज्ञानन्तु करणीयमेव दोषसाम्यापादनाय तथा च शारीरे चरक :—

"तदेव तस्माद् भेषजं सम्यगवचार्यमाणं युगपन्न्यूनातिरिक्तानां धातूनां साम्यकरं भवति, अधिकमपकर्षति, न्यूनमाप्याय यति ।

एतावदेव हि भैषज्यप्रयोगे फलमिष्टम्, स्वस्थवृत्तानुष्ठाने च यावद्धातूनां साम्यं स्यात् ।

धातुसाम्यस्थापनमेवायुर्वेद प्रयोजनम् । तथा च चरके—

"धातुसाम्यक्रियाचोक्ता
तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम"
याभिः क्रियाभिः जायन्ते
शरीरे धातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां
कर्म तद्भिषजां मतम् ॥

इदमपि चिकित्सायाः लक्षणमात्रम् । समदोषः समाग्निश्चेति लक्षणे तु मया अक्टूबरमासीयसम्मेलनपत्रिकायाम् सम्यक् प्रतिपादितमेव ।

क्षयजाशिरोरोगेऽपि वृद्धे वातपित्ते एव वसादीन् क्षययित्वा व्याधिकुरुतो न तु वसादीनां क्षय एव कारणमित्यपि अक्टूबरमासीयपत्रिकायां सम्यक् प्रतिपादितम् ।

पित्तं वा कफपित्तं वा पक्वाशयगतं हरेत् ।
स्रंसनं, त्रीनपि मलान् वस्ति पक्वाशयाश्रयान् ।

अस्मिन् वाग्भटीयसूत्रे पक्वाशयगतं पित्तं कफपित्तं वा स्रंसनं (विरेचनं) हरेत् तथावस्तिस्तु पक्वाशयगतान् त्रीनपि मलान् हरेत् इत्युक्तम् । अत्राऽपि वृद्धानामेव दोषाणां हरणं प्रोक्तम् स्रंसनवस्तिभ्यां न तु क्षीणानामपि हरणं भवति ।

तथा—प्रक्षीणकफपित्तस्य
त्रिकपृष्ठकटिग्रहे ।
दीप्ताग्नेर्बद्धशकृतः
प्रयुञ्जीतानुवासनम् ॥

अत्र चोक्तावस्थायामनुवासनप्रयोगो विधेयः । प्रकृते "त्रिकपृष्ठकटिग्रहे" इति निर्देशेनैतदवगम्यते यद् वृद्धे वाते सति अनुवासन प्रयोगो विधेयः । अनुवासनवस्तिश्च तैलदुग्धादि प्रधानो भवति अतः क्षीण कफ पिताय पुरुषाय स देय इति सूचितम् ।

दिसम्बर मासीयसम्मेलपत्रिकायांश्च श्रीमद्भिः प्रतिवादिभिरभिहितम्—क्लेद-

नादयः पञ्चभेदाः श्लेष्मणः सन्ति तेषु स्नेहसार संश्लेषणाभिधः श्लेष्मा संतिष्टते सन्धिषु तेन च प्रक्षेपाक्षेपाः क्रियाविशेषा जायन्ते । श्लेष्मणि क्षीणे तस्य स्वरूपत्याग उत्पद्यते स च चिक्कणतायाः ह्रासरूपः तत्र श्लेषणस्य कृशतामुपलभ्यैव प्रवृद्धः वायु शुष्कतामुत्पाद्य स्तब्धत्वं जनयतीति । अत्रेयं शंका समुदेति संश्लेषणाभिधस्य श्लेष्मणो क्षये को हेतुः ? यतः किञ्चिदपि कार्यं कारणं विना नैव भवतीति सिद्धान्तः । एवंच “समानैः सर्वभावानां वृद्धिर्हानिर्विपर्यात्” इति नियमेन श्लेष्मविपरीतद्रव्यसेवनेन श्लेष्मणः क्षयो भवति श्लेष्मविपरीत द्रव्याणि च तिक्तकटुकषायरसयुक्तानि सन्ति तथा च वाग्भटे—“तत्राद्याः मारुतं घ्नन्ति त्रयास्तिक्तादयः कफम्” एवञ्च तिक्तादीनां सेवनेन वायुर्वर्धते, वृद्धश्च वायुः विपरीत गुणं श्लेष्माणं क्षययित्वा सन्धिस्तब्धत्वं कुरुते न च क्षीणः श्लेष्मा तत्र किञ्चित् कर्तुं समर्थः । प्रवृद्धे च पवने न श्लेष्मा स्वमाने स्थातुं समर्थः इति ।

तथा पाचकादिभेदभिन्ने पञ्चविधे पित्ते पाचकपित्तस्य क्षीणे सति अग्निमांद्यं भवति तेन च न आहार रसः सम्यक् पचति अपक्वस्य चाहारस्य “आम” इति संज्ञा भवति स चामः शरीरे परिभ्रमन् आमवाताख्यं गदं जनयतीत्युक्तम् । अत्राऽपि पूर्वोक्तैव शंका समुदेति अर्थात् पाचकपित्तक्षये को हेतुः ? तत्र पित्तमाग्नेयम् । तथाचोक्तम्—“पित्तमुष्णं द्रवं पूति” एवञ्च पूर्ववत् पित्तविपरीत द्रव्यसेवनेन पित्तस्य क्षयो भवति । पित्तविपरीतद्रव्याणि च शीतस्निग्धगुरुगुणयुक्तानि सन्ति । तैश्च श्लेष्मणो वृद्धिर्भवति । वृद्धेनैव श्लेष्मणा पाचकपित्तस्यक्षयो भवति तेन मन्दाग्निर्भवति । तथा च सुश्रुते—“प्रागभिहितोग्निरन्नस्य पाचकः । स चतुर्विधो भवति—दोषानभिपन्न एकः, विक्रियामापन्नास्त्रिविधो भवति । विषमो वातेन तीक्ष्णः पित्तेन मन्दः श्लेष्मणा चतुर्थः समः सर्वसाम्यादिति । उक्तसुश्रुताचार्यस्य प्रामाण्यात् मन्दाग्नावपि श्लेष्मवृद्धिरेव कारणन्न तु पित्तक्षयः । अस्याम् (मन्दाग्नौ) अवस्थायाम् पाचनदीपनानि तीक्ष्णोष्णगुणयुक्तानि द्रव्याणि सम्यगुपयुक्तानि सफलानि भवन्ति । यतः संक्षेपतः क्रियायोगो निदानपरिवर्जनमिति चिकित्सायाः सिद्धान्तः । चरकेऽपि—

“हेतोरसे वा विहिता यथैव जातस्य ।
रोगस्य भवेच्चिकित्सा” इति ।

परस्परावृते वातादिदोषेऽपि वातस्यैव कोपोभवति तथा चोक्तम्—“वायोर्धातुक्षयात् कोपो मार्गस्यावरणेन च” इति ।

तथा—“सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिताः मलाः” इत्यत्र कुपितपदं न हि केवलं संचितार्थकं (वृद्धार्थकं) किन्तु क्षीणार्थकमपि” इत्युक्तिस्तु न शास्त्रसम्मता । कोपविषये मया पूर्वं प्रतिपादितमेव पुनः पिष्टपेषणं न क्रियते ।

उक्तेन विवेचनेन प्रतीयते यत् वृद्धदोषा इव क्षीणा दोषा न रोगोत्पादकाः” इति ।

क्षीणा दोषा अपि नूनं रोगोत्पादने समर्था भवन्ति

पं० जगदीश प्रसाद शर्मा

मया जौलाईमासीयपत्रिकायाम् "क्षीणाः दोषाः अपि रोगोत्पादने समर्था भवन्ति" इति विषयमवलम्ब्य आर्षग्रन्थेभ्यः उद्धृत्य प्रमाणानि विदुषां पुरस्तात् उपन्यस्तानि ।

अक्टूवरमासीयपत्रिकायां श्रीमता पाण्डेय हरिदेशमहोदयेन "वृद्धा एव दोषा रोगोत्पादने समर्थाः इति मतं प्रदर्शितम् । तदनु मया पुनः चरकसुश्रुतवाग्भटाद्याश्रयेण काश्यपसंहिताश्रयेणापि प्रमाणितमस्मदीयं प्रथमोक्तं मतम् । सम्प्रति जनवरीमासीपत्रिकायां पुनः पाण्डेय महोदयेन स्वपक्षं पूर्णतया साधयितुं समाहुतः अस्मि ।

अत्र पाण्डेयमहोदयेनेदमवश्यमवधेयं यदहं केवलमेकतरं पक्षमालम्व्य विवदितुं नास्मि प्रवृत्तः । पक्षालम्बने हि न सम्भवति सत्यासत्यनिर्णयः । यदुक्तम्—"तत्त्वं दुष्प्रापं पक्षसंश्रयात्", "वादान् सप्रतिवादान् हि वदन्तो निश्चितानिव । पक्षान्तं नैवगच्छन्ति तिलपीडकवद्गतौ" ॥ अतः श्रीमान् पाण्डेयमहोदयः विवाददृष्टिं परित्यज्य सिद्धान्तमेवान्विष्यतु प्रामाणिकेष्वार्ष ग्रन्थेषु ।

पत्रिकायाम् स्थानाभावात् प्रत्यालोचनामुपेक्षमाणोहं प्रत्यालोचनाञ्चागामिन्यंके करिष्यन् पुनः विदुषां समक्षे आर्षग्रन्थानुसारम् निवेदयामि ।

श्रीमता भावमिश्रमहोदयेन स्वकीये प्रमाणत्त्वेन सर्वसम्मते ग्रन्थे भावप्रकाशाख्ये स्वयमेवाशंक्य समाहितम् ।

तथा हि—"ननु कफः क्षीणः स कथं ज्वरं करिष्यति ? हीनशक्तित्त्वात् । उच्यते—दोषाः क्षीणा अपि व्याधीन् कुर्वन्त्येव यत आह—वातक्षयेऽल्पचेष्टत्वं मन्दवाक्त्वं विसंज्ञता । पित्तक्षयेऽधिकः श्लेष्मा वह्निर्मन्दः प्रभाक्षयः ॥ शिथिलाः सन्धयो मूर्च्छा रौक्ष्यं दाहः कफक्षये" ॥ सुस्पष्टमेवैतत् ।

पाण्डेयमहोदयः प्रायेणसुश्रुताचार्यं प्रमाणयति । सुश्रुतोक्तदिशाप्यस्मदुक्तिः सिद्धयति । तथा हि—"तत्र वातक्षये मन्दचेष्टताल्पवाक्त्वमल्पहर्षोमूढसंज्ञता च । पित्तक्षये मन्दोष्माग्निता निष्प्रभत्वञ्च । श्लेष्मक्षये रूक्षतान्तर्दाहः आमाशयेतराशय शिरसां शून्यता संधिशैथिल्यं तृष्णा दौर्बल्यम् प्रजागरणं च । तत्र स्वयोनिवर्द्धनद्रव्याण्येव प्रतिकारः" ।

तथा च वाग्भट :—

"लिङ्गं क्षीणेऽनिलेगस्य
सादोऽल्पं भाषते हितम् ।
संज्ञा मोहस्तथा श्लेष्म-
बुद्ध्युक्तामय सम्भवः ॥
पित्ते मन्दोऽनलः शीतं
प्रभाहानिः कफे भ्रमः ।

श्लेष्माशयानां शून्यत्वं
हृद्द्रवश्लथसंधिताः ॥

अत्र वाग्भटेन सूत्ररूपेण निर्देशः कृतः । नाहं प्रत्यालोचनदृशा अपितु सिद्धान्तप्रकाशनार्थं ब्रवीमियत् पाण्डेयमहोदयेनात्रापि श्लेष्मवृद्धेः कारणत्वं बोधयितुं चेष्टितम्। परं वाग्भटेन केवलं समन्वबुद्धया एव "श्लेष्मबुद्ध्युक्तामय सम्भवः" इति लिखितम् ।

चरकोऽप्यधीयताम्—

यथा—"यथावृद्धैस्तथा क्षीणै-
र्दोषैः स्युः पञ्चविंशतिः ।
वृद्धिक्षयकृतश्चान्यो
विकल्प उपदेक्ष्यते ॥

यदा रोगाः समुत्पद्यन्ते, तेषु कथं वृद्धदोषैः सहक्षीणदोषा अपि कारणतां व्रजन्ति एकैकशः द्वन्द्वेन वा इत्यादि स्पष्टोल्लेखः आर्षग्रन्थेषु दृश्यते—यथा—

"प्रकृतिस्थं यदापित्तं
मारुतः श्लेष्मणः क्षये ।
स्थानादादाय गात्रेषु
यत्र यत्र विसर्पति ॥
तदाभेदश्च दाहश्च
तत्र तत्रानवस्थितः ।
गात्रदेशे भवत्यस्य
श्रमो दौर्बल्यमेव च ॥
साम्यस्थितं कफं वायुः
क्षीणे पित्ते यदा बली ।
कर्षेत् कुर्यात्तदाशूलं
सशैत्यस्तम्भ गौरवम् ॥
यदानिलं प्रकृतिगं
पित्तं कफपरिक्षये ।
संरुणद्धि तदा दाहः
शूलं चास्योपजायते ॥
श्लेष्माणं हि समं पित्तं
यदा वातपरिक्षये ।
निपीडयेत्तदाकुर्यात्स-
तन्द्रा गौरवं ज्वरम् ॥
प्रवृद्धो हि यदा श्लेष्मा,
पित्ते क्षीणे समीरणम् ।
रुन्ध्यात्तदा प्रकुर्वीत
शीतक गौरवम् रुजम् ॥
समीरणे परिक्षीणे कफः
पित्तं समत्वगम् ।
कुर्वीत संनिरुन्धानो
मृद्वग्नित्वं शिरोग्रहम् ॥
निद्रां तन्द्रां प्रलापञ्च
हृद्रोगं गात्रगौरवम् ।
नखादीनां च पीतत्वं
ष्ठीवनं कफपित्तयोः ॥

अन्यच्च, द्विदोषक्षये सति कथं रोगोत्पत्तिस्तदपि द्रष्टव्यम् ।

वातपित्तक्षये श्लेष्मा
स्रोतांस्यपिदधद् भृशम् ।
चेष्टाप्रणाशं मूर्च्छाञ्च
वाक्सङ्गं च करोतिहि ॥
श्लैष्म वातक्षये पित्तम्
देहौजः स्रंसयच्चरत् ।
ग्लानिमिन्द्रियदौर्बल्यं
तृष्णां मूर्च्छां क्रियाक्षयाम् ॥

अतएव चरकेणापि क्षीणदोषाणां रोगोत्पादकत्त्वमंगीकुर्वता प्रोक्तम् —

"दोषाः प्रवृद्धाः स्वं लिंगं
दर्शयन्ति यथा बलम् ।
क्षीणा जहति लिङ्गं स्वं
समाः स्वंकर्म कुर्वते ॥

तथा च चरके भस्माग्निरोगे—

नरे क्षीणकफे पित्तं कुपितं मारुतानुगम् ।
स्वोष्मणा पावकस्थाने बलमग्नेः प्रयच्छति ॥
तदा लब्धबलो देहे विरूक्षे सानिलोऽनिलः ।
परिभूय पचत्यन्नं तैक्ष्ण्यादाशु मुहुर्मुहुः ॥

अत्र न केवलात्कुपितात् पित्ताद् भस्माग्नि रोगो जायते अपितु कफस्य क्षीणताऽनिवार्या । अस्य चिकित्सायां निम्नांकित: श्लोक: दर्शनीयोऽस्ति ।

"कफे वृद्धे जिते पित्ते मारुतेचानल: समः ।
समधातोः पचत्यन्नं पुष्टयायुर्बल वृद्धये ॥

अस्मिन्श्लोके क्षीणदोषस्य सम्वर्धनमादिष्टम् । अग्रेऽपि क्षीणदोषाणां रोगोत्पादकत्त्वं चिकित्साशास्त्रेषु व्यज्यते । यथा--

"रूक्षशीतगुरुस्वादु
व्यायामैर्वेगनिग्रहैः ॥१२५॥
कफसंमूर्च्छितो वायुः
स्थानात् पित्तं क्षिपेद्बली ।
हारिद्र नेत्रमूत्रत्त्वक्
श्वेतवर्चास्तदानरः ॥१२६॥
भवेत् साटोपविष्टम्भो
गुरुणा हृदयेन च ।
दौर्बल्याल्पाग्निपार्श्वार्ति-
हिक्काश्वासारुचि ज्वरैः ॥
क्रमेणालयेऽनुषज्येते
पित्तो शाखासमाश्रिते ।

अत्रापि च मुख्यं कारणं,पित्तस्य क्षीणतैव । चिकित्सायामपि क्षीणस्य पित्तस्य सम्बर्द्धनप्रक्रिया प्रोक्ता । यथा--"कटु तीक्ष्णोष्णलवणैर्भृशाम्लैश्चाप्युपक्रमः" ।

अत्र स्पष्टीकृतंयत् "अल्पे पित्तोशाखाश्रिते" अर्थात् क्षीणं पित्तं यदाशाखाश्रितं भवति । शाखाशब्देन रक्तादयो धातवः त्वक् च । त्वक शब्देन च तदाश्रयो रसोऽपिगृह्यते । एतस्यपरमार्थस्तु—यदा पित्तं शाखासमाश्रितं सत् क्षीणं भवति तदोक्ताः रोगा समुद्भवन्ति । पित्त सम्बर्द्धनप्रक्रियायाञ्च "आपित्तरागाच्छकृतः" इत्युक्तम् । तत्र चक्रपाणिर्व्याचष्टे "आपित्तरागाच्छकृत इति--यावत् कोष्ठमार्गस्थो मलो न रञ्जते तावत् पित्तवर्द्धनम् । एतावतापि एतदेव स्पष्टीकृतं यत् क्षीणस्य पित्तस्य वर्द्धनं कुर्यात् ।

उपरि श्रीमतः पाण्डेयमहोदयस्य पक्षं दृष्ट्वामया क्षीणदोषाणां रोगोत्पादकत्व सप्रमाणं साधितम् । अधुनाऽहं केवल दोषक्षयचिकित्सायाः समुल्लेखमपि करोमि । यथाचार्षग्रन्थेषु मुनिभिः प्रतिपादितम् ।

"वातक्षये कटुतिक्तकषायरूक्षलघुशीतानाम् । पित्ताक्षयेऽम्ललवणकटुकक्षारोष्णातीक्ष्णानाम् । श्लेष्मक्षये स्निग्धगुरुमधुरसान्द्रपिच्छिलानां द्रव्याणाम् । कर्मापियद्यस्य धातोर्वृद्धिकरम् तत्तदाऽसेव्यम् । एवमन्येषामपि शरीरधातूनां सामान्य विपर्ययाभ्याम् वृद्धिह्रासौ यथाकालं कार्यौ" ।

एतेन सुस्पष्टं सिध्यति यत् क्षीणा दोषा अपि रोगानुत्पादयन्ति । यदि पाण्डेयमहोदयाः एतावताऽपि न परितोषं व्रजन्ति तदा लिखन्तु येनान्यान्यपि प्रमाणानि प्रस्तूयेरन् । तैः मम लेखस्य या समालोचना कृता तदुत्तरं तु मया कस्मिंश्चित् लेखे प्रदास्यामि येन तेषां भ्रमः सर्वथापि नश्येत् ।

सम्पादकस्य निवेदना--

क्षीणदोषरोगकारणतावादविचारे उभयपक्षेऽपि स्वस्वपक्षसाधकाः परपक्ष–संशयसमाहितारश्च प्रेक्षकपरीक्षकरुचिरा जिज्ञासुजनप्रीणनाश्च बहवो निबन्धाः

क्रमेणेह प्रतिपादनकुशलैः सहृदयभिषगाचार्यैरुपहृताः सत्यं सर्वेषां प्रियपाठकमहोदयानां हृदयङ्गमाः सन्तीति केभ्यश्चन पाठकमहोयेभ्यः प्राप्तानि पत्राणि संवदन्ते। इदंमास्माकं निबन्धॄनां च अतीव आप्यायनं भवति।

इदानीमिदं सुविदितं भवति यद् दोषक्षयस्य व्याधिकारणतासाधनानां आर्षप्रमाणानां दोषक्षयस्य व्याधिजननाक्षमतासाधनानां आर्षप्रमाणानां च तत्तत्पक्षोपपाददयितृभिः संकलय्य प्रदर्शितानां प्रायः समबलतामवलोक्य अतिगहनोऽयं शास्त्रतत्वसूक्ष्मविषयो भूयः प्रणिधानपरीक्षामपेक्षते राद्धान्त प्राप्तय इति।

एकैकपक्षवादिभिः परपक्षीय प्रमाणवचसां समाधानं सन्दर्भोद्धरणपूर्वकं भूयिष्ठं तत्र तत्र सुष्ठु कृतमेव। १९५५ फरवरी पत्रिकायां ६० तमे पृष्ठे 'दोषा रोगाश्च' इतिशीर्षके निबन्धे आचार्य श्री वेंकटसुब्रह्मण्यशास्त्रि विदुषा तन्त्रयुक्त्यनुसारं विमृश्य पूर्वोत्तरपक्षौ:, क्षीणदोषाणां रोगं प्रति निमित्तकारणत्वं सम्यक् प्रतिपादितम्। अयमंशः अन्येषां विमर्शकविदुषामवधानमावर्जयति। किञ्च, दोषक्षयव्याधिकारणताखण्डकैः सर्वैः संगृहीतं चक्रपाणीयं वाक्यं "क्षीणा हि दोषाः स्वलिङ्गहानिमात्रविकारा नाधिकं ज्वरादिकं कर्त्तुं समर्थाः⋯ ⋯⋯स्वयमेव दुःस्थितत्वात्" इति। प्रामाणिकवाक्यस्यास्य समाधिः दोषक्षयव्याधिकारणतासमर्थकैः वाद्यापि संपूर्णतथा कृत इति भाति नः। अत एते प्रार्थ्यन्ते चक्रपाणिवाक्यस्य सप्रमाणं व्याख्यानसमाधानाय।

(बा० बा० न०)

—:०:—

स्रोतोदोषविशेषः

पं० पी. एस्. राम शर्मा

नमः शक्तिविलासाय सर्वविद्याविभूतये।
गुह्याय परिपूर्णाय गुरुवर्याय सर्वदा॥

प्रायशः पाश्चात्यतन्त्रेषु प्रजल्पिताः परश्शतं व्याधयः प्राच्यनिबन्धेषु नोपलभ्यन्ते। तदेवं हि निश्चिनुमः; ते पूर्विकाणां काले कृतप्रादुर्भावा नाभवन्; इदानीं तु नूतनतया समुत्पन्ना नव्यैः प्रतीच्यैः पर प्रयत्नेन परीक्षाशतैरवबुध्य निरूपिता इति। अस्माभिरपि तेषां निकटादवश्यमवगन्तव्यम् अन्यथा तन्निदानचिकित्सयोरवगन्तुमशक्यतया आयुर्वेदस्याव्यभिचरितफलत्वाभावप्रसङ्गेन परं न्यूनतैव स्यादिति चेन्न। पाश्चात्यप्रबन्धेषु प्रजल्पितानां प्राच्यनिबन्धेषु अनुपलब्धौ हि तथा कर्तुं युक्तम्। ते हि

सर्वज्ञाः स्वग्रन्थेंष्वेतादृशन्यूनतां कदाचिदपि सोढुमक्षमाः खल्वेवमवोचन् "इति तन्त्रगुणै" रित्यादि । तथा सति "विकारनामाकुशल" इत्यादि किमर्थमाकथयां बभूवुरिति चेत्, विकारनामानभिज्ञस्याल्पज्ञस्यापि प्रक्रियाकौशलसंपादकत्वादस्मच्छास्त्रस्य सर्वोत्कृष्टतां हि तेन प्रतिपादयन्ति । देशकालादिविपरिणामादातंकानां नामान्यपि विपरिणमन्त इति नव्यैः क्रियमाणानि नामानि श्रुत्वा न भेतव्यमित्यस्मच्छास्त्रस्य संपूर्णतामेव ते दृढ़तरं प्रतिपादयन्ति स्म "न हि सर्वविकाराणा" मित्यादिना । तदल्पापि विकृतिरस्मच्छास्त्रं नातिवर्तत इति निपुणतरं निर्णेतुं शक्यते । यत्तु "दोषा एव हि सर्वेषां" "यथा पक्षी परिपतन्" इत्यादिभिस्त्रैदोषिकत्वे सिद्धे सर्वामयानां नामाविज्ञानेऽपि दोषोपक्रमस्य सुकरतया रोगशान्तितः शास्त्रोपद्देशस्य साफल्येन नामविज्ञानवैयर्थ्यमिति, तन्न समञ्जसम् । दूष्यावच्छेदेन दोषस्यावगतौ चिकित्सायाः परं सुकरतया नामनिर्धारणमपि मुख्यं प्रयोजनमेव । घटपटकुसूलादीनां पार्थिवत्वज्ञानेऽपि कथमिदन्तया विविच्य विज्ञातुमुपयोक्तुं वा पारयामः । अत एव चरकाचार्या अपि "नित्याः प्राणभृतां देहे वातपित्तकफास्त्रयः । विकृताः प्रकृतिस्था वा तान् बुभुत्सेत पण्डितः ।" इत्युपदिदिशुः । दिक्कालादीनामिव व्यवहृति सौकर्याय कर्मविशेषविज्ञानाय च तत्तदवच्छेदेन विकृताविकृतस्वरूपविज्ञानाय विपश्चिता अनवरतं प्रयतितव्यमेव । तथा चास्मदादिशरीरावच्छेदेन त्रिदोषविकारस्य व्याधिसामान्य व्याप्यतया तत्तद्धात्ववयवाद्यवच्छेदेन तद्विशेषस्य व्याधिविशेषव्याप्यतया कार्यकारणभावे व्याधिसामान्यं प्रति तत्तच्छरीरावच्छेदेन दोषत्रयस्य विकृतिविनाशनं व्याधिविशेषं प्रति च तत्तद्धात्ववयवाद्यवच्छेदेन विकृतिविशेषव्यपोहनं चेति सामान्यविशेषतयोपक्रमस्यापि द्वैविध्यसंभवाद्विशेषोपक्रमेण विशिष्टव्याधेः परिहार्यतया तस्य व्याधिविशेषस्य नामविशेषविज्ञानमप्यावश्यकं भवतीति अपरिगण्या अपि ते विविधा विभक्ता हेतुलिङ्गादिभिश्च प्रत्येकं निर्दिष्टाः पूर्णतया प्राचीनेषु निबन्धेषु समुपलभ्यन्ते । तत्र यद्येकः कस्यचिदातंकस्य बहिर्दृश्यमानं रूपमासाद स्वकीयं नामकरणोत्सवमभिनवं मन्यते स स्वयं स्वात्मानमेवाभिनवं विज्ञातुमर्हति । यतः स्वबुद्ध्यायं प्राचीनैः कारणविशेषमधिकृत्य प्रदत्तं नामाविज्ञाय कार्यविशेषमधिकृत्य तस्यैव स्वीयं नामान्तरं प्रदाय व्याध्यन्तरतामपि करिकाणन्यायेन मन्यते; विवदते च स्वप्रजल्पितस्यैव सिद्धान्तत्वेन सर्वांगीकृतये । आमवातप्रभृतीनां कारणविशेषमधिकृत्यप्राचीनैः प्रोक्तानामातंकानां 'संधिकज्वर' (Rheumatic fever) इत्यादिकार्यविशेषमधिकृत्य नामान्तरकरणात् कथं रोगान्तरत्वं संभाव्यते । रामायणं श्रुत्वा रामो रावण हन्ता च परस्परं भिन्न एवेति को वा मन्येत । को नु वा तस्य प्रतिब्रूयात् । एतादृशाधुनिकभ्रमनिवारणे प्रवृत्तावाकल्पमनल्पपरिश्रम एव स्यात् । क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया इति तद्वैद्यकस्यैव रमणीयतापादको भवत्वयं पाश्चात्यपरिश्रमः । नास्मच्छास्त्रस्यैतादृशी रमणीयताआवश्यकी । आचार्यबुद्ध्यधिकबुद्धिमत्त्वं तेषां कथञ्चिन्नैव स्यादिति सुनिश्चयं वयमन्तः कुर्वाणाः स्ववर्त्मन्यस्खलिता भवितुमर्हामः ।

'ब्लट् प्रषरिति (blood pressure)

कश्चनादृष्टोपक्रमो विकारविशेषः सांप्रतं सर्वमपि प्रपञ्चमाकुलीकरोतीति विदुषां विदितमेव । शारीरशास्त्रे सर्वातिशायित्वं स्ववैदुष्यस्य परमं प्रयोजनमिति मन्वानाः कार्यविशेषविज्ञानेऽपि कारणविशेषविज्ञानाभावात् कूर्मपृष्ठप्रपीडनवत् नितरां परिश्रान्ता अपि वैफल्यमेव परं प्रयोजनमवाप्तुमर्हन्ति । ते हि शारीरविदः परममुं रोगमधिकृत्यैवं वर्णयन्ति; हृदयं तावदनवरतं संकोचविकासरूपस्वकृत्येन विक्षिपति रक्तं, आकर्षति च पृथक् प्रकोष्ठैः । तस्य दक्षिणार्धं सार्वकायिकं सिरारक्तमाकर्षति उत्तराधारमहासिराभ्यां प्रेरयति चाकृष्टं रक्तमधरप्रकोष्ठेन फुप्फुसयोः फुप्फुसाभिगमया धमन्या वायुसंयोगेन रक्तस्य विशोधनाय । तस्य वामार्धं तु फुप्फुस विशोधितं रक्तमाकर्षत्युत्तरप्रकोष्ठे फुप्फुस प्रभवेन सिराचतुष्टयेन । प्रेरयति चाकृष्टं रक्तमधरप्रकोष्ठेन सर्वत्र शरीरे महाधमनीद्वारेण, महाधमनी च क्रमेण शाखाप्रशाखाप्रविभागेन जालकेषु पर्यवसिता सर्वशरीरपोषणाय । जालकेभ्यश्चोपचीयमानं रक्तं सूक्ष्मसिरामार्गेषु प्रविशति । अनुपद्यते चोत्तरोत्तरस्थूलाभिः महासिराद्वयं, तन्मार्गेण च हृदयम् । तदेतद्रक्तस्य निरन्तरगतागतं हृदयसंकोचविकासजन्यं प्राणव्यानयोरविकृतयोः स्वकर्मसु वर्तमानयोः सम्यक् प्रचलति । तदेतत्तत्त्ववित् स्वकीयसंग्रहग्रन्थेऽपि शार्ङ्गधराचार्यः पुनरेवमवोचत् :—

नाभिस्थः प्राणपवनः
स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम् ।
कण्ठाद्बहिर्विनिर्याति
पातुं विस्णुपदामृतम् ॥
पीत्वा चाम्बरपीयूषं
पुनरायाति वेगतः ।
प्रीणयन् देहमखिलं
जीवयन् जठरानलन् ॥ इति ॥

इदमेव हि विष्णुपदामृतमम्बरपीयूषं तैः Oxygen इति संज्ञया व्तपदिश्यते । फुप्फुस प्रविष्टरक्तशोधनमनेनैव क्रियते । निमेषमात्रमपि हृद्यन्त्रमेतेन स्वकर्मणा विनावस्थातुं नार्हति । एकमपि निमेषं विना स्वकृत्येनावस्थितं हृदयं मरणमेवोपपादयति प्राणवायोरभावात् । रक्तस्य सर्वशरीरव्याप्तये यावतीशक्तिरपेक्षिता तावत्यैव शक्त्या स्वसंकोचजन्यरक्तविक्षेपो भवितुमर्हति । एवं रक्तस्य सर्वशरीरव्याप्तये सामान्यतो हृदयस्य चतुर्दशपवुण्ड् शक्तिरावश्यकी भवति । एकैकस्मिन्नपि विक्षेपे सेयं शक्तिरवश्यमपेक्षिता । एकस्मिन् दिने अष्टशतोत्तरैकलक्षसंख्ययास्य परिगणनमपि क्रियते । दिनेनैकेनैवं विक्षिप्तस्य रक्तस्य मानं च सामान्यतः अष्ट टण् (Tons) भवति । कर्मैतदस्मच्छरीरे प्रचलति सति रक्तवहस्रोतस्सु विबन्धाभावे स्वनियतशक्त्या स्वकर्म कर्तुं हृदयस्य नितरां लाघवं भवति । नो चेद्रक्तप्रसरमार्गे यत्र कुत्रापि कथञ्चित्किञ्चिन्निरुद्धेपि रक्तस्य सर्वशरीरव्याप्तये पूर्वोक्तशक्तेरप्यधिक शक्तिः हृदयस्यावश्यकी भवति । एवं स्वशक्त्यधिकशक्त्या स्वकर्मणि प्रतिनिबद्धं हृदयमचिराद्दुर्बलं भवितुमर्हति । यथा, कश्चन वाजी बहुजवेन प्रणुद्यमानः स्वबलाधिकपरिश्रमेण क्षयमुपयाति, एवं हृद्यन्त्रमप्यतितरां प्रयत्नेन शोणितविक्षेपमाचरत्, अचिराद्दुर्बलं सत् स्वकर्मणि विराममधिगच्छति । रक्तवहस्रोतस्सु तन्निरोधस्य सत्स्वपि बहुषु कारणेष्वस्मिन्नामयेऽनुपदं वक्ष्यमाणानि प्रायशो निर्णीतचराणि । परिणतं वयः आहारविहारा-

दीनि च निमित्तीकृत्य धमन्यन्तर्भागेषु शोणितस्य घनीभूताः खरीभूताः केचन भागास्तत्र तत्रसंलग्नाः कालक्रमेण संकोचविकासस्वभावानामतिमृदूनां तासां काठिन्यमापाद्य तदन्तस्सुषिरेषु रक्तप्रसारस्य गतिविलम्बमातन्वते । धमन्यन्तस्सुषिराणामेवं निरोधवशाद्रक्तस्य सर्वशरीरव्याप्त्यापादकप्रसारसंपादनाय हृदयस्य रक्तविक्षेपविषये शक्त्याधिक्यमपेक्षितं भवति । एवमधिकप्रयासेन हृदयतो विक्षिप्यमाणरक्तवेगस्यैव ब्लट् प्रषर् (Blood Pressure) इति ते कथयन्ति । आरोग्यदशायां निष्प्रयासेन हृदयेन क्षिप्यमाणवेगस्य मानमाधुनिकयन्त्रे सामान्यतः संकोचजन्यवेगस्य स्ववयस्संख्यया, शताधिकं, बिकासजन्यस्य त्रिधाकृतस्यैतस्यांशद्वयपरिमितं च (अर्थात्पन्चाशद्वयस्थस्य संकोचजन्यवेगः पन्चाशदुत्तरशतसंख्याकः विकाशजन्यः शतसंख्याकः) भवति । इतोऽपि गणनाया न्यूनाधिक्ये व्याधितया परिगण्यते । अतिमानतया गण्यमाने पूर्वोक्तकारणवशाद्धृदयस्य बलवत्तरप्रयत्नवशात्कालक्रमेण तत्क्षीणं विरमत्येव । उपद्रवाण्यस्य शिरोभ्रमश्चिमिचिमायितं बलभ्रंश इत्यादीनि भवन्ति । रोगेऽस्मिन् आधुनिकाः प्रकामं बिभ्यति । यतस्तेऽद्यावधि दृष्टकर्माण इति वक्तुमात्मनो न पारयन्ति । किन्तु शारीरं तत्त्वं प्रत्यक्षतो दृष्टमच्छतरं वर्णयन्ति । हन्त महर्षिवृन्दैरसारतया परिगणितेऽस्मिन् विषये विषयविज्ञानशक्त्यभावात् अस्माकं च मनः प्रकामं क्लेशमनुभवतीति नैतच्चित्रमगाधशास्त्रार्थपरिचितानामस्माकम् । यस्तु विद्वांस्तत्त्वावबोधाय प्रयतेत तस्य हि सर्वत्र परमार्थाः प्रकाशन्ते । यस्तु भिषक्परमर्थाभिगमाय प्रयतेत तस्य तु सर्वत्र परमार्थाः प्रभासन्ते । स तु कालवशात्स्ववाणीविलासं यावदार्तजनप्रतिपत्तये शास्त्रार्थान्निर्मर्यादमाकुलीकरोति । नायमपराधोऽस्य । कालस्तत्रापराध्यतीति प्रकृतं चिन्तयामः । यदुक्तं कार्यं निमित्तीकृत्य नामप्रदानमाधुनिकसंप्रदायेषु प्रायशो दृश्यत इति तदेवात्रापि नामनिर्णये तेषां बीजम् । यदुक्तं कारणं निमित्तीकृत्य पूर्वेषामिति तदेवास्माकमत्र नामविज्ञाने नियामकम् । रक्तवहस्रोतोदोषवशाद्रक्तप्रसारस्य किञ्चिदपि विलम्बे सर्वत्र तत्प्रापणाय प्रयत्नो भवति । यथा कुल्यादिषु पंकपाषाणादिभिः किञ्चिन्निरोधे संजाते तदुल्लंघ्य जलप्रवहणाय घटीयन्त्राद्विक्षिप्यमाणजलवेगस्याधिकशक्तिमत्तावश्यकी, तथैव स्रोतोरोधमुल्लंघ्य गन्तुं रक्तस्य हृद्यन्त्र विक्षेपणवशादधिकवेगवत्त्वमपेक्षितं भवति । स्रोतोदोषाभावे तु हृदयस्य स्वनियतशक्त्यैव रक्तविक्षेपकर्म प्रचलति । तथा च रक्तवहस्रोतोदोषजन्यत्वमस्यान्वयव्यतिरेकाभ्यां सिद्धम् । स्रोतोदोषस्त्वस्मच्छास्त्रे सम्यक् प्रतिपादितः । तत्र त्रयोदशमहास्रोतस्सु रक्तवहस्रोतोदोषेणायं भवति । स्रोतोदोषस्य च कारणं मुख्यतया वायुरेव । यदभिहितं चरकाचार्यैः :—

उत्साहोच्छ्वासनिश्वास-
चेष्टाधातुगतिस्समा ।
समो मोक्षो गतिमतां
वायोः कर्माविकारजम् ॥ इति ।

एवमविकृतवायुस्त्रयोदशमहास्रोतस्सु शरीरसंरक्षकाणि पूर्वोक्तकर्माण्याचरति । विकृते तु तस्मिन् 'धातुगतिस्समा' युक्तस्थले धातुगतिर्विषमैवेति मन्तव्यं खलु । तत्र च व्यानवायोर्वैषम्यविशेषे संजाते रक्तवहस्रोतसामन्तः रूक्षता संजायते । रूक्षतया

च संकोचविकासशक्तिह्रासः; घनीभूतखरीभूतरक्तांशानां तत्र तत्र संलगनोद्यमता, ततो रक्तस्य निरंकुश प्रवाहनिरोधः । तथा च सुश्रुते :—

कृत्स्नदेहचरो व्यानो
रससंवहनोद्यतः ।
स्वेदासृक्स्रावणश्चापि
पञ्चधा चेष्टयत्यपि ॥ इति ।

रससंवहनं हृत्संकोचप्रसारजन्यमपि सिराधमन्यादिसंकोचप्रसारसाहाय्येनैव संपाद्यते । प्राणवायोर्हृत्संकोचविकासजनकत्वेऽपि धमन्यादि संकोचविकासजनकता व्यानस्यैवेति लभ्यते । अत एव तत्कार्यमधिकृत्य "रस संवहनोद्यतः स्वेदासृक्स्रावणश्चेति स्पष्टमभिहितमाचार्यैः । प्राणकार्यनिर्वचनस्थले तु "उरः कण्ठचरोवुद्धिहृदयेन्द्रिय चित्तधृक् । ष्ठीवनक्षवथुद्गार निश्वासान्नप्रवेशकृत्" इति पृथगेवाभिहितम् । एवं सति प्रथमतो यत्कारणमभिहितं परिणतं वय इति तन्नितान्तं संगच्छते । यदुक्तं भाग्भटाचार्यैः "वयोऽहोरात्रिभुक्तेषु तेऽन्तमध्यादिकाः क्रमात्" इति । वयः परिणामे प्रकृत्यैव वातस्याधिक्यात्पूर्वोक्तकारणवशादस्य रोगस्य सर्वशरीरावच्छेदेन समुत्पत्तौ न कोऽपि विवादः । यदा तु कारणसमवधानात् कस्मिंश्चिच्छरीरे रक्तावच्छिन्नवायोः प्रकोपो भवति तदा तच्छरीरावच्छेदेनापि तस्य निरंकुशं प्रादुर्भावः । यदुक्तमाहारविहारादीनि कारणान्तराणि तान्यपि रूक्षतापादकानि रक्तस्थस्निग्धताव्यपोहकानि वातलान्येव । अतो रक्तावच्छेदेन वातविकृतिजनकतयैव सर्वेषां कारणत्वम् । वातविकृतिश्च स्रोतोदोषं प्रति, स्रोतोदोषो हृत्कार्यं प्रति, हृत्कार्यं च रक्तवेगं प्रतीति कारणपरम्परापरिपाटिः । अत एवाष्टाङ्गहृदये "आहारश्च विहारश्च यस्स्याद्दोषगुणैस्समः । धातुभिर्विगुणो यश्च स्रोतसां स प्रदूषकः" इति अभिहितम् । य आहारो विहारश्च दोषगुणैर्वातादिगुणै—तत्र रूक्षो लघुः शीत इत्यादिग्रन्थनिर्दिष्टैः समः राजमाषादिः, य आहारो विहारः धातुभिर्विगुणः गुरुत्वस्निग्धत्वादिविरुद्धरूक्षतीक्ष्णोष्णत्वादिगुणः स स्रोतसां प्रदूषक इति तदर्थः । तथा च वातगुणसमत्वे सति रक्तगुणविषमत्वं अत्राहारविहारयोः प्रदूषकत्वे हेतुः । नन्वेवं चेद्वातव्याधौ रक्तगतवातस्य पृथक् परिगणनात्तस्मिन्नन्तर्भावः किं न युज्यत इति चेत्, तत्र स्रोतसां संकोचविकासशक्तिविशेषविज्ञानानपेक्षितं तन्निदानम् । यदि संकोचविकासशक्तिह्रासः तत्रापि भवति तदा तत्र रक्तगतवायोः स्रोतोदुष्टिविशिष्टत्वं कल्प्यते । चिकित्सायां च स्रोतोदुष्टिचिकित्सासहकृतचिकित्साविशेषेण साफल्यस्य परं संपादनीयत्वान्न विरोधः । स्रोतोदुष्टिलक्षणं तु :—

अतिप्रवृत्तिस्सङ्गो वा
सिराणां ग्रन्थयोऽपि वा ।
विमार्गतो वा गमनं
स्रोतसां दुष्टिलक्षणम् ॥ इति ।

प्राणादीनामतिशयेन वहनमतिप्रवृत्तिः, वहनाभावः सङ्गः । सिराणां मध्ये ग्रन्थीभूतत्वं स्वमार्गनिरोधकत्वम् । विमार्गतो गमनमात्मीयस्रोतोगमनादन्यतो गमनं चेति सिद्धे स्पष्टं प्रतीयते स्रोतोदोषस्य व्याध्यन्तरवैलक्षण्यं । किन्तु, अस्य रोगान्तरजनकत्वं रोगान्तरस्याप्येतज्जनकत्वं संभवत्येव । अत एव बहुषु व्याधिषु प्रतीच्ययन्त्रपरीक्षायामस्य वर्तमानता विदुषां सम्यक् विज्ञातचरमेव । वातरक्तरोगेऽयं प्रायशो

दरीदृश्यत इति बहवस्तदन्तर्भावो युक्त इति मन्यन्ते। तथा सति, वातरक्तेतरबहुषु रोगेष्वप्यस्य दृश्यमानत्वादेतद्विशिष्ट रोगान्तराणां बहूनां वातरक्तेऽन्तर्भावमेव कर्तुं व्यवस्यन्तां नाम। तथा चायं नेकस्वतन्त्रो रोगो बहुषु रोगेषु रक्तवहस्रोतदोषजन्यतया सम्भवितुमर्हत्वात्। अत एवास्यशारीरप्रकरणे परिगणनं कृतम्। शारीरविशेषविज्ञानस्यास्मिन् विषये किञ्चिदावश्यकत्वात्। स्रोतोवर्णनप्रसङ्गसङ्गत्या तद्दुष्टेरपि वक्तुमौचित्यात्स्रोतोदोषज्ञानं प्रति स्रोतोज्ञानस्यावश्यकतया स्रोतोज्ञानं प्रति च शारीरज्ञानस्य कारणतया शारीरस्थाने निवेशनमिति रमणीयम्।

ननु व्याधयोऽपरिसंख्येया भिद्यमाना भवन्ति हि। 'रुजावर्णसमुत्थानस्थानसंस्थाननामभि"रिति चरकोक्त्या भिद्यमाना व्याधय अपरिसंख्येया इति लब्धे किमर्थमस्य स्रोतोदोषेष्वन्तर्भावः? स्रोतोदोषव्यतिरिक्ताधुनिकव्याधिविशेष एवास्तु इति चेन्न। यत्र यत्र ब्लट् प्रषर् तत्र तत्र रक्तवहस्रोतोदोष इति व्याप्तेरवश्यमभ्युपेयतया स्रोतोदोषान्तर्भावे सिद्धे स्रोतोदोषस्यानेकव्याधिजनकतया जन्यतया च बहुव्याधिषु सम्भवितुमौचित्यात् अस्वातन्त्र्ये संप्राप्ते पृथग्व्याधितया निर्णेतुं स्रोतोदोषभिन्नत्वेन वा कल्पयितुं केनापि कथमप्यशक्यं इति सर्वमनवद्यम्।

अथात्रास्मदनुभवसिद्धा चिकित्सा च संक्षेपतः प्रदर्श्यते। स्नेह स्वेदादयः पञ्चकर्माणि चात्र मुख्यतया परिगण्यन्ते। तत्रापि धाराविधिरत्यन्तमारोग्याय कल्पते। आधुनिकैः क्रियमाणसर्पगन्धाप्रयोगः केवलं तात्कालिकी चिकित्सैव। न त्वात्यन्तिकव्याधिनिवृत्तिरूपा। अस्मच्छास्त्रोपदिष्टशुद्धिपुरस्कृतरसायनाभ्यासस्तु संपूर्णा रोग्यसम्पादको भवति। "पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्येत्युक्त पौनर्नवरसायनोपयोग" अतीव फलप्रदः। सुकुमारं घृतं चाद्वितीयं भेषजमिति वक्तुं शक्यते। अस्मिन् विकारे अभयैवाभयप्रदा भवतीति न विस्मर्तव्यम्। ब्राह्मरसायनादीनि अभयाप्रधानानि सर्वाणि सर्वावस्थासु पूर्णफलप्रदानि। त्रिफलया सह शिलाजतु प्रयोगः क्षिप्रमारोग्यकरो भवति। "वयसः स्थापनी मेध्या बुद्धीन्द्रियबलप्रदा। विबन्धं स्रोतसां चेवै"त्याद्यभयागुणविशेषा भिषग्भिरनुपदमनुसन्धेयाः। हितमितभुजो नानेन विकारेणाभिहन्यन्त इति तु परमं तत्त्वम्।

अन्ते हरिस्मरणेनायं निबन्धः समाप्यते।
तदुक्तमभियुक्तैः :—

हरिं हरीतकीं चैव गायत्रीं च दिने दिने।
मोक्षारोग्यतपः कामश्चिन्तयेद्भक्षयेज्जपेत्॥

॥ इति सर्वमवदातम्॥

नारायणगुरूत्तं सपाद-
कल्पद्रुसेवनात्।
अर्थाः केचिदिहोक्ता ये
प्राप्ताः पूर्वं यथामति॥

———

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन
स्थायी समिति तथा कार्यकारिणी समिति का
सम्मिलिताधिवेशन

स्थान–वैद्य वामनराव दीनानाथ का निवास स्थान, ४५, कैथेड्रल स्ट्रीट, बम्बई-२ ।

समय–वीरवार ता० १७ फरवरी, १९५५, मध्याह्नोत्तर १ बजे से ।

उपस्थिति–सर्वश्री वैद्य पं शिवशर्मा जी, बम्बई–अध्यक्ष, पं० हरिदत्त शास्त्री, बम्बई, प्रतापकुमार पोपट भाई, बम्बई, विहारीलाल शर्मा, नवसारी. ब्रजलाल जेठालाल पंड्या, बम्बई, कृष्णचन्द्र पंजाबी, बम्बई, महेन्द्रकुमार शास्त्री, बम्बई, सोमेश्वर मयाशंकर भट्ट, बम्बई, अमोलकचन्द्र सीताराम मिश्र, बम्बई, राममूर्ति श्रीराम मिश्र, बम्बई, रामचन्द्र सदाशिव वेदपाठक, बम्बई, श्रीराम शर्मा, बम्बई, वामनराव दीनानाथ वैद्य, बम्बई ।

अधिवेशनार्थ निम्नलिखित महानुभावों के सम्मतिपत्र प्राप्त हुए—

सर्वश्री वैद्य बंशीधर शर्मा, सरवाड़, वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर, ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल, हरिराम बराटे, भुसावल, गुलाबदत्त शर्मा, बीकानेर, पी० एन० शर्मा, सुचीन्द्रम, सूर्यकान्त शर्मा, भगवतगढ़, मेघराज शर्मा सारस्वत, जोधपुर, अयोध्यामिश्र, सीतामढ़ी, मदनलाल पुष्करणा, सूरजगढ़, वासुदेव शास्त्री, उज्जैन, रामदयाल त्रिपाठी, हरदा, मुंशीराम शर्मा, भटिंडा, युगलकिशोर त्रिपाठी, ताजपुरा, लक्ष्मीकान्त दामोदर पुराणिक, नागपुर, पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, हैद्राबाद, सोमदेव शर्मा, लखनऊ, नानकचन्द्र शास्त्री, देहली, प्रभुदत्त शास्त्री, सीकर, क० प्रतापसिंह, बनारस, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग, माधवप्रसाद शास्त्री, जोधपुर, लक्ष्मीशंकर शास्त्री, अहमदाबाद, माधवप्रसाद शास्त्री, अहमदाबाद बाघजी के सोलंकी, मुन्द्रा, शिवजी जेठाभाई, मांडवी, पूर्णानन्द शास्त्री, माधोपुर, रवीन्द्रचन्द्र चौधरी, मिरजापुर, शम्भूनाथ शास्त्री, कानपुर, वीर लभाया, छत्रपुर, विद्यानारायण शास्त्री, पटना ।

महासम्मेलनाध्यक्ष श्री पं शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ ।

१—गताधिवेशन का कार्यविवरण स्वीकृत करने का विषय उपस्थित हुआ । इस पर श्री प्रतापकुमार जी ने यह प्रस्ताव किया कि क्योंकि यह कार्यविवरण पत्रिका में छप चुका है और सभी सदस्य इसे पढ़ चुके हैं अतः इस कार्यविवरण को पढ़ा गया समझा जाय और इसके पुनः पढ़ने में जो समय नष्ट होगा उसे बचाया जाय । इस प्रस्ताव का समर्थन श्री श्रीराम शर्मा ने किया । इसका विरोध करते हुए श्री अमोलक चन्द्र जी ने कहा कि सम्पूर्ण कार्यविवरण को पढ़ कर सुनाया जाय । किन्तु इस विरोध का अन्य किसी सदस्य ने समर्थन नहीं किया और श्री

अमोलक चन्द्र जी के अतिरिक्त अन्य सब सदस्यों की सर्वसम्मति से कार्यविवरण स्वीकृत हुआ।

२ - निम्नलिखित नवीन सदस्यतायें स्वीकार की गईं :—

आजीवन सदस्य—वैद्य श्री हरिश्चन्द्र सौखिया, बेंस (जालन्धर), वैद्य श्री रामा प्रसाद यादव, सलेमपुर--छपरा, वैद्य श्री पृथ्वीराज शर्मा शास्त्री, बरगाड़ी (भटिंडा), वैद्य श्री प्रह्लादराय रामरायत्रिवेदी, बम्बई, वैद्य श्री रामगोपाल शर्मा, बम्बई, वैद्य श्री बिहारीलाल शर्मा, नवसारी।

मान्य सदस्य—११ जनवरी, १९५५ से १७ फरवरी १९५५ तक बने सभी मान्य सदस्य।

२—वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ, प्रधानमन्त्री, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा श्री यादवजी महाराज का हीरक जयन्ती उत्सव मनाने के लिए बीकानेर में महासम्मेलन का विशेषाधिवेशन बुलाने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। इस पर श्री प्रतापकुमारजी ने यह कहते हुए कि यद्यपि श्री यादवजी महाराज का अभिनन्दन किसी प्रान्तीय सम्मेलन के साथ सम्बद्ध न करके महासम्मेलन को अपने स्वतन्त्र अधिवेशन द्वारा करना चाहिए था तथापि मुझे इस प्रस्ताव का विरोध नहीं है, प्रधानमन्त्री जी के प्रस्ताव का समर्थन किया। श्री अमोलकचन्द्र जी ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि इतना शीघ्र विशेषाधिवेशन बुलाने से बहुसंख्यक सदस्यों को सूचना नहीं पहुंचेगी, इस लिए महासम्मेलन को कोई दूसरा अधिवेशन बुलाकर और वैद्यसमाज को अधिक समय देकर महाराज की हीरक जयन्ती मनानी चाहिए। उसका उत्तर देते हुए श्री प्रधान जी ने कहा कि महामण्डल के सब श्रेणी के सदस्यों को आज से १५ दिन पूर्व सूचना पहुंच चुकी है और उसमें उन्हें यह आश्वासन दिया जा चुका है कि इस विशेषाधिवेशन की स्वीकृति सर्वसम्मति से होगी और पन्द्रह दिन सूचना के लिए सर्वथा पर्याप्त हैं, उन्होंने प्रधानमन्त्री के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार करने की सदस्यों से अपील की तथा श्री अमोलकचन्द्र जी से भी अपना विरोध वापिस लेने का अनुरोध किया। इस पर श्री अमोलकचन्द्र जी ने अपना विरोध वापिस ले लिया और प्रधानमन्त्री का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

४—प्रधानमन्त्री जी के प्रस्ताव एवं श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री तथा श्री प्रतापकुमार जी के समर्थन पर यह भी सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि हीरक जयन्ती सम्बन्धी व्यय के लिए ४०० रु० तक स्वीकृत किए जायं।

५—३ मार्च १९५५ को श्री डा० ए० लक्ष्मीपति, भूतपूर्व महासम्मेलन सभापति की हीरक जयन्ती मद्रास में मनाई जा रही है। इस सम्बन्ध में महासम्मेलन स्थायी समिति के सदस्य श्री एम० वैंकट शास्त्री, विजयवाडा, की ओर से प्राप्त निम्न-

लिखित प्रस्ताव श्री प्रधानमन्त्री जी ने पढ़कर सुनाया :——

"The 75th Birthday of Dr. Lakshmipathi B. A., M. B., & C. M., Bhishagratna, Ex-president of the All India Ayurvedic Congress, falls on 3rd March 1955. It is earnestly requested that the Diamond Jubilee celebrations in connection of his Birthday may be conducted by all Vaidyas throughout India by performing Dhanwantry Pooja in the morning and by organising public meetings in the evening for popularisation of the Rules of health according to Ayurveda."

यह भी सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि महासम्मेलन के जो जो भूतपूर्व सभापति ७५ वर्ष की आयु पर पहुंचें उनके हीरक जयन्ती दिवस पर भी इस प्रकार ही वैद्य सभाओं द्वारा धन्वन्तरि पूजन, सार्वजनिक सभायें तथा निशुल्क रोगी निरीक्षण इत्यादि किया जाय जैसा कि उपर्युक्त प्रस्ताव में वर्णित है।

६—बंगाल प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की दीर्घकालीन अकर्मण्यता के सम्बन्ध में यहां के भूतपूर्व संचालक कं० विजयकाली भट्टाचार्य का पत्र पढ़ा गया। निश्चय हुआ कि उन्हें अधिकार दिया जाय कि वे एक और पत्र बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन के प्रधान तथा मन्त्री को १५ दिन के अन्दर सभा बुलाने के लिए लिखें। वह पत्र रजिस्ट्री द्वारा भेजा जाय तथा उसकी एक कापी उसी दिन प्रधानमन्त्री अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन को भी भेज दी जाय। यदि उक्त पत्र प्रेषण के १५ दिन के भीतर बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन के वर्तमान पदाधिकारी सभा न बुलायें तो क० विजयकाली भट्टाचार्य तथा श्री मणीन्द्रलाल दास गुप्त अन्य प्रधान वैद्यों को साथ लेकर आम सभा बुलायें तथा नये चुनाव करवा दें और इसकी सूचना महासम्मेलन को भी देदें। महासम्मेलन नये पदाधिकारियों को स्वीकार कर लेगा।

श्री विजयकाली भट्टाचार्य जो पत्र बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन के वर्तमान पदाधिकारियों को सभा बुलाने के लिए लिखें उसके साथ उयुक्त प्रस्ताव की प्रतिलिपि भी अवश्य भेजें।

यह भी निश्चय हुआ कि इस प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि बंगाल प्रान्तीय सम्मेलन के वर्तमान मन्त्री को सीधी भी भेज दी जाये

७—तेलीचेरी से प्रकाशित होने वाले मलयालम भाषा के पत्र "आरोग्य बन्धु" के उस पत्र पर विचार किया गया जिसमें यह प्रार्थना की गई है कि महासम्मेलन उक्त पत्र को अपना प्रादेशिक पत्र घोषित कर दे, उसमें ४ पृष्ठ महासम्मेलन की सूचनायें प्रकाशित करने के लिए सुरक्षित रखें जायें जिनमें प्रकाशनार्थ महासम्मेलन तथा उसकी शाखाओं की सूचनायें प्रत्येक मास की १५ तारीख तक महासम्मेलन "आरोग्य बन्धु" कार्यालय में भेजता रहे। निश्चय हुआ कि इस विषय

का सम्बन्ध एक नवीन नीति स्थापित करने से है अतएव इसे बिना अजन्डे में रखे तथा सब सदस्यों को इस पर सम्मति देने का अवसर दिए बिना इस पर कोई निश्चय न किया जाय।

सभापति जी को धन्यवाद देने के समय श्री सभापति जी ने कहा कि त्रावणकोर आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल श्री मेनन के दुखद और असामयिक निधन से वैद्य संसार को भारी हानि हुई है। इस सम्बन्ध में एक शोक प्रस्ताव प्रधानमन्त्री द्वारा त्रावणकोर भेजा जाय और केरल प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन को महासम्मेलन का आगामी अधिवेशन एक मास के लिए स्थगित करने का अधिकार दे दिया जाय।

सभापति जी तथा सब उपस्थित सदस्यों का धन्यवाद करके सभा सानन्द विसर्जित हुई।

देहली
ता. १८-२-५५

प्रधानमन्त्री
अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन।

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ

४०वें अधिवेशन के सभापतियों का निर्वाचन-सम्पन्न

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन तथा तदन्तर्गत शिक्षा सम्मेलन के ४० वें वार्षिक अधिवेशनों के सभापतियों का चुनाव निर्विरोध सम्पन्न हो गया है। वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी, बम्बई, महासम्मेलन के सभापति तथा वैद्यराज श्री भीकाजी विनायक डेंग्वेकर, जबलपुर, शिक्षा सम्मेलन के सभापति घोषित किये गए हैं। अधिवेशन २९, ३० अप्रैल तथा १ मई १९५५ को सम्पन्न होगा।

* * *

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleton) आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल टिकयां व गोलियां बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकल इन्स्ट्रूमेन्ट, आदि के मिलने का पता:—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स क०

दयाल बाग़ (आगरा)

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन विशेषाधिवेशन, बीकानेर

आयुर्वेदमार्तण्ड आचार्य श्री यादवजी त्रिकमजी महाराज का हीरक जयन्ती समारोह

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के भूतपूर्वाध्यक्ष आचार्य श्री यादव जी महाराज का हीरक जयन्ती समारोह गत २२ फरवरी १९५५ को बीकानेर में महासम्मेलन द्वारा विशेषाधिवेशन करके मनाया गया। देश के विभिन्न प्रान्तों से महासम्मेलन के सदस्यों ने पर्याप्त संख्या में प्रत्यक्ष उपस्थित होकर महाराज के प्रति अपनी २ श्रद्धांजलियां अर्पित कीं तथा आयुर्वेद के प्रति उनकी महान सेवाओं की सराहना करते हुए उनके दीर्घायुष्य की कामना की। जो स्वयं उपस्थित नहीं हो सके उनमें से अनेक ने तार अथवा पत्रों द्वारा अपनी शुभकामनाओं के सन्देश भेजे। विभिन्न आयुर्वेद सम्मेलनों तथा मण्डलों की ओर से महाराज की सेवा में मानपत्र भेंट किए गए तथा फूल मालायें पहिनाई गईं।

भारत के उपराष्ट्रपति श्री एस्० राधाकृष्णन् तथा अ० भा० राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री उ० न० ढेबर की ओर से भी शुभ कामनाओं के सन्देश प्राप्त हुए जो नीचे प्रकाशित हैं। शेष सन्देश प्रेषकों की ओर से प्राप्त पत्रों को स्थान-संकोच के कारण प्रकाशित करना सम्भव नहीं है अतः केवल उनके नाम ही प्रकाशित किये जा रहे हैं।

भारत के उपराष्ट्रपति श्री एस् राधाकृष्णन् की ओर से प्राप्त सन्देश :—

सत्यमेव जयते

उपराष्ट्रपति – भारत
नई दिल्ली
९ फरवरी, १९५५

प्रिय महोदय,

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का द्वादशाधिवेशन २० फरवरी को होने जा रहा है।

यह अवगत करके भी मुझे आनन्द हुआ कि श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य की हीरक-जयन्ती-समारोह भी मनाने का विचार किया गया है।

आपके उत्सव की सफलता के लिए मैं अपनी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूं।

आपका शुभेच्छु,
एस्० राधाकृष्णन्

अ. भा. राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री उ० न० ढेबर की ओर से प्राप्त सन्देशः—

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी

७, जन्तरमन्तर रोड,
नई दिल्ली

ता० १२-२-५५

श्री ठाकुरप्रसाद जी,

मैं आपके महासम्मेलन को बड़ी सफलता इच्छता हूँ। मा० आचार्य श्री यादव जी भाई को हमारा प्रणाम। जनता के आरोग्य के लिए भगवान धन्वन्तरि उनीने सुदीर्घ आयुष्य के साथ परम स्वास्थ्य दें ऐसी मैं प्रार्थना करता हूँ।

भवदीय
उ० न० ढेबर

श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा
संयुक्त-स्वागतमन्त्री
सेवानिकेतन बीकानेर

निम्नलिखित वैद्यों तथा सस्थाओं की ओर से तार द्वारा शुभकामनायें प्राप्त हुईं।

महागुजरात प्रान्तीय वैद्यमण्डल, बम्बई। महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्य मण्डल, बम्बई। सौराष्ट्र प्रान्तीय वैद्य मण्डल, राजकोट। मुख्याध्यापक, स्व० पं० हरिप्रपन्न जी आयुर्वेद विद्यालय, बम्बई। श्री वाडीलालशाह, ट्रस्टी—स्व० वैद्य हरिप्रपन्न जी ट्रस्ट, बम्बई। श्री वासुदेव द्विवेदी, डायरेक्टर आफ आयुर्वेद, राजकोट। श्री डा० प्राणजीवनदास मेहता, जामनगर। श्री वैद्य गणेशदत्त जी सारस्वत, जामनगर। श्री वैद्य रामरक्ष पाठक, जामनगर। श्री वैद्य हरिदत्त जी शास्त्री, डायरेक्टर आफ आयुर्वेद, बम्बई। श्री बम्बई वैद्य सभा, बम्बई। श्री वैद्य माधव प्रसाद शास्त्री, अध्यक्ष—अहमदाबाद वैद्य सभा, अहमदाबाद। श्री वैद्य महेन्द्रनाथ शास्त्री, पोद्दार आयुर्वेदिक कालेज, बम्बई। श्री स्वामी दयानिधि जी, ऋषिकेश। श्री प्यारेलाल जी शर्मा, बम्बई। श्री वैद्य वेदप्रकाश शर्मा, बम्बई। श्री वैद्य रामगोपाल शर्मा, बम्बई। श्री राजवैद्य उदयचन्द्र जी भट्टारक, जोधपुर। श्री वैद्य नानासाहब पुराणिक, पनवेल। श्रीमान् सेठ उमादत्त नेमाणि, बम्बई। श्री वैद्य विद्यानारायण, पटना। श्रीमान् सेठ चतुर्भुज गोर्धनदास मूलजी जेठा, बम्बई। श्रीमान् सेठ लछमनदास दागा, बम्बई। श्रीमान् सेठ गोविंदलाल मुकुन्द लाल, बम्बई। मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्य सम्मेलन, नागपुर। वैद्यराज पं० त्रिपाठी। श्री वैद्य शिवकरण शर्मा छांगाणी, नागपुर इत्यादि।

निम्नलिखित संस्थाओं की ओर से मालायें पहिनाई गईं:—

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, देहली, अध्यक्ष—श्रीमान् छांगाणी जी द्वारा। बम्बई राज्य वैद्य सम्मेलन, बम्बई—श्री गजानन जी शर्मा द्वारा। महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्य

मण्डल, बम्बई—श्री वामनराव जी द्वारा। महागुजरात प्रान्तीय वैद्य मण्डल बम्बई—श्री वामनराव जी द्वारा। सौराष्ट्र वैद्य सम्मेलन, राजकोट—श्री वामनराव जी द्वारा। महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्यमण्डल, नासिक—श्री वामराव जी द्वारा। बम्बई वैद्यसभा, बम्बई, आयुर्वेद चिकित्सक मण्डल, बम्बई तथा अहमदाबाद वैद्य सभा, अहमदाबाद—श्री श्रीराम शर्मा द्वारा। बम्बई तथा उपनगर वैद्यसम्मेलन बम्बई—श्री सीताराम जी मिश्र द्वारा। जिला आयुर्वेद मण्डल, भटिण्डा—श्री वैद्य मुंशीराम जी द्वारा। राजस्थान आयुर्वेद पत्रकार सम्मेलन। उदयपुर कमिश्नरी वैद्यसभा, उदयपुर। प्रिंसिपल, आयुर्वेदिक कालेज, उदयपुर—श्रीमान् प्रेमशंकर जी द्वारा। राजस्थान प्रान्तीय नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ स्नातक मण्डल। झुंझुनु जिला वैद्य सभा। अखिल भारतीय आयुर्वेद पत्रकार सम्मेलन इत्यादि।

निम्न महानुभावों की ओर से शुभकामनाओं के पत्र प्राप्त हुए :—

श्री उ० न० ढेबर भाई, अध्यक्ष—अ० भा० राष्ट्रीय कांग्रेस, देहली। श्री डा० एस्० राधाकृष्णन, उपराष्ट्रपति—भारतीय गणतन्त्र, देहली। बीहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, मुजफ्फरपुर। श्रीमान् वैद्यराज ख्यालीराम जी द्विवेदी, इन्दौर। श्री वैद्यराज पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, प्रयाग। वैद्यरत्न क० प्रतापसिंह जी, बनारस। श्री वैद्य मणिराम जी शर्मा, रतनगढ़। श्री हरिदत्त शास्त्री, डायरेक्टर आयुर्वेद, बम्बई। श्री भीकाजी विनायक डेंग्वेकर, जबलपुर। रा० ब० श्री पं० श्रीदत्त शर्मा, ऋषिकेश। क० श्री प्रभाकर चटरजी, कलकत्ता। वैद्यराज पं० नानकचन्द्र शास्त्री, देहली। श्री वैद्य लक्ष्मीशंकर शास्त्री, अहमदाबाद। श्री वैद्य ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल। श्री वैद्य शिवनाथ शास्त्री, बुरहानपुर। श्री वैद्य बालकृष्ण दवे, राजकोट। श्री वैद्य बाघजी के० सोलंकी, कच्छ। वैद्य श्री शिवजी जेठाभाई, मांडवी कच्छ। राजवैद्य सुधन्वा जी, देहली। वैद्यराज गौरीशंकर जी आचार्य, अध्यक्ष—विद्या मन्दिर, सरदारशहर। श्री वैद्य विद्यानारायण शास्त्री, पटना। श्री वैद्य वंशीधर, अजमेर। श्री वैद्य शम्भुनाथ शास्त्री, कानपुर। श्री वैद्य लक्ष्मीकान्त दामोदर पुराणिक, नागपुर। क० पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, हैद्राबाद। श्री वैद्य नारायण हरि जोशी, बम्बई। श्रा वैद्य वासुदेव शर्मा, उज्जैन। श्री वैद्य सोमदेव शर्मा सारस्वत, लखनऊ। श्री वैद्य जुगलकिशोर जी, ताजपुर। श्री वैद्य सूर्यकान्त शर्मा भिषगाचार्य, भगवतगढ़। राजवैद्य शिवराम जी, छतरपुर, विन्ध्यप्रदेश। वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री, देहली। वैद्य श्री महावीर प्रसाद जी, बम्बई। श्री वैद्य मोहनकृष्ण मिश्र आयुर्वेदाचार्य, भिवानी। श्री प्रधान अध्यापक—बनवारीलाल विद्यालय, देहली। श्री द० आ० कुलकर्णी, डायरेक्टर आयुर्वेद, उत्तर प्रदेश इत्यादि।

इनके अतिरिक्त अन्य महानुभावों की ओर से भी शुभ सन्देश प्राप्त हुए थे स्थानाभाव के कारण उनका प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। भटिण्डा (पेप्सु), नागपुर, दिल्ली, बम्बई आदि स्थलों से जो वैद्य महानभाव महाराज की हीरक जयन्ती के लिये विशेषतया पधारे थे उनको महासम्मेलन की ओर से हार्दिक धन्यवाद।

श्रीयुत वैद्यराज यादवजी त्रिकमजी आचार्य
हीरक जयन्ती समारोह, बीकानेर

ता. २० और २२ फरवरी को राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन द्वादशाधिवेशन के अवसर पर अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की ओर से वैद्यराज श्री यादवजी त्रिकम जी आचार्य 'वैद्यवाचस्पति' का हीरक जयन्ती समारोह मनाया गया । ता. २० को राजस्थान के प्रधान मंत्री श्री मोहन लाल जी सुखाडिया के शुभ हस्तों द्वारा श्री महाराज जी को अ. भा. आ. महासम्मेलन की ओर से रजतावरण युक्त अभिनन्दन पत्र समर्पित किया गया । श्री सुखाडिया जी ने अभिनन्दन पत्र समर्पित करते हुए कहा कि—पू० यादव जी महाराज के नाम से तो परिचित मैं बहुत समय से हूं किन्तु इनके दर्शनों की मेरी अभिलाषा आज पूर्ण हुई है, श्री महाराज को अभिनन्दन पत्र समर्पित करते हुए मैं अपने को गौरवान्वित समझता हूं । इस अवसर पर महासम्मेलाध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा जी ने श्री महाराज जी की प्रशंसा करते हुए कहा कि—श्री महाराज की हीरक जयन्ती मनाते हुए हमें अत्यन्त ही प्रसन्नता हो रही है । महामण्डल एवं आयुर्वेद के लिये की हुई श्री महाराज जी की सेवाएं इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायेंगी । आपने कहा कि श्री यादव जी किसी एक ही प्रान्त के प्रिय हैं यह बात नहीं है । कन्याकुमारी से काश्मीर तक आपकी एक सी ही प्रतिष्ठा है । पिछले दिनों जब कोट्टाकल में महामण्डल का अधिवेशन हुआ तब राजस्थान के प्रतिनिधियों ने महामण्डल का आगामी अधिवेशन राजस्थान में करने का निमन्त्रण देते हुए अन्य कारणों के साथ साथ एक यह भी प्रमुख कारण बताया कि क्योंकि वहां पर श्री यादव जी महाराज का अभिनन्दन भी किया जायगा अत: राजस्थान में ही अधिवेशन किया जाय । इसका उत्तर देते हुये दक्षिण के प्रतिनिधियों ने कहा कि हमारे राजस्थानी मित्रों का यह तर्क युक्तिसंगत नहीं है कि 'हम श्री यादवजी महाराज का अभिनन्दन करेंगे अतः हमारे यहीं अधिवेशन होना चाहिये' श्री यादव जी महाराज हमारे भी उतने ही प्रिय और पूज्य हैं जितने कि औरों को, हम भी महाराज का अभिनन्दन उतने ही उत्साह एवं प्रेम से करेंगे जितने से कि आप । इससे हम समझ सकते हैं कि श्री महाराज जी का प्रभाव एवं प्रतिष्ठा सम्पूर्ण राष्ट्र में एक सी ही है । इस वृद्धावस्था में भी श्री महाराज जी आयुर्वेद सेवा के लिये जितना परिश्रम शास्त्र लेखन आदि का करते हैं उतना शायद ही कोई अन्य व्यक्ति करता हो । श्री महाराज जी महामण्डल के संस्थापकों एवं मुख्य संरक्षकों में से हैं । महामण्डल आपका अभिनन्दन करते हुये अत्यन्त गौरव का अनुभव करता है । हम भगवान् धन्वन्तरि से प्रार्थना करते हैं कि वे महाराज को दीर्घायु बनायें और हमें आपकी शताब्दि मनाने का सौभाग्य प्राप्त हो ।

ता. २२ फरवरी को प्राणाचार्य श्री गोवर्धन जी शर्मा छांगाणी के सभापतित्व में

समारोह प्रारंभ हुआ। प्रारंभ में प्रधान मंत्री श्री वामनराव जी ने आये हुए शुभकामना के सन्देश पढ़ कर सुनाये। जिनकी सूची अन्यत्र प्रकाशित है। तदनन्तर श्री महाराज का गुणगान करते हुए निम्न महानुभावों के भाषण हुए–श्री शंकरदत्त जी (बीकानेर), श्री हनुमत्प्रसाद जी शास्त्री (रामगढ़), श्री मुंशीराम जी शर्मा (भटिंडा), श्री प्रभुदत्त जी शास्त्री (सीकर), श्री स्वामी मंगलदास जी (जयपुर), श्री स्वामी चेतनानन्द जी (देहली), श्री प्रेमशंकर जी (उदयपुर), श्री सीताराम जी मिश्र (बम्बई), श्री विद्याधर जी शास्त्री, एम० ए० (बीकानेर), श्री रतनलाल जी शास्त्री, श्री पद्मनाभ जी शास्त्री, श्री युगलसिंह जी, M.A., L.L.B. आदि। वर्तमान बीकानेर नरेश के पितामह महाराजा श्री भैरव सिंह जी ने भी स्वयं पधार कर शुभकामना व्यक्त की। निम्न संस्थाओं एवं सज्जनों की ओर से अभिनन्दन पत्र भेंट किये गये : -

अ. भा. आ. महासम्मेलन, राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, राजस्थान प्रा० वैद्य सम्मेलन स्वागत समिति (बीकानेर), भटिंडा जिला वैद्य मंडल (भटिंडा), राजस्थान आयुर्वेदिक सोसाइटी (बम्बई) और पर्शुरामपुरिया राजस्थान आ० कालेज (सीकर), राजकीय आयुर्वेद कालेज छात्र मंडल (उदयपुर), स्वामी केवलराम जी–आयुर्वेद सेवा निकेतन ट्रस्ट (बीकानेर), पुरुषार्थी वैद्य हकीम मंडल (जोधपुर), जिला वैद्य मंडल, जैतू (पेप्सु), निरंजन आयुर्वेद सदन (सीकर), नागोर जिला वैद्य सभा (नागोर), माधव सेवा सदन (सीकर), संस्कृत विश्व सम्मेलन (देहली), श्री रामदयालु जी भिषगाचार्य (जयपुर) आदि। निम्न संस्थाओं की ओर से भी अभिनन्दन किया गया—बम्बई राज्य वैद्य सम्मेलन, महागुजरात वैद्य मंडल, महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, निखिल कर्णाटक वैद्य मंडल, बम्बई वैद्य सभा, आयुर्वेद चिकित्सक मंडल (बम्बई), बम्बई और उपनगर वैद्य सम्मेलन (बम्बई), बम्बई और उपनगर जिला वैद्य परिषद् (बम्बई), सौराष्ट्र वैद्य सभा, अहमदाबाद वैद्य सभा आदि। सभापति श्री छांगाणी जी नें महाराज जी की सेवाओं का वर्णन करते हुए कहा कि –श्री यादवजी महाराज इस युग के महर्षि हैं, उन्होंने आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों का उद्धार एवं लेखन कर आयुर्वेद जगत् को चिर ऋणी किया है। आपका त्याग, स्वाध्याय एवं विद्वत्ता वैद्य समाज के लिये आदर्श हैं। नवीन वैद्यों को इनका अनुसरण करना चाहिये। आज श्री यादव जी महाराज का अभिनन्दन करते हुये अत्यन्त हर्ष होता है। भगवान् धन्वन्तरि से आपके चिरायु होने की प्रार्थना है।

श्री यादवजी महाराज ने अपने अभिनन्दन का उत्तर देते हुये कहा कि—मैं अखिल भा० आ० महासम्मेलन एवं राजस्थान प्रा० वैद्यसम्मेलन का आभार मानता हूं जिन्होंने मेरे प्रति अपनी शुभ कामनायें प्रकट करने के लिये इस समारोह का आयोजन किया। मैं उन सभी संस्थाओं एवं सज्जनों का भी आभारी हूं जिन्होंने मेरे प्रति अपनी शुभ कामनाएं प्रकट की हैं। इस समय में हमारे शास्त्रों का उद्धार होना बहुत आवश्यक है। मैं प्रतदिन प्रातः ४ बजे उठकर अपने शास्त्रों का अध्ययन करता हूं, मै तो कहता

हूं कि "शास्त्रं रक्षति रक्षितम्"। केवल प्रचार से शास्त्रों की उन्नति संभव नहीं, प्रचार भी करना चाहिये मैं इसका विरोधी नहीं किन्तु शास्त्रों का अध्ययन, अध्यापन, प्रति संस्कार द्वारा उद्धार होना आवश्यक है। हमें मूल संहिता ग्रन्थों के प्राप्य सब वाक्यों का संग्रह करना चाहिये। इस समय चरक, सुश्रुत, वाग्भट सम्पूर्ण प्राप्य हैं, काश्यप संहिता के दो खण्ड प्राप्य हैं शेष की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये, अन्य संहिता ग्रन्थों के वाक्य यत्र तत्र टीकाओं में उद्धरण स्वरूप आये हुये हैं उनका पृथक् पृथक् विषयानुसार संग्रह करना चाहिये। प्राचीन टीकाओं का संग्रह एवं संशोधन करना चाहिये। सुश्रुत की भानुमती एवं वाग्भट की शिवदास सेन की व्याख्या संपूर्ण नहीं है उनको प्राप्त करने के प्रयत्न करने चाहियें।

अपनी विद्यापीठ ने विषय प्रधान पाठ्यक्रम तो बनाया किन्तु विषय प्रधान अच्छे पाठ्य ग्रन्थ प्राप्य नहीं, प्रत्येक विषय के पृथक् ग्रन्थों के बिना छात्रों का अच्छा अध्ययन नहीं होता, इसलिये मैंने स्वयं और अन्य लोगों को प्रेरणा देकर एक एक विषय के पृथक् पृथक् ग्रन्थ लिखने एवं लिखवाने का प्रयत्न किया। नवीन पाठ्य ग्रन्थों में आधुनिक विज्ञान का भी तुलनात्मक विवेचन आवश्यक है। हमारा इस समय का पाठ्यक्रम मिश्र आयुर्वेद ही है और यह ठीक भी है। मिश्र विद्यालयों के छात्रों के आयुर्वेदीय ज्ञान की अल्पता के मुख्य कारण हैं--पाठ्यग्रन्थों की कमी और एक ही विषय का दो विभिन्न (डाक्टर एवं वैद्य) अध्यापकों द्वारा पढ़ाया जाना। इससे छात्रों को बहुत सी बार भ्रम होता है। डाक्टरों के पास पढ़ाने के लिये विविध शिष्य बुद्धि गम्य सब प्रकार के ग्रन्थ उपलब्ध हैं. हमारे यहाँ प्रथम तो पाठ्य ग्रन्थों का ही अभाव है और जो हैं वे भी पूर्णाङ्ग नहीं। मेरे विचार से जबतक प्राच्य प्रतीच्य दोनों विषयों के संयुक्त ग्रन्थ न हों एवं एक विषय को एक ही अध्यापक न पढ़ाये तब तक समस्या हल नहीं होगी। सरकार विद्यापीठ, एवं सम्मेलनों को प्राच्य प्रतीच्य विषयों के सम्मिलित ग्रन्थ नीरक्षीर न्याय से इस प्रकार से लिखवाने चाहियें जिनमें उन उन विषयों का सम्पूर्ण संग्रह हो, तथा उनको पढ़कर निकलने वाले छात्र सब प्रकार की चिकित्सा (मूढ़गर्भ, अन्त्रवृद्धि आदि सह) में निपुण हों। हम चाहे कैसे भी हों किन्तु हमारे भावी छात्र सर्वाङ्ग संपूर्ण चिकित्सक होने चाहियें। अच्छे अध्यापकों एवं विद्वानों को इस प्रकार के ग्रन्थ निर्माण करने चाहियें। सर्व प्रथम शारीर शब्दों का अर्थ निश्चित करना चाहियें. वर्तमान में शिरा, धमनी, नाडी, त्रिक् आदि शब्दों का विभिन्न अर्थों में उपयोग किया जाता है, अतः इन शब्दों की सर्व-सम्मत निश्चित व्याख्या करनी चाहिये। इसी प्रकार अन्य विषयों के भी संदिग्ध स्थलों के निश्चित अर्थ कर एवं अपूर्णांशों की पूर्ति कर ग्रन्थ निर्माण करने चाहिये। 'द्रव्यगुण' विषयक द्रव्यों के स्वरूप, संज्ञा आदि का भी निर्णय होना चाहिये। बिना शास्त्रों के प्रति संस्कार के हमारी उन्नति नहीं होगी। प्राचीनकाल में भी ऐसा हुवा है। चरक जैसे ग्रन्थ का भी प्रति संस्कार किया गया है, अतः हमें नवीन विषयों का अवश्य समावेश करना

चाहिये। जो कुछ भी अन्य शास्त्रों से लिया जाय वह अपने ढाँचे में ढालकर अपने अनुरूप बनाकर लेना चाहिये। हमारे आचार्यों ने दर्शनों से विचार लिये किन्तु उन्हें अपनी आवश्यकतानुसार अपने अनुकूल बना कर लिया। महामना स्वर्गीय मालवीयजी ने एक समय कहा था कि––विदेशी स्त्री को घर में लाना कोई पाप नहीं है किन्तु उसे मेडम बनाकर नहीं किन्तु आर्या बनाकर रखना चाहिये, अपने धर्मानुसार उसके संस्कार कर लेने चाहियें।" अतः मैं भी यही कहता हूं कि आजकल अपने कॉलेजों में पढ़ाई जानेवाली 'मेडम एलोपैथी' को अपने धर्मानुसार संस्कारित कर 'आर्या आयुर्वेद' के रूप में ग्रहण करना चाहिये।

अन्त में मैं पुनः यहां उपस्थित रहने वाले आप सब महानुभावों का आभार मानता हूं, आप लोगों ने मेरे प्रति जो प्रेमभाव प्रकट किया उसके लिये, किन्तु मुझे सच्ची प्रसन्नता तभी होगी जब आपलोग सब प्रकार से आयुर्वेद को उन्नत बनायेंगे।

इसके पश्चात् प्र०मन्त्री श्री वामनराव जी ने राजस्थान प्रा० वै० सम्मेलन द्वादशाधिवेशन स्वागत समिति बीकानेर, और अन्य सभी संस्थाओं एवं सज्जनों का आभार प्रकट किया जिन्होंने इस कार्य में सहयोग दिया। आचार्य श्री छांगाणी जी का भी आभार माना जिन्होंने इस वृद्धावस्था में भी पधार कर समारोह को सफल बनाया। आपने पू० महाराज श्री यादवजी का भी हार्दिक आभार प्रकट किया जो कि महामण्डल की इस प्रार्थना को स्वीकृत कर इस अवसर पर यहां उपस्थित रहे। आपने कहा कि––पूज्य महाराज जी जैसे महापुरुष का अभिनन्दन कर महामण्डल स्वयं गौरवान्वित हुआ है।

रोग पर जादू की भांति तत्काल असर करने वाले

मार्तण्ड के आयुर्वेदिक इंजेक्शन

मार्तण्ड की समस्त वैज्ञानिक साधन सम्पन्न और आधुनिक मशीनों से सुसज्जित प्रयोगशाला में उच्च शिक्षित आयुर्वेदज्ञों और विदेशी रसायनज्ञों की देख रेख में निर्माण हुए ये आयुर्वेदिक इंजेक्शन अपना तत्काल असर करते हैं, इनका प्रभाव स्थाई होता है, रखे रहने पर भी ये कभी नहीं बिगड़ सकते, इनकी आशुगुणकारिता और शुद्धि की पूरी गारंटी है। सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगाइये।

निर्माता: मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत, उत्तर प्रदेश
(रिसर्च इंस्टीट्यूट आफ इंडियन मेडिसन्स)

नितान्तशान्तस्वान्तानामायुर्वेदीयग्रन्थमालाग्रथनाविश्रान्तानाम् सकलभारतायुर्वेद-
महासम्मेलनकर्णधाराग्रगण्यानां निरन्तरायुर्वेदशास्त्रैक—
चर्चाचणानां सन्दिग्धतत्त्वनिर्णयप्रचण्डानाम्
आयुर्वेद-मार्तण्डानाम् सकलमनोऽभिरामकर्मणाम्
आचार्याणाम् श्री १०८ श्रीवैद्य यादव त्रिक्रमजी महोदयानाम्

अभिनन्दनम्

हर्षप्राग्भरिताः समस्तभिषजां श्रेणीः समुल्लासयन्
रिक्तापूरणमाचरन् पुनरपि श्रान्तान् समुत्साहयन्
द्वानारचयन् स्वकर्मसु जनानुत्तेजयन्नुत्पत-
त्तत्तस्करवैद्यकं निरसयन् श्रीयादवः पातु नः ॥

उद्याते त्वयि लोकबान्धव ! अलं सोध्येन नः साम्प्रतम्
मूर्खोल्लूककुवैद्यकं क्वचिदपि प्रायात् त्वदीयेक्षणात्
अस्माकं कदलीसमे मनसि यो मोहेभ आपातुकः
तस्मिन् शाश्वतिकं तवास्त्वहरहः शार्दूलविक्रीडितम् ॥

आदर्शं चरितं मनश्च भवतः सौजन्यमालम्बते
तत्त्वान्वेषणतत्परा च धिषणा लग्नैव ग्रन्थोद्धृतौ
आनाय्याऽपि च जर्मनीप्रभृतितो विश्वस्तपाठावलीः
ग्रन्था वैद्यकविश्रुताश्च भवता नैके सुसम्पादिताः ॥

ज्ञातुं द्रव्यगुणं रसामृतमपि व्याधीन् विवेकेन च
प्राचीनानपि शृङ्खलाविरहितान् पाठान् समादाय सत्-
तत्त्वान्वेषणतत्परेण भवता पाठ्यक्रमोन्नायको
मार्गः प्रादुरभावि वैद्यकजगत्प्रोत्साहसिद्धिप्रदः ॥

आयुर्वेद महाम्भोधि कर्णधार धुरन्धरः
चिरञ्जीव्याच् चिरञ्जीव्याद्
यादवाचार्य एष नः ।

अपि च

चरीकर्तु भव्यं सदा ते रमेशो
गणेशो जरीहर्तु विघ्नं त्वदीयम् ।
नरीनर्तु वाणी मुखे ते सुवाणी
दरीदर्तु ते शत्रुवर्गं महेशः ॥

विनयावनताः—**सकलभारतायुर्वेदमहासम्मेलनसदस्याः**
श्री यादवशर्मणां हीरकजयन्तीमहोत्सवे विकानेरपत्तने समवेताः

राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन

यह सम्मेलन राजस्थान की अलकापुरी बीकानेर नगर में ता. २०–२–५५ से वैद्यराज श्री हरिदास जी आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये लगभग ३०० प्रान्त के प्रसिद्ध एवं प्रमुख वैद्यराज महानुभावों के अतिरिक्त भारत विख्यात आयुर्वेद संसार के महात्मा स्वरूप श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य बम्बई, अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन के सभापति श्री शिवशर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मंगलाचरण के अनन्तर स्वागत भाषण श्री केवलराम जी आयुर्वेदमनीषी ने पढ़ा। सम्मेलन का उद्घाटन भाषण आरम्भ करते हुये राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री मोहनलाल जी सुखाड़िया ने कहा "किसी वस्तु का मूल्य इसी बात से आंका जाता है कि उसका जन-जीवन पर क्या प्रभाव है और जनता से उसका कितना निकट सम्पर्क है। आयुर्वेद से जनता को काफी लाभ हुआ है। विज्ञान के इस युग में हमारे देश का भी शेष जगत से सम्पर्क हुआ और एलोपैथिक प्रणाली का भी यहाँ प्रसार हुआ। किसी भी विज्ञान को अपनी निजी अच्छाइयों पर ही टिकना है। जो विज्ञान जितना ज्यादा जन-हितकारी होगा उतना ही ज्यादा वह टिकेगा। यह ही बात आयुर्वेद एलोपैथिक प्रणाली पर लागू होती है। आयुर्वेद आज ऐलोपैथिक प्रणालियों में से ग्रहणीय भावों का अपने में समन्वय करे, यह मैं चाहता हूँ। इस प्रकार आयुर्वेद संसार के सामने नई चीज दे सकता है।"

माननीय मुख्य मंत्री महोदय के भाषण के पश्चात आयुर्वेदमनीषी श्री शिवशर्मा जी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए आयुर्वेद की महानता पर अत्यन्त प्रभावशाली शब्दों में प्रकाश डाला। श्री शर्मा जी का भाषण सामयिक और संक्षिप्त होते हुए भी उपस्थित जनता में चेतना का संचार करने वाला था। सम्मेलन के सभापति श्री हरिदास जी ने आयुर्वेद के स्वरूप और वैशिष्ठ्य पर प्रकाश डाला और कहा कि केन्द्रीय सरकार ऐलोपैथी में आयुर्वेद को आत्मसात् करने का जो प्रयास कर रही है यह राष्ट्र हितैषियों के लिये चिन्ता का विषय है। प्रदर्शनी का उद्घाटन राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री श्री कुम्भाराम जी आर्य ने किया। श्री कुम्भाराम जी ने अपने भाषण में कहा कि प्रदर्शनी छोटी हो या बड़ी इस तरफ हमारा ध्यान नहीं जाना चाहिए। हमें तो प्रदर्शनी की उपयोगिता पर विचार करना चाहिए। हमारा तो ध्यान इस बात की ओर जाना चहिए कि हमारा कदम किस तरफ बढ़ रहा है। यह प्रदर्शनी इस बात की द्योतक है कि हमारा वैद्य समाज मिलकर कार्य कर रहा है। और आयुर्वेद की उन्नति की बात सोच रहा है। हमें यह सोचना है कि हमारे घर की चिकित्सा प्रणाली की उन्नति किस प्रकार हो। प्रदर्शनी में यह प्रचार होना चाहिए कि जो दवा हमारे देश के आबहवा के अनुकूल न हो वह दवा हमारा उतना

फायदा नहीं कर सकती जितना कि यहाँ कि आबहवा में उत्पन्न जड़ी बूटियां फायदा करेंगी ।

रात्रि में विषय निर्वाचनी में वे प्रस्ताव रखे गये जो प्रान्त में आयुर्वेद के उत्थान एवं परिवृद्धि में सहायक हों ।

रा० प्रा० सम्मेलनान्तर्गत २२–२–५५ को अ० भा० महासम्मेलन का विशेषाधिवेशन श्री यादव जी महाराज की हीरक जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में सम्पन्न हुआ ।

अभिनन्दन की सफलतार्थ शतशः संमति पत्र आये । सब ही प्रान्तों से प्रतिनिधि अभिनन्दनार्थ उपस्थित हुए । अ. भारतवर्षीय वैद्यराज का सबसे बड़ा यह अभिनन्दन समारोह था जो सम्मेलन के मंच पर इस विशाल आयोजन के साथ मनाया गया ।

—:o:—

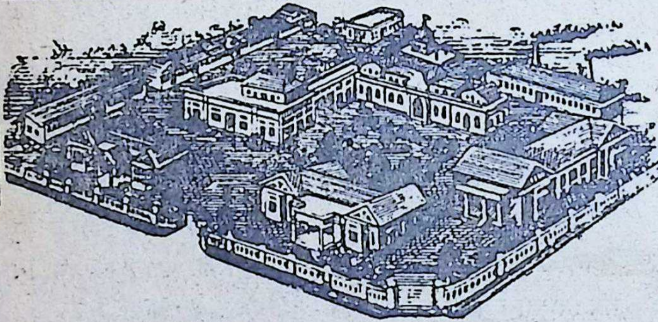

४५ वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम REGD

गोंडल, सौराष्ट्र ।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार के भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, तैल, मलम, अंजन, अवलेह, आसवारिष्ट तथा पेटेंट वगैरह सैंकड़ों आयुर्वेदिक औषधियाँ हाथ से तथा उपलों की अग्नि से बड़े जत्थे में तैयार की जाती हैं । यहां की दवाइयां सरकारी, म्युनिसिपल तथा धर्मार्थ दवाखानों आदि में तथा विदेशों में प्रचुर प्रमाण में जाती हैं । विद्वान वैद्य, हकीम तथा एलोपैथ डाक्टर गोंडल रसशाला की औषधियों के उपयोग से रोगियों को रोगमुक्त कर यश तथा धन कमा रहे हैं । प्रजा के हृदय में रसशाला ने विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है । रोग के लिए सलाह मुफ्त दी जाती है, हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी सूचीपत्र आज मंगाइये । बम्बई की शाखायें :—

शाखा नं० १ गोंडल रसशाला औषधाश्रम,
छोटालाल भवन, ४१६ कालबा देवी रोड,
मुंबई २ ।

शाखा नं० २ गोंडल रसशाला औषधाश्रम
१७ कोमरश्यल चेम्बर्स. मस्जिद बंदर रोड,
जकरिया मस्जिद सामने, मुंबई ३ ।

The 40th All India Ayurvedic Congress Trivandrum

Preparations for the 40th Planery Session of the All India Ayurvedic Congress scheduled to meet this year at Trivandrum (Travancor-Cochin State) on 29th, 30th April and 1st May 1955 under the auspices of Keraleeya Vaidya Mahamandalam, are briskly going on. A Strong Reception Committee and a number of Sub-Committees under it consisting of the most influential and eminent Vaidyas of the State are vigorousely engaged in completing the arrangements and chalking out a programme for the session. The names of the members of the Reception Committee, Executive Committee and Sub-Committees are given below:

Reception Committee.

Office Bearers.

(1) Chairman.

Ayurveda Acharya Sri Kalady K. Parameswaran Pillai—Professor of Research, Ayurveda College, Trivandrum and President, Keraleeya Vaidya Mahamandalam, Trivandrum.

(2) Secretary.

Ayurveda Acharaya Dr. R. P. Chittazham, Lecturer, Ayurveda College, Trivandrum & Secretary, Keraleeya Vaidya Mahamandalam, Trivandrum.

(3) Treasurer.

Sri Kumarakom P. Parameswaran Pillai, Professor of Clinical Studies Ayurveda College, & Superintendent, Ayurveda Hospital, Trivandrum.

Executive Committee.

1. Sri M. N. Kesava Pillai B. A., A. M. & S, Director of Indigenous Medicine, T. C. State, Trivandrum.
2. Sri Kumarkom P. Parameswaran Pillai.
3. Shri Kalady K. Parameswaran Pillai.
4. Shri V. Bhargavan, Lecturer in charge of Professor of Ayurveda, Ayurveda College, Trivandrum.
5. Shri K. N. Kesava Pillai, Retired Lecturer, Ayurveda College, Trivandrum & President, Keraleeya Vaidya Mandalam, Trivandrum District.

6. Shri P. K. Vaidyan, Secretary, Keraleeya Vaidya Mahamandalam, Trivandrum District.
7. Shri P. Ramakrishnan Vaidyan, Ex-Secretary, Keraleeya Vaidya Mahamandalam.
8. Ayurveda Acharya Dr. R. P. Chittazham.

Sub-Committees

(I) Finance Committee.

1. Shri M. N. Kesava Pillai B.A., A.M. & S, D. I. M., Trivandrum.
2. ,, Kumarkom P. Parameswaran Pillai,
3. ,, K. Karthikeyan, Vaidyan, Quilon.
4. ,, K. N. Gopalan, Vaidyan, Quilon.
5. ,, N. Divakaran, Vaidyan, Quilon.
6. ,, V. R. Balakrishna Pillai, Vaidyan, Kottayam.
7. ,, V. Bhargavan, Trivandrum.

(II) Publicity Committee.

1. Shri K. Ramakrishna Iyer, Professor, Ayurveda College, Trivandrum.
2. ,, P. Ramakrishnan Vaidyan, Trivandrum.
3. ,, R. Sivathanuvan Thampi B.A., Vaidya Kalanidhi, Trivandrum.
4. ,, C. K. Keralan, Ayurveda Acharya, Professor of Pharmacology, Ayurveda College, Trivandrum.
5. ,, V. Bhargavan, Ayurveda College, Trivandrum.
6. ,, Vaidyakalanidhi K. Balakrishnan Vaidyan, Trivandrum.
7. ,, Vaidya Kalanidhi P. Janardhanan Pillai, Joint Secretary, Keraleeya Vaidya Mahamandalam, Trivandrum.

(III) Sammelana Committee.

1. Sri M. N. Kesava Pillai B.A., A. M. & S, D. I. M.
2. Sri Kumarkom P. Parameswaran Pillai.
3. Sri V. Bhargavan.
4. Sri P. K. Vaidyan.
5. Sri Kaladya K. Parameswaran Pillai.
6. Sri Dr. R. P. Chittazham.
7. Sri S. Subramonia Sarma, Convener.

(IV) Exhibition Committee.

1. Sri. P. Lekshmi Amma. Chief Physician, Ayurveda Hospital, Trivandrum.
2. Ayurveda Acharya Sri N. Sreedharan, Research Assistant, Ayurveda College, Trivandrum.

3. Vaidyakalanidhi V. G. Parameswaran Nair, Asst. Physician, Ayurveda Pharmacy, Trivandrum.
4. Vaidya Kalanidhi K. Balakrishna Panicker, Trivandrum.
5. Vaidyakalanidhi Sri P. V. Devassia, Pandit, Ayurveda College.
6. Ayurveda Acharya C. K. Keralan, Professor of Pharmacology (Convener)

(V) Arts Committee

1. Vaidyakalanidhi Sri P. Janaradhanan Pillai.
2. Sri P. K Vaidyan.
3. Sri Ayurveda Acharya N. P Kurukul, Lecturer, Ayurveda College, Trivandrum.
4. Vaidyakalanidhi S. Subramonia Sarma.
5. " V. S. Parameswaran Nair.
6. " G. Bhaskara Pillai, Pandit, Ayurveda College, Trivandrum(Convener).

Volunteer Captain.

Sri V. S. Parameswaran Nair.

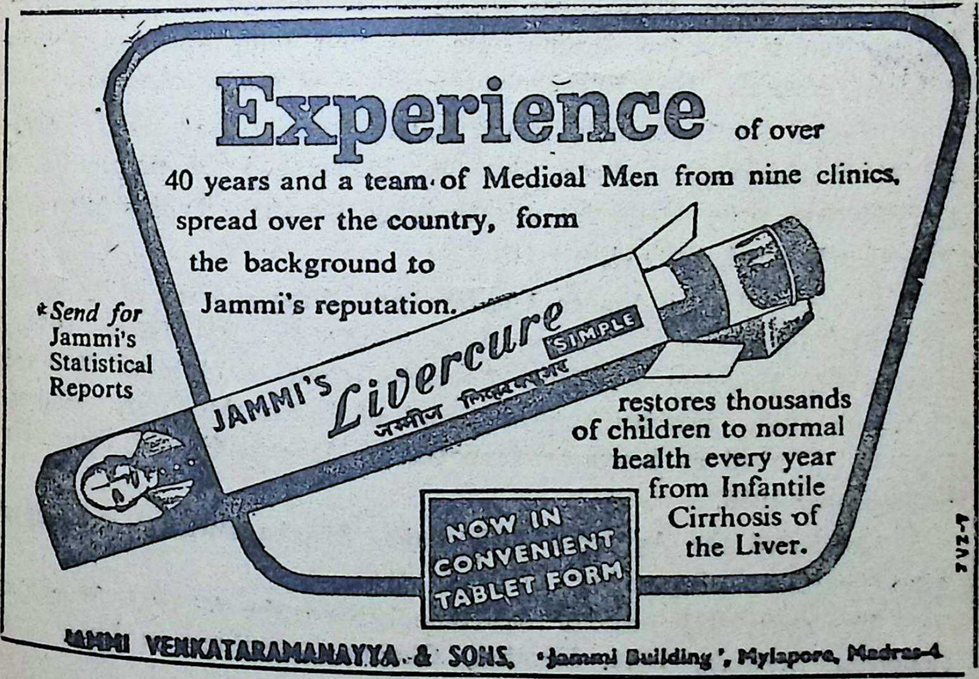

Experience of over 40 years and a team of Medical Men from nine clinics, spread over the country, form the background to Jammi's reputation.

*Send for Jammi's Statistical Reports

JAMMI'S Livercure SIMPLE जम्मीज लिवरक्यूर restores thousands of children to normal health every year from Infantile Cirrhosis of the Liver.

NOW IN CONVENIENT TABLET FORM

JAMMI VENKATARAMANAYYA & SONS, 'Jammi Building', Mylapore, Madras-4

BIOGRAPHICAL NOTE

Dr. A. Lakhsmi Pathi, B.A., M.B., & C.M., Bhishagratna.

Born on 3rd March 1880 at Madhavaram, West Godavari District, educated at the Board Primary School at Madhavaram 1886-88, Board School, Penugonda, East Godavary District, 1889, Victoria Jubilee Lower Secondary School, Tanuku, West Godavari District, 1890-92, Training College, Rajamundry, 1893-95, Board High School, Amalapuram, East Godavari District, 1898, Arts College, Rajamundry 1897 to April 98, Christian College, Madras, July to December 1898, Arts College, Rajamundry 1899. Acted as Taluq Gumasta, Kovvur, West Godavari District, July 1900 to March 1901. Supervisor, Census Office, Madras, March to September 1901. Arts College Rajamundry, January to June 1902. Presidency College Madras, July to December 1902. Arts College Rajamundry 1903 and January to June 1904. Medical College, Madras July 1904 to June 1909. Passed B.A. Physiology, Madras University 1906. Passed M.B. & C.M. of the Madras University in 1909. Started private practice as a Physician and Surgeon at Madras 1909. Published several books on History, Biography and Science in Telugu and the History of Andhras in the Volumes and other books as Manager, Vignana Chandrika Mandali, contributed largely to the Telugu Encyclopaedia, as Editor, Natural Sciences Section. He was first Joint Secretary, Telugu Academy, Madras. He is thus one of the makers of Modern Andhra.

Studied Ayurveda under Pandit D. Gopalacharlu 1914-1919. Principal, Madras Ayurvedic College, 1920-28. Encouraged the preparation of Genuine Ayurvedic Medicines as Managing Director, Andhra Ayurvedic Pharmacy Limited, 1920-44.

President Andhra Vaidya Mandaly 1919—Vijayanagram, 1926—Nandyal, 1931, Rajamundry, 1935 – Túni, 1939 – Gudivada, 1941—Ellore, 1945—Vijayawada. President All India Ayurvedic Congress, Bikaner 1933 and Cawnpore 1947. Member Central Board of Indian Medicine, Madras, 1939-40. Worked at Sewagram at request of Mahatma Gandhi, September to December 1939.

Conducted the Ayurveda Adhyapaka Sikesha Parishad at Arogya Ashramam; Awadi, September - October 1941.

Was awarded the title of Ayurvedodharka at the All India Ayurvedic Congress, Bezwada, 1944. Member, Chopra Committee on Indigenous

Medicine, Government of India, New Delhi 1947. Chairman, Board of Examiners, Village Vaidya Examination, Madras 1950. Was awarded title of Ayurveda Brihaspati—Master of Ayurveda—Ayurvedic University, Jhansi 1950. Chairman, Expert Committee on Ayurveda Andhra State, 1954.

Managing Director, Arogya Ashramam, Avadi, (Avadi Farm Health Resort). Interested in Social Reform, Physical Education. and Village Reconstruction through improved agriculture by introduction of modern machinery and co-operative methods. President Congress-Nagar Colonisation Co-operative Society Ltd, Avadi. Author of Vyaayaama Sastra, the Science of Physical Education and Massage. Editor, Text Book of Ayurveda—Ayurveda Siksha in Telugu and English in several volumes.

Married twice. He had two girls and one boy by wife Seeta—Pentapaadu, West Godavari District, and two girls and one boy by second wife. Mrs. Rukmani Lakshmipathi B. A., who was Minister of Public Health, Madras, was his second wife.

Mrs. Rukmani Lakshmipathi died on 6th August 1951. Dr. A. Lakshmipathi has about a dozen grandchildren, some of whom are graduates, living in different parts of India.

Message issued by Dr. A. Lakshmipathi on the eve of his 75th Birthday which fell on 3rd March 1955.

Today, I am feeling healthier and more enthusiastic than what I was on the same day last year I feel deeply grateful to the Almighty for favouring me with this robust health. I am of opinion that this satisfactory state of my health is due to my following the rules of health prescribed by Ayurveda in Sadwrittam. Although every moment, I remember, that life is evanescent, I feel that long life is in our own hands.

The more I study the modern sciences, the more I am feeling convinced about the truth that the Science of Ayurveda is superior to Modern Sciences.

My special message to the Vaidyas in the Andhra State is that all institutions, which are now being worked by the young Andhra leaders in the field of Ayurveda in different names and places, should become united into one and should give the Andhra Vaidya Mandali the great power that it had in the olden days. They should disprove the saying about the Andhras, namely "Baala Naayakam Bahu Naayakam". The proverb of "Young and Multi-leadership of the Andhras should be a thing of the past"

As usual, I propose to spend my 75th birthday by slowly and quietly walking a distance of 15 miles from Madras to the Arogya Ashramam, Avadi, in a worshipful mood as a Symbolical offering of Sacrifice to God who has extended to me one year more of a useful life devoted to the service of humanity.

Dr. A. Lakshmipathi Felicitated.

At the end of the proceedings on the first day Dr. Lakshmipathi lighted symbolically 75 lamps at the Dhanvanthari temple in the traditional way. At the morning sessions today, after the sittings of the Andhra Ayurveda Parishat, an address was presented to Dr Lakshmipathi by the 11th batch of Village Vaidyas undergoing training here. Doctor was also presented with new khadhar clothes. In his reply to their address Dr. Lakshmipathi stated that he commenced his studies in Ayurveda as an apprentice of Sri Chitavajjula Seetaramayya Garu who was treating his mother in the year 1903. He was then a student of the B.A. class. He said that he even then had the unique advantage of making a comparative study of Ayurveda as he was a student of modern Chemistry. He was then offered a scholarship by Godawari District Board for studying Modern Medicine at Madras Medical College. Although he entered the Medical College with some knowledge of Ayurveda, yet by the time he left the Medical College in 1909, he developed a strong bias against Ayurveda, so that,he said, that he wrote in the year 1910 in the preface that he contributed to a book called Angleya Oushadha Guna Deepika that the Ayurvedic Physicians were murderers, because, they used poisons like Arsenic and Mercury in their treatment. So strong was his prejudice against Ayurveda at that time. Laterly, after nearly 40 years of deep study of Ayurveda, he now thinks that Ayurveda is superior to Modern Medicine.

Dr. Lakshmipathi said the present medical needs of India can be solved only by making use of the service of the Village Vaidyas who happen to be still the persons responsible for delivering the goods to the people. The most practical of the modern advances in science should be made available to the people through the Village Vaidyas. Kevala Ayurveda or pure Ayurveda should be integrated with the teachings of an elementary knowledge First Aid, Maternity and Child Welfare and Rural Sanitation. The All-India Ayurveda Vidyapeetha had put forward a scheme for such training of the Village Vaidyas and their examinations. Every Vaidya should pass that examinations. Dr. Lakshmipathi was furthur of the opinion, that Doctors and Health Officers in the employment of the Andhra State should also pass the Ayurvedic part of the Village Vaidya Examination.

The celebrations continued in the evening.

आयुर्वेद
महासम्मेलन पत्रिका

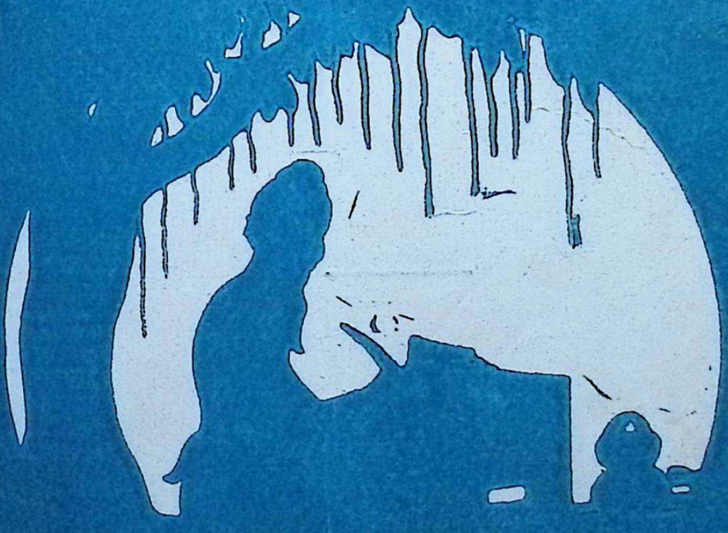

प्रधान सम्पादक
कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य धन्वन्तरि
संस्कृत विभाग सम्पादक
डॉ० [illegible] शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

विषय-सूची

१. सम्पादकीय १६१
२. ४० वाँ अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन १६४
३. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यकारिणी समितेः कार्यविवरणम् १६६
४. आयुर्वेद की वर्तमान शिक्षण-पद्धति — श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य १६९
५. वायु धातु — श्री धर्मदत्त वैद्य १७७
६. इन्द्रादिक शब्दों के अर्थ — श्री रघुबीरशरण शर्मा १८१
७. अजा — क० हरिकृष्ण सहगल १८९
८. आयुर्वेदिक इन्जैक्शन और वैद्य समाज — डा० ओंकारदत्त शर्मा १९१
९. दिल्ली का वैद्य समाज सचेत हो — श्री रामरतन पोपली १९६
१०. पाताल गरुडी विषयक शंकायें २००
११. प्रबन्ध लेखक विद्वद्भ्यः सादरनिवेवनम् — श्री बा० वा० नटराज शास्त्री २०१
१२. आयुर्वेदीय शिक्षापद्धत्यां श्री यादवाचार्य महोदयानामुपदेशः, अस्मत् कर्त्तव्यं च — श्री वा० बा० नटराज शास्त्री २०२
१३, जिज्ञासाधिकरणम् २०४
१४. प्रायश्चित्यं प्रायश्चित्तं वा — श्री गिरिजादत्त पाठक २०६
१५. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के नव-निर्वाचित अध्यक्ष २०९
१६. आयुर्वेद-लोक २११

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में विज्ञापन
देकर लाभ उठाइये

॥ श्री धन्वन्तरयेनमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि
संस्कृतविभाग सम्पादकः—श्री वा० बा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४१
अंक ४
दिल्ली, चैत्र २०१२, अप्रैल १९५५
वार्षिक ५)
एकप्रति ।।)

सम्पादकीय

केन्द्रीय सरकार और आयुर्वेद

संसद् के चालू बजट अधिवेशन में स्वास्थ्य विभाग की मांग पर भाषण देते हुए स्वास्थ्य मंत्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने कहा कि मैं तो आयुर्वेद को प्रोत्साहन देना चाहती हूं परन्तु आयुर्वेदिक शिक्षण संस्थाओं से निकले स्नातक चिकित्सा क्षेत्र में आकर अर्वाचीन विज्ञान की औषधियां ही प्रयोग में लाते हैं—ऐसी अवस्था में इससे क्या लाभ होगा मैं नहीं समझ सकी—राजकुमारी जी ने संसद् में किन शब्दों का प्रयोग किया और आयुर्वेद के विरुद्ध कितनी देर बोलीं इस बहस में हम पड़ना नहीं चाहते। हम पहिले से ही जानते हैं कि राजकुमारी आयुर्वेद के सम्बन्ध में क्या विचार रखती हैं। सारा आयुर्वेद जगत जानता है कि वे पूर्णतया इसके विरुद्ध हैं और उसको समाप्त करने के लिए नये नये नारे और मार्ग ढूंढती रहती हैं। अबकी बार आयुर्वेद को सहायता न देने का कारण उन्होंने नया ही खोज निकाला है कि आयुर्वेदिक स्नातक एलोपैथिक औषधि व्यवहार में लाते हैं। हम नहीं समझ सकते कि वे अपनी आयुर्वेद विरोधी भावना को इस प्रकार की लचर दलील देकर कैसे छुपा सकेंगी। एक ओर तो अपनी सरकार में बैठ कर फैसले करती हैं कि आयुर्वेदिक कालजों में कम से कम प्रवेश योग्याता F.Sc. होनी चाहिए और उनमें आधुनिक विषय अवश्य पढ़ाये जाने चाहियें भले ही चाहे उनसे आयुर्वेद का गला घुटता हो—ऐसे ही आयुर्वेदिक कालेजों को कृपा करके कुछ सरकारों की ओर से दान भी दिया जाता है तो उन्हीं को जिनमें आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की

साज सज्जा का जमाव होता है। यदि ऐसी संस्थाओं से निकले स्नातक मानव सेवा के हेतु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से भी सहायता लेते हैं जो जबरदस्ती उनके दिमाग में भर दिया गया है, तो वे कौनसा बड़ा अपराध करते हैं। राजकीय अथवा राज्य-पोषित मिश्र-शिक्षण संस्थाओं की कतियां यदि ऐसा करतीं हैं तो सारे आयुर्वेद जगत को किसलिए कोसा जाता है—क्यों उसकी उपेक्षा की जाती है ? वर्षों से आयुर्वेद संसार चीख रहा कि सरकार विशुद्ध आयुर्वेद के कालेज खोले और फिर देखें—यदि आयुर्वेद निर्जीव होगा तो वह अपनी मौत स्वयं मर जायेगा—राजकुमारी जी को इधर उधर के प्रयत्न नहीं करने पड़ेंगे, उनका मार्ग और भी प्रशस्त हो जायेगा।

दूसरी वात हम राजकुमारी जी की सेवा में निवेदन करना चाहते हैं कि वे तो विश्व-वन्धुत्व में विश्वास रखती हैं न ! फिर उनको यह शिकायत क्यों हो आई। विज्ञान किसी एक की बपौती बन कर नहीं रहा है—वह सर्वगामी है और मानव के कल्याण के हेतु आविष्कारित होता है फिर किसी पर रोक क्यों ? क्या राजकुमारीजी दक्षिण अफ्रीका में चल रहे संघर्ष काले गोरे की बांट की तरह, भारत में विज्ञान के लिए परिधियां बनाना चाहती हैं ?

तीसरी वात आज का ऐलोपैथिक डाक्टर जो आयुर्वेद में वर्णित सैकड़ों औषधियों को नये नये ऐलोपैथिक नाम देकर सुबह से शाम तक व्यवहार में लाता है-क्या राजकुमारी जी उसको डाक्टरों की लिस्ट से इसलिए निकाल देने को तैयार होंगी कि वह भारतीय चिकित्सा पद्धति की औषधियाँ व्यवहार में लाते हैं ? क्या राजकुमारी जी सर्पगन्धा को संसार के डाक्टरों से वापिस लाकर वैद्यों को एकाधिकार दिला सकेंगी क्योंकि यह मूलतः आयुर्वेदिक औषधि है। सैकड़ों औषधियां ऐसी हैं जिनके हम नाम गिना सकते हैं जो खोज का नाम दे देकर पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति की लिस्ट में जोड़ दी गई हैं। राजकुमारी जी के दृष्टिकोण से या तो वे डाक्टरों की लिस्ट से निकाल दिए जाने चाहियें या उन औषधियों को केवल आयुर्वेदज्ञों को ही प्रयोग में लाने का अधिकार होना चाहिए, परन्तु हम यहां स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि आयुर्वेद का निर्माण मानव मात्र के लिए हुआ है किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं। उसके मानने वाले विश्वव्यापी कल्याण में विश्वास रखते हैं। राजकुमारी जी को इस प्रकार की संकुचित मनोवृति को व्यवहार में लाकर वास्तविकता को नहीं भुला देना चाहिए। यदि आयुर्वेद के लिए वे कुछ नहीं करना चाहतीं तो निसंकोच हो कर कहें हमें कोई आपत्ति नहीं होगी वल्कि हमारा मार्ग और भी साफ हो जायेगा। और यदि वे आयुर्वेद के लिए कुछ करना चाहती हैं तो डाक्टरों के जाल से वाहर आकर भारतप्रसिद्ध वैद्यों से सम्पर्क स्थापित करें और योजना-वद्ध कार्य करें। हम पहिले भी इन पृष्ठों में लिख चुके हैं कि आपको पाश्चात्य वातावरण सही मायनों में आयुर्वेद के लिए कुछ सोचने का अवसर नहीं देता।

चालू वजट में आयुर्वेद के नाम पर आपने कुछ रुपए जामनगर में सैंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट को दिये हैं—वह भी एक अजूबा बन गया है। भारत के एक कोने में उसे डाल दिया गया है जहां पूर्णतया साधन भी नहीं जुट पाते। वहां कि रिसर्च से आयुर्वेद को लाभ भी

क्या होगा—जो औषधि ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति के दृष्टिकोण से सही बैठेगी वे उसे अपनी लिस्ट में जोड़कर अपने फार्माकोपिया को बड़ा बना लेंगे। आयुर्वेद फिर कहां रह जायेगा। हम चाहते हैं कि आयुर्वेद में जो कुछ भी खोज हो वह आयुर्वेद के सिद्धांतों के ही आधार पर हो। हम संकुचित होकर यह नहीं कहते—जो हमारे पास नहीं है और आज के युग में वह आवश्यक है तो हम सहर्ष उसे अपने में आत्मसात् करने की सामर्थ्य रखते हैं।

उत्तरप्रदेश सरकार और आयुर्वेद

उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्य मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने विधान परिषद् के बजट अधिवेशन में अपने विभागों की मांग पर बहस के समय कहा कि हम आयुर्वेद की उन्नति चाहते हैं और इसे प्रोत्साहन दे रहे हैं। चालु वर्ष में और अधिक औषधालय खोल रहे हैं और वैद्य इन्चार्जों की नियुक्ति प्रान्तीय सेवा आयोग के अन्तर्गत लेकर उनका वेतन स्तर १२० से २०० और २०० से ४०० के स्तर पर ले जा रहे हैं। हम स्वास्थ्य मंत्री की उपर्युक्त घोषणा का स्वागत करते हैं और उन्हें धन्यवाद देते हैं। परन्तु इसके साथ ही हम यह भी कह देना आवश्यक समझते हैं कि प्रान्तीय सरकार द्वारा आयुर्वेद के साथ में व्यवहार में लायी जाने वाली नीति आयुर्वेद पर उपकार की भावना से नहीं होनी चाहिए। आयुर्वेद भारत का जीवित विज्ञान है—उसे सींचना सरकार का नैतिक कर्तव्य है। जिस भांति सरकार भारत की संस्कृति को अपनी थाती मानती है और उसकी रक्षा में जी जान से जुटी रहती है उसी प्रकार आयुर्वेद विज्ञान जो भारतीय संस्कृति का ही एक गौरवशाली अंग है, की रक्षा, प्रसार तथा प्रचार करना सरकार का निजी कर्तव्य है जिसके लिए वह उत्तरदायी है। उत्तरप्रदेश सरकार आयुर्वेद का अलग डायरेक्टोरेट स्थापित करे और वह एलोपैथिक प्रभाव से स्वतंत्र हो तब ही जाकर आयुर्वेद इस प्रदेश में फलफूल सकता है। सरकार द्वारा चलाये जा रहे आयुर्वेदिक औषधालयों की अवस्था कोई बहुत अच्छी नही है, यह सभी जानते हैं। अतः पुनः हम यह निवेदन करते हैं कि इस विभाग को स्वतंत्र मानकर रखें तो वह आयुर्वेद की वास्तविक अर्थों में सेवा करेंगे और जनता को भी इससे अधिक लाभ होगा।

भूल सुधार

१—जून १९५४ की महासम्मेलन पत्रिका पृष्ठ ४१६ प्रथम पंक्ति में राजवैद्य श्री जयानंद भट्टरिया को भ्रमवश महासम्मेलन का आजीवन सदस्य लिखा गया है जिसका हमें हार्दिक खेद है। श्री भट्टरिया जी आश्रयदाता सदस्य हैं।

२—जिला वैद्य सम्मेलन बीकानेर के मंत्री वैद्य श्री ठाकुर प्रसाद शर्मा कोट्टाकल अधिवेशन के अवसर पर महासम्मेलन के आजीवन सदस्य बने थे किन्तु उनकी सदस्यता स्वीकृति की सूचना भूलवश प्रकाशित नहीं हो सकी जिसका हमें खेद है। आप की आजीवन सदस्यता स्वीकृत हो चुकी है।

३—१७ फरवरी १९५५ को बम्बई में सम्पन्न महासम्मेलन स्थायी समिति तथा आचार्य श्री यादव जी महाराज की हीरक जयन्ती के लिए वैद्य श्री चुन्नी लाल रेवाशंकर, बड़ौदा की ओर से सम्मतिपत्र तथा शुभकामना पत्र प्राप्त हुए थे किन्तु कार्यविवरणों में उनका नाम प्रकाशित होने से रह गया है। सम्मतिपत्र तथा शुभकामना प्रेषकों की सूचिओं में, जो मार्च मास की पत्रिका में प्रकाशित हुई हैं इनका नाम भी समाविष्ट समझना चाहिए।

—सम्पादक

४०वां अखिल भारतीयायुर्वेद महासम्मेलन त्रिवेंद्रम

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ४० वें अधिवेशन के लिए गत मास की पत्रिका में २९, ३० अप्रैल तथा १ मई की तिथियों की घोषणा की गई थी किन्तु स्वागत-समिति द्वारा कुछ अनिवार्य कारणों वश उक्त तिथियों में अधिवेशन करने में अपनी असमर्थता प्रकट करने तथा १८ मई के पश्चात् ही अधिवेशन की तिथियां निश्चित करने के अनुरोध पर अब अधिवेशन के लिए २२, २३ तथा २४ मई की तिथियां निश्चित की गई हैं। स्थायी समिति का अधिवेशन २१ मई को त्रिवेन्द्रम में सम्पन्न होगा। अधिवेशन का विस्तृत कार्यक्रम तथा स्थायी समिति का अजेन्डा सदस्य महानुभावों की सेवा में यथासमय प्रेषित किए जायेंगे। वैद्य बन्धु अधिकाधिक संख्या में उक्त अधिवेशनों में भाग लेकर उन्हें पूर्णतया सफल बनायेगें, ऐसी आशा है। अधिवेशन का उद्घाटन माननीय श्री मोरारजी देसाई, मुख्यमन्त्री, बम्बई राज्य ने करना स्वीकार किया है।

रेल किराये में सुविधा—

सदस्यों की सुविधा तथा मार्ग व्यय की अधिकता को दृष्टि में रखते हुए गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी रेलवे कन्सेशन प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया था और हमें यह सूचित करते हुए हर्ष होता है कि रेलवे बोर्ड ने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर अधिवेशन में भाग लेने वाले सदस्यों से केवल एक ओर ही का किराया लेने का निश्चय किया है। यह सुविधा प्रथमतः २९, ३० अप्रैल तथा १ मई की तिथियों के लिए प्रदान की गई है किन्तु अब परिवर्तित तिथियों के लिए कन्सेशन की स्वीकृति प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है कि शीघ्र ही यह स्वीकृति हमें मिल जायेगी। स्वीकृति मिलने पर सभी सदस्यों की सेवा में कार्यालय द्वारा आवश्यक प्रमाणपत्र भेजे जायेंगे जिनके आधार पर रेलवे अधिकारियों से कन्सेशन टिकट प्राप्त किए जा सकेंगे। कन्सेशन आर्डर की प्रतिलिपि आगे प्रकाशित है।

वार्षिक अधिवेशन में प्रतिनिधि—

महासम्मेलन नियमावली धारा १३ के अनुसार वार्षिक अधिवेशन में निम्नलिखित प्रतिनिधि होंगे।

१—महासम्मेलन की स्थायी समिति एवं विद्यापीठ कार्यकारिणी के सदस्य, २—वे मान्य सदस्य जिनका शुल्क ३० जून तक प्राप्त हो चुका हो, ३—संरक्षक, आश्रयदाता, आजीवन तथा विशिष्ट सदस्य, ४—प्रत्येक मण्डल एवं तहसील आयुर्वेद सम्मेलन के प्रधान और प्रधान मंत्री एवं ५ निर्वाचित प्रतिनिधि, ५—प्रत्येक जिला एवं नगर आयुर्वेद सम्मेलन के प्रधान तथा प्रधानमंत्री एवं ५ निर्वाचित प्रतिनिधि, ६—प्रत्येक प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन के तत्कालीन सभी पदाधिकारी एवं १० निर्वाचित प्रतिनिधि, ७—स्वागत समिति के सदस्यों में से उसके द्वारा मनोनीत २० सदस्य। निर्वाचित प्रतिनिधियों की नामावलि महासम्मेलन अधिवेशन से १ मास पूर्व तक कार्यालय में आ जानी चाहिए।

सभी प्रतिनिधियों का महासम्मेलन का

सदस्य होना आवश्यक है। प्रत्येक प्रतिनिधि को २ रु० प्रतिनिधित्व शुल्क महासम्मेलन को अधिवेशन के समय देना होगा। अधिवेशन में भाग लेने के लिए प्रतिनिधियों के पास प्रतिनिधित्व का प्रमाणपत्र तथा महासम्मेलन को दिए हुए प्रतिनिधित्व शुल्क की रसीद होनी चाहिए। प्रतिनिधियों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति भी महासम्मेलन मण्डप में प्रवेशाधिकार पा सकते हैं किन्तु ऐसे व्यक्तियों को स्वागत समिति द्वारा निर्धारित शुल्क देना होगा और उन्हें प्रतिनिधियों के समान मतदान का अधिकार न होगा।

वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित किये जाने के लिए प्रस्ताव—

महासम्मेलन के खुले अधिवेशन में उपस्थित किये जाने के लिए जो महानुभाव प्रस्ताव भेजना चाहें वे शीघ्रातिशीघ्र अपने अपने प्रस्ताव महासम्मेलन कार्यालय में भेजने का कष्ट करें जिससे उन्हें स्थायी समिति तथा विषय निर्धारिणी समिति के समक्ष परवर्ती कर्त्तव्य के लिए प्रस्तुत किया जा सके।

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधानमंत्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

Government of India
MINISTRY OF RAILWAYS
(Railway Board)

No. 4538-TC New Delhi
Dated the 25th March, 1955.

ALL INDIAN RAILWAYS.

Sub: **Railway Concessions.**

The Railway Board have agreed to grant, as an ad hoc measure, the concession of return tickets in any class available for one month on payment of single fares, mail fairs being charged for II and III class tickets, to the delegates attending the 40th Session of the All India Ayurvedic Congress, to be held at Trivendrum during the last week of April, 1955, subject to the usual conditions and on production of the requisite certificate from the Secretary of the Conference.

Necessary instructions may be issued to the staff concerned at an early date.

Sd/- V. Sriraman.
Asst. Dir. Traffic, Rly. Board.

रोग पर जादू की भांति तत्काल
असर करने वाले
मार्तण्ड के आयुर्वेदिक
इंजेक्शन

मार्तण्ड की समस्त वैज्ञानिक साधन सम्पन्न और आधुनिक मशीनों से सुसज्जित प्रयोगशाला में उच्च शिक्षित आयुर्वेदज्ञों और विदेशी रसायनज्ञों की देख रेख में निर्माण हुए ये आयुर्वेदिक इंजेक्शन अपना तत्काल असर करते हैं, इनका प्रभाव स्थाई होता है, रक्खे रहने पर भी ये कभी नहीं बिगड़ सकते, इनकी आशुगुणकारिता और शुद्धि की पूरी गारंटी है। सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगाइये।

निर्माता: मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स,
बड़ौत, उत्तर प्रदेश
रिसर्च इंस्टीट्यूट आफ इंडियन मेडिसन्स

निखिल भारतवर्षीयायुर्वेद विद्यापीठस्य कार्यकारिणी समितेः १९५५ तम वर्षीयस्य प्रथमाधिवेशनस्य कार्य विवरणम् ।

स्थानम्—आत्म विज्ञान भवनम्, ऋषिकेश : ।

समयः—दि० १२ अप्रैल १९५५, मंगलवासरे, मध्यान्होत्तर द्विवादनतः

उपस्थिति·····श्री स्वामी दयानिधिः, ऋषिकेश, सभापतिः, वैद्यरत्न श्री रामप्रसाद शर्मा, पटियाला । श्री विष्णुदत्त शास्त्री, ऋषिकेश । श्री बालकराम शुक्लः, ऋषिकेश । श्री हीरालाल शास्त्री, बरनाला । श्री केशवदेव शर्मा, भिवानी । श्री रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली । श्री श्रीदत्त शर्मा, विद्यापीठ मंत्री, ऋषिकेश । श्री मुन्शीराम शर्मा, भटिण्डा । श्री काशीनाथ शर्मा, देहली । श्री जगदीशप्रसाद शर्मा, देहली । श्री चेतरामः, बरनाला । श्री अमरनाथः, देहरादून । श्री केशोराम, पटियाला । श्री शिवव्रत शर्मा, ऋषिकेश । श्री भक्तराम, पटियाला । श्री मस्तराम कौशल, पटियाला । श्री सरजीत सिंह, पटियाला । श्री हरिवंश गौड़, पटियाला । श्री राधाकृष्ण, पटियाला । श्री विश्वेश्वरनाथ शास्त्री, पटियाला ।

सम्मति प्रेषका :—सर्वश्री वैद्य यादव जी त्रिकम जी आचार्य, बम्बई । वी० बी० नटराज शास्त्री, तिरूचिरापल्ली । मणिराम शर्मा, रतनगढ़ । हनुमत्प्रसाद शास्त्री, रामगढ़ । रामप्यारे अवस्थी, कानपुर । गुलराज शर्मा मिश्रः, नागपुर । गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद । जानकीप्रसाद, धमदा । माधव प्रसाद, रतलाम । इन्द्रमणि जैन, अलीगढ़ । घनानन्द पन्त, देहली । नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी । वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर । हरिराम बराटे, भुसावल । ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल । लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण शास्त्री, अहमदाबाद । मंगलदास स्वामी, जयपुर । वासुदेव शास्त्री, उज्जैन । एम० वेंकट शास्त्री, विजयवाड़ा । गणेशदत्त शास्त्री, मेरठ । हरिवक्ष जोशी, कलकत्ता । वैद्यनाथ शर्मा, बम्बई । चुन्नीलाल रेवाशंकर, बड़ौदा । नानक चन्द्र शास्त्री, देहली । देवराज मिश्र शास्त्री, अमृतसर । पं० ठाकुरदत्त अमृतधारा, देहरादून । पी० वी० ईश्वर वारियर, चलापुर ।

श्री सभापतेरासन श्रीमन्तो दयानिधि स्वामिनः समालमकुर्वन् ततः कार्यक्रमश्चारब्ध ।

१—गताधिवेशनस्य वार्यवाही श्राविता सर्वसम्मत्या स्वीकृताश्च ।

२—सर्वसम्मत्या निर्णीतं यत् त्रिवेन्द्रम, जम्मू, श्रीनगर (काश्मीर), तथा अलीगढ़ इत्येतेषु स्थानेषु विद्यापीठ परीक्षाकेन्द्राणी स्थापनीयानीति ।

विषयाङ्क : ३ आयुर्वेद विश्वविद्यालयस्थापनाविषय उपस्थापितः सर्वसम्मत्या निम्नलिखितः प्रस्तावः स्वीकृतश्च :—

(क) आयुर्वेद विश्वविद्यालयस्थापनकर्मणि श्रीबाबाकालीकमलीवालाक्षेत्रसभया योऽवरोधः कृतस्तदर्थं समितिरियं खेदं प्रकटयति । विषयेऽस्मिन् साम्प्रतमवधि विद्यापीठकार्यकारिणीसमितिरन्यत् किमपिपदोत्थापनं नोचितं मनुते, यतो महासम्मेलनसमित्या सम्प्रति विषयोऽयं महासम्मेलनाध्यक्षाय वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मणे समर्पितोऽस्ति ।

(ख) विषयेऽस्मिन् समितिरियं विद्यापीठमन्त्रिणस्तानिवक्तव्यानिमनसिकरोति, यानि स हि सन् १९५४ अक्टूबरनवम्बरमासयोस्तथा च सन् १९५५ मार्चमासस्य महासम्मेलनपत्रिकायां प्रकाशितवान्, तानि वक्तव्यानि समधिगम्य समितिरियं निश्चिनोति यद् विश्वविद्यालयो ऋषिकेशे स्थापनीयः ।

(ग) अस्यां समितौ समुपस्थित सदस्यमहानुभावैर्गंगातटीयो हरद्वारमार्गीयश्च भूमिखण्डोऽवलोकितः, सम्बुद्धश्च समितिविचारणायां भूमिखण्डद्वयमिदमायुर्वेदविश्वविद्यालयस्थापनार्थमुपयुक्तमतएवसमितिरियं निश्चयं कुरुते यद् भूमिखण्डद्वयमेतत् क्रेतव्यं तथा च तदर्थं विद्यापीठमन्त्रिणेऽधिकारं ददाति सप्तसहस्रमुद्राव्ययार्थं, सहैव च विद्यापीठमन्त्रिण इममप्यधिकारं ददाति यत्स नियमानुसारं भूमेरस्या महासम्मेलनविद्यापीठनाम्नि रजिष्ट्री कारयेत् ।

(घ) आयुर्वेदविश्वविद्यालयभूमिसम्बन्धे वैद्य श्री यादवजीत्रिकमजीआचार्यमहोदयानां पत्रं श्रावितं यस्मिंस्तैर्गोस्वामिगणेशदत्तजीमहाभागीयभूमिस्वीकारार्थं लिखितं, तदुपरि श्रीविद्यापीठमन्त्रिसम्मतिःश्रुता, निर्णयोऽभूत, यत्साभूमिविश्वविद्य लयार्थमनुपयुक्तास्ति । यदेतत् भूम्युपरिबहुव्ययसम्भावनास्ति ।

(ङ) देहलीनगरे आयुर्वेदविद्यालयस्थापनासम्बन्धे समितिरियं निश्चिनोति यद् देहलीतो न्यूनातिन्यून २५०००) पञ्चविंशतिसहस्रमुद्राः संग्राह्याः । भूमिश्च क्रेतव्या विद्यालय निर्माणारम्भश्चकरणीयः, सर्वप्रथमं भूमेरस्या उपरि श्री बनवारीलालट्रष्टस्य ४००००) चत्वारिंशत्सहस्रमुद्राव्ययेन स्वर्गीय श्री लालाबनवारीलालनाम्ना विशालभवनमेकं निर्मातव्यम् । एतदर्थं ४० तम निखिलभारतीयायुर्वेदमहासम्मेलनस्वीकृत्यनन्तरं श्री बनवारीलालआयुर्वेदविद्यालयो विद्यापीठाधीनः करणीयः । पश्चाच्च देहलीनगरे आयुर्वेदविद्यालयस्थापनाकार्यारम्भः करणीयः ।

(च) रतनगढ श्री पं० मणिराम जी महाभागस्य पत्रं विद्यापीठमन्त्रिणा श्रावितम् । सम्बन्धेऽस्मिन् समितिरियं निर्णयति यद् रत्नगढ़नगरेऽपि एक आयुर्वेदविद्यालयो विद्यापीठाधीनः स्थापनीयः । विद्यालयस्यास्य निर्माणयोजनां श्री पं० मणिराम जी महाभागस्य सम्मत्या श्री विद्यापीठमन्त्रिमहोदयः सम्पादयेत् ।

(छ) समितिरियमुचितं मन्यते यद् ऋषिकेशे प्रतिष्ठाप्यमान आयुर्वेदविश्वविद्यालय आयुर्वेदशिक्षणस्य सर्वोच्च केन्द्रं भविष्यति, तदधीनाश्च देशस्यविभिन्नस्थानेष्वधिकाधिका आयुर्वेदविद्यालयाः स्थापनीया, यत् आयुर्वेदविश्वविद्यालयमहत्वमेभिरेवाधीनस्थैरायुर्वेदविद्यालयैर्वर्द्धिष्यते ।

प्रान्तीयानां तथान्यस्थानीयानां विद्यालयानां व्ययस्तत्रत्यैः स्थानैरेव करणीयो भविष्यति ।

अन्ते श्री सभापति महोदयानां - समागतसदस्यमहानुभावानां धन्यवादपुरःसरमपराह्नेसार्धत्रिवादनसमये सभाविसर्जिताभवत् ।

ऋषिकेश
ता० १२-४-५५

श्रीदत्त शर्म्मा
विद्यापीठ मन्त्री

आयुर्वेद में अनुसंधान आयुर्वेद के विद्वानों द्वारा कराया जाय

"मैं भारत में आयुर्वेद की स्थिति पर खुश नहीं हूँ। मैं समझता हूँ कि किसी भी प्रकार के ज्ञान को जिसने सदियों तक मानव जाति का कल्याण किया हो विदेशी शासन के कारण इतनी मुसीबत नहीं उठानी पड़ी जितनी आयुर्वेद को। १५० वर्षों के ऐलोपैथिक शासन और उसको सरकार व सम्पन्न लोगों की संरक्षा प्राप्त होने पर भी ये वैद्य ही हैं जिनके बल पर हमारी राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा टिकी हुई है। पिछले १५० वर्षों में यहां भारत में ऐलोपैथी ने बहुत गुलछर्रे उड़ाये हैं किन्तु इस काल में आयुर्वेद एक भिखारी की तरह बाहर दरवाजे पर खड़ा रखा गया और उसे २ कभी टुकड़ा फेंक दिया जाता था। मुझे दुख है कि राज्य सरकारों द्वारा आयुर्वेद पर बहुत ही कम व्यय किया जाता है और उन्होंने आयुर्वेदिक शिक्षा तथा चिकित्सा को उन लोगों की देखरेख में सौंप दिया है जो आयुर्वेद को "ठग विद्या" समझते हैं और खुले तौरपर उसे विनाश के योग्य बतलाते हैं।

"केन्द्रीय सरकार की ओर से आयुर्वेद में अनुसन्धान को प्रोत्साहन देने का जो दावा किया जाता है वह सिर्फ आयुर्वेदिक जड़ी बूटियों का इस दृष्टि से परीक्षण है कि उन्हें अन्ततोगत्वा ऐलोपैथी की दवा बना लिया जाय। अनुसन्धान का कार्य एक केन्द्रीय परिषद् के अधीन आयुर्वेद के विशिस्ठ विद्वानों द्वारा किया जाना चाहिये।" —श्री के० एम० मुंशी

चिकित्सकों व धर्मार्थ औषधालयों को

विशेष सुविधा

सभी प्रकार के उत्तम, गुणकारी भस्म, रस, मात्रा, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी गुग्गुलु, गुटिका आसवारिष्ट, अवलेह आदि नित्योपयोगी औषधों के थोक व सस्ते भाव में मिलने का—

विश्वसनीय स्थान—

बोध चिह्न

नवशक्ति आयुर्वेदालय
लिमिटेड, भुसावळ.

शाखा—जब्बलपुर (म० प्र०)

आयुर्वेद की वर्तमान शिक्षण-पद्धति

वैद्य श्री यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य

इस समय वैद्य समाज में आयुर्वेद की शिक्षण पद्धति(अध्ययन-अध्यापन-विधि)को लेकर खूब ऊहापोह—चर्चा चल रही है । कई वैद्यों का मत है कि शुद्ध (वर्त्तमान समय में उपलब्ध प्राचीन) आयुर्वेद का ही अध्ययन-अध्यापन होना चाहिए । इस प्रकार के शिक्षण को शुद्धायुर्वेद शिक्षण कहा जाता है। इस मत वालों में भी दो वर्ग—पक्ष हैं । एक वर्ग यह मानता है कि शिक्षण ग्रन्थ-प्रधान ही होना चाहिए । अर्थात् चरक-सुश्रुत आदि संहिता-ग्रन्थों को आद्यन्त जैसे हैं, वैसे ही पढ़ाये जायँ । वे कहते हैं कि विषय प्रधान शिक्षण-पद्धति रखने से संहिता-ग्रन्थों के कुछ विषय छूट जायँगे । दूसरे पक्ष का कहना है कि शिक्षण विषय प्रधान होना चाहिए ; क्योंकि चरक-सुश्रुत जैसे संहिता-ग्रन्थों में विषय-क्रम ठीक नहीं संभाला गया है । एक ही अध्याय में ऐसे अनेक विषयों का संग्रह-सन्निवेश किया गया है, जिसका परस्पर सम्बन्ध नहीं है । उदाहरणार्थ—चरक विमान स्थान का सातवाँ अध्याय। अतः विषयानुसार संहिता-ग्रन्थों के वचनों का संग्रह करके विषय प्रधान ग्रंथ बनने चाहिए और उनका अध्ययन-अध्यापन होना चाहिए । यह कार्य प्राचीन समय में भी हुआ है ; उदाहरणार्थ—आयुर्वेद में माधवनिदान, व्याकरण में सिद्धान्तकौमुदी आदि । नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ ने कलकत्ते के छठे वार्षिक अधिवेशन में विषय-प्रधान पाठ्यक्रम बनाया और उसी के अनुसार अभी तक नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षाएँ होती हैं । और वह इतना लोकप्रिय हुआ कि उसके अनन्तर भारत में जितने आयुर्वेद के विद्यालय-महाविद्यालय निकले, उनमें विषय-प्रधान शिक्षण ही रखा गया है ; परन्तु इस पाठ्यक्रम के अनुसार विषय प्रधान पाठ्य-ग्रन्थ तैयार करने की ओर नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ नें या अन्य संस्थाओं ने कोई ध्यान नहीं दिया है । विषय-ग्रन्थ तैयार न. होने से अध्यापकों और विद्यार्थियों को बड़ी कठिनाइयों का अनुभव हो रहा है । गत कुछ वर्षों में कुछ विद्वानों ने कुछ विषय-प्रधान ग्रन्थ लिखे हैं, परन्तु उनका यथेष्ट प्रचार नहीं हुआ है । मेरा मत है कि पाठ्यक्रम विषय-प्रधान रहना ही समयानुकूल है और विषय-प्रधान पाठ्यक्रम यथाशक्य शीघ्र बनाने चाहिए, जिससे अध्ययन-अध्यापन सुकर हो । शुद्धायुर्वेद और मिश्रशिक्षण दोनों के पक्षपातियों को अपना-अपना मत प्रतिपादन करने का अधिकार है । परन्तु अपना मत प्रतिपादन करते हुए दूसरे पक्ष पर आक्षेप या दूसरे पक्ष का उपहास करना अनुचित है । आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन के विषय में मैं अपने कुछ विचार वैद्य-समाज के सामने रखता हूँ । आशा है कि दोनों पक्ष पूर्वग्रह-रहित होकर इस पर विचार करेंगे ।

यह तो सब को स्वीकार करना पड़ेगा कि चिकित्सक—वैद्य को अपने पास आये हुए सब प्रकार के साध्य रोगियों की चिकि-

रक्षा करने में—उन्हें रोग मुक्त करने में समर्थ होना चाहिए। क्या आज कल के हमारे वैद्य ऐसे हैं? यदि उनके पास मूढ़-गर्भ, अवरुद्ध अन्त्रवृद्धि (Strangulated Hernia) जैसे शस्त्रसाध्य रोगी आयें, तो उन्हें वे रोग-मुक्त कर सकते हैं? इसका विचार सबको अवश्य करना चाहिए। इस समय शस्त्र-चिकित्सा तथा प्रसूति-कर्म का प्रचार वैद्यों में उठ-सा गया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में उपलब्ध संहिता-ग्रंथों में जो शारीर उपलब्ध होता है, वह प्रसूति-तन्त्र शल्य-शालाक्य पढ़ाने के लिए अपर्याप्त है। चरक-सुश्रुत और वाग्भट्ट के टीका-ग्रंथों तथा भावप्रकाश-टोडरानन्द आदि संग्रह-ग्रन्थों को देखते ही मालूम होता है कि उनके समय में (ईसवी सन् १००० से १७०० तक में) पच्चीस-तीस संहिता-ग्रंथ उपलब्ध थे। उन संग्रह-ग्रंथों और टीका-ग्रन्थों में उद्धृत आर्ष वचनों में अनेक ऐसे विषय मिलते हैं जो चरक-सुश्रुत और अष्टांग-संग्रह में देखने में नहीं आते। वर्तमान समय में उपलब्ध और मुद्रित भेल-संहिता और काश्यप-संहिता, जो दोनों खण्डित हैं, उनमें कई ऐसे नवीन विषय मिलते हैं, जो चरक-सुश्रुत में पाये नहीं जाते। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान समय में उपलब्ध आयुर्वेदीय साहित्य को सम्पूर्ण आयुर्वेद मान लेना ठीक नहीं है। इस समय ऐसा साहित्य तैयार करना चाहिए जिसके अध्ययन-अध्यापन से आयुर्वेदिक चिकित्सक सर्व प्रकार का चिकित्सा कार्य करने में क्षमता प्राप्त कर सकें। अर्थात् वर्तमान आयुर्वेद का प्रतिसंस्कार और बृंहण (न्यून विषयों की पूर्ति) करके आयुर्वेद का समयोपयोगी स्वरूप बनाना परम आवश्यक है। यह किए बिना आयुर्वेद और आयुर्वेदिक चिकित्सा को जीवित रखना कठिन कार्य है। संसार में वही प्राणी जीवित रह सकता है, जो नया खाता है और खाकर उसको हजम—आत्मसात् कर लेता है।

आयुर्वेद का प्रतिसंस्कार और बृंहण—पूर्ति कैसे किया जाय, इस बारे में मैं कुछ विषयों पर अपने विचार दिग्दर्शनार्थ वैद्य-समाज के सामने रखता हूँ।

आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान

जैसे आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र को ठीक समझने के लिए आधुनिक पदार्थ-विज्ञान (फिजिक्स और केमिस्ट्री) का ज्ञान आवश्यक है, उसी प्रकार आयुर्वेदीय दोष-धातु मल-विज्ञान (शारीर-क्रिया-विज्ञान—फिजियोलाजी), रोग-विज्ञान (विकृति विज्ञान—पेथोलाजी,) द्रव्यगुण-विज्ञान और चिकित्सा विधान को ठीक समझने के लिए आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है। चरक-सुश्रुत में पदार्थ-विज्ञान के विषय का वर्णन किसी एक स्थान में स्वतन्त्र रूप से नहीं आया है; परन्तु चरक में प्रधानत: सूत्रस्थान, विमानस्थान तथा शारीर स्थान में और सुश्रुत में प्रधानतया शारीर-स्थान के प्रथम अध्याय में पदार्थ-विज्ञान वर्णित है। संहिताकारों ने पदार्थ-विज्ञान विशेषत: वैशेषिक, न्याय और सांख्यदर्शन से लिया है। परन्तु उसको उन दर्शनों से अविकल न लेकर अपने आयुर्वेद के ढाँचे में बैठाकर और आयुर्वेदोपयुक्त बनाकर लिया है। इस विषय पर स्वतन्त्र ग्रंथ लिखने वालों को यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि आयुर्वेदोक्त विषय को ही (विषय के आयुर्वेदोक्त स्वरूप को ही) मूल में स्थान देना चाहिए। अन्य दर्शनोक्त विचारों

को नीचे टिप्पणी, अपने वक्तव्य, परिशिष्ट या उपोद्घात में स्थान दें। जब तक ऐसा ग्रन्थ तैयार न हो, तब तक गत दस वर्षों में आयुर्वेदाचार्य पं० रामरक्ष जी पाठक, आयुर्वेदालङ्कार पं० रणजितरायजी देसाई, वैद्यराज पं० बलवन्त शर्मा दीक्षित तथा श्री काशीकर जी एम० ए०, इन चार विद्वानों ने इस विषय पर जो ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें से किसी एक को पाठ्यग्रंथ और अन्यों को आलोच्य ग्रन्थ के रूप में रखकर इस विषय को पढ़ाना चाहिए। इस विषय के अध्ययन अध्यापनार्थ साँख्यकारिका-तर्कसंग्रह जैसे ग्रन्थ, जब तक इस विषय पर स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं बने थे, (उपलब्ध नहीं थे), तब तक पाठ्य ग्रन्थों में भले रखे गए हों, परन्तु अब इनको पाठ्यग्रन्थ में रखना उचित नहीं है। आधुनिक पदार्थ विज्ञान में विस्तृत रूप से वर्णित प्रकाश, ध्वनि, उष्णता, विद्युत आदि विषयों से आयुर्वेदोपयुक्त अंश लेकर इस विषय की पूर्ति कर लेनी चाहिए।

शारीर

शारीर के इस समय दो भाग किए जाते हैं—रचना-शारीर (एनेटामी) और क्रिया-शारीर (फिज़ियोलाजी)। आयुर्वेद में (शारीर शब्द से प्रधानतः रचना-शारीर विवक्षित है) क्रिया शारीर का वर्णन दोष-धातु-मल विज्ञान के रूपमें किया गया है। चरक-सुश्रुत के शारीर स्थान में पदार्थ विज्ञान, गर्भशारीर (एम्ब्रियोलाजी), रचनाशारीर, कौमारभृत्य, प्रसूतितन्त्र का कुछ अंश आदि कई विषयों का संग्रह किया गया है। इस समय संहिता-ग्रन्थ और संग्रह-ग्रन्थों में उपलब्ध रचना-शारीर शल्य शालक्य और प्रसूतिकर्म के लिए पर्याप्त नहीं है। इस त्रुटि को दूर करने के लिए स्व० कविराज श्री गणनाथ सेन जी ने प्रत्यक्ष-शारीर तथा स्व० पी० एस० वारियर ने अष्टांग शारीर और वृहच्छारीर ये दो ग्रन्थ लिखे हैं। प्रत्यक्ष-शारीर का भारतवर्ष के अधिकांश वैद्यों ने पठन-पाठन में उपयोग किया है, परन्तु महाराष्ट्र के कुछ वैद्यों ने इसके विरोध में आन्दोलन शुरू किया था। रचनाशारीर पढ़ाने के लिए जब तक इन दो ग्रन्थों से अच्छा ग्रन्थ तैयार न हो तब तक इन दो ग्रन्थों में से किसी एक को पाठ्यग्रन्थतया नियत करना चाहिए।

यह तो सब को सुविदित है और मानना पड़ेगा कि संहिताग्रन्थों में सिरा,धमनी, नाड़ी आदि शब्दों का अनेकार्थ में (एक से अधिक अर्थों में) प्रयोग हुआ है तथा हृदय, नाभि, त्रिक आदि शब्दों का कहीं मुख्यार्थ में तो कहीं अन्य अवयवों के उपलक्षणार्थ में भी प्रयोग हुआ है। इस त्रुटि को दूर करना परम आवश्यक है। इसका सही उपाय यही है कि वर्तमान संहिता-ग्रन्थों में जहां-जहां ये शब्द आए हैं वहाँ इस स्थल पर इस शब्द का यह अर्थ लेना चाहिए तथा भविष्य में लेखकों को इस शब्द का इस निश्चित अर्थ में प्रयोग करना चाहिए, यह निश्चय कर देना चाहिए। यह कार्य परम आवश्यक और प्रथम करने का है। शारीर संज्ञाओं के अर्थ निश्चय के बिना नवसाहित्य निर्माण में बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित होने तथा विभिन्न लेखकों के ग्रन्थों में विश्रृंखलता (असामञ्जस्य-एकता न रहना) आने की सम्भावना है।

दोष-धातु-मल-विज्ञान

आयुर्वेद में जीवित शरीर में होने वाली सब क्रियाओं का वर्णन दोषों, धातुओं और मलों की क्रियाओं के रूप में किया गया है।

अतएव आयुर्वेद में हृदय, मस्तिष्क, यकृत, फुफ्फुस, वृक्क आदि शरीरावयवों की क्रियाओं का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता। आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र में शरीर-परमाणुओं (सेल्स) से लेकर हृदय-मस्तिष्क प्रभृति प्रधान—बड़े अवयवों की क्रियाओं का वर्णन विस्तार से किया गया है। आयुर्वेदोक्त दोषों, धातुओं और मलों की क्रियाओं के साथ समन्वय करके (अर्थात् हृदय, मस्तिष्क, यकृत आदि की यह क्रिया इस दोष द्वारा होती है यह बताकर) शरीर के स्थूल-सूक्ष्म अवयवों की क्रियाओं का वर्णन जिसमें हो, ऐसे नवीन ग्रन्थों के निर्माण की आवश्यकता है। अर्थात् आधुनिक क्रिया-शारीर में स्थूल-सूक्ष्म अवयवों की जो क्रियाएँ वर्णित हैं, वे अमुक दोष, धातु या मल द्वारा होती हैं, इनका विवरण इन ग्रन्थों में होना चाहिए और वे ग्रन्थ ही विद्यालयों में पढ़ाने चाहिए। (दोष-धातु-मल विज्ञान और फिजियोलाजी अलग-अलग पढ़ाना इष्ठ नहीं है।) लेखकों को और अध्यापकों को यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि आयुर्वेद में वर्णित दोष, धातु और मल ये एक-एक स्वतन्त्र द्रव्य नहीं हैं, किन्तु समान गुणकर्मवाले अनेक द्रव्यों के वर्ग (ग्रुप) हैं। सजीव मानव-शरीर में उस समय के आयुर्वेद-प्रणेताओं ने जिन-जिन द्रव्यों का अनुभव किया था, उनका उन्होंने दोष, धातु और मल इन तीन प्रधान वर्गों में विभाग कर तथा प्रत्येक वर्ग के अनेक उपवर्ग बनाकर प्रत्येक वर्गोपवर्ग का पृथक् वर्णन किया है। यथा—आयुर्वेद में वात-पित्त-कफ के जो पाँच-पाँच भेद वर्णित हैं, वे उनके उपवर्ग हैं। ये उपवर्ग भी समान गुणकर्म करने वाले अनेक द्रव्यों के वर्ग हैं। यथा—पाचकपित्त आमाशयगत स्राव, याकृत पित्त, अग्न्याशय (पेंक्रियास) का स्राव और अन्त्ररस, इन चार का एक उपवर्ग है। अर्थात् इन चार द्रव्यों के समुदाय को आयुर्वेद में पाचक पित्त नाम दिया गया। इसी प्रकार रस-रक्तादि धातु, आर्तव आदि उपधातु और मूत्र-स्वेद आदि मलों के विषय में भी जानना चाहिए। हमारे कई वैद्य भाई कहते हैं कि वात-पित्त-कफ, ये कोई टेस्ट-ट्यूब में डालकर प्रत्यक्ष दिखलाने की वस्तु नहीं, किन्तु शास्त्रगम्य और कर्मानुमेय वस्तु है। मैं कहता हूँ कि ये कालेजों में फिजियोलाजी पढ़ाते समय टेस्ट-ट्यूब में डालकर विद्यार्थियों को नित्य भिन्न-भिन्न नामों से दिखाई जाती हैं। इन्हीं का उनके समान गुणकर्मानुसार, 'आधिक्याद् व्यपदेशा भवन्ति' इस न्याय से दोष, धातु और मल इन तीन वर्गों में समन्वय—अन्तर्गत करके उनका आयुर्वेद में समावेश कर लेना चाहिए और आधुनिक फिजियोलाज़ी को इस प्रकार आत्मसात् कर लेना चाहिए। आयुर्वेदालंकार पं० **रणजितरायजी देसाई** ने इस विषय पर **आ० क्रिया-शारीर** नाम का समन्वयात्मक ग्रन्थ लिखा है। उसका पाठ्य या आलोच्य ग्रन्थ के रूप में उपयोग किया जाए और इससे अच्छा कोई ग्रन्थ प्रकाशित हो, तब उस पर विचार किया जाए।

द्रव्य-गुण-विज्ञान

आयुर्वेद में द्रव्यों के गुणधर्मों का वर्णन उनके पाञ्चभौतिक संगठन, गुण, रस, विपाक, वीर्य, प्रभाव और कर्म द्वारा किया गया है। शरीर के विभिन्न अवयवों पर होनेवाली उनकी क्रियाओं का वर्णन नहीं के समान हुआ है। आधुनिक वैद्यक में शरीर के विभिन्न अवयवों पर होनेवाली द्रव्यों की क्रियाओं का वर्णन और तदनुसार द्रव्यों का

वर्गीकरण किया गया है। इस विषय में भी ये क्रियाएँ द्रव्यगत किन-किन रस, गुण, विपाक, वीर्य आदि के कारण होती हैं, इसका समन्वयात्मक उल्लेख करके आयुर्वेद में उसका समावेश कर इस विषय की पूर्ति कर लेनी चाहिए। इसी प्रकार उद्भिज्ज द्रव्यों के स्वरूप-परिचय के लिए आधुनिक वनस्पति-शास्त्र (बोटेनी) में उद्भिज्ज द्रव्यों का जो रचनानुसार वर्गीकरण किया गया है तथा उद्भिज्ज द्रव्यों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की जो व्याख्या की गई है, उसका आयुर्वेद में समावेश कर लेना चाहिए। इस प्रकार के वर्गीकरण और उद्भिज्ज द्रव्यों के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की रचना के वर्णन से उनके स्वरूप-परिचय में बड़ा सौकर्य होता है। जो द्रव्य अभी तक संदिग्ध हैं, उनको पाठ्य-ग्रन्थों से हटा देना चाहिए और यूनानी, एलोपैथी, होमियोपेथी आदि अन्य चिकित्सा पद्धतियों में जिन उद्भिज्ज, प्राणिज और खनिज द्रव्यों का सफलता से प्रयोग होता है, उनका आयुर्वेद में समावेश कर लेना चाहिए। औषध द्रव्यों के निघण्टुओं में जो अनेक पर्याय दिए हैं, उनमें से जिनका संहिता-ग्रन्थों में द्रव्यगुण के प्रकरणों में या योगों में विशेषरूप से प्रयोग हुआ है उन्हीं को रखकर शेष पर्यायों को पाठ्य-ग्रन्थों से हटा देना चाहिए। आयुर्वेदोक्त कई द्रव्यों के गुण-कर्म यूनानी वैद्यक आदि में अधिक वर्णित हैं, उनका भी परीक्षणपूर्वक आयुर्वेद में समावेश कर लेना चाहिए।

रोग विज्ञान-विकृति विज्ञान

आयुर्वेद में वर्णित ज्वर, कास, श्वास, प्रमेह, कुष्ठ, विसर्प, शोथ आदि अनेक रोग एक-एक रोग नहीं, किन्तु समान प्रत्यात्म (खास) लक्षणवाले अनेक रोगों के वर्ग (ग्रुप) हैं। आयुर्वेद में प्रत्येक रोग की संप्राप्ति का वर्णन करते समय स्थान-संश्रय (स्थान-अवयव-विकृति) का वर्णन अति संक्षेप में सूत्र रूप से किया गया है। आधुनिक चिकित्साशास्त्र में स्थान-विकृति का वर्णन विस्तृत-रूप से पाया जाता है। उदाहरणार्थ, आयुर्वेद में 'कसन'--खाँसना' इस प्रधान लक्षण से जिन रोगों में खाँसी आती हो ऐसे रोगों का एक कासरोग (कासवर्ग) में समावेश किया गया है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में एलोंगेटेडयुव्युला, फ़ेरिंजाइटिस, लेरिंजाइटिस टाँन्सिलाइटिस, ब्राँकाइटिस, ब्राँकोन्यूमोनिया, न्यूमोनिया आदि कसन लक्षण-प्रधान रोगों का स्थान-विकृति के अनुसार स्वतन्त्र वर्णन किया गया है। इन रोगों का स्थान-विकृति के साथ लक्षणानुसार इन के वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक आदि भेद बताकर रोगविनिश्चय (निदान) फिर से लिखना चाहिए। ऐसा करने से रोगनिदान और चिकित्सा करने में बड़ा सौकर्य होगा।

आधुनिक वैद्यक में अनेक रोगों के उत्पादक कारण विभिन्न जीवाणु माने गए हैं। रोगोत्पत्ति में बीजरूप से जीवाणुओं की प्रधानता माननेवाले तथा क्षेत्ररूप में रोगोपत्ति के अनुकूल शरीर की प्रधानता माननेवाले ऐसे दो पक्ष (दो प्रकार की विचारधारा) आधुनिक विद्वानों में भी प्रचलित है। आयुर्वेद क्षेत्र-प्राधान्य को विशेष महत्व देता है। जीवाणुओं के कर्मानुसार उनके वातप्रकोपक, पित्तप्रकोपक तथा कफप्रकोपक, ऐसे भेद बनाकर उनका आयुर्वेद में समावेश कर लेना चाहिए।

इस समय अनेक नवीन रोगों का आवि-

ष्कार हुआ है, जिनका वर्णन आयुर्वेद में नहीं मिलता। इन रोगों का आयुर्वेदानुसार स्थान-संश्रय, दोष-दूष्य विकृति, दोष लक्षणानुसार उनके भेद तथा चिकित्सा निश्चित करके उनका आयुर्वेद में समावेश कर लेना चाहिए। नवाविष्कृत रोगों की आयुर्वेदानुसार चिकित्सा निश्चित करनी होगी। यह कार्य कठिन अवश्य है, परन्तु असंभव नहीं है।

चिकित्सासूत्र

चिकित्सासूत्र-चिकित्साक्रम (इस रोग की इस अवस्था और दोष-दूष्य विकृति में इस प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिए, ये सिद्धान्त) आयुर्वेद में विशेषरूप से वर्णित हैं। आधुनिक वैद्यक में भी अनेक नवाविष्कृत चिकित्साएँ वर्णित हैं। उदाहरणार्थ—हैज़े में लवण जल की सिरावस्ति आदि। इनका भी परीक्षणपूर्वक आयुर्वेद में समावेश कर लेना चाहिए।

पञ्चकर्म

पञ्चकर्म चिकित्सा इस समय मलावार में प्रचलित है। भारत के विभिन्न प्रदेशों में जहाँ आयुर्वेदिक कालेजों के साथ अस्पताल हों वहाँ मलावार से इस चिकित्सा के विशेषज्ञ वैद्य को बुलाकर पञ्चकर्म-चिकित्सा-अनुभव लेना और प्रचार करना चाहिए।

शस्त्र-कर्म और प्रसूति-कर्म

शस्त्रकर्म और प्रसूति कर्म के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का और यन्त्र-शस्त्रादि उपकरणों का आयुर्वेद में सुन्दर वर्णन किया गया है। भारत में अंग्रेजी राज्य स्थापित होने और आधुनिक शस्त्र-चिकित्सा प्रचिलत होने तक यहाँ शस्त्र-चिकित्सा होती थी। अंग्रेजी राज्य सम्पूर्ण स्थापित होने तक देश के किसी न किसी स्थान में छोटी-मोटी लड़ाइयाँ होती रहतीं थीं और उन में जख्मी हुए लोगों की शस्त्र-चिकित्सा भी होती थी। वे बिना चिकित्सा के तड़फड़ाकर मरने के लिए नहीं छोड़ दिए जाते थे। उस समय शस्त्र-चिकित्सा प्रायः वैद्यों के हाथों में न थी, परन्तु आयुर्वेदिक और यूनानी दोनों चिकित्सा पद्धतियों से काम करनेवाले जर्राह नामक और बंगाल में चांदसीर चिकित्सक नामक संप्रदाय के हाथ में प्रचलित थीं। इस समय शस्त्र-चिकित्सा के प्रधान कर्म (ओपरेटिव सर्जरी) में बहुत-कुछ प्रगति हुई है, अनेक सम्मोहन और संज्ञाहर औषधों का आविष्कार हुआ है। उन का आयुर्वेद में समावेश कर लेना तथा इस विषय के पठन-पाठन के लिए नवीन ग्रन्थ निर्माण करना भी आवश्यक है। साथ आयुर्वेद में वर्णित पूर्वकर्म और पश्चात्कर्म का प्रचार होना और आयुर्वेद में कहे हुए व्रण चिकित्सा में काम में आनेवाले अनेक फलप्रद योगों का उपयोग भी कर लेना चाहिए। इस समय आधुनिक वैद्यक ने अपनी शस्त्र-चिकित्सा के प्रभाव के कारण ही जनता को अपनी ओर विशेष आकर्षित किया है। वैद्यों को भी शस्त्र-चिकित्सा को आत्मसात् करके आगे बढ़ना चाहिए।

नवाविष्कृत औषध

इस समय यूरोप, अमेरिका, जापान आदि देशों में प्रतिदिन एक-एक नये-नये विशेषतः जीवाणु-नाशक औषधों का आविष्कार हो रहा है। इन आविष्कारों में विशेष हाथ तो वहां की बड़ी फार्मेसियों वाले व्यापारियों का है। उनके अतिरञ्जित विज्ञापनों को देखकर यहां के परप्रत्यनेय-बुद्धि डाक्टर लोग और कुछ वैद्य लोग भी उनका उपयोग—दुरुपयोग कर रहे हैं। हमारा वैद्य-समाज

भी जब प्रगतिशील था तब उसने भी अनेक औषधों का, जिनका आर्षसंहिताओं में उल्लेख भी नहीं है, जैसे रस-सिंदूर, स्वर्णसिंदूर (मकरध्वज-चद्रोदय), मल्लसिन्दूर आदि सिन्दूरकल्प, पर्पटीकल्प, वसन्तमालती, वातचिन्तामणि आदि अनेक सद्यः फलप्रद औषधों का आविष्कार किया था। आयुर्वेद का यह सिद्धान्त है कि नानौषधिभूतं जगति किंचिद् द्रव्यमस्ति, तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते। इस सिद्धान्तानुसार किसी भी लाभप्रद द्रव्य या औषध के व्यवहार का आयुर्वेद निषेध नहीं करता। नवाविष्कृत औषधों की केवल निन्दा करने या उनके दोष बताने मात्र से काम नहीं चलेगा। या तो उनके प्रतिनिधि—प्रतिस्पर्धी औषध अपने यहां तैयार करने (आविष्कृत करने) चाहिए और यही उत्तम तरीका है, या उनका आयुर्वेद सिद्धांतानुसार दोष-दूष्य प्रकृति आदि के विचार के साथ समयोग करके उपयोग कर लेना चाहिए और अपने शास्त्र में उनका समावेश कर लेना चाहिए। अन्यथा चिकित्सा-स्पर्धा में हमारा टिकना कठिन है। आशा है, वैद्य समाज इस पर अवश्य ध्यान देगा।

नवीन साहित्य किस प्रकार निर्मित हो ?

ऊपर मैंने दिग्दर्शन के रूप में वैद्यक के कुछ विषयों पर विवेचन कर के यह दिखलाने का यत्न किया है कि वर्तमान समय में प्राचीन उपलब्ध साहित्य मात्र के अध्ययन-अध्यापन से सर्वकार्यक्षम वैद्य तैयार नहीं हो सकते। वैसे वैद्य तैयार करने के लिए प्राचीन आयुर्वेद का प्रतिसंस्कार और उसमें नए विषयों का समावेश और न्यून विषयों की पूर्ति करके आयुर्वेदिक साहित्य को समयोपयोगी बनाना परम आवश्यक है। मेरे विचार में नवसाहित्य निर्माण इस प्रकार सम्पन्न हो सकता है—जिस विषय पर ग्रन्थ लिखना हो, उस ग्रन्थ में किन-किन विषयों का समावेश होना आवश्यक है, उसकी एक विषय-सूची सर्वप्रथम तैयार करनी चाहिए। पश्चात् उस विषय में जितना साहित्य वर्तमान समय में उपलब्ध प्राचीन ग्रंथों में हो और समयोपयोगी हो, उसको प्राचीन ग्रन्थों से पुनरुक्ति-दोष बचाकर संग्रह कर लेना चाहिए। अनन्तर उस विषय में जिन नवीन विषयों का समावेश करना हो वे लिखे जाने चाहिए। ग्रन्थ का कलेवर इतना होना चाहिए कि पाठ्यक्रम में उस विषय के लिए निश्चित किए गए समय और व्याख्यानों में उसका अध्ययन-अध्यापन पूरा हो सके। नए विषय जो लिखे जाएँ, उनके लिए नवीन संज्ञा-शब्दों (पारिभाषिक-शब्दों) को तैयार करना आवश्यक होगा। वे शब्द ऐसे तैयार होने चाहिए जो प्राचीन पद्धति के अनुरूप एवं सार्थक अन्वर्थक हों। निरर्थक मनगढ़ंत शब्दों का प्रयोग करना अनुचित है। जो नए ग्रन्थ बनें वे क्षीरनीर-न्याय से ऐसे बनें कि जिनमें प्राचीन या पीछे से लिए हुए विषयों का भेद सहसा पहचाना न जा सके और वे ग्रन्थ ही हमारे आयुर्वेद विद्यालयों में पाठ्यग्रन्थतया नियुक्त हों। एक विषय का एक ही पाठ्य ग्रन्थ हो, जिसमें अवश्य ज्ञातव्य प्राचीन-अर्वाचीन सब विषयों का संग्रह-समावेश हो और एक विषय का एक ही अध्यापक हो। एक विषय को प्राचीन पद्धति से वैद्य भिन्न परिभाषा में पढ़ाए और डाक्टर भिन्न परिभाषा में पढ़ाए, यह अध्यापन पद्धति ठीक नहीं है। यह पद्धति जबतक प्रचलित रहेगी तब तक शुद्ध-मिश्र का झगड़ा दूर नहीं हो सकता।

जो नए ग्रंथ लिखे जाएँ वे संस्कृत

भाषा में लिखे जाने चाहिए। संस्कृत भाषा में ग्रंथ बनने से वे नेपाल से कन्याकुमारी तक तथा मणिपुर से पञ्जाब तक समान रूप से प्रचलित हो सकेंगे और वह साहित्य चिरस्थाई होगा। भारत की राष्ट्रभाषा भले ही हिन्दी हो, परन्तु भारतवर्ष की शास्त्रीय-भाषा संस्कृत थी, है और रहेगी। पहिले संस्कृत भाषा में ग्रंथ लिखे जाने के अनन्तर उनके विशेष प्रचार के लिए उनका भिन्न-भिन्न प्रादेशिक भाषा में अनुवाद हो तो अच्छा ही है।

इस समय मिश्र-शिक्षण पद्धति के विद्यालयों में आधुनिक विषयों को ठीक समझने में उपयुक्त हो सकें इस दृष्टि से विद्यार्थी का अंग्रेजी भाषा का ज्ञान इण्टर साइन्स तक (कम से कम मेट्रिक तक का) होना आवश्यक माना जाता है और उसके लिए आग्रह रखा जाता है। परन्तु आयुर्वेद को ठीक समझने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान संस्कृत मध्यमा तक होना चाहिए, यह आवश्यक नहीं समझा जाता है, न उसके लिए आग्रह रखा जाता है और ऐसे विद्यार्थी भर्ती किए जाते हैं कि जिनका संस्कृत भाषा का ज्ञान स्वल्पमात्र—नगण्य-सा होता है। परिणाम यह होता है कि आयुर्वेद का ज्ञान उनका कच्चा रहता है।

रसतन्त्र

रसतन्त्र में भी इस समय प्राचीन रस-ग्रन्थों में जिनका वर्णन नहीं पाया जाता है ऐसे अनेक यौगिकों-कल्पों का आविष्कार हुआ है। स्व० वा० वैद्यराज पं० सदानन्द शास्त्री घिल्डियाल ने स्वविरचित रसतरङ्गिणी नामक ग्रन्थों में गन्धक, द्रावक (गन्धकाम्ल), निम्बूकाम्लीययवज, टङ्कणाम्ल, सोरकद्रावक, लवणद्रावक, सुवर्णलवण, सोरकाम्लीयरजत, आरनालीयसीसक, गन्धकाम्लीय रजत, गन्धकाम्लीय यशद, मुग्धरस आदि अनेक आधुनिक वैद्यक में प्रचलित कल्पों को संस्कृत भाषा में पद्यबद्ध करके समावेश किया है। इस प्रकार उपयुक्त अन्य आधुनिक कल्पों का तथा बिस्मथ, मेंगेनीज आदि चिकित्सोपयुक्त धातुओं का रसतन्त्र में समावेश कर लेना चाहिए।

प्रसूतितन्त्र

प्रसूति तन्त्र में भी आधुनिक प्रसूतितन्त्र के उपयुक्त विषयों का समावेश करके प्राचीन और आधुनिक दोनों विषयों के समन्वयात्मक नवीन ग्रन्थ तैयार करने की आवश्यकता है। इस प्रकार का यत्न आयुर्वेदाचार्य पं० दामोदर शर्मा गौड़ ने अभिनव प्रसूतितन्त्र नामक ग्रन्थ लिखकर किया है।

ऊपर मैंने संक्षेप में यह बताने का यत्न किया है कि इस समय जो आयुर्वेदिक ग्रन्थ-साहित्य उपलब्ध है उसके अध्ययन-अध्यापन से हम कार्यक्षम (सब प्रकार के चिकित्सा कार्य कर सके ऐसा) वैद्य तैयार नहीं कर सकते अतः वर्तमान आयुर्वेदिक साहित्य का पुनः प्रतिसंस्कार और अनुक्त विषयों का नवीन तन्त्रान्तरों से संग्रह करके न्यून विषयों की पूर्ति करके समयोपयोगी साहित्य निर्माण करना चाहिए। आयुर्वेद और उसके सिद्धांत इतने व्यापक हैं कि उसमें हम नवीन विचारों का समावेश आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों को अक्षुण्ण रखकर कर सकते हैं।

नवसाहित्य-निर्माण का कार्य काशी हिन्दूविश्वविद्यालय, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन जैसी संस्थाओं को करना (अपने हाथों में लेना) चाहिए और राज्य

यथा वैद्यों एवं आयुर्वेद प्रेमी धनी दाताओं को इस कार्य में यथाशक्ति सहायता देनी चाहिए। यह कार्य दत्तचित्त होकर तत्परता से किया जाय तो पाँच वर्षों में सम्पन्न हो सकता है।

आयुर्वेद पढ़ाने के लिए इस समय अच्छे अध्यापकों का मिलना कठिन हो रहा है, अतः काशीविश्वविद्यालय जैसी साधन संपन्न संस्थाओं को अध्यापक तैयार करने के लिए स्नातकोत्तर कोर्स तैयार करना और चलाना चाहिए।

इस समय हमारे आयुर्वेद महाविद्यालयों से जो स्नातक निकलते हैं उनमें कुछ अपवाद छोड़कर अधिकांश स्नातक आयुर्वेद के विषय में कच्चे अनुभवहीन और आयुर्वेद में श्रद्धा न रखने वाले मिलते (निकलते) हैं, उसके कारणों में अध्यापनोपयोगी ग्रन्थसाहित्य की अपूर्णता, एक ही विषय का दो भिन्न पद्धति के अध्यापकों द्वारा पढ़ाया जाना, संस्कृत के अत्यल्प ज्ञानवाले विद्यार्थियों की भरती होना, आयुर्वेदाध्यापकों का विद्यार्थियों को पढ़ाने में और प्रत्यक्ष चिकित्सानुभव कराने में उचित परिश्रम न करना ये प्रधान कारण हैं। महाविद्यालय के संचालकों और विद्वान अध्यापकों से मेरी प्रार्थना है कि वे इन त्रुटियों का परिमार्जन करें।

आज तक के मेरे दीर्घकाल के अवलोकन और अनुभव में वर्तमान आयुर्वेद की अध्ययन-अध्यापन शैली में जो त्रुटियां देखने में आईं और उनके परिमार्जन के जो उपाय मेरी समझ में आए वे मैंने वैद्य समाज के सामने रखा। आशा है कि वैद्यसमाज, हमारे आयुर्वेद के नेता और संस्थाओं के कर्णधार इस विषय पर अवश्य ध्यान देंगे।

वायु धातु

—श्री धर्मदत्त वैद्य कनखल

हमारा शरीर भी मशीन की तरह है। परन्तु जड़ मशीन की तरह इसकी संचालक शक्ति कहीं बाहर से न आकर अन्दर से ही उत्पन्न होती है। उन दो कोष्ठकों या सेलों से जिनसे शरीर आरम्भ होता है धारावाही रूप में यह शक्ति आती है। क्योंकि प्रतिदिन शक्ति खर्च भी होती है इसलिये उससे उत्पन्न क्षति की पूर्ति के लिये इसे अन्न लेना पड़ता है। सूर्य की शक्ति और वायु की कार्बोनिकाम्ल-गैस को मिला कर वनस्पतियाँ जिस अन्न को अपने अन्दर तैयार करती हैं उसे लेकर वह पहले अपने माँसवसादि अवयवों में बदलता है। फिर उनका पचन करके उनसे आवश्यक ऊष्मा और शक्ति दोनों को ठीक वैसे ही प्राप्त करता है जैसे एंजिन कोयले या तैल से शक्ति प्राप्त करता है। एंजिन के सदृश होने पर भी शरीर स्वयं जीवित है। उसके समान परजीवी नहीं है। शरीर का भोजन अन्न (या कार्बोहाइड्रेट) एंजिन के कोयले या तैल के समान एक पदार्थ है। परन्तु एंजिन तो स्वयं निर्जीव और अशक्त है तैल या कोयले से जीवन और शक्ति प्राप्त करता है इसके विपरीत शरीर स्वयं जीवित

और शक्ति से मुक्त है केवल अपनी क्षतिपूर्ति के लिये अन्न ग्रहण करता है। अर्थात् इनमें से एक तो परजीवी और दूसरा स्वयंजीवी है।

शरीर की परीक्षा करने पर हमें यह प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि शरीर एक स्वतः जीवित मशीन है। इसके प्रत्येक अवयव के अन्दर एक सहज शक्ति है जिसके कारण वह जीवित की तरह व्यवहार करता है। उदाहरणतः कई बार किसी-किसी सेल या कोष्ठक का प्रोटोप्लाज्म स्वयं गति करता हुआ पाया जाता है जैसे कि एक सेल वाले जीव अमीबा में नाना प्रकार की गतियाँ होती हुई देखी जाती हैं। रुधिर के अन्दर विद्यमान बहुमींगीश्वेताणुओं (पौलिमार्फ) के प्रोटोप्लाज्म में भी नानाविध गतियाँ होती हुई देखी जाती हैं। श्वास मार्ग, गर्भाशय प्रणालियों, आदि के आभ्यन्तर स्तर में ऐसे लोमश कोष्ठक (या Ciliated Cells) होते हैं जिनके लोम निरन्तर गति करते रहते हैं तथा वहाँ किसी प्रकार के मल को रुकने नहीं देते। इसी प्रकार हृदय भी निरन्तर स्पन्दन करता रहता है और ७०-८० वर्ष की आयु तक जितना कार्य यह छोटा सा अङ्ग करता है उतना कार्य एक बड़े से बड़ा एंजिन एक बार में नहीं कर सकता। हृदय की यह शक्ति उसके अन्दर से उत्पन्न होती है। अर्थात् उसकी सहज शक्ति है। हृदय को शरीर सें बाहर निकाल देने पर भी वह कुछ काल तक चलता रहता है। जलीय प्राणी का हृदय तो शरीर से बाहर कर देने पर भी कई दिन तक चलता रह सकता है। इसी प्रकार श्वास के नियामक केन्द्र (Respiratory-Centre) में भी श्वास-प्रश्वास दोनों को नियमित रखने वाली गतियाँ नियम से होती रहती हैं तथा उस केन्द्र का ऊपर और नीचे के अंगों से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जाय तो भी उसमें यह गतियाँ जारी रहती हैं। ऊर्ध्व मस्तिष्क के कोष्ठकों या सेलों में भी प्रत्येक समय विद्युत्गतियाँ होती हुई देखी जाती हैं। क्षुद्रान्त्र के मांसमय स्तर में अन्न को पाचक रसों के साथ मिलाने के लिये जो आलोचक गतियाँ (Segmenting movement) होती रहती हैं वह भी उनकी सहज या स्वाभाविक गतियाँ हैं। क्षुद्रान्त्र की दूसरी गति अन्न प्रेरक गति (Peristaltic wave) है जिससे वह अन्न को आगे आगे प्रेरित करती है। यह भी उसकी स्वभाविक गति है। इसी प्रकार शरीर की समस्त मांसपेशियों में जो चेष्ठा करने का गुण है वह मांस के प्रत्येक कोष्ठक (या Muscle fibre) का अपना स्वभाविक गुण है। रक्त लसीकादि के प्रवाही स्रोतसों में जो बल (या Tonus) हर समय बना रहता है जिससे वह अन्दर के द्रव को प्रेरित करते हैं वह भी उनका अपना सहज गुण है। उन स्रोतसों या उन उपर्युक्त अंगों में जो स्नायु सूत्र (Nerves) मस्तिष्क तथा सुषुम्ना काण्ड से आते हैं वे तो इनकी अपनी शक्ति को केवल आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक करने का काम करते हैं। अन्यथा यह अंग जिस बल से काम करते हैं वह इनकी अपनी शक्ति का परिणाम होता है।

अभिप्राय यह है कि प्राणी शरीर के प्रत्येक अवयव में एक निज या आभ्यन्तर शक्ति है जो उसके उत्पन्न होने के साथ उत्पन्न होती है। अतः उसे स्वयं उत्पन्न या सहज शक्ति कहा जाता है। (स्वयं भूरेष भगवान्) अति सूक्ष्म होने से इसे इन्द्रिय

आदि या यन्त्र आदि किसी प्रकार से देखा नहीं जा सकता है। परन्तु सर्व चेष्टाओं का कारण होने से इसका अनुमान किया जाता है (अव्यक्तोव्यक्तकर्माच)। शरीर की आयु तथा बल उन बातों पर निर्भर है जो इस शक्ति के वर्धक या सहायक हैं (वायुरायुर्बलं वायुः)। किसी अंग में जब तक यह शक्ति बनी रहती है वह जीवित रहता है जब यह शक्ति क्षीण हो जाती है वह अंग मृत हो जाता है। इसलिये इसी को प्राणियों का प्राण या प्राणशक्ति कहा गया है (सप्राणः प्राणिनां स्मृतः, स्थित्युत्पत्ति विनाशेषु भूतानामेषकारणम्)। चेष्टाओं का प्रवर्तक होने से 'वा' गतौ धातु से इसे वात या वायु नाम दिया गया है। अथवा पांच भौतिक वायु का दैहिक रूपान्तर होने से इसे वायु कहा गया है। इसी वात शब्द से लैटिन भाषा का जीवन सूचक शब्द (Vita) तथा जीवन शक्ति सूचक अंग्रेजी का शब्द (Vitality) उत्पन्न हुए प्रतीत होते हैं। शरीरक्रिया शास्त्र के विषय में आयुर्वेद का यह मन्तव्य है कि शरीर की दृश्य अदृश्य सर्वभौतिक क्रियायें या चेष्टायें शरीर के अन्दर विद्यमान विद्युत्सदृश किसी सूक्ष्म शक्ति कि जिसे वह वायु कहते हैं—के कारण हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि कुछ काल बाद विज्ञान भी मानने लगे कि जीवित अवयवों के अन्दर एक अप्रकट विद्युत् शक्ति रहती है। शरीर की दृश्यमान चेष्टाएं उसी का एक प्रकट रूप हैं।

जड़ मशीन में जो पदार्थविद्या अर्थात् (Chemistry physics) सम्बन्धी नियम काम करते हैं वे ही शरीर में भी काम करते हैं तो भी शरीर की मशीन जड़ मशीन के समान सरल नहीं है। शरीर की मशीन इतनी जटिल है कि महान् विद्वानों के सतत् परिश्रम के बाद भी शरीर के कार्यों के विषय में जो कुछ पता लगा है वह थोड़ा है और जो पता नहीं लगा है वह बहुत है। शरीर का जीवित होना या उसमें जीवनी शक्ति का होना ही उसकी जटिलता का कारण है। इस जीवनी शक्ति या प्राण शक्ति के कारण कभी-कभी शरीर में कोई-कोई ऐसा कार्य भी होता है जिसकी व्याख्या पदार्थ विज्ञान सम्बन्धी साधारण नियमों से नहीं होती। उदाहरणतः ग्लूकोज़ और लेक्टोज दोनों एक प्रकार की खाँड हैं परन्तु आन्त्र की अन्दर की स्तर ग्लूकोज़ को जितनी शीघ्रता के साथ अपने अन्दर खपा लेती है उतनी शीघ्रता से लेक्टोज़ को नहीं लेती यद्यपि लेक्टोज़ को आन्त्र में शीघ्र खप जाना चाहिए क्योंकि उसका अणु (Molecule) ग्लूकोज़ के अणु से सूक्ष्मतर होता है। इसी प्रकार यदि किसी प्राणी के अपने ही रक्त का मस्तु (या Serum) उस प्राणी की आन्त पर रखा जाय तो पदार्थों के विलयन सम्बन्धी नियमों के अनुसार वह आन्त में विलीन नहीं होना चाहिए, परन्तु वह तुरन्त विलीन होता हुआ देखा जाता है। आँत के अन्दर साधारण जल और ·४ प्रतिशतक लवणोदक इन दोनों में से साइन्स सम्बन्धी नियमों के अनुसार साधारण जल अधिक शीघ्रता से लीन होना चाहिए परन्तु वास्तव में ·४ प्रतिशतक लवणोदक अधिक शीघ्रता से लीन होता है। इसी प्रकार वृक्क भी रुधिर में से यूरियाको पृथक करके मूत्र किस प्रकार बनाते हैं यह अब तक किसी भौतिक या रासायनिक नियम से स्पष्ट नहीं होता, अन्त में यही मानना पड़ता है कि वृक्कों के कोष्ठक रक्त में विद्यमान यूरिया को अनुभव करते हैं और उनमें इस द्रव्य को

लेकर पृथक् कर लेने का विशेष गुण है। ये तो कुछ एक उदाहरण मात्र हैं। शरीर क्रिया शास्त्र का अध्ययन करने वाला पद-पद पर यह अनुभव करता है कि शरीर के अवयव अपना अपना कार्य जिस कुशलता निपुणता और पूर्णता के साथ करते हैं उससे तो ऐसा पता लगता है कि जैसे उन में कोई स्वाभाविक बुद्धि हो। ऐसा कहते हुए हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि शरीर के अवयव अपना कार्य मनमाने ढंग से करते हैं। वे तो अपना कार्य एक निश्चित नियम से करते हैं और उस से बाल भर इधर-उधर नहीं होते परन्तु उनकी कार्यविधिको देख कर कहना पड़ता है कि शरीर जड़ मशीन नहीं है पर एक जीवित मशीन है जिस में कोई जीवनी शक्ति अवश्य है।

प्राणी शरीर जड़ मशीन के समान केवल प्राकृतिक नियमों से चलता है या उन का बशवर्ती है ऐसा कथन यथार्थता से वहुत दूर है। प्राणी शरीर में यह विचित्र शक्ति है कि वह विपरीत अवस्था के आ जाने पर अपने को उस से बचा लेने का उपाय कर लेता है। जड़ मशीन कदापि ऐसा नहीं कर सकती। उदाहरणतया प्राणी शरीर ने अपने अन्दर यह शक्ति उत्पन्न कर ली है कि वह अपने समीपस्थ तापमान से प्रभावित नहीं होता उसे किसी प्रकार के वायु मण्डल में रख दें वह अपने तापमान को सदा एकसा रखता है। यह उसकी सहज जीवनी शक्ति का ही कार्य है। इसी प्रकार प्राणी में वानस्पतिक प्रोटीन को खाकर उस से अपने योग्य जान्तव प्रोटीन बना लेने अर्थात् अपने मांसादि धातुओं को बना लेने की शक्ति भी उसकी मौलिक शक्ति का एक विकास माना है। इसी प्रकार यद्यपि साधारणत: प्राणी अन्न को ग्लूकोज़ में परिवर्तित करके उस पर अपना निर्वाह करता है। परन्तु यदि ग्लूकोज़ न मिले या अन्न ही न मिले तो अपने शरीर के मांस मेदादि से ही ग्लूकोज बना लेने की शक्ति भी जो प्राणी ने उपार्जित की है वह उसकी जीवनी शक्ति का ही सूचक है। प्राणी शीत से उष्ण या उष्ण से शीत देश में जाते ही पहले कुछ अस्वस्थता अनुभव करता है परन्तु तुरन्त ही उसकी यह जीवनी शक्ति उस दुष्प्रभाव से बचने का कोई उपाय कर लेती है। कोई जीवाणु जब पहले पहल शरीर में आता है तो उसे रुग्ण कर देता है। परन्तु शीघ्र ही शरीर की यह जीवनी शक्ति उस जीवाणु से बचने का कोई उपाय निकाल लेती है। अभिप्राय यह है कि शरीर में वह जो मौलिक शक्ति है जिससे वह विपरीत से विपरीत देश काल और वस्तु का भी सात्मीकरण कर लेता है अथवा वाह्य अवस्थाओं के अनुसार अपने को बदल लेता है उसे उसकी वातिक शक्ति, प्राण शक्ति या वायु कहा गया है। 'वायु' जीवन का सूचक एक प्रधान लक्षण है।

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleton) आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल टिकयाँ व गोलियां बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकाल इन्स्ट्रूमेन्ट, आदि के मिलने का पताः—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स कं०

दयाल बाग, (आगरा)

इन्द्रादिक शब्दों के अर्थ

श्री रघुबीर शरण शर्मा, आयुर्वेद वाचस्पति

वेद और आयुर्वेद में इन्द्र, वरुण, अग्नि और रुद्र आदि शब्द अनेक स्थानों पर आये हैं। प्रसंगानुसार हमने उनके वहीं पर अर्थ भी दे दिए हैं, किन्तु उपरोक्त शब्द अनेकार्थवाची हैं। लौकिक साहित्य में ये शब्द अथवा नाम ऐतिहासिक व्यक्तियों के बोधक हैं और वैदिक साहित्य में इनके अर्थ भिन्न भी हैं। अतः मैं यहां पर इनका अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक समझता हूँ।

इन्द्र—इन्द्र ऋषिकश्यप के पुत्र थे इनका विवाह पुलोमा दानव की पुत्री 'शची' से हुआ था। शची असाधारण विदुषी तथा अनेक वैदिक मंत्रों की द्रष्टा थी।[1] इन्द्र की माता का नाम अदिति था अतः मातृ द्योतक नाम आदित्य भी कहते थे। इन्द्र के ११ भाई और थे। जिनके नाम ये हैं।

भगोंशश्चार्यमा चैव, मित्रोथ वरुणस्तथा।
सविता चैव धाता च, विवस्वांश्च महाबलः।
पूषा त्वष्टा तथैवेन्द्रो, द्वादशो विष्णुरेव च।
त एते द्वादशादित्याः, कश्यपस्यात्म संभवाः।

महाभारत शां० प० २०८।१५-१६।

भग, अंश, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान, (सूर्य) पूषा, त्वष्टा[2] इन्द्र और विष्णु ये इन्द्र के सहोदर भ्राता थे।

इन्द्र की योग्यता—इन्द्र चारों वेद, अष्टाङ्ग आयुर्वेद, धनुर्वेद, अर्थ शास्त्र, वास्तु शास्त्र, राज शास्त्र, (राजनीति) वेदान्त-शास्त्र, दिव्यास्त्रों के ज्ञाता तथा अनेक मंत्रों के द्रष्टा थे।[1] इन्द्र ने ब्रह्मा से १०१ वर्ष पर्यन्त अध्यात्म का अध्ययन किया था। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन और इन्द्र दोनों एक साथ ब्रह्मा के पास गए थे। विरोचन ने ३२ वर्ष और इन्द्र ने १०१ वर्ष पर्यन्त अध्ययन किया था।[2] मेरे विचार से १०१ वर्ष का अर्थ १०१ दिन करना उचित होगा। वर्ष का अर्थ वर्ष और दिन दोनों ही होते हैं। "अहोरात्रे वै संवत्सरः" (शतपथ ३।२।२।४) इतना बड़ा विद्वान तथा बुद्धिमान इन्द्र का १०१ वर्ष का अध्यात्म विद्या का अध्ययन मेरी समझ में नहीं आता। इन्द्र के लिए इतना बड़ा समय न केवल आश्चर्यजनक है अपितु खेदजनक भी है।

इन्द्र ने आयुर्वेद का अध्ययन सूर्य के पुत्र[3] अश्विनी कुमारों से किया था। "आश्वि-

---

[1] शची अथर्व १।२७ ऋ० १०।१४५ तथा १०।१५९ सूक्त की ऋषि है।

[2] त्वष्टा नाम के ऋषि दैत्यगुरु शुक्राचार्य के भी पुत्र थे।

---

[1] इन्द्र यजुः १८।६८ के ऋषि थे। ऋ०१०।८६ के इन्द्र और इन्द्राणी दोनों ऋषि हैं। यजुः १८।६९ के इन्द्र और विश्वामित्र ऋषि हैं। ऋ०१०।४८,४९, और ५० सूक्तके इन्द्र वैकुंठ ऋषि हैं।

[2] छान्दोग्य उपनिषद् प्रपाठक ८ खंड ७-१२।

[3] सूर्य के मनु यम और दोनों अश्विनी कुमार नाम के चार पुत्र थे।

भ्यामिन्द्रः ।" (सु० सू० १।१८) ये आश्विनीकुमार इन्द्र के भतीजे होते थे ।

इन्द्र का निवास स्थान

इन्द्र स्वर्ग के राजा थे । स्वर्ग का दूसरा नाम त्रिविष्टप[1] भी है जिसका अपभ्रंश तिब्वत है । स्वर्गलोक भी तीन भागों में विभक्त था । इसकी सूचना स्वयं त्रिविष्टप शब्द दे रहा है। त्रिविष्टप का अर्थ तीन लोक है । त्रि = तीन । विष्टप = लोक । "विष्टपं भुवनं जगत्" (अमर कोश) इसी आधार पर इन्द्र को त्रिलोकपति भी कहते थे ।

इन्द्र का निवास स्थान देवलोक में था अमरावती नाम की पुरी में राजधानी थी । नन्दन वन इसके उद्यान (बाग) का नाम था । यह प्रदेश कभी बड़ा सुन्दर एवं सुसमृद्ध था। यहां के निवासी सुशिक्षित तथा सभ्य थे; इसी कारण यहां के मनुष्यों को देव और देश को स्वर्ग कहते थे ।

भारत से सम्बन्ध

इन्द्र यद्यपि देवलोक में रहते थे किन्तु भारत से इन के घनिष्ट सम्बन्ध थे । विदर्भ नरेश राजा भीष्मक, चैद्योपरिवसु और प्राग्ज्योतिषपुर (आसाम) के राजा भगदत्त आदि इनके मित्र थे ।[2] देवों का भारत में और भारतीयों का देवलोक में आना जाना निरन्तर रहता था । भारतीय ऋषि वशिष्ठ इन्द्र को यज्ञ कराने देवलोक में जाते थे[3] और देवों के गुरु बृहस्पति तथा बृहस्पति के पिता ऋषि आंगिरा सूर्यवंशी राजा करन्धम तथा करन्धम के पुत्र राजा मरुत् को यज्ञ कराने भारत में आया करते थे ।[4] भ्रमणशील ऋषि नारद भारतीय राजाओं से और भारतीय ऋषिलोमश आदि देवों के राजा इन्द्र से मिलते रहते थे । सूर्य पुत्र अश्विनीकुमार जो कि देवों के चिकित्सक थे वे भारत में भी चिकित्सा किया करते थे । बहुत से देव भारत में और बहुत से भारतीय देवलोक में रहा करते थे । सूर्यवंशी राजा मांधाता ने वृद्धावस्था में त्रिविष्टप में ही जीवन व्यतीत किया था । उनका स्थान आज भी तिव्बत में मांधाता पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है । ऋषि आत्रेय पुनर्वसु ने अपना जीवन देवलोक में ही व्यतीत किया था। ऋषि अग्निवेश, पराशर, जतूकर्ण, क्षारमणि, भेल (भेड) और हारीतने ऋषि पुनर्वसु से देवलोक में आयुर्वेद की शिक्षा पाई थी । आयुर्वेद वैज्ञानिकों के सम्मेलन (कान्फ्रेंस) भी अनेक बार देवलोक में हुए हैं । जिनमें भाग लेने वाले बड़े बड़े तपस्वी, धर्मात्मा, वेदों के ज्ञाता, आयुर्वेद वैज्ञानिक, ऋषि भारद्वाज, भद्रकाय्य, हिरण्याक्ष, मौद्गल्य, आदि ऋषि तथा काशिपति वामक, राजर्षि वार्योविद, राजा वैदेह निमि आदि अनेक देशों के राजा भी हुआ करते थे । इनमें वर्तमान समय के समान केवल प्रदर्शन और प्रस्ताव ही पास नहीं होते थे बल्कि आयुर्वेद

---

[1] सुरलोको द्यो दिवौ द्वेस्त्रियां क्लीबे त्रिविष्टपम् । अमर कोश ।

[2] भीष्मकाय स धर्मात्मा साक्षादिन्द्रसखाय वै । म० भा० सभा० प० १३।६४

(क) विश्रुतं जनयामास पुत्रमिन्द्रसखंनृपम् ।
चैद्योपरिवरं वीरं वसुनामान्तरिक्षगम् ।
ब्रह्म पुराण ११।११ ।

(ख) अहं सखा महेन्द्रस्य शक्रादनवरोरणें ।
म० भा० सभा० प० १४।१२ ।

[3] विष्णु पुराण अंश ४ श्लो० ४ ।

[4] महाभारत आश्वमेधिक पर्व अ० १६४ ।

विज्ञान के गंभीरतम विषयों पर विवाद होते थे और विवादास्पद विषयों के महत्वपूर्ण निर्णय भी होते थे ।[1]

इन्द्र के शिष्य

काशी के राजा दिवोदास इन्द्र के शिष्य थे । दिवोदास ने आयुर्वेद की शिक्षा देवलोक में इन्द्र से प्राप्त की थी । सुश्रुत[2] पौष्कलावत और गोपुररक्षित आदि दिवोदास के शिष्य थे । दिवोदास की उपाधि धन्वन्तरि थी[3] । इन्द्र दिवोदास के गुरु तो थे ही साथ ही परम हितैषी एवं मित्र भी थे इसी आधार पर दिवोदास ने वाराणसीपुरी का निर्माण इन्द्र के परामर्श से किया था । दिवोदासस्तु विज्ञाय वीर्यं तेषां महात्मनाम् ।
वाराणसीं महातेजा निर्ममेशक्रशासनात् ।
म० भा० अनुशासन प० ३०।१६।

द्वापर युग में इन्द्र ने ऋषि भरद्वाज को अष्टांग आयुर्वेद की शिक्षा दी । भरद्वाज भी इन्द्र के पास देवलोक में ही गये थे वहीं पर उन्होंने अध्ययन किया था । ये भरद्वाज जमदग्नि, शाकुन्तेय, वशिष्ठ और कश्यप आदि सैंकड़ों ऋषियों के प्रतिनिधि बन कर इन्द्र के घर गये थे[4] । ऋषि अत्रि, वशिष्ठ, भृगु और कश्यप भी कौमारभृत्य विषय के इन्द्र के ही शिष्य हैं । "इन्द्र ऋषिभ्यश्चतुर्भ्यः कश्यपवशिष्ठात्रिभृगुभ्यः ।" (काश्यप संहिता पृ० ४२) एक बार पुनः भृगु अंगिरा अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्यवाम देव, असित, गौतम आदि ऋषियों ने देवलोक में जाकर इंद्र से आयुर्वेद की शिक्षा पायी थी[1]। और इन्द्र ने इन ऋषियों को आयुवर्धक, बलवर्धक रसायन का भी उपदेश दिया था। स्मरण रहे ऋषिकश्यप, वशिष्ठ, भृगु आदि नाम के ऋषि हर युग में हुए हैं और अनेक हुए हैं उन सब को एक ही मान लेना भारी भूल है। जिनमें ऋषिकश्यप तो इन्द्र के पिता थे। प्रजापति के सैंकड़ों मंत्रों के ऋषि थे। और आदि त्रेतायुगेन्द्र थे। पाण्डव अर्जुन ने देवलोक में इन्द्र के यहाँ रह कर ५ वर्ष पर्यन्त इन्द्र से दिव्यास्त्रों की शिक्षा पाई थी। और इसको गुरु दक्षिणा में अर्जुन ने देवों के सहज शत्रु हिरण्यपुर (हरनाह-विलोचिस्तान) वासी निवात-कवच नाम के दैत्य दानवों का दमन किया था[2] । ये दैत्य दानव प्रह्लाद के वंशज थे। प्रह्लाद के पुत्र विरोचन के नाम पर इस देश का नाम विरोचन स्थान हुआ था। इसी का अपभ्रंश विलोचिस्तान है।[3]

इन्द्र चिकित्सक—इन्द्र ने अपाला नाम की स्त्री के चर्मरोग का और अपाला के पिता के खल्वाट रोग का निवारण किया था[4] । इन्द्र ने ऋषि परावृज अन्धे को दृष्टि प्रदान की थी और पंगु श्रोण को गति प्रदान की थी[5] । इस प्रकार इन्द्र न केवल

---

१ देखो लेखक की धन्वन्तरि परिचय ।

२ सुश्रुत यजुः अ० ३ मन्त्र २ का ऋषि है ।

३ धन्वन्तरि परिचय

४ चरक. सू. अ. १।८–१४ ।

१ ब्रह्मर्षिसिद्धचारणानुचरितं दिव्यतीर्थौषधि प्रभावं हिमवन्तं अमराधिपतिगुप्तं जग्मुः भृगु अंगिरा अत्रि वशिष्ठ कश्यप अगस्त्य, पुलस्त्य वामदेवासित गौतम प्रभृतयो महर्षयः। च. चि. १।४।४।

२ महाभारत वन पर्व १६४ ।

३ देखो लेखक का पाताल लोक (अप्रकाशति)

४ ऋ. ८।९१।७।

५ ऋ. २।१५।७।

आयुर्वेद का ज्ञाता, आयुर्वेद का प्रवर्तक था अपितु उत्तम श्रेणी का चिकित्सक भी था ।

देवासुर संग्राम

देव और दैत्य दानवों के सैंकड़ों युद्ध हुए हैं इनमें १२ भयंकर थे । ये युद्ध संस्कृति अथवा सभ्यता के निमित्त नहीं हुए बल्कि सभी दाय निमित्त थे अर्थात् अधिकार निमित्त थे[1] । जैसा कि —

तेषां दायनिमित्तं तु संग्रामा वहवोऽभवन् ।
मत्स्य. मु० ४७।४१।

इनमें समय समय पर सूर्यवंशी पुरंजय (जिसका अपरनाम ककुत्स्थ भी था) सूर्यवंशी खट्वांग, और दशरथ आदि भारतीय राजाओं ने सदैव ही देवों की सहायता की है । महाभारत काल में भी प्राग्ज्योतिष (आसाम) के राजा 'नरक' का दमन करने के लिए इन्द्र ने श्रीकृष्ण[2] भगवान की सहायता ली थी । नरक महा प्रतापी, पराक्रमी एवं महाबलशाली था । इसने देव असुर और मानव राजाओं को मारकर उनके कोष तथा उनकी कन्याओं का हरण कर करके के अपना घर भर लिया था ।

देवसिद्धाऽसुरादीनां नृपाणां च जनार्दनम्
हत्वाहिसोऽसुरः कन्यां रुरोधनिजमन्दिरे ।
ब्रह्म पुराण ९३।६॥

नरक चूंकि दोनों का पड़ौसी था इस कारण दोनों को सदैव ही परेशान करता रहता था । नरक ने दोनों को पराजित कर के इन्द्र की माता अदिति के कुण्डल (कर्णफूल) और वरुण का बहुमूल्य छत्र भी छीन लिया था । इस स्थिति म इन्द्र ने श्री कृष्ण को सहायता की प्रार्थना की । श्री कृष्ण ने प्रार्थना को स्वीकार करके सत्यभामा को साथ ले वायुयान द्वारा द्वारका से प्रस्थान कर दिया । श्रीकृष्ण ने आसाम में आकर नरक से युद्ध किया नरक को समाप्त किया । और नरक के पुत्र भगदत्त को राजा बनाया । भगदत्त इन्द्र का मित्र बन गया । इसके बाद नरक के कोष को और उन कन्याओं को जो नरक के बन्दीगृह में बन्द थीं द्वारका भेजकर आप सत्यभामा के साथ वायुयान द्वारा तिब्बत में पहुँच गये । इन्द्र के भवन में इन्द्र की माता अदिति तथा इन्द्राणी ने श्रीकृष्ण का भव्य स्वागत किया । श्रीकृष्ण ने अदिति के कुण्डल अदिति को और वरुण का छत्र वरुण को दे दिया । इसके बाद श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ इन्द्र का नन्दन बन देखने गये यहां पर खेद जनक घटना हो गई, रंग में भंग हो गया । सत्यभामा को स्वर्ग का पारिजात नामक वृक्ष पसन्द आ गया । उसकी इच्छा हुई कि इसको द्वारकापुरी में ले चलें किन्तु इन्द्र इसको सहन नहीं कर सका । इस पर इन्द्र और श्रीकृष्ण का युद्ध हुआ इन्द्र की पराजय और श्रीकृष्ण की विजय हुई । पारिजात को श्रीकृष्ण भगवान वायुयान में रख कर द्वारकापुरी ले आये । जिसका उल्लेख धृतराष्ट्र ने भी किया —

वैनतेयं समारुह्य त्रासयित्वाऽमरावतीम् ।
महेन्द्रभवनाद्धरिः पारिजातमुपानयत् ।
म. भा. द्रो. प. ११।२२ ।

धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण की प्रशंसा में कहा है कि वैनतेय (गरुड़) नामक वायुयान में सवार होकर अमरावती को आतंकित

---

[1] लेखक को धन्वन्तरि परिचय । पृ० १३ ।

[2] कृष्ण ऋ. १०।४२,४३,४४ सूक्त के अथर्व २०।१७सूक्त के मंत्र १—१० तक के ऋषि है ।

करके इन्द्र के घर से श्रीकृष्ण पारिजात लाये थे[1]। इस व्यवहार पर जो कि इन्द्रादिक देवों ने श्रीकृष्ण भगवान के साथ किया है भागवत के लेखक महर्षि व्यास ने महान् आश्चर्य प्रगट किया है और देवों का भारी अज्ञान बताया है। "अहो सुराणां च तमोधिगाढ्यताम् । भा. १०।५९।४१।

यह वर्णन ऐतिहासिक इन्द्र का है।

इन्द्र के नाम

अमरकोश में इन्द्र के शक्र पुरन्दर, सहस्राक्ष आदि ३५ नाम लिखे हैं। इनके अतिरिक्त शतक्रतु, बलहन्ता, अमरप्रभु और अमरगुरु आयुर्वेदीय चरक संहिता में मिलते हैं। इस प्रकार लौकिक साहित्य में[2] इन्द्र के ३९ नाम हैं। वैदिक साहित्य में[3] इन्द्र के लगभग ५१ अर्थ अथवा नाम हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है—

सर्वप्रथम हम यास्काचार्य ने जो इन्द्र शब्द के निर्वचन कियें हैं उनका उल्लेख करेंगे।

इन्द्र इरां हृणातीति वा, इरां ददातीति वा, इरां दधातीति वा, इरां दारयत इति वा, इन्धे भूतानीति वा, तद्यदेनं प्राणैः समैन्धस्तदिन्द्रस्येन्द्रत्वम्, इति विज्ञायते इदं करणादित्याग्रयणः, इदं दर्शनादित्यौपमन्यवः इन्दतेर्वैश्वकर्मणः, इदं शत्रूणां दारयिता वा द्रावयिता वा आदरयिता च यज्वनाम्।

(निरूक्त. १०।१।९।)

अर्थ—जो जल अथवा अन्न को फोड़ता ह। जो अन्न अथवा जल को देता है। जो अन्न अथवा जल का धारण करता है। जो अन्न अथवा जल का विदारण करता हैं। जो अन्न अथवा जल का धारण करता है। जो चन्द्रमा के लिये द्रव रूप होता है। जो जल में रमता है। जो प्राणियों को प्रकाश देता है। जो प्राणों में प्रकाशित होता है। जो इस संसार का निर्माण करता है। जो इस संसार को देखता है। जो ऐश्वर्य संपन्न है। जो शत्रुओं का विदारण करता है। जो शत्रुओं को भगा देता है। जो याजकों का आदर करता है वह इन्द्र है। इस प्रकार यास्क ने इन्द्र शब्द के १५ निर्वचन अथवा अर्थ किये हैं।

उपनिषदों में इन्द्र का अर्थ

तस्मादिदन्द्रो नाम इदन्द्रो ह वै नाम तमिदन्द्रं सं तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण। ऐ. उ. ३।१४। इसका पहिले नाम इदं-द्र था। इस इदं-द्र को ही परोक्षवृत्ति से इन्द्र कहने लगे।

(१) ततः प्राणो अजायत स इन्द्रः। (वृ० आ० उ० १।५।१२)

(२) एतं इन्धं सं तं इन्द्र इत्याचक्षते। (वृ०- आ० उ० ४।२।२)

(३) एष ब्रह्म एष इन्द्र एष प्रजापतिः (ऐ० उ० ५।३)

(४) इन्द्रस्त्वं प्राणतेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता। त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः। प्रश्न. उ० २।९।)

---

[1] पारिजात हरण का उल्लेख ब्रह्म पुराण ९३ में विस्तार से है। साधारण हरिवंश २।६३–६४। भागवत १०।५९। महाभारत द्रोण पर्व ११।१२। में भी है।

[2] इतिहास, पुराण, ज्योतिष, और आयुर्वेद आदि साहित्य का नाम लौकिक साहित्य है।

[3] वेद और शतपथ, ऐतरेय, गौ पथ, और जैमिनी आदि ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों को वैदिक साहित्य कहते हैं।

(५) एषः खलु आत्मा इन्द्रः । मै०उ० ६।८।)
(६) अभौवा आदित्य इन्द्रः (मै० उ०६।३३)
(७) चाक्षुष इन्द्रोयम् । (मै० उ० ७।११)

प्राण इंद्र है। प्रकाशित करने वाला इन्द्र है। यही ब्रह्मा यही इन्द्र यही प्रजापति है। इन्द्र ही प्राण है इन्द्र ही रुद्र है इन्द्र अन्तरिक्ष में चलने वाला वायु है। और इन्द्र ही सूर्य है। यह आत्मा इन्द्र है। यह सूर्य इन्द्र है। चक्षु का जो तेज है वह इन्द्र है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते[1] । वृ०आ० उ० २।५।१९।

इन्द्र अर्थात् ब्रह्म अपनी माया से बहुत से रूप धारण करता है। अथवा अपनी माया से संसार को विभिन्न रूप का बनाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा है कि—

भीषाऽस्माद्वातः पवते,
भीषोदेति सूर्यः।
भीषाऽस्मादग्निश्च इन्द्रश्च
मृत्युर्धावति पञ्चम इति।
तै. उ. २।८।१।

इसी ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के भय से वायु चलता है। इसी ब्रह्म के भय से आकाश में सूर्य उदय होता है। इसी ब्रह्म के भय से अग्नि दाहक (जलाना) का कार्य करता है। इसी ब्रह्म के भय से इन्द्र अपना कार्य करता है। और इसी ब्रह्म के भय से पाचवां मृत्यु प्राणियों का मरण करता है।

मस्तक में इन्द्र योनिः

अन्तरेण तालुके, य एष स्तन इव अवलम्बते सा इन्द्रयोनिः। तै. उ. १।६।१। तालुके मध्य में यह जो स्तन के समान लटकता है इसका नाम इन्द्र योनि है। भाषा में इसे 'काग' कहते हैं। यह अंग योग साधन में उपयोगी होता हे।

ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्द्र का अर्थ

इन्धो वै नाम एषयोऽयं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषः। तं वा एतं इन्धं सं तं इन्द्र इत्याचक्षते।
(श. प. ब्रा. १४।६।११।२।)

(२) इन्द्र इति ह्येतं आचक्षते य एषः(सूर्यः) तपति ।(श. प. ब्रा. ४।६।७।११।)
(३) यः स इन्द्रोऽसौ स आदित्यः।
(श. प. ब्रा. ८।५।३।२)
(४) एष वै शुक्रो यः एष तपति एष उ एवेन्द्रः
(श. प. ब्रा.४।५।५।७)
(५) अथ यत्रैतत प्रदीप्तो भवति। उच्चधूमः परमयाजूत्या बलबलीति तर्हि हैष (अग्निः) भवनीन्द्रः।
(श. प. ब्रा. २।३।२।११।)
(६) इन्द्रो वाग् इति उ वा आहुः।
(श. प. ब्रा. १।४।५।४।)
(७) तस्मादाहुरिन्द्रो वागिति।
(श. प. ब्रा. ११।१।६।१८।)
(८) वाग्वा इन्द्रः। कौषतकी ब्राह्मण
(२।७।१३।५।)
(९) यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः
(श. प. ब्रा. ४।१।३।१९।)
१०) प्राण एवेन्द्रः।
(श. प. ब्रा. १२।९।१।१४)
(११) हृदय मेवेन्द्रः।
(श. प. ब्रा. १२।९।१।१५।)
(१२) मन एवेन्द्रः। (श.प.ब्रा.१२।९।१।१३)
(१३) इन्द्रो वै यजमानः।
(श. प. ब्रा. २।१।२।११)
(१४) इन्द्रो वै राजन्यः। तै.ब्रा.३।८।२३।२)
(१५) इन्द्रः क्षत्रम्। (श.प.ब्रा.१०।४।१।५।)
(१६) रुक्म एवेन्द्रः। (श.प.ब्रा.१०।४।१।५)

---

[1] यही मंत्र ऋग्वेद ६।४७।१८ में भी है।

चैत्र २०१२

(१७) यदशनिरिन्द्रः। (कौ. ब्रा. १२।२।)

(१८) स्तनयितनुरेवेन्द्रः।
(श, प. ब्रा. ११।६।३।९)

(१९) इन्द्रिय वीर्यं इन्द्रः।
(श० प० ब्रा० २।५।४।८ ।)

(२०) प्रजापतिर्वा स इन्द्रः।
(श० प० ब्रा० २।३।१।७ ।)

(२१) शिश्नमिन्द्रः।
(श० प० ब्रा० १२।९।१।१६ ।)

(२२) रेत इन्द्रः।
(श० प० ब्रा० १२।९।१।१७ ।)

(२३) वीर्यं वा इन्द्रः।
(गोपथ ब्राह्मण उ० ६।७ ।)

(२४) इन्द्रो ह्याहवनीयः।
(श० प० ब्रा० २।६।१।३०।)

(२५) इन्द्रः खलु वै श्रेष्ठो देवतानाम्।
(तै० ब्रा० २।३।१।३ ।)

(२६) इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः
सहिष्ठःस त्तमः पारयिष्णुतमः।
(ऐ० ब्रा० ७।१६।८।१२ ।)

(२७) इन्द्रो वै यज्ञः इन्द्रो यज्ञस्य देवता।
(ऐ० ब्रा० २५।९ पृ० ६७५ ।)

(२८) इन्द्रो यज्ञस्यात्मा इन्द्रो देवता।
(श० प० ब्रा० ९।५।१।३३ ।)

(२९) इन्द्रो वा अश्वः। (कौ० ब्रा० १५।४।)

(३०) एतद्वा इन्द्रस्य रूपं यद् ऋषभः।
(श० प० ब्रा० २।५।३।१८ ।)

(३१) यत् शुक्लं तदैन्द्रम्।
(श० प० ब्रा० १२।९।१।१२ ।)

(३२) इन्द्रः सर्वा देवता इन्द्र श्रेष्ठा देवाः।
(श० प० ब्रा० २।४।२।२ ।)

(३३) ततो वा इन्द्रो देवानामधिपतिरभवन्।
(तै० ब्रा० २।२।१०।३ ।)

(३४) अर्जुनोह वै नामेन्द्रो यदस्य गुह्यं
नाम। (श० प० ब्रा० २।१।२।११ ।)

(३५) ओकः कारी है वेषामिन्द्रो भवति।
(ऐ० ब्रा० ६।१७।२२ ।)

(३६) इन्द्रोवलं वलपतिः।
श० प० ब्रा० ११।४।३।१२ ।)

(३७) ततः प्राणो अजायत स इन्द्रः।
(श० प० ब्रा० १४।४।३।१९।)

अर्थ (१) दक्षिण क्षेत्र में जो पुरुष है वह इन्द्र है। (२) यह जो सूर्यंतपता है वह इन्द्र है। (३) सूर्य इन्द्र है। (४) यह जो शुक्र है वह इन्द्र है। (५) प्रचण्ड अग्नि का धूम इन्द्र है। (६) वाणी इन्द्र है। (७) वायु इन्द्र है। (८) प्राण वायु इन्द्र है। (९) हृदय इन्द्र है। (१०) मंत्र इन्द्र है। (११) यजमान इन्द्र है। (१२) राजा इन्द्र है। (१३) क्षात्र तेज इन्द्र है। (१४) स्वर्ण इन्द्र है। (१५) विद्युत (मेघस्थानीय) इन्द्र है। (१६) वज्र इन्द्र है। (१७) इन्द्रिय का वीर्य इन्द्र है। (१८) प्रजापति इन्द्र है। (१९) शिश्न इन्द्र है। (२०) रेत अथवा वीर्य इन्द्र है। (२१) आहवनीय अग्नि इन्द्र है। (२२) इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ है। (२३) देवों में जो बलवान् ओजस्वी, सहिष्णु और संकट से पार करने वाला है वह इन्द्र है। (२४) इन्द्र यज्ञ का आत्मा और यज्ञ का देवता है। (२५) अश्व इन्द्र है। (२६) इन्द्र का रूप ऋषभ (बैल) है। (२७) शुक्ल इन्द्र है। (२८) सब देवों में श्रेष्ठ इन्द्र है। (२९) देवों का राजा इन्द्र है। (३०) अर्जुन इन्द्र है यह उसका गुप्त नाम है। (३१) घर बनाने वाला इन्द्र है। (३२) बल और बल का स्वामी इन्द्र है। इस प्रकार १५ निरुक्त के ३२ ब्राह्मण ग्रंथों और ४ उपनिषदों के मिलाकर ५१ नाम अथवा अर्थ इन्द्र के वैदिक साहित्य में हैं। और ३८ नाम हम लौकिक साहित्य के पीछे और बता चुके

हैं दोनों को मिलाकार ८९ नाम इन्द्र के हो जाते हैं। इन सबको समझ कर ही वेद का अध्ययन करना चाहिए।

वेद्—तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः।
(यजु ३२।१।)

वही सर्वव्यापक सच्चिदानन्द अग्नि है, वही आदित्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है वही शुक्र है वही प्रजापति है और वही ब्रह्म है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि राहुरथो दिव्यः स. सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः। ऋ. १।१६४।४६।

एक ही सत् को विप्र अर्थात् मेधावी लोग इन्द्र मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्णगरुत्मान्, यम और वायु नाम से कहते हैं। किन्तु इसी ऋग्वेद में कहा है कि—

दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवेहर्यश्वप्रसूताः। ऋ. ३।३०।१२

अर्थात् इन्द्र ने जो आकाश में सूर्य का मार्ग निश्चित किया है सूर्य उसको छोड़ नहीं सकता। अभिप्राय यह है कि इस मन्त्र में इन्द्र का अर्थ परमात्मा है और सूर्य का अर्थ आकाशस्थ सूर्य है। और इससे पूर्व के मन्त्रों में आदित्य (सूर्य) और इन्द्र दोनों ही परमात्मा के लिए व्यवहृत हुए हैं। एक स्थान पर ऋग्वेद में कहा है कि—"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।" (ऋ.६।४७।१८।)

इन्द्र अपनी माया से बहुत से रूप धारण करता है। इसका अर्थ ऐतिहासिक इन्द्र पर भी लग सकता है क्योंकि वह तिब्बत का शासक था। शासक मायावी (प्रपंचक) होते भी हैं। और उस इन्द्र के सम्बन्ध में महाभारत अनुशासन पर्व में इसी प्रकार की एक कथा भी है। उसमें भी कहा है कि देवशर्मा नाम के एक ऋषि थे। रुचि उसकी पत्नी का नाम था। रुचि पर इन्द्र मोहित थे। जब देवशर्मा ऋषि कहीं यज्ञ कराने जा रहे थे तब उन्होंने अपने शिष्य विपुल से अपनी पत्नी की रक्षा करने का आदेश देते समय इन्द्र से सावधान रहने का भी आदेश दिया था और उस समय देवशर्मा ने इन्द्र को बहुरूपिया बताया था और कहा था कि वह अनेक रूप धारण करता है। तो इस आधार पर हम इस मंत्र का अर्थ ऐतिहासिक इन्द्र पर लगा सकते हैं किन्तु इसी हूबहू मंत्र को वृहदारण्यक उपनिषद् २।५।१९ में भी लिखा है "इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते" और उपनिषद् में इन्द्र का अर्थ ब्रह्मा किया है। अतः इस मंत्र में इन्द्र का अर्थ ब्रह्मा ही उचित होता है।

नोट—यह लेख लेखक की वेद और आयुर्वेद रचना का एक अंश है ग्रन्थ अप्रकाशित है अतः सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

धन्वन्तरि
आयुर्वेद का सर्वोत्तम मासिक
इस वर्ष का विशेषांक "चरक चिकित्साङ्क"
६०० पृष्ठों और सैकडों चित्रों युक्त विशाल और सुन्दर। वार्षिक मू० ५।।)। वैद्य हकीम-डाक्टर-नमूना और विवरण मुफ्त मंगावें। विज्ञापन का सर्वोत्तम साधन। विज्ञापन दर कम है।
"धन्वन्तरि" विजयगढ़ (अलीगढ़) यू.पी

अजा

कविराज हरिकृष्ण सहगल, देहली

बकरी अग्निदेव का वाहन है। इस एक वाक्य से अजा दुग्ध के गुण स्पष्ट हो जाते हैं। यो० र० के अनुसार बकरी का दुग्ध ग्राही, दीपन, हलका, क्षय, अर्श, अतिसार रक्तदोष, भ्रम, ज्वर में हितकारक है। शास्त्रानुसार यक्ष्मा को हरने वाले, रक्त को रोकने वाले, रक्त पित्त को प्रशमन करने वाले द्रव्यों में अजाक्षीर सर्वोत्तम है। सब दुग्धों में से अधिक सात्म्य बकरी का दुग्ध है।

अमरीका के प्रसिद्ध भोजन विशेषज्ञ डा० डगलस थामस ने लिखा है कि बकरी के दूध में कलोरीन बहुत पाया जाता है। कलोरीन से अस्थियां दांत दृढ़ होते हैं। नेत्रशक्ति बढ़ती है। दूसरा आवश्यक पदार्थ मैग्नीशियम है यह भी अस्थि पोषक है। तीसरा पदार्थ लवण सोडियम है यह टाक्सिन्ज (विषों) को घुला कर मूत्र मार्ग द्वारा निकालता है।

बकरी का दूध गुणों में अडूसे के गुणों के समान तथा उससे बढ़कर है। अडूसा यक्ष्मा की चिकित्सा में लाभदायक है इसी प्रकार बकरी का दुग्ध भी। अजा दुग्ध पित्त रोगों को दूर करता है। धतूर बीज विष व अजवायन खुरासानी का विष अजा दुग्ध में शर्करा मिला कर पीने से दूर होता है। वहम और उन्माद रोगों में बकरी व भेड का दुग्ध चीनी डाल कर रोटी के साथ पीना लाभ करता है। बच्चों की मिर्गी में बकरी के ताजे दुग्ध में कपड़ा भिगो कर चुंदिया पर रखें। ज्वर वेग रोकने के लिये कांगड़ा प्रान्त में रिवाज है कि बच्चे के शिर के बाल काट कर, बकरी के दूध में फाहा भिगो कर, उस पर रखते हैं, और इस से लाभ होता है। ओष्ठ फटे हों, जिह्वा में शोथ हो व गुदा पाक हो बकरी के दुग्ध से सेंचना लाभ करता है। बाल मुखपाक में बच्चों के मुख और तालु पर बकरी के दुग्ध की धारायें डाली जाती हैं।

बकरी का दही

बकरी का दही ग्राही तीनों दोषों का हारक है। श्वास, कास, अर्श, क्षय, कृशता मिटाने वाला और दीपन है।

बकरी का मठा

हलका, चिकना, तीनों दोषों को, गुल्म अर्श, संग्रहणी, सूजन, पांडु रोग को नष्ट करने वाला है।

बकरी का घृत

दीपन, नेत्रों को हितकारी, बल वर्द्धक, कास, श्वास, क्षय में हितकारी है।

बकरी का मूत्र

कास, श्वास, शोथ, कामला, पान्डु रोग को नष्ट करता है, उष्ण कर के कान में डालने से कर्ण पीड़ा हरता है। नीम के मद के साथ उबाल कर नेत्र में डालने से धुन्द को दूर करता है।

अजा पंचघृत

बकरी का दूध, दही, मठा, मूत्र, लेंडी, प्रत्येक समभाग ले कर, उसका चौथा भाग

बकरी का घृत और घृत का चतुर्थांश यवक्षार डाल कर सब को पकाना चाहिए। सब जल जाने पर जो घृत शेष रहे उसे छान कर उपयोग में लावें। संहिताओं में यह अजा पंच घृत के नाम से यक्ष्मा के लिये आया है।

बकरी की मेंगनें

लेंडी के धूम्र से क्षय किटाणु नष्ट होते हैं। सफेद वर्ण बकरे के मूत्र व लेंडी के रस में सफेद सरसों को ७ दिन तर कर के तैल निकाल कर लगाने से त्वचा का वर्ण श्वेत होता है। मेंगनी जला कर खाने और लेप करने से अनेक प्रकार के विष नष्ट होते हैं।

बकरे का रक्त

बकरी का रक्त अमृत है। भस्में रक्त में मिल कर प्रभाव करती हैं अगर भस्म निर्माण काल में उन्हें बकरी रक्त की भावना लगा दी जाए तो वह रक्त में अधिक प्रभाव शाली हो जाती हैं। अभ्रक को १०० पुट बकरी रक्त भावना की इसी उद्देश्य से दी जाती हैं।

चिकित्सक बकरी के ताजे रक्त को ब्रान्डी में मिला कर यक्ष्मियों को पिला कर लाभ करते हैं। नैपाल के पर्वतों के लोग आज भी बकरे को काटते ही उसका रक्त किसी पात्र में जमा कर लेते हैं और केतली में घृत प्याज और लशुन डाल कर, इनके सुर्ख होने पर, रक्त डाल कर कलछी से हिलाते हैं और अन्य नमक मिर्च डाल कर भूनते हैं। इससे यह रक्त फुटकी फुटकी हो जाता है। और पका हुआ अण्डा दृष्टिगोचर होता है। यहाँ के लोग इसे स्वादिष्ट और बलवर्द्धक समझ कर प्रयोग करते हैं।

नपुंसक जीवन नामी शास्त्र में वाजीकरणार्थ पारद भस्म को बनाते हुए, बकरे के मांस में टिकिया रख कर अग्नि देने के लिए लिखा है, अन्य भस्मों की टिकियों को अजा मांस में रख कर पुट देने से उनकी शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। अग्नि से जलने पर बकरे का रक्त डालने से लाभ होता है।

बकरे की चर्बी

बकरे की चर्बी मलने से पीड़ा शान्त होती है। अतीव भूख चर्बी खाने से मिटती है। बकरे की चर्बी स्नेह के स्थान पर खाई जाती है।

बकरी का पित्ता

बराह, बकरी. भैंस, मच्छली, मोर यह पांच पित्त होते हैं। आयुर्वेद के रसों में इनकी भावनायें देने का उल्लेख है। बकरी के पित्ते का पानी तीन गुणा शहद के साथ आँख में लगाना नाखूने को दूर करता है तथा रतौंदी दूर होती है। चन्द्रा वाली अँगुली पर पित्ता की थैली चढ़ा देने से वह ठीक हो जाता है प्रतिदिन थैली को बदलते रहें।

बकरे का यकृत

यकृत में विटामिन बी और फैलिक ऐसिड पाये जाते हैं। ऐलोपैथिक हस्पतालों में बकरे का ताज़ह यकृत रस लीमू डाल कर दिया जाता है। यकृत को तवे पर रख कर दबावें, जो जल निकले उसे आँख में डालें रतौंदी दूर होगी।

स्याम देश में हजारों वर्षों से यकृत खिला कर यकृत ठीक करने का रिवाज चला आ रहा है। यह लिवर ऐक्सट्रैक्ट के इंजैक्शन बकरे के यकृत से ही बनाये जाते हैं बकरी के यकृत को धीमी आंच पर भून कर सुखा कर एक तोला में एक तोला तवाशीर मिला कर और गुलाब के अर्क में घोट कर

बच्चों को खिलाने से सूखा रोग दूर होता है। कलेजी खाने से भी रतौंदी नष्ट होती है।

बकरे के वृष्ण (Testes)

काम विज्ञान के प्रमाणिक ग्रंथ वात्सायन के कामसूत्र में तथा कुचुमार मुनि के कुचुमार मंत्र में जो बाजीकरण औषधियां लिखी हैं उनमें मेढ़ा व बकरे के अण्ड कोषों का खाना लिखा है। चक्रदत्त में भी ऐसे ही उल्लेख हैं।

बकरे के एक वृष्ण को लेकर और एक छटांक दूध में पीस कर देने से भी धातु पात और स्वप्न दोष में लाभ होता है।

बकरे के वृष्णों को कुचल कर दूध एक सेर, एक सेर जल मिला कर पकावें और पानी जल जाने पर दूध उतार कर छान लें और एक सेर तिलों में डाल कर भावना दें। इस प्रकार ७ भावनायें देकर, इन तिलों को प्रातः चबा कर दुग्ध पिया करें। उपरोक्त योग प्रचलित हैस्टीज इंजैक्शनों से कम प्रभावशाली नहीं हैं।

बकरे के वृक्क

स्याम में रुग्न वृक्क की चिकित्सा वृक्क भक्षण है। बिस्तर पर मूत्र निकल जाता हो तो गुर्दा खाने से आराम होता है। रावण कृत अर्क प्रकाश में हृदय के लिए हृदय का अर्क देना लिखा है। हकीम जालीनूस हृदय की धड़कनमें हृदय का खाना अच्छा बताते हैं।

बकरे की अस्थि

बकरे की अस्थि के कोयले का मंजन पायोरिया में लाभ करता है तथा अस्थि की भस्म, अभ्रक भस्म और सितोप्लादि चूर्ण के साथ व्यक्तियों को दी जाती है। इस से व्रणों के पौडर का भी काम लिया जा सकता है। अस्थि भस्म इस प्रकार बनायी जाती है कि प्रथम प्याले में रख कर अस्थि को भस्म करें और फिर तीन बार अजा मूत्र की भावनायें देते हुए तीन पुट देकर भस्म करें। मात्रा १/२ रत्तीसे १ मा० तक।

बकरी के बाल जला कर धुआं देने से हिस्टीरिया दूर होता है।

आयुर्वैदिक इंजेक्शन और वैद्य समाज

डा० ओंकारदत्त शर्मा, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद वाचस्पति, एम.एस.सी.

अपने वैद्यवर्ग में प्रचलित पद्धति का जोर-शोर से प्रचार देख कर मैं इंजेक्शन विज्ञान की प्राचीन और अर्वाचीन रिसर्च अपने चिकित्सक बन्धुओं के सामने रख रहा हूँ। इंगलैंड और अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों के अन्दर इन्जेक्शन प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ उसका इतिहास इस प्रकार से है। पेरेरा Pereira १८५४ ने अपनी पुस्तक "दी ऐलीमेन्टस आफ मैटीरिया मेडिका एन्ड थैराप्युटिक्स (The Elements of Materia Medica and Therapeutics) में औषधियों का शिरा में इन्जेक्शन देने का वर्णन किया है। तथा उसने सर क्रिस्टोफर वेर्न (१६४६) जिसने सर्वप्रथम शिराओं द्वारा शरीर में दवा पहुंचाने का तजुरबा किया था, उसका और बोयले Boyle आदि अन्य विद्वानों का भी वर्णन किया है, तथा अन्य लोगों की बड़ी २

शंकाओं का स्पष्ट उत्तर दे कर उनका भ्रम निवारण किया है,जैसे वायु का शिरा में प्रवेश करने से भय, और अधिक मात्रा में दवाओं को शिराओं में भरना आदि। गेरियर ने अपनी पुस्तक "हिस्ट्री आफ् फार्मेसी" में डा० सी० पी० परावज द्वारा हाइपो डरमिक सिरिंज का परिचय दिया और अफीम के स्थान पर मारफीन का प्रयोग करने का वर्णन सन् १८५५ में किया। चार्लस् हन्टर ने सन् १८६३ में प्रैक्टीकल रिमार्क्स ओन दा हाइपोडरमिकल ट्रीटमेंन्ट आफ डिसीज़ Practical Remarks on the Hypodermical Treatment of disease नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उसने सुंई द्वारा पिन्चर किये गये स्थान पर शोथ आ जाने तथा फोड़ा बन जाने की सम्भावना आदि प्रश्नों के प्रकाशित लेखों पर आरोप लगाते हुए उत्तर दिए। उस समय में प्राय: त्वचान्तर्गत तथा सब ही प्रकार के इंजेक्शनों से शोथ हो जाता था परन्तु फिर भी किसी वैज्ञानिक ने औषधियों में प्रयोग किए जाने वाले मिश्रण को कृमिरहित करने का कोई प्रयास नहीं किया।

सन् १८६४ ई० के ब्रिटिश फार्मोकोपिया में किसी भी इंजेक्शन का वर्णन तक नहीं मिलता इससे स्पष्द है कि उस समय में इंजेक्शनों को कोई महत्व नहीं दिया गया था। सन १८६७ ई० के फार्मोकोपिया में केवल एक मार्फीन (अफीम सत्व) के इंजेक्शन का वर्णन देखने को मिलता है (फार्मोकोपिया औषधिनिर्माण की एक पुस्तक का नाम है) सन् १८८५ के फार्मोकोपिया में एपो मार्फीन Apomorphine Hypodermica (Ergotin) अर्गोटिन ये इंजेक्शन और जोड़े गए, वहां के वैज्ञानिकों की ओर से कोई भी प्रयास उनको क्रमि रहित करने का तब तक भी नहीं किया गया, परन्तु बहुत ही ध्यान देने की और मनोरंजक बात यह है कि अर्गोटिन के इंजेक्शन में कर्पूर जल का उस दवा को अधिक दिन टिकाउ बनाने के लिए मिलाया जाना बहुत ही उपयुक्त और आश्चर्यजनक था क्योंकि अर्गोटिन एक वानस्पतिक ऐक्सट्रेक्ट है उसमें कर्पूर जल का मिश्रण मिल जाने से फुंगी आदि पड़नी रुक जाती हैं, इसलिए इससे यह सिद्ध होता है कि औषध को अधिक दिन तक न बिगड़ने देने के लिए ही कर्पूर जल का प्रयोग किया जाता है।

ये उक्त अनुसंधान और खोज इंजेक्शन के विषय में इंगलैण्ड में चल रही थी पर अमेरिका भी इन दिनों खामोश नहीं था उस के भी वैज्ञानिकों के हृदय में लगन थी अपने विज्ञान को उन्नत करने की सच्ची भावना थी। अत: उन्होंने ही औषधियों को क्रमिरहित करने का श्रेय इंगलैंड से पहिले प्राप्त किया। उसका इतिहास इस प्रकार है कि सन् १८८५ ई० के अमेरिकन फार्मोकोपिया ने अपने अध्याय में इंजेक्शनों को क्रमिरहित न करने की निन्दा करते हुए बताया है कि औषधियो का त्वचान्तर्गत इंज़ेक्शन खतरे से खाली नहीं है क्योंकि इंजेक्शन से उस स्थान पर फोड़ा, विसर्प, मवाद आदि हो जाते हैं।

सन् १८९८ ई० के अमेरिकन फार्मोकापिया में ऐपोमारफीन, कोकेन, अरगोटोक्सीन, मोरफीन इन चार इंजेक्शनों का अनुसंधान और कर लिया गया। इस वर्ष अर्थात सन् १८८९ में ऐम्पुलों और इंजेक्शनों के मिश्रण को क्रमिरहित करने का पूरा पूरा प्रयत्न किया गया। इन्होंने परिश्रुत जल को कुछ

मिनटों तक उबाल कर ठंडा किया जिससे उसमें स्थित जीवाणुओं का नाश हो जाये तथा मिश्रण को बहुत दिन तक न बिगड़ने दिया। ऐसा करने के लिए उसमें १.५ प्रतिशत फिनोल का प्रयोग किया गया इससे बहुत ही सफलता मिली और इंजेक्शन का पकना बन्द हो गया। कुछ दिन पूर्व लार्ड लिस्टर ने भी फिनोल का प्रयोग पूय बनने से रोकने और कृमिनाश करने के लिए सफलता पूर्वक किया था। ऐन्टी सेपटिक्स में सर्व प्रथम फिनोल (कार्बोलिक ऐसिड) का अन्वेषण लार्ड लिस्टर ने किया।

सन् १९१४ ई० के फार्मोकोपिया से विदित होता है कि इस वर्ष में इंजेक्शन के विषय में मामूली सी और भी उन्नति की गई। इसमें निर्देश दिया गया है कि मिश्रण तैयार करते समय परिश्रुत जल को फौरन उबाल कर ठंडा करके प्रयोग में लाना चाहिए इसके साथ साथ कुचला सत्व (स्ट्रॅकनीन) का इंजेक्शन और भी प्रयोग में लाया जाने लगा।

सन् १९१६ से १९३२ के बीच विभिन्न नेशनल फार्मोकोपियाओं ने कृमरहित करने के बहुत से प्रसंशनीय तरीके निकाले और तरह तरह के इंजेक्शनों का निर्माण किया। यह ही युग ऐलोपैथिक का युग कहा जा सकता है।

जिस विज्ञान पर ऐलोपैथिक डाक्टर गर्व करके वैद्य बन्धुओं को अपना नक्काल कहता है उसका सारा इतिहास तो आपकी आँखों के सामने आ ही चुका है कि कब से इंजेक्शन की एक चीज़ इनके मस्तिष्क में आई। अब आप अपने घर में देखिये। आपको भारतीय विद्वानों के इंजेक्शन सम्बन्धित ज्ञान के विषय में जान कर आश्चर्य होगा कि यहाँ इसका प्रयोग इनसे कई हज़ार वर्ष पूर्व हो चुका है, और ये कमियाँ जो इन्होंने सन् १९३२ तक दूर कीं आज से ३००० वर्ष पूर्व ही दूर की जा चुकी थीं। हमारे इंजेक्शन कभी पकते नहीं थे, और इनका प्रभाव शीघ्र ही होता था। मालिन्द प्रशन नामक एक बौद्ध धर्म की पुस्तक में भगवान बुद्ध ने जन्मान्ध शिशु को पुनः चक्षु प्रदान करने के लिये अपने शिष्यों को कुछ औषधियों का जो उसमें लिखी हैं शिरा में इंजेक्शन देने का आदेश दिया है। सार्गंधरसंहिता में लिखित सूचिका भरण रस का अभिप्राय इस प्रकार है।

संलग्नोयो भवेत्सूतस्तं, गृहीयाच्छनैः शनैः।
वायुस्पर्शो यथा न स्यात्तथा कूप्यां निवेशयेत्॥
यावत् सूच्या मुखे लग्नः कूप्यानिर्याति भेषजम्।
तावन्मात्रो रसो देयो मूर्च्छिते सन्निपातिनि.॥
क्षुरेण प्रच्छिते मूर्ध्नि तत्राँगुल्या च घर्षयेत्।
रक्त भेषज संपर्कान्मूर्च्छितोपि हि जीवति॥
शार्ङ्गधर संहिता अ० १२ द्वि० खं०

इस सूचिका द्वारा शरीर में प्रविष्ट किये जाने वाले रस में, पारद और विष द्वारा सम्मिश्रित औषध को सम्यक प्रकार रखने के लिये आदेश दिया है, कि औषध को शीशी में भरते समय वायु का स्पर्श नहीं होना चाहिये। जैसा कि आज कल शीशे के स्वच्छ निर्वात स्थान में किया जाता है। जिससे जीवाणु हवा के साथ जा कर औषध को दूषित न कर सकें। अब रही बात औषध को ले कर रक्त में प्रयोग करने की, इसके विषय में सूचिका के मुख पर जितनी औषध आ जाये उसी को रक्त में प्रवेष

करना लिखा है, उस समय में औषध एक विशेष प्रकार की सुई द्वारा शरीर के अन्दर दी जाती थी, आज इसका स्वरूप बदल गया है, और प्रति दिन नये नये ढंग की सीरिंज बन रही हैं। पहिले सीरिंज लोहे की होती थी इसके पश्चात् रिकार्ड की बनने लगी, अब तो साधारण शीशे की ही बनने लगी है। भारतीय आचार्यों का सिद्धांत स्वच्छता पूर्वक दवा को रख कर रक्त में प्रविष्ठ करना था, और आधुनिक सिद्धान्त भी यही है। पाश्चात्य देशों में पैरेरा ने सन् १८५४ ई० में औषध को रक्त में प्रविष्ठ कराने की बात सोची, जबकि हमारे यहां के आचार्यों ने उससे हज़ारों वर्षों पूर्व इस पद्धति का साधारणतया रोगियों पर प्रयोग निर्विघ्नता के साथ करना शुरू कर दिया था क्योंकि इस सूचिकाभरण रस में जो द्रव्य हैं वे स्वयं ही कृमिनाशक हैं इसलिए इंजेक्शन के बाद शोथ कोथ फोड़ा आदि होना असम्भव था हां कभी कभी ताप हो जाने पर मधुर द्रव्य, द्राक्षादि द्रव्यों का प्रयोग करने का उल्लेख अवश्य आता है। उक्त इतिहास से स्पष्ट है कि हम इस विज्ञान के जन्मदाता हैं परन्तु उसके पश्चात् केवल बौद्धकालीन आचार्य नागार्जुन १५०० ई० ने एक दो प्रकार की औषधियां प्रस्तुत कीं जो रक्त में ही इंजेक्शन रूप में देनी पड़ती थीं परन्तु उसके बाद गत सैंकड़ों वर्षों तक इंजेक्शन के विषय में कोई रिसर्च नहीं चल सका, कुछ ही दिन हुऐ कुछ लोगों ने तरह तरह की औषधियों को फूंक कर उनके क्षार तैयार करके उनको परिश्रुत जल में मिला कर ऐम्पुलों में भरा परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से ये बहुत ही हानिकारक और गुणरहित प्रमाणित हुऐ जैसा कि हमारे वैद्य समाज ने अनुभव किया। उन्होंने सौंठ, मिर्च, पीपल, गुड़, गोबर, गोखरु, सारी चीज़ों के कल्पित नाम रख कर इंजेक्शन बना डाले। उन्होंने इस प्रकार के सब द्रव्यों के क्षार बना कर उनको पानी में घोल दिया, किस द्रव्य का क्या प्रभाव है और वह शरीर के किस संस्थान पर क्यों पड़ता है। इसकी वहां क्या प्रतिक्रिया होती है आदि, इसका कोई साहित्य उन्होंने खोज कर तैयार नहीं किया। इससे तो यही प्रमाणित होता है कि ये इस प्रकार के आयुर्वेदिक इंजेक्शन ऐलोपैथिक इंजेक्शनों की नकल हैं। और अनेक तरह के अर्क विभिन्न नामों से ऐम्पुलों में बन्द कर दिये हैं। इस प्रकार के आचरण से डाक्टरों और आयुर्वेद को बहुत ही हानि पहुंची है। इसमें कोई भी शक नहीं है। कई बन्धुओं ने तो बिना ही फार्मेस्युटिकल्स का अध्ययन किये ही इंजेक्शन बनाने के तरीके और फारमूले दे दिये हैं, और इसकी लटर पटर किताबें भी लिख मारी हैं। दुःखः तो इस बात का है कि हमारे आयुर्वेद के समझने वाले कर्णधारों ने बिना सोचे समझे अपना प्रसंशात्मक मत भी लिख दिया है। हमारा मत है इस प्रकार की पुस्तकों के आधार पर चलना, और इंजेक्शन आदि बना कर लगाना खतरे से खाली नहीं है।

पाश्चात्य विद्वानों ने जो इंजेक्शनों पर खोज की है वह इस प्रकार है। उन्होंने पहले किसी औषध को रोग के लिए जांचा और निश्चित किया फिर तत्वमूल बनाया, और उसका इंजेक्शनों में प्रयोग किया, तत्वमूल द्वारा बने इंजेक्शन कभी भी नहीं बिगड़ सकते और उनका असर फौरन होता है।

औषध का तत्वमूल बनाते समय यह देखना होता है कि वह पेड़ की शाखाओं, पत्तों, पुष्पों, छाल, मूल में से कौन से अंग में से अधिक निकलता है, और वह जल, अलकोहल और ईथर में से कौनसे में घुलनशील है। वह जिसमें भी अधिक घुलता हो उसका उड़ा कर तत्वमूल निकाला जाता है, और इसी प्रकार कई बार साफ कर लिया जाता है। तत्वमूल तैयार हो जाने पर उसकी मात्रा निर्धारित करनी होती है, जो रिसर्च का मुख्य अंग है। पहिले तो उसकी विभिन्न मात्राओं को चूहों, बिल्लियों, बन्दरों, खरगोशों पर इंजेक्शनों द्वारा प्रयोग कर यह निश्चित कर लिया जाता है, कि इसकी कितनी मात्रा घातक है, इसलिए इनके विभिन्न अंगों पर क्या प्रभाव हुए आदि बातें नोट करके फिर रोगियों पर प्रयोग किया जाता है। और उसके परिणामों की सूची बना ली जाती है। इसी का नाम साहित्य है, जीव जन्तुओं के अंगों को काट कर देखने से बहुत सी बातों का पता लगता है। इंजेक्शन का पूरा अन्वेषण न हो पावे तब तक वह अधूरा है। उसका प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिए, तथा सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए। अन्त में मैं अपने वैद्य बन्धुओं से आग्रह करूँगा कि वे अपने विज्ञान की अगर उन्नति चाहते हैं, दूसरों की नकल करना पसन्द नहीं करते तो परिश्रम करें, और अपना शेष समय गपशप में नष्ट न करें। कार्य शुरु करें तथा दूसरे लोग जो कार्य कर रहे हैं उन्हें सहयोग दें, उनकी कटु आलोचना करें, दूसरी बात यह भी है कि चाहे पुराने विचारों वाले वैद्य कितना भी कहें, परन्तु आज का वैद्य आगे भी इंजेक्शन लगाना नहीं छोड़ेगा, क्योंकि इससे उसे आर्थिक लाभ है। इससे वह दूसरी पैथी के इंजेक्शन प्रयोग करके दूसरों को लाभ पहुंचायेगा, दूसरों को प्रोत्साहन देगा, और अपनी चीज के प्रचार में बाधक होगा, अतः यही सम्मति है कि आप अपने ही आयुर्वेदिक इंजेक्शनों का प्रयोग करें, तथा निर्माताओं को अपने सुझाव भेजें जिनसे उनमें सुधार हो इसी में वैद्य समाज का लाभ है।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी,
विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता,
सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण
माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक
आदि सब प्रकार के खनिज
तथा वनौषधि द्रव्य थोक
व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७६६

पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड़, बम्बई

दिल्ली का वैद्य समाज सचेत हो

वैद्य रामरतन पोपली, नई दिल्ली

आयुर्वेद भारतीय विज्ञान की एक अमूल्य निधि है। अङ्गरेज़ी शासन काल में इस विज्ञान को मृतप्राय बनाने के अनेकों उपाय हुए परन्तु इसकी उन्नति ही हुई और उसी काल में जनता तथा वैद्य समाज के उद्योग से अनेकों विद्यालय, अस्पताल तथा औषध निर्माण के कारखाने खुल गये। राष्ट्रीय आन्दोलन में सब प्रकार से भारतीय विज्ञान को प्रोत्साहन देने के बीज प्रचुर मात्रा में मौजूद थे। यही कारण था कि राष्ट्र के नेताओं ने आयुर्वेद की उन्नति के कार्य में पूरा सहयोग दिया। समस्त देश में इसके प्रमाण मौजूद हैं। विदेशी राज्य-काल में डाक्टर भाइयों को अनेक प्रकार की सुविधायें दी गईं ताकि विदेशी दवाइयों की बिक्री इस ४० करोड़ की जन संख्या वाले देश में भली प्रकार हो सके तथा गरीब देश का बहुत सा रुपया बाहर से दवाइयों और इलाज का सामान मंगवाने में खर्च हो। मैडीकल प्रमाण-पत्र (certificate) देने का रिवाज इसी जमाने में बढ़ा। यह सभी जानते हैं। उस विदेशी शासन काल में भारत की स्वास्थ्य उन्नति करने या टी. बी. जैसे रोगों को दूर करने के सम्बन्ध में सरकार की ओर से जितने कमीशन नियत किये गये, उन सब की रिपोर्ट में यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी कि उन योजनाओं का खर्च इतना भारी बतलाया गया कि अंग्रेज सरकार भारत की सब आय भी यदि केवल टी. बी. के दबाने में लगा देती तो भी रकम कम रहती थी। इसलिए वह सब रिपोर्ट व्यर्थ ही गईं अन्यथा सरकार की ओर से ऐलोपैथी को देश के कोने कोने में फैलाने और इसके लिए खर्च करने में कोई कमी नहीं रही। उस समय की सरकार ने सरकारी कर्मचारियों को सरकारी अस्पतालों में चिकित्सा कराने के लिए अनेकों सुविधायें दीं, परन्तु फिर भी जनता की प्रवृति उन अस्पतालों से दूर रहने ही की रही। प्रायः सरकारी कर्मचारी सरकारी अस्पतालों में नहीं जाते थे। उसी समय में दिल्ली नगर में जितने भी देशी चिकित्सालय जनता के अनुरोध से खोले गए वे सभी बहुत ही सफल हुए और आज तक चल रहे हैं। जन साधारण तो अंग्रेजों के काल में सरकारी अस्पतालों से दूर भागता था यद्यपि शल्य क्रिया के लिए रोगी वहां जाते थे। भारत में ऐसे लोगों की कमी न थी जो मरना स्वीकार करते थे, परन्तु उन्हें विदेशी दवाई पीना स्वीकार न था। सरकारी डाक्टरों को भी अपने वेतन तथा अन्य प्रकार की आय के साधनों से ही प्रायः दिलचस्पी थी, यही कारण था कि जनता अधिकतर प्राइवेट इलाज कराती थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् हमें आशा थी कि सरकार आयुर्वेद को अपनायेगी परन्तु ऐसा नहीं हुआ। चोपड़ा कमेटी की रिपोर्ट सरकार की ओर से १९४८ में छपवा दी गई परन्तु

उस कमेटी के सुझावों पर कोई वास्तविक ध्यान नहीं दिया गया। जब कभी सरकार ने आयुर्वेद को जनता की सेवा का अवसर दिया तभी सरकार को पता चल गया कि न केवल जनता आयुर्वेदिक अस्पतालों और चिकित्सालयों की मांग कर रही है प्रत्युत खुले मुकाबले में आयुर्वेद हमेशा सब से आगे है। दिल्ली में केन्द्रीय सरकार की ओर से चलाई गई कोआपरेटिव हैल्थ सैन्टर्ज स्कीम इसका उज्जवल प्रमाण है। सभी ऐलोपैथिक सैन्टर्ज दिल्ली के अलग अलग कोने में बुरी तरह असफल हुए। एक ही आयुर्वेदिक सैन्टर खोला गया जिसे अपूर्व सफलता मिली। सरकार ने लोक सभा में सभी ऐलोपैथिक सैंटर्ज की नितान्त असफलता को स्वीकार किया है। यह सब कुछ होते हुए भी आयुर्वेद के साथ दो प्रकार से बड़ा भारी अन्याय सरकार की ओर से हो रहा है और वह अन्याय केवल आयुर्वेद के साथ ही नहीं वरन् देश के साथ भी है।

(१) लेबर मिनिस्ट्री की ओर से चलाई गई हैल्थ इंशोरेन्स स्कीम में आयुर्वेद को कोई स्थान न देकर सरकार ने देश के मजदूरों पर जो हमेशा देशी चिकित्सा से आज तक लाभ उठाते रहे, बलपूर्वक विदेशी पद्धति लागू की है। उनके वेतन से रकम काटी जाती है और गरीब मजदूर और कारखानों का रुपया बेदर्दी से विदेशी औषधियों पर खर्च हो रहा है। भारत सरकार हमेशा अपनी छोटी छोटी दस्तकारियों की रक्षा करती रही है परन्तु इस मुकाबले में सरकार को न तो उन मजदूरों की आवाज की कोई परवाह है और न देश के हित की। मनुष्य की प्रकृति है कि जिस कार्य के लिए उसकी वेतन से बिना पूछे शासन या प्रभुत्व के बल पर रकम काट ली जावे तो वह व्यक्ति उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करता ही है। उसे लाभ हो या न हो। जिन लोगों के लिए यह सब कुछ किया गया वे बिल्कुल सन्तुष्ट नहीं, तो भी सरकार इसे चला रही है। बहुत से लोग बिना जरूरत दवाइयां लेकर जमा कर लेते हैं या अपना नाम रजिस्टर कराने के लिए ही दबाई लाते हैं परन्तु सेवन नहीं करते। इसका परिणाम यह होता है कि बिना जरूरत विदेशी दवाइयां गरीब देश के लिए मंगवाई जा रही हैं और जबरदस्ती गरीबों पर विदेशी प्रकार की यह स्कीमें ठोंसी जा रही हैं। यह कार्यक्रम सरकार की घोषित नीति के विरुद्ध है क्योंकि देश के गरीबों के पैसे से विदेशी दवाइयों का प्रचार किया जा रहा है।

(२) केन्द्रीय सरकार की ओर से Contributory Health Scheme भी इसी ओर सरकार का दूसरा कदम है। हजारों सरकारी कर्मचारियों ने इसका विरोध किया। अनेकों लोगों ने आज तक अपना कार्ड भर कर नहीं दिया परन्तु उसके वेतन से रकम काट ली जाती है। इस प्रकार विदेशी चिकित्सा पद्धति को जनता पर ठोंसा जा रहा है। सरकार की ओर से यह दो जबरदस्त प्रहार आयुर्वेद पर किये गये हैं। इसका उत्तर वैद्य समाज और विशेषतः दिल्ली की वैद्य समाज को देना होगा। केवल पत्र लिखने से यह स्थिति सुधरने वाली नहीं है। दिल्ली के वैद्य समाज की भारी जिम्मेदारी मैं इसलिए कहता हूँ क्योंकि दिल्ली ही देश की राजधानी है। सभी बड़े फैंसले यहां ही होते हैं। लोक सभा के सदस्य देश के

कोने कोने से यहां इकट्ठे होते हैं और उनसे दिल्ली में रहने वाले लोगों के लिए भेंट कर सकना आसान है। देश का सौभाग्य है कि इस समय भी हमारे देश के पूज्य राष्ट्रपति जी तथा मावलंकर जी जैसे अनेकों आयुर्वेद के समर्थक मौजूद हैं। लोक सभा के सदस्यों में भारी संख्या आयुर्वेद के भक्तों की मौजूद है। कमजोरी वैद्य समाज की हैं। राष्ट्रीय सरकार ऐसा क्यों करती है, यह समझना कठिन तो है परन्तु वैद्य समाज को इससे घबराने की जरुरत नहीं। पूज्य राष्ट्रपति श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने जो भाषण २-१०-५४ को 'बापू दिवस' के सम्बन्ध में राजघाट पर दिया उसमें स्पष्ट बतलाया कि "जब देश की अनेक समस्याओं के सम्बन्ध में हमें फसले करने पड़ते हैं उस समय सब से जरूरी बात जो हमें सामने रखनी पड़ती है वह यह होती है कि हमारे फैसले के सम्बन्ध में विदेशों की सम्मति क्या होगी और अन्य देश हमारे निर्णय को पसन्द करेंगे अथवा नहीं करेंगे। बाहर के देश वालों की निगाह में हमारी स्थिति क्या होगी।" उन्होंने इस मनोवृति की घोर निन्दा भी की। इससे स्पष्ट है कि हमारी सरकार आयुर्वेद को अपनाने में इसलिए डरती है क्योंकि उसे अमरीका और ब्रिटेन से शर्म आती है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है देश के सभी जिम्मेदार आदमी समझते हैं कि विदेशी चिकित्सा पद्धति को जबरदस्ती भारत के लोगों पर नहीं ठोंसना चाहिए परन्तु इस विषय को चलाये कौन ? दिल्ली का वैद्य समाज बहुत छोटी छोटी बातों में अपना समय नष्ट कर रहा है। इस स्वतन्त्रता के युग में यदि हमारी यह अवस्था रही और इस विषय को पूरी तरह न निपटा सके तो आयुर्वेद को गिराने की जिम्मेदारी हमारे कन्धों पर होगी।

अब प्रश्न यह है कि आयुर्वेद को अपना सम्मान पूर्वक स्थान कैसे प्राप्त हो और उपरोक्त प्रकार के अन्याय कैसे समाप्त हों। मेरा कहना है कि हम बहुत ही निचले स्तर पर दौड़ रहे हैं इसलिये असली चीजें हमारा ध्यान आकर्षित नहीं करतीं। संसार प्रत्येक विज्ञान में आगे बढ़ रहा है। भारत का प्राचीन विज्ञान भी तभी आगे बढ़ेगा जब उस विज्ञान के जानने वाले यह समझने लगेंगे कि इस साइन्स को संसार में ज्यादा स्पष्ट रूप से पेश करने तथा ज़्यादा से ज्यादा उपयोगी बनाने का कार्य, पैसा इकठ्ठा करने की अपेक्षा ज्यादा महत्व रखता है। वैद्य समाज के पास इस समय तक साधन सामग्री सब मौजूद हैं परन्तु यह जरूरी नहीं कि आगामी समय में भी ऐसी अवस्था चलती रहे। अतएव हमें अभी सचेत होने की जरूरत है। दिल्ली नगर के प्रमुख वैद्यों को इस समय मिलकर आयुर्वेद की मानमर्यादा बढ़ाने के लिए इरविन (Irwin) हस्पताल जैसे मुफ्त के अस्पताल जहां आँख, नाक, दान्त, मुख, पेट, छाती, दिल आदि के रोगियों की परीक्षा करने तथा चिकित्सा करने के लिये विशेषज्ञ मौजूद हों, खुलवाने की जरूरत है। रोगियों के रिकार्ड का प्रबन्ध इतना हो कि यह प्रमाणित किया जा सके कि आयुर्वेद अनेक ऐसे रोगों की सफल चिकित्सा करता है जिन्हें प्रायः असाध्य कहा जाता है। यह एक सचाई है कि अनेक ऐसे रोगियों की सफल चिकित्सा वैद्य समाज करता है जिन्हें सर्जीकल केस कहकर आपरेशन की सलाह डाक्टर

भाई देते हैं परन्तु आज हालात इस तेजी से बदल रहे हैं कि इन सब चीजों का पूरा प्रमाण होना चाहिये। इसी प्रकार औषध निर्माण सम्बन्धी कार्य तथा जड़ी बूटी के कार्य में भी भारी खोज की जरूरत है। दिल्ली तिबिया कालेज में कुछ कार्य आरम्भ कराये जा सकते हैं। दिल्ली के आयुर्वेदिक अस्पतालों में हजारों नहीं तो सैकड़ों Beds का प्रबन्ध तो होना ही चाहिए। जितनी नई खोज हों वह विज्ञान की उन्नति के लिए प्रकाशित करा देना चाहिए। आयुर्वेद के सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक विभाग में जो खोज होनी चाहिए, उसका कार्य तो शुरू हो जाना चाहिए। भारत की जनता इन कामों में वैद्य समाज की बहुत सेवा कर सकती है। इस प्रकार के कार्यों से जब जनता की मांग आयुर्वेद को अपनाने के सम्बन्ध में तेज हो जावे तो जन-राज्य में ऐसी मांग को कोई ठुकरा नहीं सकता। यह मैं इसलिए कहता हूँ कि मेरी सरकार कहती है कि जनता आयुर्वेद के लिए मांग नहीं करती।

जहां तक ऊपर लिखे अन्याय का सरकार से सम्बन्ध है उसके लिए शीघ्र ही एक छोटी सी कमेटी दिल्ली के वैद्य समाज की बनाकर इसी बजट सेशन में अपनी आवाज ज़ोर से रखनी चाहिए।

सरकार पर पूरा दबाव डाला जावे कि वह आयुर्वेद विरोधी नीति को बदल देवे। यह सब कार्य हमें भारतीय संस्कृति की मर्यादा अनुसार करने चाहिए क्योंकि उस नीति में स्वार्थ, मान या बनावट का नाम नहीं है। हमें थोड़ा सा कार्य बिना किसी दिखलावे के और बिना बहुत रकम खर्च करके हमारे सामने उद्देश्य की पूर्ति के लिए केवल मात्र देश की सच्ची उन्नति की भावना से करना है। आज हम बाहरी रंग में रंगीन होकर केवल साधारण पद के झगड़े में ही वास्तविकता को नष्ट कर बैठते हैं। यह वर्तमान चुनाव क्या है? स्वयं ही उम्मीदवार खड़े हो जाते हैं। प्रत्येक आदमी यही कहता है कि वह सेवा के लिये खड़ा हुआ है। चुने जाने के पश्चात् कितने आदमी सेवा करते हैं, यह बातें सभी लोग जानते हैं। हमारे आयुर्वेद समाज़ के चुनाव के तरीकों में भी पाश्चात्य देशों की नक़ल करने की बजाय अपनी संस्कृति की छाप होनी चाहिए। इस भयानक अवस्था में मेरी सम्मति है कि हमें नये पाश्चात्य ढंग के तरीकों को जहां तक हो सके छोड़कर दिल्ली में किसी आयुर्वेद के पक्के सेवक को कुछ समय के लिए गुरु अथवा प्रधान मान कर जहां एक ओर अपनी अन्दरुनी कमजोरियों को दूर करने तथा जनता के लिये आयुर्वेदीय ढंग के प्रबन्ध करने चाहिये वहाँ दूसरी ओर सरकार पर दबाव डालकर विदेशी चिकित्सा प्रणाली की सरकारी सहायता बन्द कराकर आयुर्वेद को जनता के स्वास्थ्य सुधारने तथा चिकित्सा देने में उचित स्थान दिलाना चाहिए। आज दिल्ली का वैद्य समाज भारी परीक्षा से गुज़र रहा है अतएव हमें प्रायश्चित अग्नि को तेज करके त्याग, तपस्या, तथा सङ्घटन से अपनी समस्याओं को सुलझाना है। अनेकों समस्यायें हैं जिन्हें मैं जानता हूँ। वैद्य समाज के मान की हानि हो रही है। हमें अपनी सेवा अर्पण करनी है। इस ओर यदि वैद्य समाज ने कुछ ध्यान दिया तो मैं अपने विचार फिर दूसरे लेख में प्रगट करूँगा।

पाताल गरुडी विषयक शंकाएं

सम्मेलन पत्रिका के फरवरी के अँक में श्री अन्तुभाई वैद्य, बम्बई का "रोल आफ कोरलाकार्पस एपिजीयस (पाताल गरुडी) आन मलेरियल परासाईट्स पर जो लेख प्रकाशित हुआ है, उसके सम्बन्ध में हमारी कुछ शंकायें हैं। अतः श्री अंतुभाई वैद्य, बम्बई से प्रार्थना है कि इस विषय का स्पष्टीकरण कर वैद्य समाज को अनुगृहीत करें।

शंकायें

१—इस लेख के आरम्भ में जो संस्कृत पर्याय इस औषधि के दिए हैं, इससे तीन द्रव्य (वनस्पतियां) दृष्टिगोचर होते हैं। (१) पातालगरुडी याने मेनिस्परमेसी आर्डर की काक्युलस व्हिलोसस (२) कटुनाही याने कुकरबिटेसी आर्डर की कोरेला कार्पस एपिजीयस और (३) कडवी नाही (गुजराती), मामज्जक नागजिव्हा (सँस्कृत) याने जेनशियनेसी आर्डर की एनिकोस्टेमा लिटोरेल। ये तीनों के पर्याय सब एकत्रित कर दिए हैं—वह कैसे ?

२—इन तीन में से कौनसी वनस्पति में व्रायोनिन सदृश आशुकार्यकारी सत्व पाया जाता है ? इसका रासायनिक विश्लेषण कहाँ हुआ और किसने किया है ?

३—इन तीन वनस्पतियों में से कौनसी वनस्पति में मलेरिया के कीटाणु पर निश्चयात्मक प्रभाव मालूम होता है ? क्योंकि ग्रंथों में तो तीन ही वनस्पतियां ज्वर पर उपयुक्त होती हैं, ऐसा लिखा है। और प्रायः वैद्य लोग मलेरिया में तो नई कडवी नाही याने मामेजवा जेनशियनेसी आर्डर की एनिकोस्टेमा लिटोरेल का उपयोग करते देखते हैं। और वह अच्छी फायदेमन्द भी है। लेकिन ये दूसरे दोनों का मलेरिया में उपयोग प्रायः वैद्यों में नहीं देखा जाता। तीनों के पर्याय एकत्रित करके लिखने से यह भ्रम उत्पन्न होता है।

४—इस वनस्पति के विषय में आतुरों पर प्रयोग करके कोई शास्त्रीय परीक्षण किसी ने किया है और मलेरिया के कीटाणु पर इसका विनाशक परिणाम आधुनिक विज्ञान की पद्धति से किसी ने देखा है ? अगर ऐसे कोई प्रयोग लेखक महाशय ने स्वयं किए होंगे तो वह यथावत् आतुरोपचार विधि विवरण (Clinical Reports) सहित वैद्य समाज के ज्ञानार्थ सम्मेलन पत्रिका में प्रसिद्ध करें। यही प्रार्थना।

यू० पी० आयुर्वेदिक रिसर्च यूनिट,
मेडिकल कालेज,
बड़ौदा

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(संस्कृत विभागः)

सम्पादकीय

प्रबन्ध लेखक विद्वद्भ्यः सादरनिवेदनम्

यथा विलिख्यमानस्य विषयस्य सौष्ठवे भवद्भिरवधीयते तथैव लिप्याः सौष्ठवेऽपि सर्वथा संपूर्णमवधानमवश्यं कर्त्तव्यमेव । तथा सति मुद्रणाबद्धानि भूयिष्ठं ह्रसेयुः । अन्यथा भवतां प्रबन्धार्थसौन्दर्यक्षपणानि मुद्रणाबद्धानि भूयांसि संभवेयुः ।

लेखनाय विमलश्वेतपत्रमुपयुज्यताम् । पत्रस्यैकस्मिन् पृष्ठे विलिख्यतां न पृष्ठद्वयेऽपि । पत्रपार्श्वगतयोरुपान्तयोः स्थलं मुच्यताम् । पंक्तिद्वयसंकीर्णता परिह्रियताम् । उत्तराधरपंक्त्योर्मध्यान्तरालं पर्याप्तं कल्प्यताम् । पठनपद्धतिमात्रासूचका अङ्का निवेश्यन्ताम्. यथा पठितॄणां वाक्यान्वयबोधो झटिति स्फुरेत् । अक्षराणि विलिख्यन्तां असंशयं स्पष्टं सुपठं च ।

प्रमाणतया उदाह्रियमाणानां वाक्यानां तत्तद्ग्रन्थगतस्थानश्लोकादिसंख्या उद्धृतवाक्यान्ते स्पष्टं सूचनीया यथा तत्तद्वाक्यं मूलग्रन्थेषु सुग्रहं स्याद् दिदृक्षूणाम् ।

तत्वार्थाविष्कृतये परमतखण्डनमण्डनादिकमभिकामनीयमेव । परं तत्र खण्डने नोद्वेजकं निन्दकं वा वचः कदाऽपि प्रयोज्यम् । मण्डने च नातिशयोक्तिरुत्प्रेक्षालंकृतिर्वा अतितरामादरणीया ।

स्मर्त्तव्यमिदं यद् दक्षिणापथे प्रायशः पत्रवाहानां हिन्दीलिपिज्ञानाभावान् निम्ननिर्दिष्टरीत्या मत्स्थानसंकेतं आंग्ललिप्यां विलिख्य संस्कृतनिबन्धाः प्रेरणीया इति ।

स्थलाभावात् कारणान्तराद्वा पत्रिकायामप्रकाशितानां प्रबन्धानां प्रतिग्रहणाय पर्याप्तं मुद्रापत्रं (Stamps) लेखकैः स्वयं प्रेषणीयं प्रबन्धप्राप्तिदिनात् मासत्रयादर्वागेव ।

वा. बा. न. शास्त्री

V. B. Nataraja Shastri,
Ayurvedacharya,
Atreya Ayurvedshala,
Tennur Rood, Tiruchirapalli. (Madras State)

आयुर्वेदशिक्षापद्धत्यां श्रीयादवाचार्यमहोदयानामुपदेशः, अस्मत् कर्तव्यं च

आयुर्वेदस्य तच्छिक्षापद्धतेश्च प्रतिसंस्करणावश्यकतां सरणिं च सम्यङ् निरूप्य श्रीयादवाचार्यैः 'आयुर्वेद की वर्त्तमान शिक्षापद्धति ' इति शीर्षकः कश्चन लेखकः १९५५ मार्चमासीये सचित्रायुर्वेदपत्रे प्रकाशितो भवति । बीकानेरनगरे संपन्ने श्रीयादवाचार्य हीरक-जयन्तीमहोत्सवे च श्रीयादवाचार्यैः स्वभाषणावसरे विषयोऽयं व्याख्यातो यस्य संक्षेपः मार्चमासीयसम्मेलनपत्रिकायां प्रकाशितः । उभयमिदं सावधानं पठितं स्याद् भावुकैः ।

अध्ययनाध्यापनं विना कथं शास्त्र प्रचारः ? तच्च कथं सर्वाङ्गपरिपूर्णपर्याप्तिग्रन्थान् विना ? अतो नव्यपाठ्यक्रमोपयोगि नवीनग्रन्थनिर्माणमेव आयुर्वेदसंरक्षणसेवायां सर्वादिमकार्यमिति श्रीयादवाचार्यनिर्देशे संशयलवोऽपि कस्य वा संभवार्हः ?

केनापि कारणजातेन सांप्रतं शिथिलित प्रधानमूलस्य आयुर्वेदकल्पद्रुमस्य भुवि पुनः प्रतिष्ठामभिलषद्भिः प्रेक्षावद्भिभारतीयवैद्यैरिदं नवीनग्रन्थरचनाकार्यमनुपदमेवानुष्ठातव्यम् । इतोऽपि विलंबे, यथावद्ग्रन्थरचना सर्वथा अशक्यसंपादा संभवेत्, यदि इदानीं विरल विरलं विद्यमानानां यथावद्ग्रन्थरचनायोग्यतासंपन्नानां कतिपय वृद्धवैद्यानामत्यन्तशक्तिह्राससंभवात् प्रागेव न नूतनग्रन्थनिर्माणं पूर्यते ।

नेदं मनागाशंकनीयं यत् नव्यपाश्चात्यवैद्यकादेवहि आयुर्वेदस्याभिपूरणं कर्त्तव्यं भवति । तदेतत् तद्वैद्यककोविदैरेव खलु सुसाधम् । तेषां च संख्या अन्वहमभिवर्धिष्णुः। अलमायुर्वेदवृद्धवैद्यानां शक्तिलोपभीत्येति, आयुर्वेदशास्त्रस्य यथावत् प्रतिसंस्करणपूर्वकं नवनवग्रन्थनिर्माणं पाश्चात्यवैद्यकवाचस्पतीनां सहस्रेणापि कर्त्तुमशक्यत्वात्, नानामूलदर्शनेषु प्रकृष्टपाण्डित्येन सह आयुर्वेददर्शननिष्णातैः परीक्षकैरायुर्वेदपण्डितैरेव कर्त्तुं शक्यत्वात् ।

न आयुर्वेदशास्त्रे नूतनग्रन्थरचना नाम आलोपाथिकवैद्यकस्य आंग्लभाषानिबद्धस्य भारतीयभाषासु संस्कृतभाषायामेव वा अनुवादेन सिद्ध्यति । तादृशानुवादप्रवाहेणापि नाणुमात्रमप्यायुर्वेदस्य प्रयोजनम् । आलोपाथिकवैद्यकस्यैवहि उत्तरोत्तरं प्रचारमार्गः सः।

आयुर्वेदनूतनग्रन्थनिर्माणावसरे परकीय वैद्यकोक्तविषयाणां स्वीकारस्तावत् आयुर्वेददर्शनप्रमाणैः परीक्षणसमन्वयपूर्वकं आयुर्वेदपरिभाषया कर्त्तव्य इति श्रीयादवाचार्यैर्विशिष्य निर्दिष्टो विषयः सर्वैरवधेयः ।

इदानीमायुर्वेदे कर्त्तव्याणां क्रमानुपूर्वीमपरिचिन्त्यैव प्रजावैद्याः, शासकाराजकीयाश्च यत्किञ्चिदाचरन्ति तत्सर्वं व्यतिक्रमदुष्टत्वाद् विफलमेवास्त इति वक्तुं वयं विषीदामः । नि०भा०आ० महासम्मेलनान्तर्गतं विद्यापीठमायुर्वेदविश्वविद्यालयप्रतिष्ठापनाय सर्वशक्त्या प्रयतते । प्रधानराज्यशासकानामनुग्रहलेशात् सौराष्ट्रेषु जामनगरे आयुर्वेदगवेषणा कापि चरतीति श्रूयते । प्रादेशिकराज्येषु च कानिचन स्वप्रमाणानुरोधं गवेषणास्थानं प्रकल्पितवन्ति । विश्वविद्यालयप्रतिष्ठापनस्य गवेषणानांचावश्यकतायां को नु मतिमान् विप्रतिपद्येत ? परं सामयिकपाठनोपयोगि-

ग्रंथनिर्माणोपेक्षं विश्वविद्यालयगवेषणादिकर्मसु प्रवृत्तिस्तावत् अनूपनीतस्वाश्वमेधे प्रवृत्तिरिव मोघैव ।

अथ समर्थ्यते, पाठ्यग्रंथप्रतिसंस्करणार्थमेवहि आयुर्वेदविश्वविद्यालस्य गवेषणाकेन्द्राणां च स्थापना प्रथमत आवश्यकी इति । दृष्टफलानां आयुर्वेदादिदर्शनानां विषय प्रतिसंस्करणस्य गवेषणाया वा कियता कल्पकालेन क्व वा पर्यवस्थानं संभाव्यते ? अतः अद्य यावन्तो ग्रंथाः विज्ञानविशेषाश्च प्रकीर्णतया उपलभ्यन्ते तान् सर्वान् सम्यग् विभज्य, विषयानुसारं ग्रन्थान् विरच्य, सांप्रतं सद्यः अध्ययनाध्यापनोपयोगिता संपाद्यासर्वत्र । अतः परं प्रतिविषयं यथाज्ञानमभिवर्धनं सर्वदैव कर्त्तव्यम् । 'अनन्तपार आयुर्वेदः' 'शश्वदस्मिन्नभियोगं गच्छेत्' इति महर्ष्युपदेशः एतदर्थक एव खलु ।

अतो वयमिदानीमुचिततमं नि० भा० आयुर्वेदमहासम्मेलनीयविद्यापीठस्य एतत् कर्त्तव्यं मन्यामहे यत्—विश्वविद्यालयस्थापनं दीर्घकालिककार्यक्रमे संयोजनीयम् । विषयानुसारिपाठ्यग्रन्थनिर्माणं सद्यस्कालिककार्यक्रमे सन्निवेश्य तदनुष्ठातव्यं ,प्राप्याः सर्वाः शक्तिः पुञ्जीकृत्य तदर्थम् ।

श्रीमन्तो यादवशर्ममहाभागाः न कर्त्तव्य कथनमात्रोपरमपरा अपितु कर्त्तव्यं भूरि कृत्वैव किञ्चित् कथनशीला इति, तैः कृता विद्यार्थिनां विदुषां गवेषकानां च परमोपकारिणो नूतना ग्रन्थाः प्रमाणयन्ति । परमकुशलेनापि नैकाकिना सर्वे अद्यावश्यकाग्रन्थाः सद्यः कर्त्तुं शक्यन्ते । अतः पुराणग्रंथसंकलनप्रकाशने, नूतनग्रंथविरचने च परिनिष्ठितप्रभावशालिनां श्रीयादवशर्मणां अन्येषां च तादृशां महाविदुषां समवायं संपाद्य, ग्रन्थानामाशुरचनाप्रकाशाय पर्याप्तं साधनजातं च तेषां विदुषां वशे समर्प्यंते चेत् तर्हि पाठ्यग्रंथदुर्भिक्षयोगोझटिति दूरीकृतः स्यात् । सकलभारते एकरूपपाठ्यक्रमानुष्ठानम्, स्नातकोत्तरशिक्षणं, विश्वविद्यालय स्थापनं, गवेषणं सर्वशाखिकं, सर्वं क्रमेण सुकरं स्यात् । अन्यथा अकृतमूलशिलानिवेशं हर्म्यरचनायितं स्यादति ।

वा० बा० न०

मलेरिया के लिये कुनीन की जगह

एल्स्टो पिल्स

(सप्तपर्णवटी)

यह गोलियां सप्तपर्ण, कालमेघ, कुटकी, कुचलात्वक आदि के घनसत्वों से तैयार की हैं । सप्तपर्ण (Alstonia Scholaris) के लिये डीमक वोल्युम २ पृ. ३८७-८८ पर लिखा है कि इसमें कुनीन जैसा डीटोन नामक सत्व है जो मलेरिया, शीतज्वर, विषमज्वर, आदि में अत्यन्त उपयोगी है। पब्लिक होस्पीटल और खानगी दवाखाने में डाक्टरों ने इस्तेमाल करके देखा है कि परदेश से आने वाले कुनीन सल्फ से यह दवा हजार गुनी अच्छी है । कालमेघ, कुटकी आदि भी बुखार में अत्यन्त लाभदायक हैं । ६ से १२ गोली देने से बुखार उतर जाता है । कुनीन की तरह बहिरापन आदि नहीं होता ।

कीमत ४२ गोली ०॥= तो० १० (गोली ४५० के लगभग) रु० ३-८-०

ऊंझा फार्मेसी लि०,

ऊंझा (गुजरात), जबलपुर (मध्य प्रदेश)

जिज्ञासाधिकरणम्

[पत्रिकायामिहेदानीं नूतनंजिज्ञासाधिकरणं प्रक्रम्यते । अत्र आयुर्वेदाखिलाङ्गेषु शास्त्रार्थकर्मभ्यासद्रव्यविनिश्चयादिषु जिज्ञासुभिः प्रेर्यमाणाः जिज्ञासितविषयाः प्रथमं प्रकाश्येरन् । ततोऽनन्तरमासेषु जिज्ञासाशमनानि उत्तराणि प्रकाश्येरन् ।

जिज्ञासूनां उत्तरदायिनां च विदुषां नामानि न पत्रिकायां प्रायः प्रकाश्येरन् । जिज्ञासुभिरुत्तरदायिभिश्चावश्यं स्वनामधामसंकेतः पूर्णतया स्वपत्रेषु देय एव ॥

जिज्ञासाप्रश्नानां क्रमाङ्कं कल्पयित्वा प्रकाशितपृष्ठाङ्कं च सूचयित्वा उत्तराणि मुद्राप्येरन् । उत्तरपठनात्पूर्वं प्रश्न पुनरवलोकनीयः पाठकैः ॥

इदानीं प्राप्तौ द्वौ जिज्ञासाविषयाविह प्रकाशितौ स्तः । अनयोरुत्तरं दातुं पण्डिताः पाठकमहोदयाः सदया भवन्तु । एवं जिज्ञासवो भूयोभूयः प्रश्नान् प्रेषयन्तु । एकस्य विदुषः उत्तरदानेन विरमितव्यमिति न नियमः । एक प्रश्नमधिकृत्यानेकेषामुत्तराणि अतीवोपकारकाणि स्युः संशयच्छेदे । अतः सकृदुत्तरप्रकाशनात्परमपि भूयस्तदधिकारे लेखनं प्रमोदवर्धनमेव ॥]

(वा. वा. न.)

जिज्ञासा—१

श्रीयादवाचार्यं विरचितद्रव्यगुणविज्ञाने उत्तरार्धे द्वितीयखण्डे ३१७ तमे पृष्ठे गोरोचनाया गुणवर्णनं पठितवतो मम महान् हर्षः सद्यः समजनि, भूयो जिज्ञासा च ।

तत्र यूनानीमतेन गोरोचनाया आभ्यन्तरः प्रयोग कथितः—सपादमाषकद्वयमिताया गोरोचनायाः शतपत्र्यर्कालोडितायाः प्रतिदिनं अन्तः पानात् अपस्माररोगस्य शान्तिर्भवति, अस्याः सेवनात् परं अपस्मारवेगो न पुनर्भवेदिति ।

मम हर्षोदयेहेतु :—दारुणो दुःसाधः अपस्मार व्याधिःयस्य चिकित्सायै आयुर्वेदाकरे बहुप्रकारा उपायाः सुदीर्घकालसेव्याः पथ्यनियमैः सहवर्णिताः यदिगोरोचनाया एकस्याः सकृत्प्रयोगः अपस्मारिणं पुनर्वेगाक्रान्त्याः पालायति तर्हि कियान् गुणः ? अगणनीयः । लघुतमा सद्यःफला चिकित्सा ।

अतोऽस्याः गोरोचनायाः अपस्मारिणो प्रयोगप्रकारे एवं मे बुभुत्सा :—मात्रा सपादमाषद्वयमित्युक्ता । इयं च प्रायः १८ गुञ्जात्मिका (36 grains) आणकत्रयप्रमिता भवति । प्रतिदिनं एका पूर्णा मात्रा सकृदेव देया ? उत एकस्मिन् दिने इयं मात्रा त्रिचतुर्धा विभज्य देया ? यदि सकृत् प्रयोगेण अपस्मारवेगस्यापुनर्भवस्तर्हि कियद्दिनकालं अविच्छिन्नतया गोरोचना देया ? परम तीक्ष्णोष्णवीर्याया गोरोचनाया इयती आणकत्रयपर्यन्ता मात्रा प्रतिदिनं भुज्यमाना मनुष्यस्य अनुपद्रवावहा स्याद्वा ? पथ्यनियमाः कीदृशाः ? इत्यादि बहुधा ।

सम्मेलनपत्रिकायाः पाठकमहोदयेषु यदि केचिद्भिषजः गोरोचनां अपस्मारिणे प्रयुक्तवन्तः स्युस्तर्हि ते परम कृपया स्वानुभूतान् गोरोचनापस्मारचिकित्साविशेषान् यथानुभूतं पत्रिकायां प्रकाशयन्तु । अनेन महान्

वैद्यलोकोपकारः स्यादिति प्रार्थये सर्वान् प्रयोक्तृन् प्रकाशयितुम् ।

जिज्ञासा—२

अलोपथिकवैद्यके Albumin इति प्रसिद्धस्य शोणितस्थतन्वछाप्यभागस्यलसीका इति, Albuminuria इति रोगस्य च लसीकामेह इति श्रीगणनाथसेनकृता संज्ञा । अत्र स्यात् केषांचन मतभेदः । न मे तत्रेदानीं जिज्ञासा । अपितु तच्चिकित्सायामेव ।।

इहेदानीं मया श्रीगणनाथसेनकृतपरिभाषामनुसृत्य लिख्यते व्यवहारसौकर्याय ।।

दृश्यतेऽयं लसीकामेहः स्वतन्त्रपरतन्त्ररूपेण । विविधज्वरसन्धिवातादि रोगेषु संभवन् लसीकामेहोपद्रवः स्वयं शाम्यति प्रधानव्याधिप्रशमे । स्वतन्त्रो लसीकामेहः क्वचित् वहुमूत्रः शोथरहितः, क्वचिदल्पमूत्रो मुखपादादिशोथसहितः । क्वचित् रक्तसंहत्याः (Blood Pressure) आधिक्योपद्रुतश्च ।

एतस्य स्वतन्त्रलसीकामेहरोगस्य आयुर्वेदानुसारिणी सिद्धफला चिकित्सा का ? इत्येव मम बुभुत्सा ।।

वहुवर्षकालात् बहुरोगिचिकित्साभ्यासात् परमपि अस्य व्याधेः सिद्धफलः साधनोपायः न ज्ञातो मम ।

शोथस्य प्रधानव्याधेः चिकित्सया शोथे शान्ते बहुत्र स्वल्पमूत्रो लसीकामेहः शाम्यति प्रथमम् । अपितु कतिपयकालात्परं शोथाभावेऽपि पुनर्दृश्यते लसीकामेहानुबन्धः ।।

एतादृशे, शोथरहिते बहुमूत्रे स्वतन्त्रे लसीकामेहे च सिद्धिर्दुर्लभा भवति । अतिमात्ररक्तसंहतिसहिते लसीकामेहे च रक्तसंहत्यां सर्पगन्धागुडूच्यादिप्रयोगेण शान्तायामपि लसीकामेहानुवृत्तिर्बहुत्रोपलभ्यते । इत्थ लसीकामेहो भूयसा आतुरमिव भिषजमपि क्लेशयति ।

यदि महान्तो भिषजः स्वानुभूतसिद्धफलां लसीकामेहचिकित्सां पत्रिकायां प्रकाशयेयुस्तर्हि महाननुग्रहः स्यात् आतुराणां मादृशां भिषजामपि । शिलाजतुनः, गुग्गुलोः, आरोग्यवर्धनरसस्य, श्वेतपर्पट्याः,पुनर्नवायाश्च व्यष्टिसमष्टितः अनुस्यूतप्रयोगाः सर्वेनैव साधयन्ति । अलवणपथ्याशनमपि स्वतन्त्रलसीकामेहे तात्कालिक शमनं भवति । लसीकामेहे अलवणपथ्यस्य गुणाकरत्वे का युक्तिरिति ज्ञेयैव । तथापि तत्समयान्तरे भवतु । सांप्रतं लसीकामेहस्य सिद्धफलां क्रियां कृपया सम्मेलनपत्रिकामुखेन उपदिशन्तु महान्त आयुर्वेदाचार्या लोकानुग्रहायेति प्रार्थये ।।

—

मलेरिया शत्रु—सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है । मूल्य आधा पौंड ६) रु० **सफेद कोढ़**-की पेटेन्ट दवा—मूल्य ५) रुपया दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर तथा हकीम धन-मान कमा रहे हैं। विवरण पत्र मुफ्त मंगाकर देखें।

वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० आकोला
(वरार) म० प्र०

प्रायश्चित्यं प्रायश्चित्तं वा ?

श्री गिरिजादत्त पाठक वैद्य, शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य

[इह खल्वायुर्वेद प्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः, स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणं च। अनयोः कर्मणोरभ्यासातिशयेन प्रागल्भ्याधिगमः। अतः शास्त्रापेक्षया कर्माभ्यासः श्रद्धेयः इति चिन्तयतो निन्दति सुश्रुताचार्यः—"यस्तु कर्मसु निष्णातो धार्ष्ट्याच्छास्त्रबहिष्कृतः। स सत्सु पूजां नाप्नोति वधं चार्हति राजतः" ।। (सु.सू. अ. ३ श्लो ४६) इति। उपदिशति च कर्मनैपुणे इव अर्थविज्ञानप्रागल्भ्ये प्रयतितव्यमिति। वाकसौष्ठवेऽर्थविज्ञाने प्रागल्भ्ये कर्मनैपुणे। तदभ्यासे च सिद्धौ च यतेताध्ययनान्तगः ।। (सु. सू. अ. ३. श्लो ५६) अत्र कर्मनैपुणात् पूर्वं अर्थविज्ञानमाचार्येणोक्तमवधेयम्। अनुपदपादश्लोकमर्थतः अप्रभाषितं खरचन्दनसमं परिहसति च प्रभाषणीयाध्याये।

शास्त्रार्थप्रभाषण-निपुणोऽयं निबन्धा श्रीसुश्रुताचार्योपदिष्टरीत्या आयुर्वेदे शास्त्रार्थप्रभाषणपद्धतिं साधु प्रदर्शयति। अद्यत्वे शास्त्राणामापातस्थूलार्थावगाहस्याप्यक्षमे आयुर्वेदाध्ययन प्रकारे बहुत्र प्रचलति सति एतादृशा विचारनिबन्धाः परमोपकारकाः। अतोऽस्माद् विदुषः भूयः प्रबन्धान् पाठकाः सर्वदा प्रतीक्षेरन्।]

(वा. बा. न.)

चिकित्सितं व्याधिहरं
पथ्यं साधनमौषधम् ।।
प्रायश्चित्यं प्रशमनं
प्रकृतिस्थापनं हितम् ।।१।।
विद्याद्भेषजनामानि...........
च० चि० स्था० १ अ०

नन्वत्रभेषजपर्य्यायकथनप्रसंगे प्रायश्चित्यं प्रायश्चित्तमिति पाठभेदोऽवलोकनाध्वनि समवतीर्यते।तत्र पाठद्वयस्य समर्थकौ द्वावपि भाष्यकर्तारौ स्वाभिप्रायप्रकाशने यां युक्तिमुपन्यस्यतः तामनुपदमालोचयामो वयं स्वतर्कबलव्यायामेन। तत्र प्रथमस्य भाष्यकर्तुः कविराजश्रीगंगाधरस्य प्रायश्चित्य समर्थकं भाष्यं साभिप्रायं समवतार्यते समीक्षणाय समीक्षकाणाम्पुरः।

"प्रायश्चित्यं दु.खेषु प्रायो योऽग्निरिव तत्प्रायश्चित्यं, चित्योऽग्नि रुच्यते" इति। अत्रसमीक्ष्यते। "चिता चित्या चितिः स्त्रियाम्" चित्यं मृतकचैत्येस्याच्चित्या मृतचितौस्त्रियाम्" इत्यमरमेदिनीकोशयोः प्रमाणेन चित्यपदेन श्मशानस्थशवसंरक्षणगृहस्यबोधप्रसंगेन भेषजपर्याय कथने सर्वथा तस्यबाधः समुपलभ्यते। यदि च मृतकानां चैत्यं मृतकचैत्यमित्यर्थः स्यात्समीचीनं चित्यपदस्य तदा भेषजस्याऽधन्यता मारकताऽपि सुस्पष्टैव। एवं भेषजेन न सम्भाव्यते। अपितु मृतस्याऽपि जीवनदानेऽस्य सार्थक्यं साफल्यमभिलषितम्भवति।

किञ्च प्रायः शब्दो विशेषार्थ इति चरकवचनबलात्प्रायो विशेषतो दुःखेषु वह्नि

व्यापारवतो भेषजस्य दहनादि कर्मवत्व सामान्याद्व्याधिविध्वंसकत्व मुपपादितम्भवति चेत्तदा यथा प्रवृद्धोऽग्निः कक्षस्थतृणादिदाहप्रवृत्तस्तं भस्मसात्कृत्वैवविरमति, तथैव भेषजमपि व्याधिविध्वंसपूर्वकं कर्मसम्पाद्य विरतोभवति स्वव्यापाराऽभावादिति प्रकल्पनेनाऽस्य प्रायश्चित्यपदपाठस्य तादृशार्थ स्वीकारे कियानुपकारो विहित इति प्रस्तावे ब्रूमः । अत्र तृणादि साहचर्यादग्नेरिव ज्वलनाऽभावस्थलेषु भेषजस्याऽपि व्याधिविध्वंसनोपपादनानन्तरं स्वभाववर्तित्वमुपलभ्यते । येन स्वभावेन भेषजं स्वास्थ्यसंरक्षणरूपमायुर्वेदप्रयोजनं साधयति । तन्नात्र सम्भाव्यते । तृणादिदाहानन्तरं वह्नेः कार्यान्तरपरिकल्पने मानाऽभावः क्षीणशक्तिकत्वात् ।

अपरञ्चात्र परीक्ष्यते परीक्षकैः सफलचिकित्साचतुरैश्च तावद्भिषग्भिः प्रतिवासरं यन्नियतवृत्तित्वेन भेषजद्रव्याणि रोगविनाशे कथमपि सर्वथा न प्रभवन्ति । यतोहि प्रतिनियतशक्तिकानि भेषजद्रव्याणि भवन्तीतिनियमसापेक्षेण द्रव्यवृत्तयः प्रतिद्रव्यं नियमेन नियतव्यापारवत्यः कार्यकारिण्यः सम्भाव्यन्ते । यतः सर्वविध व्याधिविध्वंसकत्वं यदि कथमपि साध्यते तदा तत्र पूर्वजन्मोपार्जिताऽतंकपङ्कापनोदन सामर्थ्य सद्भावस्याऽति तिरोहितिरपि साध्या । तादृशकर्मजगदजनितदुःखाकरभावस्य कर्मक्षयपूर्वकविनाशभावस्यापि चाऽभिप्रेतत्वादायुर्वेदाचार्याणाम् । कर्मजा व्याधयः केचित्प्रशमं यान्तितत्क्षयादितिपतञ्जलिता योगे चायुर्वेदे च प्रतिपादितत्वात् । ततः शारीरमानसोभयसम्भूताऽतंक संकेतानेव भस्मसात्कर्तुम्प्रभवेद्भैषजन्न पूर्वोपार्जित कर्मजन्य व्याधीतिति भेषजसंज्ञायास्तस्यालक्ष्ये लक्षणाऽनागमनरूपस्याऽव्याप्तिदोषस्य समुपस्थितेः सर्वथा दोषग्रस्तता समायतिता । एवञ्च भाष्यकर्तुः श्रीगंगाधरस्य पाठस्वीकारेऽसहमतिर्मामकीना यद्भेषजद्रव्याणा साकारत्वात्साधनविशिष्टत्वाल्लौकिकत्वाच्चैतादृशे लोकव्यवहारसापेक्षत्वं समपेक्ष्यते । अतः परोक्षसाधनीभूतज्ञानवत्वस्य सर्वथोपस्थितेरलौकिकव्यापारवद्भावेषु तादृश प्रत्यक्षीभूतव्यापारवतः पदप्रक्रमस्य बाधप्रसंगोऽपि न विस्मर्तव्य इति प्रायश्चित्यपदमाकण्ठ कुण्ठितमिति मममतिः ।

द्वितीयपाठस्य प्रायश्चित्तपदस्य भाष्यकर्ताचरकचतुरानन श्रीचक्रपाणिदत्तः स्वाभिप्रायमित्थं व्याख्याति । "प्रायश्चित्तमिति भेषज संज्ञा । प्रायश्चित्तवदभेषजस्याऽधर्मकार्यंव्याधि हरत्वेनेति"। वाधनत्व सानुबाधनरूप प्रयुक्ताऽभेषजद्रव्यस्याऽधर्मकार्यव्याधिहरत्वेन पापोपात्ताऽतंक कार्यप्रयुक्तव्याधिविनाश एव कारणम् । जन्मान्तरोपलब्धप्रारब्धस्यापि कर्मणः प्रायश्चित्तवदपहारकत्वेन प्रायश्चित्तत्वमस्य व्यवहारसिद्धमाकाल मबाधित विशिष्टञ्चावगच्छामः ।

प्रक्ष्मतस्तु प्रायश्चित्त शब्दः कथं निष्पन्न इति विवेचनवेलायां धर्मशास्त्रप्रणेतृणाम्मतमाह प्रायश्चित्तविवेके श्रीशूलपाणिः । "प्रायोनामतपप्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते ।। तपो निश्चयसंयुक्तं प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ।" अनेनलक्षणेन प्रायश्चित्तपदस्य पूर्वोपार्जितकर्मणः प्रत्यवायरूपेणोपस्थितस्यापि विनाशकर्तृत्वमुपलभ्याऽव्याप्तिग्रस्तताऽपि समस्ता । समस्ततात्तु नाऽतितिरोहिता । यतः पातकोपपातकादीनां शुद्ध्यर्थम्प्रायश्चित्तंक्रियते । कृते च तस्मिँस्ततोमुक्तिः ; पापक्षयात्पुण्यलोकावाप्तिः ; का कथा स्वास्थ्यलाभस्य ।

अभेषज द्रव्यस्य प्रायश्चित्तस्य सामान्य समन्वयश्चैतादृशः समुपपद्यत्ते भेषजद्रव्याणि तु प्रत्यक्षीभूतपदार्थतत्वावगाहने समर्थानि भवन्ति। अभेषज द्रव्याणि पुनः परोक्षसाधनान्यपि रोगविलयने समर्थानि भवन्ति। परोक्ष-पातकप्रपातक प्रायश्चित्तवदिति प्रतिपाद यितुमेव ग्रन्थकारैः प्रायश्चित्त पदमुपात्तमिति नः प्रत्ययः सिसाधयिषति पाठस्यास्य महत्ताम्। यतोहि भाष्यकारश्चक्रपाणिः प्रायश्चित्तवदभेषजस्याऽधर्मकार्यं व्याधिहरत्वेनऽधर्मकार्यरूपव्याधेर्निराकरण कारणकत्वेन भेषजस्य प्राश्चित्तत्वमुपपादयति। तथा पापापनोदनार्थं धर्म्या क्रिया क्रियते प्रायश्चित्तरूपेण सम्पाद्यते तथैव रोगनिवृत्यर्थं सेव्यमानं भेषजं व्याधिकारणं निदानादिपरिवर्जनेन मनसः शुद्धिरूपमारोग्यं प्रददाति। तेन स्वास्थ्यसम्पादनार्थं श्रुति प्रतिपादितानि व्रत, नियम, संयम, तपः पोषितादीनि प्रयुक्तानि नानाव्याधिविध्वंसनं विधाय संसारामयं जननिधन व्याधूय तदनन्तरमानन्दसन्दोहमुत्पाद्य यथार्थतो भेषजत्वम्प्रायश्चित्तत्वञ्चोपयान्तीति पाठस्यास्य समधिक समाहरोविधेयः। अतः परं विदुषां समपेक्षते निष्पक्षपातं निश्चित सिद्धान्ततत्वमिति विरमति।

——

भारतीय प्राचीन
कला और शास्त्र
वैसे ही
धूतपापेश्वर औषधियाँ
●
"ब्राह्मी तेल"
दिमाग को शामक और शीतल
"खस का शरबत"
प्यास, पित्त प्रकोप इत्यादि पर गुणप्रद
खुशबूदार व शीतल पेय।

धूतपापेश्वर इण्डस्ट्रीज लि०
पनवेल—बम्बई।
देहली—वैद्य वेदप्रकाश,
धूतपापेश्वर आयुर्वेदिक औषधालय,
३६ E, कमला नगर, गोल चौक।

बोध चिन्ह

नि.भा. आयुर्वेद विद्यापीठ के नव-निर्वाचित अध्यक्ष

४० वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलनान्तर्गत नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के आगामी अधिवेशन के अध्यक्ष पद के लिये इस वर्ष वैद्य समाज ने जबलपुर निवासी वैद्यराज श्री भीकाजी विनायक डेग्वेकर M.Sc., M.A, B.A., LL.B. जैसे परम आयुर्वेदानुरागी प्रतिभावान एवं आयुर्वेदशास्त्र में पारंगत एक सुयोग्य विद्वान को चुनकर अपनी गुण-ग्राहकता का उचित परिचय दिया है। श्री डेग्वेकर जी का प्रायः सम्पूर्ण जीवन ही आयुर्वेद शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन, उसकी गहनतम गुत्थियों को सुलझाने, उन्नति, प्रचार तथा प्रसार में ही व्यतीत हुआ है।

आपका जन्म २८ अक्टूबर १८९१ को हुआ था। बाल्यकाल से ही आप बड़े प्रतिभा शाली रहे हैं। स्कूल तथा कालेज जीवन में आपने प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी में परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर दो बार २० तथा ४० रुपए मासिक की राजकीय छात्रवृत्तियां भी प्राप्त की थीं। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से M.Sc. (Physics), M.A. (Math.) तथा LL.B. की परीक्षाएं क्रमशः १९१३, १९१५ तथा १९१६ में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं।

आंगल भाषा की उच्च शिक्षा के साथ-साथ आपने सन् १९०७ से १९१५ तक अपने पूज्य मामा गुरुवर्य श्री दामोदर राव देसाई के पास आयुर्वेद का अध्ययन तथा प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। तत्पश्चात् आप हिस्लाप कालेज में फिजिक्स के प्रोफेसर नियुक्त हुए जहां आपने दो वर्ष तक शिक्षक का कार्य किया।

वैद्यराज श्री भीका जी विनायक डेग्वेकर

सन् १९१७ में अपने मामा श्री देसाई की मृत्यु के समय दिए गए इस वचन कि “वैद्यक के अतिरिक्त कोई व्यवसाय न करेंगे” के अनुसार नवम्बर १९१८ से आप वैद्यक व्यवसाय में प्रवृत्त हुए। यद्यपि अपनी उच्च शिक्षा तथा योग्यता के फलस्वरूप किसी उच्चपद पर प्रतिष्ठित हो कर भी आप अर्थ तथा यशोपार्जन कर सकते थे किन्तु मृत्यु-शैय्या पर मामा के समक्ष की गई प्रतिज्ञा का निर्वाह आपने अपना परम कर्तव्य समझा और आपने भारत सरकार के मेटीरियोलोजिकल विभाग से प्राप्त

५००-५०-१२००-१००-२००० वेतन की सर्विस की आफर को भी अस्वीकार कर दिया। यह त्याग आपकी वचन पालन की दृढ़ता का ज्वलन्त उदाहरण है।

आप कुशल चिकित्सक होने के साथ-साथ सुयोग्य अध्यापक भी हैं। सन् १९२४ से निरन्तर अपने घर पर ही प्रतिदिन विद्यार्थियों को आयुर्वेद की प्रत्यक्ष कर्माभ्यास के साथ शिक्षा प्रदान किया करते हैं। सन् १९३३ में आपने जबलपुर में एक आर्ट्स कालेज की हितकारिणी सिटी कालेज के नाम से स्थापना की जिसमें सन् १९४५ तक आयुर्वेद शिक्षा के साथ साथ उसके प्रिंसिपल पद पर रह कर बी० ए० तक गणित विषय का अध्यापन करते रहे।

आप मध्यप्रदेश सरकार द्वारा नियुक्त अनेक आयुर्वेद सम्बन्धी समितियों के सदस्य रह चुके हैं और अब भी हैं। नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा १९५३ में नियुक्त अनुसंधान समिति के भी आप सदस्य बनाए गए तथा मध्य प्रदेश आयुर्वेदीय तथा यूनानी चिकित्सा परिषद् के भी आप सदस्य रह चुके हैं। आप नागपुर विश्वविद्यालय की अनेक परीक्षाओं के परीक्षक रहे हैं तथा नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षाओं के परीक्षक होने के साथ साथ आप जबलपुर केन्द्र के केन्द्राध्यक्ष का कार्य भी निरन्तर कई वर्षों से योग्यतापूर्वक कर रहे हैं।

आपने बरार प्रान्तीय तृतीय वैद्य सम्मेलन (१९२८), १९ वें नि० भा० आयुर्वेद सम्मेलन के अन्तर्गत प्रथम निदान तद्विद्य सम्भाषा परिषद्, नाशिक (१९२९), महाराष्ट्र आयुर्वेदीय शिक्षक सम्मेलन, अहमद नगर (१९२९), विदर्भ आयुर्वेद विद्यालय वार्षिक सम्मेलन अमरावती (१९३४), सप्तम निखिल कर्णाटक आयुर्वेदिक कांफ्रेंस हुबली (१९३४), पूना आयुर्वेद महाविद्यालय वार्षिक सम्मेलन, पूना (१९३५), मध्यप्रान्तीय चतुर्थ वैद्य सम्मेलन, भंडारा (१९-३५), महाविदर्भ प्रथम प्रांतीय वैद्य सम्मेलन वर्धा, (१९४५), महाराष्ट्र प्रान्तीय तृतीय वैद्य सम्मेलन, नासिक (१९४७), इत्यादि आयुर्वेद सम्मेलनों का सभापतित्व किया तथा १९५३ में शुद्धायुर्वेद परिषद् बम्बई के अध्यक्ष नियुक्त किए गए।

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के तत्वावधान में पटना (१९५१) तथा हरिद्वार (१९५३) की शास्त्रचर्चा परिषदों में उपस्थित होकर उनमें आपने प्रमुख रूप से सक्रिय भाग लिया था। १९५४ में नाशिक में सम्पन्न शास्त्रचर्चा परिषद् में भी आपने मुख्य भाग लिया।

आप उच्चकोटि के लेखक हैं भारत के प्रायः सभी आयुर्वेदीय पत्रों में समय समय पर आपकी विद्वत्तापूर्ण गम्भीर रचनायें प्रकाशित होती रहती हैं। अनेक ग्रन्थों की प्रस्तावना भी आपने लिखी है तथा स्वतन्त्र पुस्तकरूप लेख भी।

इस प्रकार हमारे विद्यापीठ के वर्तमान सभापति सर्वगुण संपन्न, शुद्धायुर्वेदानुरागी परम विद्वान व्यक्ति हैं जिनके कुशल तथा सुयोग्य निर्देशन में विद्यापीठ का कार्य निश्चय ही प्रगतिपथ पर अग्रसर होगा ऐसी आशा है।

आयुर्वेद लोक

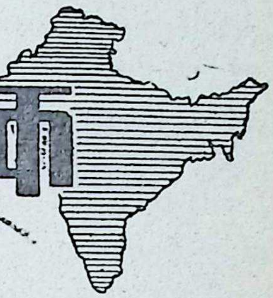

राष्ट्रपति द्वारा आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने की सिफारिश

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इन्दौर स्थित महात्मा गान्धी मेडिकल कालेज के नये भवन का उद्घाटन करते हुए अपने भाषण में चिकित्सकों, डाक्टरों, तथा स्वास्थ्य सेवाओं में संलग्न व्यक्तियों से यह अपील की कि वे अपना अधिक ध्यान देश के ग्रामीण क्षेत्रों की ओर दें, जिससे देश के करोड़ों आवश्यकता वाले ग्रामीणों को सहायता मिल सके।

इस मेडिकल कालेज के साथ लगे अस्पताल में ७०० शैयाओं की व्यवस्था है ।

राष्ट्रपति ने कहा कि देश के ग्रामीण क्षेत्रों में बीमारियों का बहुत अधिक प्रसार है। वहां पर चिकित्सा की बहुत कमी है। जो थोड़े बहुत अस्पताल हैं भी, उनसे भी ग्रामीणों की वहुत कम आवश्यकता पूरी होती है ।

यद्यपि गत कुछ वर्षों में देश में मेडिकल कालेजों की संख्या १७ से बढ़ कर ३५ हो हो गई है तथापि देश में स्वास्थ्य सेवा के लिए उपलब्ध डाक्टरों की संख्या बहुत न्यून है। इतनी कम संख्या से देश की स्वास्थ्य समस्या सुलझ नहीं सकती। राष्ट्रपति ने यह आशा व्यक्त की कि पंचवर्षीय योजना के अधीन अनेक योजनाएं पूरी होने पर इस दिशा में भी कुछ राहत मिलेगी ।

राष्ट्रपति ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकारें आयुर्वेद की तरफ जो 'स्वास्थ्य-जीवन का एक दर्शन शास्त्र' है, पर्याप्त ध्यान नहीं दे रही हैं। जितना वे स्वास्थ्य विभाग पर खर्च करती हैं, उसका एक प्रतिशत भी वे सम्भवतः आयुर्वेद के संरक्षण या संवर्धन पर, अथवा गवेषणा या आयुर्वेदिक औषधियों के वितरण पर खर्च नहीं करती।

उन्होंने कहा कि औषधि-विज्ञान की सफलता नए-नए अस्पताल और मेडिकल कालेज खुलने में नहीं, उनके कम होने में है। किन्तु यह तभी सम्भव है जब जनता स्वस्थ हो और उसे बीमारी का इलाज कराने से अधिक बीमारी से बचने के उपाय ज्ञात कराए जा सकें। किन्तु वर्तमान स्थिति में जब बीमारियाँ अधिक हैं, अस्पतालों और मेडिकल कालेजों का खोला जाना भी आवश्यक है। उन्होंने डाक्टरों से यह अपेक्षा की कि वे शहरों और कस्बों में ही नहीं बल्कि करोड़ों ग्रामवासियों का इलाज करने ग्रामों में भी पहुँचेंगे। नवीन मेडिकल कालेज के विद्यार्थियों को राष्ट्रपति ने सलाह दी कि वे सेवा के उच्च आदर्शों और धन्धे की पवित्रता

के अनुकूल पीड़ित मानवता की सेवा में किसी से पीछे न रहें।

इससे पूर्व मध्यभारत के स्वास्थ्य मंत्री डा० प्रेम सिंह राठौर ने इन्दौर के मेडिकल स्कूल का, जो अब कालेज बन गया है पिछले एक सौ वर्षों का संक्षिप्त इतिहास बताया। उक्त अवसर पर स्वास्थ्य मंत्री ने राष्ट्रपति से कालेज के प्रिंसिपल, प्रोफेसरों आदि का परिचय भी कराया। समारोह में राजप्रमुख, मुख्य मंत्री, अन्य मंत्रियों एवं नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के अतिरिक्त जनता भी भारी तादाद में उपस्थित थी।

आयुर्वेद की महत्ता पर बल

बम्बई के मुख्य मन्त्री श्री मोरारजी देशाई ने बम्बई की एक सभा में भाषण करते हुए एलोपैथिक डाक्टरों को यह कह कर आश्चर्य में डाल दिया कि आयुर्वेद एक विकसित विज्ञान है। आपने कहा कि आयुर्वेद एक परिपूर्ण विज्ञान है और एलोपैथी को उसका दर्जा पाने में काफी समय लग जायगा।

मुख्य मन्त्री सेठ जी० एस० मेडिकल कालेज में इंडियन मेडिकल एसोसियेशन (बम्बई प्रादेशिक शाखा) के द्वितीय वार्षिक सम्मेलन का उद्घाटन कर रहे थे।

श्री देसाई ने कहा कि यह बात सच है कि आयुर्वेद का अभ्यास इस समय सही रूप में नहीं किया जा रहा है; किन्तु यह एक परिपूर्ण विज्ञान है, इस में किसी को भी कोई सन्देह नहीं होना चाहिए। आपने कहा कि आयुर्वेद को वस्तुतः उन्हीं लोगों ने बदनाम किया है, जो आयुर्वेद को नहीं जानते, किन्तु उसकी जानकारी का दावा करते हैं।

मुख्य मन्त्री ने एलोपैथी के डाक्टरों की इस मनोवृत्ति की आलोचना की कि वे होम्योपैथी तथा आयुर्वेद की निन्दा करते हैं। आपने कहा कि सभी चिकित्सा-प्रणालियों को सम्मान की दृष्टि से देखना सभी का कर्त्तव्य होना चाहिए।

राज्य स्वास्थ्य बीमा योजना का जिक्र करते हुए मुख्यमन्त्री ने कहा कि प्रायः रोगियों से मैं यह शिकायत सुना करता हूँ कि डाक्टर उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते और उनकी उपेक्षा करते हैं। आपने कहा कि डाक्टरों का यह विचार नितान्त अनुचित तथा गर्हित है। आपने कहा कि डाक्टरों को चाहिए कि वे इस योजना को सफल बनाने में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करें।

आपने कहा कि इस योजना की सफलता का पूरा दायित्व वस्तुतः डाक्टरों पर ही है। डाक्टर ही चाहेंगे तो इस कार्यक्रम को सफल अथवा विफल बना देंगे। आपने डक्टरों से अपील की कि वे योजना के कार्यान्वियन में अपना सहयोग दें। डाक्टरों को इस योजना के कार्यान्वियन में कतिपय कठिनाइयों का अनुभव हो सकता है, किन्तु उन्हें इन कठिनाइयों को मेरे समक्ष भी प्रस्तुत करना चाहिए ताकि उनका निराकरण सम्भव हो सके। रोगियों के साथ तो डाक्टरों का व्यवहार उत्कृष्ट ढंग का होना चाहिए। डाक्टरों को चाहिए कि वे इस योजना के कार्यान्वियन में ही सहयोग न दें बल्कि उसे सस्ता बनाने में भी अपना सहयोग प्रदान करें।

डाक्टरों का ध्यान मैं उनके उत्कृष्ट कर्त्तव्यों की ओर और अधिक आकृष्ट करना चाहूँगा ताकि राज्य को अपनी योजनाओं के कार्यान्वियन में अपेक्षित सहायता प्राप्त हो।

मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्य सम्मेलन

मध्य प्रदेश अग्रगामी वैद्य सम्मेलन का अधिवेशन २६ फरवरी को नागपुर में वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए रायसाहब सेठ गोपीकिशन जी ने कहा कि मंजिल लम्बी हो, कष्ट का सामना करना पड़े, बलिदान के क्षण हमारी मांग करें तो भी हम पीछे कदापि न रहें। वैद्य समाज को आयुर्वेद विज्ञान के प्रसार हेतु दृढ़ संगठन का निर्माण करना चाहिये। राष्ट्र विकास की दृष्टिसे आयुर्वेदिक साहित्य के निर्माण और प्रसार का कार्य अपना निजी महत्व रखता है।

आ० वृहस्पति पं० गोवर्धन शर्मा छांगाणी ने आयुर्वेद को जीवनदान का यज्ञ बताते हुए कहा कि आयुर्वेद का दावा विश्व कल्याण का तकाजा है। कालीदास ने पंक्ति पंक्ति में रस उलीच कर रसिकता का परिचय दिया तो प्रकृति के पुजारी वैद्यों ने इन्सान की धमनियों में प्राणों का ओज, तेज, बल, शौर्य का प्रवाह अपनी एक ही चुटकी से उलीच दिया। मनुष्य की सेवा सब से बड़ा कर्त्तव्य है। पहिले ज्ञान के स्रोत गुरु थे अब आयुर्वेदिक कालेज है। राजधानी नागपुर में आयुर्वेद का महाविद्यालय खोलिये। पं० रविशंकर और कन्नमवार जी अपने समय, सामर्थ्य सहयोग और सौजन्य का सदुपयोग करें।

आयुर्वेदिक प्रदर्शिनी का उद्घाटन सेठ ब्रिज लाल वियाणी जी ने तथा सभापतित्व पनवेल के नाना साहब पुराणिक जी ने किया। आपने कहा कि नागपुर समस्त विश्व का कल्याणकारी केन्द्र है। प्रदर्शन का प्रयोजन ही यह है कि आयुर्वेदीय औषधि, सिद्धौषधि, अन्य सामग्री, ग्रंथ समूह, आयुर्वेद की व्याप्ति, विशालता, सम्पन्नता आदि का उससे बोध हो। बम्बई प्रान्त में शुद्ध आयुर्वेद का पाठ्यक्रम जारी हुआ है, अहमदाबाद, पूना आदि शहरों के अस्पतालों में आयुर्वेदिक स्वतंत्र विभाग खोले गए हैं, संशोधन समिति की स्थापना हुई है। मध्य प्रदेश और बम्बई के जंगलों से सरकार ताजी वनस्पतियां संग्रह करा रही है। भारत वर्ष के समान सीलोन और ब्रह्मा देश में भी आयुर्वेद के उत्थान के लिये प्रयत्न हो रहा है। जापान में भी ३०० वर्ष पुरानी औषधियां अभी भी पेटेण्टरूप में प्रचलित हैं। सीलोन में सवेरे ब्राह्मी पीने की अब भी चाल है।

पं० शिवशर्मा का भाषण

अपने अध्यक्षीय भाषण में वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा ने आयुर्वेदिक व्यवसाय, शिक्षा और जन-सेवा के प्रश्नों का विस्तृत निरीक्षण करते हुए कहा कि भारत के बहुत से राज्य आयुर्वेद के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने को तैयार हैं परन्तु आयुर्वेदिक संस्थाओं के प्रारम्भिक निर्माण, संचालन और संवर्द्धन में तथा आयुर्वेदिक जनसेवा के संगठन और प्रसार में वैद्य समाज से उन्हें पूर्ण सहयोग न मिलने से ये कार्य रुके हुए हैं। पारस्परिक रागद्वेष, ईर्षा और कलह ने वैद्यों को निर्बल कर दिया है कि वे अपनी विज्ञान की अथवा सरकार की सहायता करने में असमर्थ हैं। वैद्यों को अपने हृदय को अच्छी प्रकार टटोलना चाहिए और दंभ एवं स्वार्थ को त्याग देना चाहिए।

दूसरी अपील केन्द्र से करते हुए पं० शिवशर्मा ने कहा कि आयुर्वेदिक शिक्षा और जनसेवा की योजनाओं के निर्माण में वैद्यों

के बहिष्कार की प्रचलित घातक नीति अब बन्द होनी चाहिए। भारत के अधिक प्रगतिशील और प्रकाशमान राज्यों ने आयुर्वेद के भविष्य को उसके उन प्रमाणित प्रतिद्वन्द्वियों के हाथों में छोड़ रखने की प्रथा की उपयुक्तता पर गम्भीर संदेह प्रकट करना आरंभ कर दिया। जिनकी इस विज्ञान को मिटा देने की लगन छिपी नहीं रह सकी। अब वैद्यों को आयुर्वेदिक कार्यों में कुछ करने कहने का अवसर मिलना आरम्भ होना चाहिये।

आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम

आयुर्वेदिक शिक्षा को लक्ष्य करते हुए पं० शिवशर्मा ने कहा कि गत बीस वर्षों में डाक्टरों ने कई आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम बनाए, प्रचलित किए और फिर रद्द कर दिए। अब पाठ्यक्रम वैद्यों द्वारा ही बनने चाहिए। वे जो बाहरी सहायता चाहें ले सकते हैं। आयुर्वेद शिक्षा पर भिन्न-भिन्न राज्य भिन्न-भिन्न मत रखते हैं। कुछ राज्यों ने यह सिद्धान्त समझ लिया है कि शुद्ध और ठोस आयुर्वेदिक शिक्षा और प्रशिक्षा ही अच्छे वैद्य तैयार कर सकती है। मेरा अपना भी यही दृढ़ मत है। परन्तु कुछ राज्य ऐसे भी हैं जिनका वास्तविक विश्वास मिश्रित शिक्षा में ही है। डाक्टरों को तो यह सुविधा प्राप्त है कि मैडिकल कौंसिल ही पाठ्यक्रम निर्माण करती है जिसके फलस्वरूप संपूर्ण भारतवर्ष में समान एलोपैथिक पाठ्यक्रम प्रचलित है, परन्तु वैद्यों को विभिन्न राज्यों की विभिन्न मांगों को पूरा करना पड़ता है। यह एक अत्यन्त कठिन कार्य है। बहुत विचार के अनन्तर में इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि विभिन्न राज्यों को एक प्रकार के पाठ्यक्रम पर सहमत कर लेना अभी तो सर्वथा असंभव है, परन्तु तीन-चार वर्ष तक का एक ठोस शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम सब राज्यों में लागू हो सकता है जिससे विद्यार्थियों को विश्वास और योग्यता के साथ चिकित्सा व्यवसाय करने के लिए न्यूनतम आवश्यक आयुर्वेदिक ज्ञान प्राप्त हो जाए। इस पठनकाल की समाप्ति पर मिश्र चिकित्सावादी राज्य विद्यार्थी को ६ महीने या १ वर्ष आवश्यक ऐलोपैथिक ज्ञान दे सकते हैं। एक बार दृढ़ आयुर्वेदिक नीव पड़ जाने से यह सहायक पाठ्यक्रम विद्यार्थी को वैसे संदेह और किंकर्त्तव्यविमूढ़ता में नहीं डाल सकेगा जिसमें कि मिश्रित पाठ्यक्रम के स्नातक प्रायः पड़े रहते हैं। शुद्ध आयुर्वेदवादी राज्य इसी समय को उच्चतम आयुर्वेदिक शिक्षा देने में व्यय कर सकते हैं। यही एक मार्ग ऐसा है जिससे बिना किसी राज्य की विचार शैली में परिवर्तन किए एक न्यूनतम आवश्यक समान पाठ्यक्रम सब राज्यों में आरम्भ हो जाने की संभावना हो सकती है।

केन्द्रीय सरकार की उदासीनता

आगे चलकर पं० शिवशर्मा ने कहा कि आयुर्वेद के प्रति केन्द्रीय सरकार की उदासीनता का कारण समझना कठिन है। अत्यन्त खर्चीली और कई बार तो अत्यन्त हानिकर और स्वास्थ्य-विरोधी चिकित्सा के प्रसार में भयावह मात्रा में रुपया व्यय किया जा रहा है परन्तु आयुर्वेद द्वारा जनसेवा करने के लिए आज तक एक पैसा भी खर्च नहीं किया गया। बहुतसे भोले व्यक्ति समझे बैठे हैं कि आयुर्वेदानुसंधान के नाम पर जो ३५ लाख रुपया केन्द्र ने पृथक रखा है वह आयुर्वेद के लिए व्यय होगा। सत्य यह है कि इस रुपए का एकमात्र लक्ष्य एलोपैथी की कलेवरवृद्धि के लिए

आयुर्वेदिक औषधियों और चिकित्सा-मार्गों की खोज करना है, जिसका आयुर्वेद के प्रसार या उन्नति से कुछ भी सम्बन्ध नहीं। एलोपैथी अवश्य उन्नत की जाए, परन्तु इतनी ईमानदारी केन्द्र को अवश्य दिखानी चाहिए कि वह सत्य की खुली घोषणा कर दे कि इस कोष का एकमात्र लक्ष्य एलोपैथी की उन्नति के लिए नवीन खोज करना है।

आयुर्वेदिक पद्धति अनुकूल

वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए पं० शिवशर्मा ने कहा कि आयुर्वेदिक पद्धति इस देश की प्रकृति और जलवायु के लिए विशेष अनुकूलता रखती है। जिस प्रकार ध्वंसक प्रयत्नों में कौबाल्ट बम का निर्माण एक चरम सीमा है उसी प्रकार व्याधिनाश के प्रयत्न में आधुनिक जीवनाशक द्रव्य अपने क्षेत्र में चरमसीमा के निकट पहुँच गए हैं। ऐसी परिस्थिति बन गई है जिसमें यह कहना कठिन हो गया है कि आधुनिकों में घोर वृद्धि को प्राप्त हो रही जीवनीयशक्तिनाशक व्याधियों में औषधजन्य उपद्रवों का कहां तक हाथ है। हृदय की धड़कन बन्द होना यकृत् और वृक्कों का क्षीण होना, नाड़ीतंतुओं और सिराधमनियों का दौर्बल्य इत्यादि व्याधियों की दिन प्रतिदिन भयंकर वृद्धि इतना चिन्ताजनक रूप धारण कर रही है कि संपूर्ण चिकित्सा-पद्धति का पुनर्निरीक्षण और पुनः संगठन अनिवार्य प्रतीत होने लगा है। अत्यन्त विषैली ऐलोपैथिक औषधियों से होने वाले गम्भीर उपद्रव प्रायः बहुत देर से आधुनिक मानसिक चिन्ताओं के कारण बन रहे हैं। रोगियों के प्रकृतिभेद के कारण ये विषैले द्रव्य किसी पर हल्का प्रभाव करते हैं किसी पर गहरा किसी पर थोड़े समय के लिए और किसी पर दीर्घकाल के लिए। व्यक्तिगत प्रकृतिभेद का ज्ञान एलोपैथी में अभी अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्था में होने के कारण आधुनिक चिकित्सकों के पास विभ्रांति रूपसे यह जानने का कोई साधन विद्यमान नहीं कि रोगी को आशुकारी और फलप्रद चिकित्सा करने के प्रयत्न में वे अनजाने में रोगी को कितनी हानि पहुँचा जाते हैं। आयुर्वेद ही एक ऐसा विज्ञान है जो चिकित्सा द्वारा स्वास्थ्य प्रदान और मनुष्य की प्राकृतिक दृढ़ता के पारस्परिक सामंजस्य को उच्च वैज्ञानिक स्तर पर ले गया है। पं० शिवशर्मा ने केन्द्र के अधिकारियों से अनुरोध किया कि वे इस समस्या पर गंभीरता और बुद्धिमत्ता से विचार करें। देश के कल्याण के लिए उनको यह जान लेना आवश्यक है कि चिकित्सा क्षेत्र में आयुर्वेद केवल अर्थ-इच्छा का ही साधन नहीं किन्तु स्वास्थ्य रक्षा का भी एक परम उपादेय, वैज्ञानिक अनुशीलनीय और कल्याणप्रद मार्ग है।

महाकौशल प्रान्तीय आयुर्वेद कांग्रेस

बुरहानपुर में महाकौशल प्रांतीय आयुर्वेद कांग्रेस का पाँचवां अधिवेशन कविराज पं०बाबूराम शर्मा द्विवेदी वैद्यरत्न भिषङ्मणि आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में सुसम्पन्न हुआ। सभापति जी ने अपने विद्वतापूर्ण भाषण में आयुर्वेद की वर्तमान स्थिति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हुए कहा कि काल के अनेक आघात सहन करते हुए भी हम आज तक जीवित हैं तथा अनेक पक्षपात पूर्ण नीतियों का शिकार होते हुए भी हमने अपना लक्ष्य कभी नहीं छोड़ा। आज भी हम ८०प्रतिशत जनता के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी संभालते हैं और इस मशीन युग की प्रतिद्वन्द्विता में भी अपना सिर ऊंचा किए हुए हैं। पर आज फिर आयुर्वेद के लिए एक

संकट काल उपस्थित है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी आयुर्वेद को उसका उचित स्थान नहीं मिला और उसके मार्ग में नाना विघ्न-बाधाएँ आने लगीं। लेकिन इसके बावजूद आयुर्वेद प्रगति के पथ पर हैं, इसमें तो संदेह ही नहीं किया जा सकता। अतः हमें विघ्नों पर विचार करने के पहले प्रगति की तरफ भी दृष्टि डाल लेनी चाहिए। राज्यों में आयुर्वेद का जहां तक सम्बन्ध है, वह निश्चित रूप से प्रगति पथ पर है। अधिकांश राज्यों में राज्य की तरफ से आयुर्वेद के शिक्षणालय खुल गए हैं और शायद ही कोई राज्य हो जो कि एक या अधिक आयुर्वेदिक कालेज नहीं चला रहा हो। अधिकांश राज्यों में आयुर्वेदिक विभाग एक संचालक या उपसंचालक के अधीन कार्य कर रहा है तथा अधिकांश राज्यों में ग्रामों में सैकड़ों आयुर्वेद औषधालय खोले जा रहे हैं। नगरों में बड़े बड़े आयुर्वेदिक रुग्णालय खोलने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, और हमें आशा है कि वह दिन दूर नहीं है जब कि आयुर्वेदिक स्वतन्त्र रुग्णालयों के साथ-साथ पूर्ण साधना सम्पन्न अस्पतालों में भी आयुर्वेद को एलोपैथी के समकक्ष आसन प्राप्त हो जावेगा। इसी तरह आयुर्वेद में अनुसंधान की आवश्यकता तथा महत्ता भी सरकारों को आकर्षित कर रही है और विभिन्न राज्य इसके लिए योजनाएँ बना रहे हैं। हमारा देश प्रकृति का वर पुत्र है और जिस प्रकार हमारे भू-गर्भ में अनन्त रत्नराशि तथा व्यवसायिक खनिज पदार्थ छिपे हैं, उसी प्रकार हमारे वन सहस्रों वनौषधियों से परिपूर्ण हैं, जिनमें लाखों रुपये की प्रतिवर्ष औषधियां संग्रहित कर देश तथा विदेश में प्रयुक्त की जा सकती हैं। यह तथ्य भी धीरे धीरे राज्यसत्ता की दृष्टि में आ रहा है। और सम्भवतः वह दिन भी दूर नहीं है जब कि प्रत्येक राज्य अपने अंचलों में वनौषधियों का चयन, संग्रह तथा विक्रय के लिए प्रयत्नशील होगा।

राज्यों की प्रगति अवश्य ही आशाप्रद तथा उत्साह-वर्द्धक है, पर इस विषय में केन्द्रीय सरकार का रुख उत्साहपूर्ण नहीं है। वहाँ एक डाक्टर के अधीन एक संस्था खोल कर केन्द्रीय सरकार आयुर्वेद के प्रति अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठी है और समय असमय पर वैद्यों की अकर्मण्यता के आवरण में अपनी शिथिलता को ढंकना चाहती है। सबसे पहली आवश्यकता तो केन्द्रीय रजिस्ट्रेशन बोर्ड की है। इण्डियन मेडिकल कौंसिल की तरह एक आयुर्वेद के लिए भी अखिल भारतीय चिकित्सक-परिषद् की स्थापना शीघ्रातिशीघ्र होनी चाहिए और उसके भी वही अधिकार होने चाहिए जो अधिकार कौंसिल को हैं, ताकि हमारे आयुर्वेदिक-जगत् के चमकते हुए लोग इच्छानुसार विदेशों में चिकित्सा कर आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति की पताका फहरा सकें। केन्द्रीय सरकार एक स्नातकोत्तर विद्यालय प्रारम्भ करना चाहती है। हम उसका स्वागत करते हैं। पर हमें भय है कि अनुसंधान के कार्यों की महत्ता नष्ट कर उक्त संस्था केवल शिक्षण कार्यों में न उलझ जावे। अतः दोनों विभागों का सम्यक विकास हो ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। पर केन्द्र के सम्बन्ध में सब से बड़ी खटकने वाली बात यह है कि देश की पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद को कोई स्थान नहीं दिया गया और सम्भवतः द्वितीय पंचवर्षीय योजना में यही उपेक्षा कायम रहे। यद्यपि स्वास्थ्य तथा चिकित्सा का सम्बन्ध अधिकांश में राज्य सरकारों से है, फिर भी

अनेक स्वास्थ्य योजनाएँ राष्ट्र-संघ की तरफ से समय समय पर प्रचारित होती हैं तथा उससे हमारे ऐलोपैथ भाई लाभ उठाते रहते हैं, पर आयुर्वेदिक विद्वानों के लिए उक्त योजना में अब तक कोई स्थान प्राप्त नहीं हुआ। आयुर्वेद के अनेक लुप्त ग्रन्थ तिव्बत, नैपाल, अफगानिस्तान, जर्मनी आदि देशों में पड़े हैं जिनका अब तक प्रकाशन नहीं हुआ। यह कार्य केन्द्रीय सरकार को अवश्य करना चाहिए। यही नहीं, विदेशों में आयुर्वेद का प्रचार तथा प्रसार करना केन्द्रीय सरकार के प्रथम कर्तव्यों में से होना चाहिए। कभी आयुर्वेद का प्रसार लंका, जावा, सुमात्रा, ब्रह्मा, श्याम, इण्डोचाइना, चीन, तिब्बत, अफगानिस्तान आदि देशों में रहा है और इन देशों की चिकित्सा-पद्धतियां आयुर्वेद के निकट हैं। इनके अतिरिक्त फीजी, ट्रीनीडाड, मारीशस, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में, जहां लाखों भारतीय बसे हैं, अभी तक बड़े परिमाण में आयुर्वेदिक दवाइयां जाती हैं। बिदेशों के भारतीय दूतावास आयर्वेदिक औषधियों के प्रदर्शन का प्रबन्ध करें तो आयुर्वेदिक औषधियां निर्माण करने वाली बडी वड़ी फार्मेसियां खुशी से इस कार्य में सहयोग देंगी। हम अखिल भारतीय आयुर्वेदिक कांग्रेस के कर्णधारों से प्रार्थना करते हैं कि केन्द्रीय सरकार से इस दिशा में कदम उठाने का अनुरोध करें।

अन्त में हम केन्द्रीय सरकर के मुख्यतम कर्तव्य की तरफ उसका ध्यान आकर्षित करते हैं। वह है भारतीय केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य सचिवालय के अधीन एक डायरेक्टर जनरल आफ हेल्थ सर्विसेज (आयुर्वेद) के पद की स्थापना। हमारे मत में केन्द्र में आयुर्वेदिक प्रगति की निराशाजनक स्थिति का मुख्य उत्तरदायित्व इसी तथ्य पर निर्भर है कि वहां केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री को आयुर्वेद के विषय में स्वस्थ परामर्श देने वाला कोई अधिकारी नहीं है। उन्हें स्वास्थ्य या चिकित्सा सम्बन्धी जो भी परामर्श प्राप्त होते हैं, वे व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्विता के फलस्वरूप या भविष्य में आयुर्वेद को भारतीय स्वास्थ्य समस्या के समाधान में आयुर्वेद की प्रधानता की आशंका से अयथार्थ रूप में दिए हुए ही होते हैं। इस तरह केन्द्र से आयुर्वेद को सौतेली माँ का ही प्रेम प्राप्त होता है, ऐसी धारणा लोगों में अस्वाभाविक नहीं है।

यद्यपि मध्यप्रदेश की समस्या उत्तर राज्यों से भिन्न नहीं हैं, फिर भी राज्य में इस सरकार के द्वारा आयुर्वेद के विषय में जो कुछ किया जा रहा है उसे पर्याप्त तो नहीं कह सकते, पर उससे संतोष की सांस अवश्य ले सकते हैं। हम यह कह सकते हैं कि हमारे राज्य की सरकार आयुर्वेद की प्रगति के पथ पर धीरे-धीरे दृढ़ कदम बढ़ा रही है। यहां विशुद्ध आयुर्वेदिक बोर्ड की स्थापना इस दिशा में प्रथम उचित कदम था। बोर्ड के द्वारा आयुर्वेदिक उन्नति के कई ठोस कार्य हुए हैं। वैद्यों का पंजीकरण, आयुर्वेदिक विद्यालयों की स्वीकृति, उनकी परीक्षाओं का प्रबन्ध करना आदि बोर्ड के कार्य आयुर्वेदिक प्रगति के परिचायक हैं।

आयुर्वेदिक प्रगति में राज्य सरकार के महत्त्वपूर्ण सर्वश्रेष्ठ कदम की तरफ हम इंगित करना चाहते हैं। वह सरकार का एलोपैथिक तथा आयुर्वेदिक चिकित्सकों को

समान श्रेणी में रखना है । साथ ही बोर्ड के पंजीवद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सकों को वे सब अधिकार प्राप्त हैं, जो किसी भी पद्धति के चिकित्सकों को हो सकते हैं और वैद्यों को उन अधिकारों का उपयोग करना चाहिए । उनके अतिरिक्त राज्य सरकार ने मेडिकल स्कूल तथा आयुर्वेदिक स्कूल के स्नातकों को समान वेतन मान देकर अपने राज्य में आयुर्वेद का सिर ऊँचा किया है । यही नहीं किन्तु क्षेत्रों में हमारे स्नातकों के अधिकार उनसे भी अधिक व्यापक हैं । वे रजिस्टर्ड हो सकते हैं तथा रजिस्टर्ड चिकित्सकों के सभी अधिकारों का उपयोग कर सकते हैं, जब कि ऐलोपैथी के त्रैवार्षिक स्नातकों के अधिकार सीमित तथा नियमित हैं । यद्यपि यह परिस्थिति उत्साहवर्द्धक है पर इसमें संदेह नहीं कि यह विल्कुल अपर्याप्त है ।

हम सर्वप्रथम यहां आयुर्वेद विभाग का आयुर्वेद संचालक स्वतन्त्र देखना चाहते हैं । आज के स्वास्थ्य तथा चिकित्सा विभाग के द्वारा आयुर्वेदिक योजनाओं को पूर्ण करने में जो उपेक्षा तथा विलम्ब होता है उसका शीघ्रातिशीघ्र अन्त होना चाहिए । अभी राज्य सरकार ने यहां स्वास्थ्य बीमा योजना चालू की है । पर वैद्यों की नियुक्ति इसमें कहीं नहीं हो रही है । इस योजना में वैद्यों का भी उपयोग करने की मांग हम राज्य सरकार से करते हैं । वैद्यों को बहुत दिनों से जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, उसमें से एक यह है कि राज्य के आबकारी विभाग के कुछ कानूनों के अन्तर्गत वैद्यों को औषधि के उपयोग के लिए संखिया, अफीम, भांग आदि की प्राप्ति में बड़ी दिक्कतें हो रही हैं । इसमें व्यंगात्मक तत्त्व तो यह है कि राज्य के बाहर की फार्मेसियां उक्त द्रव्यों से बनी हुई औषधियाँ सस्ती दरों में यहाँ वेच कर माला-माल हो रही हैं, पर राज्य सरकार के रहने वाले वैद्यों तथा कार्यालयों को उक्त औषधियों का बनाना असम्भव हो रहा है । हम राज्य सरकार से जोर देकर कहना चाहते हैं कि इस परिस्थिति को वह शीघ्र से शीघ्र दूर करे और राज्य के वैद्यों तथा कार्यालयों को उक्त द्रव्य बिना चुंगी लिए बाहर से मँगाने की छूट दे दे ताकि प्रतियोगिता में हम पीछे नहीं रह जायं और साधारण वैद्य अपनी औषधियों का स्वतन्त्रता पूर्वक निर्माण तथा उपयोग कर सकें ।

यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि आयुर्वेद की सबसे बड़ी आवश्यकता आज अनुसंधान की है और हमें जहां तक ज्ञात है, हमारी राज्य सरकार इस दिशा में विचार कर रही है । अभी नागपुर विश्वविद्यालय ने भी एक स्थान इसके लिए प्रारम्भ किया है । हम उसकी सफलता की कामना करते हैं, पर यह जरूर कहना चाहते हैं कि कार्यपरिसीमा को देखते हुए यह प्रारम्भ अत्यन्त लघु है । हमारी सम्मति में राज्य सरकार तथा विश्व विद्यालय परस्पर सहयोग पूर्वक इस दिशा में बहुत बड़ा कदम उठावें तभी अभीष्ठ फल की प्राप्ति हो सकती है ।

डा० लक्ष्मीपति का अभिनंदन

डा० ए० लक्ष्मीपति की ७५ वीं वर्षगांठ के उपलक्ष में उनको एक अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित करने का निश्चय किया गया है । अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की स्थायी समिति के सदस्य तथा आंध्र राज्य में विद्यापीठ की परीक्षाओं के संचालक आयुर्वेदाचार्य श्री मुक्कामल वेंकट शास्त्री ने हीरक जयन्ती

समारोह के संयोजक की हैसियत से इस सिलसिले में एक आवेदन प्रचारित किया है। अभिनन्दन ग्रन्थ के लिए अब तक अनेक महत्वपूर्ण लेख और निबंध प्राप्त हो चुके हैं। अभिनन्दन ग्रन्थ के अंग्रेजी लेखों का सम्पादन श्री शिवशर्माजी करेंगे। पंडित रामरक्ष पाठक तथा पं० बद्री विशाल त्रिपाठी को हिन्दी लेखों का तथा आयुर्वेदाचार्य श्री मुक्कामल शास्त्री को तेलगू लेखों का सम्पादक मनोनीत किया गया है। आगामी छः सप्ताहों में ग्रंथ-प्रणयन का कार्य सम्पन्न हो जायगा। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के विविध पहलुओं पर डा० ए० लक्ष्मीपति के भी कुछ वैज्ञानिक विवेचनपूर्ण निबन्ध रहेंगे। यह ग्रंथ दो खण्डों में प्रकाशित होगा—प्रथम खण्ड में हिन्दी और अंग्रेजी के निबंध होंगे और द्वितीय खण्ड में तेलगू के। डा० लक्ष्मीपति ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता देने का विद्यापीठ से अनुरोध किया और कहा है कि इस ग्रन्थ से आयुर्वेद की प्रगति में विशेष सहायता मिलेगी।

डा० लक्ष्मीपति की वर्षगांठ

डा० ए० लक्ष्मीपति की ७५ वीं वर्षगांठ के उपलक्ष में सारे आंध्र राज्य में धन्वन्तरि पूजन, जुलूसों और सभाओं का आयोजन हुआ और इस समारोह में अनेक प्रमुख वैद्यों तथा जन नेताओं ने योगदान किया। आंध्र आयुर्वेद परिषद् की ओर से समर्पित अभिनन्दन पत्र का उत्तर देते हुए डा० लक्ष्मीपति ने कहा कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान और आयुर्वेद विज्ञान का ४० वर्ष व्यापी गंभीर अध्ययन करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि आयुर्वेद विज्ञान अनेकांश में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से श्रेष्ठतर है। भारत की चिकित्सा संबंधी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति ग्रामीण वैद्यों से ही हो सकती है।

दिल्ली में आयुर्वेद को प्रोत्साहन

दिल्ली राज्य विधान सभा में बजट सम्बन्धी बहस का जवाब देते हुए स्वास्थ्य मंत्री डा० युद्धवीर सिंह ने कहा कि लोकप्रिय सरकार बनने के बाद इस राज्य में चिकित्सा के काम में शानदार तरक्की हुई है। उन्होंने बताया कि गिल्डर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि दिल्ली राज्य की आवश्यकताओं को देखते हुए यहां के अस्पतालों में ११,००० पलंग होने चाहिए। सरकार पिछले साल पलंगों की संख्या दुगुनी करके २५०० तक पहुँचा चुकी है और उम्मीद है कि चालू पंचवर्षीय योजना के अंत तक यह संख्या ५००० तक हो जाएगी। उन्होंने कहा "हम उस रास्ते पर चल चुके हैं जिस पर बढ़ते हुए अगले चार-पांच सालों में हम अपने लक्ष्य पर पहुँच जायंगे।

आपने मेडिकल कालेज के सुझाव का स्वागत किया और कहा कि "मैं इसे आगे बढ़ाने की पूरी कोशिश करूँगा। स्वास्थ्य मंत्री ने इरविन अस्पताल में डबल शिफ्ट चालू करने की भी घोषणा की जिससे सवेरे के समय रोगियों का जोर कम हो जायगा। आयुर्वेद को अधिकाधिक प्रोत्साहन देने की माँग का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा कि तिब्बिया कालेज पर सरकार ५० हजार रुपया खर्च कर रही है। उन्होंने सदन को विश्वास दिलाया कि मेरे वचन और कर्म में आप कोई अन्तर नहीं पायेंगे।

विधान सभा में प्रश्नोत्तर के समय डा० युद्धवीर सिंह ने श्री आनन्द राज सुराणा को बताया कि आयुर्वेदिक प्रणाली के अनु-

संधान के लिए सरकार के पास कोई योजना नहीं है, अलबत्ता तिब्बिया कालिज ने एक योजना भेजी है जिस पर विचार किया जा रहा है।

अलकोहल मिश्रित दवाओं का आयात

जिन राज्यों में अलकोहल मिश्रित शराबों की खपत पर सामान्यतः प्रतिबन्ध लागू है उनमें अलकोहल मिश्रित दवाओं के आयात के लिए एक विधेयक लोक सभा में वाणिज्य व उद्योग मंत्री श्री एन० कानूनगो ने पेश किया है। इस विधेयक में केन्द्रीय सरकार को अन्तः राज्य व्यापार में आने वाली अलकोहल मिश्रित दवाओं के आवागमन तथा बिक्री के नियमन के लिए नियम तैयार करने का अधिकार दिया गया है।

इन नियमों में अलकोहल मिश्रित दवाइयों के आवागमन के सम्बन्ध में लाइसेंसिग तथा नियन्त्रण के अन्य प्रकारों की प्रणाली की व्यवस्था की जायगी जिससे "निषिद्ध राज्यों" में अलकोहल मिश्रित दवाइयों व अन्य चीजों के आयात का नियमन इस प्रकार किया जाय जिससे उनका दुरुपयोग नहीं किया जा सके।

विधेयक में उद्देश्यों तथा कारणों पर प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि जिन राज्यों में मद्य-निषेध लागू है उन्होंने केन्द्रीय सरकार को लिखा है कि दवाइयों तथा अन्य चीजों का, जिनमें किसी-न-किसी रूप में अलकोहल है, शराब के रूप में अधिकाधिक उपयोग बढ़ रहा है, जिसका जनता के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। राज्यों के बाहर से ऐसी चीजों के आयात पर कोई नियन्त्रण-अधिकार न होने के कारण मद्य-निषेध का उद्देश्य व्यर्थ हो जाता है। सन् १९४० का औषध अधिनियम संबंधी कानून अलकोहल मिश्रित सामग्रियों के अन्तः राज्य आवागमन पर नियन्त्रण के लिए पर्याप्त नहीं है।

विधेयक के अनुसार नशे की चीज वह कोई भी दवाई मानी जायगी जिसमें अलकोहल या शराब मिली हो। प्रस्तावित कानून के अन्तर्गत अपराध किए जाने के लिए एक वर्ष तक कारावास दण्ड या १००० रुपए तक जुर्माना या दोनों की व्यवस्था की गई है।

राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन द्वारा वैद्यों के पंजीकरण में श्रेणीभेद का तीव्र विरोध

राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन ने एक प्रस्ताव के द्वारा वैद्यों के पंजीकरण में श्रेणी भेद को व्यर्थ बतलाकर समस्त वैद्यों को एक ही श्रेणी में पंजीकरण करने का राजस्थान सरकार से अनुरोध किया है। प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए आचार्य नित्यानन्द ने बतलाया कि वैद्यों में श्रेणीभेद के द्वारा फूट डाल कर आयुर्वेदोन्नति में बाधा डालने की दुराकांक्षा इस प्रस्ताव के बाद दूर हो जानी चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह वैद्यों की इस न्यायोचित मांग के अनुसार ही वैद्यों के रजिस्ट्रेशन कार्य को आगे बढ़ाये। श्री सीताराम मिश्र ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि बम्बई प्रान्त में श्रेणी भेद को कोई स्थान नहीं है। वहां पर आयुर्वेद संसार के सर्वोत्तम वैद्य श्री आचार्य यादवजी और एक सामान्य वैद्य को एक ही श्रेणी में पंजीकृत किया गया है। प्रस्ताव के स्वीकृत होते ही वैद्यों में प्रसन्नता की एक लहर दौड़ गई।

रजिस्ट्रेशन एक्ट में श्रेणीभेद सम्बन्धी धाराओं में परिवर्तन कराने के लिए सरकार

से अनुरोध के अलावा विधान सभा के सदस्यों से भी सम्पर्क स्थापित करने के लिए आचार्य नित्यानन्द के संयोजकत्व में एक समिति की स्थापना सम्मेलन ने अपने एक दूसरे प्रस्ताव के द्वारा की।

श्वास शिविर की सफलता

श्वास-दम्मा एक जिद्दी व कठिन रोग है। हमारे गरीब भाइयों के लिये तो तीव्र कष्ट देने वाला है। स्वर्गीय जमनालाल जी बजाज द्वारा स्थापित माधव सेवा समिति सीकर के प्रधान वैद्य श्री प्रहलादराय जी आयुर्वेदाचार्य ने इस रोग के २०,००० से अधिक रोगियों की चिकित्सा करके अत्यन्त दुखी मानव समाज को नर्क से स्वर्ग में स्थापित कर दिया है। आपने हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी की चिकित्सा कई बार की है और सफलता प्राप्त की है। समाचार पत्रों के पाठकों ने बहुत बार पढ़ा होगा कि कलकत्ता की मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी ने श्री प्रहलादराय जी वैद्य द्वारा अनेक श्वास शिविर (कैम्प) कराये हैं। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि.के प्रधान संचालकों ने अपने जन्म स्थान गांव कांसली में ता० ६ मार्च से श्वास शिविर कराया। इसमें २६५ श्वास के रोगियों की चिकित्सा हुई। श्री प्रहलादरायजी ने प्रत्येक रोगी की परीक्षा करके दवा दी। प्रातः और सायं एक-एक पुड़िया दवा की पान के साथ दी गई। खाने में बिना नमक जौ की रोटी और पीने के लिये गर्म पानी। तीन दिन में ९० प्रतिशत रोगियों को पूर्ण लाभ रहा यदि किसी विदेशी डाक्टर ने ऐसी औषधि का आविष्कार किया होता तो तमाम संसार में तूफान आ जाता। परन्तु आयुर्वेद की दवा और उसका भी बिना मूल्ल वितरण होना आर्य-पद्धति होने के कारण राज्यनेता, पत्र सब चुप हैं। वैद्य समाज को तो विश्वास भी नहीं होता कि ऐसी श्रेष्ठ दवा हमारे खजाने में भी है।

श्री प्रहलादराय जी बिना मूल्य और बिना निजी परिश्रम लिये इस काम को तीन वर्ष से कर रहे हैं। करीब २०,००० रोगियों को आरोग्य दे चुके हैं। इस ऋषिकल्प महापुरुष के चरणों में मेरा तो स्वयं नतमस्तक होकर बिना प्रेरणा ईश्वर से मंगल कामना होने लगती है और ऐसे परोपकारी भाई के कार्य से वैद्य के नाते गर्व का अनुभव होता है।—रामनारायण वैद्य श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० झांसी।

संक्षिप्त-समाचार

—डाकोनिया धर्मशाला भागलपुर में दि० २८-३-५५ को वैद्य तथा हकीमों की एक सार्वजनिक सभा श्री शचीन्द्रभूषण शास्त्री की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई जिसमें ३५ वर्षों से चलने वाले जिला परिषद् के आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय को बिना कारण एलोपैथिक औषधालय में परिवर्तित करने की निन्दा की गई तथा प्रान्तीय चिकित्सा विभाग और जिला परिषद् से अनुरोध किया गया कि उक्त औषधालय आयुर्वेदिक ही रहने को दिया जाय तथा उसे अधिक समुन्नत एवं व्यवस्थित बनाया जाय।

—मद्रास इंडिजिनस कालेज से ग्राम वैद्यों की शिक्षा समाप्ति पर एक सभा २२-३-५५ को डा० लक्ष्मीपति जी के सभापतित्व में हुई जिसमें उन्होंने ग्राम वैद्यों के ज्ञान में वृद्धि करने पर बल दिया। आपने ग्राम वैद्यों की संख्या को बढ़ाना आवश्यक बताया और कहा कि आधुनिक. शास्त्र की

अच्छी उपयोगी बातों की जानकारी भी ग्राम-वैद्यों को कराई जानी चाहिए ।

—श्री कल्याण कारिणी वैद्य सभा ब्यावर की २२-३-५५ की बैठक में आगामी वर्ष के लिये वैद्यराज श्री रविदत्त को सभापति श्री चिरंजीलाल जी को उपसभापति तथा श्री मुकुन्दलाल आयुर्वेदाचार्य एवं श्री भंवरलाल शास्त्री, रमेशचन्द्र लाटा को क्रमशः मंत्री और उपमंत्री चुना गया ।

—फतहपुर जिला वैद्य सम्मेलन की स्थायी समिति में सर्व सम्मति से एक प्रस्ताव पास कर लखनऊ में मेडिकल कान्फ्रेंस में दिये गए आयुर्वेद 'विरोधी भाषणों और स्वार्थपूर्ण प्रस्तावों की निन्दा की गई तथा सरकार से आयुर्वेदिक शिक्षा की वृद्धि तथा प्रचार के लिये उदारता पूर्वक महाविद्यालय औषधालय, सेनिटोरियम शल्य कर्म सहित खोल कर आयुर्वेद के अष्टांगपूर्ण चिकित्सक तैयार करने का अनुरोध किया गया ।

—अ० भा० आयुर्वेद कन्वेशन का द्वितीय अधिवेशन लखनऊ में १५-१६ अप्रैल को सम्पन्न हुआ ।

—धार-जिला आयुर्वेद मंडल के अध्यक्ष वैद्य गोपाल श्रोतीय ने एक स्वास्थ्य कर योजना जिसमें आयुर्वेदानुसार जनता के स्वास्थ्य संरक्षण तथा संक्रामक रोगों के प्रतिकार इत्यादि विषयों का समावेश किया गया है तथा आयुर्वेदिक शिक्षा एवं पाठ्यक्रम के विषय में सुझाव देशी औषधि परिषद तथा मध्य भारत स्वास्थ्य विभाग को भेजे गए हैं तथा उन्हें कार्यान्वित करने की प्रार्थना की गई है ।

—हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन की कार्यकारिणी का एक अधिवेशन श्री यशवन्तराय वैद्य के सभापतित्व में दिनांक ६-३-५५ को माजरा में सम्पन्न हुआ जिसमें गत वर्ष का आयव्यय तथा आगामी वर्ष के लिये बजट स्वीकृत किये गये । आगामी वार्षिक अधिवेसन चम्बा में २८ तथा २९ मई को करने का निश्चय हुआ जिसके लिये स्वागत समिति का निर्माण किया गया । अधिवेशन के उद्घाटन तथा अध्यक्षता के लिये क्रमशः हिमाचल प्रदेश के उपराज्य पाल तथा श्री शिवशर्मा जी आयुर्वेद वृहस्पति से प्रार्थना की गई है । समिति ने तीन प्रस्ताव भी पास किये हैं जिनमें हिमाचल स्वास्थ्य विभाग से द्वितीय पंचवर्षीय योजना में जन-स्वास्थ्य पर किये जाने वाले व्यय का कम से कम २५ प्रतिशत आयुर्वेद के लिये सुरक्षित रखने, प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत हिमाचल के प्रत्येक जिले में एक एक विशाल आयुर्वेद चिकित्सालय जिसमें रोगी निवास की व्यवस्था हो खोलने तथा आयुर्वेद विभाग को एलोपैथी से पृथक कर आयुर्वेद विशेषज्ञों की अध्यक्षता में स्थापित करने, सम्मेलन की ओर से आयोजित स्वास्थ्य सम्मेलनों में राजकीय चिकित्सालयों में कार्य करने वाले वैद्यों को सम्मिलित होने की सुविधायें देने, तथा सरकारी कर्मचारियों पर हुए आयुर्वेदिक औषधियों का व्यय देने की शासन से मांग की गई ।

—राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के अवसर पर २२ फरवरी को श्री सनातनधर्म आयुर्वेद महाविद्यालय, बीकानेर की ओर से भी अन्य संस्थाओं के साथ आचार्य श्री यादव जी महाराज का अभिनन्दन प्रिंसिपल श्री पद्मनाभ जी शास्त्री ने किया । अभिनन्दन के पश्चात् श्री यादव जी के करकमलों द्वारा सम्मेलन के पंडाल में विद्यालय के

भूतपूर्व स्नातकों का पदवीदान समारोह भी सम्पन्न हुआ।

—श्री काशी वैद्य सभा का बारवां वार्षिकोत्सव ता० १६-३-५५ को आचार्य श्री यादव जी त्रिकम जी के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। आयुर्वेद विभाग मारवाड़ी अस्पताल के अध्यक्ष पं० दुर्गादत्त जी शास्त्री ने स्वागत भाषण किया। सभा के मंत्री श्री ताराशंकर जी ने कार्यविवरण पढ़कर सुनाया तथा श्री कैलाशनाथ जैतली ने प्रस्तावित आयुर्वेद विज्ञान परिषद् के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। बम्बई आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री ने परिषद् का उद्घाटन करते हुए परिषद् का कार्य बढ़ाने पर जोर दिया और कहा कि वैद्यों को सतत् शास्त्र का परिशीलन करते रहना चाहिए। वैद्य अपने रोगियों की चिकित्सा व्यवस्था का रिकार्ड रखें तथा उसे परिषद् में विचार विनिमय के अनन्तर प्रकाशित किया जाए। क० श्री प्रताप सिंह जी ने कहा कि हमारे त्रिदोष सिद्धान्त का विकास त्रिधातु के रूप में पश्चिम में भी हो रहा है। प्रांतीय इण्डियन मेडिसिन बोर्ड के अध्यक्ष पं० दरबारीलाल जी ने बताया कि आयुर्वेद एक सजीव चिकित्सा प्रणाली है जिसमें शरीर के साथ मन, बुद्धि और आत्मा की चिकित्सा की व्यवस्था की गई है। जो वैज्ञानिक वात, पित्त,कफ को प्रत्यक्ष न देखने के कारण आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहते हैं वे स्वयं अज्ञान में हैं। उनका विज्ञान भी नित्य शरीर में रहने वाले मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि को प्रत्यक्ष न कर सकने के कारण अवैज्ञानिक ही है।

राष्ट्रपति के चिकित्सक पद्म विभूषण श्री पं० सत्यनारायण जी शास्त्री ने कहा कि वैद्य शब्द का तात्पर्य १४ विद्याओं के ज्ञाता से है। इसे छोड़कर अपने को डाक्टर लिखना अपनी अवहेलना और जनता को प्रवंचित करना है। सभापति श्री यादव जी ने कहा कि धर्मो रक्षति रक्षतः की तरह शास्त्र रक्षति रक्षतः है। आयुर्वेद शास्त्र की रक्षा करने वाले यदि आत्म बल पूर्वक कार्य करते हुए आयुर्वेद की रक्षा करें तो वह कभी लुप्त नहीं हो सकता। आयुर्वेद अजर-अमर है।

—भोपाल विधान सभा में श्री एस० डी० सक्सेना ने कहा कि सरकार द्वारा देसी चिकित्सा की ओर खास ध्यान देना चाहिए। राज्य में ६ आयुर्वेदिक चिकित्सालय हैं जिन्हें दवाइयों के लिए केवल २,५०० रु० दिये जाते हैं।

दीन पल्भ

विशुद्ध वनस्पतियों से निर्मित यह महौषधि यकृत से पित्त के आंतों में उचित मात्रा में न पहुँचने से उत्पन्न होने वाले विकारों यथा कोष्ठबद्धता, शरीर का विषयुक्त होना, किसी काम में मन न लगना, उदासी, दुर्बलता, हाथों पैरों तथा कमर आदि में दर्द, हृदय में जलन, घबराहट इत्यादि में अत्यन्त लाभप्रद है। दीनपल्भ के ३ सप्ताह के सेवन से ही रक्त का प्रवाह ठीक होकर सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं। यह औषधि २ माशा से लेकर ६ माशा तक आवश्यकतानुसार दूध या जल से प्रातःकाल अथवा सायंकाल सोते समय सेवन की जाती है। विशेष विवरण के लिये लिखें।

दीनबन्धु कैमिकल वर्क्स,
तुमसर, मध्यप्रदेश
मध्यप्रदेश के प्रमुख विक्रेताः—
वैद्य ब्रदर्स, इतवारी, नागपुर।

—बीकानेर राज्य आयुर्वेद सम्मेलन के १२ वें अधिवेशन पर आचार्य श्री यादव जी महाराज की हीरक जयन्ती के अवसर पर गत २२ मार्च को श्री स्वामी केवलराम सेवा निकेतन ट्रस्ट की ओर से श्री आचार्य जी को अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया जिसे श्री वैद्य ठाकुरप्रसाद शर्मा ने पढ़ा। ट्रस्ट की ओर से श्री स्वामी केवलराम जी द्वारा ५०१ रु० भी श्री आचार्य जी को भेंट स्वरूप समर्पित किए गए।

—राजपूताना प्रांतीय नि० भारतीय विद्यापीठ स्नातक सम्मेलन, बीकानेर के अध्यक्ष वैद्यराज पं० सीताराम जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य ने अपने एक वक्तव्य में माँग की है कि राजस्थान सरकार डिस्ट्रिक्ट बोर्डों द्वारा संचालित औषधालयों, सरकारा आयुर्वेदिक कालेजों तथा अन्य सरकारी नियुक्तियों के समय विद्यापीठ के स्नातकों व भिषगाचार्यों में कोई अन्तर न समझ कर एक ही दृष्टिकोण से सरकारी नियुक्तियों के समय ध्यान रखें !

—ज्ञात हुआ है कि भारत सरकार के पुनर्वास मंत्रालय ने लाजपतनगर, नई दिल्ली में ७२ बिस्तरों का एक निःशुल्क आयुर्वेदिक अस्पताल बनाने के लिए १० एकड़ भूमि निश्चित कर दी है। यह अस्पताल मूलचंद खैरातीराम ट्रस्ट द्वारा निर्मित किया जाएगा। शिलान्यास आगामी मास किया जाएगा।

४५ वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम REGD.

गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, तैल, मलम, अंजन, अवलेह, आसवारिष्ट तथा पेटेंट वगैरह सैंकड़ों आयुर्वेदिक औषधियाँ हाथ से तथा उपलों की अग्नि से बड़े जत्थे में तैयार की जाती हैं। यहां की दवाइयां सरकारी, म्युनिसिपल तथा धर्मार्थ दवाखानों आदि में तथा विदेशों में प्रचुर प्रमाण में जाती हैं। विद्वान वैद्य, हकीम तथा एलोपैथ डाक्टर गोंडल रसशाला की औषधियों के उपयोग से रोगियों को रोगमुक्त कर यश तथा धन कमा रहे हैं। प्रजा के हृदय में रसशाला ने विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। रोग के लिए सलाह मुफ्त दी जाती है, हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी सूचीपत्र आज मंगाइये। बम्बई की शाखायें :—

शाखा नं० १ गोंडल रसशाला औषधाश्रम,
छोटालाल भवन, ४१६ कालबा देवी रोड,
मुंबई २।

शाखा नं० २ गोंडल रसशाला औषधाश्रम
१७ कोमरश्यल चेम्बर्स, मस्जिद बन्दर रोड,
जकरिया मस्जिद सामने, मुंबई ३।

वैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ, जो अभी प्रकाशित हुआ है

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान

(पूर्वार्ध)

आयुर्वेद-मार्तण्ड वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य-बम्बई

किसी भी रोग की चिकित्सा के पूर्व रोगों के निदान का ज्ञान होना परमावश्यक है। रोग के सम्यक् निर्णय के बिना रोगी की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

इसीलिए व्याधि-विज्ञान (निदान-रोग विनिश्चय) आयुर्वेद के प्रधान विषयों में सम्मिलित एक उपयोगी विषय है। इस ग्रन्थ में व्याधि विज्ञान के साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधियाँ कितने प्रकार की होती हैं; निज, स्वाभाविक और आगन्तुक व्याधियों में क्या भेद है, स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियों के स्वरूप क्या हैं; प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और समुत्थान भेद से १० प्रकार के रोगानीक कैसे हो जाते है; रोगों का आश्रय क्या है, आदि अनेक ज्ञातव्य बातें इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णित हैं। यह पूर्वार्ध खण्ड पांच अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें अध्ययन कर लेने के बाद निदान सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य सिद्धांत करामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं। आयुर्वेदीय प्रेमी विद्वान् और विद्यार्थी, दोनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है।

इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

डिमाई साइज के ११२ पृष्ठ की सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य मात्र २॥)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

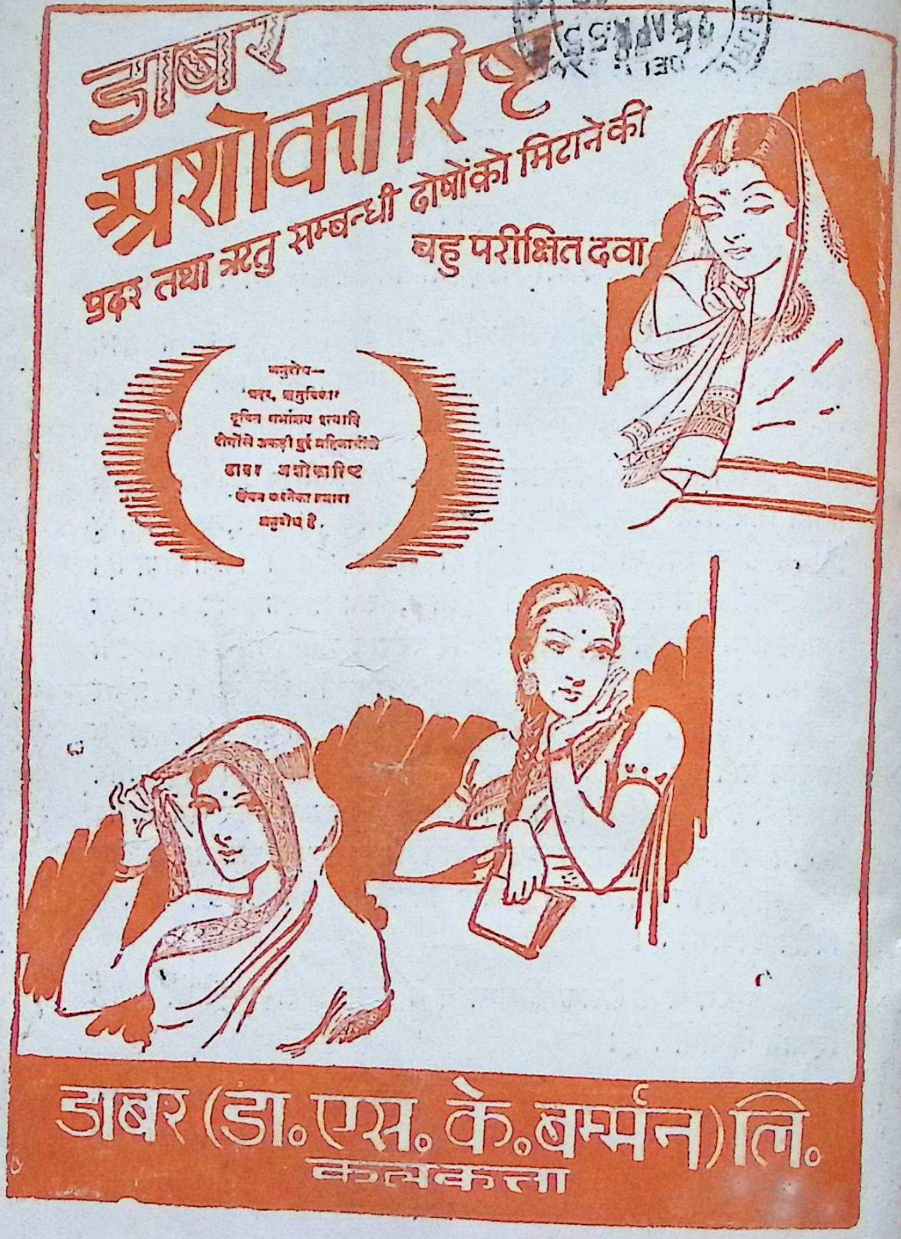

डाबर
अशोकारिष्ट
प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी
बहु परीक्षित दवा

अनुरोध—
'प्रदर, ऋतुचिन्ता'
दूषित गर्भाशय इत्यादि
दोषोंसे जकड़ी हुई महिलाओंको
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेका हमारा
अनुरोध है.

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
कलकत्ता

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—नया हिन्दुस्तान प्रेस, दल्ली।

गुरुकुल पत्रिका
४२
५।४।९२

आयुर्वेद

महासम्मेलन पत्रिका

[illegible]

विषय-सूची

१. सम्पादकीय		२२५
२. ४० वें अधिवेशन सम्बन्धी आवश्यक सूचनायें		२२९
३. शुद्ध आयुर्वेद की मांग सामयिक है	श्री गुलराज शर्मा मिश्र	२३३
४. केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय का कर्त्तव्य	श्री मक्खनलाल शास्त्री	२३५
५. लुभावना या दुरूह	श्री गौरीशंकर गुप्त	२३८
६. वैदिक काल के ज्वर	आचार्य नित्यानन्द	२३९
७. संक्रामक रोग और आयुर्वेद	श्री रोशनलाल शर्मा	२४१
८. लू और हैजे से बचें	श्री मुन्नालाल मालवीय	२४७
९. आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त	श्री लक्ष्मीनारायण पचौरी	२५०
१०. अधिका धमनी प्रतिहृतिः	श्री एस० वी० राधाकृष्ण शास्त्री	२५६
११. आयुर्वेद-लोक		२६१
१२. साहित्य-सत्कार		२७१
१३. अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन विद्यापीठ १९५३-५४ वर्षीय आय-व्यय एवं सन्तुलनपत्र		२७३

---

४० वें महासम्मेलनाधिवेशन, त्रिवेन्द्रम में अवश्य पधारिये

गत मास महासम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित सूचना के अनुसार आशा है कि २२, २३ तथा २४ मई को त्रिवेन्द्रम में होने वाले महासम्मेलनाधिवेशन में भाग लेने के लिये आपने प्रस्थान की पूरी तैयारियां करली होगीं। अधिवेशन की स्वागत समिति की ओर से आपको अधिवेशन में पधारने के लिये निमंत्रण पत्र तथा अधिवेशन का विस्तृत कार्यक्रम तो मिला ही होगा साथ ही कन्सेशन टिकट प्राप्त करने के लिये महासम्मेलन प्रधान मंत्री द्वारा हस्ताक्षरित प्रमाण पत्र तथा सम्बन्धित रेलवे अधिकारियों की सूची सहित कन्सेशन प्राप्त करने की कार्य-विधि भी आपको मिल चुकी होगी और तदनुसार आपने कन्सेशन टिकट प्राप्ति का आवश्यक प्रबन्ध भी कर लिया होगा।

आयुर्वेद के भावी उत्कर्ष से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर सामुहिक विचार विनिमय के लिये अधिवेशन में आपकी उपस्थिति परम वांच्छनीय है। अतएव आपसे सानुरोध निवेदन है कि आप त्रिवेन्द्रम में अवश्य पधारें और अधिवेशन को सफल बनाकर आयुर्वेद के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

।। श्री धन्वन्तरयेनमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल, भिषगाचार्य-धन्वन्तरि
संस्कृतविभाग सम्पादकः—श्री वा० बा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४१
अंक ५
दिल्ली, वैशाख २०१२, मई १९५५
वार्षिक ५)
एकप्रति ।।)

सम्पादकीय

४० वां अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

प्रत्येक वर्ष होने वाले यह वार्षिक अधिवेशन किसी एक जीवित संस्था के लिए परमावश्यक हैं । जब उसके सदस्य वर्ष भर बाद फिर एक स्थान पर एकत्रित होते हैं तो संस्था के पिछले वर्ष का पूरा लेखा-जोखा उनके सामने आ जाता है और भूत से अनुभव लेकर भविष्य के लिए नीति निर्धारित करने में सुविधा रहती है तथा अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए और भी अधिक प्रयत्नशील होते हैं ।

यह प्रसन्नता की बात है कि इस वर्ष आयुर्वेद महासम्मेलन का ४० वां वार्षिक अधिवेशन २२ से २४ मई तक त्रिवेन्द्रम में हो रहा है । त्रिवेन्द्रम त्रावणकोर-कोचीन राज्य की राजधानी है । भारत के पश्चिमी समुद्री किनारे पर यह सुरम्य प्रदेश स्थित है, जहां अरब सागर सदैव ही अपनी उत्ताल तरंगों से इस प्रदेश के पद-प्रक्षालन करता रहता है । यह सुन्दर सागर का तट है । यहां की हरित आभा अपनी सुरम्यता से मन को मुग्ध करती रहती है । इस प्रदेश की मिट्टी ने ऐसे ऐसे होनहार सपूतों को जन्म दिया है कि जिनका भारत की सभ्यता संस्कृति और राजनीति में अपना विशेष स्थान रहा है । देश के सब प्रदेशों से अधिक मात्रा में यहां के रहने वाले नर-नारी शिक्षित हैं—धार्मिक दृष्टि से भी इस प्रदेश का अपना एक विशेष स्थान है । इतनी विशेषता लिए हुए यह प्रदेश हमारे वार्षिक अधिवेशन का स्थल चुना गया है यह आयुर्वेदजगत के लिए प्रसन्नता तथा गौरव की बात है ।

हमारे लिए सबसे अधिक प्रसन्नता का

विषय तो यह है कि पिछले कई वर्षों की भांति इस वर्ष के लिए भी महासम्मेलन के उत्तरदायित्वपूर्ण प्रधान पद को फिर से निर्विरोध श्री पं० शिवशर्मा जी को सौंपा गया है। शर्मा जी की प्रतिभा सर्वविदित है और उनकी राजनैतिक तीव्र बुद्धि का लोहा अपना प्रभाव दिखा रहा है। भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में उनके द्वारा किए गए प्रयत्नों का असर प्रांतीय सरकारों के क्रियात्मक स्वरूप में सामने है। अत्यधिक कार्य-व्यस्त रहते हुए भी पंडित जी ने पुनः इस पद को स्वीकार कर आयुर्वेद के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा और कर्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया है। अब आयुर्वेद जगत का कर्तव्य हो जाता है कि वह अधिक से अधिक संख्या में देश के विभिन्न भागों से चलकर इस अधिवेशन में सम्मिलित हों और अपने कर्तव्य को निभाएं। आयुर्वेदज्ञों के वहां जाने से जहां आयुर्वेद राजनीति में जान पड़ेगी वहां उन्हें अपने देश में आयुर्वेद के विस्तार तथा चिकत्सा पद्धति के ढंग से परिचित होने का सुअवसर भी मिलेगा।

आयुर्वेद जगत के सामने अनेकों ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें हमें अधिक से अधिक संख्या में इकट्ठे होकर सुलझाना है। सबसे अधिक गम्भीर प्रश्न है केन्द्रीय सरकार को उसके द्वारा आयुर्वेद के लिए अपनाये गए संकुचित मार्ग से हटाकर उचित मार्ग पर लाना। ऐसा जन-आन्दोलन द्वारा ही किया जा सकता है और यह जन-आन्दोलन तब ही सफल हो सकता है जब कि हमारे प्रान्तीय संगठन सुदृढ़ और सुसंगठित हों तथा उनका केन्द्रीय संगठन से अटूट सम्बन्ध हो। प्रत्येक प्रान्त दूसरे प्रान्तों की गति विधि से परिचित रहे तथा एक जैसी ही नीति निर्धारित कर उसके अनुकूल कार्य संचालित हो।

दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न सारे भारत के लिए आयुर्वेदिक शिक्षा पद्धति को संयोजित करने के लिए एक केन्द्रीय समिति के निर्माण का है जो शीघ्र से शीघ्र प्रयत्नशील होकर सब प्रान्तों के लिए एक जैसी शिक्षा नीति का निर्धारण करे। साथ ही यह भी आवश्यक है कि यत्र तत्र बिखरे हुए आयुर्वेदीय ग्रंथों का संकलन किया जाय तथा ऐसे ग्रन्थों को एकत्रित कर उनके प्रकाशन की सुव्यवस्था की जाय। हमें ऐसे प्रयत्न भी करने चाहियें कि आयुर्वेद के अनेकों विद्वानों के पास जो उनके अपने अनमोल अनुभव पड़े हों उनको प्रकाश में लाया जाय। इससे आयुर्वेद का भला भी होगा तथा जनता को भी लाभ पहुँचेगा।

भारत की दूसरी पँचवर्षीय योजना आजकल बन रही है—उसमें आयुर्वेद को पर्याप्त स्थान मिले ऐसे साधनों की खोज भी की जानी चहिए। आयुर्वेद विश्वविद्यालय के निर्माण की भी गंभीर समस्या आयुर्वेदज्ञों के सामने है। इस विषय पर भली प्रकार विचार विनिमय होकर एक अन्तिम निश्चय कर लिया जाना चाहिए जिसे कार्यान्वित करने में कोई कोर-कसर न रखी जाये। विश्वविद्यालयके निर्माणके बिना आयुर्वेद की गति नहीं अतः वैद्यसमाज को ऐसा संगठित प्रयत्न करना चाहिए कि विश्वविद्यालय का निर्माण अदूर भविष्य में ही हो जाये।

ऐसे अनेकों प्रश्न हैं आयुर्वेद जगत के सामने जिन्हें हल करना है। एक नयी चेतना का, शक्ति का उदय हो, नवीन आशायें जगें और नये नये विश्वास तथा

आत्मशक्ति के साथ दृढ़ निश्चय को लेकर आयुर्वेद के पुनरुद्धार में जुट जायें तो हमारी सफलता निश्चित होगी अन्यथा कर्तव्य विमुखता हमारे मस्तक सर आयुर्वेद विनाश की कालिमा पोत देगी ।

आइये हम सब आज फिर इस सम्मेलन में एकत्रित होकर जागरूक प्रहरी की तरह कर्तव्यनिष्ठ होकर प्रतिज्ञा लें कि हम आयुर्वेद को उसके वांच्छित पद पर आरूढ़ करने में ही सदैव प्रयत्नशील रहेंगे ।

पाश्चात्य विज्ञान का नंगा चित्र

चिकित्सा विज्ञान की अद्भुत सफलता असफलता में करवट ले रही है ।

“१३ अप्रैल को आरबर हिचीरन की एक घोषणा में बताया गया कि पिटसबर्ग विश्वविद्यालय के डा० जोनास साल्क ने शिशु-पक्षाघात की चिकित्सा के लिए एक इंजेक्शन तैयार किया है, जो हानि रहित, प्रभावशाली और-रोगनिवारक क्षम है । इस औषधि का प्रयोग २० लाख बच्चों पर सफलतापूर्वक किया गया है ।

अमरीका में शिशु-पक्षाघात के बारे में निकाली गई इस नई औषधि पर जिसे कि चिकित्सा विज्ञान की प्रगति में एक महत्वपूर्ण कदम समझा जाता है, बड़ी प्रसन्नता मनाई गई ।

जिस समय अमरीका की रेडियो और टेलीविजन सेवाओं ने २० लाख बालकों पर परीक्षण के बाद इस औषधि की सफलता की अधिकृत घोषणा की तब सिराकूज (न्यूयार्क) के चर्चों में घण्टे और भौंपू बजाए गए ।

इस औषधि के परिणामों का मूल्यांकन करने वाले डा० थोम्स फ्रांसिस ने मिशिगन विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की एक सभा में भाषण देते हुए कहा कि गत बसन्त में किए गए परीक्षणों ने यह प्रकट कर दिया है कि यह इंजेक्शन सुरक्षित, प्रभावशाली और रोग निवारक क्षम है । अब इसमें कोई सन्देह नहीं कि बच्चों को अब शिशु पक्षाघात से बचाने के लिये सफल इंजेक्शन दिया जा सकता है । कीटाणु पक्षाघात रोकने के लिए यह औषध ८० से ९० प्रतिशत तक मामलों में सफल है ।

पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय के डा० जोनास साल्क ने जो ४० वर्ष की आयु के हैं तथा ३ लड़कों के पिता हैं, अपने एक पृथक् प्रतिवेदन में बताया कि उनका विश्वास है कि यह औषध शत-प्रतिशत प्रभावी है तथा शिशु पक्षाघात पर पूर्ण विजय प्राप्त की जा सकती हैं ।

इस प्रतिवेदन का प्रकाशन इस व्याधि के प्रसिद्ध शिकार राष्ट्रपति फंकलिन डा० वेल्ट की दशम निधन तिथि पर किया गया ।

समाज कल्याण-मंत्री श्रीमती ओवर्टा कल्प होबी ने औपचारिक रूप से इस औषधि को, जिसका नाम निर्माता के नाम पर साल्क इंजेक्शन रखा गया है, सामान्य व्यवहार की अनुज्ञा प्रदान कर दी है । श्रीमती होवी ने इसके निर्माण के लिये ६ औषध कम्पनियों को लाइसेंस दिया है । जानकार सूत्रों के अनुसार आगामी १२ मास में इसका निर्यात भी प्रारम्भ हो जायगा ।” (हिन्दुस्तान)

१३ अप्रैल को सारे संसार ने इस समाचार की बड़ी प्रसन्ता के साथ सुना और बहुतों ने राहत की सांस ली । पाश्चात्य

अन्वेषकों ने बड़े गर्व से यह घोषणा की कि उन्होंने मानव–कल्याण के एक और शत्रु पर विजय प्राप्त कर ली है। किन्तु उनकी इस प्रसन्नता की फड़फड़ाहट अभी उनके होटों पर से मिटने भी न पायी थी कि केवल १७ दिन पश्चात ३० अप्रैल को न्यूयार्क से एक समाचार प्रकाशित हुआ जो इस प्रकार है :

"यहाँ जिन बच्चों को साल्क टीका लगाया गया उनके लिए लकुआ निरोधक गामा ग्लोबुलीन की सुइयाँ डाक्टरों के कहने पर शीघ्र भेजी गई हैं। कारण यह है कि लकवे का साल्क टीका लाभकारी होने के बजाय हानिकारक सिद्ध हुआ है और अब सरकार ने उसके प्रयोग पर पाबन्दी लगादी है।

न्यूयार्क राज्य के वेस्टचेस्टर जिले में डाक्टरों ने कुछ बच्चों को कैलिफ़ोर्निया की कटर प्रयोगशाला द्वारा तैयार किया हुआ साल्क टीका लगाया था। इनमें से १६ को लकवा हो गया।

कोलम्बस (जार्जिया) में भी इण्डियानापोलिस की लिली फर्म द्वारा तैयार किया गया साल्क टीका लगाये जाने के बाद एक बच्चा लकवे का शिकार हो गया।

इदाहो राज्य में भी तीन बच्चों को, जिनके साल्क टीका लगाया गया था, लकवा होगया। इनमें से एक मर गया।" (हिन्दुस्तान)

इस सब कहानी को पढ़ जाने के पश्चात् इसपर और कुछ कहने की आवश्यकता हमें नहीं रह जाती। इसके शब्द स्वयं ही अपना स्पष्टीकरण कर रहे हैं। ४ मई के नई दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी पत्र स्टेट्समैन के मुख्य पृष्ठ पर छपे इसी वैज्ञानिक अनुसंधान के सम्बन्ध में इंगलैण्ड की सरकार की जागरूकता का भी समाचार पढ़ने को मिला। इसमें लिखा था "लन्दन में साल्क इन्जेक्शन के व्यवहार पर एकदम पाबन्दी लगादी गई है और वह अमेरिका से इस टीके के सम्बन्ध में और समाचार जानने का प्रयत्न कर रहे हैं क्योंकि अमेरिका में इस साल्क टीके से अभयदान पाये बच्चों को एकदम पक्षाघात हो गया है और कई शिशुओं की मृत्यु हो गई है।" यदि उपर्युक्त समाचार सत्य है तो हम जानना चाहेंगे कि उन लाखों बच्चों के जीवन से खेलने का उत्तरदायित्व किस पर है? मनुष्य गलती कर सकता है पर यह गलती साधारण नहीं है यह अक्षम्य अपराध है जिसकी पूरी जांच पड़ताल होनी चाहिए।

यह एक कहानी है उन वैज्ञानिक चमत्कारों की जिनकी विज्ञापनबाजी के चक्कर में पड़ कर हमारा देश ठगा जा रहा है, जिनका गुणगान राजकुमारी जी अलापा करती हैं। आधुनिकीकरण के पीछे मतवाले बन कर असत्य को भी सत्य मानकर मानव जीवन से खिलवाड़ की जारही है। जिनके लिए देश का अरबों रुपया प्रतिवर्ष लुटाया जा रहा है। क्या हम आशा करें कि हमारे भटके हुए नेता इससे सबक लेकर गलत रास्ते का परित्याग कर देंगे? अमेरिका तथा इंगलैंड के स्वास्थ्य विभाग प्रशंसा के पात्र हैं कि जिन्होंने जनता के अहित के समाचार की पहली लहर आते ही ऐसे घातक प्रयोगों को बन्द करने में जरा भी विलम्ब नहीं किया। हमारा स्वास्थ्य विभाग इससे शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

—कैलाशचन्द्र अग्रवाल

४०वां अखिल भारतीयायुर्वेद महासंमेलन त्रिवेंद्रम आवश्यक सूचनायें

अप्रैल मासीय पत्रिका में प्रकाशित सूचना के अनुसार अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का ४० वाँ वार्षिक अधिवेशन अब निश्चित रूप से २२ से २४ मई तक समारोह पूर्वक मनाया जा रहा है। अधिवेशन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के लिए रेलवे कन्सेशन की जो सुविधा अप्रैल की तिथियों के लिए रेलवे बोर्ड ने प्रदान की थी वह अब नवीन तिथियों के लिए भी स्वीकार कर ली गई है। रेलवे कन्सेशन के लिए महासम्मेलन प्रधान मन्त्री की ओर से आवश्यक प्रमाणपत्र, कन्सेशन प्राप्त करने की विधि तथा तत्सम्बन्धी रेलवे अधिकारियों की सूची, स्वागत समिति की ओर से अधिवेशन के लिए निमंत्रण पत्र तथा विस्तृत कार्यक्रम सब ही सदस्यों की सेवा में भिजवाए जा चुके हैं। आशा है वैद्यबन्धु महासम्मेलन के इतिहास में प्रथम बार प्राप्त हुई रेलवे कन्सेशन की इस सुविधा का लाभ उठा कर अधिकाधिक संख्या में अधिवेशन में सम्मिलित होकर आयुर्वेदोन्नत्यर्थ किये जाने वाले महासम्मेलन के प्रयत्नों में अपना अमूल्य योगदान कर अवश्य कृतार्थ करेंगे। रेलवे कन्सेशन प्राप्त करने से सम्बन्धित आवश्यक सूचनायें सदस्यों की सुविधार्थ यहां पुनः प्रकाशित की जा रही हैं।

देहली होकर त्रिवेन्द्रम जानेवाले वैद्यबंधुओं के लिए ग्रैंड ट्रंक एक्सप्रैस सुविधाजनक रहेगी जो देहली स्टेशन से सायंकाल ७ बज कर २५ मिनट पर चल कर झांसी, (रात्रि- २-४५), इटारसी (प्रातः ६-५०), नागपुर (दूसरे दिन सायंकाल ५-१७), बल्हारशा (रात्रि १०-१), वेजवाडा (तीसरे दिन प्रातः ७-१०) होती हुई तीसरे दिन सायंकाल ५-३० पर मद्रास पहुंचती है। मद्रास से त्रिवेन्द्रम के लिए सायंकाल ८-२५ पर गाड़ी चल कर त्रिचनापली मदुरा होती हुई अगले दिन सायंकाल ६-२५ पर त्रिवेन्द्रम पहुंचा देती है। बम्बई से जाने वाले वैद्यों को भी मद्रास से इसी गाड़ी में बैठना होगा।

देहली से त्रिवेन्द्रम तक एक ओर का पहिले दर्जे का किराया १४६-८-०, दूसरे दर्जे का ६४-११-० तथा तीसरे दर्जे का किराया ५०-६-० है। इसी प्रकार बम्बई से त्रिवेन्द्रम का पहिले दर्जे का १०५-४-० दूसरे दर्जे का ६६-११-० तथा तीसरे दर्जे का ३५-१३-० किराया है।

त्रिवेन्द्रम जाने के लिए यात्रा का मार्ग अपनी इच्छानुसार चुना जा सकता है। अर्थात् छोटे से छोटे या लम्बे से लम्बे किसी भी मार्ग से आप जा सकते हैं किन्तु जाने के लिए जिस मार्ग को आप चुनेंगे उसी मार्ग से लौटना भी होगा। मार्ग में आने वाले नगरों को देखने की इच्छा रखने वाले महानुभाव प्रथम १५० मील की यात्रा करने के पश्चात् फिर प्रत्येक १०० मील के अंतर पर ठहर कर ऐसा कर सकेंगे। प्रत्येक १०० मील की यात्रा के पश्चात् १ दिन के लिए रुका जा सकता है। किसी भी स्टेशन पर रुकते समय उसके स्टेशन मास्टर को अपना टिकट दिखाकर उसके हस्ताक्षर करा लेना आवश्यक है।

GOVERNMENT OF INDIA

Ministry of Railways
(Railway Board)

No. 4538-TC. New Delhi,
Dated 26-4-55

To
All Indian Railways

Sub :—Railway Concessions.

Ref :— Railway Board's letter No. 4538-TC dated 25-3-1955

The Railway Board are advised by the President, All India Ayurvedic Congress, Bombay, that the conference will now be held from the 22nd to 24th May 1955 instead of the last week of April, 1955.

Necessary instructions may be issued to the staff concerned immediately.

Sd/- V. Sriraman
Assistant Director, Traffic,
Railway Board.

Procedure for Availing of the Railway Concession

For availing of the Railway Concession, the requisite certificate from the General Secretary of the All India Ayurvedic Congress should be produced before a Divisional Superintendent or any other authorised officer of the particular railway (as specified in the list printed on the reverse) on which the journey of the delegate or member desiring to avail the concession originates. A letter of authority for concession be obtained from him. It will be on this letter of authority that the Railway staff of the Railway Station to which the member belongs, will provide him with the necessary concession ticket.

Secretary,
All India Ayurvedic Congress

कन्सेशन प्राप्त करने के लिए कार्य-विधि

रेलवे कन्सेशन प्राप्त करने के लिए, प्रधानमंत्री, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा प्रदत्त प्रमाणपत्र को, जिस रेलवे से आपकी यात्रा का प्रारम्भ होता हो, उस रेलवे के अपने क्षेत्र के डिविजनल सुपरिन्टेंडेंट अथवा अन्य उपयुक्त अधिकारी (जिन सूची पृष्ठ पर मुद्रित हैं) के पास भेज कर उससे कन्सेशन के लिए अधिकार-पत्र (Letter of authority) प्राप्त करें। इसके पश्चात् अपने स्थान के रेलवे स्टेशन के सम्बन्धित अधिकारियों को यह अधिकार-पत्र दिखाने पर कन्सेशन प्राप्त हो जायेगा।

मन्त्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

उपर्युक्त कार्य विधि पत्र तथा प्रधान मंत्री की ओर से कन्सेशन के प्रमाण पत्र आशा है सभी सदस्यों को प्राप्त हुए होंगे। यदि किन्हीं सदस्यों या प्रतिनिधियों को अभी तक न मिले हों और उनकी इच्छा अधिवेशन में भाग लेने की हो तो वे कार्यालय से पत्र या तार द्वारा सर्टिफिकेट मंगवालें।

LIST OF RAILWAY OFFICERS

B. B. L.	General Manager.	B. B. Lt. Rly, Distt. Board Patna
	Traffic Superintendent	,, ,, ,,
B. L.	Traffic Manager,	B. L. Rly. Kurduwadi, Distt. Sholapur.
C. R.	Divisional Traffic Managers.	Central Rly.. Bombay, Bhusaval, Sholapur, Nagpur Jhansi, Jubbulpore, Secundrabad.
	Superintendent, AgraArea,	Central Rly., Agra Cantt.
	Area Sptd.	Central Rly. Gwalior.
D. R. L.	Manager.	D. R. L. Rly. P. O. Dalmianagar, Distt. Shahabad.
E. R.	Chief Commercial Suptd.	Eastern Rly. Calcutta.
	Divisional Suptds.	Howrah, Sealdah, Asansol, Dinapore.
	Supervisor	Eastern Rly., City Booking Office, Esplanade Mansion, Calcutta.
	Commercial Suptds.	Eastern Rly., Kharagpur, Nagpur, Adra, Khurda Rd.
	Distt. Traffic Suptd.	Eastern Rly. Nainpur.
	Coal Manager	Eastern Rly., Adra.
	Asstt. Suptd. Commercial	Eastern Rly. Titlagarh.
N. R.	Chief Commercial Suptd.	Northern Rly. Head Quarters Office, Delhi.
	Divisional Suptds.	Northern Rly., New Delhi, Ferozepur, Allahabad, Lucknow, Moradabad, Bikaner, Jodhpur.
	Asstt. Operating Officer.	Kalka Simla Section, Eastern Rly. Simla (S. W.)
N. E.	Chief Commercial Suptd.	North Eastern Rly., Gorakhpur.
	Dy. Chief Commercial Suptd.	North Eastern Rly. Calcutta.
	Regional Traffic Suptds.	North Eastern Rly., Pandu, Lucknow, Muzzaffarpur.
	Distt. Traffic Suptds.	North Eastern Rly., Sonepur, Banaras Cantt. Samastipur, Gonda, Izatnagar, Fatehgarh, Katihar, Alipur Duar Jn. Lumding, Dibrugarh Town.
	Asstt. Traffic Suptd.	North Eastern Rly., Siligiri Town.

S. R.	Chief Commercial Suptds. Regional Traffic Suptds.	Southern Rly., Madras. Southern Rly., Rayapuram, Trichnapolly, Mysore.
	Asstt. Traffic Suptds.	Southern Rly. Rayapuram, Bezwada, Hubli, Guntakal, Pakala, Madras (Egmore). Madura, Trichnapolly, Podanur, Bangalore City.
W. R.	Chief Commercial Suptd.	Western Rly., Church Gate, Bombay.
	Distt. Traffic Suptds.	Western Rly., Grant Road, Bombay, Bulsar, Partapnagar, Ahmedabad, Ratlam Kotah, Abu Rd., Bandikui, Mhow. Jaipur, Jamnagar, Bhavnagar .Para.
	Regional Traffic Suptds.	Western Rly., Ajmer, Gondal, Bombay Central.
	Asstt. Traffic Suptds.	Western Rly., Mehsana, Udaipur, Gandhidham (Kutch).

चिकित्सकों व धर्मार्थ औषधालयों को

विशेष सुविधा

सभी प्रकार के उत्तम, गुणकारी भस्म, रस, मात्रा, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, गुग्गुलु, गुट्टिका, आसवारिष्ट, अवलेह आदि नित्योपयोगी औषधों के थोक व सस्ते भाव में मिलने का—

विश्वसनीय स्थान—

बोध चिह्न

नवशक्ति आयुर्वेदालय
लिमिटेड, भुसावल.

शाखा—जब्बलपुर (म० प्र०)

शुद्ध आयुर्वेद की मांग सामयिक है

श्री गुलराज शर्मा मिश्र

केन्द्रीय उपस्वास्थ्य मंत्राणी श्रीमती चन्द्रशेखरन का यह कहना आयुर्वेद की अज्ञानता का परिचायक मात्र है। शुद्ध आयुर्वेदीय सिद्धान्तों का शिक्षण ही देश की जनता के स्वास्थ्य में विधायक प्रगति ला सकता है। श्रीमती चन्द्रशेखरन को यह नहीं भूलना चाहिए कि आयुर्वेद के सिद्धान्तों में सजगता और गहराई चिकित्सा विज्ञान की अनुपम देन है। आयुर्वेद ने अपने जमाने में आशातीत प्रगति की है। आयुर्वेद की चार हजार वर्ष पहले की की हुई प्रगति आधुनिक चिकित्सा जगत को चुनौती है जिसके प्रतिकार के लिये केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय 'आयुर्वेद में संशोधन होना चाहिए' 'उसमें वैज्ञानिक तत्वों का समावेश करना चाहिये' आदि सिंहनाद करके जनता में भ्रम फैलाता है। हम केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय से पूछना चाहते हैं कि यह नारा वह किस दम और ज्ञान के बल पर लगाता है? कुछ समझ में नहीं आता है। चिकित्सा शास्त्र का सिद्धान्त है जनता के आरोग्य का रक्षण। स्वास्थ्य का रक्षण करना और रोगी होने से उसके रोगों को मिटाना। यह कार्य जितना सुभीते से आयुर्वेद कर सकता है उतना दूसरा कोई चिकित्सा विज्ञान नहीं कर सकता। आज भी आयुर्वेद देश की मौन सेवा करता है। जितनी सेवा आयुर्वेद के द्वारा होती है उसके सोलहवें हिस्से में भी एलोपैथी नहीं बैठती, जबकि उसके प्रसार और प्रचार में देश की अगणित आर्थिक क्षति की जाती है। श्रीमती चन्द्रशेखरन का यह कहना है कि केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय देशी चिकित्सा पद्धति के संशोधन के लिए नियुक्त पंडित जांच समिति के सुझावों के अनुसार जामनगर में आयुर्वेद संशोधन का कार्य करने जा रहा है। हमे केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के टरकाऊ ढ़ंग पर तर्स आता है। सच तो यह है कि केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय आयुर्वेद को फूटी आंख देखना नहीं चाहता किन्तु जनता के दवाव को हल्का करने के लिए कुछ तो भी स्वांग रचते रहता है। जिस पंडित कमेटी को आयुर्वेद का कोई प्रश्रय नहीं था उसके सुझावों को महत्व क्या है? श्रीमती चन्द्रशेखरन प्रथम पंचवर्षीय योजना में देशी चिकित्सा के लिए ३७॥ लाख की व्यवस्था बना रही हैं उसी से प्रकट होता है कि ये सब बनाव है जनता के विरोध को दबाने के लिये इतने बड़े विशाल भारत में फैली देशी चिकित्सा के संशोधन के लिए केवल ३७॥ लाख रखना केवल आयुर्वेद और वैद्यों का खुला अपमान है। श्रीमती चन्द्रशेखरन और केन्द्रीय मंत्रालय के प्रति वैद्य और आयुर्वेद जगत का खुला चैलेंज है कि वे केन्द्र में एक आयुर्वेदीय रुग्णालय खोलें जिसमें शुद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सा का पूर्ण प्रबन्ध हो और सभी आवश्यक साधन हों फिर देखें आयुर्वेद कितना आगे है। हम यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि यदि केन्द्र का स्वास्थ्य मंत्रालय जरा भी सचाई वर्तना चाहता है तो ऐसा अस्पताल खोल कर अनुभव करे जिससे पता लगे कि एलोपैथ कितने गहरे पानी में हैं। श्रीमती चन्द्रशेखरन का शुद्ध आयुर्वेदीय स्वरूप को चुनौती देना साहसपूर्ण दुराग्रह

मात्र है। उन्हें इस विषय का तनिक भी ज्ञान नहीं है। यह देखना आयुर्वेद के तज्ज्ञों का कर्तव्य है कि आयुर्वेद विज्ञान में क्या कमी है और उसकी पूर्ति कैसे हो सकती है ? हम श्रीमती चन्द्रशेखरन से पूछना चाहते हैं कि उन्होंने कभी एलोपैथी की कमजोरी पर भी ध्यान दिया है या फिर "अन्धे नैन नीयमाना अन्धा यथा" का अनुकरण करना मात्र ध्येय स्वीकार कर लिया है।

आयुर्वेद प्रगतिशील विज्ञान है उसमें समयानुसार सदैव परिवर्तन होता रहा है और होता रहेगा किन्तु उसके सिद्धान्तों के अन्तर्गत। आयुर्वेद के हिमायती अपने विज्ञान को संसार में किसी से पीछे नहीं देखना चाहते और न कभी वे पीछे हैं। आज भी स्वास्थ्य मंत्रालय आयुर्वेद के प्रति अपने सौतिया डाह को त्याग कर भारतीय जनता के प्रति अपने कर्तव्य को पहचाने क्यों कि गरीब भारत के सच्चे सपूतों के स्वास्थ्य का भार आज भी आयुर्वेद पर है। देश के अर्बों रुपयों की बर्बादी उस विदेशी चिकित्सा के दुलार पर की जाती है जिसका भारत के प्राणों से कोई संबंध नहीं और जिस आयुर्वेद के उपकार पर भारत की निधि का संरक्षण होता है उसके जीवन के लिए एक दाना भी देने में प्राणान्त वेदना का अनुभव किया जाता है और ऊपर से सैकड़ों अपशब्द, प्रगति हीनता, अवैज्ञानिक, संशोधन का अभाव, आदि से आये दिन जहां तहां पुरस्कृत किया जाता है और भोली भाली जानता को भ्रम में डाल कर अपने मार्ग को खुला किया जाता है, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति इस प्रकार सदैव सबको भ्रमित बनाये नहीं रख सकता। अब भारतीय इस बात का अनुभव करने लगे हैं कि अंग्रेजों की आत्मा के प्रतिरूप ये हमारे देश को पहिचानने में असमर्थ हैं अतः हम श्रीमती चन्द्रशेखरन को सावधान करना चाहते हैं आपके इरादे समझे जा चुके हैं आशा है आप भी भारत के इरादों को समझ लेंगी ताकि अपनी गलती को सुधारने का समय मिल सके। आप में जरा भी आत्माभिमान है और एलोपैथी में कुछ भी सचाई है तो एलोपैथी को दी जानेवाली सहायता से आधी सहायता आयुर्वेद को देने का सुझाव अपने स्वास्थ्य मंत्रालय को दें यदि आप इसमें कुछ भी प्रगति कर सकीं तो आप देखेंगी कि एलोपैथी को कोई रोनेवाला नहीं मिलेगा। ये सब नाज नखरे आर्थिक सहायता और शासन की कृपा मात्र से हैं। अपने स्वयं के भरोसे जिस प्रकार आज १२ सौ साल से आयुर्वेद निराश्रित दशा में टिका है, ऐसा एलोपैथी को दस साल छोड़ दिया जावे तो नामशेष हो जायेगा। वैद्य जगत को अत्यन्त दुःख और आश्चर्य तो यह देख कर होता है कि स्वास्थ्य मंत्रालय की इन श्रीमतियों को आयुर्वेद का शून्य के समान भी ज्ञान न होते हुए उसके विषय में ये अपना फैसला किस बूते पर दे डालती हैं ? क्या मंत्री बनने मात्र से समस्त ज्ञान की प्रेतात्मा उनमें समा जाती है जिन्हें बिना विचारे कुछ भी कहने में स्वतंत्रता है। हो सकता है भारतीय स्वतंत्रता के साथ सभी स्वतंत्रताएं समझ ली गई हों ? यह विज्ञान का क्षेत्र है इसमें उसके अधिकारियों का ही निर्णय उचित होता है अन्यथा दुराग्रह मात्र है।

अंत में हम श्रीमती चन्द्रशेखरन से यह आशा करेंगे कि वह आयुर्वेद और एलोपैथी का स्तर समझना चाहें तो तुलनात्मक अस्पताल खोलें और फिर उसका निर्णय लें। इसके प्रथम बम्बई के युनिवर्सल अस्पताल की रिपोर्ट बदलें ताकि आप के समझने के

लिए थोड़ा सहारा हो जावे और फिर हमारे सुझाव को कार्यरूप में लाने का प्रयत्न करें किन्तु साथ में यह भी ध्यान रखें कि आपने उस विषय को सत्य भी समझ लिया तो कुछ कर न सकेंगी अधिक कुछ चों चपट करेंगी तो श्री महावीर त्यागी के पदचिन्हों पर जाना पड़ेगा। वहां आपसे बड़ी श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर हैं जो अपने कुल परंपरा के टोपी बदल सिद्धान्त की अहमियत को स्वीकार किए हुए हैं।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय का कर्त्तव्य

वैद्य मक्खन लाल शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

आयुर्वेद विज्ञान की कुछ स्वार्थी अधिकारियों की वजह से सरकार अवहेलना कर रही है, आयुर्वेद सेवियों द्वारा इस ओर ध्यान आकृष्ट करवाने पर भी केन्द्रीय सरकार अपनी आंखे नहीं खोलती। यह कहना अनुचित नहीं होगा, जिस प्रकार भारत जैसे महान् राष्ट्र के शिक्षा मंत्रालय का कार्य राष्ट्रभाषा से अनभिज्ञ व्यक्ति के हाथों सौंपा गया है ठीक उसी प्रकार स्वास्थ्य मंत्रालय का भार भी ऐसे ही व्यक्ति पर लादा गया है जो किसी भी चिकित्सा पद्धति का विशेषज्ञ नहीं, न वैद्य हैं न डाक्टर ही, भला ऐसे व्याक्तियों से चिकित्सा समाज क्या आशा रख सकता है ? केवल चिकित्सा विज्ञान से अनभिज्ञ होता तो कोई बात थी, मगर आयुर्वेद विकास तो ऐसे व्यक्ति के आश्रित है, जो स्वयं आयुर्वेद का दुश्मन है।

हमारी स्वास्थ्य मंत्राणी महोदया द्वारा आयुर्वेद को, जिसके सिद्धान्त हमेशा अटल रहे हैं, अवैज्ञानिक, और पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान, जिसका एक भी सिद्धान्त स्थिर नहीं है को वैज्ञानिक कहा जा रहा है। जबकि उन्हें आयुर्वेद शब्द से भी पूरा परिचय नहीं है।

आयुर्वेद के नाम पर जो नाममात्र की रकम बजट में पेश की जाती है वह भी सब पाश्चात्य विज्ञान के चिकित्सकों के उदर में ही भर दी जाती है। हमारा केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय विदेशों को हर वर्ष करोड़ों रुपये भेजने का कुवेरालय बना हुआ है जान-बूझ कर भी महान् धनराशि को केवल विदेशियों की चका चौंध से प्रभावित होकर लुटा रहा है। यह भी निश्चय कहा जा सकता है कि जिस प्रकार भारत हर प्रकार से आत्म निर्भर बनने के प्रयास में है, महत्व पूर्ण सफलता भी प्राप्त कर चुका है, मगर हमारा स्वास्थ्य मंत्रालय इस ओर से आंख मूंद कर सो रहा है, सभी ऐलोपैथिक औषधियों के लिये विदेशों पर आश्रित है। लेकिन सभी ऐलोपैथिक आविष्कृत औषधियां निकृष्ट हैं। आज पाश्चात्य वैज्ञानिक भी स्वीकार कर चुके हैं—जितनी भी ऐलोपैथिक औषधियां आविष्कृत हुई हैं वे सब किसी न किसी रूप में

शरीर के विभिन्न निर्माण कोषाओं के लिये घातक सिद्ध हुई हैं। यही वजह है की आज ऐलोपैथिक औषधियों की बिक्री के साथ ही साथ रोगी संख्या और मृत्यु संख्या भी निरन्तर बढ़ती जा रही है। मनुष्य की औसत आयु को कम करने का कारण केवल हीन गुण का खाद्य ही नहीं अपितु ऐलोपैथिक औषधियां भी हैं।

अगर इतना प्रयास आयुर्वेद की ओर किया जाता, ऐलोपैथी पर जितनी धन राशि व्यय की जाती है उसका दशमांश भी आयु- के अष्टांगों के विकास के लिये व्यय किया जाता तो भारत के नागरिकों की औसत आयु में भी परिवर्तन होता, और बहुत कम खर्च में हर प्रकार की चिकित्सा व्यवस्था प्राप्त होती, और इतनी महान धन राशि देश में ही रह जाती। इसी पूंजी के बल पर अनेक उन्नतिशील योजनाएं भी कार्यान्वित की जा सकती थीं। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय आयुर्वेद की उन्नति की ओर ध्यान देकर उसके अष्टाङ्गो का पुनरुद्धार करने के कर्त्तव्य को निभाता तो भारत आज वैदेशिक नीति की तरह चिकित्सा क्षेत्र में भी संसार का शिरोमणि बन जाता।

अब भी समय है कि हिन्दी के उदाहरण से लाभ उठा कर स्वास्थ्य मन्त्राणी महोदया अपना ध्यान आयुर्वेद के विकास की ओर लगायें। जिस प्रकार अन्य समस्याओं पर हमारे नेतागण भारतीय दृष्टिकोण से देखते हैं, उसी प्रकार चिकित्सा क्षेत्र को भी देखने के लिए हमारा स्वास्थ्य मन्त्रालय विदेशी चश्मे को फेंक कर भारतीय चश्मे से देखना शुरू कर दे।

हमारे देश की ८० प्रतिशत जनता आयुर्वेद विज्ञान द्वारा स्वास्थ्य-लाभ करती है फिर भी सरकार का ध्यान, इस बहुमत को ठुकरा कर, जिससे केवल १० प्रतिशत जनता भी अरबों रुपये खर्च करने पर भी पूरा स्वास्थ्य लाभ नहीं करती, उस एलोपैथी की ओर है।

चीन में भी एक देशी चिकित्सा पद्धति है, जो आयुर्वेद विज्ञान से बहुत कुछ सामंजस्य रखती है, अपना सिद्धान्त निर्देश भी आयुर्वेदाचार्यों द्वारा ही मानती है, लेकिन आयुर्वेद विज्ञान से बहुत पिछड़ी हुई है, उसमें न रस शास्त्र ही पूर्ण है न आयुर्वेद की तरह विस्तृत शल्य शास्त्र ही, मगर फिर भी अधिकांश जनता उस देशी चिकित्सा पद्धति द्वारा ही स्वास्थ्य लाभ करती है। चीन की जनता यह जानती है कि पाश्चात्य विज्ञान की कीटाणु नाशक औषधें जो शरीर के विभिन्न निर्माण कोषाओं पर घातक प्रभाव डालती हैं मनुष्य की औसत आयु को किस तहर घटा रही हैं, अतः चीन की जनता समय रहते सचेत हो गई और उसने सरकार का ध्यान देशी चिकित्सा पद्धति की ओर आकृष्ट किया। कुछ मास पहले चीन के प्रमुख सरकारी पत्र "पीपल्स डेली" ने बताया कि—

"चीन की युगों पुरानी चिकित्सा पद्धति के पुनरुद्धार की कोशिश की जा रही है। पश्चिम की सभ्यता ने उसे बदनाम कर दिया था, किन्तु पेकिंग सरकार ने अब रुख बदल दिया है। अब पुरानी चिकित्सा प्रणाली के चिकित्सा करने वाले भी चीन के मेडिकल एसोसियेशन के सदस्य बनाये जाने लगे हैं" पत्र ने आगे बताया कि—

"देसी चिकित्सा प्रणाली में इस बात पर बल दिया गया है कि स्वास्थ्य पर शरीर के विभिन्न तत्वों का असर पड़ता है इसके कुछ तरीकों की चीन के बाहर भी नकल की

गई हैं, वे आधुनिक चिकित्सा प्रणाली में भी बरते जाते हैं।"

"पीपल्स डेली" ने एक संस्करण में यह भी लिखा है कि" देशी चिकित्सा विज्ञान पद्धति से घृणा करने वाली प्रवृत्तियों को ठीक किया जाना चाहिये, जो देशी चिकित्सा प्रणाली की उपेक्षा की गयी हैं उसका प्रभाव मिटाया जाना चाहिये, क्योंकि पश्चिम से पढ़ लिख कर आये हुए चीनी डाक्टर या अधिकारी उसकी निन्दा करते हैं इस निन्दा का प्रभाव मिटाया जाना चाहिये।"

एक अन्य संस्करण में पत्र ने बताया कि चीन के ८० प्रतिशत लोग अब भी देशी चिकित्सा करवाते हैं, उसने सिफारिश की है कि सरकार शीघ्र ही जड़ी बूटियों के विशेष उत्पादन की ओर ध्यान दे।

अब चीन में आधुनिक और प्राचीन, दोनों पद्धतियों पर समान रूप से ध्यान दिया जा रहा है।

भारत सरकार को भी इस कदम का अनुकरण करना चाहिये, आज ऐलोपैथी और आयुर्वेद में जो विषमता दिखाई दे रही है उसे दूर कर देनी चाहिये।

जून के पहले सप्ताह में पांच भारतीय डाक्टरों का दल चीन जायेगा, वहाँ ६ सप्ताह ठहर कर विभिन्न स्थानों पर भाषण आदि देगा, चिकित्सा क्षेत्र में भारतीय प्रयासों का दिग्दर्शन करेगा। इस दल में निम्नलिखित व्यक्ति हैं (१) कर्नल आहूजा (२) कर्नल जसवन्तसिंह (३) डाक्टर चौधरी (४) डा० पटवर्धन और (५) डा० कृष्णन।

भारत से अब तक जितने शिष्टमंडल विदेशों में गये हैं, चाहे वे नृत्यकार हों, फिल्मी कलाकार हों, संगीतज्ञ हों, या दार्शनिक हों, सभी ने अपने अपने क्षेत्र में प्रशंसा प्राप्त की है और भारतीयता का प्रभाव जमाया है, वहाँ की जनता को भारत की ओर आकर्षित किया है, भारत की ओर से मार्ग-दर्शन कराया है।

मगर यह पाश्चात्य सभ्यता से रंगा हुआ शिष्टमंडल पश्चिमी देशों की चिकित्सा पद्धतियों पर आधारित ज्ञान को लेकर स्वदेश प्रेमी चीनी जनता के हृदय में अपना प्रभाव और भारतीयता की झलक किस प्रकार दिखलायेगा ? यह तो समय ही बतलायेगा, मगर यह तो निश्चित कहा जायेगा कि भारत के ऐलोपैथिक डाक्टरों ने विदेशों के एजेन्टों के अलावा कोई कार्य नहीं किया, न कोई चिकित्सा के क्षेत्र में नया प्रयास ही किया है।

क्या सरकार की आंखें उस समय खुलेंगी जब चीन सरकार और चीनी जनता भारतीय चिकित्सा विज्ञान की ओर हमारे अग्रणी नेताओं को मार्ग-दर्शन करायेंगे। जिस प्रकार राष्ट्र-भाषा हिन्दी की ओर विदेशियों ने भारत सरकार का ध्यान एकत्रित किया, एसा न हो कि विदेशी ही भारतीय चिकित्सा विज्ञान (आयुर्वेद) के पुनरुद्धार के लिये बरदान सिद्ध हों।

भारत को इस ओर पेहले ही कदम उठा लेना चाहिये।

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleton) आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल टिकयाँ व गोलियां बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकाल इन्स्ट्रूमेन्ट, आदि के मिलने का पता:—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स कं०

दयाल बाग़, (आगरा)

गुरुकुल पत्रिका

लुभावना या दुरूह ?

श्री गौरीशंकर गुप्त, बनारस

चिकित्सा एक अर्थकरी व्यवसाय है । यह कहीं धन, कहीं यश और कहीं मैत्री की प्राप्ति कराता है । इस कारण हठात् इस व्यवसाय की ओर जनरुचि आकर्षित होती है । अशिक्षितों के लिए यह जितना लुभावना है, शिक्षितों के लिए यह उतना ही दुरूह है । विवश होकर ही लोग चिकित्सकों की शरण जाते हैं । ऐसी दशा में विवश लोगों से स्वार्थीजन मनमाने ढ़ंग से, साधारण आयास से ही, धन प्राप्त कर लेते हैं । धन देने पर भी वह व्यक्ति सदा के लिए चिकित्सा व्यवसायीका कृतज्ञ बना रहता है और कृतज्ञों से कार्य-सिद्धि बिना श्रम के ही हो जाती है । ऐसी परिस्थिति में इस लोकोपयोगी और अर्थकरी व्यवसाय की ओर लोकरुचि अनायास आकर्षित हो जाती है । इसके लुभावना होने का यही कारण है ।

यह दुरूह इसलिए है कि लगातार कई वर्षों तक सैद्धान्तिक के साथ-साथ इसके क्रियात्मक रूपों का अभ्यास करना पड़ता है । प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के अनन्तर कम से कम ५-६ वर्षों तक यदि निरन्तर अध्ययन और अभ्यास किया जाय तो इस विज्ञान में मनुष्य की गति हो सकती है । आयुर्वेद और इनकी विभिन्न शाखाओं के ज्ञान के लिए ५-६ वर्ष कुछ ज्यादा समय नहीं हैं । इस विज्ञान की पुस्तके भी अधिकतर संस्कृत भाषा में लिखी हैं; अतः इसके सर्वांगीण अध्ययन के लिए उक्त भाषा का ज्ञान होना अपेक्षित है ।

इसके अतिरिक्त यदि आयुर्वेद में पाण्डित्य प्राप्त करने की इच्छा हो तब तो साधारण भाषा ज्ञान से कुछ विशेष व्याकरण तथा न्याय दर्शन के अध्ययन की आवश्यकता पड़ेगी । आयुर्वेद की पंक्ति लगाने के लिए व्याकरण और आयुर्वेद दर्शन की मीमांसा के निमित्त न्यायशास्त्र की आवश्कता पड़ती है । उपरिलिखित विधि से अध्ययन कर लेने के पश्चात् विधिवत् चिकित्सा व्यवसाय करने के लिए सतत् जागरूक रह कर अपनी दिनचर्या व्यवस्थित रखनी पड़ती है ।

अर्द्धरात्रि की प्रगाढ़ निद्रा के समय भी कोई व्यग्रता से पुकार सकता है और उस समय अति शीघ्रता से उसके संग जाना पड़ता है । इसके अतिरिक्त साथ-साथ चिकित्सोपयोगी उपकरण भी सदा प्रस्तुत रखने पड़ते हैं । न मालूम उस समय किस वस्तु की अचानक आवश्यकता पड़ जाय । दूसरे के जीवन को अपने हाथ में लेना साधारण काम नहीं । किंचिन्मात्र मतिविभ्रम होते ही प्राण नष्ट हो सकता है । प्रज्ञापराधी होना चिकित्सकों के लिए अशोभनीय होता है; अतः यह दुरूह व्यवसाय है ।

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

वैदिक काल के ज्वर

श्री आचार्य नित्यानन्द

अथर्ववेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिककाल में अनेक किस्म के ज्वरों का प्रचलन था। उस समय ज्वर के निम्न लक्षण प्रमुख रूप से उल्लिखित हैं :—

१—ज्वर होने पर शरीर उष्ण हो जाता था और आग की लपटें सी शरीर के बाहर प्रतीत होती थीं।

२—अंग अंग में दर्द होने लगता था।

३—सारी देह इस प्रकार शिथिल हो जाती, मानो देह के हिस्से अलग अलग हो गए हों।

४—रोगी का कष्ट कभी कभी तो इतना बढ़ जाता था कि उसे अपना जीवन दुःखमय लगने लगता था।

५—ज्वर से पूर्व कभी कभी ठंड भी लगती थी।

६—ज्वर के वेग का समय निश्चित नहीं था कुछ बुखार रोज आते थे और कुछ दूसरे या तीसरे अथवा चौथे दिन भी आते थे।

७—ज्वर के बाद शरीर में कमजोरी आती थी।

८—कुछ ज्वरों में शरीर का पीलापन बढ़ जाता था।

९—कुछ ज्वरों में शरीर के भीतर ही ताप रहता था।

वैदिक मत्रों के पर्यालोचन से ज्ञात होता है कि उस समय ज्वर होने के निम्न कारणों का ज्ञान था :—

१—गर्मी, सरदी और वर्षा आदि ऋतुओं के परिर्वतन के कारण ज्वर होते थे।

२—कफ के बढ़ जाने पर बुखार होता था।

३—रूक्षता से गर्मी बढ़ जाने पर ज्वर का उल्लेख है।

४—जिन इलाकों में वर्षा अधिक होती थी, वहां ज्वर का जोर होता था।

५—जहां पानी ठहर कर लम्बी लम्बी घास उग जाती थी, वहां के प्रदेश में भी ज्वर बाहुल्य रहता था।

६—जिनका जीवन स्तर नीचा था, उन्हें ज्वर अधिक होता था।

७—जो व्यक्ति कमज़ोर और गन्दे रहते थे, उन्हें बुखार सताया करता था।

८—कुछ ऐसे आदमियों के भी ज्वर होने का उल्लेख मिलता है, जिनके शरीर में वास्तविक बल नहीं होता था और वे केवल फूले से रहते थे।

९—शाकाहारी की अपेक्षा मांसाहारी को ज्वर की सम्भावना ज्यादा रहती थी।

१०—बाल्हीक प्रदेश में ज्वर अधिक होने की चर्चा है।

११—ज्वर के रोगी के शरीर में एक प्रकार का विष संचित हो जाता था।

१२—खांसी और क्षय से भी ज्वर होता था।

इन कारणों से होने वाले जिन ज्वरों

का नामकरण उस समय किया गया था, उन में से कुछ ये हैं :—

१—तक्मन् । कहीं कहीं इसे शीतज्वर भी कहा गया है । आज कल प्रचलित मलेरिया ज्वर का पर्यायवाचक इसको माना जा सकता है ।

२—हूडु नामक ज्वर । अथर्ववेद की पिप्पलाद शाखा में हुडु पाठान्तर भी मिलता है । सम्भवतः इसी का तद्भव शब्द आज भी मराठी भाषा में "हुडहुडा ताप" के नाम से प्रचलित है ।

३—प्रतिदिन रहनेवाला ज्वर "सदन्हिः" ।

४—अन्येद्युः । इसका उल्लेख इस प्रकार हैः—
"नमः शीताय तक्मने नमो रूपाय शोचिषे कृणोमि । यो अन्येद्युरुभयद्युरम्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ।।"

५—उभयद्युः । अगले दिन आनेवाला ज्वर ।

६—तृतीयक । तीसरे दिन आनेवाला बुखार ।

७—शाकज्वर ।

८—वितृतीयक । चौथे दिन आने वाला बुखार ।

९—ऋतुविकृतिजन्य ज्वर 'जैसेः—ग्रैष्म, शारद और वार्षिक । इनका प्रकरण देखिएः—

"तृतीयकं वितृतीयं सदन्दिमुत शारदम् ।
तक्मानं शीतं रूरं ग्रैष्मं नाशय वार्षिकम् ।।"

१०—रूर । इसे पित्तज्वर कहा जा सकता है ।

ज्वरों को दूर करने के उपायों का भी उल्लेख कुछ ऋचाओं में मिलता है । वे उपाय निम्नलिखित हैं :—

१—ज्वर का प्रतिबन्धक मुख्य उपाय यह है कि जिन घरों में पानी की सील रहती हो, अथवा जिस गांव के चारों ओर पानी भरा रहता हो अथवा कीचड़ या लम्बी लम्बी घास बराबर बनी रहती हो, उनका परित्याग कर देना चाहिए अथवा इनसे घर, गांव या प्रदेश को मुक्त करना चाहिए । इन विचारों को अकस्मात पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है, मानों हम आजकल की मलेरिया की किसी रिपोर्ट को पढ़ रहे हैं ।

२—ज्वर का ताप प्राणधारक तत्व को जला देता है, अतः जल का उपयोग बराबर करना उचित है ।

३—ज्वरग्रस्त प्रदेश को यज्ञ, हवन आदि से शुद्ध रखें ।

४—अधोमार्ग को विरेचन आदि से शुद्ध करने पर ज्वर चला जाता है ।

५—खान पान और विहार में संयम रखना आवश्यक है ।

६—भोजन में हलकी चीजें शाक आदि ही रोगी को देवें ।

७—सोम का प्रयोग करें ।

—(वैदिक आयुर्वेद प्रचार समिति, पिलानी (राजस्थान)

धन्वन्तरि
आयुर्वेद का सर्वोत्तम मासिक
इस वर्ष का विशेषांक "चरक चिकित्साङ्क"
६00 पृष्ठों और सैकडों चित्रों युक्त विशाल और सुन्दर । वार्षिक मू० ५॥) । वैद्य हकीम-डाक्टर-नमूना और विवरण मुफ्त मंगावें । विज्ञापन का सर्वोत्तम साधन । विज्ञापन दर कम है ।
"धन्वन्तरि" विजयगढ़ (अलीगढ़) यू.पी.

संक्रामक रोग और आयुर्वेद

श्री रोशनलाल शर्मा, वैद्यवाचस्पति

पाश्चात्य मत

संक्रामक रोग सूक्ष्म जन्तुओं के एक रोगी से दूसरे मनुष्य के शरीर में संक्रमण से पैदा होते हैं।

यह जन्तु अति सूक्ष्म होते हैं और सूक्ष्म दर्शन यन्त्र की सहायता ही से दृष्टिगोचर हो सकते हैं।

यह सूक्ष्म जन्तु दो प्रकार के होते हैं।

१. प्राणी वर्ग से, जिन्हें जीवाणु कहते हैं।

२. बनस्पति वर्ग से, जिन्हें कीटाणु (Bacteria) कहते हैं।

१. जीवाणु (एक सैल युक्त होते हैं)

यथा:—१. Malaria विषम ज्वर के ३ प्रकार के जीवाणु।

२. कालाज़ार और लोकल सोर के जीवाणु।

३. अतिनिद्रा रोग का जीवाणु।

४. प्रवाहिका का जीवाणु।

५. उपदंश का जीवाणु।

इन सब का आकार भिन्न भिन्न होता है। कोई अमीबा वत् यथा Amoebic Dysentry का, कोई कर्षणि आकार कें यथा उपदंश का Spirrocheta. आदि।

२. कीटाणु (Bacteria) यह एक कोषीय अति सूक्ष्म होते हैं, सूक्ष्म दर्शक (Microscope) से देखने पर इनकी मींगी भी दृष्टिगोचर नहीं होती।

यह Bacteria दो प्रकार के होते हैं।

१. जो शरीर में प्रविष्ट होकर रोग पैदा कर देते हैं, यह ही इस लेख का विषय है।

२. जो शरीर में प्रविष्ट होकर किसी प्रकार से हानि नहीं करते, प्रत्युत कई उनमें से मनुष्य शरीर के लिए आवश्यक हैं, यथा दूध को जमाने वाले, और खमीर (Yeast) उठाने वाले जैसे आसव, अरिष्ट आदि के। रोगोत्पादक Bacteria दो प्रकार के होते हैं।

1. Bacillus:—यथा (a)Tubercular Bacillus (b) PLague Bacillus (c) Cholera vibris आदि।

2. Coccus:—(बिंदवाकार) यथा Gonococcus, Staphylococcus, Streptococcus, Meningococcus आदि।

जीवाणुओं की वृद्धि कार्य:—इन सूक्ष्म जन्तुओं में नर मादा का भेद नहीं होता और इनमें बढ़ने के लिए सहवास की आवश्यकता भी नहीं होती। एक कीटाणु १/२ से १ घंटे के अन्दर अन्दर फटकर दो हो जाते हैं और, इसी क्रम से बढ़ते जाते हैं। इनकी वृद्धि के लिए अनुकूल उष्णता, क्षेत्र, भोजन और परिस्थिति का होना आवश्यक है। हमारे दुर्भाग्य से शरीर का ताप ही उनके अनुकूल ताप है, शारीरिक मल और

मरी हुई सैलें ही उनका अभीष्ट भोजन हैं। अस्वस्थ, दुर्बल और रुग्ण अङ्ग ही उनकी वृद्धि के लिए समुचित क्षेत्र हैं। अंधेरे और आर्द्र स्थान ही इनकी बढ़ौतरी में सहायक होते हैं। इसके विपरीत, पौष्टिक भोजन, स्वच्छ जल, वायु शरीर की स्वच्छता और स्वस्थवृत (Hygiene) के पालन करने वाले मानवों में यदि यह रोगोत्पादक कीटाणु प्रवेश भी कर जावें, तो परिस्थिति प्रतिकूल होने से वह नहीं बढ़ सकते हैं और न ही किसी रोग को पैदा करने में समर्थ होते हैं। कारण कि कीटाणु भी मनुष्य के समान दुर्बल व सबल होते हैं। दुर्बल कीटाणु शरीर में प्रवेश होते ही मर जाते हैं और सबल अपने बलानुसार Survival of the fittest के न्याय से शरीर सैलों से युद्ध कर मर जाते हैं अथवा रोगोत्पन्न कर देते हैं।

यह कीटाणु स्वयं हमारे लिए हानिकारक नहीं होते प्रत्युत् इनसे उत्पन्न होने वाला विष (Toxin) ही हानिकारक होता है।

यह विष (Toxin) दो प्रकार का होता है।

१. कीटाणुओं से बनकर उनके जीते जी उनसे बाहर आने वाला।

२. कीटाणुओं के मर जाने के पश्चात् उनके गलने सड़ने से उत्पन्न होने वाला। यह विष जहां हमारे लिए हानिकारक है, वहां कीटाणुओं के लिए यह परम सहायक होता है। इस विष के उदासीन कर देने से अथवा नाश कर देने से, कीटाणु स्वयं नष्ट हो जाते हैं। इस विष को नष्ट करने के लिए हमारे शरीर की श्वेत सैलें इससे युद्ध करती हैं, शेष सैल इस कार्य में उनकी सहायता करती हैं। परिणामत: श्वेत सैलें इस प्रतिविष (Antetoxin) को उत्पन्न करके रोगाणुओं को नष्ट कर देती हैं।

इस युद्ध में श्वेत सैलों को कृत्रिम विधि Serum and vaccine Injection द्वारा सहायता भी पहुँचाई जा सकती है।

Serum और vaccine के अल्प विष शरीर के अंदर प्रविष्ट होकर क्षुब्धता उत्पन्न कर प्रतिविष बना कर रोगोत्पादक कीटाणुओं को नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। यह Serum और vaccine महामारी (जनपदविध्वंसकारी Epidemic) के दिनों में प्रतिबन्धक उपाय (Preventive Measures) के रूप में अथवा निरोगीकरण (Curative Measures) में बर्ते जाते हैं।

इस प्रकार मनुष्य शरीर में दो प्रकार से रोग क्षमता (Immunity) उत्पन्न की जा सकती है।

१. स्वाभाविक (Natural) :—जो हमारे शरीर में भोजन वायु और व्यायामादि के स्वास्थ्य वर्धक उपायों द्वारा उत्पन्न होती है।

२. कृत्रिम (Acquired) जो Serum, Vaccine, Phylicogen, Immunogen आदि को प्रविष्ट करके पैदा की जावे या एक रोग को पैदा करके दूसरे रोग से बचावे यथा Local Sore (मुगलई फोड़ा) Kalajar से या गोमूसूरिका (चेचक का टीका) मसूरिका (Small Pox) से बचाता है।

सूक्ष्म जंतुओं (रोगाणुओं) के शरीर में प्रवेश के ढङ्ग

१. वायु में उड़ते हुए, श्वास द्वारा यथा राजयक्ष्मा (T.B) आदि में।

२. व्रण पर धूल पड़ने, यथा धनुर्वात, Septic ulcer आदि।

३. रोगी के संस्पर्श (मैथुन) से, Syphillis, Gonorrhoea आदि।

४. रोगी के थूक, मल, मूत्रादि से दूषित वस्त्र रुमालादि से मसूरिका।

५. दूषित दूध, जल, अन्नादि भोज्य द्रव्यों के खाने से, विसूचिका।

६. मक्षिका, चियूंटी आदि मल, वमनादि से दूषित पदार्थ पर बैठ कर, अपने पांव, पक्षों आदि द्वारा कीटाणुओं को लाकर खाद्य वस्तुओं को दूषित कर विशूचिका, Typhoid आदि पैदा करते हैं।

७. मच्छर, जूं, पिस्सू, खटमलादि दंशक कीटों के काटने से Malaria, Plague आदि।

८. चूहे, कुत्ते, बिल्ली के काटने से Rat Bite Fever, Hydrophobia आदि हो जाते हैं।

९. संक्रम वाहकों द्वारा, यथा हस्पतालों के भंगी आदि।

Incubation Period (परिपाक काल)—जन्तु शरीर में प्रविष्ट होते ही रोग को उत्पन्न नहीं कर देते, प्रत्युत शरीर में दिन प्रतिदिन वृद्धि पाकर, विष को पैदा कर रोग पैदा कर देते हैं इस जन्तु प्रवेश से रोगोत्पत्ति काल तक को "रोग का परिपाक काल कहते हैं।"

सम्प्राप्ति:—जन्तुओं तथा उनके विष से शरीर के अङ्गों पर जो जो और जिस जिस प्रकार प्रभाव पड़ता है उसे "सम्प्राप्ति" कहते हैं।

पूर्वरूप:—परिपाक काल के अन्त में कुछ अस्पष्ट लक्षण रोग के पैदा होते हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि कोई रोग होने वाला है इसे "पूर्वरूप" कहा जाता है।

रूप:—परिपाक काल के समाप्त हो जाने पर जो स्पष्ट लक्षण रोग के दृष्टि गोचर होते हैं उसे "रूप" या लक्षण कहा जाता है।

उपद्रव:—रोग बलवान हो या समय पर उचित चिकित्सा न होने पर जो अन्य रोग लक्षण तथा रोग पैदा हो जाते हैं उन्हें "उपद्रव" कहते हैं।

चिकित्सा:—रोगों की चिकित्सा के दो भेद हैं।

१. प्रति बन्धक (Preventive Measures) यथा Plague, हैज़ा मसूरिका, Influenza आदि जनपद-विध्वंसी महामारियों के दिनों में गली सड़ी सब्जियों तथा अन्य खाद्य वस्तुओं की बिक्री बन्द कर देना या उन्हें नष्ट कर देना, गन्दी नालियों को साफ करा कर फिनायल आदि से जन्तु रहित करना, घरों के अन्दर D. D. T. Spray करना, गधंकादि जला कर घरों को Disinfect करना, चूहों को मरवा देना और Plague, विशूचिका, मसूरिका, Malaria आदि के टीके लगवाना।

२. सामान्य रोगनाशक उपाय Curative Treatment एलोपैथिक डाक्टर प्रायः सक्रांमक रोगों की चिकित्सा लक्षणानुसार या Serum or Vaccine

आदि द्वारा ही करते रहे हैं परन्तु अब Sulpha Drugs तथा Pencilline, Streptomycine, आदि नवीनतम Antibiotic औषधों ही से कर रहे हैं और इन से पर्याप्त लाभ भी देखने में आया है, परन्तु एक तो यह भारत जैसे निर्धन देश के लिए अतीव मंहगी है तथा दूसरे निरुपद्रव चिकित्सा नहीं कही जा सकती।

अत: इस विषय में आयुर्वेद शास्त्र का क्या मत है अब इस विषय पर अपने विचार नीचे उद्धृत करता हूँ।

"आयुर्वेद"

आयु के अर्थ हैं Life या जीवन और वेद का अर्थ है ज्ञान (Science) अर्थात् "Science of life"

अष्टांगहृदय कहता है—

आयुकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्
आयुर्वेदोपदेषु विधेयः परमादरः।

अर्थात् :—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चाहने वाले मनुष्य को जीवन विज्ञान (आयुर्वेद) के उपदेश पर श्रद्धा पूर्वक अमल करना चाहिए। आयुर्वेद का उपदेश क्या है ?

यह कि मनुष्य का शरीर पांच भौतिक है। विश्व में जो कुछ दृष्टिगोचर हो: रहा है, सब पांच भौतिक ही हैं और पांच तत्व के गुण, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। पंच तत्व आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी शब्दादि तन्मात्राओं से और तन्मात्रा अहंकार से, अहंकार प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। वास्तव में यह प्रकृति के ही कार्य हैं। प्रकृति सत्, रज, और तम त्रिगुणमयी है। तीन गुण ही रूपान्तर से तीन दोष कहलाते हैं। शरीर क्रिया ज्ञान सम्बन्धी त्रिदोष सिद्धाँत आयुर्वेद का एक अमूल्य रत्न है। जैसे मानसिक क्रिया विज्ञान के लिए सत्, रज, तम यह तीन गुण हैं, वैसे ही शरीर क्रिया ज्ञान के लिए वातादि दोषत्रय, तीन दोष हैं।

आजकल आयुर्वेद शास्त्र से अनभिज्ञ वायु को Wind या हवा, पित्त को (Bile) पिताशय से निकलने वाला पीत-रंग का पित्त और कफ को थूक के साथ निकलने वाला (Phlegm) बलगम समझते हैं। यह उनकी बुद्धि का ही दोष है। वास्तव में वातादि दोष शरीर में दो रूप से अवस्थित हैं।

(१) एक धातु रूप और (२) दूसरा मल रूप।

१. धातु रूप तीनों दोष सूक्ष्म और इन्द्रिय अगोचर हैं, केवल उनकी क्रियाओं को देखकर ही इनका अनुमान हो सकता हैं। इनके स्वाभाविक और विकृत क्रियाओं के लक्षण ऐसे स्पष्ट हैं कि जिन्हें देख कर सूक्ष्म बुद्धि वालों को धातु रुप दोषों की सत्ता अवश्य माननी ही पड़ेगी और

२. मल रूप वातादि स्थूल एवं इन्द्रिय गोचर हैं, जिनकी विद्यमानता सभी स्थूल दृष्टि वालों को भी स्पष्ट दीख पड़ती है।

इस पांच भौतिक शरीर के स्वस्थ एवं बलिष्ट रहने से ही समस्त जगत का कार्य सुचारु रूप से चल सकता है और इसके विकृत होने पर संसार की सब सुख सामग्री के होते हुए भी कुछ नहीं सुहाता। अब इस

पांच भौतिक शरीर की आरोग्यता किसे कहते हैं ?

"रोगस्तु दोष वैषम्यम्-दोष साम्यमरोगता ।"

अर्थात् :—वातादि दोषों की विषमता Unequilibrium ही रोग है और इन वातादि दोषों की शरीर में प्रबल समता Equilibrium को ही आरोग्यता कहा जाता है। वातादि दोषों की शरीर में प्रबल समता होने पर यदि जीवाणु शरीर में प्रवेश कर भी जायें, तो स्वाभाविक रोग क्षमता (Immunity) होने के कारण व्याधि उत्पन्न नहीं होती ।

Allopathy में वर्णित सब संक्रामक ज्वर वा रोगों का मूलभूत कारण भी मिथ्याहार विहारादि से युगपत् कुपित हुए वात, पित कफादि दोष ही हैं ।

मिथ्याहार विहार तथा प्रज्ञाप्राध से ही आज का मानव आयुर्वेदोपदिष्ट स्वस्थवृत (Hygiene) की अवहेलना कर गली कूचों में खोंचे वालों से तथा आजकल के अपवित्र होटलों की दूषित आहार सामग्री का सेवन कर विशूचिका (Cholera) मन्थर ज्वर (Typhoid), आदि, तथा विषयलोलुपता से अन्धा हुआ हुआ अयोनि गमन से Syphillis (उपदंश), Gonorrhoea भूषोष्णावात, कुष्ठ आदि तथा बड़े बड़े नगरों के अन्दर मलिन, सीलयुक्त अंधेरी कोठड़ियों में रहने से Malaria, क्षयादि संक्रामक रोगों का शिकार होता है ।

संक्रामक रोग अवधि वीन्ध्य क्यों हैं ? आयुर्वेद का मान्य सिद्धान्त है कि जब तक दोषों का सम्यक् परिपाक नहीं होता या दोष आमयुक्त होते हैं, तब तक व्याधि के लक्षणों को तो दबाया जा सकता है किन्तु व्याधि को नष्ट नहीं किया जा सकता। जब तक दोष आम संयुक्त रहते हैं तब तक हमारा शरीर रोग क्षमता (Immunity) उत्पन्न करने में असमर्थ रहता है, जिसके कारण रोग हमें दबाये रखता है। इसीलिए आयुर्वेदिक चिकित्सक ज्वरादि के लक्षण प्रकट होने पर तुरन्त रोग शामक चिकित्सा न करके पहले लंघन कराते हैं फिर आम दोषों का पाचन करा यदि आवश्यक हो तो वमन विरेचन (पंचकर्म) करा पके हुए दोषों को बाहिर निकाल वातादि दोषों की समता स्थापित कर मूलभूत कारण को निर्मूल कर आरोग्यता प्रदान करते हैं। आयुर्वेद में कारण भेद से शारीरिक रोग दो प्रकार के माने गये हैं ।

१. निज और २. आगन्तुक

(१) निजः—मिथ्याहारादि से वातादि दोष स्वयं दूषित हो रसरक्तादि दूष्यों को दूषित करके रोगोत्पन्न कर देते हैं ।

(२) आगन्तुक :—बाह्य कारणों से

यथाः—ये भूतविषवाय्वग्निक्षतभंगादि संभवा।
कामक्रोधभयाद्याश्च ते स्युरागन्तवो गदा : ।।

पूर्व कथित Allopathy के संक्रामक रोग निज और आगन्तुक दोनों कारणों से उत्पन्न होते हैं ।

निज में वातादि दोष पहले स्वयं दूषित होकर रोग पैदा करते हैं, परन्तु आगन्तुक में पहले बाह्य कारणों से यथा गिरने से क्षत होकर, नंगे क्षत पर धूलादि पड़ कर, रसरक्तादि द्रव्य पहले दूषित होते हैं और यह दुष्ट द्रव्य वातादि दोषों को प्रकुपित कर धनुर्वात आदि लक्षण उत्पन्न कर देते हैं ।

इसलिए आयुर्वेद मतानुसार लक्षणों को

दबाने की चिकित्सा न करके लक्षणों से वातादि दोषों की दुष्टि का निर्णय कर आम दोषों को पका, बढ़े हुए दोषों को घटा और क्षीण दोषों को बढ़ा कर दोषों के अन्दर साम्यता अर्थात् रोग क्षमता (Immunity) लायी जाती है, यही आरोग्यता या चिकित्सा कहलाती है।

इस प्रकार आयुर्वेद में त्रिदोष सिद्धान्त द्वारा हम वात रोग का उपचार गरम और स्निग्ध, कफ का गरम और रुक्ष तथा पित का शीतल हजारों वर्षों से करते आ रहे हैं और उसी मूलभूत सिद्धांत के कारण आज भी आयुर्वेदिक चिकित्सा विज्ञान जीवित रह गौरवान्वित हो रहा है।

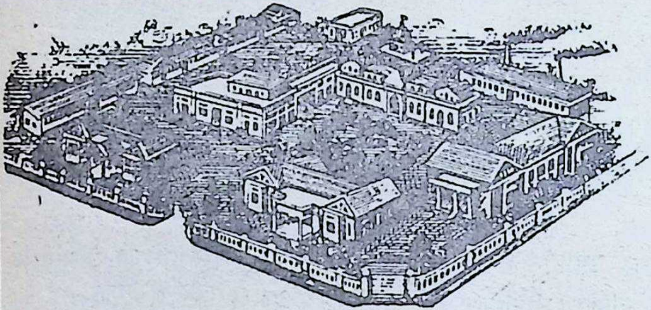

४५ वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम REGD.

गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, तैल, मलम, अंजन, अवलेह, आसवारिष्ट तथा पेटेंट वगैरह सैकड़ों आयुर्वेदिक औषधियाँ हाथ से तथा उपलों की अग्नि से बड़े जत्थे में तैयार की जाती हैं। यहां की दवाइयां सरकारी, म्युनिसिपल तथा धर्मार्थ दवाखानों आदि में तथा विदेशों में प्रचुर प्रमाण में जाती हैं। विद्वान वैद्य, हकीम तथा एलोपैथ डाक्टर **गोंडल रसशाला** की औषधियों के उपयोग से रोगियों को रोगमुक्त कर यश तथा धन कमा रहे हैं। प्रजा के हृदय में रसशाला ने विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। रोग के लिए सलाह मुफ्त दी जाती है, हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी सूचीपत्र आज मंगाइये। बम्बई की शाखायें :—

शाखा नं० १ गोंडल रसशाला औषधाश्रम,
छोटालाल भवन, ४१६ कालबा देवी रोड,
मुंबई २।

शाखा नं० २ गोंडल रसशाला औषधाश्रम
१७ कोमरश्यल चेम्बर्स, मस्जिद बन्दर रोड,
जकरिया मस्जिद सामने, मुंबई ३।

लू और हैजे से बचें

श्री मुन्नालाल मालवीय

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रखर किरणें बड़ी तेजी से सृष्टि जलीय तत्त्वों का शोषण करती हैं। सभी वस्तुएं वायुमंडल के तापमान को ग्रहण कर गर्म हो जाती हैं। परन्तु जल तत्त्व की प्रधानता के कारण प्रकृति शरीर के तापमान को स्थिर रखती है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि मनुष्य के शरीर पर ग्रीष्म ऋतु का प्रभाव ही नहीं पड़ता। प्रचंड आतप ज्वाला से शरीर का जलतत्त्व भी सूखता है। इससे उष्णता बढ़ती है और कमजोरी मालूम पड़ने लगती है। उष्णता की प्रथम सूचना प्यास द्वारा मिलती है। यदि इस सूचना पर ध्यान देकर उसकी पूर्ति कर दी गई तो हानि उठाने की सम्भावना नहीं रहती शीतल जल व अन्य पेय पदार्थ हमारी कमजोरी और बेचैनी को दूर करने के साथ-साथ शरीर के तापमान को भी स्थिर रखते हैं। यही कारण है कि ग्रीष्म ऋतु में शीतल पेय पदार्थों का विधान किया गया है। ग्रीष्म ऋतु मे बड़ी सावधानी के साथ प्रकृति के अनुसार कार्य करना चाहिए। जरा सी असावधानी करने से ग्रीष्मजन्य रोग हो जाने का डर रहता है। इनमें लू और हैजा प्रमुख हैं।

लू और उसका उपचार

गर्मी के कारण पसीने के रूप में शरीर से जल और लवण के निकल जाने से रक्त में इसकी कमी हो जाती है जिससे रक्त गर्म होने लगता है शरीर का ताप बढ़ जाता है। प्यास अधिक लगती है। सिर भारी होने लगता है। यह लू लगने की प्रथम अवस्था होती है। यदि इस अवस्था पर समुचित ध्यान न दिया गया तो यह गर्मी बढ़कर जब हृदय और मस्तिष्क पर अपना प्रभाव डालती है तब पूर्ण रूपेण लू लग जाती है। ऐसी अवस्था में त्वचा खूब गर्म हो जाती है। नाड़ी तेज चलने लगती है रक्त में जल की कमी हो जाने से उसका परिभ्रमण ठीक से नहीं हो पाता। इससे शरीर में ऐठन बढ़ जाती है। श्वास तेजी से चलती है। ऐसे समय यदि ठीक उपचार न किया गया तो रोगी की मृत्यु तक हो जाती है।

लू लगे हुए रोगी को ठंडे और हवादार स्थान पर रखो। सिर पर बर्फ का ठंडा पानी डालना चाहिए। सारे शरीर को बर्फ के ठंडे पानी में भीगे हुए कपड़े से पोछना चाहिए। हाथ पैर के तलुवों पर बर्फ रखनी चाहिए। जब तक शरीर का तापमान कम न हो जाए तब तक यह क्रिया करनी चाहिए।

रोगी को नमक मिला हुआ पानी पिलाना चाहिए इसके लिए आम का पन्ना सर्वश्रेष्ठ है। आम का पन्ना, भुना आम जीरा काला नमक, पुदीना, मिर्च, हींग और जल के संयोग से बनता है। इसके द्वारा शरीर में जल और लवण यथेष्ठ मात्रा में पहुंच जाता है। इससे ताप में भीं कमी होती है। और रोगी को आराम मिलता है। पैर के तलुवे में भी आम के पन्ने की मालिश करनी

चाहिए। यदि आम का पन्ना न मिले तो जौ के आटे का लेप सारे शरीर में करना चाहिए। जीरा जल अथवा ग्लूकोज में नमक मिलाकर पिला सकते हैं। रोगी को नींबू का शर्बत भी पिलाना चाहिए। इससे जलन दाहा, आदि में कमी होने के साथ साथ पित्त विकार भी दूर हो जाता है। प्याज खाने वाले को प्याज के रस का सेवन भी कराना चाहिए पैर में इसकी मालिश भी करनी चाहिए।

लू से कैसे बचें ?

लू से बचने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:—

गर्मी के दिनों में छाये ही में चलना चाहिए। धूप में बेकार इधर उधर नहीं टहलना चाहिए। यदि किसी कार्य वश धूप में निकलना ही पड़े तो सिर की रक्षा के लिए छतरी ले लेनी चाहिए। यदि छतरी न मिले तो हैट या मोटा वस्त्र सिरपर रख लेना चाहिए। नंगे पैर और नंगे वदन धूप में नहीं जाना चाहिए। शरीर पर कोई न कोई वस्त्र अवश्य होना चाहिए। यदि रेशमी वस्त्र हो तो अति उत्तम है। रेशमी वस्त्र के अभाव में खद्दर का मोटा कपड़ा पहनना चाहिए। एकदम ठंडे स्थान से एकदम गर्म स्थान में एकाएक नहीं जाना चाहिए। मार्ग में ठंडे स्थान पर सुस्ता लेना चाहिए। एक सांस में बहुत दूर जाना ठीक नहीं हैं। गर्मी में प्यास की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। प्यास लगने पर शीतल जल पी लेना चाहिए बाहर निकलते समय तो पानी अनिवार्य रूप से पीकर निकलना चाहिए। इससे लू लगने का डर नहीं रहता। जहां तक हो सके आम का पन्ना नित्य पीना चाहिए। यह जल और नमक की कमी को पूरा करने के साथ-साथ पाचन क्रिया को भी ठीक करता है। प्याज का सेवन भी हितकर है। रास्ते में चलते समय जेब में एक प्याज रख लेने से भी इससे बचा जा सकता है।

हैजा

हैजा ग्रीष्म का दूसरा परन्तु बड़ा विनाशकारी अभिशाप है। इसका कारण यह है कि यह तीव्र संक्रामक रोग है। एक बार शुरू होने पर सैकड़ों व्यक्ति इसके शिकार हो जाते हैं। इसमें कै और दस्त होते हैं। पेशाब रुक जाती है। शरीर ठंडा हो जाता है और रोगी की मृत्यु हो जाती है।

हैजा फैलाने वाले एक प्रकार के सूक्ष्म कीटाणु होते हैं, जो रोगी के कै और दस्त में बहुत रहते हैं। इनकी संख्या पानी आदि में बड़ी तेजी से बढ़ती है। मनुष्यों को हैजा इन्हीं कीटाणुओं के द्वारा होता है। ये कीटाणु शरीर में भी उत्पन्न हो सकते हैं और बाहर से भी प्रवेश कर सकते हैं। गर्मी के दिनों में अग्नि मंद रहती है। खाना ठीक से पचता नहीं। भोजन न पचने और बार-बार तरल पदार्थ पीने से उसमें सड़न पैदा होती है जिससे ये कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। सड़े गले फल, दूषित वायु, दूषित जल और मादक द्रव्य के सेवन से भी रोग हो जाता है। कभी-कभी जुलाब से भी हैजा होता देखा गया है।

हैजे का लक्षण

हैजा शुरू होने के पहले शरीर का तापमान घटता जाता है। कमजोरी, पेट में मरोड़, हृदय में धड़कन, मिचली आदि शुरू हो जाती है। फिर कै और दस्त होने लगते हैं। कै और दस्त बिना तकलीफ आसानी से हो जाते हैं। कमजोरी बढ़ने लगती है। प्यास खूब लगती है। बेचैनी बढ़ जाती है।

पेशाब बन्द हो जाता है। सारा शरीर बर्फ जैसा ठंडा हो जाता है। हाथ पैर में अकड़न पैदा होती है। रोगी क्रमशः क्षीण हो जाता है। नाड़ी धीरे-धीरे लुप्त होने लगती है। कै दस्त की मात्रा भी ऐसी अवस्था में कम हो जाती हैं। रोगी मर जाता है। हैजा प्रायः रात्रि के पिछले पहर से शुरू होता है।

हैजे का उपचार

हैजे के रोगी को तुरन्त संक्रामक अस्पताल में भेजना चाहिए। यदि संक्रामक अस्पताल नजदीक न हो तो निम्न उपचार करना चाहिए। रोगी को अलग कमरे में लिटा देना चाहिए। उसके कै दस्त को बड़ी हिफाजत से दूर ले जाकर गाड़ देना चाहिए। यदि शहर हो तो कै दस्त को नाली में बहाने के बाद फिनाइल डाल देना चाहिए। इससे बीमारी फैलने का खतरा दूर हो जायगा।

रोगी को अमृतधारा (फूल, पिपरमेंट, कपूर, अजवाइन का सत बराबर मिलाने से बनता है) पानी या बताशे के साथ ५ से १० बूंद तक कई बार देना चाहिए। यह हैजे की अचूक दवा है। इससे हैजे के कीटाणु बहुत जल्द नष्ट हो जाते हैं। रोगी को भी आराम मिलता है। औषधि खिलाने के बाद यदि कै हो जाए तो फिर औषधि खिला देनी चाहिए। प्याज का रस पिलाने से भी फायदा होता है। रोगी को कपूर सुंघाना चाहिए। रोगी के कमरे में कपूर की वत्ती भी जलानी चाहिए। प्यास की शान्ति के लिए सौंफ पुदीने का अर्क दिया जाना चाहिए। पानी गरम करके ठंडा करके देना चाहिए। पानी में यदि पीपल की छाल का कोयला बुझा लिया जाय तो और भी उत्तम है। बर्फ चूसने के लिए देना चाहिए। इसका पानी भूल कर भी न पिलाना चाहिए। नींबू को पानी में निचोड़ कर थोड़ा थोड़ा करके देना चाहिए। पेशाब कराने के लिए पेडू पर सोरा और मिट्टी का लेप करना चाहिए। भैंस के कान का मैल भी नाभी पर रखना चाहिए। कच्चे नारियल का पानी पिलाना चाहिए। मूत्र भाग पर कपूर रखने से भी पेशाब हो जाता है। हाथ पैर की ऐंठन दूर करने के लिए तेल में कपूर मिला कर उसकी मालिश करनी चाहिए गर्म पानी की बोतल से भी सेंक करनी चाहिए।

रोग शान्त होने पर पतले पेय-पदार्थ बड़ी सावधानी से देना चाहिए। नींबू का शर्बत, फलों का रस, पतले अरारोट में नमक डाल कर उसे गर्म कर देना चाहिए। इस नमक मिले पानी से शरीर में नमक पहुंच जायगा और ऐंठन कम हो जायगी। जब रोगी को आराम हो जाय पेशाब दस्त आदि ठीक हो जाय तब मूंग की पतली खिचड़ी देना चाहिए। पुदीने की चटनी भी देना चाहिए।

हैजे से बचने का उपाय

हैजे से बचने के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है :—

खुले हुए खाद्य पदार्थों को जिन पर मक्खियां बैठी हों न खायें। बासी दूध, बासी फल, आइस क्रीम, कुलफी, गन्दे बर्फ, सड़े गले फल आदि नहीं खाना चाहिए, बाजार के फल व तरकारियों को धो लेना चाहिए। धोने के पानी में लाल दवा मिला लेने से किसी भी प्रकार के खतरों की आशंका नहीं रहती। पीने का पानी गर्म करके ठंडा किया हुआ हो। खुला पानी कभी न पियें। भोजन हलका करें। जुलाब न लें। हैजे के दिनों में खाली पेट बाहर न निकलें। अमृतधारा कभी-कभी ले लिया करें। खूब स्वच्छता

के साथ रहें कुवें में लालदवा डाल दें। भोजन के पूर्व लालदवा से हाथ पैर अवश्य साफ कर लें। टीका भी लगवा लें। इस प्रकार यदि इन बातों पर जरा भी ध्यान दिया गया तो इन दो भयानक रोगों से सहज ही बचा जा सकता है। (सर्वाधिकार सुरक्षित)

——

आयुर्वेदीय स्वस्थवृत

श्री लक्ष्मीनारायण पचौरी आयुर्वेदाचार्य

स्वास्थ्य के महत्त्व को सब लोग जानते हैं। इसलिये इस सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं हैं। तथापि मनुष्य का स्वभाव है कि वह स्वच्छन्द रहना चाहता है; भले ही इसमें प्रकृति के नियमों की अवहेलना हो और उसे अपने स्वास्थ्य से हाथ धोना पड़े। इसलिये स्वास्थ्य के महत्त्व को समझना और उसे स्थिर रखने के लिये प्राकृतिक नियमों के पालन करने की आवश्यकता बताना कभी भी अनवसरपूर्ण अथवा अप्रासंगिक नहीं कहा जा सकता। भगवान् चरक का कहना है—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

अपि च,

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत् ।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावःशरीरिणाम् ।

तात्पर्य यह है कि मानव जीवन के साध्यरूपी चार परम पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन अथवा आधार यदि कोई है, तो वह स्वस्थ शरीर ही है, अतः सब कामों को छोड़ कर पहिले शरीर को स्वस्थ बनाना चाहिये। यदि शरीर रुग्ण है, तो ये पुरुषार्थ तो गये ही, कल्याणप्रद जीवन भी क्षीण होता है, और साधारण कार्यों का सम्पादन भी इस शरीर से नहीं हो सकता।

जिस स्वास्थ्य को लक्ष्य कर यह परिषद् हो रही है, वही तो आयुर्वेद का प्रमुख उद्देश्य है, क्योंकि महर्षि चरक ने सूत्रस्थान में आयुर्वेद के उद्देश्यों में उसे प्रथम स्थान दिया है—

"प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्य-
रक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनँच।"

चूँकि आयुर्वेद का क्षेत्र समग्र सृष्टि में व्यापक एवं अनादि है, इसलिये स्वास्थ्य संरक्षण विज्ञान उसी तरह शाश्वत, व्यापक एवं अनादि है, जिस तरह विकार प्रशमन विज्ञान।

आचार्य सुश्रुत ने स्वस्थ पुरुष के लक्षण इस प्रकार बताये हैं—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।

यह कितनी सुन्दर व्याख्या है। किसी भी चिकित्सा विज्ञान में स्वस्थ पुरुष की इतनी मार्मिक, गम्भीर और यथार्थता-निदर्शक व्याख्या नहीं है। इससे यह स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि यह शरीर केवल सप्त धातुओं से निर्मित एक पुतला नहीं है, जो किसी जड़ मशीन के समान काम करता

हो, किन्तु इसके साथ आत्मा की चैतन्यशक्ति है, जैसी कतिधापुरुषीय शारीर में महर्षि चरक ने इसकी व्याख्या की है—

खादयश्चेतनाषष्ठा धातवः पुरुषः स्मृतः ।

तथा—

पुनश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिकः स्मृतः ।

यह षड्धात्वात्मक अथवा चतुर्विंशति तत्त्वात्मक शरीर ही चिकित्सा का क्षेत्र है तथा इसी को स्वस्थ रखने का प्रबन्ध करना स्वास्थ्य विज्ञान का विषय है, जैसा कि इसी अध्याय में आगे कहा है—

अत्र कर्मफलं चात्र ज्ञानं चात्र प्रतिष्ठितम् ।
अत्र मोहः सुखं दुर्खं जीवितं मरणं स्वता ॥
एवं यो वेद तत्त्वेन स वेद प्रलयोदयौ ।
पारम्पर्यं चिकित्सां च ज्ञातव्यं यच्च किंचिन ॥

इन तत्वों में मन आत्मा और शरीर तीन प्रधान हैं, इसीलिये महर्षि चरक ने कहा है—

सत्वमात्माशरीरंच त्रयमेतद् त्रिदण्डवत् ।
लोकस्तिष्ठति संयोगात्त त्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

मन का शरीर पर तथा शरीर का मन पर परस्पर प्रभाव पड़ता है और एक की विकृति से दूसरे में विकार हो जाते हैं; जैसा हम स्पष्ट देखते हैं कि मानस रोगों में शरीर विकार तथा शारीरिक रोगों में मानसिक उत्पीडन होता ही है। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान आत्मा तक तो नहीं पहुँचा है, किन्तु वह शरीर की चिकित्सा में मन के महत्व को मानने लगा है तथा उसके उच्च कोटि के चिकित्सक Psychosmatic चिकित्सा व्यवस्था को महत्व देने लगे हैं। तथापि अधिकांश चिकित्सक मानसिक भावनाओं, विकारों अथवा प्रभावों का ध्यान रख कर स्थूल शरीर ही चिकित्सा का आधार समझते हैं और उसमें भी यथार्थ विकृति की ओर विशेष ध्यान न देकर सिर्फ लाक्षणिक चिकित्सा (Symptomatic treatment) करते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि एलोपैथी के द्वारा रोग की चिकित्सा की जाती है, रोगी की नहीं, अर्थात् यह प्रयत्न किया जाता है कि रोग मिट जावे या तिरोहित हो जावे, चाहे रोगी के मन और इन्द्रियां प्रसन्न हों अथवा नहीं। इसके फलस्वरूप होता यह है कि रोग के लक्षण तो नहीं दिखाई पड़ते, किन्तु दोष, अग्नि, धातु और मल की क्रिया में समत्व नहीं आता और न उसके मन में उल्लास मालूम होता है। इसलिये वह स्वास्थ्य प्राप्त नहीं होता, जिसे आयुर्वेद ने मान्यता दी है। विपरीत इसके अनेक औषधियां ऐसी हैं जो दोष, अग्नि, धातु और मल की क्रिया में वैषम्य तथा आत्मेन्द्रिय मन की अवसन्नता पैदा करती हैं। उदाहरणार्थ—यकृत सत्व, सीरम आदि अनेक इन्जेक्शनों तथा औषधियों से असहिष्णुता (Idiosyncracy or Allergy) जन्य स्पर्शेन्द्रिय व्याघात होकर कण्डू, शीतपित्त या शोथ, स्ट्रेप्टोमायसिन व क्विनिन के प्रयोग से कर्णेन्द्रियवाधिर्य, सेलीसिलेट से कर्णेन्द्रिय में सनसनाहट, आयोडाइड से चक्षुरिन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय की श्लैष्मिक कला में शोथ और स्रावाधिक्य सल्फा समुदाय की औषधियों से मूत्रेन्द्रिय पर मूत्राघात या मूत्रकृच्छ्र रूपी प्रभाव, क्लोरोमाईसेटिन से रक्तमेह (Haematuria)—इस तरह ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में व्याघात होता है। तद्वत् क्लोरमफेनिकाल व सल्फा औषधियों से रक्त तथा मज्जा धातु का क्षय होकर धातु वैपम्य स्थापन, औरोमाइसिन या टेरामाइसिन से मलक्रिया में विषमता होकर दस्त लग.जाना

सल्फा औषधि तथा उपर्युक्त एवं अन्य Antibiotics के प्रयोग से अग्निवैषम्य होकर हृल्लास, वमन और अग्निमांद्य होना तथा भ्रम, ग्लानि, मनोदैन्य आदि विविध प्रकारीण ऐसे प्रभाव हैं कि हमें यह कहना पड़ता है कि पाश्चात्य चिकित्सा से यथार्थ स्वास्थ्य नहीं मिलता, जिसकी व्याख्या आयुर्वेद ने उपर्युक्त ढंग से की है। अर्थात्–

"समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥"

बल्कि अस्वास्थ्य को ही प्रोत्साहन मिलता है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से मानव शरीर की तीन स्थितियां हैं। एक प्राकृत स्वास्थ्य (Normal Health) की स्थिति, जिसका वर्णन स्वस्थ पुरुष के लक्षण में ऊपर बताया है, यह मध्य की स्थिति है। अपनी आहार विहार सम्बन्धी दिनचर्या द्वारा इस स्थिति को स्थिर रखते हुए शारीरिक उन्नति की जाती है, तो उसे धनात्मक स्वास्थ्य (Positive Health) कहेंगे। अर्थात् स्वास्थ्य रूपी छड़ी का कांटा आगे को बढ़ा है, ऐसा कहा जावेगा। जब कांटा पीछे को हटेगा तो ऋणात्मक स्वास्थ्य (Negative Health) या अस्वास्थ्य कहा जावेगा। अब मैं स्वास्थ्य की प्रत्येक स्थिति के सम्बन्ध में कुछ कहूंगा।

यह वह स्थिति है, जिसमें शरीर रुग्ण हो। इसके उत्पादन में दोष वैषम्य प्रधान कारण है। इसीलिए कहा है—रोगस्तुदोषवैषम्यं दोष साम्यमरोगता। इस रोग या दोष–वैषम्य की स्थिति को मिटाने के लिए आयुर्वेद में संशोधन, पाचन शमन आदि अनेक प्रकार की क्रियाएं की जाती हैं। जिसे सुधारात्मक चिकित्सा (Curative Medicine) कहते हैं। किन्तु आयुर्वेद शास्त्र में इस बात का ध्यान रखा गया है कि रोग होने ही न पावे, जिसे प्रतिषेधक चिकित्सा (Preventive Medicine) कहते हैं। यह विषय स्वास्थ्य विज्ञान के अन्तर्गत आता है। दूषित या विकृत दोषों के प्रसार से जिस प्रकार रोगोत्पत्ति होती है; उसे सम्प्राप्ति कहते हैं, जिसके सम्बन्ध में माधवाचार्य ने लिखा है—

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता।
निवृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः॥

इस सम्प्राप्ति के अन्तर्गत वृद्धदोषों की क्रमागत छै अवस्थायें होती हैं—

संचयञ्च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम्।
व्यक्ति भेदं च यो वेत्ति दोषाणां स भवेद्भिषक॥ सुश्रुत सू. २१

विकृतदोष की इन भिन्न भिन्न छै अवस्थाओं में कौन कौन से लक्षण होते हैं, इसका वर्णन सुश्रुताचार्य द्वारा सूत्र स्थान में छै क्रिया कालों का निर्देश करते हुए किया गया है। अर्थात् सम्प्राप्ति की प्रत्येक अवस्था में चिकित्सा हो सकती है और जितनी जल्दी चिकित्सा की जाय उतनी ही जल्दी रोग निरोध या रोग शमन होगा। स्थान संश्रय नामक सम्प्राप्ति की चतुर्थ अवस्था में व्याधि के पूर्वरूप दिखते हैं। यह आयुर्वेद का वैशिष्ट्य है कि उसके द्वारा सिर्फ पूर्व रूप में ही नहीं किन्तु उसके पहले आने वाली संचय, प्रकोप और प्रसर की तीन अवस्थाओं में भी चिकित्सा करके रोगों का आगमन रोका जा सकता है। रोग प्रतिषेध की दृष्टि से यह मत कितना प्राकृतिक और वैज्ञानिक है, जब कि आयुर्वेद के सम्बन्ध में यह आक्षेप किया जाता है कि उसमें रोग प्रतिषेधक चिकित्सा (Preventive

शाख २०१२

Medicine) का अभाव है। प्रतिषेधक चिकित्सा का आयुर्वेद में कितना महत्व है यह निम्न श्लोकों से और भी स्पष्ट हो जावेगा—

संचयेऽपहृता दोषा लभन्ते नोत्तरागतीः
ते तूत्तरासु गतिषु भवंति बलवत्तराः ।। वाग्भट ।
अणुर्हि प्रथमं भूत्वा रोगः पश्चात् विवर्धते ।
स जातमूलो मुष्णाति बलमायुश्चदुर्मतेः ।।
तस्मात् प्रागेव रोगेभ्यो रोगेषु तरुणेषु वा ।
भेषजैः प्रतिकुर्वीत य इच्छेत् सुखमात्मनः ।।
चरक ।

कालरा प्लेग आदि औपसर्गिक तथा सामान्य रोगों को रोकने के लिये आयुर्वेद में प्रतिषेधक चिकित्सा का जब इतना बड़ा क्षेत्र है तब, एलोपैथी में सिवाय वेक्सीन इंजेक्शन देने के और कुछ नहीं है। एलोपैथी में सिर्फ औपसर्गिक रोगों का संचय काल (Incubation Period) दिया है; किन्तु आयुर्वेद के समान उसके कोई लक्षण अथवा उस अवस्था में रोग को रोक देने के कोई उपाय नहीं दिये। विपरीत इसके यदि उस अवस्था में रोग प्रतिषेधक वेक्सीन का प्रयोग किया जाय तो रोग प्रायः अधिक भयंकर होता है। यहां पर यह बता देना आवश्यक है कि आयुर्वेदज्ञ भी वेक्सीन चिकित्सा के सिद्धान्त को जानते थे। वेक्सीन में उसी रोग के अर्धमृत जीवाणु या जीवाणुविष का सूक्ष्म मात्रा में प्रयोग करते हैं; जिस रोग के प्रति क्षमता उत्पन्न करना होती है। आयुर्वेद के हेतु व्याधिविपर्यस्तार्थकारी चिकित्सा इसी सिद्धान्त की पोषक है। इसके अतिरिक्त निम्न वाक्य खण्ड स्पष्ट रूप से वेक्सीन चिकित्सा के सिद्धांत को पुष्ट करते हैं—

तथा विधैश्च द्रव्यैः पूर्वमभिसंस्कारः शरीरस्य।।
—चरक।
द्रव्यैस्तैरेव वा पूर्वंशरीरस्याभिसंस्कृतिः ।।
—वाग्भट ।

इसी तरह मसूरिका चेचक के प्रति क्षमता उत्पन्न करने के लिये उसीकी लसीका का प्रयोग किया जाता था, जैसा कि निम्न उद्धरण से स्पष्ट है—

धेनुस्तन्यमसूरी वा ताराणां च मसूरिका ।
तज्जलं बाहुमूलाच्च शस्त्रान्तेन गृहीतवान् ।।
बाहुमूले च शस्त्रेण रक्तोत्पत्ति करेण च ।
तज्जलं रक्त मिलितं स्फोटकज्वरसंभवम् ।।
धन्वन्तरि शाक्तेय ग्रन्थ ।

चूंकि टीका लगाने के इन कृत्रिम उपायों की अपेक्षा अन्य स्वाभाविक उपाय उचित और लाभप्रद पाये गये, इसलिये आयुर्वेदज्ञों ने इनकी ओर प्रगति नहीं की।

जनपदोध्वंसक रोग (Epidemic Diseases) के सम्बन्ध में आयुर्वेद का मत है कि ये वायु, जल, देश अथवा काल की सामान्य विकृति के कारण विभिन्न प्रकृति के मनुष्यों में भी एक साथ हो जाते हैं। समयाभाव के कारण मैं प्रत्येक का वर्णन नही करूंगा; किन्तु आप देखेंगे कि हजारों वर्ष पुराना यह मत आज के वैज्ञानिक मत से कितना साम्य रखता है। इन जनपदोध्वंसक रोगों को रोकने के लिये चरक विमान स्थान तृतीय अध्याय में लिखा है—

चतुर्ष्वपि तु दुष्टेषु कालान्तेषु यदा नराः ।
भेषजेनोपपाद्यन्ते न भवन्त्यातुरास्तदा ।।
येषां न मृत्यु सामान्यं सामान्यं न च कर्मणाम् ।
कर्मपञ्चविधं तेषां भेषजं परमुच्यते ।।
रसायनानां विधिवच्चोपयोगः प्रशस्यते ।
शस्यते देहवृत्तिश्च भेषजैः पूर्वमुद्धृतैः ।।

इस के पश्चात् एक विशेष सद्वृत्तपालन का विधान भी दिया है; जिससे संक्रामक रोगों को रोका जा सकता है ।

आयुर्वेद की प्रतिषेधक चिकित्सा सिर्फ रोग प्रतिषेध तक सीमित नहीं है। किन्तु उसके अष्टाङ्गों में रसायन नामका एक प्रधान अंग है; जिसमें जरा प्रतिषेध और आयुवर्धन के विविध कल्पों का वर्णन है। यह कल्प चिकित्सा आयुर्वेद की अपनी विशेषता है; जिससे पुनर्यौवन की प्राप्ति और आयु की वृद्धि होती है, जिसके लिये अनेक अप्रसिद्ध उदाहरणों में से पूज्य पं० मदनमोहन जी मालवीय का एक उदाहरण दिया जा सकता है।

अब मैं प्राकृत स्वास्थ्य (Normal Health) के सम्बन्ध में कुछ कहूंगा। स्वास्थ्यको स्थायी रखने अर्थात् अस्वास्थ्य की ओर शरीररूपी घड़ी का कांटा न घूमे, बल्कि धनात्मक स्वास्थ्य की ओर बढ़े अथवा उसके लिए क्षेत्र तैयार हो—इस बात के लिए आयुर्वेद में आहार-विहार को लक्ष्य में रख कर दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या का जो वर्णन किया गया है; वैसा आज तक किसी चिकित्सा शास्त्र में नहीं है। प्रातः उठ कर रात्रि में सोने तक तथा रात्रि में उठने तक प्रत्येक व्यक्ति का कार्यक्रम क्या रहना चाहिये; यह दिनचर्या व रात्रिचर्या के अन्तर्गत वर्णित है। इसमें दन्तधावन जैसे साधारण कार्य से लेकर शरीर पोषक आहार जैसे महत्त्व के कार्यों का गम्भीरता से वर्णन किया है। इसी तरह वर्ष का विभाजन मौसम के अनुसार षड्ऋतुओं में करते हुए प्रत्येक ऋतु में क्या चर्या रहना चाहिये तथा किस ऋतु में किस दोष का संचय होता है एवं कब और किस विधि के उसका निर्हरण करना चाहिये—जिससे रोगोत्पत्ति न हो सके—इसका वर्णन ऋतुचर्या के अन्तर्गत किया गया है। भावप्रकाश ने कहा है—

दिनचर्यां निशाचर्यामृतुचर्यां यथोदिताम्।
आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा॥

अर्थात् शास्त्र प्रतिपादित दिनचर्या, निशाचर्या, और ऋतुचर्या का आचरण किये बिना मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता अतः इस विषय की शिक्षा विद्यार्थियों को पाठशाला में अवश्य देनी चाहिये और न सिर्फ पुस्तकों द्वारा पढ़ाना चाहिये किन्तु उनके अभिभावकों और शिक्षकों को विद्यार्थियों द्वारा अभ्यास में लाये का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करने से भविष्य में वे स्वस्थ नागरिक रहेंगे और औषध में व्यय होने वाले देश के करोड़ों रुपयों की बचत होगी तथा स्वस्थ मानव शक्ति का उपयोग देश की समृद्धि में होगा।

इन चर्याओं में आहार, स्वप्न या निद्रा और ब्रह्मचर्य तीन प्रधानतम हैं इसलिये चरक सूत्रस्थान में कहा है—

त्रय उपस्तम्भाः आहारः, स्वप्नो, ब्रह्मचर्यमिति। एभिस्त्रिभिर्युक्ति युक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भैः शरीरं बलवर्णोपचयोपचितमनुवर्तते यावदायुः संस्कारात्, संस्कारमहितमनुपसेवमानस्य। च० सू० अ० ११

अपिच,

आहारशयनब्रह्मचर्यैर्युक्त्या प्रयोजितैः।
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिवधारणैः॥
वा. सू. आ. ७

इस तरह आप देखेंगे कि आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य का युक्ति युक्त प्रयोग शरीर को धारण रखता है, स्वस्थ रखता है और शक्ति सम्पन्न बनाता है।

यह सब वैयक्तिक स्वस्थवृत्त है। आखिर व्यक्ति से ही समाज का निर्माण होता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए अपने आप तन्दुरुस्त रहे तो सामाजिक स्वास्थ्य अच्छा रहेगा ही। फिर

भी यह कहना आवश्यक है कि समय के अनुसार ग्राम और छोटे नगरों के स्थान पर जो लाखों की आबादी वाले शहरों का प्रादुर्भाव होने लगा है उसको देखते हुए विशेष प्रकार के सामाजिक स्वस्थवृत्त या लोक स्वास्थ्य (Public Health and Hygiene) की शिक्षा अपेक्षित है। यद्यपि राजकीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा प्राप्त प्राचीन नगरों के ध्वंसावशेष यह बताते हैं कि पहिले भी बड़े बड़े नगर थे जिनकी वास्तु कला अद्वितीय थी तथा उनकी चवड़ी चवड़ी सड़कें, हवादार व प्रकाशदार मकान, बड़ी बड़ी नालियां तथा प्रवाहणशील शौचालय (Flush Latrines) आदि उस समय के लोक स्वास्थ्य के उच्च ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं, किन्तु उस समय की लिखित तद्विषयक पुस्तकें आज प्राप्त नहीं हैं। जिस तरह आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थरत्न मुगल और ब्रिटिश सल्तनत की ऐतिहासिक कुचेष्टाओं के कारण नष्ट हो गये वही दुर्दशा इन ग्रन्थों की हुई। फिर भी महाभारत से विदित है कि पाण्डवों द्वारा दुर्योधन के लिये एक ऐसा महल बनाया गया था जहां जल के स्थान में स्थल और स्थल के स्थान में जल की प्रतीति होती थी। यह प्राचीन काल की अद्वितीय गृह-निर्माण कला का उदाहरण है जो कि आज तक असम्भव सा मालूम होता है। इसी तरह सैकड़ों वर्ष पूर्व लिखित क्षेम कुतूहल में वर्णित महानस, मयकृत वास्तुशास्त्र में वर्णित गृह, नगर, दुर्ग, पण्यवीथिका आदि का निर्माण और विट्मल दूरीकरण का वर्णन तथा चरक और सुश्रुत में कथित कुमारागार, सूतिकागार, आहार विज्ञान और पनीय जल व्यवस्था हमें आश्चर्यान्वित करते हैं इस तरह आप देखेंगे कि सामाजिक स्वास्थ्य की दृष्टि से सरकारी योजनाओं को कार्यान्वित करने में आयुर्वेद पूर्णतः समर्थ है तथा नागरिक एवं ग्रामीण लाभ की प्रत्येक योजना में इसका सफल उपयोग किया जाना चाहिये।

जहां तक गर्भिणी, प्रसूता और बालक के स्वस्थवृत्त का सम्बन्ध है, चरक, सुश्रुत, काश्यप संहिता और वाग्भट में किये वर्णन को देखकर आप कहेंगे कि आज के विज्ञान की आधुनिकतम पुस्तकों में इतना गम्भीर, सूक्ष्म और विशद वर्णन नहीं है। (क्रमशः)

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी,
विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता,
सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण
माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक
आदि सब प्रकार के खनिज
तथा वनौषधि द्रव्य थोक
व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७९६

पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड़, बम्बई

अधिका धमनी प्रतिहतिः

ARTERIAL HYPER TENSION

वैद्य एस० वी० राधाकृष्ण शास्त्री, वैद्य विशारदः, तिरुचिरापल्ली

केचनाद्यतना आयुर्वेदविद्वांसो बाह्यनव्यवैद्यकविज्ञाने प्रपञ्चितानां विषयाणां भारतीयभाषासु संस्कृते वा अनुवादेनैव आयुर्वेदशास्त्राभिवृद्धिं मन्वाना आलोपाथिकवैद्यकोक्तं विषयजातं अर्थतः शब्दतश्च तथैव भाषान्तरीकृत्य प्रबन्धन्ति ग्रन्थान् । एतादृशानामयुतग्रन्थानां प्रवाहेनापि नाणुमात्रमप्यायुर्वेदलाभं मन्येरन् मनीषिणः । परमालोपाथिकवैद्यकस्यैव इह देशे उत्तरोत्तरं प्रचारमूलमिदम् आलोपाथिकादिनव्यवैद्यक नये प्रपञ्चितानामुपयोगिनां स्वीकार्यविषयाणां आयुर्वेदसिद्धान्तीयप्रमाणैः परीक्ष्य, समन्वयं कृत्वा, आयुर्वेदपरिभाषया प्रतिपादनस्वीकृतिरेव वस्तुत आयुर्वेदस्योपबृंहणी भवितुमर्हतीति हि प्रेक्षावतां मतम्। अमूमायुर्वेदोपकारिणीं सरणिमनुसृत्य Blood Pressure आख्यं विषयं बहुभिः पण्डितैः परिशीलित चरमपि अयं परीक्षककुशलो लेखकः निबन्धेऽस्मिन् प्रयतते आयुर्वेदसरण्या समन्वेतुम् ।

(वा० बा० न)

उपोद्घातः

हृदयाद्बहिः विक्षिप्यमाणस्य रक्तस्य धमनीषु यः प्रतीघात उपलभ्यते स्पर्शसंवेद्यः, कुत्रचिच्च दृग्गोचरः स धमनीप्रतिहतिरिति परिभाष्यतेऽस्माभिः । अयं प्रतीघातः यदा आरोग्यविघटकतया विकृतः स्वाभाविकमानापेक्षया न्यूनोऽधिको वा उपलभ्यते, तदा व्याधिरिति गृह्यते । यदा न स्वास्थ्यं विघटयति, तदा तस्याधिकता न्यूनता वा स्वाभाविकशरीरक्रियाजन्यतया व्याधिरिति न गण्यते ।

प्राकृतावस्थायामपि केषाञ्चित्कदाचित्तात्कालिकतया स्वाभाविकं रक्तप्रतिहतिमानमधिकं ऊनं वा स्यात् । तत्र कारणं, मनसोऽस्वास्थ्यं तात्कालिकं, उत्तेजना विषादो वा, अनिद्रा अतिनिद्रा वा, अध्यशनं अनशनं व्यायाम इत्यादिना हृत्कर्मणि व्यानव्यापारेषु संपद्यमानो विशेषः । उत्तेजनाविषादशीलानां बहुश्रान्तजीविनां वा प्रतिहत्याधिक्यमुत्तरे वयसि संभवेदेव । निद्रितस्य ऊना, अनिद्रितस्य अधिका । अभ्यवहृताहारजरणकाले प्रथम-द्वितीयहोरयोः कदाचिदूना कदाचिदधिका कदाचिदविशिष्टा च अभ्यवहृताहारप्रकृत्या । व्यायामकाले प्रतिहतिः क्रमेणाधिका, व्यायामोत्तरक्षणे च सद्यः क्षयितुमारभेत; विश्रान्ते कदाचित्स्वाभाविकान्मानादप्यूना इत्येवं स्वास्थ्याविघटकतयाऽपि रक्तप्रतिहतेरूनता अधिकता च वैद्येनासकृदनुभूयत एव ।

रक्तप्रतिहतौ न्यूनतायामधिकतायां वा सामान्येनैतानि साधनानि भवन्ति। १. हृदयाद्बहिर्विक्षिप्यमाणस्य रक्तस्य माने न्यूना-

धिक्यम् २. धमनीगतपेश्यादीनां स्थितिस्थापकतायां विकृतिः, ३. रक्तस्य विकृता सान्द्रता द्रवता च, ४. हृदयालिन्दनिलयानां विकृतो विष्फारः संग्रहश्च, मन्दस्त्वरितश्च क्रमः, ५. धमनीनां रक्तसंधारणशक्तौ विकृतिः, ६. शोकक्रोधादि मानसभावोत्तेजनविषादनवशात् हृदुत्तेजक विषादक पानाभ्यवहारशीलनात् हृत्कर्मणि त्वरा मान्द्यं वा ।

अत्र किञ्चिदवधेयम्। रक्तप्रतिहतिःनाडीपरीक्षयाप्रतिहतिपरीक्षासाधनेन स्फिग्मो मानोमीटर्यन्त्रेण च ज्ञातुं शक्यते । परं परीक्षकपरीक्ष्य-परीक्षासाधन-कालादिगतो दोषः कदाचित्परीक्षासामीचीन्य निर्धारणे प्रतिबध्नाति । स्वाभाविकी रक्तप्रतिहतिश्च प्रतिव्यक्ति प्रतिप्रकृति भिद्येतैव । अतः प्रतिहतिमापकेन यन्त्रेण प्रतिहत्याधिक्येऽवगतमात्रे, विकृतिरिति न निश्चेतुं शक्यते । किमियं प्रतिहतेरधिकता विकृतिज्ञापिका आरोग्यविघटने शक्ता चेति ज्ञानमावश्यकं भवत्यत्र । विकृतायाः प्रतिहतेर्निर्धारणाप्राक् प्रतिपुरुषं स्वाभाविक्याः प्रतिहतेर्मानमपि ज्ञेयं भवति । ततोऽत्र प्रतिहत्याधिक्यस्य विकृतत्वनिर्धारणे चत्वारः प्रश्नाः उद्यन्ति । १. इतः पूर्वं रक्तप्रतिहतिः कियत्यासीत् ? २. विकृतायाः प्रतिहतेः लिंगानि सन्ति वा ? ३. हृदयवृक्कादयः रक्तसंवहनाश्रयाःतत्परिणामोपकारिण आशया विकृता अविकृता वा ? ४. चिकित्सितात्को लाभः ? अप्याधिक्यं विपरिवर्तयितुं शक्यते । इति । एवं न्यूनतायामपि। यद्यमीषां प्रश्नानामुत्तरेण रक्तप्रतिहतेराधिक्यं न्यूनता वा विकृतिकारिणी निश्चीयेत, तदा व्याधिरिति निश्चिनुमः ।

अधिका धमनीप्रतिहतिः

इदानीमधिका प्रतिहतिः विमृश्यते ।

निदानम्—प्राय एष व्याधिरुपद्रववतयैव जायते । तत्र ते व्याधय एव निदानमस्य । क्वचित्स्वतंत्रतयापि भवति । हृदुत्तेजकपानाभ्यवहारशीलता, अध्यशनं, अम्ललवण विदाह्यादिगुणयुक्ताम्लविपाकिद्रव्यभूयिष्ठाभ्यवहारः, अतिमांसभोजनं, अधिकः शारीरो मानसिकश्च परिश्रमः स्त्रियां रजः कृच्छ्रेण जायमाना रजोदुष्टिः कोपतायादयो मानसिका भावविशेषा असकृदुत्पद्यमाना अशान्ताश्च, अनिद्रा, अचिकित्सितः शिरोरोगः, अस्वाभाविकी रक्तवृद्धिः इत्यादीनि कारणानि भवन्ति ।

पूर्वरूपं—व्याधिः स्वं रूपं दर्शयितुं कालं बहुमपक्षते। गुप्तरूप एव रूढमूलः कारणं किञ्चिदुपलभ्य सद्यः स्वं रूपं भीषणं दर्शयेत् कदाचित् । असकृत् शिरोभ्रमः । मन्याशूलं, मन्यासुसिरापूर्णता, असकृत् रक्तापूर्णमिव शिरस्तुदति, कर्णयोः स्वनः तात्कालिकं बाधिर्यं च, अक्ष्णोः पुरः प्रकाशद्योतनं, ततो जालकदर्शनं, मोहः चित्तभ्रमः, हृत्स्पन्दाधिक्यं, ततोऽकारणिका भीः इत्यादि क्रमेणोत्पद्यमानं व्याधिं व्यक्त्युन्मुखमुररी करोति ।

रूपम्—अर्धावभेदः शंखकश्च शिरोभेदः, शिरोघूर्णनं, शिरोभारः, असकृदुरसि मुखे च अधिकतया रक्तापूरणं, ततः स्वेदोद्गमो विस्मृतिः, चित्तभ्रमः, असकृन्मनसोऽकारणमुद्वेजना विषादश्च, शरीरं गुरु विह्वलं, उच्छवासनिश्वासयोः श्रमः, हृद्द्रवः हृत्स्पन्दः, हृच्छूलं, अल्पमूत्रता, लसीकामेहः, कदाचित्पादयोर्मुखे च शोथः निस्तेजस्कता, अजरणं इत्येतानि लिङ्गानि ।

संप्राप्तिः—स्वभावाद्विशिष्टेन वेगेन हृदयं धमनीषु रक्तं धमति । धमनीगतमध्य-

गुरुकुल पत्रिका

माभ्यन्तरिकप्राचीरिके आकुञ्चनप्रसारणशीले स्थितिस्थापकशक्तिमत्यौ एनं वेगं स्वस्मिन्प्रतिफलन्तं यथाशक्ति सन्धारयतः। परमाकुञ्चनं प्रसारणं चाधिकं दृश्येते। यद्येष वेगः न तात्कालिकः, सपदि न प्रशाम्यति च, तर्हि क्रमेण प्राचीरिके दुर्बले भवतः। संग्रह विस्तरशक्तिर्हीयते। अतियोगात् स्थितिस्थापकशक्तिश्च नश्यति। कालेन धमन्यः स्नायुमय्यो भूत्वा कठिनी भवन्ति, रक्तसंवहनवर्त्मा संकुचति च। संकुचितेन वर्त्मना रक्तविक्षेपे हृदयस्य श्रमो भूयान्। अतस्ताम्यति। हृदयं विस्फार्यते। धमनीस्थं काठिन्यं विकृतिश्च वृक्कयोरनुप्रसर्पति। ततो वृक्कप्रदाहः वृक्कगत सुषिरकाठिन्यं संकोचः ततो लसीकामूत्रता, अल्पमूत्रता च वृक्कयोः, अकर्मण्यता। वृक्के रक्तगतो मलभागः अपृथक्कृतः रक्त एव विषवत्सञ्चरन् मोहं चित्तविभ्रममापादयति। प्लीहयकृतोदुष्ट्या धातुपाके विकृतिः। श्रान्ते हृदये, विक्षेपस्य च धमनीकाठिन्येन रोधात्। तत्र तत्र रक्तं सक्तं शोथदाहमदप्रसुप्तता आपादयति। ईशदपि श्रमे ताम्यति। यद्युरोभागं शिरश्चोन्नमय्य न शेते तर्हि शिरःशूलमुद्भवति, निद्रापि नायाति। प्रश्वसिति च व्यायाम क्लिष्ट इव। अतः प्राय उपविश्यैव निद्रातुं शक्नोति। धमनीषु रुद्धमार्गं सक्तं रक्तं प्रसुप्ततां पादयोः, कदाचिदकर्मण्यतां चापादयति। पादौ प्रसुप्तौ हृष्यतः. समया गतागतेऽपि रुजतः, न त्वरितं चलितुं शक्नुतः, कदाचिच्चंक्रमणमेवाशक्यं भवति। रक्तस्य सान्द्रीभावेन पादयोर्नीलिम स्वेदश्च। सीसविषजन्ये तमाखवाद्यतिसेवनजन्ये उपदंशजे चायं पादविकारः प्रायो भावी।

धमनीकाठिन्येन संज्ञावहस्रोतः प्रतिबन्धे पक्षवधाक्षेपक मूर्च्छायसन्न्यासादयः, हृदययन्त्रदौर्बल्यैन, हृदयस्य कर्मनाशे विदारणे मस्तिष्कगतधमनीभेदेन तत्कर्मप्रतिबन्धे च मरणान्ता विक्रयाश्च भवन्ति।

एवं यत्र व्याधौ धमनीदुष्टिः रक्तविक्षेपाधिक्यं, रक्तदुष्टिश्च पृथक् समस्ततया वा उत्पद्यन्ते तत्र प्रायोऽस्यव्याधे उपद्रवतया उत्पत्तिः।

एवं निर्दिष्टस्वरूपो व्याधिः नव्यमार्गानुसारिभिः, धमनीकाठिन्यनिवर्तकैः, धमनीप्रतिहत्याधिक्यशामकैः अनिद्राद्युपद्रव शामकैश्चेदानीं चिकित्स्यते। विशिष्यास्य व्याधेः प्रतिविशिष्टा चिकित्सा काचन क्रियते नव्यैः। आयुर्वेदानुसारेण कीदृशः पन्था आश्रयणीय इत्ययं विमर्शः प्राप्तकालः।

व्याधिस्वरूपभूतधमनीकाठिन्यसंकोचप्रतिहत्याधिक्यादिदुष्टिलक्षणचिकित्सामात्रेण चिकित्सा नायुर्वैदिकी भवितुमर्हति।

प्राचामायुर्वेदद्रष्टृणां व्याधिस्वरूपकथनप्रस्तावेषु अस्योल्लेखः कुतश्चिदुपलभ्यते वा इति परामृष्टवता मया, तत्र तत्र व्याधिनिर्देशेषु अस्य साम्यमुपलब्धता च, आयुर्वेददृशा अस्य चतुर्विधा संप्राप्तिर्वर्णयितुं शक्यत इत्यूह्यते। ता एवं—

१—रक्तदुष्टिजा—रक्तपित्त रक्तमेहप्रदरादिरोगेषु सम्यक् अनुपक्रान्तेषु, रक्त दुष्टा व प्रतिकृतायां, प्रतिहतेरधिकता भवति, रक्तगतविदाहापनयनादिना रक्ते प्रसन्ने व्याधिः शान्तः। अत्र मार्गदर्शकं चरकस्य विधिशोणितीयं अध्यायं पश्यामः।

तद्विशुद्धं हि रुधिरं
बलवर्णसुखायुषा।
युनक्ति प्राणिनां
प्राणः शोणितं ह्यनुवर्तते॥

इति शुद्धरक्तस्वरूपं प्रसज्य।

प्रदुष्टबहुतीक्ष्णोष्णैः मद्यैरन्यैश्च तद्विधैः ।
तथातिलवणक्षारैरम्लैः कटुभिरेव वा ।
कुलुत्थमाषनिष्पावतिलतैलनिषेवणैः ।
दध्यम्लमस्तुसुक्तानां सुरासौवीरकस्य च ।
विरुद्धानामुपक्लिन्नपूतीनां भक्षणेन च ।
भुक्त्वा दिवा प्रस्वपतां द्रवस्निग्धगुरूणि च ।
अत्यादानं तथा क्रोधं भजतां चातपानलौ ।
छर्दिवेगप्रतीघातात् काले चानवसेचनात् ।
श्रमाभिघातसन्तापैरजीर्णाध्यशनैस्तथा ।
शरत्कालस्वभावाच्च शोणितं सम्प्रदुष्यति ।

इति रक्तदुष्टिनिदानमाकलय्य दुष्टशोणिजान् रोगानाख्याति चरकः—

मुखपाकोऽक्षिरागश्च पूतिघ्राणास्यगन्धिताः ।
गुल्मोपकुशवीसर्परक्तपित्तप्रमीलकाः ।
विद्रधी रक्तमेहश्च प्रदरो वातशोणितम् ।
वैवर्ण्यमग्निसादश्च पिपासा गुरुगात्रता ।
सन्तापश्चातिदौर्बल्यं अरुचिः शिरसश्च रुक् ।
विदाहश्चान्नपानस्य तिक्ताम्लोद्गिरणं क्लमः
क्रोधप्रचुरता बुद्धेः संमोहः लवणास्यता ।
स्वेदः शरीरदौर्गन्ध्यं मदः कंपः स्वरक्षयः ।
तन्द्रा निद्रातियोगश्च तमसश्चातिदर्शनम् ।

इत्यादि । अयं च सन्दर्भः शोणितदुष्टिजां रक्तप्रतिहतिं सम्यग्व्याख्यात्येव । प्रायोऽत्रोदाहृता रोगाः प्रतिहत्याधिक्यजनकाः तज्जन्या वा एव । एवं शोणितदुष्टिजा रोगा अनन्यथासाध्या इत्यप्यभिप्रैति चरकः—यथा

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैरुपक्रान्ताश्च ये गदाः ।
सम्यक् साध्या न सिद्ध्यन्ति रक्तजांस्तान् विभावयेत् ।

इति । व्याकुर्वंश्चात्राचार्यः चक्रपाणिः—"तत्र शीतोष्ण स्निग्धरूक्षाद्यैः इति शोणितवृद्धिमनपेक्ष्य वातादिजयार्थमात्रप्रयुक्तैरिति मन्तव्यम् । येन शोणितव्याधेरपि शान्तिवक्ष्यमाणा रक्तपित्तहरक्रियादिभिः, शोतीष्ण क्रियाप्रविष्टैव । ततश्च शोणितरोगस्यापि शीतादिक्रियाभिरेव शोणितप्रतिकूलाभिः प्रशमो भवति । प्रवृद्धशोणिताश्रयास्तु वातादयः आश्रयप्रभावात, न स्वचिकित्सामात्रेण प्रशाम्यन्ति" इति । तथा च प्रवृद्धं विदाह्यादिद्रव्यशीलनेन दुष्टं च रक्तं रक्तप्रतिहतेराधिक्यं उत्पादयति, यत्र रक्तप्रसादनी रक्तगतवृद्धिक्षपयत्री च चिकित्सा सहायकवातादिदोषप्रशमनानुसृता सिद्धिं ददातीति लब्धोऽर्थः ।

(२) धमनीदुष्टिजा—हृदयवृक्कादिगतरोगोपद्रवतया अतिव्यायामादिना रक्तविक्षेपाधिक्येन धमनीशैथिल्यधमनीकाठिन्यादि संपद्यते यतोऽयं रोग उत्पद्यते । यत्र च व्यायामादिना शिथिलीभूतस्य कठिनीभूतस्य वा धमनीभागस्य लघु स्निग्धमर्दनादिना स्वास्थ्यानयनम् । व्यायामस्य क्रमेणह्रासः, अर्धशक्त्या निषेवणं च ।

(३) दुष्टशोणितावृतवातजा—वातरक्तनिदानं पश्यामः ।—"वायुः कोपं यातः कारणैः सेवितैः स्वैः ।

तीक्ष्णोष्णाम्लक्षारशाकादिभोज्यैः
संतापाद्यैः भूयसा सेवितैश्च ।
क्षिप्रं रक्तं दुष्टिमायाति, तच्च
वायोर्मार्गं संरुणध्याशु यातः ।
क्रुद्धोऽत्यर्थं मार्गरोधात्स वायुः
अत्युद्रिक्तं दूषयेद्रक्तमाशु ।

इति संप्राप्ति स्वरूपं, वातरक्तदूषकपानाभ्यवहाराचारशीलनादुत्पद्यमानत्वं वातरक्तस्यास्य व्याधेश्च तुल्यम् । अधिक रक्त प्रतिहतिकारणैरेव वातरक्तप्रकोपः यस्य शरीरे मेदोरक्तं दुष्टमधिकं च यश्च प्रकृत्या कोमलोऽदुःखजीवी च यश्चाल्पेनापि कारणेनोद्विजति तस्य रक्तप्रतिहतिरधिका भवति वातरक्तमपि । "प्रायशः

सुकुमाराणां स्थूलानां सुखिनामपि ।" उभयत्रापि दोषो वायुः, दूष्यं रक्तं मार्गरोधकम् । उभयत्रापि अधिका रक्तप्रतिहतिः, नाडीसंस्थाने विकृतिः, पादयो सुप्तता, विषदिग्धाविवपादौ, वृक्कयोहृदये च दुष्टिः, रक्तस्य सान्द्रता, पक्षवधाक्षेपकाद्युपद्रवयुक्तता च इत्यादि समानानि लक्षणानि । केवलं दोषदूष्यसंमूर्छनाव्यक्तिविशेषमन्तरा उभयोः साम्यं बहुधा कल्पयितुं शक्यते ।। चिकित्सायुक्तावपि वातस्य रक्तावरणं प्रधानतया अपाकरणीयं भवति। गुग्गुलुशिलाजतुत्वादीनां उपयोग एतेषु बहुधा उपकारको भवति । अत इयं एतादृशसमुत्थाना रक्तप्रतिहतिः दुष्टशोणितावृतवातजा, वात शोणितापतंत्रक पक्षवधाक्षेपकादौ कारणतया कार्यतया वा उत्पद्यमाना इति भिन्नसंप्राप्तिकत्वं ऊह्यते ।

(४) रक्तसंज्ञावाहिस्रोतोरोधजा—

अत्र चरकः—

यदातु रक्तवाहीनि रससंज्ञावहानि च । पृथक्
पृथक् समस्ता वा स्रोतांसि कुपिता मलाः ।
मलिनाहारशीलस्य रजोमोहावृतात्मनः ।
प्रतिहत्यावतिष्ठन्ते जायन्ते व्याधयस्तदा ।
मदमूर्च्छायसन्न्यासाः तेषां विद्याद्विचक्षणः ।
यथोत्तरं बलाधिक्यं हेतुलिंगोपशान्तिषु ।
दुर्बलं चेतसः स्थानं यदा वायुः प्रपद्यते ।
मनो विक्षोभयज्जन्तोः संज्ञां संमोहयेत्तदा ।
पित्तमेवं कफश्चैवं मनोविक्षोभयन्नृणाम् ।
संज्ञां नयत्याकुलतां—

इत्यादि पदसन्दर्भः रक्तसंज्ञावाहिस्रोतोरोधजां रक्तप्रतिहतिसंप्राप्ति सम्यक् विवृणोत्येव । मदमूर्च्छायसन्यासादीनां स्वरूपाणि मनोदुष्टियुक्तरक्तप्रतिहतिस्वरूपं सम्यगवबोधयन्त्येव ।

इत्येवं चतुर्धा व्याधेरस्य संप्राप्तिः निपुणं आर्षग्रन्थेषु वर्णितैव भवति । एतादृशसंप्राप्त्यनुसारिणी आर्षपथानुसारिणी चिकित्सा च व्याधावस्मिन् वैद्यस्य पाश्चात्यपथानुसरणजन्यं महान्तं व्यामोह मया करोत्येव ।

अथ रक्तप्रतिहतिलिंगानां त्रिदोषजत्वं अधिकृत्य किञ्चिद्विवृणुमः । व्याधावस्मिन् कुपितो वातः प्रधानोदोषः । रक्तावृतो वातः सन्धिशूल - रक्तवात - पक्षवधाक्षेपकादिकृत् । यदि पित्तमपि कुपितं सहायीभवतिवातो योगवाही भूत्वा, पैत्तिकक्रियोत्तेजनेन शरीरे दाहं ओषं मूर्च्छा स्वेदाधिक्यं तृष्णां भ्रमं मुखे रक्तपूर्णतां धमनीशिरासु शोथं, आशयेषु पाकं ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं, तथा च कर्णनासादन्तवेष्टेभ्यो रक्तस्रुतिं, अकारणिकीं च भीतिमुत्पादयति । कफे सहाये, कफकर्म उत्तेजयन्, जाड्यं, गौरवं, चलनोत्थानासनादवप्यनिच्छां त्वचि चिक्कणतां हृदि शून्यतां मूर्द्धी वेदनां च जनयति । यदि रक्तमपि कुपितं विदग्धं विकृतं वातं रुणद्धि, शरीरे पीड़ा ओषश्चाधिकतया दृश्यते । अत्र चरकोक्तानुसारं 'शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यै'रितिवत्, शीतोष्णादि न किमपि प्रथममुपशेते, प्रथमं रक्तप्रसादनं कर्मावश्यकं भवति ।

त्रिदोषजे तु अनिद्रा भोजनेऽरुचिः, श्वासः, मांसपेशीशिराधमनीषु शोथः, शिरः शूलं—शंखकोऽर्धावभेदकश्च प्रधानतः मदः वमिः प्रायो विड्बन्धः ज्वरो मोहः हिक्का पाण्डुःदाहः, मूर्च्छायः सन्यास इत्यादयः ।

(अनुवर्ति)

आयुर्वेद लोक

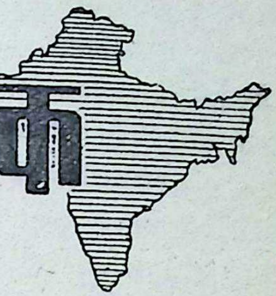

श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी का भाषण

मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्य सम्मेलन, नागपुर के प्रथमाधिवेशन के स्वागत कार्याध्यक्ष आयुर्वेद वृहस्पति श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी ने भाषण देते हुए कहा कि आज हमारा देश जिस गौरव के शिखर पर निरन्तर चढ़ता चला जा रहा है, कल वहां संसार की नजरें लगीं रहेंगी। एक राष्ट्र की पूंजी दूसरे राष्ट्रों की प्रगति की प्रेरणा बन जाती है। विज्ञान के प्रति मानवीय जीवन के उज्ज्वल भावों का उभार हमारे देश में दिखाई पड़ता है। वह पश्चिम की मारकाट-भरी इस दुनिया में एक असंभव सपना है। इस देश का ज्ञानी अणु का मर्म समझ कर ब्रह्मांड से सम्बन्ध स्थापित करता है, किन्तु पश्चिम का प्राणी अणु का मर्म समझतें ही ब्रह्मांड नष्ट-भ्रष्ट करने की जिद्द पर कमर कस लेता है। दूसरे की मौत का सामान तैयार करने वाला भला कितने दिन इतिहास में जीने की कल्पना करता है! जल्लाद के हाथ, दिल और दिमाग खूनीपन से रंगे होते हैं। पूर्वीय दुनिया में मानव-प्रेम ही सबसे बड़ी कमाई है। अध्यात्म इसका क्रीड़ास्थल है। समन्वय उसकी भावनाओं का उभार है। वह अनेकता में एकता देखने का अभ्यस्त है। वह अपने अन्तरतम को समझकर सृष्टि को समझ लेता है। अपने दुःख की तराजू में संसार के दुःखों को तौलता है। उन्हें कष्टों से बचाने के लिये कमर कसता है। यही आयुर्वेद के जन्म का रहस्य है। वह जीवन-दान का यज्ञ है। वैज्ञानिक क्षेत्र में आयुर्वेद का दावा विश्वकल्याण का तकाज़ा है। वह रोजगारियों का नारा नहीं है। वह तिजारत नहीं है। मानवता अमर हो, उसे दीर्घ जीवन मिले, वह कष्टों का शिकार न हो, स्वस्थ शरीर और स्वस्थ चिन्तन उसकी आत्मपरीक्षा के साक्षी रहे हैं। यदि उसने मिट्टी भी उठाकर दी है तो उसमें कल्याण की भावना निहित है। वह ठग की मुलम्मेबाजी नहीं थी। वह लूट का देश नहीं था। वह तिजारत का फन्दा नहीं था। आयुर्वेद का सन्देश हमारी कुटियों में रम गया, तपोवनों में फला और फूला। देववाणी संस्कृत के रमणीय छन्दों में उसकी गरिमा नाच उठी। कौन कहता है कि कालिदास केवल कवि थ। वे प्रकृति के पुजारी थे। उन्होंने तरु, तृण और चराचर का मर्म समझा। प्राचीन काल का वैद्य भी उनका समकक्षी था। एक शब्दों का निर्माता था, तो दूसरा जीवन का। कालिदास ने यदि पंक्ति-पंक्ति में रस उलीच कर अपने रसिक मन का परिचय दिया, तो प्रकृति के पुजारी वैद्य ने भी इन्सान की

धमनियों में प्राणों का ओज, तेज, बल, शौर्य का प्रवाह अपनी एक ही चुटकी से उलीच दिया। आज विज्ञान को युग की महान प्रेरणाओं से बल लेना होगा। निष्कलुष भारतीयता को उज्जवल चंद्रिका की तरह आकाश से भूमि तक छा जाने के लिये प्रबल शक्तियों के सहारे समर्थ बनना होगा। यही इच्छाबल चिकित्सक की पूंजी है। वही उसका आत्म-ज्ञान है। आज पाश्चात्य ज्ञान के पीछे पागल की तरह दौड़ने वाले लोग रिसर्च-रिसर्च चिल्लाते हैं। उन्हें ज्ञात नहीं कि इस पृथ्वी पर सब कुछ पुरातन है। सिर्फ पहचानने वाले नये हैं। अगर आप जिन्दगी भर पत्थर को पत्थर न मानें, तो आप उसके पाषाणत्व के ज्ञान से सूने रहेंगे। आयुर्वेद सनातन को पहचानने में अपनी अटूट आस्था का परिचय देता रहा है। यह परिचय ही हमारा विज्ञान है।

आयुर्वेद न केवल इसलिये पनपे कि वह चन्द व्यक्तियों के हाथ में रोजी-रोटी का जरिया बन जाय। ईश्वर की सृष्टि में कोई भूखा नहीं रहता। मनुष्य की सेवा ही सबसे बड़ा कर्तव्य है। मैं आने वाली पीढ़ियों से तकाजा करूँगा कि ज्ञान की साधना को और आयुर्वेद के सनातन संदेश को मानव कल्याण के लिये संसार के कोने कोने में फैला दें। प्रत्येक पवित्र व्रत के लिये साधना नितान्त आवश्यक है। प्राचीन ऋषि और मुनि गंभीर साधक थे। यदि साधन के बिना हम प्रतिष्ठा चाहते हैं; तो हम बिना पूंजी के रईस की तरह चोर करार दिये जावेंगे। आज प्रत्येक तरुण वैद्य का कर्तव्य है कि वह आयुर्वेद के विशाल सागर का मन्थन करे, प्रयोग बल से अनुभव प्राप्त करे और यही ढंग उसकी कीर्ति की रक्षा कर सकेगा।

दुर्भाग्य से आज आयुर्वेदिक महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में खिचड़ी दिखलाई पड़ती है। आयुर्वेद पर इन छात्रों को घृणा करना सिखाया जाता है। वे शिक्षकों के अपरिपक्व शरारत भरे दुर्वचनों को दुहराकर ही आयुर्वेद की नाव डुबाने में अपना कल्याण समझते हैं। हमारा उनसे सवाल है कि एलोपैथिक के ऊपर जब इतना नाज़ था, तो उसका अध्ययन करना था। बिना आयुर्वेद का गंभीरता पूर्वक अध्ययन किये कलंक थोपना दुस्साहस है। आज इस प्रवृत्ति के जन्मदाता रोजी और रोटी के लिए परेशान शिक्षकों के बिगड़े दिमाग ही पूरी तौर से जिम्मेदार हैं।

जिसको न निज गौरव तथा
निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा
और मृतक समान है॥

क्या हमारे विद्यालय इन्हीं निरभिमानियों की प्रवृतिशून्य टोलियां निर्माण करने में जुटे रहेंगे? ऐसा नहीं होना चाहिये। उन्हें अपना रास्ता बदलना होगा। वक्त का तकाजा उन्हें ऐसा करने पर मजबूर करेगा। ऐसी हालत में जब मैं प्रान्तीय सरकार, उसके मुख्य मंत्री और स्वास्थ्य मंत्री से एक साथ तकाजा करता हूं कि इस प्रान्त की राजधानी नागपुर में आयुर्वेद का महाविद्यालय खोलिये, तब मेरा लक्ष्य नकली सिक्कों का टकसाल जारी करने से नहीं है। विद्यालय की स्थापना का लक्ष्य भारत के अति प्राचीन विज्ञान आयुर्वेद के प्रसार से है। यदि उसने अपनी ताकत के सहारे हमारे पूर्वजों को इतना बल दिया, इतना जीवन दिया, इतनी शक्ति दी कि वे इतिहास के विधाता बन सके—तब यदि आज पुनःआयु-

र्वेद इस देश के कोटि कोटि नागरिकों में शक्ति-संचार का पांचजन्य बजाये, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। यह हमारी पुण्यशाली परम्पराओं का प्रसाद है। शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम और गुरू प्रणाली को स्वीकार कर बम्बई के मुख्य मंत्री श्री मोरारजी भाई देसाई और श्री शान्तिलाल शाह की एक जोड़ी ने अपने साहस का जादू दिखाया ठीक वैसे ही हमारे मुख्य मंत्री भारतीयता के अनन्य उपासक पंडित रविशंकरजी और कर्मवीर कन्नमवार उनसे आगे कदम बढ़ाने मे हर्गिज न चूकेंगे। आयुर्वेद के क्षेत्र में बहुत कुछ होना बाकी है। हमारा विश्वास है कि वे इस प्रान्त में आयुर्वेद का केवल महाविश्वविद्यालय बनाने की कल्पना लेकर ही आगे नहीं बढ़ेंगे, बल्कि आयुर्वेद की युनिवर्सिटी की कल्पना को व्यवहारिक रूप देने के लिये अपने समय, सामर्थ्य, सहयोग और सौजन्य का सुचारु रूप से सदुपयोग करेंगे।

इस बात में जरा भी सन्देह नहीं है कि हमारी राज्य सरकार आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने पर कटिबद्ध है। इस दिशा में उसका यह प्रथम कर्तव्य है कि वह आयुर्वेद विभाग का एक स्वतंत्र डायरेक्टर नियुक्त करे और उसे सरकार द्वारा निर्धारित कार्यक्रम को व्यवहारिक रूप देने की पूरी छूट दे। अन्य प्रांतीय सरकारों ने इस बात को स्वीकार ही नहीं किया, बल्कि वे इस मामले में बहुत आगे बढ़ गई हैं। यह एक ऐसी बात है कि जिसे प्रान्तीय सरकार तत्काल पूरा कर सकती है। हमारा विश्वास है कि इस मामले में यह अपना निर्णय अविलम्ब घोषित करेगी। मैं सभी बन्धुओं से एकही आशा रखता हूँ कि वे आयुर्वेद के लिये बड़ा से बड़ा बलिदान देने को सदैव तत्पर रहें और अपने त्याग से उसे गौरवशाली बनायें।

स्टेट आयुर्वेदिक कालेज का पाठ्यक्रम

ता० १३ व १४ फरवरी को लखनऊ विश्व विद्यालय में आयुर्वेदिक कालेज पाठ्यक्रमसमिति की बैठक हुई जिसमें वैद्यरत्न प० शिवशर्मा जी बम्बई, आयुर्वेदाचार्य श्री विमलानन्द जी तर्कतीर्थ कलकत्ता, डा० प्राणजीवन मेहता जामनगर, ने भी विशेष रूप से भाग लिया। इस कमेटी ने ५ वर्ष के लिये आयुर्वेद प्रधान पाठ्यक्रम बनाकर तैयार किया। प्रवेश योग्यता इण्टर साइंस के बजाय अब इण्टर तथा मध्यमा परीक्षा पास रखी गई है। इण्टर पास छात्र को संस्कृत का सम्यग् ज्ञान और मध्यमा पास छात्र को अंग्रेजी का सम्यग् ज्ञान होना आवश्यक होगा।

आसव व अरिष्ट मादक नहीं

आंध्र सरकार की आयुर्वेद- प्रोत्साहन विशेषज्ञ समिति ने सरकार को दी गई रिपोर्ट में सिफारिश की है कि 'आसव' और 'अरिष्ट' को शराब बन्दी कानून की सीमा से मुक्त रखा जाए, क्योंकि वह चाहे कितनी भी अधिक मात्रा में सेवन किया जाए मादक नहीं हैं। समिति ने गत जुलाई में अपनी रिपोर्ट पेश की थी, जिसमें कुल २० सिफारिश की गई हैं।

राज्य के आयोजन व उद्योगमंत्री श्री कलावेंकट राव ने कहा कि सरकार उन पर शीघ्र ही अपना फैसला दे देगी।।

रिपोर्ट में यह भी सिफारिश की गई है कि सभी सरकारी अस्पतालों में आयुर्वेदिक चिकित्सा की भी सुविधा हो।

औषध विकास परिषद् की बैठक

नई दिल्ली में २० अप्रैल को औषध और औषध-निर्माण से सम्बन्धित मामलों की एक विकास परिषद का उद्घाटन किया गया जिसमें द्वितीय पंच वर्षीय

योजना में औषधि निर्माण सम्बन्धी उत्पादन का ध्येय निश्चित किया जायगा।

परिषद की बैठक की अध्यक्षता करते हुए वाणिज्य और उद्योगमंत्री श्री कृष्णमाचारी ने कहा कि इस समय देश में जड़ी बूटियों और औषधियों का मूल्य बहुत अधिक है। उन्होंने यह सुझाव दिया कि इस मूल्य वृद्धि को रोकने के लिए कुछ सरकारी नियंत्रण आवश्यक है।

श्री कृष्णमाचारी ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि भारतीय औषधि निर्माता अमरीकियों की तरह निर्माण व्यय की तुलना में बहुत अधिक लाभ चाहती हैं। यह बात एक प्रकार "स्पष्ट शोषण" है। औषधियों के मूल्य इस प्रकार के होने चाहियें जिससे गरीब भी उन्हें सुगमता से खरीद सके।

परिषद की बैठक का उद्घाटन केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री राजकुमारी अमृतकौर ने किया। उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि परिषद ऐसे उपायों और साधनों को सुझायेगा जिससे देश में औषध निर्माण उद्योगको गति मिलेगी।

डाक्टरों और वैद्यों के वेतनों में भारी अन्तर का विरोध

जोधपुर (डाक से)। भारतीय चिकित्सा पंजीयन बोर्ड के उपाध्यक्ष कविराज श्री माधवप्रसाद शास्त्री ने एक वक्तव्य में इस बात की चर्चा की है कि प्रान्तीय सरकार ने ६० रु० मासिक के वेतन वाले वैद्यों की जो मांग निकाली है वह उचित नहीं है। आपने कहा है, कि जब एक एम. बी. बी. एस. डाक्टर को आते ही २५०) का मासिक वेतन सरकार देती है तो एक शिक्षित वैद्य से यह भेद-भाव क्यों बरता जाता है।

आपने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए बताया है कि जोधपुर में जिस मैडिकल कालेज को खोलने की चर्चा है उसमें आयुर्वेद को अवश्य स्थान दिया जाना चाहिए। इससे पौर्व और पाश्चात्य के मेल से शिक्षित छात्र हमारी सभी आवश्यकताएं पूर्ण करने में समर्थ हो सकेंगे।

राजस्थान सरकार की पंजीयन सम्बन्धी नीति की प्रशंसा करते हुए आपने कहा कि सरकार ने इस कार्य को हाथ में तो ले लिया है किन्तु बोर्ड को अभी अन्य विकासशील योजनाओं का काम नहीं सौंपा। यदि शीघ्र ही बोर्ड की मांगों पर ध्यान दिया गया तो राजस्थान आयुर्वेदीय प्रगति में अन्य प्रान्तों में किसीसे पीछे नहीं गिना जायगा।

देशी चिकित्सा के लिए केन्द्रीय कौंसिल— आयुर्वेद सम्मेलन के प्रस्ताव

लखनऊ, १७ अप्रैल। राज्यों के आयुर्वेदिक बोर्डों व कौसिलों के अखिल भारतीय सम्मेलन का द्विदिवसीय अधिवेशन कल यहां समाप्त होगया।

सम्मेलन में यह फैसला किया गया कि आयुर्वेदिक व यूनानी चिकित्सा-प्रणाली के लिए एक केन्द्रीय कार्य-कारणी नियुक्त की जाय। श्री विमलानन्द तर्कतीर्थ इसके प्रधान व श्री दरबारी लाल मंत्री होंगे।

सम्मेलन ने यह भी फैसला किया कि आयुर्वेदिक व यूनानी पाठ्यक्रम क्रमशः ५ व तीन साल का होना चाहिए। दाखिले की योग्यता ५ वर्ष के पाठ्यक्रम के लिए संस्कृत के साथ इंटर तथा तीन वर्ष के पाठ्यक्रम के लिए संस्कृत के साथ मैट्रिक होनी चाहिए।

सम्मेलन ने एक और प्रस्ताव पास कर के भारत सरकार से प्रार्थना की कि वह भारतीय चिकित्सा पद्धति के लिए एक

केन्द्रीय कौंसिल स्थापित करे और आयुर्वेदिक व यूनानी चिकित्सकों को भी मैडिकल सर्विस की परीक्षाओं में बैठने की अनुमति प्रदान करे।

सम्मेलन ने केन्द्रीय व राज्य सरकारों से सिफारिश की कि वे केवल ऐसे आयुर्वेदिक व यूनानी कालेजों को मान्यता प्रदान करें, जिनमें १०० चारपाइयों वाले अस्पताल की व्यवस्था हो।

औषधालय और पुस्तकालय

गांधी विद्या मंदिर से सम्बद्ध ग्राम ज्योति केन्द्र की ओर से एक चलता-फिरता औषधालय और पुस्तकालय का उद्घाटन १ मई को गांधी विद्यामंदिर और नवनिर्मित राजस्थान आयुर्वेद बोर्ड के अध्यक्ष आचार्य श्री गौरीशंकर ने किया। आचार्यजी ने अपने भाषण में कहा कि मैंने राजस्थान आयुर्वेद बोर्ड की अध्यक्षता इस आशा और विश्वास के साथ स्वीकार की है कि राजस्थान सरकार वास्तव में आयुर्वेद की सर्वतोमुखी प्रगति के लिए कुछ महत्वपूर्ण कार्य करना चाहती है। आयुर्वेद जगत के लिए यह एक गम्भीर रूप से विचारणीय विषय है कि आज आयुर्वेद का एक भी मान्य विश्वविद्यालय नहीं है और कहीं-कहीं है तो आयुर्वेद की प्रगति के नाम पर आयुर्वेद को पीछे ढकेलने का कार्य किया जा रहा है।

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन की तिथियां बदलीं

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन जो २८, २९ मई को चम्बा में होने वाला था, अ०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन अधिवेशन के लिये २२, २३ तथा २४ मई की तिथियां निश्चित होने के कारण, स्थगित कर दिया गया है। अधिवेशन अब ४, ५ जून को सम्पन्न होगा। इससे महासम्मेलनाधिवेशन में भाग लेने के इच्छुक वैद्य महानुभाव सुविधा पूर्वक ऐसा कर सकेंगे तथा पश्चात् प्रान्तीय सम्मेलन में भी उपस्थित हो सकेंगे।

आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना में पूर्ण सहयोग की अपील

राजस्थान आयुर्वेद सेवामण्डल के अध्यक्ष आचार्य नित्यानन्द, राजस्थान प्रान्तीय आयुर्वेद विद्यापीठ स्नातक संघ के प्रधानमन्त्री श्री शुकदेव शास्त्री, आयुर्वेद प्रगति संघ के प्रधान मन्त्री श्री नागरमल आयुर्वेद केसरी, और झूंझनू जिला वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री मन्नालाल आयुर्वेदाचार्य ने एक संयुक्तविज्ञप्ति में बताया है कि नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ द्वारा ऋषिकेष में जमीन खरीद लेने और यथासम्भव शीघ्र कार्यारम्भ कर देने के निश्चय से वैद्यों में हर्ष की लहर फैल गई है। महासम्मेलन में बहुत वर्षों से विश्वविद्यालय स्थापना की चर्चा थी, किन्तु अभी तक वह योजना मूर्त रूप नहीं ले सकी थी, अब आयुर्वेद मार्त्तण्ड श्रीदत्त जी के दृढ़ उद्योग से योजना पूर्ण होने जा रही है। इस योजना की पूर्ति में राजस्थान के वैद्यों से पूर्ण सहयोग देने की अपील भी की गई है, ताकि भविष्य में सुयोग्य वैद्य तैयार हो सकें और सरकार की प्रतीक्षा न करते हुए अपने पैरों पर खड़े हो कर आयुर्वेदोन्नति के काम को आगे बढ़ायें।

ज्ञात हुआ है कि आचार्य नित्यानन्द जी अपनी राजस्थान यात्रा के अवसर पर समृद्ध वैद्यों से विश्वविद्यालय को आर्थिक सहयोग

देने और आयुर्वेद शिक्षण संस्थाओं को आयुर्वेद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कराने की योजना को आगे बढ़ायेंगे

बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, मुजफ्फरपुर कार्यकारिणी का अधिवेशन

बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, मुजफ्फरपुर की कार्यकारिणी का एक अधिवेशन, श्री वैद्यनाथ औषधालय में ता० १०-४-५५ को, श्री वैद्यनाथ मिश्र की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ जिसमें अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेदाचार्य, वैद्याचार्य, आयुर्वेद विशारद, वैद्य विशारद परीक्षाओं की मान्यता के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार हुआ—

बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की कार्य कारिणी समिति की यह बैठक, बिहार सरकार द्वारा देशी औषध विकास ऐक्ट, १९५१ में अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की आचार्य और विशारद परीक्षाओं को जो मान्यता नहीं दी गई है, उसके विषय में अपना प्रबल विरोध प्रस्तुत करती है और बिहार सरकार से साग्रह विशेष अनुरोध करती है कि अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षाओं की व्यापकता, श्रेष्ठता, सर्वविधि सम्पन्नता आदि को ध्यान में रखते हुए सरकार देशी औषध विकास ऐक्ट १९५१ में शीघ्रातिशीघ्र संशोधन कर आयुर्वेद विद्यापीठ की परीक्षाओं को सर्वविधि मान्यता प्रदान करे।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का ४१ वां वार्षिक अधिवेशन बिहार राज्य के ऐतिहासिक तथा विद्याकेन्द्र 'मुजफ्फरपुर' में बुलाने का सर्वसम्मति से निश्चय किया गया और सभापति जी को अधिकार दिया गया कि वे त्रिवेन्द्रम में महासम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के शुभावसर पर उपस्थित होकर महासम्मेलन का ४१ वां अधिवेशन मुजफ्फरपुर में करने का आमंत्रण दें।

महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन

(दशम अधिवेशन)

ता० १५, १६, १७ मई १९५५ इतवार, सोमवार, मंगलवार को महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्य मण्डल का दशम अधिवेशन पूना के सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य पान्डुरंग हरी देशपांडे आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में होगा तथा बम्बई राज्य वैद्य परिषद का सभापति पद वैद्य श्रीमन्त नाना साहेब पुराणिक सुशोभित करेंगे, इसके साथ अध्यापक चर्चा परिषद भी ३ दिन तक चलेगी। आयुर्वेद भव्य प्रदर्शन योगासनों के आरोग्य दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रात्याक्षिक व आरोग्य विषयक चित्रपट व विविध कार्यक्रम होने वाले हैं।

वैद्य बन्धु अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित होकर इसे सफल बनाएं ऐसी प्रार्थना है।

मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्य सम्मेलन

नागपुर प्रथमाधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव

(१) स्वर्गीय प्रिन्सिपल मेनन त्रिवेद्रम, स्वर्गीय तपस्वी बाबा साहेब परांजपे यवतमाल, स्वर्गीय पुरुषोतम शास्त्री हिर्लेकर अमरावती तथा स्वर्गीय हरिशास्त्री पराडकर अकोला, इनके निधन पर यह प्रथम मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्य सम्मेलन हार्दिक शोक प्रगट करता है। (२)यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि आयुर्वेद ही भारत की प्राचीन राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति रही है और रहने योग्य भी है अतः उसे ही फिर से राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति का स्थान शीघ्रातिशीघ्र मिल सके एतदर्थ केन्द्रीय शासन की ओर से संसद में

एक विधेयक स्वीकृत किया जावे। (३) आयुर्वेद पाठ्यक्रम सर्वांग परिपूर्ण होना चाहिए इस लिए आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों को न छोड़ते हुए आयुर्वेद के विभिन्न अंगों में जो त्रुटियां प्रतीत हों उनकी पूर्णता के लिए आयुर्वेद से अविरोधी इतर विज्ञानों का सहयोग प्राप्त किया जावे। (४) यह सम्मेलन इस प्रस्ताव द्वारा सरकार से अनुरोध करता है कि प्रान्तीय शासन आयुर्वेद के लिए स्वतंत्र आयुर्वेद विभाग का निर्माण तथा स्वतंत्र आयुर्वेद डायरेक्टर की नियुक्ति शीघ्रातिशीघ्र करे। (५) यह सम्मेलन प्रस्ताव द्वारा राज्यशासन से अनुरोध करता है कि प्रान्तकी राजधानी नागपुर शहर में एक आयुर्वेदीय उच्च शिक्षा के लिए सर्वांग परिपूर्ण आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना का शीघ्रति शीघ्र प्रबन्ध करे। (६) यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि प्रान्त में जो गैर सरकारी संस्थाएं आयुर्वेदीय शिक्षा के लिए हैं, वे सर्व-साधन सामग्रीय युक्त तथा सर्वांग परिपूर्ण हों, एतदर्थ राज्यशासन उनको निश्चित रूप से प्रतिवर्ष आवश्यक आर्थिक सहायता प्रदान करे। (७) सम्मेलन इस प्रस्ताव द्वारा शासन से यह अनुरोध करता है कि आजकल १५ दिन या महीने में इन्जेक्शन तथा शास्त्र कर्म के ट्रेनिंग क्लासेस निकले हैं जिनका उद्देश्य केवल मात्र पैसे कमाने का रहता है। इतने स्वल्पतम काल में इन विषयों की शिक्षा इन अनियमित संस्थाओं में पूर्ण ही नहीं हो सकती, एतदर्थ ऐसे शिक्षण वर्गों को कानून द्वारा तत्काल बन्द कराया जावे। (८) यह परिषद् सरकार से अनुरोध करती है कि मान्य परिक्षोतीर्ण की श्रेणी अलोपैथिक डाक्टरों के समान निर्धारित कर उन्हें भी निम्नलिखित समस्त अधिकार प्राप्त हों :—(अ) वैद्यों को म्युनिसिपैलिटियां तथा कार्पोरेशन अपने यहाँ हैल्थ आफिसर नियुक्त करें। (ब) वैद्यों को बीमा कम्पनियां अपने पालसी होल्डरों के लिए स्वास्थ्य निरीक्षक नियुक्त करें। (क) वैद्यों से चिकित्सा कराने वाले सरकारी नौकरों की खरीदी हुई आयुर्वेदीय औषधियों का मूल्य सरकार द्वारा प्राप्त हो (ड) मजदूर बीमा योजना के दवाखानों में वैद्यों को लिया जाये (स) इतर पदवीधारियों के समान आयुर्वेदीय पदवीधारियों को भी असैम्बली आदि के उम्मेदवार के चुनने के लिए मत देने का अधिकार हो। (९) जनता आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति को ही अधिक चाहती है इस लिए यह परिषद सरकार से अनुरोध करती है कि प्रान्त के प्रत्येक जिले तथा प्रमुख नगरों में आयुर्वेदीय रुग्णालयों (हास्पीटलों की स्थापना करें। (१०) यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है और आवश्यक समझता है कि राज्य सरकार प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाये जाने योग्य आयुर्वेदीय आरोग्य शास्त्र का सरल पाठ्यक्रम बनवाकर पढ़ाने की व्यवस्था करे। (११) यह परिषद प्रस्ताव करती है कि सरकार ने प्रान्त की कुछ फ़ार्मेसियों को "अपुन्हल" फार्मेसी की लिस्ट में अन्तर्भूत कर लिया है। फार्मेसियों को अपुन्हल लिस्ट में दर्ज कराने के बारे में सरकार द्वारा कोई निश्चित व्यवस्था नहीं बनाई गई है इस लिए सरकार शीघ्रातिशीघ्र "अपुन्हल" शब्द की व्याख्या बनावे और उसी के अनुसार प्रान्त की जिन फार्मेसियों को अपुन्हल लिस्ट में अंतर्भूत कर लिया गया है उनकी जांच करने के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति करें। (१२) यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि जनपद के औषधालयों में काम करने वाले वैद्यों की

परिषद प्रतिवर्ष इस मध्यप्रदेशीय अग्रगामी वैद्य सम्मेलन के अन्तर्गत ही बुलाई जावे। (१३) यह सम्मेलन प्रस्ताव करता है कि जो चिकित्सक जनपद सभा के अन्तर्गत पांच साल से काम कर रहा है तथा जो रजिस्टर्ड है उसे नौकरी में कायम रखा जाये, चाहे उसके लिए एक रिफ्रेसर कोर्स बनाया जाये, और ऐसे रिफ्रेसर कोर्स को पूरा करने वाले चिकित्सकों को अपुन्हल लिस्ट में लिया जावे और सरकार द्वारा सहायता प्राप्त औषधालयों में नौकरी करने की अनुमति हो (१४) ग्रामीण रजिस्टर्ड वैद्यों के लिए एक ऐसा आयुर्वेदीय पूरक पाठ्यक्रम बनाया जावे जिसके अनुसार परीक्षा पास करके वे जनता की अच्छी सेवा कर सकें। यह पाठ्यक्रम सरकार द्वारा स्वीकृत हो।

डा० ए० लक्ष्मीपति स्मृति ग्रंथ सहायता के लिये प्रार्थना

डा० ए० लक्ष्मीपति मद्रास, ने अपनी ७५ वीं वर्षगांठ पर शुभ सन्देश प्रेषकों का धन्यवाद करते हुए कहा कि इन शुभ कामनाओं ने मुझे स्मृतिग्रंथ को प्रारम्भ करने का बल तथा साहस प्रदान किया है। इस ग्रन्थ में भारतीय तथा विदेशी उत्कृष्ट विद्वानों के ७५ चुने हुए निबन्ध रहेंगे और मुझे आशा है कि इसके प्रकाशन से विश्वभर में आयुर्वेद के अध्ययन में एक नवीन युग का प्रारम्भ होगा।

डाक्टर साहब ने अपने मित्रों, प्रशंसकों तथा आयुर्वेद प्रेमियों से इस स्मृतिग्रन्थ के प्रकाशन के लिए यथाशक्ति सहायता प्रदान करने की अपील की। सहायता मंत्री, नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ, आत्म विज्ञान भवन, ऋषिकेश के पास भेजी जानी चाहिए।

भिवानी का नेत्र चिकित्सालय

देश के बहुत कम लोगों को इस बात का ज्ञान होगा कि भिवानी (जि०हिसार) में श्री किसन लाल जालान धर्मार्थ नेत्र चिकित्सालय नाम की एक ऐसी संस्था विद्यमान है जहां अमेरिका, फिलिपाइन आदि अनेक देशों के डाक्टर लोग नेत्र चिकित्सा की शिक्षा के लिए आकर नेत्र-शल्य चिकित्सा की ट्रेनिंग प्राप्त करते हैं। इस चिकित्सालय में न केवल भारत के विभिन्न प्रान्तों के निवासी ही नेत्र चिकित्सा करवाते हैं अपितु चीन, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, वर्मा आदि तक के रोगी नेत्र चिकित्सा के लिए आते रहते हैं।

उक्त चिकित्सालय गत २२ वर्षों से कविराज श्री पुरुषोत्तम गिरिधर की अध्यक्षता में कार्य कर रहा है। आप अब तक १॥ लाख से भी अधिक नेत्रों के आपरेशन कर चुके हैं। इस चिकित्सालय में प्रतिवर्ष लगभग १२००० आपरेशन किये जाते हैं। डा० गिरिधर द्वारा १ घण्टे में ८० आंखों के आपरेशन होते हैं। गत नवम्बर मास में पंजाब के डिप्टी डायरेक्टर हेल्थ सर्विसिज ने उक्त चिकित्सालय का निरीक्षण किया, तथा उसकी प्रशंसा में प्रमाण पत्र दिया जो निम्नोद्धृत है :—

On the kind invitation of Dr. Giridhar, in-charge of Kishan Lal Jalan Eye Hospital, Bhiwani, I visited this hospital on the 1st of October, 1954.

The popularity of the institution could be well gauged by the number of indoor patients, which totalled about 500 on that day and number of operations performed.

The number put up for operations on this day was about 100 and the majority of these were for cataracts.

I also saw Dr. Giridhar actually operating and it gave me an immense pleasure to see the confidence and the skill with which he handled cases for extraction of lens.

He is ambidextrous and uses right hand for the right eye and left hand for the left eye. *This is very creditable, particularly when his basic training is not in the modern system of medicine—and this shows that practice is always the best teacher.*

This institution is a boon to the illaqa and I wish every success to it.

Sd/- M. L. Gulati, P.C.M.S.,
Dy, Director of Health Services,
Punjab.

Dated—Kasauli,
the 22nd November, 1954.
(True Copy).

यदि कोई महानुभाव नेत्र चिकित्सा की शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक हों तो वे चिकित्सालय के पते पर पत्र व्यवहार कर सकते हैं।

संक्षिप्त समाचार

—कार्यवाहक समिति उ० प्र० वैद्य सम्मेलन के ता० १-४-५५ के मेरठ अधिवेशन में एक प्रस्ताव के द्वारा श्रीमती सरोजनी देवी वैद्या को अनुशासन हीनता के कारण ५ वर्ष के लिये सम्मेलन की सदस्यता से पृथक किया गया।

—बीकानेर में जिला वैद्यसभा के सभापति महन्त भगवद्दास शास्त्री, उपसभापति राजवैद्य जीवनराम व्यास, प्रधान मंत्री पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा, उपमंत्री पं० सत्यनारायण व्यास के अतिरिक्त १६ व्यक्ति कार्यकारिणी में सदस्य रूप से निर्वाचित किये गए।

—उत्तर प्रदेशीय बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन ने एक विज्ञप्ति द्वारा वैद्य हकीमों को सूचित किया है कि जिनके प्रार्थनापत्र रजिस्ट्री के लिए २८ फरवरी सन् ५३ तक बोर्ड के कार्यालय में आ चुके हैं उनके रजिस्ट्रेशन प्रायः हो चुके हैं फिर भी यदि किन्हीं महानुभावों का रजिस्ट्रेशन किन्हीं कारणों से न हुआ हो तो रजिष्ट्रार को पत्र लिखकर प्राप्त करलें।

—इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध वैद्य आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल के नेतृत्व में वैद्यों का एक प्रतिनिधि मण्डल भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू से आनंद भवन में मिला और अनुरोध किया कि प्रयाग में शीघ्र ही एक आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना की जावे।

—देहली के वैद्य गुरुदत्त, वैद्य राधेलाल, क० हजारीलाल, जे० पी० कथूरिया तथा हकीम रामआसरे का एक शिष्ट मण्डल देहली राज्य के स्वास्थ्य मंत्री डा० युद्धवीर सिंह से मिला और उनसे मांग की कि वैद्य हकीमों को दुकानदारी कानून से मुक्त किया जाय। साथ ही वार्षिक रिन्यूअल फीस भी वैद्य हकीमों पर से हटाई जाये। इसी सिलसिले में इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा के भी एक शिष्ट मण्डल ने स्वास्थ्य मंत्री से भेंट की।

—ता० ७ से ९ मई तक स्टेट आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी कम्पौन्डर्स एसोसियेशन का वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न

हुआ जिसका उद्घाटन उत्तर प्रदेश में आयुर्वेद के डायरेक्टर श्री कुलकर्णी महोदय ने किया ।

—आयुर्वेद विद्यापीठ स्नातक मण्डल का जिलेवार संगठन किया जा रहा है । राजस्थान प्रान्तीय नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ स्नातक मण्डल, चौमू ने एक सूचना निकाल कर स्नातकों से सदस्य बनने की अपील की है । वार्षिक सदस्यता शुल्क चार आने मात्र है । दूसरे प्रान्तों में विद्यापीठ स्नातक मण्डल के संयोजक, मध्य प्रदेश में विश्वनाथ जी, आयुर्वेदाचार्य, तुमसर, उत्तर प्रदेश में ओंकारनाथ जी, बरहन, बम्बई में वेदप्रकाश जी, आयुर्वेदाचार्य नियुक्त किये गए हैं । आचार्य नित्यानन्द मण्डल के संगठन के लिये राजस्थान का दौरा करेंगे ।

—झुंझुनु जिला वैद्य सम्मेलन के चतुर्थाधिवेशन के सभापतित्व के लिये श्री ओंकारदत्त जी, वैद्यराज, नवलगढ़. विरंचीलाल आयुर्वेद वाचस्पति, श्रीरामपुर, बाबा जयरामदास, बड़ागांव, आचार्य नित्यानन्द, पिलानी, मन्नालाल आयुर्वेदाचार्य, बगड़ के नाम घोषित हुए हैं । चुनाव मई में होगा ।

—तोरावाटी तहसील एवं श्री माधोपुर तहसील वैद्य सभा का साधारण अधिवेशन ता० २४-४-५५ को श्री रामेश्वर लाल वैद्य रींगस की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ जिसमें आगामी वर्ष के लिये सभापति श्री पूर्णानन्द शास्त्री, श्री माधोपुर, उप सभापति, श्री हरिप्रसाद, खंडेवा, प्रधान मन्त्री श्री विशेश्वर प्रसाद, श्री माधोपुर, संयुक्त मन्त्री धनपति जी, कावट तथा श्री गिरधारीलाल, श्री माधोपुर, कोषाध्यक्ष श्री ब्रजमोहन शास्त्री, रींगस निर्वाचित हुए । सभापति द्वारा श्वेत हरिताल भस्म एवं श्वेत ताम्र भस्म बनाने वाले को २००) पारितोषिक देने की घोषणा भी की गई ।

—श्री डा० ए० लक्ष्मीपति मद्रास भूतपूर्वाध्यक्ष आ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की ७५वीं वर्षगांठ पर भारत के उप राष्ट्रपति श्री डा० एस० राधाकृष्णन, डा० पट्टाभीसीतारमैया, राज्यपाल मध्य प्रदेश, श्री धुलेकर, आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय, झांसी, वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा, प्रधान आ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन बम्बई, नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ, ऋषिकेश, तथा अन्य अनेक प्रशसकों एवं मित्रों की ओर से शुभकामनाओं के सन्देश प्राप्त हुए जिनमें डाक्टर साहब की आयुर्वेद विज्ञान के प्रति अविस्मरणीय सेवाओं की प्रशंसा करते हुए उनकी चिरायु के लिये शुभकामना व्यवत की गई ।

—श्री मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा जोधपुर के ता० ८-४-५५ को सम्पन्न वार्षिक अधिवेशन में नवीन वर्ष के लिये क० श्री मानचन्द्र, वैद्य माधवलाल उपसभापति, वैद्य अम्बालाल जोशी, प्रधान मन्त्री, श्री गणेशीलाल रंगा उप गन्त्री, श्री मुनिदेवेन्द्रचन्द्र, कोषाध्यक्ष, तथा श्री खूबचन्द्र आय-व्यय निरीक्षक चुने गए ।

—तहसील आयुर्वेद मण्डल बटाला की १०-४-५५ की बैठक में नवीन निर्वाचिन सम्पन्न हुआ । पं० निशिकान्त आयुर्वेदाचार्य प्रधान, ला० अमरचन्द नागी, उप प्रधान, पं० अमरनाथ वैद्य प्रधान मन्त्री, ला० तीर्थराम उप मन्त्री, पं० मलूराम वैद्य कोषाध्यक्ष निर्वाचित हुए । पत्र व्यवहार का पता—अमरनाथ वैद्य, प्र० मंत्री, आयुर्वेद मण्डल बटाला, चौक पांदियां बटाला, जि० गुरदासपुर है ।

साहित्य सत्कार

अभिनव शरीरक्रिया विज्ञान—लेखक श्री प्रियव्रत शर्मा। प्रकाशक-चौखंबा विद्या भवन् चौक बनारस—१, पृष्ठ संख्या ६२४ मूल्य ७।।)

प्रस्तुत पुस्तक चिकित्सा विज्ञान के एक आवश्यक अंग शरीरक्रिया विज्ञान पर लिखी गई है—यह बिल्कुल आधुनिक पद्धति पर है। आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से यह सर्वथा रहित है। यह ठीक भी है। एक विषय को उसके अपने एक मार्ग से ले जाने से उसकी गहराइयों तक पहुंचने का पूर्णतया अवसर मिलता है। पाश्चात्य विज्ञान और प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर है इसलिए समानान्तर स्तर पर लेखक को एक पुस्तक के निर्माण में बहुत असुविधा हो जाती है और विशेषतः पाठक उसकी वास्तविकता से अनभिज्ञ रह जाता है। इसलिए एक विषय पर एक ही दृष्टिकोण से लिखी गई पुस्तक अध्ययनकर्ता के ज्ञान को बढ़ाने में बहुत सहातक होती है। पुस्तक का विषय बहुत गम्भीर है और लेखक ने अपनी प्रतिभा के अनुरूप उसे भलीभांति पूर्ण कर पुस्तक का सृजन किया है। भाषा, सुन्दर और बुद्धिगम्य है। हिन्दी में प्रायः आने वाली इंगलिश पारिभाषिक शब्दों के अनवाद की कठिनाई को बहुत सरलता मे निभाया गया है। साथ में अंग्रेजी शव्द भी दे दिए गए हैं। आधुनिक विज्ञान को साथ लेकर पढ़ाये जाने वाले विद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। इस विषय के अध्यापकों के लिए भी यह उपयोगी है।

संक्षिप्त दोष-मल-धातु विज्ञानः—ले० डा० दत्तात्रय महादेव पटवर्द्धन, एल० सी० एस०, आयुर्वेद विद्या विशारद। प्रकाशक-डा० द० मा० पटवर्द्धन, प्रभु कृपा, ६८६।३० सदाशिव, पूना। पृ० सं० १४५ और ५३। मूल्य ३ रु०।

आयुर्वेद के अपने मूल सिद्धांत हैं उन्हीं पर शरीर की रचना उसकी क्रिया और विकृतिविज्ञान आधारित है। उसी दृष्टिकोण से स्वस्थ रहने के नियमों का निर्माण तथा रोगों की चिकित्सा की जाती है। आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धांतों को लेकर यह पुस्तक लिखी गई है और विशुद्ध आयुर्वेदिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करती है। वात पित्त कफ इन तीनों दोषों के अविकृत तथा विकृत अवस्थाओं का वर्णन करते हुए पुस्तक को दो भागों में बांट दिया है। विद्वान लेखक ने ऐसे गम्भीर विषय को भिन्न भिन्न ग्रंथों से एकत्रित कर और पुस्तकरूप में क्रमशः लिपिबद्ध कर बहुत उपयोगी कार्य किया है। वे बधाई के पात्र हैं। पुस्तक मराठी में लिखी गई है—यह उसका हिन्दी अनुवाद है। भाषा सरल और विषयानुगामी है। त्रिदोष के समझने की जिज्ञासा से यदि साधारण जनता भी इस पुस्तक को पढ़े तो वह भी सरलता से विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकती है। आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए तो यह पुस्तक

परमोपयोगी है तथा अध्यापक वर्ग के लिए भी सहायक सिद्ध होगी। द्वितीय संस्करण में पुस्तक का आकार और गेटअप सुन्दर बनाये जाने की आशा करते हैं। वैज्ञानिक पुस्तकों में साहित्य के अतिरित्त विज्ञापन शोभा नहीं देते।

नाड़ीदर्शन :—ले०श्री ताराशंकर मिश्र वैद्य आयुर्वेदाचार्य। प्राप्ति स्थान–मोतीलाल बनारसीदास, हिन्दी संस्कृत पुस्तक विक्रेता, पो० बा० ७५, बनारस। पृष्ठ संख्या १६७। मू० २।।) रु०।

इस पुस्तक में नाड़ी विज्ञान जैसे कठिन विषय पर विवेचन किया गया है। प्रचलित शास्त्रीय आयुर्वेद दृष्टि से यह विषय अन्य विषयों की भांति उतना उभरा हुआ नहीं है तथापि कई पुस्तकों में इस अकेले विषय पर विस्तृत रूप से लिखा है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री मिश्र जी ने नाड़ी ज्ञान के संबंध में शंका पैदा करने वालों को सही मार्गदर्शन कराया है और अनभिज्ञों को उसका ज्ञान प्राप्त करने का सुअवसर दिया है। पुस्तक गंभीरता तथा विवेचनात्मक दृष्टि से लिखी गई है। नाड़ी सम्बन्धी किसी भी विषय को छोड़ा नहीं गया है। नाड़ी की उपादेयता, नाड़ी शरीर, नाड़ी की गति, उसके स्थान, नाड़ी से दोषज्ञान आदि आदि सब ही विषय इस पुस्तक में भली प्रकार समझाये गये हैं। पुस्तक में पाश्चात्य विज्ञान की भी पुट है। लेखक के इस प्रयास के लिए सराहना करते हुए हमारी प्रभु से प्रार्थना है कि उन्हें आयुर्वेद हितु ऐसे ही अनेकों विषयों पर और पुस्तकों का निर्माण करने की क्षमता प्रदान करे। पुस्तक चिकित्सक, अध्यापक, और विद्यार्थी सब ही के लिए महत्वपूर्ण और उपयोगी है। —कैलाशचन्द्र अग्रवाल

मलेरिया शत्रु—सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य आधा पौंड ६) रु० **सफेद कोढ़**-की पेटेन्ट दवा—मूल्य ५) रुपया दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर तथा हकीम धन-मान कमा रहे हैं। विवरण पत्र मुफ्त मंगाकर देखें।

वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० आकोला
(बरार) म० प्र०

रोग पर जादू की भांति तत्काल असर करने वाले

मार्तण्ड के आयुर्वेदिक

इंजेक्शन

मार्तण्ड की समस्त वैज्ञानिक साधन सम्पन्न और आधुनिक मशीनों से सुसज्जित प्रयोगशाला में उच्च शिक्षित आयुर्वेदज्ञों और विदेशी रसायनज्ञों की देख रेख में निर्माण हुए ये आयुर्वेदिक इंजेक्शन अपना तत्काल असर करते हैं, इनका प्रभाव स्थाई होता है, रखे रहने पर भी ये कभी नहीं बिगड़ सकते, इनकी आशुगुणकारिता और शुद्धि की पूरी गारंटी है। सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगाइये।

निर्माता: **मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स,**
बड़ौत, उत्तर प्रदेश
रिसर्च इंस्टीट्यूट आफ इंडियन मेडिसन्स

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

३१ अक्टूबर १९५४ को समाप्त होने वाले वर्ष का आय-व्यय पत्र

व्यय			आय	
वेतन		२,५८८ ० ९	संरक्षक सदस्यता शुल्क	२०० ० ०
मुद्रण तथा लेखन सामग्री		८०३ ९ ०	आजीवन सदस्यता शुल्क	१००० ० ०
डाक तथा तार व्यय		६६४ १३ ३	मान्य सदस्यता शुल्क	३,९९५ ० ०
यातायात व्यय		२४९ ० ६	संस्था सम्बद्धता शुल्क	५८० ० ०
यात्रा व्यय		४८२ १० ०	विविध आय	७३ ५ ९
प्रचार व्यय		१०९ १ ०	ब्याज	२,८९७ १२ ०
कार्यालय किराया		६५० ० ०	पुस्तक तथा पत्रिका विक्रय	१३० १ ०
आडिट व्यय		२५ ० ०	पत्रिका विज्ञापन	२,५३९ ६ ०
मिश्रित व्यय		८९ २ ६	प्रतिनिधि शुल्क	३४६ ८ ०
बैंक व्यय		३५ ११ ०	आय से व्यय की अधिकता जो सन्तुलन पत्र में ले जाई गई।	३,४९५ ३ ३
विद्युत व्यय		१७ १२ ०		
बट्टा खाता		२०९ १० ०		
उपकरण पर घटती		१०७ ० ०		
पत्रिका कागज व्यय	२,१४३ ५ ६			
,, मुद्रण व्यय	४,६३५ १२ ०			
,, वेतन व्यय	१,६५३ ९ ६			
,, यातायात व्यय	२३ ९ ६			
,, डाक व्यय	५९७ १५ ६			
,, मिश्रित व्यय	३ ८ ०	९,०५७ १२ ०		
संस्था द्वारा कर्मचारी रक्षाकोष में प्रदत्त धनराशि		१६८ २ ०		
	कुल योग	१५,२५७ ४ ०	कुल योग	१५,२५७ ४ ०

अखिल भारतीय आयुर्वेद

३१ अक्टूबर १९५४ को समाप्त

देय

	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
स्थिर कोष		
गत वर्ष का	१८,२२० १ ७	
आय से व्यय की अधिकता को कम किया	३,४९५ ३ ३	१४,७२४ १४ ४
१९५५ वर्षीय अग्रिम प्राप्त सदस्यता शुल्क		२० ० ०
देय बिल		१,५२८ २ ९
नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ		८५,२५४ ८ ८
विभिन्न देय धन		१,२७६ १५ ९
कुल योग		१,०२,८०४ ९ ६

अशोक वी. कौशिक	**श्री कृष्ण प्रभाकर**	**शिवनाथ शर्मा**
अकाउन्टेंट	कार्यालय मंत्री	कोषाध्यक्ष

आडीटर का

हमने अ० भा० आयुर्वेद-महासम्मेलन के ता० ३१ अक्तूबर १९५४ को समाप्त होने
को हिसाब की किताबों, रसीदों तथा व्यय-पत्रों के सहित जांचा और समस्त जानकारी तथा
ठीक प्रकार बनाये गये हैं तथा सन्तुलन-पत्र, हमें दी गई सूचनाओं एवं जानकारी के
का सच्चा और सही परिचायक है।

देहली
दि० १२-३-५५

महासम्मेलन
होने वाले वर्ष का सन्तुलन पत्र

सम्पत्ति

	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
उपकरण गत वर्ष का	१,०७५	७	९			
वर्ष में नवीन वृद्धि	६०	१३	६			
	१,१३६	५	३			
उपकरण पर घटती को कम किया	१०७	०	०	१,०२९	५	३
पुस्तकों का स्टाक						
पुस्तकालय	२१९	२	०			
विक्रयार्थ पुस्तकें	२७४३	४	०	२,९६२	६	०
विभिन्न ऋणी				१,६०६	१२	६
प्राप्य ब्याज				१३,६३६	१५	०
निधि समिति कोष						
ट्रेजरी सेविंग सर्टिफिकेट्स	१२,०००	०	०			
नेशनल सेविंग ,,	५८,११०	०	०			
पोस्टल कैश सर्टिफिकेट्स	१०,०००	०	०			
नाथ बैंक लि० (दिवालिया)	२,००२	०	०	८२,११२	०	०
बैंकों में जमा						
सैंट्रल बैंक आफ इण्डिया लि० देहली	८३	१३	९			
नाथ बैंक लि० (दिवालिया)	८००	१५	३			
यूनाइटिड कमर्शल बैंक लि० देहली	२८९	१५	९	१,१७४	१२	९
नकद रोकड़				२५१	१४	३
नकद रोकड़ में कमी की पूर्ति के लिए प्राप्य						
श्री विजयकुमार शर्मा	२७	६	६			
श्री अशोक वी० कौशिक	३	१	३	३०	७	९
कुल योग				१,०२,८०४	९	६

बामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधान मंत्री

शिव शर्मा
प्रधान

प्रमाण-पत्र

वाले वर्ष के उपरिलिखित सन्तुलन-पत्र तथा उक्त तारीख तक के साथ लगे हुए आय-व्यय-पत्र
सूचनायें प्राप्त कीं। हमारे विचार में उपर्युक्त सन्तुलन-पत्र तथा आय-व्यय-पत्र
आधार पर और महासम्मेलन की पुस्तकों के अनुसार अ०भा०आ० महासम्मेलन की स्थिति

ह० जे० सी० माथुर एण्ड कम्पनी
चार्टर्ड अकाउन्टेन्टस

निखिल भारतीय

३१ अक्टूबर १९५४ को समाप्त

व्यय

वेतन	८,९४५	१	६
मुद्रण तथा लेखन सामग्री	२,१०६	६	०
डाक तथा तार व्यय	१,५७८	४	६
केन्द्र तथा परीक्षण व्यय	२,२६९	०	६
कार्यालय किरायाँ	९००	०	०
यात्रा व्यय	९७०	८	६
आडिट व्यय	१००	०	०
रेलवे पार्सल	६२	१५	०
यातायात व्यय	५२	९	०
बैंक व्यय	२४	८	०
कर्मचारी रक्षा कोष	३४८	७	०
उपकरण पर घटती	३०६	७	३
मिश्रित व्यय	५९०	६	०
आय की व्यय से अधिकता	११,७३९	६	६
कुल योग	२९,९९३	१५	९

आर० एम० सेंगर
अकाउन्टेंट

तिलकराम शर्मा
कार्यालय मंत्री

श्रीदत्त शर्मा
विद्यापीठ मंत्री

आयुर्वेद विद्यापीठ

होने वाले वर्ष का आय-व्यय पत्र

आय

आयुर्वेदाचार्य परीक्षा शुल्क	५५४२	०	०
वैद्याचार्य ,, ,,	७५०	०	०
आयुर्वेद विशारद परीक्षा शुल्क	५३५७	०	०
वैद्य विशारद ,, ,,	१७६५	०	०
आयुर्वेद भिषक ,, ,,	७२०८	०	०
प्रजा वैद्य ,, ,,	१०४४	०	०
विलम्ब शुल्क	९९२	०	०
गुणांक तथा पुनः संशोधन शुल्क	६४३	०	०
रजिस्ट्रेशन शुल्क	४२२९	०	०
सम्बद्धता शुल्क	३९५	०	०
उप प्रमाणपत्र तथा प्रमाणपत्र प्रतिलिपि शुल्क	२२७	८	०
विद्यापीठीय प्रकाशनों की बिक्री से आय	५२४	१०	०
पुस्तक विभाग की पुस्तकों की बिक्री से आय	९१६	०	०
ब्याज	१४८	२	०
मिश्रित आय	२५२	११	९
कुल योग	२९,९९३	१५	९

विष्णुदत्त शास्त्री	**वामनराव दीनानाथ वैद्य**	**दयानिधि स्वामी**
कोषाध्यक्ष	प्रधान मंत्री	प्रधान

निखिल भारतीय

३१ अक्टूबर सन्

देय

स्थिर कोष						
गत वर्ष का	९२,१४४	९	६			
वापिस की गई धन राशि को कम किया	३१	०	०			
	९२,११३	९	६			
आय की व्यय से अधिकता को जोड़ा	११,७३९	६	६	१,०३,८५३	०	०
विभिन्न कोष						
पुरस्कार कोष	१६७	१०	०			
विश्व विद्यालय कोष	९,२३३	१३	९			
श्री शंकरदा जी शास्त्री पदे स्मारक कोष	१७३५६	६	६	२६,७५७	१४	३
देय बिल				१,६५०	२	९
अग्रिम प्राप्त सन् १९५५ वर्षीय परीक्षा शुल्क				२००	०	०
उचन्त खाता				९	१२	०
कुल योग				१,३२,४७०	१३	०

आर० एम० सेंगर	**तिलकराम शर्मा**	**श्रीदत्त शर्मा**
अकाउन्टेंट	कार्यालय मंत्री	विद्यापीठ मंत्री

आडीटर का

हमने नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के ता० ३१ अक्टूबर १९५४ को समाप्त होने वाले
र्ष किताबों, रसीदों तथा व्यय-पत्रों सहित जांचा और समस्त आवश्यक जानकारी तथा
क प्रकार बनाये गये हैं तथा सन्तुलन-पत्र हमें प्राप्त हुई सूचनाओं एवं जानकारी के आधार
और सही परिचायक है।

देहली

दिनांक १२-३-५५

आयुर्वेद विद्यापीठ

१९५४ को समाप्त होने वाले वर्ष का सन्तुलन पत्र

सम्पत्ति

उपकरण						
गत वर्ष का	२,१२७	५	०			
वर्ष में नवीन वृद्धि	९३७	३	६			
	३,०६४	८	६			
उपकरण पर घटती को कम किया	३०६	७	३	२,७५८	१	३
पुस्तकों का स्टाक						
विद्यापीठ प्रकाशन				८२९	६	०
पुस्तक ऋण						
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन	८५,२५४	८	८			
श्री शंकरदा जी शास्त्री पदे स्मारक-कोष-व्यय	८४९	१०	०			
विश्व-विद्यालय व्यय	४१७७	१३	९	१०,२८२	०	५
श्री शंकरदा जी शास्त्री पदे स्मारक कोष						
ट्रेजरी सेविंग सार्टिफिकेट्स	१०,०००	०	०			
पंजाब नेशनल बैंक देहली बचत खाता	७००६	६	६	१७,००६	६	६
विभिन्न ऋणी				५११	६	०
श्री बावा कालीकमली वाला पंचायत-क्षेत्र ऋषिकेश के पास जमा				७७००	०	०
विभिन्न बैंकों में जमा						
पंजाब नेशनल बैंक लि. बचत खाता हरिद्वार	१२,५८८	११	७			
पंजाब नेशनल बैंक लि० चालू खाता हरिद्वार	१४८	१५	९			
नेशनल बैंक आफ लाहौर लि. चालू खाता ऋषिकेश	४६३	०	०	१३२००	११	४
नकद रोकड़				१८२	१३	६
कुल योग				१,३२,४७०	१३	०

विष्णुदत्त शास्त्री
कोषाध्यक्ष

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधान मंत्री

दयानिधि स्वामी
प्रधान

प्रमाण-पत्र

वर्ष के उपरिलिखित सन्तुलन पत्र तथा उक्त तारीख तक के साथ लगे आय-व्यय-पत्र को हिसाब सूचनायें प्राप्त कीं। हमारे विचार में उपर्युक्त सन्तुलन-पत्र तथा आय-व्यय पर तथा विद्यापीठ की पुस्तकों के अनुसार नि० भा० आ० विद्यापीठ की स्थिति का स

ह० जे० सी० माथुर एण्ड कम्पनी
चार्टर्ड अकाउन्टेन्टस

मलेरिया के लिये कुनीन की जगह

एल्स्टो पिल्स

(सप्तपर्णवटी)

यह गोलियां सप्तपर्ण, कालमेघ, कुटकी, कुचलात्वक आदि के घनसत्वों से तैयार की हैं। सप्तपर्ण (Alstonia Scholaris) के लिये डीमक वोल्युम २ पृ. ३८७-८८ पर लिखा है कि इसमें कुनीन जैसा डीटोन नामक सत्व है जो मलेरिया, शीतज्वर, विषमज्वर, आदि में अत्यन्त उपयोगी है। पब्लिक होस्पीटल और खानगी दवाखाने में डाक्टरों ने इस्तेमाल करके देखा है कि परदेश से आने वाले कुनीन सल्फ से यह दवा हजार गुनी अच्छी है। कालमेघ, कुटकी आदि भी बुखार में अत्यन्त लाभदायक हैं। ६ से १२ गोली देने से बुखार उतर जाता है। कुनीन की तरह बहिरापन आदि नहीं होता।

कीमत ४२ गोली ०।।= तो० १० (गोली ४५० के लगभग) रु० ३-८-०

उंझा फार्मेसी

ऊंझा (गुजरात) जबलपुर,
(मध्य प्रदेश)

दीन पल्भ

विशुद्ध वनस्पतियों से निर्मित यह महौषधि यकृत से पित्त के आंतों में उचित मात्रा में न पहुँचने से उत्पन्न होनेवाले विकारों तथा कोष्ठबद्धता, शरीर का विषयुक्त होना, किसी काम में मन न लगना, उदासी, दुर्बलता, हाथों पैरों तथा कमर आदि में दर्द, हृदय में जलन घबराहट इत्यादि में अत्यन्त लाभप्रद है। दीन पल्भ के तीन सप्ताह के सेवन से ही रक्त का प्रवाह ठीक होकर सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं। यह औषधि २ माशा से लेकर ६ माशा तक आवश्यकतानुसार दूध या जल से प्रातःकाल अथवा सायंकाल सोते समय सेवन की जाती है। विशेष विवरण के लिये लिखें।

दीनबन्धु कैमिकल वर्क्स

तुमसर, मध्यप्रदेश

मध्य प्रदेश के प्रमुख विक्रेता :—
वैद्य ब्रदर्स, इतवारी, नागपुर।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में विज्ञापन देकर लाभ उठाइये

बैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ, जो अभी प्रकाशित हुआ है

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान

(पूर्वार्ध)

आयुर्वेद-मार्तण्ड वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य-बम्बई

किसी भी रोग की चिकित्सा के पूर्व रोगों के निदान का ज्ञान होना परमावश्यक है। रोग के सम्यक् नियम के विना रोगी की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

इसीलिए व्याधि-विज्ञान (निदान-रोग विनिश्चय) आयुर्वेद के प्रधान विषयों में सम्मिलित एक उपयोगी विषय है। इस ग्रन्थ में व्याधि विज्ञान के साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधियाँ कितने प्रकार की होती हैं; निज, स्वाभाविक और आगन्तुक व्याधियों में क्या भेद है, स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियों के स्वरूप क्या हैं; प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और समुत्थान भेद से १० प्रकार के रोगानीक कैसे हो जाते हैं; रोगों का आश्रय क्या है, आदि अनेक ज्ञातव्य बातें इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णित हैं। यह पूर्वार्ध खण्ड पांच अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें अध्ययन कर लेने के बाद निदान सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य सिद्धांत करामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं। आयुर्वेदीय प्रेमी विद्वान् और विद्यार्थी, दोनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है।

इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

डिमाई साइज के ११२ पृष्ठ की सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य मात्र २॥)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

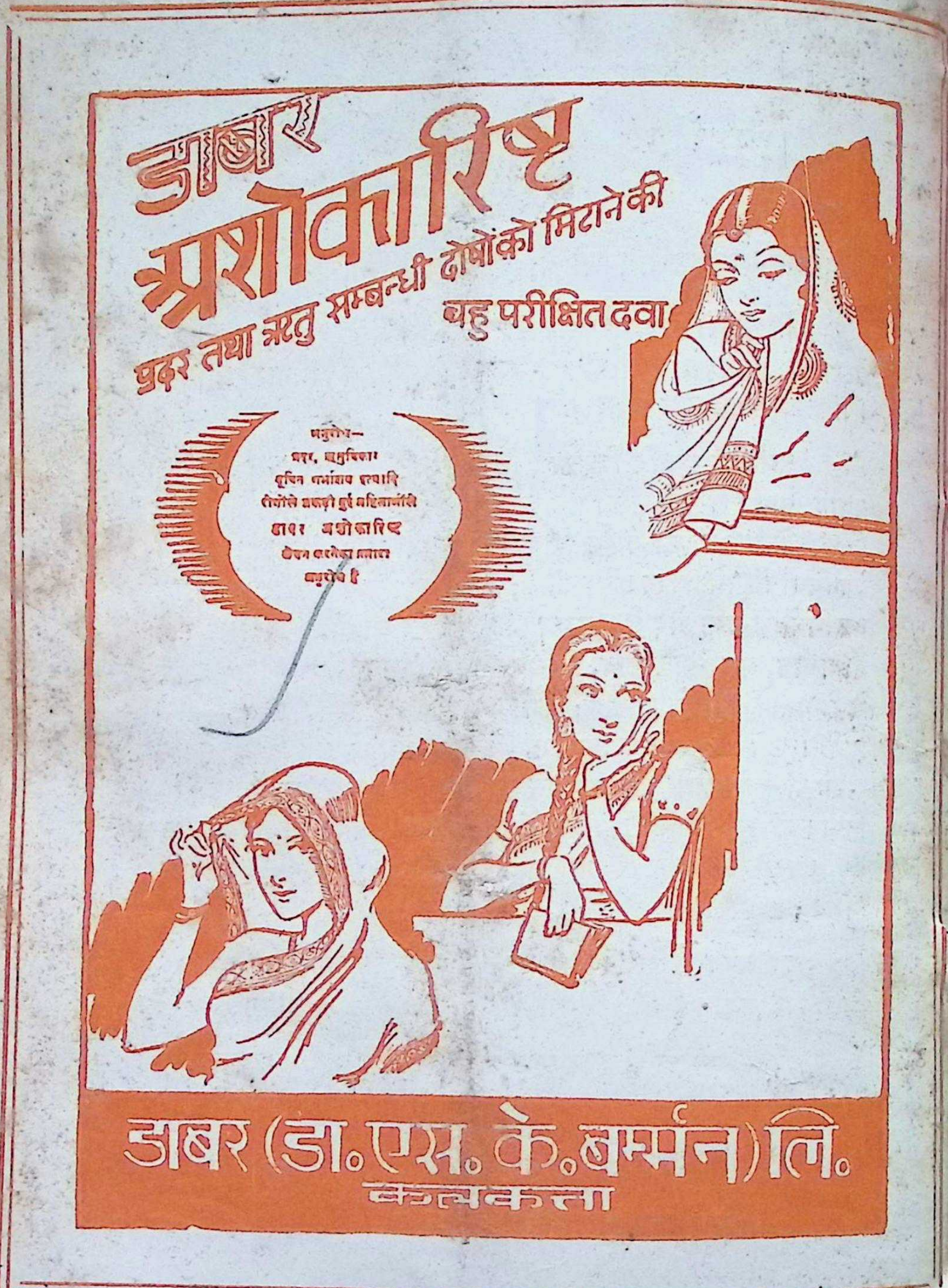

डाबर
अशोकारिष्ट
प्रदर तथा ऋतु सम्बन्धी दोषोंको मिटानेकी
बहु परीक्षित दवा

अनुरोध—
प्रदर, ऋतुविकार
दूषित गर्भाशय इत्यादि
रोगोंसे पीड़ित हुई महिलाओंको
डाबर अशोकारिष्ट
सेवन करनेकी सलाह
अनुरोध है

डाबर (डा. एस. के. बर्म्मन) लि.
कलकत्ता

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित,
मुद्रक—नया हिन्दुस्तान, प्रेस दिल्ली।

५-६-५५

ज्येष्ठ
१९५५

जून
२०१२

आयुर्वेद
महासम्मेलन पत्रिका

[illegible]

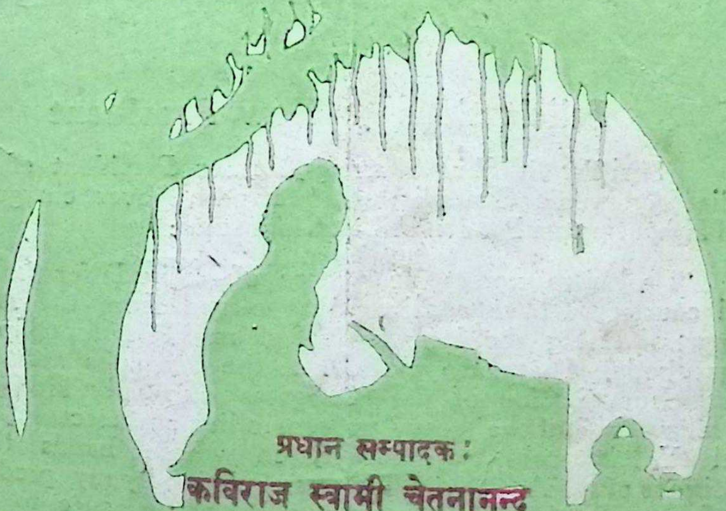

प्रधान सम्पादक :
कविराज स्वामी चेतनानन्द
संस्कृत-विभाग सम्पादक :
वा० बा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य :
उप-सम्पादक :
वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री

विषय-सूची

विषय पृ० सं०

१. ४० वें अधिवेशन का संक्षिप्त कार्य-विवरण २८१

2. Welcome Address by Shri K. Parmeshwaran Pillai 290

3. Speech by Shri A. A. Rahim
Minister of Health Travancore-Cochin State 295

४. महासम्मेलनाध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा का भाषण २९७

५. शिक्षा सम्मेलनस्य सभापतेः श्री भि. वि. डेग्वेकरस्य अध्यक्षीयं भाषणम् ३२९

६. महासम्मेलन स्थायीसमिति एवं विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के सम्मिलिताधिवेशन का कार्य-विवरण ३४७

७. ४० वें महासम्मेलनाधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव ३४९

Felicitations to New President

Shri Pandit Shiv Sharmaji, former President of the All-India Ayurvedic Congress; while handing over charge to Dr. Y. Parthanarayana Pandit of Bangalore said :

"I wish to express deep sense of gratitude for the affection and courtesy I have consistently received from the Ayurvedic Congress during the long tenure of my Presidentship of this august body. I am also grateful to the delegates attending the Trivandrum Session of the Congress who very kindly agreed to relieve me of the heavy responsibility and elect in my place Shri Y. Parthanarayanaji Pandit, in whose hands the high traditions of the Ayurvedic Congress built up by my predecessors, the former Presidents, are quite safe and are sure to maintain their standards. It is a joyful relief to feel that my task has passed into the strong and reliable hands of a close friend. I pray that both the Ayurvedic Congress and Dr. Y. Parthanarayana Pandit may continue to march from progress to progress and bring greater credit and success to Ayurveda and the Ayurvedic profession."

॥ श्री धन्वन्तरयेनमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द
संस्कृतविभाग सम्पादकः—श्री वा० वा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
उप-सम्पादक—वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री,
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४१
अंक ६

दिल्ली, ज्येष्ठ २०१२, मई १९५५

वार्षिक ५)
एकप्रति ।।)

४० वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, त्रिवेन्द्रम का संक्षिप्त कार्य-विवरण

भगवान् धन्वन्तरि की महान् अनुकम्पा से अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का ४० वाँ वृहत् अधिवेशन दक्षिण भारत स्थित त्रावणकोर-कोचीन राज्य की राजधानी त्रिवेन्द्रम नगर में ता० २२ से २४ मई १९५५ तक वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में समारोह पूर्वक सुसम्पन्न हुआ । आयुर्वेद महासम्मेलन के अन्तर्गत नि० भा० आयुर्वेद शिक्षा सम्मेलन भी जबलपुर निवासी वैद्यराज श्री भिकाजी विनायक डेग्वेकर जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ ।

यह अधिवेशन केरलीय आयुर्वेद मण्डल के आमंत्रण पर श्री डा० परमेश्वरम पिल्लई की अध्यक्षता में निर्मित स्वागत समिति के आतिथ्य में आयुर्वेदिक कालेज एवं उसके पक्षवर्ती विशाल प्रांगण में सम्पन्न हुआ जहाँ नारियल खजूर आदि के पत्रों और बाँसों से एक विशाल एवं, सुसज्जित मण्डप का निर्माण किया गया था । मण्डप का बाह्याकार एक सुन्दर मन्दिर का दृश्य उपस्थित कर रहा था जो केरल प्रदेश की विशिष्ट निर्माणकला का एक नमूना था । प्रतिनिधियों के निवास की व्यवस्था आयुर्वेदिक कालेज तथा छात्र निवास के भवनों में की गई थी ।

महासम्मेलन कार्यालय ता० २० मई को सायंकाल त्रिवेन्द्रम पहुंच गया था । उसी दिन वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी वायुयान द्वारा २१ मई को मध्यान्ह में त्रिवेन्द्रम

पधारे । विद्यापीठाध्यक्ष श्री भिकाजी विनायक डेग्वेकर २१ ता० की सायंकाल पहुँचे । प्रतिनिधियों का आगमन २९ मई से ही प्रारम्भ हो गया था । स्टेशन पर अतिथियों एवं प्रतिनिधियों के स्वागतार्थ स्वयंसेवक बड़ी संख्या में उपस्थित थे । स्वागताध्यक्ष श्री के० परमेश्वरम पिल्ले तथा स्वागत समिति के अन्य प्रमुख सभ्यों ने स्वयं उपस्थित रह कर भी प्रतिनिधियों का स्वागत किया । सभी समागत प्रतिनिधियों को कारों तथा मोटर बसों द्वारा प्रतिनिधि निवासों तक पहुँचाया गया । भोजन की व्यवस्था आयुर्वेदिक कालेज होस्टल में की गई थी । उत्तर भारत से पधारने वाले वैद्य महानुभावों के लिए विशेष प्रादेशिक भोज्य बस्तुओं के साथ साथ उत्तर भारतीय भोजन का अत्युत्तम प्रबन्ध किया गया था जिससे प्रतिनिधियों को विशेष सन्तोष हुआ ।

ता० २१ मई १९५५

रात्रि को ९।। बजे आयुर्वेदिक कालेज होस्टल में महासम्मेलन उपाध्यक्ष श्री डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित की अध्यक्षता में महासम्मेलन स्थायी समिति तथा विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति का सम्मिलित अधिवेशन हुआ । महासम्मेलनाध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा जी प्रारम्भ में उपस्थित नहीं रहे क्योंकि वे श्री मोरार जी देसाई, मुख्यमंत्री बम्बई राज्य,को उनके महासम्मेलनाधिवेशन के उद्घाटन के लिए त्रिवेन्द्रम पहुँचने के विषय पर उनसे टेलीफोन पर बातचीत करने के लिए चले गये थे । इस अधिवेशन में स्थायी समिति के विचार्य विषयों में से विषयांक १ से ४ विषयों पर ही विचार किया जा सका और तदनन्तर श्री डा० लक्ष्मीपति जी के प्रस्ताव पर सर्वसम्मति से अवशिष्ट विचार्य विषयों को विषय-निर्धारिनी समिति के सम्मिलित विचारार्थ समर्पित कर दिया गया । स्थायी समिति का कार्य-विवरण पृथक् प्रकाशित है ।

ता० २२ मई १९५५

आज का कार्य-दिवस प्रातःकाल ८ बजे केरल संगीत सभा के मनोहारी संगीत से प्रारम्भ हुआ । ८-३० बजे आयुर्वेदिक कालेज भवन में एक बड़ी जनसंख्या की उपस्थिति में अपने उद्बोधक भाषण के साथ श्री रामा वर्मा द्वारा धन्वन्तरि ध्वजा को फहराया गया । तत्पश्चात् प्रदर्शिनी के उद्घाटन का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ । श्री डा० ए० लक्ष्मीपति ने संक्षिप्त भाषण देते हुए त्रावणकोर-कोचीन राज्य के स्वास्थ्य मंत्री श्री आर० ए० रहीम से प्रदर्शिनी के उद्घाटन की प्रार्थना की । श्री रहीम ने प्रदर्शिनी का उद्घाटन करते हुए अपने भाषण में प्रदर्शिनी के महत्व पर प्रकाश डाला । अन्त में श्री डा० एम० एन० केशव पिल्ले, डाइरेक्टर आफ इन्डिजिनस मैडिसिन, त्रावनकोर कोचीन, द्वारा स्वास्थ्यमंत्री महोदय तथा अन्य उपस्थित महानुभावों का धन्यवाद करने के अनन्तर पूर्वाह्न का कार्यक्रम समाप्त हुआ ।

मध्यान्होत्तर का कार्यक्रम पुनः केरल संगीत गोष्ठि से प्रारम्भ किया गया । सभामण्डप भारत के विभिन्न प्रदेशों से समागत प्रतिनिधियों तथा जनसमूह से खचाखच भरा हुआ था और सब ओर उत्साह एवं प्रसन्नता का वातावरण व्याप्त था । सभामण्डप तथा मंच की सुसज्जा एक विराट अभिनयशाला के समान थी । इस समय मंच पर विराजमान आयुर्वेद के महारथियों में वैद्यरत्न श्री

पं० शिवशर्मा, महासम्मेलनाध्यक्ष, विद्यापीठाध्यक्ष श्री भिकाजी विनायक डेग्वेकर, महासम्मेलन उपाध्यक्ष श्री डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित, प्रधानमंत्री वैद्यराज श्री वामनराव दीनानाथ, विद्यापीठ मंत्री रा०ब० श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा, स्वागताध्यक्ष श्री के०परमेश्वरम पिल्लई, श्री वा० बा०नटराज शास्त्री, श्री बदरीविशाल त्रिपाठी, श्री दुरैस्वामी आयंगर, श्री डा० ए० लक्ष्मीपति, श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी, श्री गुलराज शर्मा मिश्र, श्री पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, श्री वैद्यनाथ मिश्र, श्री स्वामी चेतनानन्द, श्री मुक्कामल वेंकट शास्त्री के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं । इनके अतिरिक्त राज्य सरकार के अनेक अधिकारी तथा राज्य विधान सभा के अध्यक्ष एवं प्रमुख नागरिक भी उपस्थित थे ।

इस उद्घाटन समारोह के प्रमुख अतिथि बम्बई राज्य के मुख्य मंत्री स्वनाम धन्य माननीय श्री मोरार जी देसाई के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा की जा रही थी । श्री देसाई आज ही मध्याह्न में एक विशेष विमान द्वारा त्रिवेन्द्रम पधारे थे । ठीक ४ बजे सायंकाल राज्य के स्वास्थ्यमन्त्री श्री रहीम के साथ आप सभास्थल में पधारे । कालेज के मुख्यद्वार पर स्वागताधिकारियों ने उनका पुष्पहार पहिना कर स्वागत किया तथा मृदङ्ग वादकों ने उनके आगमन की घोषणा की । सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित बालिकाओं ने जो प्रज्वलित दीप धूप इत्यादि से युक्त थाल लिए द्वार पर उपस्थित थीं, मङ्गल तिलक लगाये तथा पण्डितों ने मन्त्रोच्चारण कर आर्यसंस्कृति के अनुरूप शुभसूचक मङ्गल सामग्री भेंट की । तदनन्तर उन्हें मण्डप में ले जाया गया जहाँ श्री पं० शिवशर्मा, प्रधान, अ०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, श्री डा० पार्थनारायण पण्डित, उपाध्यक्ष तथा श्री कलादि परमेश्वरम पिल्लई, स्वागताध्यक्ष, ने उनका स्वागत किया । श्री देसाई द्वारा मंच पर अपना स्थान ग्रहण करने के अनन्तर महासम्मेलन के उद्घाटन का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ । सर्वप्रथम त्रावणकोर के मुख्य मन्त्री श्री पनमपिल्ले गोविंद मेनन जो एक दिन पूर्व एक आवश्यक कार्यपर एरनाकुलम चले जाने के कारण अधिवेशन में उपस्थित नहीं हो सके थे, की ओर से प्राप्त शुभकामना का सन्देश पढ़ कर सुनाया गया ।

तदनन्तर स्वागताध्यक्ष श्री के परमेस्वरम पिल्लई ने अपना स्वागत भाषण पढ़ा । पश्चात् राज्य के स्वास्थ्य मन्त्री श्री आर० ए० रहीम ने अपना संक्षिप्त भाषण जिसमें आपने आयुर्वेद के उत्कर्ष में केरल की देन तथा राज्यसरकार द्वारा आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने के लिए किए गए प्रयत्नों का विशेषतया दिग्दर्शन कराया, पढ़ कर श्री मोरार जी-देसाई जी से सम्मेलन के उद्घाटन की प्रार्थना की । श्री पिल्ले तथा श्री रहीम के भाषण इसी अङ्क में अन्यत्र प्रकाशित हैं ।

तत्पश्चात् माननीय श्री मोरार जी देसाई ने सौम्य और गम्भीर मुद्रा में अपना धाराप्रवाह उद्घाटन भाषण प्रारम्भ किया । अपनी राष्ट्रीयता की रक्षा करते हुए आपने अपना भाषण राष्ट्र भाषा हिन्दी में प्रारंभ किया और कहा कि हमारे लिए यह खेद और लज्जा का विषय है कि हिन्दी के राष्ट्र भाषा स्वीकृत हो जाने के बावजूद भी हमें

अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए एक विदेशी भाषा का आश्रय लेना पड़ रहा है। यह हमारे लिए गौरव की बात नहीं। आपने आशा व्यक्त की कि बहुत शीघ्र ही अहिन्दी भाषी प्रदेशों में भी हिन्दी का आवश्यक प्रसार होकर उसे अन्तरप्रान्तीय भाषा के रूपमें अपना लिया जाएगा और तब हम विदेशी भाषा के माध्यम का परित्याग कर सकेंगे। इसके पश्चात् आपने अपनी अलिखित वक्तृता अंग्रेजी में प्रारम्भ की। और युक्तियुक्त भाषा में आपने आयुर्वेद का जिस प्रकार पक्ष समर्थन किया वह आयुर्वेद तथा भारतीय प्राचीन संस्कृजि के प्रति उनकी सजीव और प्रगाढ श्रद्धा का द्योतक था ; ऐसी श्रद्धा जो अन्ध विश्वास जन्य न होकर सुदीर्घ मननशीलता तथा वैज्ञानिक विचारधारा के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई हो। आयुर्वेद समाज इसके लिए उनका चिर ऋणि रहेगा। संक्षेप में, आपने कहा कि "सभी चिकित्सा प्रणालियों पर विचार करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि हमारे देश में किसी अन्य चिकित्सा प्रणाली की अपेक्षा आयुर्वेद जनता की अधिक अच्छी और अधिक प्रभावशाली सेवा कर सकता है। उसके सिद्धान्त और व्यवहार प्रकृति के नियमों के अधिक अनुकूल हैं। फिर यह एक ऐसी प्रणाली है, जिसका उचित ढंग से विकास होने पर, देश के गरीब से गरीब और अनपढ़ से अनपढ़ व्यक्ति को भी सुलभ हो सकती है। एक समय आयुर्वेद ऐसी ऊंचाई पर पहुँच गया था, जिस पर अभी कोई चिकित्सा प्रणाली नहीं पहुँची है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आज का आयुर्वेद उसी हालत में है जिसमें वह पुराने पूर्वजों के समय में था। यह मानना होगा कि अनेक व्यक्तियों को आयुर्वेद की प्रभुता का विश्वास नहीं है अतः वैद्यों का यह कर्त्तव्य है, कि वे अपनी चिकित्सा प्रणाली पर अधिक ध्यान दें। इन्हें अपने ज्ञान और अपने विज्ञान पर अधिक विश्वास होना चाहिए और जरा से संकट पर उसे छोड़ बैठना नहीं चाहिए। यह भी आवश्यक है कि नीम हकीमों को अनुत्साहित किया जाय ताकि वे इस महान विज्ञान के नाम को धब्बा न लगा सकें।" आगे आपने कहा कि "ऐलोपैथी पर जितना ध्यान दिया जाता है और ऐलोपैथिक हास्पिटलों पर जितना व्यय किया जाता है यदि उसका दसमांश भी आयुर्वेदिक चिकित्सा विज्ञान तथा आयुर्वेदिक हास्पिटलों पर किया जाय ता यह सम्पूर्ण विवाद ही समाप्त हो जाय और सभी आयुर्वेद की उत्कृष्टता को मान लें" इत्यादि। आपके सम्पूर्ण भाषण का ग्रामोफोन रिकार्ड साथ साथ भरा गया था, जिसे प्रान्त प्रान्त में वैद्यों तथा अन्य लोगों के श्रावणार्थ यथासमय भेजा जायगा। यह भाषण पत्रिका के अगामी अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

तत्पश्चात् महासम्मेलन की सफलता के लिए भारत के विभिन्न राज्यों के राज्य पालों, मुख्यमन्त्रियों तथा स्वास्थ्य मन्त्रियों आदि की ओर से प्राप्त शुभकामनाओं के सन्देश पढ़ कर सुनाए गए। तदनन्तर महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्यरत्न श्री प० शिवशर्मा जी ने अपना अध्यक्षीय भाषण पढ़ा जो अविकल रूप से इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित है।

अध्यक्षीय भाषण के अनन्तर श्री स्वामी आगमानन्द, अद्वैत आश्रमम कलाडि

का भाषण तामिल भाषा में आयुर्वेद की उत्कृष्ठता पर हुआ और इसके पश्चात् स्वास्थ्य मन्त्री श्री रहीम द्वारा सभा तथा अध्यक्ष का धन्यवाद देने के पश्चात् आज के अधिवेशन का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

रात्रि को ६ बजे आयुर्वेद कालेज के हाल में विषय निर्वाचिनी समिति तथा महासम्मेलन स्थायी समिति का सम्मिलित अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में उन सभी विषयों पर विचार हुआ तथा खुले अधिवेशन के लिए प्रस्ताव स्वीकृत हुए जिन्हें २१ ता० की स्थायी समिति ने विषय निर्वाचिनी समिति को समर्पित किया था।

आयुर्वेद विश्वविद्यालय का प्रश्न विशेष वाद-विवाद का विषय रहा। इस विषय के प्रस्तुत होने पर सर्वप्रथम अध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा जी ने स्थिति पर प्रकाश डालते हुए बताया कि ऋषिकेश में विश्वविद्यालय के निर्माण की दिशा में विद्यापीठ मंत्री रायबहादुर श्री पं० श्रीदत्त जी ने निस्सन्देह महान प्रयत्न किया है और हम उनकी लगन तथा दृढ़ उद्योगशीलता की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते तथापि उनके इन प्रयत्नों तथा परिश्रम के पश्चात् भी दुर्भाग्यवश कुछ विरोधी तत्वों की प्रबलता के कारण इस महान कार्य में सफलता नहीं मिल सकी। अब तो परिस्थिति इतनी जटिल और उलझी हुई प्रतीत होती है कि मुझे यह विश्वास ही नहीं होता कि वहां अब विश्वविद्यालय बन भी सकेगा या नहीं। वैसे मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि ऋषिकेश में विश्वविद्यालय बनने की अब सम्भावना नहीं है। मेरे विचार में महासम्मेलन को वहां विश्वविद्यालय के निर्माण का विचार त्याग देना चाहिए तथापि यह सदस्यों के विचार का विषय है, वे जैसा निर्णय करेंगे कार्य तो उसी के अनुसार किया जाना है। यह तो मेरी व्यक्तिगत सम्मति है जो स्थिति के स्पष्टीकरण तथा महासम्मेलन की भलाई को दृष्टि में रखते हुए मैंने आपके सम्मुख रखी है। तदुपरान्त अध्यक्ष जी ने विद्यापीठ मंत्री श्री पं० श्रीदत्त जी से अपने विचार व्यक्त करने के लिए कहा।

श्री पं० श्रीदत्त जी ने अपने विचार सभा के सम्मुख प्रकट करते हुए कहा कि सम्मेलन की तथा विद्यापीठ की प्रतिष्ठा एवं गौरव की रक्षा के लिए ऋषिकेश में विश्वविद्यालय का स्थापित किया जाना परमावश्यक है। मैं सब कठिनाइयों को समझते हुए आयुर्वेद की गौरववृद्धि के लिए अपनी आहुति देकर भी विश्वविद्यालय की स्थापना ऋषिकेश में करना चाहता हूं। ४० वर्ष से विश्वविद्यालय की स्थापना की चर्चा हर समय और हर अधिवेशन में होती रही है किंतु आजतक इसकी स्थापना नहीं हो सकी—यह वैद्यसमाज के लिए भारी कलंक है। मै इस कलंक को दूर करना चाहता हुं। मैं इस सम्मेलन को विश्वास दिलाता हूँ कि विद्यापीठ के कोष से विश्वविद्यालय के निर्माण कार्य में एक पैसा भी लेकर नहीं लगाऊंगा। वैद्य बन्धुओं का एवं आयुर्वेद प्रेमियों का सहयोग चाहिए—रुपए की कमी नहीं है। मैं जंगल में रहता हूँ, जंगल में खड़े हुए वृक्षों के पत्ते भी भगवान धन्वन्तरि की कृपा से नोट बन जायेंगे। ऋषिकेश में विश्वविद्यालय बनने की अवस्था में ही मैं पूर्ण लगन और शक्ति से कार्य कर सकता हूं क्योंकि मैं यह दिखा देना चाहता हूं कि लखपतियों के सहयोग के

बिना भी विश्वविद्यालय का कार्य रुक नहीं सकता। यदि आप विश्वविद्यालय नहीं बनाना चाहते तो मैं विद्यापीठका मन्त्री रहने के लिए तैयार नहीं हूं—आपसे क्षमा चाहता हूं।

इसके पश्चात् श्री डा० ए० लक्ष्मीपति, मद्रास, श्री गोवर्धनशर्मा छांगाणी, नागपुर, श्री कमलाप्रसाद मणि त्रिपाठी, पटना, आचार्य श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी,कानपुर, श्री दुरै स्वामी आयंगार, मद्रास, ने विश्वविद्यालय के ऋषिकेश में बनाये जाने के पक्ष में अपना अपना मत व्यक्त किया और कहा कि कि श्री विद्यापीठ मंत्री को इस कार्य के लिए एक वर्ष का समय और दिया जाय। प्रायः सम्पूर्ण सभा ने इस मत का समर्थन किया। तदुपरान्त सभापति जी ने कहा कि यदि सभी सदस्यों की ऐसी ही इच्छा है कि ऋषिकेश में ही विश्वविद्यालय बनाने के प्रयत्नों को चालू रखा जाये तो ऐसा किया जाय, किन्तु में स्वयं इस विषय में तटस्थ हूं। इस पर प्रधान मन्त्री श्री वामनराव दीनानाथ जी तथा संयुक्त मन्त्री श्री स्वामी चेतनानन्द जी ने भी क्रमशः अपने तटस्थ रहने की घोषणा की। अभी इस विषय पर अन्तिम निश्चय नहीं हो पाया था कि रात्रि अधिक व्यतीत हो जाने के कारण सभा का कार्य अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया गया।

ता० २३-५-५५

आज नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ अधिवेशन के उद्घाटन का कार्यक्रम प्रातःकाल ८ बजे से प्रारम्भ हुआ। केरल संगीत सभा के अनन्तर आयुर्वेद कालेज के कार्यकारी प्रिंसिपल श्री कुमारकम परमेश्वरन पिल्ले ने अपना स्वागत भाषण पढा। तदनन्तर त्रावणकोर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री पी० आर० परमेश्वरा पन्नीकर ने अधिवेशन का उद्घाटन किया और अपना उद्घाटन भाषण पढ़कर सुनाया। उक्त दोनों भाषण मलयालम भाषा में होने के कारण उनका सारांश यहां देना सम्भव नहीं है।

उद्घाटन के उपरान्त विद्यापीठाध्यक्ष आयुर्वेदाचार्य श्री भि० वी० डेग्वेकर जी ने अपना सारगर्भित तथा शास्त्रीय विवेचन से युक्त भाषण संस्कृत में पढ़कर सुनाया। इनके भाषण का आधा भाग पत्रिका के इसी अंक में प्रकाशित है तथा शेषांश आगामी अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

तदुपरान्त त्रावणकोर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री पी० पी० पिल्ले का भाषण हुआ। अन्त में आयुर्वेदाचार्य श्री आर० पी० चित्तोभम, प्रधानमन्त्री, केरलीय वैद्य महामण्डलम, द्वारा आभार प्रदर्शन के अनन्तर यह समारोह समाप्त हुआ।

मध्यान्होत्तर २ बजे से विद्यापीठ का खुला अधिवेशन प्रारम्भ हुआ जिसमें डा० श्री आर० पी० चित्तोभम तथा आयुर्वेदाचार्य श्री वा० वा० नटराज शास्त्री के क्रमशः स्वागत तथा अध्यक्षीय भाषण होने के पश्चात् संस्कृत कालेज त्रिवेन्द्रम के लेक्चरर श्री के०बलरामा पन्नीकर तथा त्रावणकोर विश्वविद्यालय के श्री सूरनाद पी० एन० कुंजन पिल्ले के मनोरंजक भाषण हुए। तत्पश्चात् प्रधानमन्त्री श्री वामनराव दीनानाथ जी, द्वारा आभार व्यक्त किए जाने के अनन्तर विद्यापीठ के खुले अधिवेशन का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

सायंकाल साढ़े सात बजे महासम्मेलन का खुला अधिवेशन प्रारम्भ हुआ जिसमें

वैद्य कलानिधि श्री एन० के० सोमशेखरन द्वारा स्वागत भाषण तथा पत्तोम ए० थानु पिल्ले द्वारा उद्घाटन भाषण देने के उपरान्त संस्कृत कालेज त्रिवेन्द्रम के आचार्य श्री एन० गोपाला पिल्ले ने अपना भाषण दिया। इसके पश्चात् वैद्य कलानिधि श्री पी० आर० नतेसन, मातृभूमि के विशेष प्रतिनिधि श्री परमेश्वरन तथा आयुर्वेदाचार्य श्री के० कुन्जुरमन के सारगर्भित भाषण हुए। इस अधिवेशन में राज्य के मुख्य मंत्री श्री पनमपिल्ले गोविन्द मेनन भी उपस्थित रहे तथा आपने भाषण भी दिया जिसमें आपने दोनों चिकित्सा पद्धतियों के समन्वय की आवश्यकता पर बल दिया। श्री पिल्ले बहुत समय तक अधिवेशन में उपस्थित रहे तथा अध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा जी से आयुर्वेद के विषय पर वार्तालाप करते रहे। अन्त में आयुर्वेद कालेज यूनियन की स्पीकर श्रीमती शान्ता द्वारा आभार प्रदर्शन के अनन्तर सभा विसर्जित हुई।

रात्रि को ६ बजे २२ ता० का स्थगित विषय निर्वाचिनी समिति तथा स्थायी समिति का सम्मिलिताधिवेशन आयुर्वेद कालेज हाल में प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम विश्वविद्यालय के स्थगित विषय पर ही विचार प्रारम्भ हुआ। श्री अध्यक्षजी ने कहा कि मैंने सम्पूर्ण परिस्थिति पर पुनः गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि विद्यापीठ मंत्री श्री पं०श्रीदत्तजी के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए एवं इस कार्य की महानता का ध्यान रखते हुए तथा यह देखते हुए कि ऋषिकेश में श्री पं० श्रीदत्त जी को कोई सहयोग प्राप्त नहीं है बल्कि इसके विपरीत वहाँ पर विभिन्न प्रकार का विरोध जोरों पर है, मैं सदस्यगण से अनुरोध करूंगा कि श्री रायबहादुर जी जैसे व्यक्ति के जीवन और स्वास्थ्य की रक्षार्थ हमें इस विचार को ऋषिकेश से स्थगित कर देना चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्री विद्यापीठ मंत्री जी अभीतक मूल प्रस्ताव पर दृढ़ हैं और सम्भव है कि उन्हें इस कार्य-सम्पादन में सफलता हो भी जाये परन्तु मुझे इस विषय में भारी सन्देह है। इसलिये इस प्रश्न पर हमें व्यवहारिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए न कि भावुकता से। हम सब चाहते हैं कि आयुर्वेद विश्वविद्यालय का निर्माण शीघ्रातिशीघ्र हो किन्तु हम परिस्थिति की ओर से आंखें मूंद कर नहीं बैठ सकते। इस अवस्था में मैं तो निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित करूंगा और आपसे तथा रा० ब० श्री श्रीदत्त जी से अपील करूंगा कि वे इसे स्वीकार करें:—

“अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन रायबहादुर श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा, विद्यापीठ मंत्री, के उस भागीरथ प्रयत्न को रिकार्ड करता है जो उन्होंने ऋषिकेश में आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए किया है। इस कार्य सम्पादन में नितान्त विरोधी परिस्थितियों के सम्मुख भी उनके अदम्य उत्साह की यह अधिवेशन प्रशंसा करता है। उन्होंने आयुर्वेद जगत की इस प्रकार जो अमूल्य सेवा की है उसके लिए यह अधिवेशन उनका आभार मानता है और उन्हें धन्यवाद देता है। यद्यपि वे अब भी इस संस्था के निर्माण के लिए दृढ़ और कटिबद्ध हैं तो भी ऋषिकेश की परिस्थिति को अनुकूल न देखते हुए यह अधिवेशन निश्चय करता है कि अब

ऋषिकेश में आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना का विचार स्थगित कर दिया जाये।"

तत्पश्चात् श्री विद्यापीठ मंत्री जी की ओर सम्बोधित होकर अध्यक्ष जी ने प्रस्तुत प्रस्ताव पर उनका मत जानने की इच्छा प्रकट की। श्री विद्यापीठ मंत्री जी ने कहा कि जब श्री प्रधान जी तथा प्रधान-मंत्री जी इस कार्य को आगे चलाने में तटस्थ हैं और प्रस्ताव के पक्ष में नहीं हैं तो मेरे लिए इसके सिवा और कोई मार्ग ही नहीं है कि आप के इस प्रस्ताव को मानलूं। मैं तो वहाँ विश्वविद्यालय बनाने के लिए अब भी कटिबद्ध हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि वहाँ की परिस्थिति समय पाकर ठीक हो जायगी और हम अपना कार्य सम्पादन कर सकेंगे। परन्तु वैद्य महानुभावों के सहयोग और भागीरथ प्रयत्न के बिना यह सम्भव नहीं। मैं सारा भार अपने ऊपर लेने को तैयार था परन्तु वर्तमान परिस्थिति में श्री सभापति जी द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को स्वीकार करता हूं। साथ ही मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूं कि यदि आप ऋषिकेश में विश्वविद्यालय के विचार को स्थगित करते हैं तो आपको वह धनराशि वापस करनी पड़ेगी जो दानियों से मैंने ऋषिकेश में विश्वविद्यालय के लिये भूमि खरीदने के लिये ली है। यह धनराशि २२०० रुपया है जो आपको वापिस करनी पड़ेगी। यही नहीं कलकत्ते में विवाद उत्पन्न हो जाने के कारण कानूनी परामर्श लेने के लिए मैंने वहाँ के तीन बैरिस्टरों को ९५० रु० फीस के रूप में अपनी जेब से दिये हैं वे भी आपको विद्यापीठ की ओर से देने होंगे। तदुपरान्त उपर्युक्त प्रस्ताव में निम्नलिखित दो धारायें और जोड़ कर प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया :—

"१—यह भी निश्चय हुआ कि जो २२०० रुपया श्री विद्यापीठ मंत्री जी ने ऋषिकेश में भूमि खरीदने के लिए प्राप्त किया है उसे दानियों को वापिस कर दिया जाय।

२--इस विषय में कानूनी परामर्श करने के लिए कलकत्ते में बैरिस्टरों को ९५० रु० जो फीस श्री विद्यापीठ मंत्री जी ने अपने पास से दी है उसे भी विद्यापीठ कोष से चुका दिया जाय।"

प्रस्ताव की स्वीकृति के अनन्तर श्री विद्यापीठ मंत्री जी ने कहा कि मैं आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापनार्थ ही विद्यापीठ मंत्री बना था अतः अब आप लोगों से प्रार्थना करता हूं कि मुझे इस सेवा से मुक्त किया जाये। सभा के कई सदस्यों ने विद्यापीठ मंत्री जी से कहा कि हमारी यह हार्दिक इच्छा है कि विश्वविद्यालय श्री श्रीदत्त जी के ही हाथों से बने अतः श्री विद्यापीठ मन्त्री जी से हमारी प्रार्थना है कि वे विद्यापीठ मंत्री बने रहें और विश्वविद्यालय के इस कार्य को सिरे चढ़ायें।

तदनन्तर खुले अधिवेशन के लिए अन्य प्रस्ताव स्वीकृत करने के उपरान्त कार्यवाही समाप्त हुई।

ता० २४-५-५५

आज महासम्मेलन विद्यापीठ का अन्तिम और खुला अधिवेशन यद्यपि सायंकाल ४-३० बजे से प्रारम्भ होने वाला था किंतु प्रतिनिधियों के आग्रह पर, उनकी सुविधा का ध्यान रखते हुए यह अधिवेशन प्रातःकाल ९ बजे से प्रारम्भ किया गया। विषय निर्वाचिनी द्वारा खुले अधिवेशन के लिए स्वीकृत प्रस्ताव एक एक करके सभा के सामने पढ़े गए और सभी सर्वसम्मति से स्वीकृति हुए। तदनन्तर पदाधिकारियों के निर्वाचन का कार्य सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में सर्वसम्मति से स्वीकृत सभी प्रस्ताव, आनुमानिक आय व्यय तथा चुनाव आदि के विषय में स्वीकृत

प्रस्ताव पत्रिका के इसी अंक में आगे प्रकाशित हैं।

तदुपरान्त आयुर्वेदिक शिक्षा, अनुसंधान तथा ग्रामीण चिकित्सा पर आयोजित सम्भाषा परिषद् हुई जिसका सभापतित्व राज्य के आयुर्वेद डायरेक्टर श्री डा० एम०एन० केशव पिल्लई ने किया। इस परिषद् में नागपुर विश्वविद्यालय के श्री वेणिमाधव शास्त्री जोशी, वैद्य श्री रमण नाम्बिशन, एल्लोर, वैद्यभूषण श्री एम०वी० मोहम्मद, तथा आयुर्वेदभूषण श्री त्रिकोविल अच्युत वारियार एवं अन्य विद्वानों ने भाग लिया।

अन्त में अध्यक्ष श्री शिवशर्मा जी का स्वस्तिवाचनिक भाषण हुआ और तदुपरान्त श्री आर० पी० चित्तेभ्रम स्वागतमंत्री ने श्री सभापति जी तथा समागत प्रतिनिधियों का आभार प्रदर्शन किया और सम्मेलन को सफल बनाने के लिए कृतज्ञता प्रकट की। तत्पश्चात् राष्ट्रीय गीत जन गण मन के गायन के उपरान्त वहुत प्रेमपूर्ण और प्रसन्न वातावरण में अधिवेशन विसर्जित हुआ।

अन्त में माननीय श्री मोराजी देसाई का जिन्होंने ऋतु के विपरीत होते हुए भी त्रिवेन्द्रम पधार कर सम्मेलन को उद्घाटित किया, त्रिवेंद्रम के स्वास्थ्य मंत्री, मुख्य मंत्री तथा आयुर्वेद के डायरेक्टर महोदयों का जिन्होंने अधिवेशन में उपस्थित रहकर हमें प्रोत्साहित किया, उन सभी प्रतिनिधियों का जो स्थान की दूरी और लम्बी यात्रा की कठिनाइयों की चिन्ता न करते हुए अधिवेशन में पधारे, तथा स्वागत समिति के सदस्यों एवं कार्यकर्ताओं का जिनके दिन रात अथक परिश्रम तथा उत्तम व्यवस्था के फलस्वरूप अधिवेशन सफल हुआ हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हुए इस विवरण को समाप्त करते हैं।

——

मलेरिया शत्रु—सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य आधा पौंड ६) रु० **सफेद कोढ़**-की पेटेन्ट दवा—मूल्य ५) रुपया दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर तथा हकीम धन-मान कमा रहे हैं। विवरण पत्र मुफ्त मंगाकर देखें।

वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० आकोला
(बरार) म० प्र०

रोग पर जादू की भांति तत्काल
असर करने वाले
मार्तण्ड के आयुर्वेदिक
इंजेक्शन

मार्तण्ड की समस्त वैज्ञानिक साधन सम्पन्न और आधुनिक मशीनों से सुसज्जित प्रयोगशाला में उच्च शिक्षित आयुर्वेदज्ञों और विदेशी रसायनज्ञों की देख रेख में निर्माण हुए ये आयुर्वेदिक इंजेक्शन अपना तत्काल असर करते हैं, इनका प्रभाव स्थाई होता है, रक्खे रहने पर भी ये कभी नहीं बिगड़ सकते, इनकी आशुगुणकारिता और शुद्धि की पूरी गारंटी है। सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगाइये।

निर्माताः **मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स,**
बड़ौत, उत्तर प्रदेश
रिसर्च इंस्टीट्यूट आफ इंडियन मेडिसन्स

WELCOME ADDRESS

BY

SHRI KALADY K. PARAMESWARAN PILLAI,

CHAIRMAN, RECEPTION COMMITTEE

22 - 5 - 1955

SHRI Morarji Desai, the Minister for Health, Pundit Shiv Sharma, Ayurvedacharyas, Delegates, Ladies and Gentlemen,

When at Kottakkal last year, it was decided to invite the ensuing Annual Session of the All-India Ayurvedic Congress at Trivandrum, it was hoped that this would be done and the session held here in salubrious spring-time. It was never foreseen then that we would have to bear yet another of the misfortunes that seems to beset the path of Ayurveda and its votaries. I refer to the untimely death of Dr. V. K. G. Menon, Principal of the College of Ayurveda, Trivandrum, who had endeared himself not only to his colleagues and pupils, but to the vast public, both within the State and outside, who have known the benefits of Ayurveda and have learnt to prize our ancient system of health and healing. Memories of that warmhearted colleague and friend come crowding in as I stand before you here, in the shadow of the great institution to which he gave a new form and shape, to bid you welcome in the name of the Ayurveda Vaidyans of Kerala. This, indeed, is a duty which the late Dr. V. K. G. Menon would have discharged, more appropriately than anyone else, had he been spared by fate. Let us pay our humble tribute to the memory of Dr. V. K. G. Menon and remember with gratitude his services to the cause of promotion of Indian medicine. May his soul rest in peace.

It is now my duty and privilege to offer, to the distinguished leaders and celebrated Vaidyans who have so graciously responded to our invitation to be present at this Confrence, as also to the delegates from far and near, who have, in loyalty to the cause of Ayurveda, assembled here at the Fortieth Session of the All-India Ayurvedic Congress, our warmest and most cordial welome.

To the Chief Minister of Bombay, Shri Morarji Desai, I offer a most hearty welcome. The fact that Shri Desai has taken time off—indeed the best part of a crowded working day—and undertaken a 1500 mile flight during inclement weather exclusively for the purpose of inaugurating this Congress is proof—although such proof is entirely superfluous in his case—of his abiding interest in Ayurveda and concern for the progress and further development of this ancient system of Indian medicine. Sir, may I use this platform to acknowledge and proclaim the deep sense of gratitude of the practioners of Ayurveda for your just and able championship of our profession and your ceaseless solicitude for our welfare ? May I express the hope that your efforts on behalf of Ayurveda in your own State would bear fruit in abundant measure and that very soon your beneficent activities would find their fullest scope in a larger sphere covering the entire nation ?

Ayurvedacharya Pundit Shiv Sharma is so much part of us that it would be redundant to offer him formal welcome. The life and soul of the All-India Ayurvedic Congress, Pundit Shiv Sharma has dedicated his great talent, energy and organising ability to the task of protecting the interest of the profession of which he is so distinguished a leader. On behalf of the Reception Committee and on my own behalf, I offer you, Sir, a most hearty welcome.

To Dr. Lakshmipathi, doyen of Ayurvedic physician, and their never-failing friend, philosopher and guide, I offer a most warm welcome. On behalf of the Reception Committee and on my own behalf I extend a cordial welcome to Ayurvedacharya Shri B. V. Degwekar. To each and every delegate attending this session of the All-India Ayurvedic Congress I extend a most hearty welcome.

To welcome our Minister for Health, who has extended his full support to this Congress may only be an act of domestic courtesy, but it is not the less warm or less sincere on that account.

In meeting here at Trivandrum, capital of the southernmost State of India, the All-India Ayurvedic Congress has fully vindicated its All-India character. This land of verdure and lush vegetation nestling under the Western Ghats, with its long mineral-laden coastline lapped by the Arabian Sea, has, for long, storied centuries, offered a heaven to foreigners who came in quest of peaceful trade in commodities or culture, but has at the same time, been sequestered from the ravaging hordes who have poured into the Indian sub-continent through the north-western gaps, in order to plunder, devastate or rule. While the rest of India was undergoing the travail of invasion and conquest, this plam-fringed land of Kerala has been the home of a people dedicated to the cause of art, learning and culture. While their sense of adventure and quest for a larger and fuller life often prompted them to move out, at their will, into the vast and distant spheres beyond the Western Ghats, and several distinguished Malayalee pioneers have established their name and fame in Upper India, their own homeland has remained untrodden by invaders from the North. Even the *brihacharana*, or "the Great Migration" of the later Aryans, stopped beyond the Ghats. The descendants of Bhargavarama settled down on the land which their great ancestor had caused to be heaved out of sea, either by design or accident, and fashioned a a society and a way of life which is even today unique when compared with the habits and modes of other ethnic or linguistic groups inhabiting this vast sub-continent. This geographical isolation of Malayalee has had advantages other than political security and freedom from foreign incursions. It has enabled them to develop their natural talents and their own peculiar taste for the fine arts and learning. The study of Sanskrit, which was given a high place in the educational system, enabled the more gifted among the votaries of learning to seek initiation into the skilled professions such as that of physician, astrologer and architect. While they treasured and studied with reverence the ancient Sanskrit treatises on the various branches of knowledge, they also had the benefit of resorting, at first hand. to undefiled spring of Tamil learning which was easily available to them from their neighbours and friends who revered the Alwar saints and the Siddha vaidyans of the South. A synthesis of the best in the Aryan and Dravidian systems of medicine and allied learned arts was thus achieved in Kerala. Herein lies the supreme merit of the Kerala system of Ayurveda.

In common with the other branches of learning in Kerala, Ayurveda enjoyed the fostering of care and patronage of enlightened rulers and patriarchs of the people. But. above all, the largest single factor which contributed to the development of Ayurveda was the singular blessing of the richly variegated flora which bountiful Nature has offered to Kerala. No visitor to our beautiful land has failed to be impressed by the sight of the rich vegetation of the Ghat Section and the deep green foliage that clothes the mountain slopes and fringes the innumerable rivers and backwaters. Here in Kerala, whether in the heart of its impenetrable forests or in the very precincts of each isolated *tarwad*, or seat of the joint family, could be picked up valuable herbs which Nature offers to Man as remedy and a cure fot the ills to which the human system is susceptible. I would invite you, friends from the various States of India, to go out into the interior and see for yourself the inexhaustible herbarium that is Kerala. You will then cease to wonder how this part of the country has come to possess such a well-developed system of Ayurveda and why it has become so popular and effective a system of medical treatment.

Many of you who are students of Indian culture would know that Buddhism, in its process of expansion, found congenial soil in Kerala and encouraging support from among its enlightened people. But many of you would not have known that Vagbatacharya, the renowned author of the treatise on Ayurveda entitled "Ashtangahridaya," lived for a long period of time in Kerala. It is believed that the famous *Ashtavaidyas* (eight Physicians) of Kerala were the direct disciples of Vagbatacharya. It might interest you to know that even today the Kerala system of Ayurvedic treatment is termed the "Ashtangahridaya vaidya," and its practitioners are popularly referred to as "Ashtangahridaya Vaidyans." This system of Ayurvedic medicine, which developed on its own lines in Kerala, eventually blossomed into a full-fledged system of treatment with its own unique characteristics. Among the eight specialised branches of treatment implied in the term "Ashtangahridaya", the physicians of Kerala have mastered and prefected five, namely those relating to *Kaya chikitsa* (general treatment) *bala chikitsa* (treatment of children's diseases) *griha chikitsa* (treatment for mental and psychological disorders), *oordhanga chikitsa* (treatment of diseases above the neck) and *damshtra chikitsa* (treatment for poison). In these five branches of Ayurvedic treatment the physicians of Kerala have attained a degree of perfection unequalled anywhere else in India. The efficacy of the Kerala system of treatment for orthopaedic and nerve disorders, particularly the system of massage treatment, is well known and acknowledged throughout our country.

Thus, keeping alive its hoary antiquity, preserving its ancient traditions and fostering its ethical attributes of service as much to the healthy as to the sick and suffering, Ayurveda in Kerala has retained its place of honour among the various systems of medicine prevalent in this country. In keeping with the progress in the other systems of medicine, the Ayurvedic physicians of Kerala have also sought to develop, on a scientific basis of systematic teaching, careful study of clinical data and improvements in the preparation and packing of medicines, this hoary system of Indian medicine.

The College of Ayurveda, in the precincts of which institution this Congress is being held, has an interesting history of development. It is a 70-year-old history. Started as a school exclusively for teaching Ayurveda to the members of the Ruling Family, the institution was taken over by the State Government and the expenditure involved in its working charged on the general revenues of the State. What was then retained as a four-year course of studies was converted, in 1918, to a full fledged five-year course. The late Dr. Kolatheri Sankara Menon, M. A., L. T., Ph. D., during his term of office as Director of Ayurveda, incorporated into the syllabus courses of instruction in Anatomy, Physiology and other modern subjecrs in keeping with the teaching of the allopathic system. This new syllabus was further modified in later years and has since been accepted and recognised by the University of Travancore. As a practising physician and a teacher of Ayurveda of more than thirty years' stading, I have no hesitation in asserting that the course of studies now adopted in this college, including the qualifications prescribed for admission of students and the standard of instruction, compare favourably with those of any similar course of study in any system of medicine adopted in any Indian University.

But, yet there is a tendency among certain critics who are congenitally biassed against us and sworn to eternal hostility, to decry, belittle and vilify the Ayurvedic system of medicine in general and the standard of medical practitioners who are duly qualified in this system. Sporting foreign degrees in the allopathic system, these critics, many of whom have had more administrative roles in the profession than its actual practice, make cheap and disparaging comments on our ancient and well tried system of healing. In their dangerous and exotic knowledge they decry the precious herb in its natural habitat in the backyard of their homes while they would, without compunction, prescribe, to the poverty-stricken patient, costly patent medicines manufactured abroad from out of the very same herb shipped away from our shores. Whether due to lack of comprehension of the scientific basis of the system of Indian medicine or due to superficial familiarity with the Western system, these jaundiced critics see Ayurveda as a tainted system of medicine and its practitioners as a band of imposters who should be ruthlessly suppressed by law, leaving the world of sickness to their own knives and needles and to their easily prescribed patent medicines. But, as I said before, it is only the administrative and political doctor who is on the war-path against us. The genuine practitioners of the allopathic system are, we have found, amenable to discussion with us in the interests of the common cause. Yet, since it is the political doctor who wields power (for good or for evil) it has become necessary for us to appeal to the people and to the leaders of enlightened public opinion to be just and fair to us, the humble practitioners of a system of medicine that has stood the test of time.

In this matter our colleagues from North India can help the cause. "Dilli dur ast" is an old saying embodying a great political truth. We are far away from Delhi, and our voices are often inaudible in Delhi, the nation's capital. Therefore it is that we entrust to doughty champions of Ayurveda such as our President, Pundit Shiv Sharma, the task of convincing our rulers that Ayurveda is as scientific and effective a system of medicine as any other prevalent anywhere on earth and that in any scheme of development of this branch of activity on a national level Ayurveda should be given its rightful emphasis. If it is complained that inadequately qualified Ayurvedic practitioners have been functioning, we would answer that we have remedied the defect by having the system of degrees and diplomas and by providing for registration. If it is argued that the system of education in Ayurveda is defective, we contend that both the syllabus and the eligibility for admission have been so modified as to make the teaching parallel to that relating to the Allopathic system. But, if lack of understanding of the correct facts or our silence in the face of the campaign of vilification and slight is the reason for the neglect shown to us, we accept the position as something which cannot be helped. An English friend with whom I spent a period of discussion on subjects relating to science and metaphysics told me, on the eve of his departure from India : "My friend, it is not the Westerner who will prove to be the enemy of your ancient knowledge and culture, but the Indian with an imperfect Western education." I have often pondered these words of wisdom and have felt how correct that Englishman's observation has proved to be.

Shri Morarji Desai, the Health Minister, Mr. President and friends, I apologize for having taxed your patience with a speech of this length and of this content. Once again I extend to you all, in the name of the Reception Committee, a most sincere and cordial welcome to this State, this city and to this Congress.

SPEECH BY SHRI A. A. RAHIM,

Minister for Medicine and Health, Travancore-Cochin State, inviting Shri Morarji Desai to inaugurate the Conference.

SHRI Morarji Desai, Delegates to the Conference, Ladies and Gentlemen,

As the representative of Travancore-Cochin State it is my proud privilege to welcome this Annual Conference of the All-India Ayurvedic Congress to this State. We are in the southernmost corner of India and so late as 1913 Dr. Gananath Sen had in the English Introduction to his "Prathyaksha Sareera" written that "Orders for the book have been coming from far and near...and even from such unexpected quarters as Trivandrum (near Cape Comorin)...". Even to-day, I am afraid, that people outside Kerala are mostly in the dark regarding contributions of Kerala to Ayurvedic Science and Literature. It is well-known to the students of Archaeology that the Budhism flourished in Kerala and that the Budhistic Missions from the north had, among other things, brought Ayurveda also to this land. The tradition is that "Indu" a direct disciple of Vagbhata who flourished about the Fifth Century A. D. had actually lived in Kerala in the house of a Namboodiri Brahmin family of South Malabar which since then is known as Vaidya Matom, the only pure Atreya School in Kerala. Even earlier than that, in fact, with the advent of Namboodiris from Ahichathra, modern Ram Nagar in U. P. and the establishment of their 64 gramms, the eight houses of Ashtanga Vaidyans were established in what is known as Kerala Area-from Kasarcode to Cape Comorin. These houses are even now functioning as Vaidyas and the Vaidya population of Kerala as a whole is in one form or other the sishya-parambara of these houses. It is noteworthy that a good many temples of Kerala like Guruvayoor, Thakazhi, Thiruvizha etc. still offer a sort of medical help and many people even now do resort to these temples for medical help.

These are historically the remains of the medical services rendered by the Budhistic Monsteries of yore. Near here, some forty miles south in the area known as Marutwan mala originally Marunthu Vazhum Malai there is still sufficient evidence to show that a medical institution of considerable importance existed in that place.

Kerala has contributed many useful formulae of her own besides elaborating a specific type of rejuvenation method in the form of Kizhi, Pizhichil etc., in the place of the almost impracticable forms as Kudivasa types of Rasayana measures elaborated in classical literature.

These are fully current in Kerala and are being copied by Ayurvedics elsewhere.

Regarding this State, it may be noted that it is nearly 70 years since the Government have begun to take specific interest in the field and established Ayurvedic schools and hospitals, both deparmental and quasi-departmental as grant-in-aid. The Government activities in this respect had been steady and progressive. We have now altogether 17 hospitals, 80 dispensaries, 316 grant-in-aid Vaidyasalas and 2 Pharmacies and this College. We have introduced a Medical Council and compulsory registration of Ayurvedic Practitioners to protect this system from competition by unscrupulous quacks. We believe, we were the first to introduce this healthy measure for the protection of Ayurveda.

Recently the University of Travancore have constituted a Faculty of Ayurveda offering Degree after a five years course. This is the first University to offer a regular Degree for Ayurveda. A good curriculum of studies has been drawn up by an expert Committee. Necessary subjects from Modern Medicine have been included therein. It can confidently be claimed that this curriculum of studies is worthy of being adopted by sister institutions all over India. The first batch of students for this Degree will be entering their fourth year of studies with the re-opening of the College in July. The Government have, as you can see for yourself, come forward and provided adequate buildings and equipments and hospitals for clinical training to ensure proper training of the future Ayurvedics. Arrangements are being made to give clinical training to the students of this college at the General Hospital Trivandrum. In this connection we tender our gratitude to the Central Government for including the development of this college in the First Five Year Plan and we earnestly hope that such help will be continued for further improvement of the College.

We are proud to state that our degrees and diplomas are already accepted by West Bengal and Madras States and we are expecting similar acceptance by other States in the near future. We are also happy to announce that measures are already in hand for research in the field of Ayurveda in the light of modern science.

We take this Conference, coming as it does, in the wake of our endeavours to improve the status and tone of Ayurveda, as an augury of good future that awaits it in this land. May the "Apoorva Vaidya" help to realise our wish.

To you, Sir, Shri Desai, we are very much beholden for having so kindly acceded to our request to open this Conference. It is, Sir, your love of Indian culture that has prompted you to brave the many inconviences of a long distance travel in this monsoon period. We can only assure you that we will ever cherish with gratitude your very kind sacrifices on our behalf. With these few words, may I now request you. to kindly bless this Conference by declaring it open.

TRIVANDRUM,
22-5-1955.

पं० शिवशर्मा का अध्यक्षीय भाषण

जो

४० वें आयुर्वेद महासम्मेलन, त्रिवेंद्रम में
२२ मई १९५५ को पढ़ा गया

मित्रवृन्द !

श्रद्धांजली

इस अवसर पर मुझे सर्वप्रथम अपने स्वर्गीय मित्र आचार्य गिरिजावल्लभ मैनन का स्मरण आता है। सम्मेलन के पूर्व ही उनका आकस्मिक तथा असामयिक निधन हो जाने से वैद्यसमाज और स्वागतकारिणी को कठोर आघात पहुँचा है। गत वर्ष वायुयान दुर्घटना में श्री माधव वारियर की हृदयविदारक मृत्यु की उस भारी क्षति से, जिसके कारण कौट्टक्कल अधिवेशन पर निरन्तर शोक का अन्धकार छाया रहा, हम अभी पूर्णरूप से सम्भले नहीं थे, जब कि यह एक और भयंकर वज्रपात हुआ, जिससे हमारी वेदना अधिक गम्भीर तथा हमारा कर्तव्य और भी कठिन हो गया। इन महान् आयुर्वेदसेवियों के प्रति सर्वश्रेष्ठ श्रद्धांजली अर्पित करने का मार्ग यही है कि हम देश के राज्यों की स्वास्थ्य नीति में आयुर्वेद को इसका समुचित स्थान दिलाने के कार्य में दृढ़तर संगठन तथा संलग्नता से प्रवृत्त हों।

इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि हम सामयिक परिस्थिति का पूर्ण सिंहावलोकन करने के अनन्तर तज्जन्य आयुर्वेदिक समस्याओं का गम्भीर अध्ययन करें और उनकी पूर्ति के मार्ग निकालें।

समस्याएं

आयुर्वेदिक चिकित्सा के सम्मुख आज सब से कठिन कार्य पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त नागरिकों का पुनः शिक्षण है। अशिक्षित को यह सिखाना सरल है कि सत्य क्या है, परन्तु मिथ्या ज्ञानी का मिथ्या दृष्टिकोण बदल देना बहुत दुष्कर है। अतएव इस भाषण के सर्वथा शास्त्रीय आयुर्वेदिक अंशों को भी मैंने अति साधारण और सुगम शैली में ही वर्णन करने का विशेष प्रयत्न किया है।

गत अध्यक्षीय भाषणों को मैं प्रायः किसी आयुर्वेद के मुख्य सिद्धान्त की व्याख्या से आरम्भ करता रहा हूँ। परन्तु समय और स्थान के अभाव के कारण इस बार मैं केवल अत्यावश्यक सामयिक प्रसंगों पर ही प्रकाश डाल सकूँगा जिनमें ग्राम्य चिकित्सा साहाय्य, आयुर्वेद शिक्षा, अनुसंधान, और शासन प्रणाली विशेष महत्व के विषय हैं। इनके अतिरिक्त आयुर्वेद और यूनानी का सम्बन्ध, असन्तुष्ट सदस्यों द्वारा निर्मित नवीन संस्थाएं, महासम्मेलन में नवीन नेतृत्व की आवश्यकता, इन विषयों पर भी मैं कुछ प्रकाश डालूँगा।

सामान्य चिकित्सा तथा ग्राम्य चिकित्सा साहाय्य

जंगम इकाई तथा ग्रामवैद्य

भारत के दो लाख ग्रामवैद्यों से काम लेना चाहिए, क्योंकि अभी चिरकाल तक उनका स्थान लेने वाला कोई नहीं। सामयिक आवश्यकता और उसे पूर्ण करने की लगन दोनों की यह मांग है कि देश के पूर्ण लाभ के लिए उन्हें प्रयुक्त किया जाए। प्लैनिंग कमीशन की स्वास्थ्य परिषद् में मैंने यह सुझाव दिया था कि देश भर में जंगम आयुर्वेदिक इकाइयों का प्रसार होना चाहिए। प्रत्येक इकाई के निर्माण के लिए एक बड़ी मोटरगाड़ी, एक अच्छा वैद्य जिसके साथ आवश्यक औषधादि भी हो और एक ड्राइवर यह पर्याप्त सामग्री होगी। यह इकाई गाँव-गाँव में जायगी और एक ओर तो ग्राम वैद्य का पुनः शिक्षण करेगी और दूसरी ओर दुस्साध्य और कठिन रोगियों के उपचार में उसका पथ-प्रदर्शन करेगी। अनुसंधान और स्वास्थ्य रक्षा की उस योजना में मैंने इसी सुझाव को फिर स्थान दिया है जो इस विषय पर विस्तृत विचार करने के समय प्रतिनिधियों के सामने फिर उपस्थित की जायगी। भारत के अगणित ग्रामों में सफल चिकित्सा साहाय्य तथा स्वस्थवृत्त प्रचार के लिए इस से सस्ता मार्ग अभी तो कल्पना से बाहर की बात है। दो विदेशी चिकित्सा विशेषज्ञों को, जिनके आगमन की सूचना देश भर के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई, मैंने यह विचार प्रकट किया, तो उनमें से एक बोल उठा, "बहुत सुन्दर। परन्तु वह ऐसा करते क्यों नहीं ?"

आयुर्वेदिक पद्धति

आयुर्वेदिक चिकित्सा की सैद्धान्तिक प्रवृत्ति रोगी को स्थायी लाभ की ओर ले जाती है क्योंकि मूलतः आयुर्वेद रोगी की क्षमता को ही बढ़ाता है।

शोपनहॉयर के शल्यक

कितनी ही बार रोगी यह असन्तोष प्रकट करते हैं कि "यदि मैं एफ़िड्रीन लेता हूँ तो मुझे बहुत क्षीणता और अवसाद का अनुभव होता है, नहीं लेता तो श्वास का वेग कष्ट देता है—मैं निद्राजनक टिकिया अब और अधिक सहन नहीं कर सकता परन्तु नींद न आना भी परम भयावह है—मैं शूल सहन नहीं कर सकता, जो वेदनान्तक टिकियां शूल हरती हैं उनकी प्रतिक्रिया भी अब असह्य होती जा रही है।" इत्यादि। जर्मन शास्त्रज्ञ शोपनहॉयर ने दो शल्यकों (सेहों) का वर्णन किया है जो शीतकाल में असह्य शीत पड़ने पर एक दूसरे को गर्मी पहुंचाने के लिए जब साथ लगते थे तो उन्हें एक दूसरे के कांटे चुभने से वेदना होती थी, पृथक् होते थे तो शीत से तड़पते थे—उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि डाक्टरी औषध और रोगी का भी शोपनहॉयर के शल्यकों वाला ही सम्बन्ध बनता जा रहा है। एक ऐसी प्रणाली जिसकी प्रत्येक महत्वपूर्ण औषध गम्भीर प्रतिक्रियाएं उत्पन्न कर सकती है जो स्वयं मौलिक रोग से भी अधिक सावधानता पूर्ण और कठिन चिकित्सा-सुश्रूषा मांगती है, भारत के अगणित ग्रामीणों के लिए पसन्द की चिकित्सा पद्धति नहीं बन सकती।

भावी प्रवृत्तियाँ-गात्रनाशक रोग

आज हम दो व्याधि-युगों के संधि-प्रकाश बल्कि संधि-अन्धकार में रह रहे हैं। हम

औपसर्गिक रागों के युग से निकल रहे हैं और शरीरावयव-नाशक रोगों के युग में प्रवेश कर रहे हैं। तीव्र विष, जो कीटाणुओं को अविलंब मार सकते हैं, शरीरतंतुओं की रोग-रोधक शक्ति को निरंतर नष्ट कर रहे हैं और शरीरावयवों की जरावर्द्धक क्रियाओं की खुली सहायता कर रहे हैं। जहाँ रोगबाधक अवयवशक्ति गिरती जा रही है वहां उन कीटाणुओं की वृद्धि होती जा रही है जो एण्टीबायॉटिक विषों से नहीं मरते। वेदनाहर औषधों का प्रयोग प्रति दिन बढ़ रहा है और वेदना सहन करने की क्षमता बुरी तरह कम हो रही है। जहां आंकड़ों के अनुसार सामान्य आयुकाल बढ़ गया है वहां विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ पूर्ण आयु भोग वाले मनुष्यों की संख्या आनुपातिक वृद्धि के बजाय ह्रास की ओर जा रही है।[*]

यह प्रायः देखा जाता है कि डाक्टर तीव्र कीटाणुनाशक द्रव्यों के अत्यधिक प्रयोग के विरुद्ध भाषण देते हैं और वापिस घर आकर उन्हीं द्रव्यों का प्रभूत मात्रा में प्रयोग करते हैं। साधारण और निरापद औषधों का ऐलोपैथी में लोप ही होता जा रहा है। जनता की अवस्था भयंकर होती जा रही है—कुछ शिरः शूल, कुछ खांसी हुई, अथवा थोड़ा ज्वर या प्रतिश्याय हुआ और गया रोगी के पेट में कोई तीव्र एण्टिबायॉटिक या कीटाणुनाशक विष। रोगी सीधा नाड़ी क्षोभ के गर्त में जा गिरता है। खिन्नमनस्कता, नाड़ी दौर्बल्य, मनोविकृति तथा अन्य मानसिक रोगों की संख्या चिन्ताजनक वृद्धि पर है। अमेरिका में सरकारी परिगणना के अनुसार, इन रोगों द्वारा पीड़ितों की संख्या इतर रोगों द्वारा पीड़ितों की सम्मिलित संख्या से अधिक हो गई है। शरीर के प्रधान आशय, वृक्क यकृत् रक्तवाहिनियाँ और नाडियां जीर्ण हो रही हैं। सहृदय व्यक्तियों को छोड़िये, "हृदयहीन" व्यक्तियों की मृत्युएं भी हृदय की धड़कन बंद होने से हो रही हैं।

वही पुरानी क्षमता

ग्रामीण को तो (कीटाणुनाशक स्थान-पर) वही पुरानी रोगक्षमता दीजिए जिसकी शरण आज नहीं तो कल "वैज्ञानिक" संसार को भी लेनी ही पड़ेगी। सल्फोनामाइड, सैलिसिलेट और बारबिट्यूरेट औषधों से जनता का पीछा छुड़वाइये, उसे साधारण वनपुष्पादि क्वाथ, च्यवनप्राश, एलादि वटी, लक्ष्मीविलास रस तथा अन्य असंख्य ऐसी ही आयुर्वेदिक औषधें दीजिये जो अशिक्षित से अशिक्षित ग्रामीण के हाथों में भी नवीनतर

---

[*] एक साधारण भारतीय जिले के निवासी शतोत्तर आयुवाले व्यक्तियों का वर्णन करते हुए "टाइम्स आफ इण्डिया न्यूज़ सर्विस" ने निम्न सूचना भेजी :—

"सांगली में ५३ मनुष्यों और स्त्रियों ने एक शताब्दी को व्यतीत होते देखा है। इनमें से सताइस की आयु ११२ वर्ष है, तीन की ११०, एक की १०६, तीन की १०५, एक की १०३ और एक की १०२। सत्रह ने इन्हीं दिनों अपनी १०० वीं वर्षगांठ मनाई है। यह सूचना सरकारी जनगणना से ली गई है।"—टाइम्स आफ़ इंडिया १२ सितंबर, १९५३।

तुल्य जनसंख्या तथा तुल्य क्षेत्र का संसार का कोई भी सर्वोत्कृष्ट "वैज्ञानिक" चिकित्सा-सेवाप्राप्त स्थल दीर्घायु के इन आँकड़ों के आस पास भी नहीं पहुंच सकेगा।

चिकित्सा मांगने वाली नवीन व्याधियां उत्पन्न न कर सकें। यदि भारतीय ग्रामीण को शारीरिक और मानसिक व्याधियों के प्रति प्रबल क्षमता प्रदान करनी है तो उसे स्वस्थ शरीर के लिए आयुर्वेदिक औषध और स्वस्थ मन के लिए आयुर्वेदिक मनोविज्ञान प्राप्त होने चाहिएं।

चिकित्सा और दर्शन

जो चिकित्सक रोगी को दार्शनिक दृष्टिकोण प्रदान करता है वह आमाशय व्रण और ग्रहणीव्रणों की रोक में उस शल्य वैद्य की अपेक्षा अधिक सहायक है जो उनका शल्यक्रिया द्वारा उत्पाटन करता है। अन्य भाव समान रहते हुए, उनके पुनराक्रमण की रोक में भी सर्जन की अपेक्षा दार्शनिक विद्वान का स्थान अधिक ऊँचा है।

ऐलोपैथिक मतभेदों की दुर्गति

आधुनिक वैज्ञानिक स्वास्थ्य और रोग के विषय में "आयुर्वेद का दार्शनिक दृष्टिकोण" तथा 'चिकित्सा में मन और शरीर का सम्बन्ध" इत्यादि भावों का देर तक हास्य करते रहे। "विज्ञान" की कुछ वृद्धि हुई तो उस हास्य की दुर्गतिपूर्ण मृत्यु हो गई। तो भी ऐलोपैथिक सम्मेलनों में आयुर्वेद पर निरन्तर आक्षेप करने की प्रथा वंद नहीं हुई। वे कहते हैं कि ऐलोपैथी की वास्तविक उन्नति तो गत दस बीस वर्षों में ही हुई है। परन्तु इसके समर्थक तो ३० वर्ष पहले भी आज से कम उद्दण्ड नहीं थे। उस समय कर्नल हार्पर नैल्सन ने, एंग्लो इंडियन समाचार पत्र, "सिविल एण्ड मिलिटरी गजट" द्वारा लाहौर की नगरपालिका पर आयुर्वेदिक और यूनानी कालिजों को सहायता देने के "अपराध" पर कटु आक्रमण किया था। उससे भी पहले, १९ वीं शताब्दि की ८० वें दशाब्दों में, उस समय के कलकत्ता मैडिकल कालिज के प्रिंसिपल, सर हैवलाक चार्ल्स ने शोथरोग और जलोदर में लवण-वर्जित पथ्य देने की "मूर्खता" पर कड़ी आलोचना की। उसके एक दो ही वर्ष पश्चात् पैरिस के विडाल और जावाल ने अपनी खोज द्वारा आर्द्र शोथ में लवण के मारक दुर्गुण को सिद्ध कर आयुर्वेदिक सिद्धांत की पुष्टि की। यदि ऐलोपैथी कुछ देर पहले आयुर्वेद का अनुकरण करती तो डाक्टर असंख्य अनावश्यक मृत्युओं के अपराधी न बनते। साथ ही यदि वैद्य मिथ्या विज्ञान के इस सिंहनाद को, कि आयुर्वेद को "वैज्ञानिक" "दृष्टिकोण ग्रहण करना चाहिये, सुन बैठते तो कितने ही साध्य रोगी मौत के घाट उतारे जाते। आयुर्वेद के साथ ऐलोपैथी के जो तीव्र मतभेद समय समय पर होते रहे और उनका अन्त जिस प्रकार सदा ही आयुर्वेदिक सिद्धान्त की विजय के साथ होता रहा उनका इतिहास मनोरंजक होने के अतिरिक्त उन शिक्षितों के पुनः शिक्षण में बहुत सहायक होगा जो ऐलोपैथिक विज्ञान की कसौटी पर आयुर्वेद के "प्रमाणीकरण" की मांग करते रहते हैं। गंभीर और बुद्धिमान ऐलोपैथ ऐसी मांग करने का कभी साहस नहीं करते। न्यूजर्सी (अमेरिका) के डाक्टर वाल्टर एस. किपनिस, एम. डी., पी. एच. डी., लिखते हैं :—

> "ऐलोपैथी को एक दूसरी चिकित्सा-प्रणाली के लिये योग्यता मापक कैसे बनाया जा सकता है यह मेरी समझ से बाहर है। इसने अपने चिकित्सामार्ग तथा औषध इतनी बार परिवर्तित किए

जेठ २०१२

हैं कि इससे मुझे अपने देश की स्त्रियों के फ्राकों का नीचे वाला किनारा याद आ जाता है। आज का मदपूर्ण दावा अतीत कल की अपूर्ण आशामात्र रह जाता है। यद्यपि आशा करना अपराध नहीं परन्तु दावा तो प्रायः झूठा ही सिद्ध होता है।"

एक मुंह दो बात

डाक्टर एस० सी० सैन ने अपने लखनऊ के भाषण में चिकित्सा सेवा का निर्णय करने के लिए जनमतगणना की मांग की है। इसी सज्जन ने, नैशनल प्लैनिंग कमिशन की स्वास्थ्य परिषद् में भाषण देते हुए यह शब्द कहे थे कि स्वास्थ्य मन्त्रियों का आयुर्वेद में विश्वास नहीं परन्तु जनता को प्रसन्न करके वोट लेने के लिए वह इसका समर्थन करते हैं।

ग्रामीण का दृढ़ विश्वास

१९३९ में डाक्टर ए० लक्ष्मीपति, एम० बी०, सी० एम०, ने मेरा आन्ध्र दौरा संगठित किया। मैंने देखा कि आयुर्वेदिक चिकित्सा प्राप्त करने के लिए आन्ध्र के ग्रामीण अगणित संख्या में सत्याग्रह करने के लिये भी तैयार थे। यद्यपि वह तेलगू के अतिरिक्त दूसरी भाषा नहीं समझते थे और तेलगू से अनभिज्ञ होने के कारण मैं उनसे एक दुभाषिए की सहायता से ही बातचीत कर सकता था तो भी निर्धारित कार्यक्रम के अतिरिक्त नवीन ग्रामों को कार्यक्रम में स्थान देने की मांग इतनी बढ़ गई थी कि कभी कभी तो उन सब का संतोष करने के लिए प्रातः ३ बजे से कार्य आरम्भ करना पड़ता था और कभी रात के २ बजे तक कार्य समाप्त नहीं होता था तथा ऐसे असाधारण समय पर भी सभा स्थानों पर भीड़ संभलती नहीं थी। यह घटना पुरानी हो गई। इस बीच में केन्द्र ने करोड़ों रुपया व्यय करके सिनेमा फिल्मों, रेडियो, समाचारपत्रों तथा भाषणों द्वारा भीषण एकपक्षीय ऐलोपैथिक आन्दोलन प्रायः युद्धस्तर पर ही किया। स्वास्थ्य क्षेत्र में यह "आत्यंतिक मस्तिष्क प्रक्षालन" किये जाने पर भी ग्रामीण दृढ़तापूर्वक हमारे साथ हैं ऐसा मेरा विश्वास है। और यदि सरकार प्रति दसवर्षीय ऐलोपैथिक आन्दोलन के बदले केवल एक वर्ष आयुर्वेदीय आन्दोलन हमें करने दे, जहां उस पर दस करोड़ व्यय करती है वहाँ एक करोड़ आयुर्वेद पर व्यय हो जाए जहाँ पार्लियामेंट में १० असत्य ऐलोपैथी के पक्ष में बोले जाते हैं वहाँ एक सत्य ही आयुर्वेद के पक्ष में बोल दिया जाए तो निश्चित रूप से भारत के ग्रामीण ऐसे व्यक्ति को उठाकर बाहर फेंक देंगे जो उनसे आयुर्वेद के विरुद्ध मत मांगने आएगा।

भविष्य की चिकित्सा आयुर्वेद

जब यह निश्चित है कि भविष्य मनुष्य को शरीरतंतुनाशक व्याधियों की ओर ले जा रहा है और आयुर्वेद इसी नाश के प्रति शरीर की क्षमता प्रदान करने में सर्वोत्कृष्ट विज्ञान है तो यह स्पष्ट है कि संसार की भावी चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद ही है। जिस प्रकार एण्टीबायोटिक कीटाणुमारक द्रव्य तीव्रविषसहिष्णु कीटाणु-समूहों को उत्पन्न कर रहे हैं उसी प्रकार आयुर्वेद कीटाणुसहिष्णु मनुष्य समूहों को उत्पन्न कर सकता है। ऐलोपैथिक चिकित्सा के भविष्य पर अग्रणी ऐलोपैथ निश्चिन्त नहीं बैठे हैं। ऐलोपैथी की कीटाणु का वर्गीकरण करके उसे मारने की पद्धति मनुष्योंका वर्गी-

करण करके उनकी रक्षा करने की आयुर्वेदिक पद्धति के आगे पराजित होगी।

वैज्ञानिक शैल्डन का कार्य

मनुष्यों के वर्गीकरण का कार्य हार्वर्ड विश्वविद्यालय में आरम्भ हो चुका है। अग्रणी विद्वान् कहते हैं—

> “क्योंकि हमें अधिक संख्याक व्यक्तियों में मौलिक क्रिया अवयवों का ऐसा वैयक्तिक आकारसमूह मिलता है जिसका स्पष्टीकरण स्थिर सैद्धान्तिक स्तरों पर हो सकता है अतएव हम यह मान सकते हैं कि (मानुषिक) प्रकृति का विश्लेषण संभव भी है और उपयुक्त भी।” °

आयुर्वेद का यह दृष्टिकोण जर्नल आफ अमेरिकन मैडीकल एसोसिएंशन में फीज़र द्वारा नियमित रूप से प्रकाशित होने वाली “स्पैक्ट्रम” नामक लेखमाला में भी दिया गया है। लेखक ने आयुर्वेदिक दृष्टिकोण का समर्थन किया है और डाक्टरों को इसका अध्ययन करने की सलाह दी है। S

क्षमता की उपस्थिति में कसाईपन

ब्रिटिश गवर्नमैंट ने लण्डन से एक सूचीपत्र प्रकाशित किया है जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य के आदिवासी जातियों की ‘चिकित्सा’ को चित्रित करने वाली प्रदर्शित वस्तुओं की सूची उपलब्ध है। प्रदर्शनी में एक चाकू भी था जिससे कि एक हब्शी ने अपनी पत्नी का पेट काट कर बच्चे को जीवित निकाल लिया था। कटे हुए पेट को रेशम के धागे से सीकर ऊपर एक बड़ा शौक्तिक औंधा रख कर ऊपर से पट्टी बांध दी गई थी। ११ वें दिन उसने अपनी स्त्री को काम पर भेज दिया। बच्चा सर्वथा स्वस्थ निकला और जीवित रहा।

क्षमता के अभाव में शल्यक्रिया

जब मैं इस मनोरंजक पुस्तक का अध्ययन कर रहा था समाचार पत्रों में सूचना प्रकाशित हुई कि केन्द्रीय सरकार के एक ५० वर्षीय उपमंत्री का कलकत्ता जनरल हास्पीटल में शल्यक्रिया द्वारा उपान्त्र निकालते समय देहान्त हो गया।

हब्शी के पास साधारण घरेलू साधन थे—एक चाकू, रेशम का धागा और सुई।

° प्रकृति के भेद, लेखक—डब्ल्यू, एच० शैल्डन, पी० एच० डी०, एम० डी०।

S “जब पाश्चात्य विज्ञान की लाखों जटिल जांतव औषधों के बीच में जाकर एक सर्पगन्धा जैसी विदेशी औषध इस प्रकार (उच्च) स्थान प्राप्त कर लेती है तब प्रतीत होता है कि प्राचीन सभ्यताएँ अपने वैज्ञानिक तत्व अच्छी प्रकार समझती थीं। भारतवर्ष के लोग करते क्या हैं? आयुर्वेदिक चिकित्सा में अन्य क्या क्या ज्ञानकोष छिपे हुए हैं?……

“इस (आयुर्वेद) के अनुसार कीटाणु व्याधि के कारण पीछे हैं, व्याधि उनका कारण पहले है, क्योंकि यदि रोग-क्षमता प्राकृतिक परिमाण में विद्यमान होती तो कीटाणूपसर्ग निष्फल हो जाता……।

“अतएव आयुर्वेदिक चिकित्सक प्रत्येक व्याधि का नाम ढूंढ़ने का प्रयत्न करने की अदूरदर्शी नीति को पसन्द नहीं करता, क्योंकि, जैसे कि आल इण्डिया आयुर्वेदिक कांग्रेस के अध्यक्ष, पण्डित शिवशर्मा ने कहा है, “रोग पर अत्यधिक ध्यान देते हुए ऐलोपैथी रोगी को दृष्टि से ओझल कर देती है”—फ़ीज़र स्पैक्ट्रम—जर्नल आफ अमेरिकन मैडीकल एसोसिएशन, जनवरी २२, १९५५।

इनके साथ जो सफलता उसने प्राप्त की उस पर किसको विस्मय नहीं होगा। इसके विपरीत उन सर्जनों की असफलता भी, जिनको नवीनतम यंत्रशस्त्र, कीटाणुनाशक द्रव्य, संज्ञानाशक औषध, एण्टिवायाटिक्स, उत्तेजक औषध तथा आक्सीजन टैण्ट जैसे सहायक उपकरण प्राप्त थे, कम विस्मयजनक नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि मेरे हृदय में आधुनिक सर्जरी की महान तथा आश्चर्यजनक उन्नति के प्रति श्रद्धा नहीं। यदि मेरे उपांत्र में पूययुक्तशोथ हो और मैं उसे निकलवाने का निश्चय करूँ तो निःसन्देह मैं उस हब्शी के पास न जाकर कलकत्ता जनरल हास्पीटल में ही जाऊंगा, परन्तु यह दो परस्पर विरोधी उदाहरण तो केवल इसलिए दिए गए हैं कि स्वास्थ्य और व्याधि में वैयक्तिक क्षमता का महत्व यह बहुत स्पष्टता से व्यक्त करते हैं। हब्शी स्त्री के विषरहित शरीरावयव आघात तथा कीटाणूपसर्ग दोनों को बिना किसी बाह्य सहायता के स्वयं सहन कर गए क्योंकि वह उन विस्तृत चिकित्सा सेवाओं से मुक्त थी जिनका अदृश्य गुप्त प्रहार आधुनिकों के शरीरों पर निरन्तर होता रहता है।

उपयुक्त स्वास्थ्य कार्यक्रम

देश के लिए यह हितकर होगा कि आयुर्वेदिक चिकित्सा साहाय्य का संगठन अविलम्ब किया जाए। सरकारों को यह ध्यान भी रखना चाहिए कि संगठन ऐसा हो कि इसमें ग्रामीण वैद्य के सुप्रयोग और पुनः शिक्षण का स्थान अवश्य हो, सर्वथा निरापद तथा रोगप्रतिबन्धिकी शक्तिवर्द्धक जड़ी बूटियों का इसकी परवाह न करके कि वह किस ढपति की हैं प्रचार किया जाये, जंगमइकाइयों जिनका प्राथमिक प्रयोजन ग्रामों में फिर कर रोगियों की सेवा करना तथा ग्राम वैद्यों का योग्यतास्तर ऊँचा करना है, का प्रयोग ग्रामीणों में स्वस्थवृत्त का प्रचार करने के लिए भी किया जाए।

शिक्षा

प्लैनिंग कमीशन का आदेश

प्रथम पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेदिक शिक्षा के विषय पर निम्नलिखित स्पष्ट आदेश दिया गया है:—

> यह स्पष्ट है कि (प्रचलित) पाठ्यक्रम के आयुर्वेदिक अंश को इसी शास्त्र के ही विशेषज्ञों द्वारा बड़े प्रमाण में दृढ़ और परिवर्द्धित करना आवश्यक है। न्यूनतम प्रवेश योग्यता में ऐसी सामग्री अवश्य रहनी चाहिए जिससे आयुर्वेद पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त हो सके।

सर्वोच्च आदेश की अवहेलना

ऐसे स्पष्ट शब्दोंमें आयुर्वेद के पूर्ण ज्ञान पर आग्रह करने का एकमात्र कारण यही था कि प्लैनिंग कमीशन पर विविध प्रकार के तत्व विद्यमान रहते हुए भी वह आयुर्वेद शिक्षा को प्रचलित ढंग के चलाने की अनुपयुक्तता पर पूर्णतया सर्वसम्मत थे। प्लैनिंग कमीशन इस समय यह पड़ताल कर रहा है कि कौन-कौन सी योजनाएं अपूर्ण रह गयी हैं तथा उनके पूरे न होने के कारण क्या हैं। इसी संबंध में उन्हें यह जांच भी अवश्य कर लेनी चाहिए कि कमीशन द्वारा निर्धारित शिक्षा नीति अभी तक क्यों कार्यान्वित नहीं की गई।

---

*प्रथम पंचवर्षीय योजना : जनता संस्करण : पृष्ठ २१४-२१५, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, देहली, ८।

प्रचलित शिक्षा पद्धति

विविध राज्यों में सर्कारी आयुर्वेदिक कालिजों पर सामान्य दृष्टिपात निम्नलिखित मुख्य समानताएं दिखाएगा:—

१. संस्थाएं ऐलोपैथ चला रहे हैं। प्रत्येक पग पर प्रथम, मध्यम और अन्तिम अधिकार उन्हीं के हाथ में हैं।

२. आयुर्वेदिक अध्यापकों की स्थिति दयनीय है। कुछ अध्यापक इससे असंतुष्ट हैं। कुछ असंतोष को त्याग कर अपना कल्याण इसी में देखते हैं कि ऐलोपैथों का सक्रिय समर्थन करने तथा विद्यार्थियों को ऐलोपैथी का भक्त बनाकर अपने ऐलोपैथिक स्वामियों के कृपापात्र बनने का प्रयत्न करें।

३. पाठ्यक्रम निरंतर बदलता रहता है।

४. स्नातक का विश्वास आयुर्वेदमें बहुत कम होता है। आयुर्वेद चिकित्सा करने की योग्यता और भी कम होती है। उसका व्यवहार डाक्टरों जैसा ही होता है और वह चाहता है कि जनता उसे डाक्टर ही समझे। वास्तव में न तो वह उच्च श्रेणी का वैद्य ही बनता है न डाक्टर ही।

ऐलोपैथी प्रधान पाठ्यक्रम, तज्जन्य घटनाएँ

आयुर्वेद शिक्षा का मुख्य सिद्धान्त अंधेरगर्दी बना हुआ है। संभ्रान्ति के कुछ ताजे उदाहरण नीचे देखिए :—

उत्तर प्रदेश के एक विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम सुधार के लिए उच्च स्तर पर निर्मित एक समिति को निम्नलिखित सूचना प्राप्त हुई:—

कुछ विद्यार्थियों ने विश्वविद्यालय की आयुर्वेदिक श्रेणी में अध्ययन आरम्भ किया। षड्यंत्र और अन्तर्ध्वंस ने आयुर्वेदिक श्रेणियां तोड़ डालीं। क्योंकि विद्यार्थियों को आयुर्वेद के नाम पर प्रायः डाक्टरी ही पढ़ाई गई थी। उन्हें मैडिकल कालेज में प्रविष्ट कर लिया गया और वह विश्वविद्यालय से एम. बी. बी. एस. होकर निकले। इस काण्ड के पश्चात् विश्वविद्यालय ने एक नवीन गृह में स्वतंत्र आयुर्वेदिक कालिज खोल दिया। यहां दो वर्ष पढ़ने के अनंतर विद्यार्थियों ने हड़ताल कर दी। हड़ताल का कारण विद्यार्थियों को उतनी अधिक ऐलोपैथी न पढ़ाये जाने का भय था जितनी पढ़ाने की आशा प्रविष्ट करने के समय उन्हें दिलाई गई थी। वह मुख्यतः ऐलोपैथी पढ़ने के लिए ही आयुर्वेदिक कालिज में प्रविष्ट हुए थे। जब विश्वविद्यालय तथा सरकार के डाक्टर न्याय करने के लिए भी तैयार हुए और पाठ्यक्रम तैयार करने का पूर्ण अधिकार वैद्यसमाज को देकर अलग हो गए तो उस राज्य के वैद्यप्रतिनिधियों ने स्वयं ही ऐलोपैथी का बहुत बड़ा अनावश्यक अंश पाठ्यक्रम में रखने का निश्चय कर लिया। उनकी कठिनाई इस भय में स्पष्ट हुई कि इतनी अधिक डाक्टरी न रखी गई तो 'विद्यार्थियों की हड़ताल बंद नहीं होगी और विद्यालय सदा के लिए बंद हो जायगा।'

उसी राज्य के एक दूसरे विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालिज के छात्रों को यह कह कर डाक्टरी के पक्ष में भड़काया जा रहा था कि यदि वह अधिक डाक्टरी पढ़ लेंगे तो विदेशी मैडिकल संस्थाओं में प्रवेश पाकर उच्च ऐलोपैथ बनने का मार्ग उनके लिए खुला रहेगा। यह नवयुवक इस भ्रांति का शिकार उस समय बन रहे थे जब कि उसी

राज्य की मैडिकल कौंसिल ने एक ऐसे वैद्य पर जो पाश्चात्य मैडिकल कालिजों की उच्च उपाधियां लेकर भारतवर्ष वापिस आया था, सुप्रीम कोर्ट (देश के उच्चतम न्यायालय) में उन उपाधियों का प्रयोग न करने के लिए अभियोग चलाया हुआ था। यद्यपि इस अभियोग में लखनऊ हाईकोर्ट में मेडिकल कौंसिल एक बार हार भी चुकी थी।

मुझे पोद्दार आयुर्वेदिक कालिज के प्रिंसिपल तथा कामगार स्वास्थ्य बीमा योजना समिति के एक प्रतिनिधि के साथ कुछ आयुर्वेदिक औषधालयों का निरीक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि यह स्नातक कदाचित् ही अपने रोगियों की आयुर्वेदिक चिकित्सा करते हैं। इनमें कुछ तो शत-प्रतिशत छोटी श्रेणी के ऐलोपैथ हैं। जब मैंने इस परिस्थिति की शिकायत बंबई सरकार के एक उच्चाधिकारी से की तो तुरंत उत्तर मिला, 'मैं जानता हूँ यह डी. ए. एस. एफ. उपाधि के विरुद्ध आन्दोलन है।" यह उत्तर दुःखद है। यह वेदना और भी अधिक होती है जब वे व्यक्ति जिनका हम आदर करते हैं सूचना को निर्लेप होकर ग्रहण करने के स्थान पर एलोपैथनिर्मित सिंहनादों का समर्थन करते हुए उन्हें दोहराते हैं।

परिवर्तन के प्रचण्ड उत्पात में आयुर्वेदिक विद्यार्थी अनाथ हो गए हैं। आत्म सेवी स्वार्थी तत्वों के षड्यंत्रों से उनकी रक्षा अवश्य हो जानी चाहिए। आयुर्वेद विभागों में दृढ़ता से जमे हुए ऐलोपैथ, उनमें विशेष दिलचस्पी लेने वाले पाठ्यग्रंथ लेखक, धनाढ्य और चालाक प्रकाशक, यह तत्व इतने बलवान हैं और इतनी पहुँच रखते हैं कि विद्यार्थियों के शुभचिन्तक न तो द्रव्य में, न कलाकौशल में इन से टक्कर ले सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन लोगों में कुछ निस्वार्थी और सेवाभावी सज्जन भी विद्यमान हैं, परन्तु प्रकृति का यह नियम है कि स्वार्थी मनुष्य छल और कलह में लिप्त होकर सुसंगठित होकर मुकाबला करते हैं और निस्वार्थी व्यक्ति, यदि किसी को विशेष ही लगन न हो (जो प्रायः नहीं होती) तंग होकर संघर्ष का क्षेत्र त्याग देते हैं।

समस्या पूर्ति का प्रयत्न

कुछ भी हो, आयुर्वेदिक शिक्षा की समस्या को अविलंब सुलझाना ही होगा। इस विषय में निस्वार्थ मतभेद भी विद्यमान हैं। भिन्न दृष्टिकोणों का समाधान कठिन प्रतीत होता है। झांसी आयुर्वेद विश्वविद्यालय के प्रोवाइसचांसलर डाक्टर बलदेव शर्मा तथा बम्बई राज्य के आयुर्वेद विभाग के निर्देशक पंडित इरिदत्त शास्त्री के साथ बैठकर बनारस विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालिज की पुनस्संगठन समिति में रखने के लिए मैंने एक पाठ्यक्रम तैयार करवाया था। यही पाठ्यक्रम विश्वविद्यालय के कुलपति सर सी. पी. रामास्वामी आयर, जिन्होंने इस समिति का निर्माण किया था, को मताधिक्य द्वारा भेजा गया। केवल दो सदस्यों ने इसका विरोध किया अन्यथा श्री यादव जी त्रिकम जी के अतिरिक्त सभी सदस्यों ने इस पर हस्ताक्षर किये और श्री आचार्य जी ने भी इस अंश में इसका समर्थन किया कि जब तक उनके सुझाव के अनुसार पाठ्यक्रम और अध्यापक तैयार नहीं हो जाते तब तक के लिए यही पाठ्यक्रम स्वीकार कर लिया जाए। क्योंकि उनकी तैयारी का समय भविष्य की गोद में है अत-

एव वर्तमान आवश्यकतापूर्ति के लिए उनका समर्थन भी क्रिया रूप में पूर्ण ही प्राप्त हुआ ।

प्रस्तावित पाठ्यक्रम के लाभ

प्रस्तावित पाठ्यक्रम प्लैनिंग कमीशन के आदेश का सीधा पूरक है । पाठ्यक्रम बम्बई में लिखा गया । वहां से सैकड़ों मील दूर बनारस में छपा, लेखकों की अनुपस्थिति में । वह बुरी तरह अशुद्ध छपा । उसकी अशुद्धियाँ दूर करके उसकी एक कापी प्रतिनिधियों के निरीक्षण के लिए प्रदर्शनी में रखी गई है । इस की मुख्य विशेषताएं यह हैं:—

१. यह क्रम प्रथम ३॥ वर्ष में ठोस आयुर्वेदिक शिक्षा देकर विद्यार्थी के मस्तिष्क की उस भ्रान्ति से रक्षा करता है जो एक ही समय में दो ऐसे विभिन्न अध्ययनों से उत्पन्न हो जाती है, जो कई स्थलों पर जोड़ नहीं खाते और जिनके अध्यापकों का पारस्परिक मतभेद अध्याप्य विषयों के सैद्धान्तिक मतभेद से भी अधिक उग्र रूप धारण कर रखता है ।

२. चतुर्थ अर्थात् अन्तिम वर्ष के ६ मास विद्यार्थी के लिए सुरक्षित हैं जिनमें वह ऐलोपैथी के शल्य, प्रसूति, सूचीवेध आदि सम्बंधी न्यूनतम आवश्यक व्यवहारिक ज्ञान से परिचय प्राप्त कर ले ।

सामान्य प्राथमिक इकाई

इस पाठ्यक्रम का यह लाभ होगा कि विभिन्न दृष्टिकोण रखने वाले सभी आयुर्वेदिक कालिज तथा विश्वविद्यालय भी इसे आयुर्वेद शिक्षा की सर्वसम्मत प्रारंभिक इकाई के रूप में स्वीकार कर सकेंगे । शुद्ध आयुर्वेदवादी अन्तिम ६ मास, जिन्हें आवश्यकतानुसार १॥ वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, आयुर्वेद की उच्चतर शिक्षा देने में व्यय कर सकते हैं । अधिक ऐलोपैथी की शिक्षा के पक्षपाती पिछले १॥ वर्ष ऐलोपैथी पढ़ाकर पंचवर्षीय पाठ्यक्रम बनाकर अपनी इच्छा पूर्ति कर सकते हैं । स्नातक एक अच्छा वैद्य पहले होगा, अन्य कुछ पीछे, चाहे वह शेष पूरी आयु ही ऐलोपैथी के अध्ययन में क्यों न लगा दे उसकी प्रचलित संभ्रान्ति और किंकर्तव्यविमूढ़ता नष्ट हो जाएगी । वह वास्तविक आयुर्वेदिक पद्धति में निपुण होगा और रोगी को वह वस्तु दे सकेगा जिसके लिए डाक्टरों से भागकर रोगी उसके पास आता है, अर्थात् आयुर्वेदिक चिकित्सा ।

यह प्रश्न उठता है कि प्रारंभिक विज्ञान का सन्निवेश कहां किया जाए । यहां यह जान लेना आवश्यक है कि तथाकथित प्रारंभिक विज्ञानों का अधिकांश ऐलोपैथिक चिकित्सा तक के लिए आवश्यक नहीं, आयुर्वेद के अध्ययन के लिए तो क्या होगा । लखनऊ विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर डा० राधाकमल मुखर्जी द्वारा बुलाई गई एक समिति में मैंने युक्त प्रान्त के कुछ अग्रणी डाक्टरों को इस विषय में अपने से सहमत पाया । निम्नलिखित उद्धरण यह प्रमाणित करेंगे कि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के उच्चतम डाक्टर भी इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं :—

डा० जे. टी. बैलनिकल, जिनकी आत्मकथा, "स्पैन आफ टाइम" दो वर्ष हुए संसार भर में प्रसिद्ध हुई, और जो सर फ़िलिप गिब्स द्वारा "आध्यात्मिकता और वीरता की आश्चर्यजनक कृति" कही गई, स्वीकार करते हैं:—

> "मैंने २५ वर्ष डाक्टरी व्यवसाय किया है । इस बीच में मुझे कभी भी बॉटनी की आवश्यकता नहीं पड़ी । मेरा

> बाटनी का ज्ञान मेरी उन पाठ्यपुस्तकों के साथही विदा हो गया जिन्हें मैंने उत्तीर्ण छात्रों की सूची में अपना नाम देखते ही बेच दिया ।"

डाक्टर एलैक्सिस कैरल (सर्जरी में नोबल पुरस्कार विजेता) लिखते हैं:—

> " गणित शास्त्र,भौतिकी और रसायनशास्त्र यह आवश्यक विज्ञान हैं, परन्तु जीव-विज्ञान के अनुसंधान में यह प्रारंभिक विज्ञान नहीं हैं ।"

९ मार्च, १९५५ को लेडी हार्डिंग कालिज नई देहली में, एक डाक्टरी पाठ्यक्रम संबंधी चर्चा हुई जिसमें कई भारतीय ऐलोपैथों के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रख्यात पाश्चात्य विशेषज्ञों ने भाग लिया :—

सर सैसिल वैकले, भूतपूर्व अध्यक्ष, रायल कालेज आफ सर्जन्स, इंग्लैंड, डा० हैरल्ड सी. एडवर्ड्स, डा० एम. के. रौज़ेन हाइम, डा० राबर्ट जे. केलर, डा० स्टैन्ले ए. मेज़न, और डाक्टर एम. सी. बैलफ़ौर । कार्य विवरण से कुछ अंश नीचे उद्धृत करता हूं :—

> उन्होंने यह विश्वास प्रगट किया कि स्नातक पूर्व शिक्षण में सर्जरी के लिए छः महीने का शिक्षाक्रम पर्याप्त है । सर्जरी के क्षेत्र में विद्यार्थियों को आंशिक और वैशेषिक ज्ञान पर समय नहीं लगाना चाहिए । सर्जरी की शिक्षा में क्रियात्मक अभ्यास पर ही जोर देना चाहिए । इसके लिए सैद्धान्तिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं ।*

यह स्मरण रखना चाहिए कि वैद्य प्रायः कायचिकित्सक होते हैं शल्यचिकित्सक नहीं । जगद्विख्यात विज्ञानाचार्यों के उपर्युक्त वाक्य उन विद्यार्थियों के सम्बन्ध में कहे गए हैं जिन्हें अपने व्यवसाय में थोड़ी बहुत शल्यक्रिया भी निरंतर करनी पड़ती है । अतएव आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम के अल्प शल्यज्ञान के लिए तो उपरिनिर्दिष्ट ६ मास से भी बहुत कम समय की आवश्यकता होगी ।

व्यय में कमी की आवश्यकता

यहां मैं पाठ्यक्रम निर्माताओं का ध्यान उस निर्दयता की ओर भी आकर्षित करना चाहता हूं जो आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम में बहुत मंहगी ऐलोपैथिक पुस्तकें रखकर वे विद्यार्थी के पिता पर करते हैं। मैंने लन्दन हास्पिटल के सर्जरी के हण्टीरियन प्रोफेसर, डाक्टर कैनेथवाकर की फ़िज़ियालोजी (क्रियाशारीर) पर एक पुस्तक प्रदर्शनी में रखी है । इसका मूल्य १।। रुपया है । इस विषय पर प्रायः २० या ३० रुपया के मूल्य की पुस्तक पाठ्यक्रम में रहती है । मैं चाहता हूं कि आप इस उत्कृष्टपुस्तक को अच्छी प्रकार देखें और विचार करें कि जिन संस्थाओं में आधुनिक प्रारंभिक विज्ञान अनिवार्य है वहां यह पुस्तक क्यों नहीं लग सकती । इस प्रकार प्रायः प्रत्येक विषय पर उच्च कोटि के विद्वानों की लिखी हुई संक्षिप्त और सस्ती उत्तम पुस्तकें प्राप्य हैं परन्तु विद्यार्थियों के संरक्षकों पर भारी बोझ डाला जा रहा है । मैं समझता हूं कि जनता के प्रति आयुर्वेदिक विद्यालयों को वह उदासीनता नहीं दिखानी चाहिए जो मैडिकल कालिज दिखाते हैं, विशेषतया जब ऐलोपैथिक पाठ्यक्रम मुख्य लक्ष्य नहीं।

---

* टाइम्स आफ इण्डिया, बम्बई, मार्च १०, १९५५, पृष्ठ ७.

मैंने आपको उस प्रयत्न की सामान्य रूप-रेखा दिखाई है जिसके द्वारा आयुर्वेदिक शिक्षा में संभ्रांति दूर हो कर स्पष्टता और उपयुक्तता की वृद्धि हो सकती है, विभिन्न विचार-धाराओं का समाधान हो सकता है और प्लैनिंग कमीशन के आदेश की पूर्ति हो सकती है। क्योंकि यह विषय विस्तृत चर्चा के लिए इसी अधिवेशन में पुनः उपस्थित हो रहा है, मुझे यहां इस पर और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं।

आयुर्वेदिक अनुसंधान

स्वाभाविक आशा

आयुर्वेदिक अनुसंधान ही एक ऐसा आयुर्वेदिक कार्य है जिसे अग्रसर करने का केन्द्रीय सरकार दावा करती है। जब हम उन असंख्य और अपरिचित आंकड़ों को देखते हैं जो ऐलोपैथी पर केन्द्रीय व्यय के द्योतक हैं और यह भी ध्यान में रखते हैं कि आयुर्वेदिक शिक्षा तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा साहाय्य के प्रसार या उन्नति पर केन्द्र ने एक पाई भी कभी व्यय नहीं की तो यह आशा होना स्वाभाविक है कि एक मात्र आयुर्वेदिक अनुसंधान जिस पर केन्द्र द्रव्य व्यय करने का दावा करता है, अत्यन्त सुचारू रूप से सुसंगठित होगा और उसके लिये प्रभूत धन व्यय हो रहा होगा।

विचित्र विशेषता

परन्तु जो आयुर्वेदानुसंधान कार्य केन्द्र और कुछ राज्य चला रहे हैं उसकी एक अत्यन्त असाधारण और वैचित्र्यपूर्ण विशेषता है-वह **आयुर्वेदानुसंधान ही नहीं।**

अनुसंधान-सिद्धान्त

अनुसंधान के साधारण सिद्धान्त निम्नलिखित हैं।

१. अनुसंधान विषय के विशेषज्ञ ही करते हैं।

२. यदि किसी विषयानभिज्ञ को निमंत्रित भी किया जाता है वह तभी जब वह अपने कार्य क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त कर चुकता है।

३. अनुसंधानकर्ता को निरन्तर प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलते हैं जिससे वह अपने कार्य में पूर्णतया प्रयत्नवान रहता है।

४. उसकी आजीविका का भविष्य सुरक्षित रखा जाता है जिससे उसका मन कार्य से हट कर द्रव्योपार्जन आदि के विचारों में नहीं जाता।

५. अनुसंधान सम्बन्धी प्रत्येक कथन का आधार सत्य पर ही होता है।

६. अनुसंधान उस विज्ञान की उन्नति के लिये किया जाता है जो अनुसंधान का विषय हो।

यह एक मनोरंजक सत्य है कि देश के सरकारी आयुर्वेदिक अनुसंधान में उपर्युक्त छः नियम सर्वथा उलटा कर लागू किये गये हैं।

१. प्रायः जो ऐलोपैथ आयुर्वेदानुसंधान विभागों के स्वामी हैं वे **आयुर्वेदानभिज्ञ** ही नहीं, इस पर एक पाई भी व्यय करने के **कट्टर विरोधी हैं।**

२. यह कहा जा सकता है कि क्योंकि ऐलोपैथी ने अनुसंधान द्वारा आश्चर्यजनक

औषध और उससे भी अधिक आश्चर्यजनक शल्यक्रियाओं को ढूंढ़ निकाला है अतएव उस क्षेत्र के विशेषज्ञ को आयुर्वेदानुसंधान के लिए निमंत्रित करके उसकी वुद्धि से लाभ उठाना चाहिये । परन्तु प्रथम तो जिन लोगों ने आश्चर्यजनक खोजें की हैं वह भारतवर्ष की प्रयोगशालाओं को ऐलोपैथिक रिसर्च के लिए ही प्राप्त नहीं । दूसरे भारत में पिछले १५० वर्षों का ऐलोपैथिक रिसर्च का एकपक्षीय संरक्षण सर्वथा निष्फल रहा है । क्योंकि उस प्रभूत व्यय के फलस्वरूप एक भी काम की औषध या शल्यक्रिया की वृद्धि नहीं हुई । इस कथन की लपेट में आज तक के बड़े से बड़े भारतीय ऐलोपैथिक अनुसंधानकर्ता भी आ जाते हैं । परन्तु जब वह ऐलोपैथ जिन्हें भारतवर्ष की निष्फल ऐलोपैथिक अनुसंधान-शालाओं में भी स्थान न मिला हो, उस आयुर्वेद क्षेत्र में अनुसंधान के लिए लगा दिये जाते हैं जिससे वह सर्वथा अपरिचित हैं तो इस नीति की बुद्धिमत्ता को समझना मनुष्य की शक्ति के बाहर हो जाता है ।

३. अपने आधीन कार्य करने वाले वैद्यों की ऐलोपैथिक स्वामी जो दुर्गति करते हैं उससे कभी भी प्रेरणा और उत्साह की वृद्धि नहीं हो सकती । प्रथम तो उच्च श्रेणी के वैद्य घटिया श्रेणी के डाक्टरों के नीचे कार्य करने को आते ही नहीं । कोई भी उच्चकोटि का अनुसंधानकर्ता दूसरे व्यक्ति के नाम को यशस्वी बनाने के लिये अपना पसीना नहीं बहाएगा । ऐलोपैथिक अनुसंधान जगत् में सर्वथा अज्ञात्, आयुर्वेद अनुसंधान कोष पर पूर्ण अधिकार प्राप्त, ऐलोपैथ के नीचे कार्य करने वाले वैद्य के प्रति जो सरकारी व्यवहार है उसका सार सरकार की ओर से वैद्य से पूछे गये इस कल्पित प्रश्न में आ जाता है :—

"क्या तुम्हारे लिये यह पर्याप्त सम्मान और प्रोत्साहन नहीं कि अज्ञात ऐलोपैथ ने आयुर्वेदिक रिसर्च कोष को व्यय करने का भार अपने कन्धों पर उठा लिया है और तुम्हारे परिश्रम और योग्यता का जो फल निकले उसका श्रेय भी वह विना कुछ मांगे स्वयं लेने को तैयार हो गया है विशेषतया जब उस बेचारे को इस कठिनाई के नीचे तुम्हारा स्वामीत्व करना पड़ रहा है कि वह जान ही नहीं सकता कि तुम क्या कर रहे हो ? अब भी यदि तुम जी तोड़ कर परिश्रम न करो और उसके नाम से प्रकाशित किए जाने के लिए कोई ऐसा ग्रंथ तैयार करके न दो जिसमें कि तुम्हारा नाम कहीं भी न हो, तो स्पष्ट है कि तुम एक पिछड़े हुये व्यक्ति हो और आगे नहीं बढ़ना चाहते ।"

मैं तो आयुर्वेदिक कोष और आयुर्वेदिक रिसर्च के ऐलोपैथिक स्वामियों की तुलना गाल्फ लिंक्स के उन आगे वाले कैडियों से करता हूँ जो सायंकाल हमारी गोलियाँ चुरा लेते हैं और प्रातःकाल उन्हें अपनी बताकर हमारे ही पास पुनः बेचने आ जाते हैं ।

एक आनुसंधानिक घटना

४—जहां तक कार्य्यकर्ता की भावी आजीविका की रक्षा का प्रश्न है, ऐसा प्रतीत होता है कि किसी अधिकारी को यह कभी सूझा ही नहीं कि अनुसंधान में सफलता प्राप्त करने के लिए मन को गम्भीर एकाग्रता की आश्यकता है जो चिन्तामुक्त हुए बिना प्राप्त नहीं हो सकती । भारत सरकार की केन्द्रीय आयुर्वेदानुसंधानशाला ने

आयुर्वेद के एक प्रसिद्ध विद्वान को वैतनिक कार्य के लिए निमंत्रित किया। उसने स्वीकार नहीं किया। तब एक प्रतिष्ठित और उन्नत राज्य के बोर्ड आफ रिसर्च के अध्यक्ष ने मुझे से बीच में पड़ कर उस विद्वान को राज्य के आयुर्वेदानुसंधान का कार्य करने के लिए राजी करने को कहा। उसने अपना कार्य संभाला ही था कि रिसर्च बोर्ड के अध्यक्ष ने उसके आगे एक हस्तलिखित पुस्तक (जो अध्यक्ष द्वारा ही लिखी गयी बताई गई है) रख दी कि वह उसकी भद्दी और भयंकर संस्कृत भाषा को शुद्ध कर दे। उस विद्वान ने यह कह कर कि भाषा इतनी बुरी तरह अशुद्ध है कि इसका कुछ बन ही नहीं सकता, इनकार कर दिया। इस घटना के कुछ समय पश्चात् अध्यक्ष ने वह ग्रांट बन्द कर दी—बिना कोई कारण बताए तथा जिस व्यक्ति को अध्यक्ष की ही विशेष प्रार्थना पर उसकी दूरवर्ती जन्मभूमि से उखाड़ कर बुलाया गया था बिना उसके लिए कोई दूसरा कार्य निर्धारित किये। यह है आजीविका की रक्षा जो देश के एक प्रख्यात विद्वान को प्राप्त हुई, जिन्हें कोई जानता ही नहीं उनकी क्या गति होती होगी।

सत्य का सत्यानाश

५—"आयुर्वेदानुसंधान" में डाक्टर सत्य की क्या दुर्गति करते हैं यह बोर्ड आफ आयुर्वेदिक रिसर्च द्वारा प्रकाशित "स्वस्थ-वृत्त" नामक पुस्तक से स्पष्ट हो जाएगा। मैं इस पुस्तक को साथ लाया हूँ और मैंने "डाक्टरों के आधीन आयुर्वेदानुसंधान का एक नमूना" यह लेबल लगा कर उसे प्रदर्शनी में रख दिया है। इसकी प्रस्तावना में पाठकों को जान बूझ कर भ्रान्त करने का प्रयत्न किया गया है कि वह संस्कृत को मूल पाठ समझे और अंग्रेजी को अनुवाद। पुस्तक को एक ही नज़र देखने से पता चल जाता है कि अंग्रेजी भाग पहले लिखकर किसी परम अयोग्य व्यक्ति से उसका अनुवाद संस्कृत में कराया गया है। पुस्तक का पाठ तो निकम्मा है ही किन्तु संस्कृत भाग में जो भाषा और व्याकरण की भयंकर अशुद्धियाँ हैं वह आप को उस आत्यन्तिक वैयर्थ्य का कुछ अनुमान करा सकेंगी जिस पर कि आयुर्वेद पुनरुद्धार के लिए पृथक् किया हुआ रुपया अयोग्य ऐलोपैथों द्वारा नष्ट किया जा रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप सब इस पुस्तक को बहुत ध्यान से देख लें। इस पुस्तक के निर्माताओं के हाथों में विशाल अधिकार हैं। उनके कार्य पर कहीं भी रोक नहीं है। और यदि सम्पूर्ण देश का आयुर्वेद समाज इसे स्वयं अच्छी प्रकार नहीं देख लेगा और राज्य द्वारा ऐलोपैथी के प्रसार के लिए दिए गए असीम द्रव्य के एक क्षुद्रांश को जो सरकार ने एक एक कर आयुर्वेदोन्नति के लिए निकाला है इस प्रकार भाड़ में जाते देखकर एक वाणी से इस नाश का विरोध नहीं करेगा, तो आयुर्वेद क्षेत्र में ऐलोपैथों से वैद्यों के हाथों में अधिकार परिवर्तन का अत्यावश्यक कार्य कभी सम्पन्न नहीं होगा।

सत्य स्वीकार कीजिये

बम्बई सरकार से मैं अनुरोध करूंगा कि वह अच्छी प्रकार यह निश्चय कर ले कि यह पुस्तक केवल अन्यमस्कता अथवा आकस्मिक भूल की उपज नहीं है। यह एक प्रदर्शन और एक प्रमाण है—प्राक्कथन में असत्य का और ग्रन्थ में अयोग्यता का

संसार का कोई भी बहाना करने या इस पर सफ़ेदी का पोचा फेरने से जो कुछ इसके सम्बन्ध में कहा गया है उसका सत्य नहीं छिप सकता।

राज्य-प्रदत्त मिथ्यानाम

६—सर्वोपरि अनौचित्य यह है कि "आयुर्वेदानुसंधान" केवल ऐलोपैथी के लाभ के लिए ही किया जा रहा है। आयुर्वेदिक औषधों की ऐलोपैथों द्वारा ऐलोपैथिक ढंग से इस प्रयोजन से परीक्षा होना कि यदि उपयोगी सिद्ध हों तो उन्हें ऐलोपैथी में आत्मसात कर लिया जाए किसी प्रकार भी आयुर्वेदिक अनुसंधान नहीं कहला सकता। वास्तव में स्कूल आफ़ ट्रापिकल मैडसिस, कलकत्ता, तथा अन्य कई संस्थाएँ इस कार्य को इसी रूप में ऐलोपैथिक रिसर्च के नाम से आयुर्वेदिक रिसर्च के लिए पृथक् कोष घोषित होने से पहले ही कर रही थीं। वही कार्य अब भी चल रहा है परन्तु कुछ भोले व्यतियों को चुप कराने के लिए नाम परिवर्तन करके ऐलोपैथिक रिसर्च के स्थान पर आयुर्वेदिक रिसर्च शब्द का प्रयोग आरम्भ कर दिया गया है।

विभाजन से पूर्व पंजाब के हिन्दू और सिक्खों को वह आन्दोलन याद होगा जिसमें उन्होंने यह मांग की थी कि वे रेडियो विभाग की आय के मुख्य स्रोत हैं तो भी प्रायः सम्पूर्ण द्रव्य मुस्लिम कलाकारों पर ही व्यय होता है अतः हिन्दू और सिक्ख कलाकारों से भी रेडियो पर काम लिया जाय। इस आन्दोलन का फल बहुत मनोरंजक रहा। जहाँ पहले केवल जहान आराओं, जैबुन्निसाओं और नजमुन्निसाओं के ही नाम रेडियो घोषणाओं में सुने जाते थे वहां लोगों का प्रेमलताओं, मधुबालाओं, कामिनियों और रागिणियों के नाम भी श्रोत्र गोचर होने लगे। पीछे पता लगा कि यह रागिणियें और कामिनियें वास्तव में वही जैबुन्निसाएं और नजमुन्निसाएं थीं जो पहले ही लहौर रेडियो स्टेशन से गाया करती थीं। अब पहले वह अपने नामों से गा देती थीं, फिर दूसरे नाम घोषित करवा कर पुनः गा देती थीं। केन्द्रीय सरकार का, अपने पक्षपात को ढकने के लिए ऐलोपैथिक रिसर्च का ही स्टेज नाम (बल्कि स्टेट नाम) आयुर्वेदिक रिसर्च रख देना, जेबुन्निसा को मधुबाला के नाम से घोषित करने से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं। जो ऐलोपैथिक रिसर्च ऐलोपैथों द्वारा ऐलोपैथों के लाभ के लिए की जा रही है, उसके ही एक क्षुद्रांश का पार्लमेंटरी नाम केन्द्र ने आयुर्वेदानुसंधान रख दिया है। यहां मैं भारत के प्रसिद्ध जागरूक और प्रखरबुद्धि विद्वान, डाक्टर के० एम० मुन्शी का एक वाक्य उद्धृत करना चाहता हूँ :—[1]

राज्यपाल भी सहमत

"हाल ही में केन्द्रीय सरकार ने यह दावा किया है कि वह आयुर्वेद के अनुसंधान कार्य में सहायता दे रही है। जहाँ तक मैं समझता हूँ (यदि मुझे गलत सूचना न मिली हो तो)[2] जिस अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन दिया जा रहा है वह केवल ऐलोपैथिक फार्माकोपिया में आयुर्वेदिक

---

[1] द्वितीय अखिल भारतीय आयुर्वेदिक कन्वेंशन पर उत्तरप्रदेश के राज्यपाल डा० कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की उद्घाटन वक्तृता से।

[2] राज्यपाल की सूचना सर्वथा प्रामाणिक है।

औषधियों को स्थान देने में ही समाप्त हो जाता है। **यह आयुर्वेदिक अनुसंधान नहीं कहा जा सकता।** यह तो ऐलोपैथिक अनुसंधान है। सचमुच आयुर्वेदिक अनुसंधान तब कहा जा सकता है जब कि आयुर्वेद प्रणाली को लाभ पहुँचे और अनुसंधान करने वाले आचार्यों के द्वारा अपना कार्य करें।"

मैं सरकार से इस विषय पर ध्यान देने के लिए प्रार्थना करूँगा कि इससे बढ़ कर अन्य कोई दुर्भाग्य या अधःपतन नहीं हो सकता कि वैद्य समाज का भविष्य उन व्यक्तियों की दया पर छोड़ दिया जाय जो आयुर्वेद पर केवल अविश्वास ही नहीं रखते प्रत्युत उसे घृणा की दृष्टि से भी देखते हैं। क्या वास्तव में सरकार इतनी भोली है कि यह ज्ञान नहीं कि एक अनुसंधानकर्ता के जीवन में प्रेरणा प्रोत्साहन और स्वाश्रय क्या स्थान रखते हैं? तथा आयुर्वेदानुसंधान क्षेत्र में, जहाँ कार्यकर्ता को उन विरोधी व्यक्तियों का यश प्रदान करने के लिए, जो अपने विज्ञान के क्षेत्र में सर्वथा असफल और सम्पूर्ण वैज्ञानिक संसार से पिछड़े हुए हैं, खून-पसीना एक करना पड़ता है, इन प्रेरणा आदि तत्वों के समावेश की कितनी आवश्यकता है?

जब आयुर्वेद के व्यावसायिक प्रतिद्वन्दी आयुर्वेद की पीठ पर आरूढ़ हों तब भालदर्शी तत्व और भी कठिनाइयां उत्पन्न कर देते हैं। मैं नीचे "पूना डेलीन्यूज़" २४ नवम्बर १९५४ से एक उद्धरण देता हूँ, जहां एक वैद्य ने सरकार की स्वतन्त्र अनुसंधान करने पर समालोचना की है। आलोचना की भाषा स्वयं ही स्पष्ट है।

"ऐसा ज्ञात हुआ है कि सर्कार चतुर्भुज रस के निर्माण पर **बहुत भारी** रकम व्यय कर रही है। यह औषध अस्थायी लाभ कर सकती है। परन्तु मैं ऐसा समझता हूँ कि उनके पास इस औषध में डालने के लिए प्रामाणिक भस्में नहीं हैं। अतएव ऐसी अपूर्ण रसायन की प्रतिक्रियाएं कुछ समय के पश्चात् व्यक्त होंगी—मैंने स्वर्ण भस्म पर, जिसे मैं वनस्पति के योग से बनाता हूँ निःशेष अनुसंधान कर लिया है। मैं अपने दैनिक चिकित्सा व्यवसाय में मस्तिष्क और हृदय की व्याधियों में स्वर्ण भस्म का प्रयोग करता हूं। मुझे यह देख कर प्रसन्नता होती है कि मुझे प्रत्येक रोगी पर पूर्ण सफलता प्राप्त होती है।"

उपर्युक्त उद्धरण में मैंने सब अर्थ पूर्ण शब्दों को रेखांकित अक्षरों में दिया है। बम्बई के रजिस्ट्रेशन के अधिकारी जिन्होंने एक योग्य और वृद्ध वैद्य का नाम ऐसी ही बात पर रजिस्टर से हटा दिया है इस सर्वथा उपयुक्त दावे की, कि स्वर्ण पर निःशेष अनुसंधान कर लिया गया (अर्थात् अब संसार में कहीं किसी वैज्ञानिक के लिए कुछ शेष नहीं रहा) मस्तिष्क और हृदय की व्याधियों में (इनमें कोई भी हो) प्रत्येक रोगी पर पूर्ण सफलता प्राप्त कर ली गई, चुप चाप पी गए। बम्बई सरकार के इस विद्वान आलोचक का सब से मनोरंजक वाक्य वह है जिसमें वह बम्बई सर्कार द्वारा इस औषध के परीक्षण में व्यय किए गए केवल एक हजार रुपये का "बहुत भारी" कम के नाम से वर्णन करता है।

प्रमाणीकरण

हमारे देश के कुछ अग्रणी नेता आयुर्वेदिक औषधों पर "वैज्ञानिक" ढंग से खोज करने की जो सम्मति हमें बार-बार देते हैं उस पर भी मैं दो शब्द कह जाना चाहता हूं। इस विषय में अधिक नहीं कहूंगा क्योंकि इंडियन फार्मास्युटिकल कांग्रेस में, भारत के विख्यात ऐलोपैथों के समक्ष, जिनमें मेजर जनरल एस. एल. भाटिया भी विद्यमान थे, चर्चा कर चुका हूं। एक तो यह आवश्यक नहीं कि ऐलोपैथिक दृष्टिकोण वैज्ञानिक ही हो। यह तो निश्चित ही है कि कैवल्येन वह वैज्ञानिक नहीं दूसरे कहीं कहीं आयुर्वेदिक पद्धति ऐलोपैथिक पद्धति से इतनी भिन्न है कि कुछ बड़े औषध समूहों के द्रव्यों के प्रमाणीकरण में ऐलोपैथिक विधियां सर्वथा निरर्थक तथा असंगत सिद्ध होंगी। जो व्यक्ति इस कथन के सत्य की परीक्षा करना चाहते हैं वे आयुर्वेद की सहस्रों औषधों में से एक परम साधारण औषध, सुदर्शन चूर्ण को लेकर प्रमाणीकरण के लिए संसार की बड़ी से बड़ी प्रयोगशालाओं में भेज दें। बीसियों वर्ष करोड़ों रुपये का व्यय करके भी वह इसका आधुनिक रूप में तत्व निर्णय नहीं कर सकेंगे। उस समय और उस द्रव्य के एक अंशमात्र से ही देश भर की जनसंख्या में उत्कृष्ट और सफल चिकित्सा साहाय्य का प्रसार किया जा सकता है। अतएव मैं विख्यात अविशेषज्ञ देशवासियों से प्रार्थना करूंगा कि आयुर्वेद के संबन्ध में अपने विचार निर्माण करने के लिए सब सूचना वैद्यसमाज से ही प्राप्त करें न कि ऐलोपैथों से, न ही उन लोगों से जिन्हें ऐलोपैथ आयुर्वेद के प्रातिनिध्य के लिए प्रयुक्त करना पसन्द करते हैं। हम सदा उनकी जिज्ञासा पूर्ती कर सकेंगे। एक स्वतंत्र योजना जिसमें आयुर्वेदानुसंधान को विविध रूप में अग्रसर करने का विस्तृत कार्यक्रम दिया गया है विचार विनिमय के लिए २४ मई की बैठक में आप के सामने रखी जायगी।

शासन

शीघ्रगामी शासक

आयुर्वेद की प्रगति में आयुर्वेद विभागों के ऐलोपैथिक शासकों की दमन और विघ्न पूर्ण नीति ने विशेष बाधा डाली है। एब्राहम लिंकन का यह कथन कि "कोई भी मनुष्य दूसरे मनुष्य पर उसकी अनुमति के बिना शासन करने योग्य नहीं होता" अंग्रेजों के भारत पर शासन की अपेक्षा ऐलोपैथी का जो शासन वैद्यों पर है उसपर अधिक घटता है। वैद्यों को अपने भाग्यविधाता स्वयं होना चाहिए, अपने भविष्य को स्वयं निर्माण करने का अधिकार उन्हें अवश्य दिया जाना चाहिए, तभी आयुर्वेद उन्नत हो सकेगा और भारतीय जनता पर अपना मंगलमय प्रकाश पूर्ण रूप से डाल सकेगा। भारतवर्ष में बहुत से विख्यात डाक्टर हैं जो हमारे साथ सच्चा व्यवहार करने को तैयार हैं। उन डाक्टरों में भी जो आयुर्वेद विभागों को अपने चंगुल से निकलने नहीं देते कुछ सज्जन ऐसे हैं जो आयुर्वेद के साथ न्याय करने को तैयार हैं। परन्तु जब वह अपने उन सहयोगियों की संगति में बैठते हैं जो ऐलोपैथी (जिसे वह एक मात्र वैज्ञानिक चिकित्सा समझते हैं) के अतिरिक्त भारत की अन्य सब चिकित्सा प्रणालियों का बीज नाश कर देना चाहते हैं तब भेड़चाल मनोवृत्ति से अभिभूत होकर वह न्याय कर नहीं पाते। यह दल जो थोड़े से ऐलोपैथों ने संगठित किया है और जिसने संपूर्ण देश की आयुर्वेदिक प्रगति पर कैवल्येन अधिकार जमा लिया है पृथक् और तुरंत ही

पृथक् किया जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाएगा तो राज्यों के आयुर्वेद को पूर्ण उन्नति-शिखर पर पहुंचाने के सब प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे।

इनमें से कुछ डाक्टर तो अपना अभिप्राय भी नहीं छिपाते। एक डाक्टर ने एक केन्द्रीय मंत्री से यहां तक कह डाला कि "हमने जान-बूझ कर आयुर्वेद-विभाग अपने आधीन रखे हैं, ताकि आयुर्वेद के निकम्मेपन और थोथेपन को व्यक्त करने का कार्य शीघ्र पूर्ण हो जाये।"

एक स्वास्थ्य मंत्री से जो स्वयं ऐलोपैथ था, यह पूछा जाने पर कि वह गांव में जाने वाले लाइसेंस्ड डाक्टरों को केवल बीस रुपये प्रति मास सहायता देकर डाक्टरी प्रभाव को क्यों गिरा रहा है, उत्तर दिया, कि डाक्टरों को शीघ्रताशीघ्र गांवों में फैलकर ग्रामीणों को यह शिक्षा देनी चाहिए कि वह आयुर्वेद की मांग बन्द कर दें। उसने अपने सहव्यवसायइयों से अपील की कि "मैं वह मनुष्य हूं जिसे शीघ्रता है। आपको इस प्रकार के प्रश्न खुली जनता में पूछ कर मुझे कठिनाई में नहीं डालना चाहिए।"

शासन के अधिकार

चिकित्सा-प्रणाली के भविष्य निर्माण में शासन का कितना हाथ होता है, वह इस उदाहरण से स्पष्ट है कि कांग्रेस सरकार से पहले निज़ाम सरकार ने यूनानी के लिये सत्रह लाख और आयुर्वेद के लिये ३५ हज़ार रुपये वार्षिक व्यय निश्चित किया हुआ था। प्राय: प्रत्येक हकीम वेतन प्राप्त करता था। प्राय: प्रत्येक वैद्य स्वतन्त्र जनता से धन उपार्जन करता था। इस अतुल्य प्रतियोगिता में भी राज्य में वैद्यों की संख्या हकीमों की संख्या से कई गुनी अधिक थी। कांग्रेस सरकार के आते ही दोनों विभाग सम्मिलित कर दिये गये और बहुत सी विषमता दूर कर दी गई।

लोक सभा में वर्तमान स्वास्थ्य मंत्रिणी ने यह कहा कि उनसे लोग ऐलोपैथिक चिकित्सा की ही मांग करते हैं। यह उस समय कहा गया जब डाक और तार-घर के सैकड़ों कर्मचारियों के प्रार्थनापत्र, कि उनके वेतन में अनिवार्य कटौती द्वारा निर्मित चिकित्सा-कोष के व्यय पर उन्हें आयुर्वेदिक चिकित्सा लेने की सुविधा प्रदान की जाए, क्योंकि उन्हें देशी चिकित्सा पर अपनी जेब से दोहरा व्यय करना पड़ता है, दो बार बिना कारण अस्वीकार कर दिये गये थे। इसके अतिरिक्त कई बार जब आयुर्वेद के प्रति केन्द्र के व्यवहार पर लोक सभा में प्रश्न उठे स्वास्थ्य मंत्रिणी ने सदा आयुर्वेद का विषय छोड़ कर ठगी की चर्चा आरम्भ कर दी। यह टालमटोल का खेल सात वर्ष से चल रहा है, और एक बार भी इस विषय पर खुली और सच्ची चर्चा न चल सकी।

ठगी का उत्तरदायित्व

उपर्युक्त उदाहरण मैंने केवल इतना ही स्पष्ट करने के लिये दिये हैं कि यदि कोई अधिकारी कोई कार्य न करना चाहे तो किस सरलता से उस विषयकी बात निरन्तर टाली जा सकती है। यदि वैद्यों में छद्मचर हैं तो उनका उत्तरदायित्व सरकार पर है वैद्यों पर नहीं। छद्मचर के विरुद्ध नियम धारा सभा में बनने चाहियें, उसके विरुद्ध अभियोग शासन को चलाना चाहिये, उसको दण्ड न्यायालय की ओर से मिलना चाहिये। यदि वह स्वतन्त्र है तो उसके दोषी यही तीन वर्ग हैं—यह दोष वैद्य-समाज के सिर नहीं मढ़ा जा सकता। हर हालत में जब आयुर्वेद की बात हो रही हो

उस समय ठग्गी जैसे असंगत विषयों की आड़ नहीं ली जानी चाहिये। आयुर्वेद के विषय पर सरकार यदि उच्च कोटि के वैद्यों से ही परामर्श ले तो इस प्रकार के वाक्छल की उसे शरण लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़सकती।

कर्तव्य का बटवारा

गत सात वर्षों में मैंने उन आयुर्वेद-विरोधी डाक्टरों की, जिन्होंने आयुर्वेद-विभागों को अपने कार्य का मुख्य क्षेत्र बना लिया है, कार्य पद्धति का गंभीर अध्ययन किया है। प्राय: कार्यभार आपस में बांट लिया गया है। यदि डा० क को यह कार्य-भार सौंपा गया है कि वह नगर-नगर में घूम कर आयुर्वेद पर कठोर और महत्वहीन आक्षेप करता रहे तो डा० ख की यह ड्यूटी है कि मीठी-मीठी बातें करके वैद्य-समाज में घुल-मिल जाये और अवसर मिलते ही छुरा भोंक दे। डा० ग के जिम्मे आयुर्वेद विरोधी सिंहनाद तैयार करके प्रसारित करने तथा केन्द्र के सहयोगियों से सम्पर्क रखने का काम है तो डा० घ का कर्तव्य केंद्रीय स्वास्थ्य विभाग को बाहर से आने वाले तथ्यों और सूचनाओं के प्रकाश से सुरक्षित रखना है।

मोहर बन्द सभाएँ

हैल्थ मिनिस्टर्स कान्फ्रेंस का नाम वदलकर जब केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् रखा गया उस समय इन लोगों ने जिस मोहरबन्द सभा की प्रथा का आविष्कार किया, वह उनके सीधे आक्षेपों से भी अधिक हानिकर है और सरकारें उसमें न फसें तो अच्छा है। इनका सूत्रपात हैदराबाद में केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् की पहली बैठक में किया गया। इसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि आयुर्वेद पर विचार करने, बल्कि यह कहिये कि आयुर्वेद को गालिएं देने के समय परिषद् की बैठक आयुर्वेदज्ञों के लिये सर्वथा बन्द रहेगी। तब स्वयं ही इस विषय पर डाक्टरी विशेषज्ञों के अतिरिक्त अन्य कोई बोलने का अधिकारी नहीं होगा। वहाँ पर आयुर्वेद पर जो कटाक्ष किये गये उनमें मद्रास के एक डाक्टर का व्यंग से यह कहना भी था कि वास्तव में आयुर्वेद ऐलोपैथी से बड़ा है क्यूंकि इसकी गणना में अस्थियों की संख्या ऐलोपैथिक संख्या से अधिक हैं। यह कटाक्ष बहुत ठीक बैठा और आयुर्वेद का अच्छा खासा हास्य हुआ। आयुर्वेदिक विषयों पर विचार करते समय आयुर्वेदज्ञों का वहिष्कार कर इन मोहर-वन्द वैठकों से डाक्टरों को क्या लाभ रहता है इसका इसी सफल कटाक्ष की दूसरी खुली वैठक में जो दुर्गति हुई, उससे ठीक ठीक पता चल जायेगा। श्री शान्तिलाल शाह, स्वास्थ्य मंत्री, बम्बई राज्य ने आयुर्वेद के भविष्य पर विचार करने के लिए प्रत्येक विचार के प्रतिनिधियों को बुलाकर एक बैठक की। इसमें काम विगड़ता देखकर आयुर्वेद विभाग के एक ऐलोपैथ "रक्षक" ने वही हैदराबाद वाला मद्रासी शस्त्र चलाया। वह केवल फीका ही नहीं रहा प्रत्युत उसकी हास्यकर्ता पर ही उलटी चोट पड़ी। हास्य का तो प्रश्न ही नहीं उठा परन्तु कटाक्षकर्त्ता के द्वेष भाव और अज्ञान का प्रदर्शन हो गया। एक वैद्य ने जो वहाँ पर उपस्थित था, यह स्पष्ट कर दिया कि आयुर्वेद में कई तरुणास्थियों को, दोनों कपालिकाओं को तथा २० नखों तक को भी अस्थियों में ही गिन लिया गया है। इस संख्या वृद्धि का यह अर्थ कदापि नहीं निकला कि नवीन अस्थियों की कल्पना करके संख्या-वृद्धि कर ली गई हैं।

एक ही आक्षेप के एक स्थान पर इतना सफल और दूसरे पर इतना विफल होने का एक ही अर्थ निकलता है कि यदि ऐलोपैथ अविशेषज्ञ अधिकारियों को सफलतापूर्वक अंधेरे में रखना चाहते हैं तो उन्हें किसी प्रकार भी वैद्य समाज को उनसे दूर रखना पड़ेगा और यदि किसी वैद्य का उनसे मिलना अनिवार्य हो जाए तो अपनी ही छांट के वैद्य का उनसे सम्पर्क होने देना होगा।

ऐलोपैथों की छांट के वैद्य कैसे हैं ? इनके व्यवहार ने वैद्य समाज को कई मनोरंजक घटनाएं प्रदान की हैं । उनमें से एक निम्नलिखित भी है :—

ऐलोपैथों की छांट

एक अनुसंधानशाला के लिए अनुसंधान विशेषज्ञों को नियुक्त करने के लिए एक समिति बनाई गई । इस समिति के आयुर्वेदिक सदस्यों ने स्वयं अपने ही प्रार्थनापत्र भी ले लिए, अपने आप से भेंट भी कर ली, अपने को छांट भी लिया और नियुक्त भी कर लिया तत्पश्चात् उनके ऐलोपैथिक स्वामियों का, यह कह कर कि उनके जोड़ के विद्वान देश भर में अन्यत्र कहीं भी न होने के कारण सर्कार ने ही आग्रह करके उनसे उनही की छांट करवा दी, उनकी कृति पर सफ़ेद पोचा फेरने का प्रयत्न भी मौलिक घटना से कम मनोरंजक नहीं ।

कठपुतली का जन्म

अवैद्यों के वैद्यों पर दीर्घकालीन शासन का सबसे बड़ा दुष्परिणाम एक अत्यन्त हानिकर और ध्वंसक चरित्र, कठपुतली, का जन्म है । जिन व्यक्तियों का यह दावा है कि वे आयुर्वेद विभागों के अधिकारी ही इस शास्त्र का थोथापन और निकम्मापन व्यक्त करने के लिए बने हैं वे उन विभागों में नियुक्तियों के लिए कैसे लोगों को छांटेंगे यह समझना कठिन नहीं । वे नियुक्ति के समय यह देखेंगे कि प्रार्थी उनका और उनके लक्ष्य का भक्त हो न कि आयुर्वेद और देश का । इन्होंने कई साधारण व्यक्तियों को उठा कर ऊंचे पदों पर फेंक दिया है । यह दोनों स्वामी तथा स्वामीभक्त सरकारी आयुर्वेदिक कार्यों के सम्पूर्ण क्षेत्र पर व्याप्त हैं । उन पर यह अच्छी तरह जम गए हैं और हिलने का नाम नहीं लेते । डाक्टरों ने इन कठपुतलियों को ऐसे व्यक्तियों के कार्य और योग्यता के विरुद्ध विवरण लिखने के लिए प्रयुक्त किया है जिनकी बुद्धि और विद्या का स्तर इन्हें आजीवन प्राप्त नहीं हो सकता । जो व्यक्ति आयुर्वेद विरोधी ऐलोपैथों को प्रिय हैं वे आयुर्वेद विभागों के ऐलोपैथिक दासता से मुक्त होने की सम्भावना से कैसे प्रसन्न हो सकते हैं ? जब कभी भी आयुर्वेद विभागों के आयुर्वेदीकरण की बात चलती है इनके कबूतर खानों में फड़फड़ाहट शुरू हो जाती है । इनका सम्पूर्ण प्रयत्न अपने भविष्य की रक्षा में लगता है । अपने ऐलोपैथिक स्वामियों से मिल कर वैद्यों के उन्नतिस्वातन्त्र्य के संग्राम में यह उसी प्रकार बाधा डालते हैं, जैसे ब्रिटिश काल में टोडी बाधा डालते थे । यह कहा जाता है कि स्वतन्त्रता संग्राम और विज्ञान दोनों के भिन्न स्तर हैं, परन्तु भारतवर्ष में आयुर्वेद का विरोध कभी वैज्ञानिक स्तर अथवा वैज्ञानिक ढंग से न किया जा कर सदा धार्मिक और सामाजिक-

आर्थिक स्वार्थों को ही मुख्य रख कर किया गया है [1]

आयुर्वेदिक कठपुतलियों की समस्या का समाधान यही है कि उनका भय शान्त किया जाय और उन्हें यह आश्वासन दे दिया जाए कि आयुर्वेद विभाग छोड़ कर जाने वाले डाक्टरों द्वारा नियुक्त किए गए किसी व्यक्ति को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया जायगा और उनका भविष्य उतना ही सुरक्षित होगा जितना कि वास्तविक योग्यता पर निपुण किए गए व्यक्तियों का।

अस्तु। सरकार को आयुर्वेदिक प्रगति के ध्वंस को अधिक गम्भीरता से देखना चाहिए। आयुर्वेदिक विज्ञान की प्रगति भी एक राष्ट्रीय प्रयत्न है। इसका ध्वंसक उसी दंड का पात्र है जो फैक्टरियों और रेल के पुलों को उड़ाने वालों को दिया जाता है। वह तो एक आध कारखाना या पुल उड़ा कर कुछ गिने हुए व्यक्तियों की ही जान लेते हैं, परन्तु यह तो देश के चिकित्सा साहाय्य के कार्यक्रम का ध्वंस करके अगणित जनसंख्या के वध के उत्तरदायी हैं।

आवश्यक कर्तव्य

सरकार को निम्न लिखित सुधार तुरन्त कर देने चाहिएँ:—

(१) मोहर बंद बैठकें भविष्य में न हों। आयुर्वेदज्ञों की अनुपस्थिति में कोई आयुर्वेद सम्बन्धी चर्चा न की जाये।

(२) कठपुतलियों की भर्ती बन्द की जाये। आयुर्वेदिक कार्यकर्ता योग्य वैद्यों की समितियों द्वारा ही नियुक्त कराये जायें।

(३) ऐलोपैथों द्वारा कठपुतलियों को उठाकर केन्द्रीय समितियों पर फेंक देना उनकी सत्ता को बढ़ाता है, जो आयुर्वेद को गिराने के लिए प्रयुक्त की जाती हैं। केन्द्र में वैद्य समाज के चुने हुए प्रतिनिधि ही पहुंचने चाहिएं।

(४) वह ऐलोपैथ जो अपने आधीन आयुर्वेदिक संस्थाओं के वार्षिक उत्सवों पर पुष्प-हार पहनाए जाने के समय आयुर्वेद के भविष्य पर एक विचार प्रगट करते हैं और मिनिस्टरों से अकेले बात करते हुए दूसरा विचार, और जो क्लबों और दीवान खानों में आपस में बैठकर कठपुतलियों, विरोधियों, उच्चाधिकारियों और मिनिस्टरों सभी के लिए अविश्वास और अपमान द्योतक तीसरी ही भाषा का प्रयोग करते हैं उनसे आयुर्वेद विभाग अविलंब खाली कराए जाएं और अधिक

---

[1] जब राजा गज़नफर खान ने चौपड़ा समिति का निर्माण किया, उसने कोई भी वैद्य न रख कर तीन हकीमों को सदस्य बनाया क्योंकि उनकी दृष्टि में अरबी अनुवाद मूल आयुर्वेदिक ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक थे। जब राजकुमारी ने चौपड़ा समिति की सिफारिशों को उलटने के लिए डा० पंडित की अध्यक्षता में "उलट समिति" का निर्माण किया तो उसके कर्तव्य निर्देश से राजकुमारी का यह दृढ़ विश्वास स्पष्टतया व्यक्त होता था कि सम्पूर्ण आयुर्वेद सरलता से ऐलोपैथी में आत्मसात हो सकता है। यही नहीं, जब कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट अक्षरों में यह लिख कर कि अभी आयुर्वेद ऐलोपैथी में अन्तर्भूत नहीं हो सकता, राजकुमारी को निराश भी किया, तब भी लोक सभा में बड़ी गम्भीरता से यही घोषणा की गई है कि आयुर्वेद में जो कुछ भी उपयोगी अंश है वह ऐलोपैथी ने आत्मसात कर लिया है।

गंभीर तथा विचारवान व्यक्तियों द्वारा जिनके लिए आयुर्वेद व्यापार नहीं, किन्तु एक उच्च उद्देश्य है उनके स्थानों की पूर्ति की जाय।

५. आयुर्वेद विभाग के ऐलोपैथिक शासकों को कोई अन्य व्यवसाय संभाला जाय। उनको बिना अपमानित किए बाहर भेजने के लिए कई ढंग निकल सकते हैं। अस्वस्थता, दीर्घ अवकाश, "रिटायरमैंट," ऐलोपैथिक विभाग में उच्चतर पद पर नियुक्ति, किसी अन्य विभाग में कार्याधिक्य के कारण परिवर्तन, यह कुछ सुझाव हैं जिनपर विचार किया जा सकता है। सत्य तो यह है कि क्योंकि इंजीनियरिंग और कृषि विद्या से भी वह उतने ही परिचित हैं जितने कि आयुर्वेद से, उन्हें वहां भी इस विश्वास के साथ भेजा जा सकता है कि गत २० वर्ष में जो कुछ वह आयुर्वेद के लिए कर पाए हैं "उससे कम" तो इंजीनियरिंग और कृषि के लिए किसी प्रकार भी नहीं कर सकेंगे हम इतना सहयोग देने को तैयार हैं कि जाने के समय उनको साधुवाद दें, गले में फूल डाल दें और जनता के समक्ष उनके जाने से जो "हानि" होगी उसपर असंतोष प्रगट कर दें।

समर्थन और विरोधी गुण-तुलना

भारतवर्ष के बहुत से अग्रणी नेता कांग्रेस के बाहर भी और भीतर भी आयुर्वेद के शुभ चिन्तक हैं। श्री मोरारजी देसाई, डा० हरेकृष्ण मेहताब, डा० राधाकृष्णन, श्री गुलजारी लाल नंदा, श्री. जी. वी. मावलंकर श्री चन्द्रभानु गुप्त, तथा अन्य बहुत से नेता जो अपने अपने कार्य क्षेत्र में उच्चतम योग्यता और दृढ़ता का प्रतिनिधित्व करते हैं, वैद्य समाज के सहायक हैं। कैप्टन श्री निवास मूर्ति, डाक्टर प्राण जीवन महता, डाक्टर लक्ष्मीपति यथा अन्य उच्च और विद्वान् ऐलोपैथ आयुर्वेद में सच्ची श्रद्धा रखते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश जहां हमारे मित्र सोचते और झिझकते हैं, वहां हमारे शत्रु निरंतर प्रहार करते हैं। आयुर्वेद में विश्वास रखने वाले शान्तिप्रिय और विचारवान व्यक्ति हैं। आयुर्वेद के विरोधी "शीघ्रगामी व्यक्ति" हैं। वे कहीं भी बस नहीं करते, और सत्य को भी उलटने में नहीं झिझकते। वे आयुर्वेद की सता को अपनी शक्ति के प्रति एक व्यक्तिगत चुनौती के रूप में देखने लग पड़े हैं।

परामर्शदात्री समिति

हम तो आशा ही कर सकते हैं कि बुद्धि से काम लिया जायगा, केन्द्र से तो मैं इससे अधिक कुछ नहीं मांगता कि वह आयुर्वेद के सम्बन्ध में सब विषयों पर निर्भ्रान्त सूचना प्राप्त करे, और फिर न्याय के अनुसार आचरण करे। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के आयुर्वेदिक प्रश्नों पर मार्ग-दर्शन के लिए वैद्य समाज की उच्चतम श्रेणी से चुनकर एक केन्द्रीय आयुर्वेद समिति का निर्माण होना चाहिए जो आयुर्वेदिक सम्प्रदाय का यथार्थ प्रातिनिध्य कर सके। जब तक यह समिति बनती है तबतक के लिए अविलंब एक आयुर्वेदिक परामर्शदाता की नियुक्ति हो जानी चाहिए जो समिति निर्माण के पश्चात् आयुर्वेद समिति के प्रथम अध्यक्ष का स्थान ग्रहण कर सकता है।

आयुर्वेद और यूनानी की अभिन्नता

आयुर्वेद और यूनानी दो विभिन्न चिकित्सा प्रणालियां नहीं। इनका स्रोत एक ही चिकित्सा-प्रणाली है जो दो भाषाओं में लिपिबद्ध की गई है। इसको दो कहकर उस प्रकार व्यक्तिभेद कर देना जैसा कि मुग़लों और अंग्रेजों ने किया वैद्यों और हकीमों के लिये ही हानिकर सिद्ध होगा। वह हानियां क्या होंगी यह मैं आगे चलकर स्पष्ट करूँगा। पहले यूनानी के आरम्भ और प्रगति तथा भारतवर्ष में लाये जाने के अनन्तर इसकी वृद्धि का विहंगावलोकन कर लेना परिस्थिति को निर्भ्रान्त रूप से अवगत करने के लिये उपयुक्त होगा।

भ्रान्तिजनक नामकरण

यूनानी शब्द "यूनान" (ग्रीस) से बना है। प्राचीन ग्रीस का सर्वश्रेष्ठ प्रदेश इयोनिया का ही अपभ्रंश "यूनान" संपूर्ण ग्रीस देश के लिये ही प्रयुक्त होने लग गया। (संस्कृत शब्द "यवन" का स्रोत भी इयोनिया ही है, यूनानी तिब का शाब्दिक अर्थ ग्रीक चिकित्सा है। अतः यह नाम भ्रांतिमूलक है। वास्तव में यूनानी चिकित्सा का अभिप्राय आरब्य चिकित्सा से है।

अरबी चिकित्सा के स्रोत

यूनानी चिकित्सा की कोई भी स्वकीय (देशिक, वैज्ञानिक अथवा सांस्कृतिक) परंपरा अथवा पृष्ठभूमि न होने के कारण आयुर्वेद और ग्रीक पद्धति ही इसके निर्विवाद जन्मदाता हैं। आयुर्वेदिक और ग्रीक ग्रंथों की प्राचीनता के प्रकाश में युनानी पुस्तकों को देखा जाये तो ऐसा प्रतीत होगा कि उनका निर्माण कल की ही बात है।

यदि मध्यकालीन ग्रन्थ (माधव निदान शार्ङ्गधरसंहिता, वृंदमाधव इत्यादि) को छोड़ कर आयुर्वेद की प्रसिद्ध प्राचीन संहिताओं को ही लिया जाए तो उच्चकोटि के आयुर्वेदिक साहित्य का पहला दौर ईसामसीह से ६०० वर्ष पूर्व सम्पूर्ण हो चुका था। परन्तु पहली ग्रीक कृति जिसे किसी रूप में चिकित्सा का आदि ग्रंथ समझा जा सकता है ग्रीस में (अतएव यूरोप में) हिप्पोक्रेटीज़ (४६० ईस्वी ई. म. पूर्व) ने निर्मित किया। इसी लिए पाश्चात्य चिकित्सक हिप्पोक्रेटीज़ को "चिकित्साशास्त्र का पिता" इस नाम से पुकारते हैं। परन्तु ग्रीक चिकित्सा स्वयं आयुर्वेद शास्त्र की उपज है। यही नहीं कि टीसिथस (४०० बी. सी.) और मेगास्थिनीज़ (३०० बी. सी.) उत्तर भारत में आए किंतु जैसा कि कैप्टन पी. जान्स्टन-सैण्ट ने "भारतीय चिकित्सा के इतिहास की रूपरेखा" नामक अपने "सर जार्ज बर्डवुड स्मारक भाषण" में कहा :—

> "अब (इस क्षेत्र में) कल्पना और अनुमान की आवश्यकता नहीं रही। अब हम सिद्ध कर सकते हैं कि स्वयं महान विद्वान पाइथागोरस ने किस प्रकार भारतवर्ष के ब्राह्मणों से ज्ञान के मर्म को प्राप्त किया।"

"चिकित्सा का पिता" कहलाने वाले हिप्पोक्रेटीज़ ने स्वयं ही अपनी पुस्तक में तिल, जटामांसी, कुंदरु, श्रंगवेर तथा मरीति आदि अनेक आयुर्वेदिक द्रव्यों का वर्णन किया है।

भारत तथा ग्रीस के पारस्परिक सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक आदान प्रदान के संबंध में आधुनिक विद्वानों का मत निम्नलिखित वाक्य से स्पष्ट हो जाता है :—

आयुर्वेद की प्राचीनता

"इन सब अनुरूपताओं को आकस्मिक कहना बहुत कठिन है और यद्यपि भारतीय आदि स्रोत से ग्रीस की ओर चिकित्सा ज्ञान के प्रवाह को सर्वथा निर्भ्रान्ति रूप से रेखांकित करना संभव नहीं तथापि तत्सम्बन्धी, प्रमाण इतने पुष्ट हैं कि स्वयं उस प्रवाह की वास्तविकता में कोई सन्देह नहीं। *

यूनानी का आदि स्रोत आयुर्वेद

आरव्य चिकित्सा प्रणाली का जन्म हिप्पोक्रेटीज़ लिखित ग्रीक चिकित्सा के प्रथम सूत्र संग्रह के लगभग एक हज़ार वर्ष पश्चात् तथा तक्षिला में चरकसंहिता (उस समय अग्निवेशसंहिता) और काशी में सुश्रुतसंहिता लिखे जाने के प्राय: डेढ़ हजार वर्ष पश्चात् हुआ। ऐसा विश्वसनीय साहित्य उपलब्ध है जो आरव्य चिकित्सा के स्रोत और प्रगति का सर्वथा प्रमाणिक चित्र खींच सकता है। आठवीं ख़िस्ताब्दि में खलीफा हारूँ-उल-रशीद और खलीफा अल मंसूर ने आयुर्वेदिक ग्रंथों का अर्बी में अनुवाद कराया। यह तो सिद्ध ही है कि आरव्य चिकित्सा की जन्मदाता केवल आयुर्वेदिक और यूनानी (ग्रीक) पद्धतियाँ ही हैं और ग्रीक चिकित्सा का एकमात्र स्रोत आयुर्वेद है। अतएव अन्तिम विश्लेषण में आरव्य चिकित्सा का आदि स्रोत आयुर्वेद ही रह जाता है।

निम्नोक्त वृत्त आयुर्वेद और अरबी चिकित्सा के सीधे सम्पर्क पर विपुल प्रकाश डालता है।

"सारासनों का इतिहास" नामक पुस्तक में जस्टिस अमीर अली ने लिखा है कि अर्वी के विविध ग्रन्थों की सूची का वर्णन करने वाला प्रथम आरव्यकोष "किताब-अल-फिहरिस्त" के नाम से बगदाद निवासी अबुल फ़राज मुहम्मद बिन इशाक ने निर्मित किया। अमीर अली लिखते हैं कि "किताब-अल-फहरिस्त" ने ज्ञान की प्रत्येक शाखा का वर्णन किया है। इसमें कई ऐसे ग्रन्थकारों तथा उनके ग्रन्थों के नाम भी वर्णित हैं जो अब उपलब्ध नहीं।" इस पुस्तक में लिखा है कि खलीफ़ाओं की आज्ञा से औषध निर्माण, द्रव्यगुण और कायचिकित्सा के कई प्रामाणिक हिन्दू ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद किया गया। इस विषय पर अनालैक्टा मैडिका के लेखक 'दाइत्ज, "गेशिश्ते दर एरब आएर्त्जते" के लेखक वुस्तेन्फैल्द, और फूलगल, मूलर तथा अन्य विद्वानों ने विस्तृत सूचना संकलित की है।

रेवरेण्ड डबल्यू क्यूरेटन के 'आरव्य ग्रन्थकारों के भारत सम्बन्धी वाक्यों का संग्रह" नामक लेख पर एक टिप्पणी में प्रोफेसर एच० एच० विलसन ने अपने विचारों को संक्षेप से निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया है :—

> "चिकित्सा क्षेत्र में तो प्रमाण और भी अधिक ठोस हैं, और यह स्पष्ट है कि चरक, सुश्रुत, (माधव) निदान तथा अगदतंत्र, स्त्री रोग और कायचिकित्सा पर अन्य ग्रन्थों का जिनके विषयों से हिन्दू सुपरिचित थे, हारू और मंसूर के समय में अरबों द्वारा अनुवाद और अध्ययन किया गया।

---

*हिन्दुओं के शल्यशस्त्र, लेखक डा० गिरीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, प्रकाशक, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

यह अनुवाद या तो भारतीय मूल ग्रन्थों से किया गया अथवा उनके पूर्ववर्ती फ़ारसी अनुवादों से * ।

गिल्डमीस्टर लिखित "स्क्रिप्टोरम् एरेबम् द रेबस इण्डिसिस लोसाई एट ओपस्क्युला" में से विस्तृत उद्धरण देते हुए, "हिस्टिरी आफ़ हिन्दू कैमिस्ट्री" में सर पी० सी० राय ने परिस्थिति का सार निम्न शब्दों में दिया है:—

ज्ञानोपार्जन का तीर्थ—भारत

"अरब लेखकों के, विशेषतया हाजी खलीफ़ा के, प्रचुर तथा अनंत प्रमाण हमारे हस्तगत हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि हिन्दू ज्योतिष शास्त्र, बीज गणित और चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन उनके देशवासी बहुत लगन से करते थे। कई हिन्दू विद्वानों को अध्यापकों के रूप में ख़लीफ़ाओं के दरबारों में रहने को अनुमत किया जाता था। मुसलमान विद्यार्थी, अपनी तीव्र ज्ञानपिपासा से प्रेरित होकर, भारतवर्ष के शिक्षा केन्द्रों में भारी संख्या में पहुंचते थे और आदि स्रोत के मूल उद्गम पर गम्भीर ज्ञान रसपान करते थे। वास्तव में, उच्चकोटि की शिक्षापूर्ति का यह अनिवार्य भाग समझा जाता था कि भारतवर्ष की यात्रा करके मूल स्रोत पर ही विविध विज्ञानों की शिक्षा प्राप्त की जाए।"

यूरोपीयन लेखकों का मत है कि रस शास्त्र और गणित में वे अरब के शिष्य हैं। परन्तु इस क्षेत्र में भी भारतवासियों के उच्च तथा अरब निवासियों के साधारण, ज्ञान में एक महान अन्तर था, जो निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगा। यह उद्धरण एक प्राचीन फारसी पुस्तक "तालीफ़ शरीफ़" के जार्ज प्लेफेयर कृत अंग्रेज़ी अनुवाद से लए गए हैं:—

"सुम्वुलखार (संखिया)—यूनानी चिकित्सक अपने योगों में संखिये का प्रयोग नहीं करते क्योंकि यह जीवनीय तत्व को नष्ट कर देता है। परन्तु भारतीय चिकित्सक इसके विपरीत आचरण करते हैं। वे मल्लयोगों को साधारण धातुओं की भस्मों की अपेक्षा अधिक शक्तिप्रद मानते हैं। अतएव मैं तो इन योगों का प्रयोग खिलाने के लिये प्रायः करता ही नहीं, परन्तु वाह्य प्रयोग के लिए तथा वाजीकरण के रूप में कुछ ऐसे अल्पसंख्यक मित्रों को दे देता हूँ जिन पर यूनानी चिकित्सा सर्वथा असफल हो गयी हो। मल्लयोगों को जितना कम व्यवहार में लाया जाए उतना ही अच्छा है।

"पारा (पारद) इसका भारतवर्ष में प्राकृत और परिवर्तित दोनों अवस्थाओं में बहुत प्रयोग होता है, परन्तु हमें इसके विषय में बहुत सावधान रहना चाहिये, क्योंकि न तो यह पूर्णतया मृत ही होता है न अपनी प्राकृत अवस्था से पर्याप्त रूप से हटाया ही जा सकता है जिसमें कि यह एक भयंकर द्रव्य है।

---

* जर्नल आफ़ दी रायल एशियाटिक सोसायटा, ओल्ड सीरीज, भाग ६, पृष्ठ १०५-११५।

"लोहा (लौह)—भारतीय चिकित्सक इसका प्रचुर प्रयोग करते हैं, परंतु मेरा आदेश यही है कि जहां तक सम्भव हो इससे दूर रहो।"

त्रिमल्ल भट्ट और भावमिश्र

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि लौह जैसे निर्विकार द्रव्य को भी, जो कच्ची-पक्की किसी अवस्था में भी शरीर का हानि नहीं पहुँचा सकता, और जसका प्रयोग भारतवर्ष में पाण्डु-रोग के लिए सहस्रों वर्षों से हो रहा था, हकीम लोग निकट अतीत तक भी विष ही समझते रहे वास्तव में भारत के सम्पर्क से, मुग़ल सम्राटों की छत्र छाया में यूनानी नाम के मिथ्यावरण में अरबी चिकित्सा की उत्कृष्टता और योग्यता का स्तर उससे बहुत ऊँचा हो गया जो इसे बगदाद और डैमस्कस में प्राप्त था। हकीमों ने स्वर्ण, रजत, ताम्र, यसद और पारद आदि "भारी" धातुओं का निःशंक प्रयोग भारतवर्ष में ही आकर सीखा। जब १६ वीं शताब्दि में पार्चुगीज़ भारतवर्ष में सिफ़िलिस लाए तो वैद्यों के अनुकरण में इन्होंने पहली बार उस व्याधि पर मल्ल और पारद का प्रयोग भारतवर्ष में ही किया। यहां यह बता देना असंगत न होगा कि काशी के प्रसिद्ध चिकित्सक भावमिश्र ने पार्चुगीज़ के आने के पश्चात् ही १६ वीं शताब्दि में ही अपने ग्रन्थ भाव-प्रकाश में एक नवीन अध्याय फिरंग रोग (पार्चुगीज के संसर्ग से होने वाली व्याधि) पर लिखा और उसके समकालीन चिकित्सक काशी के ही त्रिमल्ल भट्ट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वृहद् योगतरंगिणी में प्रथम बार फिरंग के लिए उस समय मल्ल का प्रयोग किया, जब लन्दन में इस रोग को बड़ी मसूरिका कहा जाता था।

विभाजन अयुक्त

उपर्युक्त तत्व संग्रह से स्पष्ट है कि आयुर्वेद और यूनानी में कोई वैयक्तिक भेद नहीं। यदि मुग़लों, अंग्रेजों, और तदनन्तर हमारे कुछ देशवासियों ने इस आयुर्वेद जन्य चिकित्सा को पृथक्त्व प्रदान किया तो वह राजनैतिक तथा आर्थिक कारणों से किया गया, न कि वैज्ञानिक दृष्टि से। यह तो वही बात है कि आयुर्वेदिक ग्रन्थों के गुजराती, मराठी और कर्णाटकी भाषाओं के अनुवादों को लेकर किसी अन्यतम जनसमूह को आर्थिक और राजनैतिक बल देने के लिए उन्हें गुजराती, मराठी अथवा कर्णाटकी चिकित्सा-पद्धतियां कहकर पृथक्त्व प्रदान कर दिया जाये। संस्कृत पाठ को अरबी, फारसी या उर्दू में लिख देने से स्वास्थ्य और व्याधि के दृष्टिकोण में तो विभिन्नता नहीं आ सकती। यदि रोगी को सल्फोनामाइड संस्कृत में लिखकर दिया जाये तो वह ऐलोपैथिक चिकित्सा ही रहेगी। उसी प्रकार मरीची, त्रिफला और स्वर्णमालिनी वसंत का फिल्फ़िल, इत्रीफल अथवा बसंत मालती कहने से यह औषधें अनायुर्वेदिक नहीं बन जातीं।

श्री महादेव विरचित "हिकमत प्रकाश" एक पुनरनुवाद

यवन राज्य में वैद्यों की ऐसी दशा थी कि उनके लिए तथाकथित भिन्न चिकित्सा-प्रणाली का अध्ययन करना हितकर था। इस विषय पर "हिकमत प्रकाश" नामक एक ग्रंथ श्री महादेव विरचित इस समय उपलब्ध

है, जो उस समय का लिखा हुआ है, जब भारतवर्ष में यवन-राज्य का बोलबाला था। इसके कुछ श्लोक नीचे उद्धृत करता हूँ:—

विद्यैषा हिक्मत प्रोक्ता नज्री अम्लीति सा द्विधा:।
नज्री वस्तुविमर्शश्च अम्ली स्यात्तदुपक्रमः ॥
दोषः खिल्त इति प्रोक्तः स चतुर्धा निरूप्यते ।
सौदा सफरा तथा बल्गम तुरीयं खूनउच्यते ॥
बुरूदत शीतता प्रोक्ता हरारत चोष्णता मता ।
रतूबत स्निग्धता ज्ञेया यबूसत रूक्षता स्मृता ॥
सर्दी गर्मी तरी खुश्की तत्पर्य्याया इमे पुनः ।
उष्णं हार इति प्रोक्तं शीतं बारिद इत्यपि ॥
स्निग्धं रतबनाम्ना तु रूक्षं याबिस संज्ञकम् ।
अपरेऽपि च पर्याया सर्द खुश्क गरम तर ॥

विषय की सुस्पष्ट अधिकारपूर्ण व्याख्या और कविता का सरल धारा प्रवाह, लेखक के इन गुणों ने इस विस्तृत ग्रंथ को ज्ञानप्रद भी बनाया है और आनंदप्रद भी। अंग्रेजी विजेताओं द्वारा मुगल राज्य का अन्त होने के साथ ही इस ग्रन्थ की स्मृति का भी लोप हो जाना सर्वथा अस्वाभाविक नहीं था।

उस काल की विधि-विडम्बना देखिए कि जहां आठवीं शताब्दि में बगदाद में "दोष" शब्द का अनुवाद खिल्त किया गया था वहाँ सैकड़ों वर्षों के अनन्तर भारतवर्ष में खिल्त का अनुवाद फिर से दोष किया गया यद्यपि अनुवादक जानते थे कि दोनों शब्द पर्यायवाचक हैं।

इस कृत्रिम विभाजन को जो यवन शासकों ने केवल सांप्रदायिक संरक्षण के लिए किया था, अंग्रेजों ने अपनी स्थिर भेदनीति की पुष्टि में प्रयुक्त किया। यही अस्त्र उन ऐलोपैथों तथा ऐलोपैथी के समर्थकों के, जिन्हें अंग्रेज जाते-जाते अपने स्थान पर सत्तारूढ़ कर गए, काम आया। उन्हें यह कहने का अवसर मिला कि भारत की चिकित्सा प्रणालियां अधिक संख्याक होने के कारण उन सबका संरक्षण असंभव है।

ग्रीक तथा अरबी अनुवादों में बहुत सी सैद्धान्तिक त्रुटियां रह गई हैं जिनका मुख्य कारण उन आयुर्वेदिक सिद्धान्तों का अधिक गंभीर और क्लिष्ट होना है। परन्तु क्या वैज्ञानिक दृष्टि से और क्या कर्तव्य और न्याय की दृष्टि से, उन त्रुटियों को सिद्धान्तों के मौलिक व्यक्तिभेद का स्थान नहीं दिया जा सकता। वास्तव में उत्तर भारत का वैद्य अपने चिकित्साकार्य में दक्षिण मालाबार के पंचकर्म चिकित्सा में निपुण वैद्यों की अपेक्षा हकीमों से कहीं अधिक साम्य और सामीप्य रखता है।

विभाजन के पीछे अव्यक्त लक्ष्य

यूनानी के इस पृथक्करण को मुगलों ने मुसलमानों को अधिक आर्थिक सहायता देने के लिए, अंग्रेजों ने हिन्दू मुसलमानों के भेद को बढ़ाने और स्थिर रखने के लिए, उनके उत्तराधिकारी डाक्टरों ने चिकित्सा प्रणालियों की अनंतता का नारा लगाकर सरकारी सहायता से वंचित रखने के लिए और आयुर्वेद महासम्मेलन से असंतुष्ट व्यक्तियों ने इन दो प्रणालियों की "विभिन्नता" की आड़ में नई संस्थाएं बनाकर तथा उसमें अपनी पदलोलुपता की तृष्णा पूरी कर इस ५० वर्ष पुरानी मातृसंस्था से द्रोह करने के लिए, प्रयुक्त किया।

इस प्रकार यह कृत्रिम तथा धूर्ततापूर्ण

विभाजन आयुर्वेद जगत की दृढ़ता के लिये पुनः घातक सिद्ध हो रहा है ।

संकुचित प्रादेशिकता

यह दुर्भाग्य की बात है कि "विभिन्नता" का दुरुपयोग केवल सांप्रदायिक विचारों को ही नहीं, किन्तु संकुचित प्रादेशिक विचारों को लेकर भी किया जा रहा है । यह हमारा सौभाग्य था कि हमारे सामने बम्बई राज्य ने एक भारत विख्यात विद्वान की नियुक्ति आयुर्वेद-विभाग के निर्देशक के पद पर की । पृथक्तव हमें स्वार्थान्धता और पतन के किस स्तर पर ले जा सकता हैं, यह उस प्रश्न से स्पष्ट है जो लोक परिषद् में बम्बई सरकार से विरोधी दल के एक सदस्य ने पूछा कि "बाहर" के व्यक्ति को निर्देशक का स्थान क्यों दिया गया । हमारे देश गें इस प्रकार के व्यक्तियों का होना जो भारतवर्ष की भूमि पर एक भारतीय विद्वान् को विदेशी समझ सकते हैं, उस सांस्कृतिक कर्दम का प्रतीक है जिसमें देश के बहुत से मिथ्या बुद्धिजीवी फंसे पड़े हैं । अभी तक इनकी समझ में यह न आ सका कि यही पृथक्तव और प्रादेशिकता उस दासत्व और विदेशी शासन के मूल कारण थे, जो अगणित शताब्दियों तक भारत को सहने पड़े । दुर्भाग्यवश लोभ, स्वार्थता, क्रोध तथा ईर्षा प्रायः उच्च भावनाओं को पराजित कर देते हैं । एक तो नीच भाव औपसर्गिक रोग की तरह स्वयं ही शीघ्र फैलते हैं, दूसरे प्रादेशिक आन्दोलनों के विरुद्ध प्रतिबन्धि की शक्ति प्रदान करते रहते हैं ।

अंतरनक्षत्रीय कांग्रेस

मैं केन्द्र तथा प्रादेशिक शासनों से अनुरोध करता हूँ कि वह आयुर्वेद महासम्मेलन से टूट कर बनने वाली नवीन संस्थाओंको उसी प्रकाश में देखें जिसके वह राष्ट्रीय कांग्रेस से असंतुष्ट होकर पृथक् होने वाले सदस्यों द्वारा निर्मित संस्थाओं को देखते हैं । कांग्रेस सरकारें उन "नवीन" लक्ष्यों से सुपरिचित हैं जिनका आविष्कार निराश होने के पश्चात् होता है । हम गुजराती वैद्यों, मराठी वैद्यों तथा उर्दू वैद्यों (हकीमों) को एक सिद्ध करने के लिऐ नवीन प्रयत्न कैसे आरम्भ कर सकते हैं, जब कि वह वास्तव में सदा से ही एक हैं । यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि जब बम्बई के मुख्य मंत्री नामदार श्री मोरार जी देसाई ने वैद्यों की एक ऐसी संयुक्त संस्था बनाने की सलाह दी जिसमें प्रत्येक आयुर्वेदिक संस्था के प्रतिनिधि लिए जायें, तो एक दो सप्ताह के भीतर ही आधी दर्जन "अखिल भारतीय" तथा "विश्वसनीय" नवीन संस्थाओं का जन्म हो गया । कुछ "अखिल विश्व" तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं तो ऐसी हैं जिनमें सदस्यों की संख्या की अपेक्षा पदाधिकारियों की संख्या अधिक है । कुछ ऐसी हैं जिनमें सदस्य हैं ही नहीं केवल पदाधिकारी ही हैं । यह सब अपने अपने सम्मेलन करने की धमकियां दे रहे हैं । विज्ञान और मनुष्यता के इन "शुभचिन्तकों" ने एक ही विनम्रता का प्रदर्शन किया है— उन्होंने अभी तक किसी ऐसी "अन्तरनक्षत्रीय" आयुर्वेदिक कांग्रेस की स्थापना की घोषणा नहीं की, जिसकी सदस्यता चन्द्रलोक, मंगल, शुक्रादि निवासी वैद्यों, हकीमों और होमियोपैथी के लिए खुली हो । उन नक्षत्रों के रहने वाले यदि सदस्यता के लिए प्रार्थनापत्र न भी भर कर भेजते और अन्तर्नक्षत्रीय वैद्य हकीम होमियोपैथिक महाकांग्रेस के वृहद् अधिवेशन पर उपस्थित न भी होते,

तो दोष उनका ही होता । संस्था का नामकरण करने वाले तो तब तक निर्दोष रहते जब तक वह अन्य लोक निवासियों के लिए सदस्यता बन्द न करते ।

भारतीय बनो

कुछ राज्यों के स्वास्थ्य मंत्री भारतीय चिकित्सा के इस द्विभागीय कृत्रिम विभाजन से होने वाली भयंकर हानि और प्रगतिरोध को अच्छी प्रकार समझते हैं । कम से कम एक दक्षिण राज्य के स्वास्थ्यमंत्री, श्री फूलचन्द जी गाँधी ने तो हकीमों की एक सभा को सम्बोधित करते हुए उन्हें यह स्पष्ट सम्मति दी कि उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि वह भारतवासी हैं और आयुर्वेदिक चिकित्सक हैं । जब हिन्दी को राष्ट्र-भाषा घोषित किया जा चुका है, उन्हें देश की सहायता करनी चाहिये और जनता की सुविधा के लिये इतरीफल आदि असाधारण शब्दों का प्रयोग न करके त्रिफला आदि सुगम और प्रचलित शब्दों को प्रयुक्त करना चाहिये ।

मैं यह आशा करता हूं कि प्रत्येक "वैद्य" और "हकीम' मेरे कथन पर गंभीरता से विचार करेगा और स्वार्थी तथा देशद्रोही तत्वों के मिथ्या प्रपंच को अपनी एकता का ध्वंस नहीं करने देगा । फूट डालने वाले सांप्रदायिक तत्वों को ऐसे कार्यों में धूर्ततापूर्ण आनन्द का अनुभव होता ही है, परन्तु योग्य सरकारों को उन लोगों के पूर्वेतिहास,, विद्वता, सेवा, बलिदान तथा शास्त्रीय और संघटनात्मक कृतियों को सतर्कता से दृष्टिगोचर कर लेना चाहिये जो उस मातृसंस्था में फूट डालने का प्रयत्न करते हैं जिसने गत अर्द्ध शताब्दि से वैद्य समाज और देश की रक्षा की है ।

पुराने नेताओं का कर्तव्य

यदि संस्था में कोई ऐसे पुराने सदस्य विद्यमान हैं जो इन भयंकर चालों का इस आशा से गुप्त समर्थन करते हैं कि उनके असफल होने पर छिपे रहेंगे और सफल होने पर खुले मैदान में आ जायेंगे, मैं उनसे विनय पूर्वक यही प्रार्थना करूँगा कि वह अधिक सहायक और सौजन्यपूर्ण प्रवृतियों का अनुशीलन करें । यदि आज आयुर्वेद जगत में आयुर्वेद महासम्मेलन एक जीवित शक्ति है, वह इसलिए कि उन्होंने इसे जन्म दिया । यदि उनके अधिकार में इसे सफलता प्राप्त नहीं हुई तो वह उनकी त्रुटि के कारण नहीं, किन्तु इसलिए कि उस कठिन काल में कोई भी सफल नहीं हो सकता था । यह श्रेय उन्हीं को है कि जिस संस्था को उन्होंने जन्म दिया वह आज प्रगति के पथ पर बढ़ती ही जा रही है । केवल इसलिए कि इसकी उन्नति अन्य अधिकारियों के हाथों में हो रही है, इसे उनके आशीर्वाद से वंचित नहीं रहना चाहिए । महानता तथा निष्कपटता की कसौटी पर संस्था को दृढ़ता प्रदान करना है न कि उसकी जड़ खोदना । यह ध्यान में रखना चाहिये कि नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की सदस्यता हकीमों के लिए कभी बन्द नहीं हुई और हकीम सदा इसके सदस्य रहे और हैं । राष्ट्रीय सरकार का यह कर्तव्य है कि हमारी आपसी फूट की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन न दे, परन्तु यदि हम से साम्प्रदायिक पक्षपात के कारण कोई अनौचित्य हुआ हो तो उसका हमें दण्ड दे ।

फ्रेंच काउण्ट की कथा

अपने विज्ञान, अपनी संस्था और अपने देश के प्रति वही प्रेम सच्चा है जो नेतृत्व की

भावना से स्वतन्त्र हो। उन्हें फ्रेंच लेखक मौपास्सा के उस काउण्ट की कथा याद रखनी चाहिए जो अपने पुत्र-स्नेह को सदा अद्वितीय मानता था। इससे तंग आकर उसकी पत्नी ने एक दिन कह दिया कि इनमें से एक पुत्र तुम्हारा नहीं है। काउण्ट के हृदय पर भारी चोट लगी। दिन-रात वह यही जानने की चिन्ता में रहता था कि उन पुत्रों में किसकी आकृति उससे अधिक भिन्न है। क्रोध और ईर्षा से अभिभूत होकर वह सभी से घृणा करने लगा और उनका अपने सामने आना भी बन्द कर दिया। सर्वथा भग्न हृदय होकर उसने अपनी स्त्री से प्रार्थना की कि वह उसे सच बता कर उस दुविधा से दूर करे जिससे वह विक्षिप्त बना जा रहा था। तब कोमल होकर उसने कहा "पुत्र तो सब तुम्हारे ही हैं। मैंने यह असत्य केवल तुम्हें यह ज्ञान कराने के लिए बोला था कि तुम्हारा स्नेह अपने पुत्रों से नहीं था। वास्तव में तुम अपने पर ही आसक्त थे, वह तुम्हारे व्यक्तित्व का ही विस्तार थे। इसी कारण तुम्हें उनसे स्नेह था। व्यक्तित्व पर सन्देह होते ही तुम्हें सब से घृणा हो गई। उनके प्रति स्नेह तुम्हारी भयंकर आत्म-आसक्ति के लिए एक ओट थी" यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस घटना के पश्चात् काउण्ट कुछ अधिक खिन्न परन्तु अधिक गम्भीर मनुष्य बन गया। क्या आयुर्वेद के पुराने नेता इस आशा से आयुर्वेद महासम्मेलन के शत्रुओं का गुप्त समर्थन करते हैं कि कोई यह न कह सके कि जहां संस्था को प्रभाव और शक्ति प्रदान करने में वह असफल रहे वहां दूसरे व्यक्ति सफल हो गये; कुछ रुक कर इस फ्रेंच काउण्ट की कथा पर विचार करेंगे? यदि उनका दृष्टिकोण यही है कि या तो वह सदा सत्तारूढ़ रहें अन्यथा गुप्त रूप से विभाजन और ध्वंस को प्रोत्साहन दें, तो क्या वह विज्ञान और संस्था के सच्चे सेवक कहला सकते हैं?

मैंने ऊपर सत्य तथा कर्तव्य परायणता के सिद्धान्तों पर कुछ सामान्य विचार प्रकट किये हैं। यह मुझ पर, आप पर, अथवा अन्य किसी भी व्यक्ति पर घट सकते हैं। इन वाक्यों से जो इनका वास्तविक अभिप्राय है वही ग्रहण करना चाहिए।

त्याग-पत्र और आश्वासन

इस भाषण की पूर्ति से पहले मैं आयुर्वेद महासम्मेलन के अध्यक्ष-पद से दिये गये त्यागपत्र, जो इस अधिवेशन की समाप्ति के साथ ही लागू होगा, के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूँ। मुझे देश भर से सन्देश आये हैं कि मैं इस कठिन काल में इस संस्था की अध्यक्षता न छोड़ूँ। लोग यह विश्वास नहीं करते कि कोई व्यक्ति उच्चाधिकार से पृथक् होकर भी महासम्मेलन की सेवा कर सकता है। यदि वह सिद्धान्त मुझ पर लगता है तो मैं इसका विरोध करूँगा। आयुर्वेद महासम्मेलन की दृढ़ता की रक्षा के लिए मेरा सब से कठिन प्रयत्न उस समय किया गया जिस समय कि महासम्मेलनाध्यक्ष मैं नहीं था। मैं १९५२ के काण्ड की बात कर रहा हूँ, जब श्री जादव जी त्रिकम जी आचार्य के अध्यक्षकाल में देहली में एक ऐसी उलझन पड़ गई कि उसे सुलझाना कठिन देखकर और संस्था की उससे होने वाली हानि से दुखी होकर उन्होंने अध्यक्ष-पद से त्याग-पत्र दे दिया और महासम्मेलन

को उसके भाग्य पर छोड़ दिया। उस समय मुझे कार्याध्यक्ष के रूप में आसन ग्रहण करना पड़ा। महासम्मेलन को पुनः प्राकृतिक अवस्था पर लाने के लिए मुझे जो भारी मूल्य उस समय देना पड़ा वह वे लोग जानते हैं जो महासम्मेलन की प्रगति से निरंतर सम्पर्क रखते हैं। उस समय जब कि देश-विभाजन की विपत्तियों से पूर्णतया निकल भी नहीं पाया था, देहली के न्यायालयों में अभियोगों की देख-रेख करना और बम्बई में अपने व्यवसाय को संभालना मेरे लिए इतना कठिन और दुष्कर हो गया था कि उस समय के अत्यधिक परिश्रम से हुई शारीरिक और मानसिक क्षति को आज भी अनुभव करता हूँ। जिन मित्रों का अधिकार और शक्ति महासम्मेलन में मैंने अपने हाथों से निर्मित की थी उनके परिवर्तनशील स्नेह और भक्ति ने एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी, जिसके लिए मैं तैयार नहीं था और जो संभलती नहीं दीखती थी। तथापि संस्था को उस भयंकर दुरवस्था से निकाल कर मैंने अध्यक्ष-पद तुरन्त श्री जादवजी त्रिकमजी आचार्य को संभाल दिया। यह उदाहरण आपके सामने होते हुए आपको यह विश्वास करना कठिन नहीं होना चाहिए कि मेरा सहारा जब भी आपको अनिवार्य प्रतीत होगा तो वह प्रत्येक अवस्था में आपको प्राप्त होगा।

नवीन नेतृत्व के लाभ

इसके अतिरिक्त मुझे यह भयावह प्रतीत होता है कि मतदाता निरन्तर एक व्यक्ति का ही सहारा लें। इस प्रकार एक मनुष्य पर ही निर्भर रहना संस्था में एक व्यक्ति-शासन उत्पन्न कर देता है जिसे मैं संस्था के प्रसार और उन्नति के लिए अच्छा नहीं समझता। इससे सदस्यों में उन्नत होने की स्वस्थ अभिलाषा, आशा और कार्यारम्भक बुद्धि ही नष्ट नहीं होती, किन्तु नवीन नेतृत्व की उपज में बाधा पड़ती है। यदि नवीन प्रधानों के नेतृत्व में कुछ भूलें होने की संभावना भी हो तो नया रक्त और नया नेतृत्व उत्पन्न करने और उसकी योग्यता की परीक्षा लेने के लिए यह कोई बड़ा मूल्य नहीं। हम लोगों का अखिल भारतीय निर्वाचन क्षेत्र (लंकासहित) इतना विशाल है और सभापति का चुनाव इतना कठिन हो गया है कि देश भर में ख्याति प्राप्त किये बिना किसी भी वैद्य के लिए महासम्मेलन का सभापति बनना सम्भव नहीं रहा। वैसी ख्याति तब तक प्राप्त नहीं हो सकती जब तक महासम्मेलन का सभापतित्व प्राप्त न हो। इस चक्र को तोड़ने का एक ही मार्ग है कि इस बार पदाधिकारियों के चुनाव के समय अध्यक्ष का भी चुनाव साथ ही साथ कर दिया जाए। आपको यह स्मरण रखना चाहिये कि स्वयं नेता बन जानें की अपेक्षा नवीन नेता उत्पन्न करने का कार्य कहीं अधिक दुष्कर है। मैं इस कार्य में आपसे पूर्ण सहयोग की आशा रखता हूँ। आगे चल कर इस नीति से संस्था को बहुत लाभ होगा।

एक व्यक्तिगत सूचना

मेरे त्याग-पत्र के पीछे एक अन्य कारण भी है, वह यह कि केन्द्र और अन्य राज्यों के उच्च अधिकारी जिन्होंने आयुर्वेद का सदा समर्थन किया है और जिनमें मुझे गम्भीर

विश्वास और श्रद्धा है उनका विचार है कि यद्यपि असत्य के प्रति मेरी असहिष्णुता सिद्धान्तरूप में अनुचित नहीं, परन्तु जिन कठोर शब्दों में मैं उसे व्यक्त करता हूँ उनसे जिस रूप में वह आयुर्वेद का समर्थन करना चाहते हैं उसमें उन्हें संकोच और कठिनाई अनुभव करने पड़ते हैं। मैंने अपनी स्थिति के समर्थन में उनसे लम्बी और मार्मिक बातचीत की है परन्तु मैं उनका यह विचार नहीं बदल सका कि मेरे वक्तव्यों का सर्वथा सत्यमूलक और निर्भ्रान्ति होना मेरी भाषा को इतनी कठोर और मर्म-वेधी होने का अधिकार नहीं देता। मैं उनके विचारों का आदर करता हूँ और उनके आदर्श को स्वीकार कर रहा हूँ। कोट्टकल के भाषण के पश्चात् मैंने आयुर्वेद के कट्टर से कट्टर शत्रुओं के विरुद्ध भी किसी कटुशब्द का प्रयोग नहीं किया है। मेरा यह विश्वास है कि किसी ऐसे व्यक्ति के लिए सभापति का आसन रिक्त करने में जो मेरी अपेक्षा कम कठोर और श्रेष्ठतर कूटनीतिज्ञ हो मैं आयुर्वेद के उन शुभ चिन्तकों की सहायता कर रहा हूँ, जिन्हें मैं संकोच और कठिनाई से निर्मुक्त देखना चाहता हूँ।

मैं आप को यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि आयुर्वेद और महासम्मेलन के लिए मेरा स्नेह उपर्युक्त कथा के फ्रेंच काउण्ट के पुत्र-स्नेह से सर्वथा भिन्न है। इसका नेतृत्व कोई भी करे मेरा समर्थन इसे सदा ही प्राप्त होगा। जिसे हम सभापति चुनेंगे उसे भी मैं सहयोग और साहाय्य दूंगा और उसे आवश्यकता होगी तो उसका पथ-प्रदर्शन करूंगा।

पुनः प्रार्थना

अन्त में मैं एक बार फिर अनुरोध करूंगा कि अपने लक्ष्य और अपनी संस्था के प्रति सच्ची और निस्वार्थ सेवा की प्रवृति की उन्नति, तथा दृढ़ता और संगठन की रक्षा द्वारा विभाजन और फूट की प्रवृत्तियों को निर्मूल कर दें।

चिकित्सकों व धर्मार्थ औषधालयों को
विशेष सुविधा
सभी प्रकार के उत्तम, गुणकारी भस्म, रस, मात्रा, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, गुग्गुलु, गुट्टिका, आसवारिष्ट, अवलेह आदि नित्योपयोगी औषधों के थोक व सस्ते भाव में मिलने का—
विश्वसनीय स्थान—
बोध, चिह्न
नवशक्ति आयुर्वेदालय
लिमिटेड, भुसावळ.
शाखा—जब्बलपुर (म० प्र०)

निखिल-भारतीय-आयुर्वेद-विद्यापीठ शिक्षासम्मेनलस्य त्रिवेन्द्रंनगरे चत्वारिंशदधिवेशने सभापतेः भि० वि० डेग्वेकरस्य

अध्यक्षीयं भाषणम्

(दि० २३-५-५५)

श्रीमन्तः स्वागताध्यक्षमहोदयाः
विद्यापीठसदस्याश्च !

सर्वश्रेष्ठस्यास्य आयुर्वेदविद्यापीठस्य चत्वारिंशदात्मके अधिवेशने सभापतित्वेन नियोज्य यदद्य भवद्भिर्मम बहुमानः कृतः तदर्थमत्यन्तमुपकृतोऽस्मि भवादृशाम् ।

प्रास्ताविकम्

अधिकारस्यास्य स्वीकारायात्यन्तं संकोचं प्राप्नोति मे मनः । यतः यैः दिग्गजपण्डितैः अलंकृतं इदमासनं गत ऊनचत्वारिंशत् अधिवेशनेषु, तेषां तुलनायां तथाविधमेव असमर्थोऽस्मि आयुर्वेदशास्त्रप्रमेयान् विशदीकर्तुं यथा खद्योतः सूर्यवत् जगत्प्रकाशीकर्तुम् । गीर्वाणवाण्यास्ते प्रकांडपण्डिताः आसन् । मया तु तदध्ययनं मैट्रिकपरीक्षोत्तीर्णतां यावदेव कृतम् । तैस्तु प्रसिद्धायुर्वेदविद्यालयेषु प्रधानाध्यापकस्थानं अलंकृतम् । मया तु तावत् स्वपर्णकुटिकायामेव त्रिचतुर्णां छात्राणां अध्यापनं क्रियते प्रति दिवसम् । अतो मन्येऽहं स्वकीयां संपूर्णां अपात्रतां भवद्भिः प्रदत्तस्य अधिकारस्य निर्वाहणाय ।

अंधकारमय्यां अस्यां परिस्थित्यां तावत् किंचित् मात्रकः आशाजनक एक एव सूक्ष्मकिरणः दरीदृश्यते । सः तु अस्मिन् आयुर्वेदशास्त्रे मम अविरतश्रद्धाविश्वासरूपः । गत पंचत्रिशत् अब्देषु अस्य शास्त्रस्य अध्ययनाध्यापने मया निरन्तरं कृते । तेन एतच्छास्त्रविषयिणी श्रद्धा अत्यन्तम् प्रबलतां याता । मन्ये तावत् प्राचीनग्रन्थचतुष्टये चरकसुश्रुताष्टाङ्गसङ्ग्रहाष्टाङ्गहृदयरूपे योजितं न केवलं एकैकं वाक्यं अपि तु एकैकः शब्दः सत्यः परिवर्तितुं अशक्यश्च । शरीरावयवाः, शरीरे सञ्चालिता विभिन्नाः क्रियाः एवं मानवशरीरातिरिक्ते जगति उपलब्धानां पाञ्चभौतिकद्रव्याणां शरीरे विपरिणामाः तथैव यावच्चन्द्रदिवाकरौ भवेयुर्यथा तेषु ग्रन्थेषु वर्णिताः । यतः तद्ग्रन्थोक्तवाक्यानि आप्तवाक्यानि । आप्तानां लक्षणं चरक सू० ११ अध्याये एवं कृतम्ः—

रजस्तमोभ्यां निर्मुक्ताः तपोज्ञानबलेन वै ।
येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा ॥१८॥
आप्ताः शिष्टाः विबुद्धास्ते
तेषां वाक्यमसंशयम् ।
सत्यं, वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं,
नीरजस्तमाः ॥१९॥

एतादृशीश्रद्धायुतेन अन्तःकरणेन यदा शास्त्राध्ययनं क्रियते तदैव एकैकसिद्धांतविषयको दृढो निश्चयो जायते । पंचमहाभूत, त्रिदोष, द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकप्रभाव, लोकपुरुषयोः अवयवविशेष—सामान्यसिद्धान्ता मूलग्राहिणः । तेषां मूलतत्वेषु लेशमात्रं परिवर्तनं असंभवम् । न च ते सिद्धान्ता अर्वा-

चीनवेव्हथिअरी, कार्पस्कुलर थिअरी, डार्विनविकासवादादिवत् परिवर्तनशीलाः, ये, तथाकथिते प्रगतिसंज्ञके आवरणे एकदिनं प्रसिद्धीक्रियन्ते द्वितीयदिने तु स्वीकारानर्हत्वात् त्याज्यन्ते ।

अत्र तु केषांचित् शास्त्रविषयकानां प्रमेयाणां भवतां सकाशे उपस्थातुं मे प्रयत्नः, यस्मिन् अहं उपरिनिर्दिष्टश्रद्धायुक्तेन मनसा प्रेरितः। यथा बालोच्चारितान् अस्पष्टशब्दान् प्रेमपुरःसरं श्रुणुत पितरौ, तथैव मन्यमानाः भवन्तः मां कृतार्थं कुर्वन्तु इति नम्रतया प्रार्थयति एष जनः ।

त्रिदोष सिद्धान्तविशदीकरणमेव विवेचनस्य अस्य प्रधानः विषयः। एवं (१) के नाम शारीरपदार्थाः त्रिदोषाः (२) प्रत्यक्षज्ञानं तेषां कथं केषु शरीरावयवेषु वा भवितुं अर्हंति, (३) कानि तेषां प्रभवस्थानानि (४) कथं च कैः मार्गैः वा तेषां संचारः भिन्नेषु शरीरावयवेषु (५) कानि तेषां कर्माणि (६) के च तेषां गुणाः (७) कर्मपरिणामश्च कीदृशः इत्यादि विषयाणां विवेचनं प्रत्यक्षशारीरं अनुसृत्य ग्रन्थचतुष्टयस्य तद्विषयकवचनानि च विशदीकृत्य अत्र क्रियते । यद्यत् अस्मिन् विषये संशोधनं कृतं गतपंचत्रिशद्वर्षेषु भवताम् अनुचरेण, तथा तद्विषये यदन्तिमो निर्णयो निश्चयीकृतः, तत्सर्वं एव अद्यसम्मिलितविद्वन्मंडलिपुरतः विचारार्थं पुरस्करणाय अन्यः अवसरः मया कदा प्राप्तव्यः ?

प्रकरणंप्रथमम्

१. आयुर्वेदस्य मूलाधारसूत्राणि

प्राचीनशास्त्रसिद्धान्तास्तु प्राकृतिकाधारेष्वधिष्ठिताः अनुभूयंते । तेषां मूलाधारः बालैः अपि विज्ञातुमर्हः कश्चित् व्यवहारो भवति । जगति अस्मिन् परस्परविरुद्धगुणानां द्वन्द्वानि व्यक्तिमात्रस्य आलोचनविषयकानि । यथा शीतोष्ण, गुरुलघु, स्निग्धरूक्ष, मृदुकठिन सूक्ष्मस्थूलादीनि । अशिक्षितः पुरुषोऽपि स्वानुभवेन वैशिष्ट्यं जानीते एतादृशानाम् द्वन्द्वानाम्, यदा स शीतमनुभवति तदा आतपसेवने प्रयत्नवान् भवति । शीतकाले यदा शीतवायुसंसर्गात् शारीरत्वक् रूक्षा स्फुटिता च भवति, तदा तैलघृतादिस्निग्धद्रव्यमर्दनं करोति । एवं

विपरीतैर्विपर्ययः । अ० हृ० सू० १--१४

इति सिद्धान्तो दैनंदिनव्यवहारेऽपि तस्य प्रतीतिविषयः ।

एवमेव यदा स ज्वरपीडितस्तदा शीतावस्थायामाच्छादयति शरीरं कम्वलेन; उष्णावस्थायां तु कम्बलं निःसारयति। यतः कम्बलकृतोष्मा ज्वर संजातोष्मणः वृद्धि करोतीत्यतः

वृद्धिः समानैः सर्वेषाम् । अ० हृ० सू० १—१४

इति अनुभवजन्यं ज्ञानं सञ्जायते ।

एवमनेन सूत्रयुग्मजन्येन ज्ञानरूपेण मूलाधारेण सम्पूर्णम् आयुर्वेदशास्त्ररूपं आगारं धार्यते ।

२. विवेचनपद्धतिनिश्चयः

शास्त्रमिदं वैज्ञानिकम् । विवेचनमपि तस्य वैज्ञानिकपद्धत्या एव करणीयम् । दार्शनिकविवेचनं अकिंचित्करं अस्मिन् वैज्ञानिके युगे। छात्रैरपि न तदाद्रियते विचारधाराया अदृढमूलत्वात् । आयुर्वेदीय ग्रन्थानां टीकाकारैः अरुणदत्तचक्रपाणिडल्लनादिभिरपि वैज्ञानिकपद्धत्या एव विवेचनं कृतम् । यथा अष्टाङ्गहृदये सूत्रस्थाने षष्ठाध्याये दृश्यते ।

"कृशानां बृंहणायालं स्थूलानां कर्षणाय च।"

इति सूत्रस्य व्याख्यायाम्, एवम् अन्यत्रापि ऋतुचर्यायाम् ।

३. त्रिदोषविवेचनोपादेयता

यावन्ति मूलद्रव्याणि देहे दृश्यन्ते तेषां विभजनं वर्गत्रये कृतम् ।

(१) दोषास्ते ये स्वेतरान् मूलद्रव्यान् दूषयन्ति । इत्येषः तेषां विशेषधर्मः । 'दूषयन्तीति दोषाः', इति दोषशब्दनिरुक्ति : । दोषास्त्रयः ।

(२) दूष्यास्तानि मूलद्रव्याणि दोषातिरिक्तानि यानि च दोषैः दूष्यन्ते । 'दोषैर्दूष्यन्ते' इति दूष्यशब्दनिरुक्तिः ।

दूष्याण्यपि द्विधा विभज्यन्ते धातुमलभेदात् ।

(२ अ) धातवस्ते ये शरीरं धारयन्ति, देहे नित्यं वर्तमानास्ते शारीरक्रियाभिः क्षीयमाणे शरीरे, आहारसम्यग्विपाकात् उत्पद्यमानैः तैः शरीरस्य पूर्ववत् पुनरपि पुष्टिः । धातवः सप्त ।

(२ ब) मलसंज्ञा तु तेषां दूष्याणां ये आरंभावस्थायां शरीरस्य धारकाः । अंतिमावस्थायां तु शरीरोपघातवत्वात् बहिः निःसरणशीलाः । प्रधानमलाः त्रय एव ।

एवं दोषत्रयधातुसप्तकमलत्रयाणि त्रयोदशमूलद्रव्याणि शरीरस्य ।

अतः

दोषधातुमलमूलं हि शरीरम् ।
सु० सू० ११-२

दोषाधातुमलामूलं सदा देहस्य ।
अ० हृ० सू० ११-२

इति मूलशारीरद्रव्यनिदर्शकानि सूत्राणि ।

दोषास्त्रयः—वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दाषाः समासतः । अ० हृ० सू० १-६

धातवः सप्त—रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि धातवः । अ हृ० सू० १-१३

प्रधानमलास्त्रयः—मला मूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपि च ।
अ० हृ० सू० १-१३

सप्तधातवस्त्रयोमलाश्च जीवितशरीरेऽपि. दृश्यन्ते स्थूलत्वात् अतः तेषां गुणधर्माः विज्ञानविषयाः । दोषास्तु जीवयुक्तशरीरे वर्तमानाः मृतशरीरे अभावत्वात्, जीवयुक्तशरीरे एव विज्ञानविषया भवितुं अर्हन्ति । ते अपि महास्रोतस्येव प्राधान्येन उत्पद्यमानाः न तावत् सुखेन उपलब्धिविषयभूताः । अतस्ते शङ्काविषयाः ।

शङ्काया अस्या निराकरणमेव प्रबन्धस्य अस्य प्रधानोद्देशः । तदद्य उपलब्धसाधनैः आधुनिकशास्त्राधारैः प्रत्यक्षप्रमाणद्वारा च अत्र साधयितुं प्रयत्नः क्रियते ।

प्रबन्धस्यास्य प्रथमविभागे दोषाणां द्रव्यत्वपांचभौतिकत्वादिविवेचनं ग्रन्थोक्ताधारैः कृत्वा द्वितीय विभागे तेषां शारीरप्रत्यक्षकरणे प्रयत्नः कार्यः ।

४. महास्रोतः ।

दोषविज्ञानस्य महास्रोतःसंज्ञकावयवविज्ञानमूलत्वात् तस्यैव विवरणं क्रियते ।

आहारादृते देहधारणमसंभवमिति तु विदितमेव सर्वेषां शरीरधारिणाम् । अतः स आहारः कथं तद्धारणं करोति इति प्रधानविज्ञानविषयः ।

मुखादारभ्य गुदपर्यन्तं प्रसृता या दीर्घा नलिका सा महास्रोतस्संज्ञया व्यवह्रियते । शरीराभ्यन्तरे महाकोष्ठे वर्तमानेभ्यः नानावयवेभ्यः प्रवर्तमाना अनेकविधाः स्रावाः अस्यां नलिकायामुदीर्यन्ते, आहारेण सह च मिश्रीभवन्ति । मुखप्रविष्टस्य आहारस्य दन्तैश्चूर्णीकरणक्रियायां दन्तवेष्टानाम् ऊर्ध्वाधोनयनात् हनुमूले वर्तमाने लालाग्रंथिद्वये पीडिते, कश्चिद्रसः ताभ्यां स्रवति । मुखकुहरस्य अन्तस्त्वचायामपि अनेकानेकाः सूक्ष्मग्रन्थयः । तेभ्योऽपि स्रावः निरन्तरं निष्पाद्यते येन अस्मादृशां मुखकुहरं सदैव आर्द्रीक्रियते ।

५. बोधककफः ।

सम्मिश्रितस्रावद्वयस्य अस्य बोधककफ इति संज्ञा प्राचाम् ।

आह चरकः—

अन्नस्य भुक्तमात्रस्य षड्रसस्य प्रपाकतः ।
मधुराद्यात्कफोद्भावात्फेनभूत उदीर्यते ॥
च० चि० ११-९

आहारस्य प्रथमग्रासे मुखे प्रविष्टे, उपरिनिर्दिष्टग्रन्थीनाम् उत्तेजनात् स्राववृद्धि । सुग्रासान्नदर्शने अपि तासामेव ग्रन्थीनाम् उत्तेजनात् मुखकुहरे जलाभिवृद्धिर्भवतीति प्रायः सर्वेषामेव अनुभूतिविषयः ।

बोधककफविवरणे प्राञ्चः—

··· ··· रसबोधनात् ।
बोधको रसनास्थायी ।
अ० हृ० सू० १२-१७

अथवा

जिव्हामूलकण्ठस्थो जिव्हेन्द्रियस्य सौम्यत्वात् सम्यक् रसज्ञाने प्रवर्तते ।
सु० सू० २१-१४

६. क्लेदकः कफः ।

तदेवान्नं बोधककफसंज्ञकद्रव्येण मिश्रीभूतं यदा आमाशये अवतरति, तदा आमाशयस्य आभ्यन्तरावरणरूपत्वचः अन्यः स्रावः उत्पद्यते यस्य क्लेदककफः इति संज्ञा प्राचाम् ।

विवरणं चास्य—

(१)... ...यस्त्वामाशयसंस्थितः ।
क्लेदकः सोऽन्नसंघातक्लेदनात् ।
अ० हृ० सू० १२-१६

(२) तत्रामाशयः····चतुर्विधस्याहारस्याधारः, स च तत्र उदकैः गुणैः आहारः प्रक्लिन्नः, भिन्नसंघातः सुखजरश्च भवति ।
माधुर्यात्पिच्छिलत्वाच्च प्रक्लेदित्वात्तथैव च ।
आमाशये सम्भवति श्लेष्मा मधुरशीतलः ॥
सु० सू०२१-१२,१३

क्लेदककफश्चासौ आमाशयान्तस्त्वचः निःस्रुतः प्रत्यक्षं द्रष्टुं शक्यः । कुक्कुरस्य आमाशये छिद्रं कृत्वा नलिकां संयोज्य वाह्यस्थितपात्रे विधारितः असौ वैज्ञानिकैः । जलांशश्च अस्मिन् प्रतिशतं ९९.५ मितः । द्रवद्रव्यस्य अस्य प्रधानं कार्यं अन्नसंघातक्लेदनं एव इति यथा प्राचीनाचार्यैः निर्दिष्टं तथैव अनुभवविषयः अतः अयमेव क्लेदककफः ।

७. वामकुक्षिः

क्लेदककफस्य सम्मिश्रणं आहारे यथोचितं भूयात् इति विज्ञानं पूर्वाचार्यैः सम्पादितमासीत् इत्यस्य भोजनानन्तरम् वामकुक्षौ शयनं आवश्यकं इति दिनचर्याव्यवहारः एव निदर्शकः । आमाशयः उदरगुहायां दृतिवदाकारिकः आशयः यस्य विस्फारितो भागः आधिक्येन वामार्धे अवतिष्ठते । भोजनानन्तरं वामकुक्षौ शयानस्य, आहारस्य अधिककालं तस्मिन् एव विस्फारितभागे वर्तमानस्य, क्लेदककफस्रावः अधिकप्रमाणेन सम्मिश्रीभूय तं आहारं सुक्लेदितं सुखजरं च करोति ।

८. पाचकपित्तम

तत्पश्चादाहारः पक्वामाशयमध्ये—पच्यमानाशयलघ्वंत्रेति अपरपर्याये—प्रविशति । आगते तत्र अपरः स्रावः मिश्रीभवति तेन, यस्य पाचकपित्तमिति संज्ञा कृता आचार्यैः ।

आह चरकः—

परं तु पच्यमानस्य विदग्धस्याम्लभावतः ।
आशयाच्च्यवमानस्य पित्तमच्छमुदीर्यते ॥
च० चि० १५-१०

स्रावोऽयं यकृदग्न्याशयइति संज्ञकात् ग्रन्थिद्वयात् निःस्रुतः ग्रन्थिद्वयाद्वाहिनी नलिके आदौ भिन्ने पश्चादेकीभूते, लघ्वन्त्रस्य प्रारं-

भिकभागे, एनं मिश्रीभूतं स्रावं पातयतः। कार्यं हि अस्य स्रावस्य अन्नविपाचनं अत एव तस्य पाचकपित्तमिति संज्ञा। यकृत्संज्ञका ग्रन्थिः बृहत्तमा अस्मिन् शरीरे।

आह वाग्भटः अष्टाङ्गहृदये—

(१) ··· ··· तत्र पक्वामाशयमध्यगम्।
पंचभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयात् ॥१०॥
त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मणाऽनलशब्दितम्।
पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक्तथा॥११॥
तत्रस्थमेव शेषाणांपित्तानामप्यनुग्रहम्।
करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम्॥१२॥

अ० हृ० सू० १२

स एवाष्टाङ्गसङ्ग्रहे

(२) तत्र यदामपक्वाशयमध्यगं पंचमहाभूतात्मकत्वे अपि **तेजोगुणोत्कर्षात्क्षपितसोमगुणं ततश्च त्यक्तद्रवस्वभावं** सहकारिकारणैः वायुक्लैदादिभिः अनुग्रहात् दहनपचनादि क्रियया लब्धाग्निशब्दं पित्तं अन्नं पचति सारकिट्टौ विभजति शेषाणि च पित्तस्थानानि तत्रस्थमेव अनुगृण्हाति तत्पाचकमित्युच्यते। अ०सं०सू० २० अध्याय

आह सुश्रुतः—

(३) तच्च अदृष्टकेन विशेषेण पक्वामाशयमध्यस्थं पित्तं चतुर्विधं अन्नपानं पचति, विवेचयति च रसदोषमूत्रपुरीषाणि, तत्रस्थमेव च आत्मशक्त्या शेषाणां पित्तस्थानानां शरीरस्य च अग्निकर्मणा अनुग्रहं करोति, तस्मिन्पित्ते पाचकोऽग्निरिति संज्ञा।

सु० सू० २१-१०

पाचकपित्तविषयकानेकधर्माणां ज्ञानं संपाद्यते अवतरणत्रयात्।

(१) पाचकपित्तं पांचभौतिकद्रव्यम्। यथा सर्वाणि शारीरद्रव्याणि पंचमहाभूतविकारात्मकानि तथा एव इदमपि।

आह चरकः—

तत्र शरीरं नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पंचमहाभूतविकारसमुदायात्मकं समयोगवाहि।

च० शा० ६-३

(२) द्रव्यमिदं पक्वामाशयमध्यगम्। गच्छति इति गम्। इति निरुक्तेः द्रव्यं इदं पक्वामाशयमध्ये गच्छति। एवम् तस्य उत्पत्तिः कस्मिन्नपि अन्यस्थाने (यकृदग्न्याशययोः) भूत्वा तस्मात् तत् द्रव्यं अस्मिन् पक्वामाशयमध्ये आगच्छति।

(३) विवेचने अस्मिन् यत् त्यक्तद्रवत्वशब्दो नियोजितः सः अर्थबाहुल्यद्योतकः। (१) पाचकपित्तसंज्ञकं द्रव्यं **द्रवद्रव्यमेव** इति निश्चितम्। (२) तेन द्रवद्रव्येण स्वकीयः **द्रवस्वभावः** त्यक्तः। (३) एष एव **द्रवद्रव्यस्वभावः** यत् अन्येन येन घनेन सान्द्रेण द्रव्येण वा-संयुज्यते तमपि **द्रवीकरोति**। (४) किन्तु पाचकपित्तसंज्ञकेन द्रवेण द्रव्येण तं द्रवीकरणस्वभावं परित्यज्य **पाककरणस्वभावः** अङ्गीकृतः। यथा गंधकाम्लं यद्यपि द्रवद्रव्यमेव तथापि येन शरीरत्वग्वस्त्रादि द्रव्येण संयुज्यते तं तात्कालमेव भस्मीकरोति तद्वत्। अतएव अष्टाङ्गसङ्ग्रहे—

'तेजोगुणोत्कर्षात् क्षपितसोमगुणं ततश्च त्यक्तद्रवस्वभावं' इति वाक्ययोजना।

(४) पित्तमग्निरिति संज्ञाद्वयं एतदर्थमेव कृतं यत् यथा बाह्याग्निः स्थालीस्थतोयतण्डुलमिश्रणं पक्त्वा देहसात्म्ययोग्यं परिवर्तयति, तथैव पाचकपित्तमपि आहारे मिश्रीभूय जीवरासायनिकक्रियया आहारपरिवर्तनं सारकिट्ट संज्ञकेषु द्रव्येषु करोति, द्रव्यान् तान् विभजति च। एषा विभाजनक्रिया absorption इति संज्ञया प्रसिद्धा आधुनिकशास्त्रेषु। संशोषितः सारभागः रसरक्तादि

धातुषु परिणमति किट्टभागः तु वातमूत्रशकृतादिद्रव्येषु परिणतः अन्ते शरीरात् बहिः निरस्यते ।

पाचकपित्तस्यैतादृशं सुन्दरं सुस्पष्टं प्रात्यक्षिकं च विवरणं त्रिसहस्राधिकवर्षपूर्वं आचार्यैः कृतं इति दृष्ट्वा ते वस्तुतः आप्त संज्ञार्हाः इति शतगुणितो भवति अस्मादृशां आदरः तेषां कृते ।

६ अपानवायुः ।

पाचकपित्तमिश्रः आहारः लघ्वंत्रे संचरन सारकिट्टेषु विभज्यते इति उक्तपूर्वम् । लघ्वंत्रं सार्धत्रिव्याम (२० फुटाः) दीर्घम् । तत्र सम्पूर्णनलिकायां संचरन् आहारपरिणमनाज्जातः अन्नरसः संशोष्यते । हृदयफुफ्फुसाद्यवयवेषु शुद्ध्यर्थं गच्छतिच । इत्येतत्सर्वं अंतिमपरिच्छेदे वर्णनीयम् ।

अवशिष्टः असारभागः लघ्वंत्रात् बृहदंत्रे गच्छति । अस्यैव बृहदंत्रस्य पक्वाशयं इति संज्ञा प्राचाम् । अत्र आगतात् असारभागादपि सूक्ष्मं संशोषणं भवत्येव । तस्यां विभजनक्रियायां वातसंज्ञकं वायुरुपद्रव्यं (gaseous substance,) उत्पद्यते । तदेवायुर्वेदीयं वात द्रव्यम् ।

आह चरकः—

पक्वाशयं तु प्राप्तस्य शोष्यमाणस्य वन्हिना ।
परिपिण्डितपक्वस्य वायुः स्यात् कटुभावतः ॥

अन्तिमपरिणमनक्रियायाः समीकरणरूपेण दिग्दर्शनम् एतद्विधम् ।

आहारः + पाचकपित्तम् = अन्नरसः + शकृन्मूत्रे, वायुश्च । अतएव चक्रदत्तः चरकटीकायाम्—

अन्नाद्यः किट्टांशः तेन मूत्रपुरीषे भवतः वायुश्च । च० सू० २८-४ चक्रदत्त

वायुसंज्ञकस्य अस्य द्रव्यस्य विवरणं अग्रे द्वितीयप्रकरणे क्रियते । महास्रोतसि आहारपरिणमनक्रियायां कफपित्तवातसंज्ञकानि त्रीणि द्रव्याणि क्व कथं कदा च उत्पद्यन्ते, अन्यस्थाने उत्पन्नानिच कथं महास्रोतसि आगच्छन्ति वा इत्येतत् सर्वमति संक्षेपतः वर्णितमत्र । विस्तारः अतऊर्ध्वम् ।

द्वितीय प्रकरणे तु दोषाणां गुणकर्माणि ग्रन्थोक्ताधाराधिष्ठितानि वर्ण्यन्ते ।

प्रकरणं द्वितीयम् ।

विभागे अस्मिन् ग्रन्थोक्ताधाराधिष्ठितं त्रिदोषाणां द्रव्यगुणकर्मणां विवेचनं क्रियते ।

१. त्रिदोषाः पांचभौतिकद्रव्याणि ।

आयुर्वेदग्रन्थेषु द्रव्यलक्षणमिदम्—

यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत् । तत् द्रव्यम्... । च० सू० १--५१

अथवा

द्रव्यलक्षणं तु क्रियागुणवत् समवायिकारणम् । सु० सू०

द्रव्यम् आश्रयस्थानम्, यस्मिन् कर्मगुणाः आश्रयीभूताः अवतिष्ठन्ते । तथा यत् स्वसमवेतं कार्यं जनयति तत् समवायिकारणम् । गुणकर्मणी तु न स्वसमवेतं कार्यं जनयतः । अतः न ते समवायिकारणे । एवं द्रव्यमेव द्रव्यगुणकर्मणां समवायिकारणम् ।

आयुर्वेदसंहितासु दोषाणां लक्षणं गुणकर्मरूपं कृतं भवेत्, तथा तानि गुणकर्माणि दोषाणां शरीरे वर्तमाने एव प्रतीतिविषयाणि, शरीराभावे (पंचत्वंगते) तु न प्रतीतिविषयाणि भवंति इति सिद्धं चेत् तदा त्रिदोषाः द्रव्यमिति निश्चयः ।

अतः दोषाणां द्रव्यत्वसिद्ध्यै परीक्षणं क्रियते ।

(अ) त्रिदोषाणां गुणाः ।

(१) आयुर्वेदशास्त्रे दोषाणां विवरणं गुणैः कृतं दृश्यते ।

(अ) रूक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ
विशदः खरः ।
च० सू० १-५६

अथवा

रूक्षलघुशीतदारुणखरविशदाः षडिमे
वातगुणा भवन्ति
च० सू० १२-४

इति वातगुणाः ।

(ब) सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं
कटु । पित्तम्
च० सू० १,६०

पित्तं तीक्ष्णं द्रवं पूति नीलं पीतं तथैव च ।
उष्णं कटुरसं चैव विदग्धं चाम्लमेव च ॥
सु० सू० २१--११

इति पित्तगुणाः—

(क) गुरुशीतमृदुस्निग्धमधुरस्थिरपिच्छिलाः........। श्लेष्मणः गुणाः ।
च० सू० १--६२

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः
श्वेत एवच ।
सु० सू० १-१५

स्निग्धः शीतो गुरुर्मंदः श्लक्ष्णो मृत्स्नः
स्थिरः कफः । इति कफगुणाः ।
अ० हृ० सू० १–८

(ब) त्रिदोषाणां कर्माणि ।

(२) त्रिदोषाणां कर्माण्यपि वर्णितानि दृश्यन्ते ।

(अ) उत्साहोच्छ्वासनिःश्वासचेष्टाधातुगतिः समा ।
समोमोक्षोगतिमतां वायोःकर्माऽविकारजम् ॥ ४९ ॥
दर्शनं पक्तिरूष्मा च क्षुत्तृष्णा देहमार्दवम् ।
प्रभा प्रसादो मेधा च पित्तकर्माऽविकारजम् ॥ ५० ॥
स्नेहो बन्धः स्थिरत्वं च गौरवं वृषता बलम् ।
क्षमा धृतिरलोभश्च कफकर्माऽविकारजम् ॥५१॥
च० सू० १८

इति दोषाणां कर्माणि ।

(क) त्रिदोषाणां समवायिकारणत्वम् ।

नर्तेदेहः कफादस्ति न पित्तान्नच मारुतात् ।
शोणितादपि वा नित्यं देह एतैंस्तुधार्यते ॥
सु० सू० २१--५

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः । तैरेवाव्यापन्नैः अधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यते ।
सु० सू० २१--४

दोषाः शुक्रशोणितसंयोगात् देहावसानपर्यन्तं वर्तमानाः स्वसमवेतं देहधारणकार्यं कुर्वन्ति, तैर्विना देहोत्पत्त्यसंभवात् । यत्सत्वे यद्भावः यदसत्वे यदभावः एवं दोषसत्वे देहभावः, दोषाभावे देहाभावः इति अन्वयव्यतिरेकप्रमाणेन च दोषाणां देहस्य समवायिकारणत्वं सिद्ध्यति ।

एवं दोषाः द्रव्याण्येव इति प्रतिष्ठापितम् ।

(ङ) त्रिदोषाणाम् आत्मरूपाणि ।

एतानि खलु दोषाणामात्मरूपाणि—

रौक्ष्यं शैत्यं लाघवं वैशद्यं गतिरमूर्तत्वं च वायोः आत्मरूपाणि । च० सू० २०-१२

औष्ण्यं तैक्ष्ण्यं द्रवत्वं अनतिस्नेहो वर्णश्च शुक्लारुणवर्ज्यो गन्धश्च विस्रो, रसौ च कटुकाम्लौ सरत्वं च पित्तस्य आत्मरूपाणि ।
च० सू० २०-१५

स्नेहशैत्यशौक्ल्यगौरवमाधुर्यस्थैर्यपैच्छिल्यमात्सर्याणि श्लेष्मण आत्मरूपाणि ।
च० सू० २०-१८

एवं येषां पदार्थानां रसगन्धवर्णस्पर्शाः निःसन्दिग्धवचनैः वर्णिताः ते पांचभौतिकद्रव्यातिरिक्ताः के पदार्थाः संभवन्ते ?

(ख) द्रव्यसंग्रहः ।

खादीन्यात्मामनः कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रह
च० सू० १--४८

न्यायशास्त्रवदायुर्वेदेऽपि नवद्रव्याण्यभिमतानि । तेषु अपि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशेभ्यः पांचभौतिकद्रव्याणीति संज्ञा इतरेषु च अपां-

चभौतिक द्रव्याणीति। शरीरं पंचमहाभूतविकारसमुदायात्मकं इति तु कथितमेव। दोषा अपि शरीरे विद्यमानानि द्रव्याणि अतः पांचभौतिकद्रव्याणि इति निश्चितम्।

(ग) गुणसंग्रहः।

तत्रेमे शरीरधातुगुणाः संख्यासामर्थ्यकराः। तद्यथा—गुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षमंदतीक्ष्णस्थिरसरमृदुकठिणविशद—पिच्छिलश्लक्ष्णखरसूक्ष्मस्थूलसांद्रद्रवाः।

च० शा० ६-१०।

एते खलु समग्राणां शारीरद्रव्याणां गुणाः। प्रत्येकं शारीर-द्रव्यं कैश्चित् एतैः गुणैः युक्तं भवत्येव। एकीकृताः वातपित्तकफानां गुणाः। निर्दिष्टगुणसंख्यापूरकाः।

एवं त्रिदोषाः शारीरपांचभौतिकद्रव्याणि इति सिद्धम्।

२ त्रिदोषाः शरीरजाः।

दोषसंज्ञकानि पांचभौतिकद्रव्याणि देहादेव उत्पद्यन्ते। शरीरं तान् उत्पादयति। शरीरस्य विभिन्नाः अवयवाः तेषाम् प्रभवाः। दोषाणां अस्तित्वं शरीरे एव शरीरात् भिन्ने स्थाने तेषामभावः।

आह वाग्भटः—

(१) शरीरजानां दोषाणां क्रमेण पर-
मौषधम्।
बस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु॥

अ०हृ०सू० १-२५

(२) आदौ षड्रसमप्यन्नं मधुरीभूतमी-
रयेत।
फेनीभूतं कफं यातं विदाहादम्लतां ततः॥५७॥
पित्तमामाशयात्कुर्याच्च्यवमानं, च्युतं पुनः।
अग्निना शोषितं पक्वं पिण्डितं कटु मारु-
तम॥५८॥ अ० हृ० शा० ३

(३) अविदग्धः कफं, पित्तं विदग्ध-,
पवनं पुनः।
सम्यग्विपक्वो निःसारः आहारः परिवृं-
हयेत्। सु० सू० ४६-५२५॥

सिद्धत्येवं दोषाः शरीरजाः। ते शरीरे उदीर्यन्ते प्रेर्यन्ते इति यावत्। शारीरधमन्यः (nerves) तान्प्रेरयन्ति। उदीरितद्रव्येषु secretions इति संज्ञा प्रतीचाम्। पित्तकफौतु उदीरित द्रव्ये इति अनुमतमेव। उदीरणं द्रवद्रव्यानामेव संभवति। वायुस्तु वायुरूपद्रव्यत्वात् (gaseous substance) वायुरूपद्रव्याणाम् उदीरणासंभवात् तस्य उत्पत्तिः रासायनिकक्रियायां (biochemical reaction) भवति, विषयस्य अस्य विवरणं वायुस्वरूपविवेचने अग्रे द्रष्टव्यम्।

३. त्रिदोषाः सर्वशरीरचराः।

दोषा नखशिखान्ते शरीरे संचरणशीलाः। देहस्य सर्वावयवेषु गमनागमनं इच्छानुसारं कर्तुं समर्थाः।

(१) सर्वशरीरच्चराः तु वातपित्तश्लेष्माणः सर्वस्मिन् शरीरे कुपिताकुपिताः शुभाशुभानि कुर्वन्ति। च० सू० २०-९

(२) ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः।

अ० हृ० सू० १-७

व्यापिनोऽपि सर्वशरीरचरा अपि—अरुणदत्तः

(३) वातपित्तश्लेष्मणां पुनः सर्वशरीरचराणां सर्वाणि स्रोतांसि अयनभूतानि।

च० वि ५-५

सिद्धत्येवं यत् दोषाः शरीरस्य सूक्ष्मानुसूक्ष्मस्रोतसां अपिगन्तुं क्षमाः न तु सूक्ष्मानुसूक्ष्मांशे सदैव विद्यमानाः। यथा गृहपतिः गेहस्य कस्मिन्नेव विभागे प्रवेशकरणे न

केनचित् अवरुध्यते, एवं दोषा अपि शरीरे। दोषाः स्वेतरशरीरभिन्नद्रव्याणि। उद्गमस्थानतः उत्पन्नास्ते अखिलशरीरे स्वकीयानि कार्याणि कुर्वन्ति। अतएव तेषां संचयप्रकोपप्रसरादि वक्ष्यमाणा अवस्थाः संभवन्ति।

४. त्रिदोषाः नित्याः।

शरीरावस्थासु दोषाः नित्यद्रव्याणि। शुक्रशोणितसंयोगदारभ्य गर्भावस्थायां, बालवृद्धयुवावस्थासु मृत्युपर्यंतं च तेषामुत्पत्तिः सदैव शरीरे भवति। मृतशरीरे तु तेषामभावः।

नित्याः प्राणभृतां देहे वातपित्तकफास्त्रयः।
विकृताः प्रकृतिस्था वा तान्बुभुत्सेत पण्डितः॥
च० सू० १८-४८

नर्ते देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात्।
शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते॥
सु० सू० २१-४

५ त्रिदोषाः एकाकिद्रव्याणि।

त्रिदोषाः एकाकिद्रव्याणि। देहे एकमेव वायुद्रव्यं, एकमेव पित्तं, एक एव कफः। यथा रसरक्तादिसप्तधातवः प्रमुखत्रयोमलाश्च एकाकिद्रव्याणि तथैव त्रयोदोषाश्च।

(१) ग्रन्थचतुष्टयस्य कमपि पृष्ठं अवलोकयतः वातः पित्तं कफः इति एकवचनांत प्रयोग एव दृश्यते। वाताः पित्तानि कफाः इति बहुवचनांतप्रयोगाः क्वचिदपि न उपलभ्यन्ते। संहिताकाराणां, दोषाणां वर्गाः अनुमताः चेत्, कस्मिंश्चित् एकस्मिन् अपि स्थाने तादृशः प्रयोगः उपलब्धो भवेत्। न च स तथा। विनिगमनाभावात् प्रत्येकं त्रयः अपि दोषाः एकाकिद्रव्याणि एव इति सिद्ध्यति।

(२) अनेकत्वविपरीतमेकाकित्वं साधनायास्तु अनेकाधाराः उपलभ्यन्ते।

यथाऽग्निः पंचधाभिन्नो नामस्थानात्मकर्मभिः।
भिन्नोऽनिलस्तथा ह्येको नामस्थानक्रियामयैः॥
सु० नि० १-११

अत्र डल्हनाचार्यः—

"यथाऽग्निः पित्तमेकमेव पाचकरंजकालोचकभ्राजकसाधकेति नाम्ना, स्थानेनामाशयादिना, क्रियया अन्नपाचनादिक्रियया आमयेन अम्लपाकादिना पंचविधः, एवम् अनिलः अपि एक एव नामादिभिः पंचविधः।"

यथा शरीरे वर्तमानं पित्तद्रव्यं एकमेव सत् यदा तद्देहस्य अनेकाशयेषु कार्यं कुर्वद् भिन्नपरिणामान् जनयति, तदा तेषां कारणं न द्रव्यभिन्नत्वं, अपि तु यस्मिन् आशयरूपे **शारीरयंत्रे तत् कार्यं करोति** तस्यैव भिन्नत्वं। एवमपि वातसंज्ञकं द्रव्यं एकम् एव सत् भिन्नशरीरावयवेषु (यंत्रेषु) भिन्नपरिणामान् उत्पादयति।

उदाहरणार्थं विद्युदेकमेव द्रव्यं यदा 'बल्ब' (bulb) संज्ञके यंत्रे संचरति तदा प्रकाशं जनयति, वायुजनकयंत्रे (fan) संचरति तदा समीरणवेगं जनयति, अग्न्युत्पादके (heater) यंत्रे संचरतः पाकसिद्धि करोति, विद्युत्संचालिताग्निरथे (engine) संचरत् बहुभारयुतान् अनेकान् शकटान् वाहयति, तथैव वातः अपि। नतु विस्मरणीयं यत् आयुर्वेदीयद्रव्यलक्षणानुसारं, विद्युदपि द्रव्यं, यस्मात् कर्मगुणाः तदाश्रिताः तथा तत् समवायिकारणमपि। एवं यदा विभिन्नयंत्रेषु संचारः तस्य विद्युत् द्रव्यस्य, तदा यंत्रस्य तस्य निर्माणकौशल्यानुसारं कार्यभिन्नत्वं यद्यपि प्रेरकद्रव्यम् एकमेव। समीरणः एकम् एव द्रव्यं, यदा तत् मुरल्यां संचरति तदा यत् स्वरवैचित्र्यं उत्पाद्यते, तत् भिन्नम् एव हार्मोनियम्पियानोवीणामृदंगादि ध्वनिकदंबेभ्यः। वायुपूरितनलिकाभिः (airgun) सर्पा हन्यन्ते। एवं यथाविधे यंत्रे वायोः (एकस्यैवद्रव्यस्यापि) संचारः तथाविधं कार्यम्।

(३) अष्टाङ्गहृदयसूत्रस्थाने द्वादशाध्याये "प्राणादिभेदात् पंचात्मा वायुः" इत्यस्य सूत्रस्य टीकायां अरुणदत्तः—

"वायुरेक एव चलनस्वभावः सत् प्राणादिभेदात् प्राणोदानव्यानसमानापानैः विशेषात् पंचात्मा **पंचस्वभावः**। यथा एकोऽपि देवदत्तः यां यां क्रियां करोति, तदनुरूपामेव लावकपाचकादिकां संज्ञां लभते तद्वद्वातादयः।"

अवतरणेषु एषु 'वायुः एक एव' 'एकोह्यनिलः' 'पित्तमेकम् एव' इत्यादि स्थानेषु यदेकेति विशेषणं योजितं तेनैव सिद्ध्यति एकैकेषां दोषाणां एकत्वं वर्गत्वाभावश्च।

(४) आह चरकः—

यानि तु खलु वायोः कुपिताकुपितस्य शरीराशरीरचरस्य शरीरेषु चरतः कर्माणि बहिःशरीरे वा भवंति तेषाम् अवयवान् ....प्रवक्ष्यामः च० सू० १२-८

अग्रिमे विवेचने यानि वायोः कर्माणि निर्दिष्टानि तत्र वायुः चतुर्विशेषणैः विभक्तः।

(१) कुपितः (२) अकुपितः (३) शरीरचरः (४) अशरीरचरः चेति।

तस्मान्निश्चीयते यत् वातद्रव्यं एकमेव, किन्तु तस्य चतुःसंख्याकाः भिन्नावस्थाः। अखिल जगत् शरीरतदितरसृष्टिरूपेण द्विधा विभज्य, तयोर्विभागयोः वायुसंज्ञकैकस्यैव द्रव्यस्य कः परिणामः इति एव निर्दशितम्, न तु चतुःसंख्यांकभिन्नवायुद्रव्याणाम्।

(५) चरक चिकित्सास्थान २८-५ टीकायां चक्रदत्तः—"प्राणोदानेत्यादिना व्यवहारार्थं संज्ञोपदर्शनपूर्वकं प्राणादीनां स्थानं कर्मच आह"—

एवं प्राणोदानादि पंचसज्ञाः कृताः व्यवहारसौकर्यार्थं तत्तच्छरीरांगे एकस्यैव वायु संज्ञकद्रव्यस्य किमात्मकः परिणामः तदनुरूपं कतिविधानि विभिन्नकार्याणि शरीरे क्रियन्ते तेनैव वायुद्रव्येण, इत्येतत् सर्वं सुस्पष्टतया विवरणं कर्तुं शक्यं भवेदिति। न तु तावत् तानि द्रव्याणि भिन्नानि इति निष्कर्षः।

(६) चरक चिकित्सा २८-१४ टीकायां चक्रदत्तः अत्र च—वायोरेव भूरिप्रधानरोगकर्तृतया भिन्नचिकित्साप्रयोजकाः पंच भेदाः उक्ताः—

तानुच्यमानान्पर्यायैः सहेतूपक्रमान् श्रुणु।
केवलं वायुमुद्दिश्य स्थानभेदात्तथावृतम्॥
चि० २८-१५

पर्यायैरिति संज्ञान्तरैः--चक्रदत्तः

एव न तु पंचैते वास्तविकाः भेदाः किन्तु पर्यायाः संज्ञांतराः इति यावत्। एकस्यैव द्रव्यस्य, तत्तद्भिन्नशरीरावयवे कार्यं कुर्वंतः या या लक्षणभिन्नता प्रतीतिविषया भवति, तया अनुसारमेव नामभिन्नता वस्तुतः द्रव्यं तु एकमेव।

(७) वातपित्तकफसंज्ञकशारीरद्रव्याणां वृद्धावस्थासु बहिः निष्कासनोपायाः निर्दिष्टा चरकाचार्यैः सूत्रस्थाने विंशतितमे अध्याये।

(अ) आस्थापनानुवासनं तु खलु **सर्वोपक्रमेभ्यः** वाते प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः। तद्ध्यादित एव पक्वाशयम् अनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं वातमूल छिनत्ति। तत्रावजिते वाते शरीरान्तर्गताः **सर्वे वातविकाराः** प्रशान्तिमापद्यन्ते। यथा वनस्पतेर्मूले च्छिन्ने, स्कंधशाखावरोहकुसुमफलपलाशादीनां नियतो विनाशस्तद्वदिति।

(ब) विरेचनं तु सर्वोपक्रमेभ्यः पित्ते प्रधानतमं मन्यन्ते भिषजः। तद्ध्यादित एव आमाशयम् अनुप्रविश्य केवलं वैकारिकं पित्तमूलमपकर्षति। तत्रावजिते पित्तेऽपि शरीरान्तर्गताः **सर्वे पित्तविकाराः** प्रशान्तिमा-

पद्यन्ते । यथा अग्नौ व्यपोढे केवलम् अग्निगृहं शीती भवति तद्वदिति ॥

(क) वमनं तु सर्वोपक्रमेभ्यः श्लेष्मणि प्रधानतमं मन्यंते भिषजः । तद्ध्यादित एवामाशयमनुप्रविश्य उरोगतम् केवलं वैकारिकं श्लेष्ममूलम् ऊर्ध्वं उत्पतति । तत्रावजिते श्लेष्मण्यपि शरीरांतर्गताः सर्वे श्लेष्मविकाराःप्रशान्ति आपद्यन्ते यथा भिन्ने केदारसेतौ शालियवषष्टिकादीनि अभिष्यन्दमानानि अंभसा प्रशान्तिमापद्यन्ते तद्वदिति ।

न चेद्वातपित्तकफाः एकाकीनि द्रव्याणि, तेषां क्रमात पक्वाशयपक्वामाशयमध्यामाशयेभ्यः, बस्तिविरेचनवमनकर्मद्वारा शरीराद्बहिर्निष्कासितेभ्यः संपूर्णशरीरे विद्यमानाः वातपित्तकफजन्यविकाराः कथं प्रशान्तिमापद्येरन् । एवं त्रिदोषाः एकाकीनि द्रव्याणि सिद्ध्यंति ।

(८) आयुर्वेदीय, द्रव्यगुणशास्त्रे द्रव्याणां गुणधर्माः वर्णिताः । तेषु वातहरं वातकरं वा, पित्तनाशकं पित्तकारकं वा, कफजननं कफहृद्वा इति शब्दाः प्रयोजिताः दृश्यन्ते, न तु पाचकपित्तहरं, समानवायुकरं बोधककफनाशकं वा इति प्रकारविशिष्टवाचकाः । तेनापि तेषामेकाकित्वं एव अनुमतं शास्त्रप्रणेतृणाम् ॥

एवं उपरिनिर्दिष्टप्रमाणाष्टकेन दोषाणां शरीरे एकाकिद्रव्यत्वं निश्चिनम् ।

(६) त्रिदोषाः शरीरोत्पत्तिकारणानि ।

शरीरोत्पत्तिप्रधानकारणानि दोषा एव । सद्भावः तेषां शुक्रार्तवसंयोगादारभ्य मृत्युपर्यन्तं देहे । तेषामवतरणं मातापित्रोः शुक्रशोणिताभ्यां गर्भशरीरे ।

(१) वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः । सु० सू० २१-३

अविकृताः वातादयः शुक्रार्तवादिसहकारितया देहजनका अभिप्रेताः इति डल्लनः । एवमुपादानकारणानि दोषा एव ।

(२) शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषक्रिमेः ।

तैश्च तिस्रः प्रकृतयः..........।

अ० हृ० सू १-९

मातापित्रोः शुक्रशोणितयोर्विद्यमानानि त्रिदोषसंज्ञकद्रव्याणि एव गर्भस्य मूलोपादानकारणानि ।

(७) त्रिदोषाःशरीरधारणनाशकारणानि ।

१. तैरेवाऽव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यते आगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभिः अतः त्रिस्थूणं आहुः ।

सु० सू० २१-३

२. त एव च व्यापन्नाः प्रलयहेतवः ।

सु० सू० २१-३

ते एव दोषाः वातपित्तकफाः साम्यावस्थायां शरीरस्य, अधः (पक्वाशये) मध्ये (पक्वामाशयमध्ये) तथा ऊर्ध्वम् (आमाशये) क्रमात् विद्यमानाः उत्पाद्यमाना इतियावत्, शरीरं धारयंति ।

यदा तु ते व्यापन्नाः विकृति वृद्धिक्षयरूपां प्राप्ताः तदा प्रलयं शरीरनाशरूपं मृत्युं निष्पादयंति । विकृतिस्तु "दोषवैषम्यं स्वप्रमाणान्न्यूनातिरिक्तत्वम्" इति । अ० हृ० सू० १-१ सर्वांगसुन्दरी

(८) त्रिदोषाणामुत्पत्तिस्थानानि ।

त्रिदोषद्रव्याणि महास्रोतसि विभिन्नस्थानेषु उत्पाद्यन्ते । महास्रोतसंज्ञका नलिका आमुखगुदं प्रसृता मध्ये अनेकेषु स्थानेषु विस्फारितपरिणाहा । तस्यां अन्ननलिकानन्तरं यः प्रधानः विस्फारितभागः दृतिवदाकारकः सैवामाशय इति भण्यते । तमेवोदरमिति केचित् । तत्पश्चात् प्रसृता

सार्धत्रिव्यामदीर्घा (२० फुट) पक्वामाशयमध्येति संज्ञिता पच्यमानाशय लघ्वंत्रेत्यपरपर्याया नलिका। तदनंतर गुद्रपर्यन्तं पक्वाशयः। त्रिदोषविज्ञानाय, विभागाणामेषां विज्ञानं प्रत्यक्षतः विशिष्टचित्रेभ्यो वा अवश्यमेव संपादनीयम्।

तेषां आलेखा अपि पीतहरितादिवर्ण-युक्ताः प्राप्यंतेऽधुना अनेकासु चित्राशालादि मुद्रणालयेषु।

आह सुश्रुतः—

दोषस्थानान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः-तत्र समासेन वातः श्रोणिगुदसंश्रयः। तदुपर्यधोनाभेः पक्वाशयः। पक्वामाशयमध्यं पित्तस्य। आमाशयः श्लेष्मणः॥

आह वाग्भटः अष्टांगहृदये—

पक्वाशय कटी सक्थि श्रोत्रास्थिस्पर्शनेन्द्रियम्।
स्थानं वातस्य तत्रापि पक्वाधानं विशेषतः ॥ १ ॥
नाभिरामाशयःस्वेदोलसीकारुधिरं रसः।
दृक्स्पर्शनंच पित्तस्य नाभिरत्रविशेषतः ॥२॥
उरःकण्ठशिरःक्लोमपर्वाण्यामाशयो रसः।
मेदो घ्राणं च जिव्हा च कफस्य सुतरामुरः ॥३॥

आह च वाग्भटः अष्टांगसंग्रहें—

तत्र पक्वाशयः कटिः सक्थिनी पादावस्थि श्रोत्रं स्पर्शनं च वातस्थानानि। अत्र च पक्वाशयो विशेषेण। अ० सं० सू० २०

नाभिरामाशयः स्वेदो लसीका रसो रुधिरं चक्षुः स्पर्शनं च पित्तस्थानानि। अत्र नाभिर्विशेषेण। अ० सं० सू० २०

उरः कण्ठः शिरः क्लोम पर्वाण्यामाशयो रसो मेदो घ्राणं रसनं च श्लेष्मस्थानानि। अत्राप्युरो विशेषेण। अ० सं० सू० २०

नाभिशब्दस्य अर्थत्रयम्।

नाभिशब्दस्य कोशार्थः 'मध्यम्' इति। तेनत्रिसंख्याकानां शरीरमध्यभागे विद्यमानानां अवयवानां कृते सा संज्ञा नियोजिता।

१. गर्भावस्थायां गर्भस्थस्य मातृतः पोषणं या नाड्या संपाद्यते सा यस्मिनुदरस्योपरिस्थितमध्यभागे संसक्ता सः अवयवः। 'टुंडी' इति प्रसिद्धः उत्तरदेशे हिंदी भाषायाम्।

आह चरकः—

'नाभ्यां ह्यस्य नाडी प्रसक्ता नाड्यां चापरा अपरा चास्य मातुः प्रसक्ता हृदये।
च० शा० ६-२३

२. महास्रोतोमध्यभागः। पक्वामाशयमध्यलघ्वंत्रेति अपरपर्यायः। सार्धत्रिव्यामदीर्घः। यस्यादिमभागे यकृदग्न्याशयाभ्यां आगतं पाचकपित्तं गच्छति नलिकाद्वारा। सएव उपरि 'नाभिरत्र विशेषतः' इति शब्दयोजनया निर्दिष्टः वाग्भटेन्।

३. सुषुम्नाकांडमपि शरीरस्यमध्यभागे-ऊर्ध्वरेखायाम् (Vertical) अवस्थितम्। यस्मात्सर्वा धमन्यः (cerebro-spinal nerves) प्रभवंति। आह सुश्रुतः शारीरनवमाध्याये—

चतुर्विंशतिर्धमन्यः नाभिप्रभवाः।

एवं आयुर्वेदे नाभिशब्दः त्रिष्वपि शरीरभागेषु नियोजितः संदर्भेण आकांक्षयाच विशिष्टार्थो ज्ञेयः।

इदमपिस्मर्तव्यम्—

(१) आमाशयः कफपित्तयोः स्थानं निर्दिष्टं वाग्भटेन्, अत्र आमाशयं द्विधा विभज्य, आमाशयस्य ऊर्ध्वभागः कफस्य स्थानम् अधोभागस्तु पित्तस्येति समाधेयम्।

दोषाणां स्थानानि चरक सूत्रस्थाने विंशत्यध्याये वर्णितानि विस्तरभयादत्र नोद्ध्रियन्ते। तत्र चक्रदत्तः—

पित्तस्थानेष्वामाशयः इति आमाशयाधो-

भागः श्लेष्मस्थानेष्वामाशयः इति आमाशयो-र्ध्वभाग इति वचनात् ।

(२) अन्नपचनक्रियायां क्लेदककफस्य सहकारिकारणरूपेण प्राधान्यात् श्वासोच्छ्वासक्रियायां तु अवलंबकस्य, इत्यतः सुश्रुतेन 'क्लेदकः विशेषेण,' वाग्भटेन तु 'उरो विशेषेण' इति कथितम् ।

दोषाणामुत्पत्तिस्थानानि एवं संक्षेपेण निर्दशितानि ।

(९) त्रिदोषाणां गतयः ।

आहचरकः—

१. क्षयः स्थानं च वृद्धिश्च दोषाणां
त्रिविधा गतिः ।
२. ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक् च विज्ञेया
त्रिविधाऽपरा ॥
३. त्रिविधा चापरा काष्ठशाखामर्मास्थिसंधिषु । इत्युक्ता विधिभेदेन दोषाणां त्रिविधा गतिः ॥ च० सू० १७-११२,११३

सर्व शरीरचरास्तु दोषाः त्रिभिः विभिन्नप्रकारैः शरीरे प्रसर्पन्ति ।

(१) तत्र प्रथमा—शरीरे यत्प्रमाणं तत्तद्वयानुरूपं संभवति तस्मात्तत्क्षीणं भवेत् तदा तस्य दोषस्य क्षयः संजातः इति अनुमीयते सत्तु तस्य ये गुणाः अस्य प्रकरणस्य प्रारंभे वर्णिताः तेषां क्षयेणैव तर्क्यते । दोषक्षयस्य लक्षणानि अपि ग्रंथचतुष्टये वर्णितानि । एवं वृद्धेरपि । 'स्थान' शब्देन समावास्था एव ग्राह्या । तस्यापि लक्षणानि अष्टांगहृदये सूत्रस्थाने ११ अध्याये वर्णितानि ।

(२) द्वितीया—दोषाणामुत्पत्तिस्थानानि महास्रोतसाभ्यन्तरे वर्णितपूर्वानि। आमाशयः, श्लेष्मणः पक्वामाशयमध्यं पित्तस्य, पक्वाशयः वातस्येति । आमाशयादूर्ध्वं अन्ननलिकामुखयोः श्लेष्मणः गमनम् इति तस्य ऊर्ध्वगतिः। आमाशयादधः पक्वामाशयमध्ये पक्वाशये च कफदोषस्य गमनम् इति तस्य अधोगतिः । महास्रोतसः भिन्ने शरीरभागे हृदयोरःशिरः शाखाप्रभृतिषु गमनं इति तस्य तिर्यक् गतिः । एवमेव पित्तवाय्वोः ।

(३) तृतीया—(अ) कोष्ठ (ब) शाखा (क) मर्मास्थिसंधिषु ।

कोष्ठः—स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य
रुधिरस्य च ।
हृदुण्डुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्य-
भिधीयते ॥

शाखाः—'रक्तादयस्त्वक्च' अ०हृ०सू० १२

रक्तादय इति रक्तादिषड्धातवः ।

मर्माणि—'नाम मांससिरास्नाय्वस्थिसन्धि-
सन्निपाताः ॥
तेषां स्वभावतः एव प्राणाः विशेषेण
तिष्ठिन्ति ॥
सु० सू० ६-१५

अस्थिसंचयः—द्विविधाः चेष्टावन्तः
स्थिराश्च ।

कोरोदूखलसामुद्गप्रतरंतुन्नसेवनीवायस—
तुण्डमण्डलशंखावर्ताः । इति अष्टविधाः ।

दोषाणां स्वोत्पत्तिस्थानं परित्यज्य शाखामर्मास्थिसंधिमहास्रोतसातिरिक्तकोष्ठभागेषु गमनं तृतीयप्रकारका गतिः ।

आसां गतीनां विज्ञाने जाते चिकित्सा सुकरा भवति इति तु तेषां ज्ञानमावश्यकम् ।

(१०) त्रिदोषाणां संचयप्रकोपप्रसरादिषडवस्था :।

दोषाणां तत्तद्वयावस्थासु यत् स्वास्थ्यावगम्यं प्रमाणं तत् यदा वृद्धिं प्राप्नोति (न तु क्षयं) तदा—

(१) प्रथमावस्थायां तेषां संचयो
: भवति ।

तल्लक्षणंतु—(अ) चयो वृद्धिः स्वधाम्न्येव ।
(ब) प्रद्वेषो वृद्धिहेतुषु ।
(स) विपरीतगुणेच्छा च ।
अ० हृ० सू० १२-१२

इति लक्षणत्रयेण अवगंतव्यम् । अस्यां अवस्थायां दोषाणां तत्तद्वयानुरूपप्रमाण (quantity suited to that particular age) तः वृद्धिः तु अवश्यमेव भवति, किन्तु सा स्वस्थाने एव यथा कफस्य उत्पत्तिस्थाने आमाशये, वायोः पक्वाशये इत्यादि ।

(२) द्वितीयावस्थायां तु—
कोपस्तूनमार्गगामिता । अ० हृ० सू० १२-१३

अस्यां अवस्थायां दोषाः उत्पत्तिस्थानं परित्यज्य अन्येषु केषुचित् अनेकेषु वा शरीरावयवेषु गमनाय उद्युक्ता भवन्ति ।

(४) तृतीयावस्थायां तु ते प्रसरणशीलाः सर्वस्मिन् शरीरे संचरन्ति । अवस्थायाः अस्याः **प्रसर** इति संज्ञा ।

(४) एवं संचरतः, यदा कस्मिश्चित् शरीरदेशे स्थानीय—विकृतितः तेषां संचारे अवरोधः, तदा तत्रैव आश्रयं गत्वा व्याधिं जनयंति । सा एव चतुर्थी अवस्था **स्थानसंश्रयः** इति भण्यते ।

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् ।
यत्र संगः खवैगुण्यात् व्याधिस्तत्रोपजायते ॥
सु० सू० २४-१०

(५) पंचमे क्रियाकाले व्याधेर्लक्षणानि सुस्पष्टानि भवन्ति ।

अतऊर्ध्वं व्याधेर्दर्शनं वक्ष्यामः—शोफार्बुदग्रन्थिविद्रधि—विसर्पप्रभृतीनां प्रव्यक्तलक्षणता, ज्वरातीसारप्रभृतीनां च—सः पंचमः क्रियाकालः । स एव व्यक्तिरिति कथ्यते ।

(६) अतऊर्ध्वं दीर्घकालानुबन्धत्वात् षष्ठः क्रियाकालः । तत्र अप्रतिक्रियमाणे असाध्यो भवति व्याधिः ।

द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम् ।

प्रकरणं तृतीयम्

गतप्रकरणे त्रिदोषाणां पांचभौतिकद्रव्यत्वं, शरीरजत्वं, सर्वशरीरचरत्वं, नित्यत्वं एकाकिद्रव्यत्वं, शरीरोत्पत्ति-स्थिति-प्रलयकारणत्वं प्रतिष्ठापितम् । तेषां उत्पत्तिस्थानानि, विविधगतिप्रकाराः संचयप्रकोपादि षडवस्था अपि ग्रन्थोक्ताधारैर्वर्णिता ।

(२) त्रिदोषाणां प्रत्यक्षविवेचनस्यावश्यकता ।

आयुर्वेदः शारीरशास्त्रम् । तस्मात्सर्वं एव आयुर्वेदीयसिद्धान्ताः प्रत्यक्षशारीराधिष्ठिताः भवितुमर्हन्ति । विज्ञानं च तेषां शरीरावयवद्वारेणैव करणीयम् । के शारीरावयवाः पदार्था वा त्रिदोषाः इत्येतत् यावत्स्पष्टं न विज्ञायते, तावच्छास्त्रदृष्टया समाधानाभावः व्यक्तिमात्रस्य । आयुर्वेदेतरचिकित्साशास्त्रज्ञाः, प्रत्यक्षप्रमाणैकपरा आधुनिकविद्यार्थिनश्च, यावत् दोषानपि न तथा शरीरे प्रत्यक्षतया अवलोकयितुं समर्थाः भवन्ति यथा रसरक्तादिसप्तधातून् शकृन्मूत्रादिमलान्वा तावत्तेषां अस्तित्वेऽपि ते शंकायुक्ताः भविष्यन्ति । अतएव कानि द्रव्याणि तानि त्रिदोष-संज्ञकानि इति विषये आधुनिकशास्त्रप्रमाणैरपि निश्चयः कर्तुमेष प्रयत्नः ।

(२) विवेचनपद्धतिद्वयभेदः ।

दार्शनिकवैज्ञानिकविवेचनपद्धतिद्वयमिति उक्तपूर्वम्—

(१) तत्र दार्शनिकानुसारं दोषविज्ञानमित्थम् । शरीरं पांचभौतिकम् । सर्वाणि शारीरद्रव्याणि पंचमहाभूतविकारसमुदाया-

त्मकानि । दोषा अपि तथा शारीरद्रव्याणि । अतस्तेऽपि पांचभौतिकाः ।

उक्तमेव—

शरीरं नाम चेतनाधिष्ठानभूतं पंचमहाभूतविकारसमुदायात्मकं समयोगवाहि ।
च० शा० ६-३

कस्य महाभूतस्य कस्मिन्दोषे आधिक्यं इति तु अष्टांगसंग्रहे सूत्रस्थाने २० तमे अध्याये दर्शितम्—

वाय्वाकाशधातुभ्यां वायुः । आग्नेयं पित्तम् । अंभः पृथिवीभ्यां श्लेष्मा ।

पंचमहाभूतानां लिंगानि यथा ।

खरद्रवचलोष्णत्वं भूजलानिलतेजसाम् ।
आकाशस्याप्रतीघातो दृष्टं लिंगं यथाक्रमम् ।
च० शा० २१-६

तथा गुणाः—

शब्दः स्पर्शं च रूपं च रसो गंधश्च तद्गुणाः । च० शा० १-२७

इत्येतत् ज्ञात्वा वाय्वाकाशप्रधानवायुद्रव्यविषये अस्मादृशां कल्पना स्थिरीभवति । तथा द्रव्यस्यास्य शरीरे किं कार्यं भवेत् इत्यपि निर्णयः क्रियते । सैव विचारधारा प्रधानग्रन्थेषु दिग्दर्शिता ।

(२) किंतु चक्रदत्तारुणदत्तडल्लनादिप्रसिद्धटीकाकारैः दार्शनिकपद्धत्या विवेचनं कुर्वद्भिरपि तदनुषंगेन विज्ञानशास्त्राणां (Modern Sciences) या वस्तुनिष्ठा विवरणपद्धतिः तस्या अपि अनुसरणं कृतं स्वाभाविकनियमान् दर्शयद्भिः यथा प्रथमप्रकरणोद्धृतसूत्रविवेचने अरुणदत्तः ।

सूत्रं तुतत् ।

(अ) कृशानां बृंहणायालं स्थूलानां कर्शनाय च । अ० हृ० ५-५६

'ननु कथं एकस्माद्वस्तुनः विरुद्धं कार्यद्वयं कर्शनत्वबृंहणत्वस्वरूपं स्यात् इति ब्रूमः । कृशानां तावत् स्रोतांसि संकोचं आयान्ति, संकुचितस्रोतसां च नराणां तैलमंतरेण अन्यानि द्रव्याणि बृंहणगुणयुक्तान्यपि न तथा प्रवेष्टुं समर्थानि भवंति । तैलं पुनः संकुचितानि स्रोतांसि तीक्ष्णादिभिः गुणैः झटित्येव प्रविश्य शोधयति । स्रोतःशुद्ध्या शरीरपुष्टिः । **तस्मात् कृशानां बृंहणाय** अलमित्युक्तम् ।

तथा स्थूलानां, सूक्ष्मस्रोतोगामित्वात् सर्वस्रोतःसु तैलं प्रविश्य, तीक्ष्णोष्णादिगुणयोगात् मेदः क्षपयति । तत्क्षपणाच्च कर्शनं संपद्यते । इति **स्थूलानां कर्शनाय** च उत्पन्नम् ।

(ब) एवमेव—

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रिताः । अ० हृ० सू० १-७

इत्यस्य विवेचने व्यापिन् शब्दस्य, परमेश्वरप्रकृतिकालदिगादिवत् शरीरस्य सूक्ष्मानुसूक्ष्मविभागे विद्यमानः, इतिमाभूत् एतदर्थमेव 'व्यापिनोऽपि सर्वशरीरचरा अपि' इति विवरणं अरुणदत्तेन कृतम् । सर्वशरीरे संचरितुं क्षमा दोषा, कथं शरीरं व्याप्य अवतिष्ठंते ? व्यापिपदार्थस्तु सदा एव सर्वेषु स्थानेषु विद्यते तस्य संचारासंभवात् ।

अतः यत्रकुत्रापि शास्त्रविपरीतार्थस्य संभवः दृश्यते, तत्र टीकाकाराः तमर्थं स्पष्टीकुर्वन्ति यतः तेऽपि आप्ताः ।

अधुना त्रिदोषाणां वैज्ञानिकविवेचनपद्धत्या स्पष्टीकरणं आरभ्यते । अत्रावश्यकतानुसारं आधुनिकशास्त्राणां सुप्रसिद्धसिद्धांतानामपि अन्तर्भावः क्रियतेऽस्मिन् विवेचन-सौकर्याय ।

(३) वातदोषस्य पदार्थ सिद्धिः

वातसंज्ञकशारीरद्रव्यस्य
पदार्थसिद्धिः विविच्यते ।

तत्र वायुरात्मैवात्मा, पित्तमाग्नेयं,
श्लेष्मा सौम्य इति ॥

सु० सू० ४२-५

अत्र डल्लनः—आत्मैवात्मा इति आत्मैव योनिः, वायुतः वातोत्पत्तिरित्यर्थः।

एवं वातसंज्ञकस्य शारीरदोषात्मकद्रव्यस्य उत्पत्तिः पाँचभौतिक वायुसंज्ञकद्रव्यादेव भवति। कार्यकारणयोरभेदात् शारीरवातद्रव्यं, बाह्यसृष्टिगतपांचभौतिकवायुद्रव्यात् (हवा, air, atmosphere इति अपरभाषोदितात्) अभिन्नमिति निश्चीयते।

सांख्यशास्त्रस्य गुणपरिणामवादानुसारं (विकासवादः Evolution theory इति अपरपर्यायाः) सत्वरजस्तमांसीतिगुणत्रयं मूलप्रकृतौ विद्यमानं तदुद्भूतेषु बुद्ध्यहंकारादि त्रयोविंशत्यात्मकतत्वेष्वपि अवतिष्ठते। अतएव परिणतद्रव्याणां गुणकर्मणी मूलद्रव्यवदेव भवितुं अर्हतः। पंचमहाभूतानि त्वस्याः परिणतेरन्तिमपंचद्रव्याणि। क्रमस्तु प्रकृतिर्महानहंकारः पंचज्ञानेन्द्रियाणि पंचकर्मेन्द्रियाणि उभयात्मकं मनः पंचतन्मात्रा पंचमहाभूतानीति। तानि महाभूतानि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानि।

आह सुश्रुतः—

तत्र पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां समुदायात् द्रव्याभिनिर्वृत्तिः, उत्कर्षस्त्वभिव्यंजको भवति—इदं पार्थिवमिदमाप्यं इदं तैजसमिदं वायव्यमिदमाकाशीयमिति।

सु० सू० ४१-३

आयुर्वेदे 'सर्वंद्रव्यं पांचभौतिकम्, इतिनियमात् आयुर्वेदीयं वातद्रव्यमपि पांचभौतिकम्। अतः शरीरांतर्गतवायुद्रव्ये विद्यमानाः गुणाः यथा संहिताग्रन्थेषु वर्णिताः, अत्र द्वितीयप्रकरणारंभे उद्धृताश्च, ते बाह्यपांचभौतिक वायुद्रव्येऽपि तथैव अनुभूतिविषयाः यदि भवेयुः, तदा बाह्यवायोः शारीरवायोश्च एकद्रव्यत्वं सिद्धं भवेत्।

द्वितीयप्रकरणारंभे वर्णिताः वायोगुणाः रूक्षलघुशीतदारुणसूक्ष्मचलविशदखरामूर्तानवस्थितादयः सर्वे एते बाह्यवायौ विद्यन्ते न वा इति परीक्षणं अधुना क्रियते।

(१) रूक्षत्वम्

(१) बाह्यो वायुः रूक्षः। रूक्षगुणः स्निग्धविपरीतः। यद्यत् द्रव्यं शरीरं स्पृशत्, शरीरे स्निग्धगुणस्य सूक्ष्मातिसूक्ष्मांशं अपि न उत्पादयति, तदेव रूक्षगुणयुक्तं स्यात्। कस्मिन्नपि ऋतौ शरीरं स्पृशन् बाह्यो वायुः लेशमात्रमपि स्निग्धतां न उत्पादयति, अतः बाह्यं वायुद्रव्यं रूक्षम् एव इति सिद्ध्यति।

(२) लघुत्वम्

तुलनापेक्षी लघु गुणः। लघुद्रव्यं गुरुविपरीतम्। घन (Solid) द्रव (Liquid) वायुरूपे (gaseous) तित्रिविधानि द्रव्याणि विश्वे, सर्वाणि वायुरूपद्रव्याणि घनद्रवद्रव्येभ्यः लघूनि भवन्ति विशिष्टगुरुत्वनियमनात् (Specific Gravity Law) कफस्तु सान्द्रं (Semiliquid) द्रव्यं, पित्तं द्रवं (liquid) एव। तयोः तुलनायां वातः लघुरेव। पदार्थवैज्ञानिक (physical property) लघुगुणादेव तस्य शारीरगुणोऽपि (medical property) लघुरेव। वातप्रधानं पांचभौतिकद्रव्यं शरीरे लघुत्वम् आपादयति।

(३) शीतत्वम्।

वातद्रव्यं शीतस्पर्शं शीतगुणं च। बाह्यवायुविषये अरुणदत्तः। "ननु अनुष्णाशीतो वायुरिति काणादैः पठितः। इहापि योगवाह्यनुज्ञानात् अनुष्णाशीत एव इष्यते इति।

तथाचोक्तम् । 'योगवाहः परं वायुः संयोगादुभयार्थकृत् । दाहकृत्तेजसा युक्तः शीतकृत्सोमसंश्रयात्' (च० चि० ३-३८) तथा 'पवने योगवाहित्वात् शीतं श्लेष्मयुते भवेत् । दाहः पित्तयुते..." इति (अ० हृ० नि० २-४८) । सत्यमेतत् । वायुः अनुष्णाशीत एव । तस्य योगवाहित्वे अपि तावन्मात्राद्दाहोदयात् शैत्यं स्वाभाविकं न विनश्यति । शीतगुणव्यावर्णने च इदं प्रयोजनं उष्णेन अयं उपशाम्यति इति प्रतिपत्यर्थम् ।

अ० हृ० सू० १-११ सर्वांगसुन्दरा ।

अर्वाचीनपदार्थविज्ञानतः (Modern Physics) अपि बाह्यो वायुः अनुष्णाशीतः । निदाघे सूर्यस्य उष्णरश्मिसंसर्गात् उष्णः । शिशरे तु नीहारावश्यायादि संसर्गात् शीत एव । अत्र तु तस्य शारीरगुणः शीतएवेति अनुभवविषयः । वातपीडिताय स्नेहनस्वेदनक्रियाभ्यां अवश्यं लाभः इति वैद्यैः तद्विधौ एव उपक्रमौ क्रियते लाभः अपि प्रतीयते । एवं शरीरगतं वायुद्रव्यं स्वभावतः शीतगुणयुक्तम् इति अनुमानम् ।

(४) सूक्ष्मत्वम् ।

सूक्ष्मशब्दः स्थूलविपरीतः । ईश्वरप्रकृतिमनआत्मादि द्रव्याणि सूक्ष्मानीति निगद्यन्ते । यतः न तानि ज्ञानेन्द्रियगोचराणि किन्तु बुद्धिगम्यानि । अस्मिन्नेव अर्थे सूक्ष्मशब्दोऽत्र नियोजितो भवेत् इति छात्राणां शंकाव्युदासार्थमेव अरुणदत्तेन सर्वांगसुन्दरायां 'सूक्ष्मः स्रोतः संचारित्वात्' इति शब्दाः नियोजिताः । द्रव्यमिदं शरीरस्य सूक्ष्मातिसूक्ष्मस्रोतःसु (नलिकासु) झटित्येव प्रवेष्टुं समर्थं वायुरूप (Gaseous) द्रव्यत्वात् । यस्यां सूक्ष्मनलिकायां द्रवं वा सान्द्रं द्रव्यं न प्रवेशं कर्तुं शक्नोति, तस्यापपि वायुः गच्छत्येव इति अस्मादृशां अनुभवः । गृहभित्तेः सूक्ष्मातिसूक्ष्मस्रोतःसु अपि वायुप्रवेशः ।

(५) चलत्वम् ।

वायुः स्थिरविपरीतः चलः अनन्यप्रेरितानि द्रवघनद्रव्याणि अधोगंतुमेव क्षमाणि । वायुद्रव्यं तु अधः पार्श्वयोः ऊर्ध्वमपि गमनशीलं, कथं विधायाः प्रेरणायाः अभावेऽपि । तस्य द्रव्यस्य सूक्ष्मातिसूक्ष्माः अणवः (Molecules) कदापि स्थिरीभूताः न भवन्वि उत सदैव गमनशीलाः । अतः अमरकोशे 'सदागति' रिति वायोः पर्यायः । सदागतिमान् अतः चलमेव इदं वायुद्रव्यं इति पूर्वाचार्यैः अवगतः तस्य धर्मः ।

(६) विशदत्वम् ।

पिच्छिलविपरीतो विशदगुणः । घ्राणस्रावरूपः कफमलः, शर्करायाः सांद्रः पाकः, माक्षिकः वृक्षनिर्यासः आदि द्रव्याणि पिच्छिलानि । तेषां संयोगः यैः अन्यैः द्रव्यैः तानि संक्लेदयति । वायुस्तु न तथा संक्लेदयति । वर्षाऋतौ यद्वस्त्राणां बाह्यवायुसंसर्गात् संक्लेदनं दृश्यते न तत् वायुकृतं किन्तु वायुमिश्रितजलबाष्प (moisture) कृतं । अतः वायुः विशदः ।

(७) खरत्वम् त्वग्दरणं वा ।

श्लक्ष्णविपरीतः खरः गुणः । यदा शिशिरऋतौ शरीरावरणरूपां त्वचं वायुः स्पृशति, तदा त्वग्भेदः त्वग्दरणं वा संपाद्यते । तैलघृतादि स्निग्धद्रव्यमर्दनेन, एवं विपरीतगुणयुक्तद्रव्यस्पर्शनेन तत्खरत्वं नश्यति । त्वक् च श्लक्ष्णा भवति । वातद्रव्यस्य खरगुणः एवं निश्चीयते ।

(८) अमूर्तत्वम्

(८) वायुद्रव्यं अमूर्तम् । अकारस्य नञ् रूपस्य निषेधात्मकोऽर्थः । एवं अमूर्तशब्दस्य

मूर्तिरहितः प्रकृतिकालदिङ्मन आदिबत् आकाररहितः, इत्यर्थोमाभूत् अतएव 'अमूर्तत्वमिति अदृश्यत्वम्' इति विवेचनं चक्रदत्तेन चरक सू० २०-१२ सूत्रस्य टीकायाम् कृतम् । अतएव टीकाकाराः अपि आप्ताः । वायुद्रव्यं हि शब्दस्पर्शाभ्यां गोचरं द्रव्यम् । रूपरसगन्धेन्द्रियैस्त्वगोचरम् । यतः—

'शब्दस्पर्शवान्वायुः' अथवा

तेषामेकगुणः पूर्वं गुणवृद्धिः परे परे ।
च० शा० १-२८

अस्य सूत्रस्य टीकायां चक्रदत्तः—

'वायौ तु स्पर्शः क्रमप्राप्तः पूर्वोभवति, पूर्वगुणश्च शब्दः इति द्विगुणत्वम्' ।

अमूर्तद्रव्यमेव अव्यक्तमिति भण्यते । अव्यक्तः अदृश्यमूर्तिः इति डल्लनः । (सु० नि० १-७ टीका) । अव्यक्तः अमूर्तः द्विगुणः इति वायोः पर्यायवाचकाः शब्दाः ।.(क्रमशः)

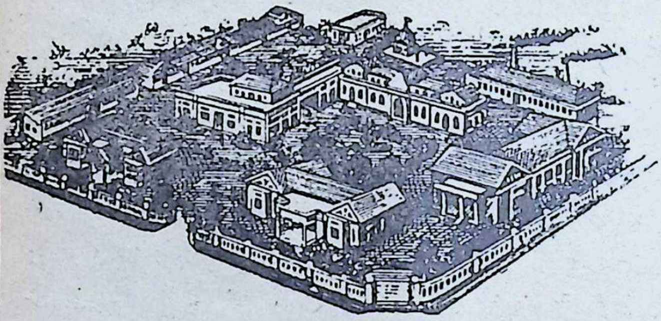

४५ वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम REGD.

गोंडल, सौराष्ट्र ।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, तैल, मलम, अंजन, अवलेह, आसवारिष्ट तथा पेटेंट वगैरह सैकड़ों आयुर्वेदिक औषधियाँ हाथ से तथा उपलों की अग्नि से बड़े जत्थे में तैयार की जाती हैं । यहां की दवाइयां सरकारी, म्युनिसिपल तथा धर्मार्थ दवाखानों आदि में तथा विदेशों में प्रचुर प्रमाण में जाती हैं । विद्वान वैद्य, हकीम तथा एलोपैथ डाक्टर गोंडल रसशाला की औषधियों के उपयोग से रोगियों को रोगमुक्त कर यश तथा धन कमा रहे हैं । प्रजा के हृदय में रसशाला ने विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है । रोग के लिए सलाह मुफ्त दी जाती है, हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी सूचीपत्र आज मंगाइये । बम्बई की शाखायें :—

शाखा नं० १ गोंडल रसशाला औषधाश्रम,
छोटालाल भवन, ४१६ कालबा देवी रोड,
मुम्बई २ ।

शाखा नं० २ गोंडल रसशाला औषधाश्रम
१७ कोमरश्यल चेम्बर्स, मस्जिद बन्दर रोड,
जकरिया मस्जिद सामने, मुंबई ३ ।

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति एवं नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति का

सम्मिलिताधिवेशन

विशेष–ता० २१ मई के अधिवेशन के पश्चात विषय-निर्वाचिनी समिति भी इस अधिवेशन में सम्मिलित रही।

समय:—ता० २१, २२ तथा २३ मई १९५५ रात्रि ९ बजे से।

स्थान:—प्रतिनिधि निवास, ४० वां अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, त्रिवेन्द्रम।

उपस्थिति:—सर्वश्री वैद्य डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित, बेंगलौर, डा० ए० लक्ष्मीपति मद्रास, भीका जी विनायक डेग्वेकर, जबलपुर, क० विद्यानारायण शास्त्री, पटना, ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल, त्रिपाठी कमलाप्रसाद मणि, पटना, शिवधर प्रसाद सिंह, पटना, केदारनाथ शर्मा पुरोहित, नागपुर, आचार्य नित्यानन्द, पिलानी, रा० ब० श्रीदत्त शर्मा, भिवानी, बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर, हरनाथ त्रिपाठी, कानपुर, हरिशंकर प्रसाद पाठक, बरौनी, रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली, केशवदेव शर्मा, भिवानी, शिवकरण शर्मा छांगाणी, नागपुर, गंगाधर बालकृष्ण बझे, नागपुर, छगनलाल शर्मा, रायपुर, गुलराज शर्मा मिश्र, नागपुर, वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ़्फरपुर, खेमराज शर्मा छांगाणी, नागपुर, स्वामी चेतनानन्द, देहली, एम० बैंकट, शास्त्री, विजयवाडा, वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा, बम्बई, क० पुरुषोत्तमदेव मुलतानी, हैद्राबाद।

अधिवेशनार्थ निम्नलिखित महानुभावों के सम्मतिपत्र प्राप्त हुए :—

सर्व श्री वैद्य पूर्णानन्द शास्त्री, श्री माधोपुर, क० रवीन्द्रचन्द्र चौधरी, मिर्जापुर, पं० बिहारीलाल, बदरूखां, पं० रामगोपाल मिश्र, गोंदिया, बालकृष्ण वैद्य, राजकोट, पं० गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद, वैकुण्ठदेव शर्मा अधिकारी, गुहाटी, क० प्रतापसिंह, बनारस, शम्भुनाथ शास्त्री, कानपुर, ऋषिराम शर्मा अलवर, स्वामी इन्द्रदास, जैतो, वासुदेव शास्त्री, उज्जैन, वा० बा० नटराज शास्त्री, त्रिचनापली, मोतीराम कृष्णात्रेय, राजपुरा, घासीराम गणपतराम जोशी, देवास, सूर्यकान्त शर्मा, भगवतगढ, पन्नालाल राठी, पुरलिया, लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण शास्त्री, अहमदाबाद, रामेश्वरसिंह कंवर, जालन्वर, प्रकाशनाथ तिवाड़ी, जालन्धर, शिवजी जेठाभाई, माण्डवी, चन्द्रप्रकाश शास्त्री, देहली, के० एडमण्ड पिरेरा, इंगीरिया,(लंका), एम० आर० भट्ट, मंगलौर, श्रीराम शर्मा, बम्बई, रतिलाल गिरिजाशंकर भट्ट,लाठी, सौराष्ट्र।

श्री डा० वाई पार्थनारायण पण्डित की अध्यक्षता में कार्यवाही प्रारम्भ हुई।

विषयांक १-२: अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति तथा नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति के गताधिवेशनों के कार्यविवरण पढ़ कर सुनाये गए तथा वे सर्वसम्मति से स्वीकार हुए।

विषयांक ३-४: नवीन सदस्यों तथा महासम्मेलन विद्यापीठ सम्बद्ध संस्थाओं की

स्वीकृति का विषय उपस्थित हुआ तथा निम्नलिखित सदस्यतायें एवं सम्बद्धतायें स्वीकार हुईं :-

आजीवन सदस्यता:—वैद्य श्री शिवधर प्रसाद सिंह, पटना, वैद्य श्रीं एम. वी. मोहम्मद, तेलीचेरी, वैद्य श्री ठाकुर प्रसाद शास्त्री, जैतपुर, वैद्य श्री कृष्णगोपाल शर्मा, बारां, डाक्टर श्री आर. एस. कौशिक, रामगढ़।

मान्य सदस्यता:—वे सभी मान्य सदस्य जिनका सदस्यता शुल्क १८ फरवरी १९५५ से २१ मई १९५५ तक कार्यालय में प्राप्त हुआ है।

(क) सम्बद्धतायें-प्रादेशिक सम्बद्ध संस्थायें—श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा, देहली। महाकौशल आयुर्वेदीय सम्मेलन, जबलपुर। तामिलनाड आयुर्वेद मण्डलम, तिरुचिरापली। उत्तर प्रदेश कार्यवाहक वैद्य सम्मेलन, देहरादून। निखिल कर्नाटक आयुर्वेद मण्डल, बीजापुर। महागुजरात वैद्य मण्डल, बम्बई। पटियाला राज्य संघ आयुर्वेद सम्मेलन, सरहिन्द। सौराष्ट्र वैद्य सभा, राजकोट। निखिल उत्कल वैद्य सम्मेलन, पुरी। राजस्थान आयुर्वेद सम्मेलन, जोधपुर। आन्ध्र वैद्य मण्डली, एलुरु। आल केरल आयुर्वेदिक कांग्रेस, खोजीकोड। बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, मुजफ्फरपुर। मायसोर आयुर्वेदिक कांग्रेस, वंगलौर।

(ख) साधारण सम्बद्ध संस्थायें:—आयुर्वेद कांग्रेस कमेटी, केकड़ी। बम्बई वैद्य सभा, बम्बई। अहमदावाद वैद्य सभा, अहमदावाद।

(ग) विद्यापीठ सम्बद्ध संस्थायें:—भोंसला संस्कृत महाविद्यालय, नागपुर। कान्यकुब्ज आयुर्वेदिक कालेज, लखनऊ।

निश्चय हुआ कि जिन सम्बद्ध संस्थाओं का सम्बद्धता शुल्क वर्ष की समाप्ति पर प्राप्त न हो उन्हें शुल्क समाप्ति के ६० दिन के भीतर सम्बद्धता शुल्क भेजने के लिए कार्यालय द्वारा स्मृतिपत्र अवश्य भेजे जाया करें ताकि प्रत्येक संस्था की ओर से सम्वद्धता शुल्क समय के भीतर प्राप्त हो सकें।

विषयांक ५-१७: अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन तथा नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ के सन् १९५३-५४ वर्षीय आय-व्यय तथा सन्तुलन पत्रों की स्वीकृति का विषय विचारार्थ उपस्थित हुआ। किन्तु इस पर विचार होने से पूर्व ही श्री डा. ए. लक्ष्मीपति, मद्रास, के प्रस्ताव तथा श्री वद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर के अनुमोदन पर यह निश्चय हुआ कि उक्त विषय सहित एजन्डे के सभी अवशिष्ट विषय विषय-निर्धारिणी समिति एवं स्थायी समिति के सम्मिलित विचारार्थ समर्पित किए जायें।

तदनन्तर विषयांक १८ के अन्तर्गत मिश्रित विषयों पर विचार किया गया तथा सर्वसम्मति से निम्नलिखित निश्चय हुए :—

१. वंगाल प्रान्तीय आयुर्वेद महामण्डल के विषय पर ता० १७-२-५५ को बम्बई में सम्पन्न स्थायी समिति के अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार श्री विजयकाली भट्टाचार्य तथा मंडल के पदाधिकारियों द्वारा की गई कार्यवाही के विवरण जो उक्त दोनों पक्षों की ओर से पृथक्-पृथक् प्राप्त था, पर विचार किया गया तथा सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि स्थिति की सम्यक् जांच के लिए यह आवश्यक है कि महासम्मेलन प्रधान मंत्री इस विषय पर विशेष स्पष्टीकरण तथा आवश्यक सूचनायें सम्बन्धित व्यक्तियों से प्राप्त करें तथा इसे स्थायी समिति के

आगामी अधिवेशन में पुनः विचारार्थ उपस्थित करें।

२. निश्चय हुआ कि वारंगल में नि.भा. आयुर्वेद विद्यापीठ का परीक्षा केन्द्र स्थापित किया जाय।

३. महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के आडीटर महोदय के आडिट फीस बढ़ाने के हेतु प्रार्थनापत्र पर विचार हुआ तथा निश्चय कि क्योंकि महासम्मेलन विद्यापीठ के आडिट का कार्य पहिले से बढ़ गया है अतएव महासम्मेलन की आडिट फीस में २५ रु० की वृद्धि कर दी जाय।

४. राजवैद्य श्री जयानन्द मिश्र भटूरिया, बनारस, के पत्र पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि उन्हें कार्यालय की ओर से सन्तोषजनक उत्तर भेज दिया जाये।

५. निश्चय हुआ कि श्री श्रीकृष्ण प्रभाकर, सह-सम्पादक, आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका, को महासम्मेलन का अतिरिक्त कार्य करने के पारिश्रमिक स्वरूप जनवरी १९५५ से ५ रुपया मासिक भत्ते के रूपमें दिया जाये।

वामनराव दीनानाथ वैद्य,
प्रधानमन्त्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।

---

४० वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन तथा शिक्षा सम्मेलन त्रिवेन्द्रम पर स्वीकृत प्रस्ताव

प्रस्ताव सं० १

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का यह ४० वां अधिवेशन स्वर्गीय श्री राजवैद्य नन्दकिशोर शास्त्री, भूतपूर्व विद्यापीठाध्यक्ष, श्री वी० के० जी० मैनन, प्रिंसिपल, आयुर्वेद कालेज, त्रिवेन्द्रम, वैद्य श्री शिवराम द्विवेदी, लखनऊ, वैद्य श्री नाथूराम जी मोद्गल्य, दिल्ली, वैद्य श्री सी० सत्यनारायण शास्त्री, एल्लूर, वैद्य श्री अयोध्या मिश्र, मुजफ्फरपुर, वैद्य श्री रमाकान्त मालवीय, मुजफ्फरपुर, वैद्य श्री जगन्नाथराव माने, नागपुर, वैद्य श्री हरिशास्त्री पराडकर, अकोला, वैद्य श्री रामनाथ शर्मा, विल्होर कानपुर तथा वैद्य श्री उपेन्द्रमोहन मिश्र दरभंगा, के असामयिक देहावसान पर हार्दिक दुःख का अनुभव करते हुए शोक सहानुभूति प्रकट करता है तथा दिवंगत आत्माओं की सद्गति एवं उनके शोकाकुल परिवारों को शान्ति प्रदान करने की भगवान श्री धन्वन्तरि से प्रार्थना करता है।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव सं० २

पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद।
(आगामी अंक में प्रकाशित किया जायगा)

प्रस्ताव सं० ३

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि "शुद्ध आयुर्वेद" शब्द का अर्थ अष्टांगायुर्वेद स्वीकार करके महासम्मेलन ने शुद्ध आयुर्वेद के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया है अतः महासम्मेलन केन्द्रीय तथा प्रान्तीय राज्यों से अनुरोध करता है कि क्योंकि शुद्ध आयुर्वेद के प्रचार द्वारा ही आयुर्वेद और जनता की अभीष्ठ रक्षा हो सकती है अतः वे शुद्धायुर्वेद के शिक्षण और प्रसार की नीति शीघ्रातिशीघ्र

आरम्भ करें। शुद्ध आयुर्वेद के अध्यापकों की पुनः शिक्षण द्वारा योग्यता वृद्धि के लिए महासम्मेलन यथाशक्य सहायता करे तथा अपनी प्रान्तीय शाखाओं को भी इस नीति का अनुसरण करने के लिए आदेश दे।

प्रस्तावक—पं० एच० रामाशास्त्री, बंगलोर
समर्थक—एम० व्यंकट शास्त्री, विजयवाड़ा

प्रस्ताव सं० ४

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन राजकीय सरकारों से सानुरोध प्रार्थना करता है कि वास्तविक धर्मार्थ संस्थाओं को सेल्स टैक्स (बिक्री कर) से मुक्त किया जाय जिससे उनके समाज सेवा कार्यों एवं प्रवृत्तियों को अधिकाधिक प्रोत्साहन मिले।

प्रस्तावक—वैद्य श्री हरनाथ त्रिपाठी, कानपुर।
समर्थक—वैद्य श्री नित्यानन्द सारस्वत पिलानी।

प्रस्ताव सं० ५

देश में विभिन्न राज्य सरकारों की ओर से आयुर्वेदिक बोर्डों का संचालन किया जा रहा है। उनके द्वारा वैद्य हकीमों का रजिस्ट्रेशन होता है तथा आयुर्वेदिक शिक्षण संस्थाओं में पाठ्यक्रम आदि का निर्माण और उसकी शैक्षणिक व्यवस्था आदि का नियन्त्रण भी उनके परामर्शानुसार होता है। अतः समस्त राज्य सरकारों के बोर्डों में समानता की भावना और प्रवृत्तियों का संचार करने के लिए यह महासम्मेलन केन्द्रीय शासन से अनुरोध करता है कि समस्त भारतवर्ष में आयुर्वेद के पाठ्यक्रम आदि में एक समानता की नीति स्वीकार करने के लिये एक केन्द्रीय समिति का निर्माण करे और उसमें समस्त राज्य सरकारों के बोर्ड के सदस्यों में से दो-दो सदस्य लिये जावें।

प्रस्तावक—श्री नारायण रामचन्द्र शुक्ल, रायगढ़।
समर्थक—श्री छगनलाल शर्मा, रायगढ़।

प्रस्ताव सं० ६

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन बम्बई आयुर्वेदिक रिसर्च बोर्ड के कार्य पर असन्तोष प्रकट करता है तथा बम्बई सरकार से अनुरोध करता है कि उक्त बोर्ड का सभी कार्य आयुर्वेद के विद्वानों के अधीन ही सम्पन्न कराया जाय ताकि बोर्ड सफल सिद्ध सो सके।

प्रस्कावक—श्री एम० व्यंकट शास्त्री, विजयवाडा।
समर्थक—श्री नाथूराम किशनदास, बुरहानपुर।

प्रस्ताव सं० ७

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के इस आदेश पर कि सरकारी कर्मचारियों का ऐलापैथिक डाक्टरों द्वारा चिकित्सा कराने पर ही चिकित्सा व्यय सरकार वहन करेगी, हार्दिक क्षोभ प्रकट करता है और वैद्यों के प्रति सरकार के इस उपेक्षा भाव के लिये खेद प्रकट करता हुआ केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों से अनुरोध करता है कि वह अपने आदेश में संशोधन कर वैद्यक की चिकित्सा को भी डाक्टरों की चिकित्सा के समान ही स्वीकार करे।

प्रस्तावक—श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर।
समर्थक—श्री हरिशंकर प्रसाद पाठक, बरौनी।

प्रस्ताव सं० ८

महासम्मेलन का यह अधिवेशन राजस्थान आयुर्वेदिक विभाग की उस भेदभावपरक नीति की आलोचना करता है, जिसमें उन्होंने विद्यापीठ की उच्चतम परीक्षा आयुर्वेदाचार्य को भिषगाचार्य से निम्न श्रेणी का माना है तथा विभाग से अनुरोध करता है कि वह इस भेद-भाव की नीति को त्याग कर आयुर्वेदाचार्य को भिषगाचार्य के समकक्ष अवश्य स्वीकार करे।

प्रस्तावक—सी० के० दिवाकरन, हैदराबाद।

समर्थक—क० रामस्वरूप चक्रवर्ती देहली।

प्रस्ताव सं० ९

दिल्ली बोर्ड आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सिस्टम्स आफ मेडिसिन ने गत सितम्बर १९५४ में एक पत्र द्वारा सूचित किया है कि विद्यापीठ की परीक्षाओं की मान्यता की अवधि एक वर्ष के लिये बढ़ाई जाती है। उक्त अवधि समाप्त होने वाली है। अत: यह अधिवेशन विद्यापीठ की परीक्षाओं की मान्यता को स्थिर कराने के लिए निम्न व्यक्तियों की एक उप समिति का निर्माण करता है:—

१—श्री ओंकार प्रसाद जी, देहली।
२—श्री कैलाशचन्द्र जी, देहली।
३—श्री शिवनाथ जी, देहली।
४—श्री गुरुदत्त जी, देहली।
५—श्री स्वामी चेतनानन्द जी, देहली।

इस समिति के संयोजक क०श्री कैलाशचन्द्रजी होंगे।

प्रस्तावक—श्री एस० सी० राधाकृष्ण शास्त्री, त्रिचनापल्ली।

समर्थक—श्री हरिशंकर प्रसाद पाठक बरौनी।

Resolution No. 10

In view of the great popularity of Ayurveda in Malabar which is thought to be one of the biggest centres of Ayurvedic treatment in India having about 10,000 Ayurvedic physicians, this Conference request the Government of Madras to establish an Ayurvedic College with a herb nursery attached to it, a well equipped Ayurvedic Hospital and a herb research station at a suitable place in Malabar, so that proper help and encouragement be made available to this system in Malabar.

Resolution No. 11

This Conference is of the openion that the present system of classifying registered Vaidyas into three catagories is unnecessary as it is not based on any scientific basis and, therefore, request the State Governments to abolish this classification immediately.

This Conference further request all the State Governments that the system of registration of Vaidyas, wherever it may have been suspended, be reintroduced immediately as this will provide a chance to the qualified Vaidyas to get themselves registered as also weed out quacks.

Resolution No. 12

Inspite of the fact that Ayurveda is more popular in Malabar and there are about 10,000 physicians there, only one representative has been taken from Malabar on the Central Board of Indian Medicine and on account of this inadequate representation sufficient attention to the Ayurvedic problems in Malabar is not being paid.

This Conference, therfore, request the Central Government that Malabar may be represented at the Board in proportion to the number of Ayurvedic physicians and centres existing in Malabar.

Resolution No. 13

This Conference request the Madras and Travancore Cochin State Governments that steps should be taken to attach an Ayurvedic section to each Taluqa Headquarter Hospital as a step towards the encouragement of Ayurveda in the respective States.

Resolution No. 14

This Conference request the Government of Madras to grant financial aid in the form of subsidies to all Ayurvedic Clinics and Pharmacies that serve the rural areas with special consideration to those institutions that are doing research work and are making free treatment available to the people.

Resolution No. 15

This Conference request the Government of Madras to exempt Ayurvedic medicines such as Asvas and Arishtas from the provisions of the Prohibition Act.

Moved by-P.V. Eswara Varier,
Calicut.
Seconded by-Pappu Vaidyar.

Resolution No. 16

This 40th Session of the All India Ayurvedic Congress learns with deep regret that the Government College of Indigenous Medicine, Madras is fast degenerating into an Allopathic Institution under the direction and control of anti-Ayurvedic elements. The state of affairs in all the spheres of the administration of the College, has so detriorated that it has become a matter of great concern for the Ayurvedic profession of the country in general and the Ayurvedic practitioners of Madras state in particular. This Congress, therefore, urges the Madras Government to take immediate steps to mend this state of affairs and appoint a committee of competent Ayurvedic scholars who should go into the whole question and suggest ways and means to fully revive the Aiyurvedic syllabus and curriculum of studies for which the college was originally established. The All India Ayurvedic Congress will be quite willing to co-operate in this regard and suggest the names of some suitable persons who will be able to do full justice to the matter.

Proposed by—Vaidyrartna
Pt. Durai Swamy Aiyangar,
Madras.
Seconded by—M.Venkat, Sastry.,
Vijyagawada.

Resolution No. 17

This Session of the All India Ayurvedic Congress resolves to appoint a Deputation consisting of the following persons to wait on the Chief and Health Ministers of Madras State with a view to submit a memorandum explaining the prevailing state of affairs of the Government College of Indigenous Medicine, Madras and suggesting proper remedies to improve the status of Ayurveda in the College.

1. Shri Dr. A. Lakshmipathi, Madras.
2. Shri Dr. Durai Swamy Aiyengar, Madras.
3. Vaidya Shri V. B. Natraja Shastri, Trichinapolly.

ज्येष्ठ २०१२

4. Shri V. Subramanyam Aiyer, Srirangam.
5. To be coopted.

Resolution No. 18

This Conference resolves that all the State Governments be requested to grant due recognition to the Diplomas and Certificates awarded by the All India Ayurved Vidyapeeth as a result of Examination conducted by it.

Proposed by:-

P. V. Rama Varier, Kottakal.

Seconded by :-

Kamala Prasad Mani Tripathi,
Patna.

प्रस्ताव सं० १९

नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा आयुर्वेद अन्वेषण विभाग की पृथक् स्थापना पर अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन विश्वविद्यालय को धन्यवाद देता है तथा अन्य विश्वविद्यालयों से भी प्रार्थना करता है कि वे भी अपने यहां आयुर्वेद अन्वेषण के लिये पृथक्-पृथक् विभाग स्थापित करें।

प्रस्तावक—श्री शिवकरणशर्मा छांगाणी,
नागपुर।

समर्थक—श्री गुलराज शर्मा मिश्र,
नागपुर।

प्रस्ताव सं० २०

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मत है कि महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के तत्वावधान में जिस प्रकार अध्यापक चर्चा परिषद् द्वारा आयुर्वेदीय ग्रन्थों की असन्दिग्ध संज्ञा निश्चित व पाठ्यक्रमोपयोगी शास्त्रीय विवेचनपूर्ण ग्रन्थ निर्माण का प्रयत्न किया जा रहा है, उसी प्रकार प्रत्येक प्रान्त में अध्यापक चर्चा परिषदों का आयोजन किया जावे और उनके निर्णयों को संकलित करके प्रत्येक विषय पर स्वतंत्र पुस्तकें लिखी जायं जो निखिल भारत के अध्यापकों व विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त हों। प्रथम दोष धातु मल विज्ञान पर प्रयत्न किया जाय।

प्रस्तावक—श्री वेणीमाधव जोशी,
नागपुर।

समर्थक—वैद्य ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल।

प्रस्ताव सं० २१

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि महासम्मेलन नियमावलि एवं रिकार्ड में जहां भी "वैद्य" और "आयुर्वेद" ये शब्द आये हैं इनमें क्रमशः "हकीम" और "यूनानी" शब्दों के भाव भी अन्तर्भूत समझे जावें। जो हकीम इस समय महासम्मेलन के सदस्य हैं अथवा भविष्य में होंगे उनके लिये, जहां तक अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन से उनका संबंध है, अपने आपको "वैद्य" या "हकीम" कहना अथवा लिखना ऐच्छिक होगा।

यह भी निश्चय हुआ कि इस प्रस्ताव को महासम्मेलन की नियमावलि के अन्त में परिशिष्ट रूप में मुद्रित करा दिया जावे।

प्रस्तावक—वैद्यभूषणम एम० वी० मोहम्मद, तेलीचेरी।

समर्थक—स्वामी चेतनानन्द जी, देहली।

प्रस्ताव सं० २२

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि बम्बई राज्य

में विशुद्ध आयुर्वेदिक अध्यापक कोर्स की सहायतार्थ ५०० रु० स्वीकार किये जांय।

प्रस्तावक—चन्द्रशंकर रविशंकर भट्ट,
राजकोट।

समर्थक—रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली।

प्रस्ताव सं० २३

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि श्री स्वामी गोपाल चैतन्यदेव, बम्बई, जिन्होंने विशेष रीति से "चतुर्भुज रस" औषध का निर्माण किया है, को २५१ रु० महासम्मेलन की ओर से दिये जावें और इस मूल्य की औषधि उनसे बनवा कर उसका परीक्षण युनिवर्सल हैल्थ इंस्टीट्यूट बम्बई में किया जावे।

यह अधिवेशन पैप्सू के आयुर्वेद डाइरेक्टर श्री पं० कान्तिनारायण मिश्र की इस घोषणा का कि यदि स्वामी गोपालचैतन्यदेव पैप्सू आवें और वहां रहकर औषधि के परीक्षण तथा आंकड़े इकट्ठे करने में सहायता दें तो वे उन्हें मार्ग व्यय के अतिरिक्त २००० रु० औषधि के निर्माण तथा परीक्षण इत्यादि के लिये देंगे स्वागत करता हुआ उनका धन्यवाद करता है।

प्रस्तावक—श्री वेणीमाधव जोशी,
नागपुर।

समर्थक—श्री ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल।

प्रस्ताव सं० २४

यह महासम्मेलन प्रस्ताव करता है कि अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की ओर से एक प्रचार विभाग का निर्माण किया जाय, जो समस्त भारतवर्ष के वैद्यों, प्रांतीय संगठनों को जागृत कर संगठित करने का प्रयास करे और जहां पर महासम्मेलन की शाखायें विद्यमान न हों वहां शाखा सभाओं एवं सम्बद्ध संस्थाओं का निर्माण करे। केन्द्रीय और राज्य सरकारों के आयुर्वेद सम्बन्धी कार्यों का दिग्दर्शन करावे, उनकी पूरी जानकारी आयुर्वेद जगत् के समक्ष प्रकट करे और महासम्मेलन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सतत प्रयत्नशील रहे तथा वार्षिक अधिवेशन में अपने कार्यों का विवरण दे।

प्रस्तावक—श्री गुलराज शर्मा, नागपुर।
समर्थक—श्री गंगाधर बालकृष्ण बभे,
नागपुर।

यह महासम्मेलन यह भी निश्चय करता है कि वैद्य श्री गुलराज शर्मा मिश्र, नागपुर, को महासम्मेलन का प्रचारमंत्री नियुक्त किया जाय तथा इनका नाम पदाधिकारियों की सूची में सम्मिलित कर दिया जाय।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव सं० २५

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के स्नातकों को संगठित किया जावे तथा तदर्थ निम्न वैद्यों की एक उपसमिति का निर्माण करता है :—

१—श्री शिवकरण शर्मा छांगाणी,
नागपुर।
२—श्री हरीन्द्र शास्त्री, पटियाला।
३—श्री हरनाथ त्रिपाठी, कानपुर।
४—श्रीराम शर्मा, बम्बई।
५—श्री नित्यानन्द आचार्य, पिलानी।
(संयोजक)

इस समिति को आवश्यकतानुसार अन्य सदस्यों को भी सम्मिलित करने का अधिकार होगा।

प्रस्तावक—श्री शिवधरप्रसाद सिंह, पटना।
अनुमोदक—श्री ब्रजनन्दन।

प्रस्ताव सं० २६

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ का यह अधिवेशन राजवैद्य श्री पं० नन्दकिशोर जी के विद्यापीठाध्यक्षपद पर रहते हुए अकस्मात् स्वर्गवास हो जाने से तीव्र दुःख का अनुभव करता है और उनके स्मारक बनाने के लिये राजस्थान आयुर्वेद मण्डल ने जो समिति बनाई है उसका हार्दिक समर्थन करता हैं ।

प्रस्ताव—वैद्य श्री ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल ।
अनुमोदक—श्री शिवकरण छांगाणी, नागपुर ।
श्री नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी ।

प्रस्ताव सं० २७

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह ४० वां अधिवेशन बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के विषय पर श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री, बम्बई, की रिपोर्ट को स्वीकार करता हुआ यह निश्चय तथा घोषणा करता है कि बिहार राज्य में बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, मुजफ्फरपुर, ही महासम्मेलन की सम्मानित एवं सम्बद्ध शाखा है ।

प्रस्तावक—श्री नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी ।
समर्थक—श्री हरनाथ त्रिपाठी, कानपुर ।

प्रस्ताव सं० २८

यह अधिवेशन निश्चय करता है कि महासम्मेलन की प्रान्तीय सम्वद्ध संस्थाओं के वार्षिक अधिवेशनों के अवसर पर यदि प्रान्तीय सम्मेलन चाहें तो महासम्मेलन की ओर से एक प्रतिनिधि भेजा जाय जो कि वहां पर महासम्मेलन के प्रतिनिधि के रूप से प्रांतीय सम्मेलन के कार्य में समुचित सहयोग दे सके । ऐसे प्रतिनिधि सम्बन्धित प्रान्त के व्यय पर ही भेजे जा सकेंगे ।

प्रस्तावक—पां०शि.शेंडये शास्त्री, दमोह ।
समर्थक—श्री बालकृष्ण, खुसरूपुर ।

प्रस्ताव सं० २९

निश्चय हुआ कि प्रादेशिक भाषाओं में प्रकाशित होने वाले आयुर्वेदिक पत्र-पत्रिकाओं को निम्नलिखित शर्तों पर महासम्मेलन द्वारा सम्मानित किया जा सकेगा ।

क—किसी पत्र की ओर से सम्मानित किये जाने की प्रार्थना मिलने पर तत्प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन की इस विषय में अनुमति ली जायेगी ।

ख—यदि प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन इस विषय में कोई अयुक्त अथवा अनावश्यक बाधा उपस्थित करे तो महासम्मेलन को, प्रादेशिक शाखा की अनुमति के बिना भी, ऐसे पत्रों को सम्मानित घोषित करने का अधिकार होगा ।

ग—ऐसे पत्रों को कोई आर्थिक सहायता महासम्मेलन की ओर से नहीं दी जा सकेगी ।

घ—आवश्यकतानुसार उक्त मान्यता को स्थगित किया जा सकेगा ।

प्रस्तावक—श्री कमलाप्रसाद मणि त्रिपाठी, पटना ।
समर्थक—श्री स्वामी चेतनानन्द, देहली ।

प्रस्ताव सं० ३०

निश्चय हुआ कि महासम्मेलन के भू० पू० अध्यक्ष श्री डा० ए० लक्ष्मीपति की हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में एक स्मृतिग्रन्थ प्रकाशित किया जाये । उक्त ग्रन्थ के लिये सामग्री के संकलन, उसके सम्पादन एवं प्रकाशन तथा धन-संग्रह की व्यवस्था करने

के लिये निम्नलिखित महानुभावों की एक समिति का निर्माण किया जाय :—

१—वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा, बम्बई।
२—श्री डा० पी० एम० मेहता, जामनगर।
३—श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर।
४—श्री विष्णुभट्ट रामकृष्णं शास्त्री, बेजवाड़ा।
५—श्री एम. व्यंकट शास्त्री, बेजवाड़ा।
६ से ९ महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के तत्कालीन प्रधान तथा प्रधानमन्त्री।

उक्त समिति को आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रदेशों से अन्य सदस्य भी सम्मिलित करने का अधिकार रहेगा।

प्रस्तावक—श्री विद्यानारायण शास्त्री, पटना।
समर्थक—श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर

प्रस्ताव सं० ३१

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन रायबहादुर श्री० पं० श्री दत्त जी शर्मा, विद्यापीठमंत्री, के उस भागीरथ प्रयत्न को रिकार्ड करता है जो उन्होंने ऋषिकेश में आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए किया है। इस कार्य-सम्पादन में नितांत विरोधी परिस्थितियों के सम्मुख भी उनके अदम्य उत्साह की यह अधिवेशन प्रशंसा करता है। उन्होंने आयुर्वेद जगत की इस प्रकार जो अमूल्य सेवा की है उसके लिये यह अधिवेशन उनका आभार मानता है और उन्हें धन्यवाद देता है। यद्यपि वे अब भी इस संस्था के निर्माण के लिये दृढ़ और कटिबद्ध हैं तो भी ऋषिकेश की परिस्थिति को अनुकूल न देखते हुए यह अधिवेशन निश्चय करता है कि :—

१—अब ऋषिकेश में आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना का विचार स्थगित कर दिया जाय।

२—जो २२०० रु० (दो हज़ार दो सौ रुपया) श्री विद्यापीठ मंत्री ने ऋषिकेश में भूमि खरीदने के लिये प्राप्त किया है उसे दानियों को वापिस कर दिया जाय।

३—इस विषय में कानूनी परामर्श करने के लिये कलकत्ते में वैरिस्टरों को ९५० रु० (नौ सौ पचास रुपया) जो फीस श्री विद्यापीठ मंत्री जी ने अपने पास से दी है उसे भी विद्यापीठ कोष से चुका दिया जाय।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव सं· ३२

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि क्योंकि ऋषिकेश में आयुर्वेद विश्वविद्यालय स्थापित करने का विचार स्थगित कर दिया गया है, अतएव नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का कार्यालय परीक्षा परिणाम घोषणा के अनन्तर ऋषिकेश से देहली को परिवर्तित कर दिया जाय तथा श्री विद्यापीठ मन्त्री को कार्यालय परिवर्तन करने एवं उसे देहली में सुव्यवस्थितरूप से जमाने का अधिकार देता है और कार्यालय-परिवर्तन व्यय मध्ये ३०० रु० की धनराशि स्वीकार करता है।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव सं. ३३

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह ४० वां अधिवेशन निश्चय करता है कि सन् १९५७ में जब अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन के जीवन के ५० वर्ष पूरे होंगे, महासम्मेलन का एक स्वर्णजयन्ती ग्रन्थ प्रकाशित किया जाये तथा उक्त ग्रन्थ के लिये सामग्री संकलित

करने, उसके सम्पादन तथा मुद्रण एवं तदर्थ धन-संग्रह की व्यवस्था के लिये निम्न लिखित महानुभावों की एक समिति नियुक्त की जाय।

१—श्री वाई पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर।
२—श्री कलादी परमेश्वरम् पिल्लई, त्रिवेन्द्रम।
३—श्री श्रीदत्त जी, ऋषिकेश।
४—श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर।
५—श्री नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी
६—श्रीगुलराज शर्मा मिश्र, नागपुर।
७—श्री वामनराव दीनानाथ, बम्बई।
८—श्री पं० शिवशर्मा जी, बम्बई।
९—श्री ईश्वर वारियर, कालीकट।

प्रस्तावक—श्री कान्ति नारायण मिश्र, पटियाला

समर्थक—श्री हरनाथ त्रिपाठी, कानपुर।

विशेष:—इस कार्य में महासम्मेलन के निजी कोष से कोई व्यय नहीं किया जायगा और बाहर से धन एकत्रित करके ही यह कार्य सम्पन्न किया जायेगा।

प्रस्ताव सं. ३४

निश्चय हुआ कि ४० वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महाम्मेलन के अध्यक्ष वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी का २४ मई १९५५ के कार्य दिवस के पश्चात् अध्यक्षपद से त्यागपत्र स्वीकार किया जाय और उनके स्थान में श्री डा० वाई पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर, को अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का अध्यक्ष निर्वाचित किया जाय।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव सं. ३५

वर्तमान प्रचलित नियमावलि में कार्य की दृष्टि से कुछ आवश्यक विषय, जैसे कि स्थानिक संघ की स्थापना आदि, छूट गये हैं, तथा कुछ ऐसे विषय समाविष्ट हो गये हैं, जो कि स्पष्ट नहीं हैं जैसे मूल सदस्यता आदि, अतः यह अधिवेशन निम्न व्यक्तियों की एक उपसमिति इस पर पुनः विचार करने के लिये नियुक्त करता है :—

१—श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर।
२—श्री ब्रह्मदत्त जी, भुसावल।
३—श्री आचार्य नित्यानन्द जी, पिलानी
४—श्रीकैलाशचन्द्र अग्रवाल, देहली।
५—श्री स्वामी चेतनानन्द जी, देहली।

प्रस्तावक—बद्रीविशाल त्रिपाठी।
समर्थक—स्वामी चेतनानन्द।

प्रस्ताव सं. ३६

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह ४० वां अधिवेशन निश्चय करता है कि आगामी अधिवेशन से पदाधिकारियों के निर्वाचन में उन्हीं व्यक्तियों के नाम उपस्थित किये जांय जो या तो स्वयं अधिवेशन में उपस्थित हों अथवा पदग्रहणार्थ उनकी लिखित अनुमति प्रस्तावक उपस्थित कर सके।

यह भी निश्चय हुआ कि इस प्रस्ताव का नियमावलि में समावेश कर दिया जाय। पुरानी नियमावलि में इसे परिशिष्ट रूप में डाल दिया जाय और नियमावलि का नवीन संस्करण छपने पर इसे यथास्थान जोड़ दिया जाय।

प्रस्तावक—श्री हरनाथ त्रिपाठी, कानपुर।
समर्थक—वैद्य ब्रह्मदत्त जी, भूसावल।
वैद्य बिहारीलाल जी, नवसारी।

प्रस्ताव सं. ३७

निश्चय हुआ कि अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन की कार्यकारिणी समिति के लिये

१९५५ में भी वही सदस्य होंगे जो १९५४ में निर्वाचित किये गये थे। उक्त नामावलि आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के मार्च १९५५ क अंक में प्रकाशित है।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव सं. ३८

निश्चय हुआ कि अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन के ४१ वें अधिवेशन के लिए श्री डा. ए. लक्ष्मीपति जी द्वारा प्रस्तुत आन्ध्र वैद्य मण्डली का निमन्त्रण स्वीकार किया जाय।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव सं. ३९

निश्चय हुआ कि दन्त वैद्य श्री पी. वी. जायदे, हुवली, जो कि अपने दन्तोत्पाटन कौशल के प्रदर्शनार्थ निकट भविष्य में ही अमेरिका जा रहे हैं, को अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन की ओर से १०१) रुपया भेन्ट किया जाय।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव संख्या ४०

अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन तथा नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ एवं तदनन्तर्गत सभी बैंक अकाउट्स को

१ महासम्मेलन प्रधानमंत्री, वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ,

२ विद्यापीठ मंत्री, श्री श्रीदत्त जी शर्मा,

३ विद्यापीठ उपमंत्री, श्री नानकचन्द्र शास्त्री तथा

४ कोषाध्यक्ष, श्री शिवनाथ शर्मा,

में से कोई दो महानुभाव एक साथ हस्ताक्षर करके चलायेंगे।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव संख्या ४१

निश्चय हुआ कि नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ के ऋषिकेश तथा हरिद्वार के बैंकों में सभी चालू तथा बचत खाते बन्द कर दिए जावें।

२ यह भी निश्चय हुआ कि नि.भा.आयुर्वेद विद्यापीठ के नाम नवीन चालू तथा बचत बैंक हिसाब पंजाब नेशनल बैंक लि., फव्वारा, दिल्ली, में खोल दिए जावें।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव संख्या ४२

निश्चय हुआ कि अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन एवं नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ के सन् १९५३-५४ वर्षीय आय व्यय एवं सन्तुलन पत्रों को स्वीकार किया जाय।

श्री सभापति द्वारा

प्रस्ताव संख्या ४३

निश्चय हुआ कि अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन एवं नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ के निम्नलिखित आनुमानिक आय-व्यय पत्रों को स्वीकार किया जाय :

पूर्ण प्रभावकारी एवं निर्दोष
आयुर्वेदिक इन्जेक्शन्स
प्राप्त करने के लिये
'वैद्यराज रसायनशाला गाज़ियाबाद यू.पी.' को सदैव याद रखिये!

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

१९५४-५५ वर्षीय आनुमानिक आय-व्यय पत्र

आय		व्यय	
संरक्षक सदस्यता	२०० ० ०	वेतन व्यय	३००० ० ०
आश्रयदाता सदस्यता	२०० ० ०	मुद्रण तथा लेखन	१००० ० ०
आजीवन सदस्यता	२००० ० ०	डाक तथा तार व्यय	७५० ० ०
मान्य सदस्यता	५००० ० ०	यातायात व्यय	१५० ० ०
संस्था सम्बद्धता	६०० ० ०	यात्रा व्यय	१००० ० ०
व्याज	२५०० ० ०	प्रचार व्यय	५०० ० ०
पुस्तक तथा पत्रिका विक्रय	१५० ० ०	कार्यालय किराया	१२०० ० ०
मिश्रित व्यय	१५० ० ०	आडिट व्यय	२५ ० ०
पत्रिका विज्ञापन	३००० ० ०	मिश्रित व्यय	२५० ० ०
प्रतिनिधि शुल्क	२०० ० ०	बैंक व्यय	२५ ० ०
		उपकरण पर घटती	१०० ० ०
	१४००० ० ०	विद्युत जलादि व्यय	५० ० ०
विद्यापीठ से	४८५२ ० ०	बट्टा खाता	२०० ० ०
		कर्मचारी रक्षाकोष	२०० ० ०
		अध्यापक रिफ्रैशर कोर्स बम्बई	५०० ० ०
		भैषज अनुसंधान	२५१ ० ०
		श्री पी० वी० जायदे	१०१ ० ०
			९३०२ ० ०
		पत्रिका—	
		मुद्रण तथा लेखन	७००० ० ०
		वेतन	२००० ० ०
		यातायात	२५ ० ०
		डाक व्यय	५०० ० ०
		मिश्रित व्यय	२५ ० ०
कुल योग	१८८५२ ० ०	कुल योग	१८८५२ ० ०

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ

सन् १९५४-५५ वर्षीय आनुमानिक आय व्यय पत्र

आय		व्यय	
आयुर्वेदाचार्य परीक्षा शुल्क	४५०० ० ०	वेतन	९५०० ० ०
वैद्याचार्य ,, ,,	१८०० ० ०	मुद्रण तथा लेखन सामग्री	२००० ० ०
आयुर्वेद विशारद परीक्षा शुल्क	६००० ० ०	डाक तथा तार व्यय	१६०० ० ०
वैद्य विशारद परीक्षा शुल्क	२००० ० ०	केन्द्र तथा परीक्षण व्यय	२१०० ० ०
आयुर्वेद भिषक् परीक्षा शुल्क	७००० ० ०	रेलवे पार्सल व्यय	१५० ० ०
प्रजावैद्य परीक्षा शुल्क	१५० ० ०	यात्रा व्यय	१००० ० ०
विलम्ब एवं दण्ड शुल्क	७५० ० ०	यातायात व्यय	१०० ० ०
गुणांक एवं पुनः संशोधन शुल्क	६०० ० ०	आडिट फीस	१३२ ० ०
रजिस्ट्रेशन शुल्क	१००० ० ०	किराया कार्यालय	३०० ० ०
सम्बद्धता शुल्क	३७५ ० ०	बिजली व्यय	१८ ० ०
उपप्रमाणपत्र तथा प्रमाणपत्र		बैंक व्यय	२५ ० ०
प्रतिलिपि शुल्क	२०० ० ०	कर्मचारी रक्षाकोष	३०० ० ०
व्याज	२०० ० ०	उपकरण पर घटती	३०० ० ०
मिश्रित आय	४२५ ० ०	आयुर्वेद विश्वविद्यालय	१५०० ० ०
		कानूनी परामर्श मध्ये व्यय	९५० ० ०
		कार्यालय परिवर्तन व्यय	३०० ० ०
		मिश्रित व्यय	४७५ ० ०
		बचत	४२५० ० ०
कुल योग	२५००० ० ०	कुल योग	२५००० ० ०

४० वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा निर्वाचित पदाधिकारियों की सूची

(क) महासम्मेलन

अध्यक्ष—श्री वाई. पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर ।

उपाध्यक्ष—श्री कान्ति नारायण मित्र, पटियाला, श्री आचार्य बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर ।

प्रधानमंत्री—श्री वामनराव दीनानाथ वैद्य, बम्बई ।

संयुक्त मंत्री—श्री प्रधान मंत्री जी को स्वयं नियुक्त करने का अधिकार दिया गया ।

सहायक मंत्री—श्री वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर ।

शेष तीन सहायक मंत्रियों की नियुक्ति का अधिकार श्री प्रधान मंत्री जी को दिया गया ।

प्रचारमंत्री—श्री गुलराज शर्मा मिश्र, नागपुर ।

कोषाध्यक्ष—श्री शिवनाथ शर्मा देहली ।

प्रधान सम्पादक—श्री स्वामी चेतनानन्द जी, देहली ।

संस्कृत विभाग सम्पादक—श्री वा. वा. नटराज शास्त्री, तिरुचिरापल्ली ।

संस्कृत विभाग उपसम्पादक—श्री मोहन लाल शास्त्री, देहली ।

(ख) विद्यापीठ

अध्यक्ष—श्री भिकाजी विनायक डेग्वेकर, जबलपुर ।

उपाध्यक्ष—श्री आचार्य नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी, श्री बा. वा. नटराज शास्त्री, तिरुचिरापल्ली ।

मंत्री—श्री रा. ब. श्रीदत्त जी शर्मा, भिवानी ।

उपमंत्री—श्री नानकचन्द्र शास्त्री, देहली । श्री शंकरदत्त गौड़, जबलपुर ।

कोषाध्यक्ष—श्री शिवनाथ शर्मा,देहली ।

महासम्मेलन स्थायी समिति के लिये ५० निर्वाचित मान्य सदस्य

१. सर्वश्री वैद्य वैकुण्ठनाथदेव अधिकारी, गोहाटी, २. एस. वी. राधाकृष्ण शास्त्री, त्रिचनापल्ली, ३. आई. वी. शर्मा, मद्रास, ४ बनमालीदास, कटक, ५. क. पूर्णचन्द्र रथ, पुरी, ६. श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, प्रयाग, ७, अमरनाथ वैद्य शास्त्री, देहरादून, ८. बाबूराम शर्मा, हापुड़, ९. रवीन्द्र चन्द्र चौधरी, मिरजापुर, १०. रामचन्द्र राममूर्ति शर्मा, आगरा, ११. सी. के, उन्नी बदयार, बंगलौर १२. के. जी. पुराणिक, मायसोर, १३. जानकी नाथ धार, काश्मीर, १४ घनानन्दपन्त, देहली १५. भुवनचन्द्र जोशी, देहली, १६. मनोहर लाल शास्त्री, देहली, १७. सत्यव्रत भारद्वाज, जालन्धर, १८. हरिवंश दीक्षित, फिरोजपुर, १९. यज्ञदत्त वाशिष्ठ, होश्यारपुर, २०. बल्देव कृष्ण शर्मा, भुनीर (पैप्सु), २१ वी. वी. शास्त्री, नाभा, २२. प्यारेलाल शर्मा, बम्बई, २३. माधव गणेश जोशी, पूना, २४. शम्भू प्रसाद शास्त्री, अहमदाबाद, २५. वी. एस. वी. पण्डित, बंगलौर, २६. चन्द्रशंकर रविशंकर भट्ट, राजकोट, २७. कालीदास चट्टोपाध्याय, कलकत्ता, २८. क. मनोरंजन वेदान्ततीर्थ, कलकत्ता, २९. पं० रामोदार मिश्र, मुजफ्फरपुर ३०. गिरिजाशंकर प्रसाद पाठक, बरौनी (मुंघेर), ३१ केशव प्रसाद मिश्र, विष्णुपुर वासुदे (मुजफ्फरपुर), ३२ सरयूकान्त झा, घरहरा ३३ केदारनाथ शर्मा, नागपुर, ३४ पाण्डुरंग शिवराम शेडये, दमोह, ३५ वेणिमाधव जोशी, नागपुर ३६ हरदत्त त्रिपाठी, जबलपुर, ३७ केशरीलाल व्यास, उज्जैन, ३८ गोविन्द व्यंकटेश भालेराव, अमरावती, ३९ शिवगुलाम पाण्डे, अकोला, ४० सी० करुणाकरण वैद्य, शोरानूर (मालाबार), ४१. केवलराम स्वामी उदयपुर, ४२. मोतीशंकर सनाढ्य (कोटा), ४३ मोतीराम स्वामी, जयपुर, ४४ हनुमान शास्त्री, जयपुर ४५ पं० केशवदेव शर्मा, बरखेड़ा, ४६ ब्रह्मदत्त आयुर्वेदालंकार, सावली, ४७ महाशंकर नरोत्तम, भुज-कच्छ, ४८ चन्द्रभानु शर्मा, जालना, ४९ बेदाल तिरुमल रामानुज स्वामी, हैदराबाद, ५० वा० बा० नटराज शास्त्री, त्रिचनापल्ली ।

विद्यापीठ कार्यकारिणी समिति

१. वैद्य श्री मनोहर लाल जी, देहली ।
२. श्री माहन लाल शास्त्री, देहली ।
३. वैद्य श्री घनानन्द पन्त, देहली ।
४. श्री प्रेम चन्द शास्त्री, देहली ।
५. वैद्यरत्न परमानन्द, देहली ।
६. कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास, देहली ।
७. श्री राम स्वरूप चक्रवर्ती, देहला ।
८. कविराज श्री कैलाश चन्द्र, देहली ।
९. श्री केशव प्रसाद आत्रेय, देहली ।
१०. कविराज श्री भुवनचन्द्र जोशी, देहली
११. श्री बालकराम शुक्ल, ऋषिकेश ।
१२. श्री पारस दास जैन, कनखल ।
१३. श्री विष्णुदत्त शास्त्री, ऋषिकेश ।
१४. श्री स्वामी दयानिधि, ऋषिकेश ।
१५. श्री धर्म स्वरूप रतूड़ी, देहरादून ।
१६. श्री केशवदेव शर्मा, भिवानी ।
१७. श्री पुरुषोत्तम दत्त गिरधर, भिवानी ।
१८. श्री जानकीनाथ धार, श्रीनगर ।
१९. श्री देवराज शास्त्री, अमृतसर ।
२०. श्री सागरदत्त शर्मा, हरिद्वार ।
२१. श्री बदरी विशाल त्रिपाठी, कानपुर ।
२२. श्री गणेशदत्त शास्त्री, मेरठ ।
२३, श्री मणिराम शर्मा, रतनगढ़ ।
२४. श्री सोहनलाल शर्मा, सरदारशहर ।
२५. श्री हरनाथ त्रिपाठी, कानपुर ।
२६. श्री विरञ्ची शर्मा, इसलामपुर ।
२७. श्री एच. सीताराम शास्त्री, मंगलौर ।
२८. श्री ए. टी. माधवन वैद्यन, कालीकट ।
२९. वैद्य श्री जनार्दन शर्मा, रायगढ़ ।
३०. श्री सी. के. दिवाकरण, हैद्राबाद ।
३१. श्री ए. टी. शर्मा, बरहामपुर ।
३२. श्री विद्यानारायण शास्त्री, पटना ।
३३. श्री जयराम दास स्वामी, जयपुर ।
३४. श्री डा. अम्बालाल शास्त्री, अजमेर ।
३५. श्री वी. जे. पण्डया, वम्बई ।
३६. श्री श्रीराम शर्मा, बम्बई ।
३७. श्री लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण शास्त्री, बम्बई ।
३८. श्री हरिनारायण चतुर्वेदी, पटना ।
३९. श्री रामदेव ओझा, मुजफ़्फ़रपुर ।
४०. श्री दामोदर अनन्त हलसीकर, हुबली ।
४१. श्री एम. वेंकटं शास्त्री, बेजवाड़ा ।
४२. श्री गयाप्रसाद शास्त्री, हैद्राबाद ।
४३. श्री एम. विश्वेश्वर शास्त्री, मद्रास ।
४४. श्री शचीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, कलकत्ता ।
४५. श्री गुलराज शर्मा, मिश्र नागपुर ।
४६. श्री पी. डी. मूले, अमरावती ।
४७. श्री पुरुषोत्तम दत्त, नवाशहर ।
४८. श्री पं० हरिदत्त शास्त्री, बम्बई ।
४९. श्री पी. वी. ईश्वर वारियार, कालीकट ।
५०. श्री बनमालीदत्त, कटक ।

धन्वन्तरि
आयुर्वेद का सर्वोत्तम मासिक
इस वर्ष का विशेषांक "चरक चिकित्साङ्क" ६०० पृष्ठों और सैकड़ों चित्रों युक्त विशाल और सुन्दर। वार्षिक मू० ६॥) । वैद्य हकीम-डाक्टर - नमूना और विवरण मुफ्त मंगावें। विज्ञापन का सर्वोत्तम साधन। विज्ञापन दर कम है।
"धन्वन्तरि" विजयगढ़ (अलीगढ़) यू.पी

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद   फोन : ३१७६६

पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालवादेवी रोड़, बम्बई

कन्याओं को आयुर्वेद

आयुर्वेदाचार्य एवं वैद्यरत्न श्रेणी तक सर्वांग पूर्ण शिक्षा निःशुल्क दिलाने के निमित्त "कन्या गुरुकुल हरिद्वार" के स्वस्थ धार्मिक वातावरण में अपनी कन्यायें प्रविष्ट कराने के लिए शीघ्र लिखिये। यहाँ गार्हस्थ्य कला तथा धर्म शिक्षा के साथ साहित्य सम्बन्धी परीक्षाओं का भी पूर्ण प्रबन्ध है। प्रवेश फार्म तथा पूर्ण विवरण के लिए लिखिये।

आचार्या

चन्द्रावती देवी शास्त्री प्रभाकर,

साहित्य रत्न, वैद्यविशारद।

शुद्ध लोह भस्म (वारीतर) २४) सेर

काश्मीरी शिलाजित, हमारे कारखाने में प्रतिवर्ष करीब २०० मन शास्त्र विधि अनुसार शुद्ध की जाती है। भाव-शुद्ध ३२) सेर, अशुद्ध पत्थर ८०) प्रति मन, वंग भस्म ३६), प्रवाल भस्म ३२), अभ्रक बज्रभस्म ४६), कांत लोह भस्म २८), स्वर्ण माक्षिक भस्म २८), रस सिन्दूर ८०), स्वर्णराज बंगेश्वर ८८), मंडूर भस्म २०), शंखभस्म ७), शृगं भस्म १४), कपर्दिक भस्म ८), मुक्ता शुक्ती भस्म १०), गोदन्ती भस्म ३।।।) चन्द्रप्रभा वटी २८), त्रिवंग भस्म ४८), कसीस भस्म १०) प्रति सेर। स्वर्ण सिन्दूर ३) प्रति तोला।

नोटः—इन भावों पर २० तोला से कम कोई वस्तु न भेजी जावेगी, सूचीपत्र मुफ्त।

च्यवनप्राश; ५ सेर का २१), १० सेर का ३८), २० सेर का ६५), रु०।

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स

(थोक आयुर्वेदिक औषधियों के बनाने का बड़ा कारखाना)

जी० टी० रोड, अमृतसर।

वैद्य बन्धुओ, अपनी आय बढ़ाओ

बिना पूंजी, बिना परिश्रम, बिना किसी व्यय के आय बढ़ाना चाहें, तो हम से पत्र व्यवहार करें। हमारा कारखाना भारत भर में थोक परिमाण में सस्ती एवं उत्तम सर्व प्रकार की आयुर्वेदिक औषधिएं सप्लाई करने में प्रसिद्ध है। कई प्रान्तीय गवर्नमेण्टें हमारी ग्राहक हैं। काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, अमृतसर।

ज्ञान तंतुओं को बल देने वाला,
स्मरण शक्ति वर्धक उत्तम ब्रेन
टोनिक

सीरप शंखपुष्पी

शंखपुष्पी और ब्राह्मी तथा अन्य अनेक मेध्य औषधों के योग से तैयार किया गया हैं। इसके सेवन से स्मरण शक्ति बढ़ती है। ज्ञानतंतुओं को बल मिलता है। मस्तिष्क से काय करने वाले विद्यार्थियों, वकीलों,—आफीसर क्लार्क आदि के लिये अमृत समान है। विद्यार्थियों के लिये तो यह सचमुच आशीर्वाद समान है। किसी भी काम को करते समय मगज थक जाता हो और आगे कार्य करने में मन नहीं लगता हो तब इस सीरप के देने से मगज की थकावट दूर होती है। मगज हलका हो जाता है और फिर कार्य करने में उत्साहित होता है। किसी भी कारण से मस्तिष्क निर्बल हो गया हो और नींद न आती हो ऐसे रोगीके लिए यह अमृत समान है।

मूल्य शीशी १ का रु० १-४-०, १ रतल का ४-०-०।

ऊंझा फार्मेसी लि०

ऊंझा (गुजरात) जबलपुर,
(मध्य प्रदेश)

दीन पलभ

विशुद्ध वनस्पतियों से निर्मित यह महौषधि यकृत से पित्त के आंतों में उचित मात्रा में न पहुँचने से उत्पन्न होनेवाले विकारों तथा कोष्ठबद्धता, शरीर का विषयुक्त होना, किसी काम में मन न लगना, उदासी, दुर्बलता, हाथों पैरों तथा कमर आदि में दर्द, हृदय में जलन घबराहट इत्यादि में अत्यन्त लाभप्रद है। दीन पलभ के तीन सप्ताह के सेवन से ही रक्त का प्रवाह ठीक होकर सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं। यह औषधि २ माशा से लेकर ६ माशा तक आवश्यकतानुसार दूध या जल से प्रातःकाल अथवा सायंकाल सोते समय सेवन की जाती है। विशेष विवरण के लिये लिखें।

दीनबन्धु कैमिकल वर्क्स
तुमसर, मध्यप्रदेश
मध्य प्रदेश के प्रमुख विक्रेता :—
वैद्य ब्रदर्स, इतवारी, नागपुर।

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleton) आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल टिकियां व गोलियां बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकाल इन्स्ट्रूमेन्ट, आदि के मिलने का पता:—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स कं०
दयाल बाग, (आगरा)

वैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ, जो अभी प्रकाशित हुआ है

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान

(पूर्वार्ध)

आयुर्वेद-मार्तण्ड वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य-बम्बई

किसी भी रोग की चिकित्सा के पूर्व रोगों के निदान का ज्ञान होना परमावश्यक है। रोग के सम्यक् नियम के बिना रोगी की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

इसीलिए व्याधि-विज्ञान (निदान-रोग विनिश्चय) आयुर्वेद के प्रधान विषयों में सम्मिलित एक उपयोगी विषय है। इस ग्रन्थ में व्याधि विज्ञान के साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधियाँ कितने प्रकार की होती हैं; निज, स्वाभाविक और आगन्तुक व्याधियों में क्या भेद है, स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियों के स्वरूप क्या हैं; प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और समुत्थान भेद से १० प्रकार के रोगानीक कैसे हो जाते हैं; रोगों का आश्रय क्या है, आदि अनेक ज्ञातव्य बातें इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णित हैं। यह पूर्वार्ध खण्ड पांच अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें अध्ययन कर लेने के बाद निदान सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य सिद्धांत करामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं। आयुर्वेदीय प्रेमी विद्वान् और विद्यार्थी, दोनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है।

इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

डिमाई साइज के ११२ पृष्ठ की सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य मात्र २॥)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

खोज का आश्चर्यजनक परिणाम

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगान्तर से चला आ रहा है। खोजके ऊपर किसी कवि के ये शब्द स्वर्णाक्षरोंमें लिखे हुए हैं कि :-"जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ" त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मेघनाद के शक्तिबाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्छित पड़े हुए थे और रामचन्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय लक्ष्मणजीमें पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को सजीवनी बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम स्वरूप लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों के इस महायुद्ध में, रोग द्वारा ग्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोज में लगा हुआ है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

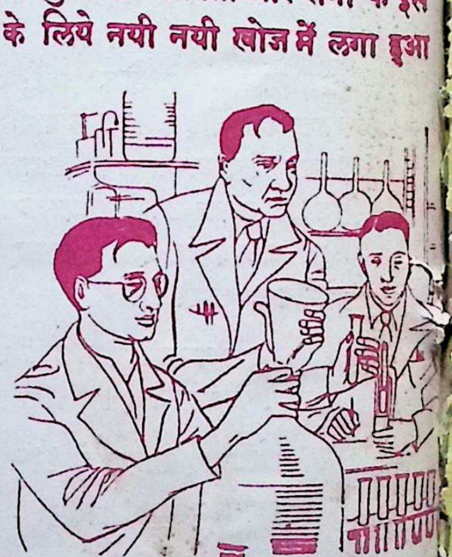

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सऔषध सेवारत हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है—डाबर कार्यालयका निरन्तर खोज का परिणाम! साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की क्रिया!! इसी खोज के परिणाम स्वरूप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के समक्ष औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

डाबर (डा॰ एस॰ के॰ बर्म्मन) लि॰ कलकत्ता-२९

अपूर्व गुणकारी आयुर्वेदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्माता

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित

५

जुलाई
१९५५

आषाढ़
२०१२

आयुर्वेद
महासम्मेलन पत्रिका

गुरुकुल पत्रिका

प्रधान सम्पादक :
कविराज स्वामी चेतनानन्द आयुर्वेदालंकार
संस्कृत-विभाग सम्पादक :
पा० आ० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य :
उप-सम्पादक :
वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री

विषय-सूची

१. सम्पादकीय ३६५
२. बी० सी० जी० के टीके के विरुद्ध आन्दोलन ३६८
३. सम्मेलन प्रशंसा — श्री एन० वी० उपाध्याय ३६९
४. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यकारिणी समितेः कार्यविवरणम् ३७१
५. ये घातक विधेयक और वैद्यसमाज — श्री ठाकुरदत्त शर्मा ३७३
६. स्वास्थ्य विभाग किस ओर ? — श्री मक्खन लाल शास्त्री ३७४
७. वनस्पतियों का परीक्षण और शोध — श्री गौरीशंकर गुप्त ३७६
८. क्या बी० सी० जी० टीका लगाना लाभकर है ? — श्री राजगोपालाचार्य ३७८
९. चतुर्भुज रस की प्रस्तुत विधि — श्री गोपाल चैतन्य देव ३८२
१०. हींग — श्री लक्ष्मीनारायण पाण्डे ३८५
११. आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त — श्री लक्ष्मीनारायण पचौरी ३८९
१२. अध्यक्षीयं भाषणम् ३९४
१३. संगीतेन स्वास्थ्य संलाभः — श्री पाण्डुरंग शास्त्री देशपाण्डे ४००
१४. जिज्ञासाधिकरणम् ४०६
१५. १९५५ वर्षीय परीक्षाफल ४०७
१६. पताका गानम् — श्री आर० पी० चिट्टेषम ४१८

आयुर्वेद महासम्मेलन
पत्रिका में विज्ञापन
देकर लाभ
उठाइये

।। श्री धन्वन्तरयेनमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द आयुर्वेदालंकार
संस्कृतविभाग सम्पादकः—श्री वा० बा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
उप-सम्पादक—वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री,
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४१
अंक ७
दिल्ली, आषाढ़ २०१२, जुलाई १९५५
वार्षिक ५)
एकप्रति १)

सम्पादकीय

चालीसवें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की विशेषता

अलौकिक आदर्श

जो महानुभाव इस चालीसवें वार्षिक सम्मेलन त्रिवेंद्रम् में पधारे थे उन्हें यह अच्छी तरह वैद्यमण्डल के सौम्य वातावरण का दिग्दर्शन हुआ होगा । एक ओर से प्रकृति का सौन्दर्य मानसिक उत्तेजना को शान्त कर रहा था दूसरी ओर वैद्य समाज का आपसी सहयोग का वातावरण एक दूसरे को शान्त सहकार तथा कर्त्तव्य की ओर बढ़ाता जा रहा था । इस सम्पूर्ण सम्मेलन में एकाव वाद विवाद के सिवा शेष सर्वसम्मति से कार्य सुसम्पन्न होता रहा । इस सम्मेलन ने एक अलौकिक विशेषता की नींव डाली और वह है भूतपूर्व प्रधान जी का सबके सविनय आग्रह तथा सहयोग के रहते हुए भी त्यागपत्र को सम्मेलन के सिर मढ़ देना । प्रायः संसार में यह देखा जाता है कि नेतागण स्वयं सदस्यों को मतप्रदान के लिए प्रार्थना तथा आग्रह किया करते हैं । परन्तु हमारे भूतपूर्व प्रधानजी का मार्ग संसार से बिल्कुल ही उल्टा है । सारे सभासद बड़ी श्रद्धा तथा विनम्रता से बार-बार प्रार्थना करते रहे कि आप हमारे विश्वास तथा साथ को स्वीकार कर अपने नेतृत्व को पूर्ववत् रहने दीजिये । मगर यह महाराज अपने त्यागपत्र देने पर तुले हुये थे । उनसे पूछा गया कि मत देने वाले महानुभावों को क्या इससे दुःख नहीं होगा ? बड़ी तत्परता से उत्तर मिलता है कि आपके महासम्मेलन में क्या कोई ऐसा नियम है जो मुझ इस त्याग भाव से रोक

सके ? सब सदस्यगण खिन्न तथा मौन थे। अन्त में अपना त्याग पत्र नये रक्त तथा अनुभव को लाने के लिए वह सबसे मनवा ही बैठे। यह है अबके सम्मेलन में पद तथा मान के त्याग का आदर्श ।

आशा है आयुर्वेद जगत इस आदर्श को अपने भविष्य के जीवन में उतारने का प्रयास करेगा तथा साथ ही नये नियम का निर्माण भी करेगा। वैद्य समाज भूतपूर्व प्रधान द्वारा की हुये सेवाओं से कभी उऋण नहीं हो सकता। साथ ही हमारी यह भी आयुर्वेद समाज से प्रार्थना है कि वर्त्तमान प्रधान जी को पूर्ण सहयोग देकर नई क्रान्ति लानें का प्रयत्न करें।

यह अनमेलः—

अबके सम्मेलन में आयुर्वेद के संदिग्ध विषयों पर गवेषणात्मक प्रकाश न पड़कर संगीत नृत्य आदि का ही बोलबाला रहा, जिसने आयुर्वेद के कार्यों की गतिविधि मन्द कर दी बल्कि कई बार बाधा भी उपस्थित की। आशा है कि भविष्य में स्वागत समिति इस प्रकार का कोई कार्यक्रम न रखेगी जिसमें आयुर्वेदेतर ही कलाओं का प्रदर्शन हो।

आधुनिक ये गले घोंटू आविष्कार

पाठकों को स्मरण होगा कि अप्रैल मास में डाक्टर जोनास साल्क ने एक साल्क टीके का शिशु पक्षाघात के लिये निर्माण कर तथा २० लाख बच्चों पर प्रयोग करके सारे विश्व को सफलता की तूती सुना दी। अभी उस तूती की आवाज कानों से निकल भी नहीं पाई थी कि १७ दिनों के पश्चात् न्यूयार्क से उसके हानिकारक तथा असफल औषधि होने का सिंहनाद बजा दिया गया और साथ ही सरकारी रूप से उस पर पाबन्दी भी लगा दी गई। इसी तरह मई मास में लंका के डाक्टरों ने चमत्कारक औषधि के निर्माण की धुन्धभी बजाकर सरकार तथा जनता को यह विश्वास दिलाया कि हमने एक चमत्कारक औषधि की खोज की है कि पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय जो व्यक्ति इसका सेवन करेगा उसे अक्षय, सौन्दर्य, यौवन तथा अलौकिक बुद्धि प्राप्त होगी। सौन्दर्य, यौवन और बुद्धि के हजारों अभिलाषियों ने इस चमत्कारक औषधि के लिए याचना की और प्राप्त करके यथा पद्धति सेवन किया। परिणाम इसका यह हुआ कि कोलम्बों के जनरल अस्पताल में एक हजार से अधिक व्यक्ति भर्ती किये गये और जो सभी पीड़ा से कराह रहे थे। उनमें से बहुत से रोगी रक्त वमन कर रहे थे। श्री लंका के अन्य अनेक नगरों में ६ हजार के करीब रोगी भरती किये गये जो कै और उल्टियां कर रहे थे।

काम की भीड़ के कारण अस्पतालों के डाक्टरों को घर नहीं जाने दिया गया अपितु अधिक आवश्यकताके कारण नये आदमी भरती करने का आदेश दिया गया। यह है चमत्कारक औषधि का जनता को उपहार। यह हो सकता है कि निर्माणकर्त्ता यह भी कहते हों कि दवाई के दो भाग होंगे एक में असुन्दरता का निराकरण और दूसरी में सुन्दरता का आवरण। अब एक भाग तो जनता ने चमत्कारक औषधि का अनुभव कर लिया अब दूसरा भाग क्या वहाँ के विदेशी चिकित्सक देने को तैयार होंगे या जनता लेने को तैयार होगी ?

हमारा सुझाव है कि भारत के अहिंसा-

वादी तरीके से समझाने पर भी जनता इसके लिए तैयार न हो तो वहां की सरकार को चाहिये कि रिश्वत द्वारा प्राप्त की गई, कुछ डाक्टरों की सिफारिश के साथ उस दवाई को भारत भेज दें। वह दवाई आनी चाहिये अमरीका की मारफत और सीधी स्वास्थ्य मन्त्राणी के पास और मुफ्त।

फिर भारत के बच्चों और बच्चियों को सौन्दर्य, यौवन तथा बुद्धि का बरदान देने के लिए उस दवाई का टीका लगानेका सामु-हिक आन्दोलन बड़ी सफलता के साथ प्रारम्भ किया जा सकेगा। उसे चमत्कारक सिद्ध करने वाले डाक्टर यहाँ भी दुर्लभ नहीं होंगे। बी. सी. जी. के टीके द्वारा देश में से तपेदिक को निकाल देने के बाद अब भारत की जनता जनार्दन को इस दवाई की आवश्यकता है।

भारतवासियों को भगवान हमारे इन नवीन आविष्कारों के सूंघने से बचाये जो चूने के गोलों को मक्खन समझ कर निगलने में सदा अन्धाधुन्ध अग्रसर रहते हैं।

—स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी

१९५५ सितम्बर मासीय परिशिष्ट परीक्षा सम्बन्धी सूचना

परिशिष्ट परीक्षाधिकारी परीक्षार्थियों के परिशिष्ट विषयों की सूची परीक्षाफल के अन्तर्गत इसी पत्रिका में अन्यत्र प्रकाशित है। उक्त परीक्षायें २६ सितम्बर १९५५ दिन सोमवार को निम्नलिखित केन्द्रों में सम्पन्न होंगी—

१—ऋषिकेश, २—उदयपुर, ३—देहली, ४—पिलानी, ५—नागपुर, ६—बड़ौदा, ७—बम्बई, ८—बेजवाडा तथा ९—लखनऊ। परीक्षा समय ११ बजे पूर्वान्ह से दो बजे अपरान्ह तक रहेगा। परिशिष्ट परीक्षार्थियों की परीक्षा के सम्पूर्ण खण्ड का शुल्क १० अगस्त १९५५ तक साधारणतया, तथा १) रुपया विलम्ब शुल्क सहित २० अगस्त १९५५ तक, इस कार्यालय में पहुंच जाना चाहिये। आवेदन पत्र साधारणतया २० अगस्त १९५५ तक, तथा विलम्ब शुल्क से ३१ अगस्त १९५५ तक ही स्वीकृत किये जा सकेंगे। परीक्षा शुल्क निम्न प्रकार हैं—

आयुर्वेदाचार्य तथा वैद्याचार्य १५) रुपया प्रति खण्ड, आयुर्वेद विशारद तथा वैद्य-विशारद १०) रुपया प्रतिखण्ड, भिषक् ७) रुपया प्रतिखण्ड।

विशेष—परिशिष्ट परीक्षाधिकारियों को विशेषतया सूचित किया जाता है कि विद्यापीठ की नियमावलि के अनुसार प्रत्येक परिशिष्ट विषय में परीक्षा देने के लिये केवल दो ही अवसर मिलते हैं, पहला अवसर आगामी २६ सितम्बर की परीक्षाओं में तथा दूसरा मार्च १९५६ की परीक्षाओं में मिलेगा। उक्त अवसरों में जो परिशिष्ट परीक्षाधिकारी परीक्षा नहीं देंगे अथवा परीक्षा देने के अनन्तर अनुत्तीर्ण रहेंगे, वे सम्पूर्ण खण्ड में अनुत्तीर्ण समझे जायेंगे तथा तदुपरान्त उन्हें परिशिष्ट परीक्षा का कोई अधिकार शेष नहीं रहेगा।

श्री दत्त शर्मा
मंत्री
नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ।

बी. सी. जी. के टीके के विरुद्ध आन्दोलन

राजाजी की घोषणा

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने कल बी० सी० जी० टीका-अभियान को भारतीय बालकों के विरुद्ध "कीटाणु-युद्ध" की संज्ञा दी। आपने सरकार को चुनौती दी कि वह आपको बी० सी० जी० डाक्टरों की एक समिति के समक्ष उपस्थित करे। आपने कहा कि मैं सिद्ध कर दूंगा कि "विशेषज्ञ" कितनी गलती पर हैं तथा मैं उनमें से प्रत्येक से उनकी "गलती स्वीकार करा लूंगा।"

श्री राजगोपालाचारी ने एक सार्वजनिक सभा में कहा कि मैं तब तक अपने आन्दोलन को जारी रखने के लिए कृत-संकल्प हूँ जब तक सरकार निरपराध बालकों को "प्रसिद्ध विष" का इन्जेक्शन देने की अपनी "गलत और विवेकहीन" नीति का परित्याग न कर दे। आपने बी० सी० जी० टीके के आधार पर ही आपत्ति की और कहा कि "न केवल जनता का स्वास्थ्य बल्कि सत्य भी खतरे में पड़ गया है।" राजा जी ने घोषित किया कि बी० सी० जी० का टीका न केवल तपेदिक से मुक्ति नहीं दिलाता है, प्रत्युत वह निश्चित रूप से हानि पहुँचाता है।

श्री राजगोपालाचारी ने कहा कि साधारण स्त्री (राजकुमारी अमृतकौर) और साधारण व्यक्ति (मद्रास के स्वास्थ्य-मंत्री श्री ए. बी. शेट्टी) को टीके के प्रति अपने अवांछनीय विश्वास तथा उसके प्रति अपने उत्साह का परित्याग कर देना चाहिए।

"नवभारत टाइम्स" दिल्ली २-जुलाई

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ, १९५५ सितम्बर मासीय प्रजावैद्य परीक्षा

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की आगामी प्रजा वैद्य परीक्षा केवल हैदराबाद, आन्ध्र, मद्रास, मायसोर एवं ट्रावनकोर-कोचीन राज्यों के अन्तर्गत स्थित विद्यापीठीय परीक्षा केन्द्रों में ही २६ सितम्बर १९५५ से प्रारम्भ होकर ३० सितम्बर १९५५ तक चलेंगी। सम्पूर्ण परीक्षा का शुल्क ६ रुपया तथा एक खण्ड अर्थात् एक विषय का शुल्क २) रुपया मात्र होगा।

उक्त शुल्क १० अगस्त १९५५ तक साधारणतया तथा १ रुपया विलम्ब शुल्क सहित तारीख २० अगस्त १९५५ तक इस कार्यालय में आ जाना चाहिये।

श्री दत्त शर्मा
विद्यापीठ मन्त्री।

सम्मेलन प्रशंसा

रचयिता—आयुर्वेदविद्वान्, आयुर्वेदरत्नम्, डा० एन० वी० उपाध्यायः
रथवीथी, मंगलापुरम्. द. क.

वैद्यशास्त्रस्य कर्तारं वन्दे धन्वन्तरिं सदा ।।
दयानिधिं देवदेवमाधिव्याधिविनाशनम् ।।१।।

श्रीतिर्वनन्ताधिपतिं सुरेशं
श्रीशेषतल्पे ससुखं शयानम् ।।
समस्तभक्तेप्सितपूरकं तं
नमाम्यनन्तं वरपद्मनाभम् ।।२।।

पवित्रपूर्णाजलधौतभूमि-
श्रीकालटिक्षेत्रभवं महान्तम् ।।
जगद्गुरुं तं यतिसार्वभौमं
श्रीशंकराचार्यमहं नमामि ।।३।।

श्रीतिर्वनन्ताख्यपुरं पवित्रं
सुनिर्मलं दक्षिणकेरलेऽस्मिन् ।।
अस्त्याढ्यविद्वत्प्रमुखैश्च युक्तं
सुरम्यभूपालकमन्दिरैश्च ।।४।।

संवत्सरे मन्मथनामकेऽत्र
वृषाख्यमासस्य दिनेऽष्टमेऽस्मिन् ।।
सम्मेलनं वैद्यमहाशयानां
प्रवर्तते भास्करवासरे च ।।५।।

श्रीमान् पंचनदाख्यदेशजनितः श्रीवैद्यरत्नं शिव-
शर्मा भारतवैद्यमण्डलमहासम्मेलनस्यास्य च ।।

All India Ayurveda Vidyapeeth

September 1955—Praja Vaidya Examination.

The next Praja Vaidya Examination of the All India Ayurveda Vidyapeeth will be held from the 26th to 30th September, 1955, at those Centres of the Vidyapeeth Examinations only which lie within the borders of the States of Hyderabad, Andhra, Madras, Mysore and Travancore-Cochine. The fee for the full Examination is Rs. 6/-/-, and for a part, that is a single subject, Rs. 2/-/- only. The fees should reach this office by the 10th of August ordinarily, whereafter they will be accepted with a late fee of Re. 1/-/- till the 20th of August, 1955.

Shri Datt Sharma
Vidyapeeth Secretary.

आयुर्वेदबृहस्पतिर्विजयते भूयोपि दक्षो महान्
प्राणाचार्यवरो नभोयुगतमस्याध्यक्षपीठे शुभे ॥६॥
भो भो वैद्यमहाशयास्सहृदया नानाप्रदेशागताः
श्रुत्वाध्यक्षमुखोद्गतां सुललितां गम्भीरवाणीं वयम् ॥
आर्षे भेषजकर्मणि प्रतिदिनं बद्धोदरा यत्नत-
स्सेवायां निरता भवाम दयया दीनस्य लोकस्य च ॥७॥
मुम्बायिराज्यस्य च मुख्यमन्त्री
मुरार्जिदेसायिमहाशयोऽयम् ॥
सम्मेलनोद्घाटनकर्म कर्तु-
मत्यादरेणात्र समागतश्च ॥८॥
तथैव विद्यापीठाधिपासने
जबल्पुरस्थो मतिमान्सुदक्षः ॥
श्री भी. वि. डेग्वेकरवैद्यराजो
विराजते सर्वजनादृतोयम् ॥९॥
श्रीदत्तशर्मा जी. वी. पुराणिकः
श्री पार्थनारायणपण्डितश्च ॥
छांगाणिगोवर्धनवैद्यराजो
बद्रीविशालः कमलाप्रसादः ॥१०॥
अजण्टलक्ष्मीपतिवैद्यराजो
वैद्योत्तमोयं नटराजशास्त्री ॥
अन्ये च भैषज्यकलाप्रवीणाः
राजन्ति सम्मेलनमण्डपेऽस्मिन् ॥११॥
स्वस्त्यस्तु पद्मनाभाय स्वस्ति सम्मेलनाय च
स्वस्त्यस्तु सर्ववैद्येभ्यः प्रजाभ्यश्च निरन्तरम् ॥१२॥
सम्मेलनप्रशंसेयं मंगलापुरवासिना
वैद्यवेंकटरमणोपाध्यायेन विनिर्मिता ॥१३॥

महासम्मेलन संयुक्त मंत्री तथा सहकारी मंत्रियों की नियुक्ति

४० वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, त्रिवेन्द्रम में पदाधिकारियों के निर्वाचन के समय संयुक्त मंत्री तथा ३ सहकारी मंत्रियों का स्थान रिक्त रखा गया था तथा उनकी नियुक्ति का अधिकार महासम्मेलन प्रधान मंत्री को दिया गया था। तदनुसार मैं निम्न प्रकार से मंत्रियों की नियुक्ति की घोषणा करता हूँ।

संयुक्त मंत्री— क० श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल, देहली।
सहकारी मंत्रीः—१ वैद्य श्रीराम शर्मा, बम्बई।
२ वैद्य श्री शान्तिप्रसाद जैन, देहली।
३ वैद्य श्री रामाशास्त्री, बगंलौर।

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधानमंत्री, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यकारिणी समितेः
१९५५ तम् वर्षीयस्य तृतीयाधिवेशनस्य

कार्यविवरणम्

स्थान—आत्मविज्ञान भवन, ऋषिकेश।

समय—२९ जून १९५५, बुधवासरे, मध्यान्होत्तर त्रिवादनतः।

उपस्थितः—सर्व श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, प्रयाग। वासुदेव शास्त्री, उज्जैन। कान्तिनारायण मिश्र, पटियाला। नित्यानन्द, पिलानी। दयानिधि स्वामी, ऋषिकेश। विष्णुदत्त शास्त्री, ऋषिकेश। बालकराम शुक्ल, ऋषिकेश। कैलाशचन्द्र अग्रवाल, देहली। रामस्वरूप चक्रवर्ती, देहली। बालकृष्ण, देहली। जयभगवान शर्मा, खुर्जा। श्रीदत्त शर्मा, ऋषिकेश।

श्री अमरनाथ वैद्य, देहरादून तथा श्री प्रेमचन्द शास्त्री, सालवन, विशेपतया आमन्त्रिताः।

सम्मति प्रेषकाः—सर्वश्री वामनराव दीनानाथ, बम्बई। सी० के० दिवाकरण, हैदराबाद। दत्तात्रय कृष्ण, चैंम्बूर, । बालकृष्ण शास्त्री, कानपुर। सोहनलाल शर्मा, सरदार शहर। करनाटक आयुर्वेद विद्यापीठ, बेलगांव। मदनमोहन द्विवेदी, बरेली। हरिदत्त शास्त्री, बम्बई। मोहनलाल शास्त्री, देहली। नानकचन्द, देहली। भी. वि. डेग्वेकर, जबलपुर। लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण, अहमदाबाद। गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद। प्रतापसिंह, बनारस। जनार्दन शर्मा, रायगढ़। गणेशदत्त शास्त्री, मेरठ। लक्ष्मीकान्त दामोदर पुराणिक, नागपुर। इन्द्रमणि जैन, अलीगढ़। शंकरदत्त गौड़, जबलपुर। विद्यानारायण, पटना। शम्भुनाथ शास्त्री, कानपुर। एम. वेंकट शास्त्री, विजयवाडा। विरञ्चि शर्मा, इस्लामपुर। पी. वी. ईश्वर वारियार, कोझिकोड।

कार्यविवरणम्—विद्यापीठोपाध्यक्ष श्री नित्यानन्द सारस्वत महोदयानाम् सभापते कार्यक्रमः प्रारम्भोऽभूत।

१—१९५५ वर्षीय परीक्षाणां परीक्षाफलं विचारार्थमुपस्थापितम् क·····निश्चितमभूद् यद् एभ्यः परीक्षकेभ्यः परीक्षापरिणामः साम्प्रतमेव समागतस्तं परीक्षाफले संयोज्यान्य परिणामेनसह विद्यापीठमन्त्री समुद्घोषयेत्। ख······ निश्चितमभूद् यद् आयुर्वेदभिषक्प्रथमखण्डरोगविज्ञानविषये तथा चायुर्वेदभिषग्द्वितीयखण्डशल्यशालाक्यविषये प्रश्नपत्राणि भ्रमात्मकतया तथा चाशुद्धतयैतद् विषयकोत्तरपुस्तकानां विचारार्थं यथावश्यक संशोधनार्थं निम्नलिखित सज्जना अधिक्रियन्ते ये सप्ताहाभ्यन्तर एव स्वकार्यं सम्पादयेयुः। सदस्यास्त इमे :—

१—श्री विद्यापीठ मन्त्री, २—श्री बालकराम शुक्लः, ३—श्री विष्णुदत्त शास्त्री ग···येषामुत्तरपुस्तकानां विषये परीक्षकमहोदयैः सन्देहः कृतस्तान्युत्तरपुस्तकान्यपि—उपर्युक्तसज्जनानां समितिरेव पश्येत् निर्णयंच कुर्यात्।

घ···नागपुरकेन्द्रविषयकाक्षेपविषये विद्यापीठाध्यक्ष वैद्य श्रीभिकाजीविनायक डेग्वेकर

महोदयानां पत्रमुपस्थापितं निश्चितमभूद् यदावश्यकलेख: (Record) श्री विद्यापीठाध्यक्ष महोदयानां सन्निधौ प्रेषणीय: तथा चायुर्वेदाचार्य ९३ क्रमाङ्कस्य परीक्षाफलं किञ्चित्कालं विचाराधीनं तिष्ठेत् शेषपरीक्षाफलं च सत्वरमेवप्रकाशितं भवेत् ।

२—सर्वसम्मत्यानिश्चितं यत्परिशिष्टपरीक्षा आगामि २६ सितम्बर १९५५ दिनाङ्के सम्पद्येरन् ।

क—उक्त परीक्षाणां कृते गतवर्षवदेव केन्द्राणि भवेयु :

३—सन् १९५६ तम परीक्षाणांकृते नवीन केन्द्राणि न स्थापनीयानि, क—नागपुर-रामगढ़पटियालाकेन्द्रविषयकारोपपरिज्ञानार्थं विद्यापीठाध्यक्ष श्री भिकाजी डेंग्वेकर विद्यापीठीयोपाध्यक्ष श्री नित्यानन्द सारस्वत श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल महोदया अधिक्रियन्ते तेहि महानुभावा: स्वकीयां सम्मतिं विद्यापीठकार्यकारिणी समित्या आगामिन्यधिवेशने समुपस्थापयेयु: ।

मिश्रित विषया:

क—श्रीलालादामोदरदासखन्नामहोदयस्य २३।६।५५ दिनांङ्कितं पत्रं समुपस्थितं तथा च निश्चितमभूद् यदेतत्पत्रं वा० का० क० वाला क्षेत्राधिकारिण: कस्यचिन्नास्ति तस्मात्कालीकमलीक्षेत्रं भूप्रस्तावरूपेणैतत्स्वीकुर्याद् यद् भूमि विश्वविद्यालयार्थं प्रदीयते केवलं प्रतिज्ञासौ भविष्यति यद्विश्वविद्यालयानिर्माणदशायां भूमि: काली कमली क्षेत्रस्य भविष्यति एतादृग्निर्णये जाते विद्यापीठाधिकारिणोभूमिमादातु सन्नद्धा: सन्ति, एतद्विषये विद्यापीठमन्त्री पत्रव्यवहारं कुर्यान्निर्णयञ्च कारयेत् ।

ख—पं ०जगन्नाथप्रसादशुक्लमहाभागै र्महत्वपूर्णभाषणं प्रदद्भि: सबलमेतत् कथितं यदधुनैव विद्यापीठ कार्यालयो हृषीकेशतो न परिवर्तनीयो यावत्कालीकमलीक्षेत्रतोऽन्तिमो निर्णयो न जायेत् श्री वासुदेव शास्त्रिणैतत्समर्थितं किन्तु कविराज श्री कैलाशचन्द्र अग्रवालमहोदयेनैषापत्ति: कृता यत् त्रिवेन्द्रम सम्मेलने विद्यापीठकार्यालय परिवर्तनात्मक: प्रस्ताव: स्वीकृतो जातस्तस्माद् विद्यापीठकार्यकारिणीसमितिरत्रनान्यथाकर्त्तुं शक्ता स्थायिसमित्यामेव विचारोऽयमुपस्थापनीय : ।

श्री स्वामिदयानिधिनाकथितं यद्यावत् कालीकमली क्षेत्रत: पूर्णाधिकारो न गृहीतो भवेत् तावद्विषयोऽसौ सन्देहास्पद: किन्त्वहमस्मि वार्ताया अस्या: पूर्णपक्षपाती यदायुर्वेद-विश्वविद्यालयो हृषीकेश एव निर्मितो भवेत् शरीरेण मनसा धनेनचायुर्वेदविश्वविद्यालय-संमुन्नतिकरणे यथाशक्ति यतिस्ये ।

श्री पं० अमरनाथमहोदयेन य उत्तरप्रदेशवैद्यसम्मेलनकार्यवाहकसंयाजकोऽस्ति देहरादूनवैद्यमण्डलप्रतिनिध्येनोक्तं यद्यदि हृषीकेशे विश्वविद्यालयो न निर्मातुं शक्येत तर्हि सर्वसाधनसम्पन्ने देहरादूननगरे तं निर्मातुमहं सज्जोऽस्मि कार्यालयोऽधुनैव न परिवर्तनीय : ।

श्री पं० कान्तिनारायणमिश्रमहोदयेन कविराज श्रीकैलाशचन्द्रमहोदयस्यापत्ति: समर्थिता ।

श्री सभापति महोदयाय समागत वैद्य बन्धुभ्येश्च धन्यवादान प्रदाय सायं ५—२० वादनसमये सभा विसर्जिताभवत् ।

आत्मविज्ञान भवन,
ऋषिकेश,
दिनांक ३०—७—५५

श्रीदत्त शर्मा
विद्यापीठ मन्त्री

टिप्पणियां

ये घातक विधेयक और वैद्यसमाज

नित्य नये-नये विधेयक (ऐक्ट) पास किये जा रहे हैं जिनका परिणाम आयुर्वेदिक तथा युनानी दोनों ही चिकित्सकों के लिए घातक है। अप्रैल १९५५ से लागू हुए एक ऐक्ट का नाम है 'Drugs and Magic Remedies objectionable advertisements' Act 1954'। इस विधेयक के रहते कोई वैद्य तथा हकीम किसी अच्छी औषधि को विज्ञापित नहीं कर सकेगा। यदि अनेक रोगों के लिए एक ही औषधि लिखी गयी तो वह Magic Remedy (जादूभरी औषधि) कही जा सकती है। यह कौन नहीं जानता है कि वैद्यक में योगवाही बीसियों औषधियाँ अनेक रोगों में गुणकारी होती हैं। अभ्रक भस्म, पारद भस्म प्रत्येक रोग में उचित अनुपान से दी जा सकती हैं। ऐलोपैथी की जो नयी नयी सल्फा या ऐंटीबायोटिक ड्रग्स प्रचलित हो रही हैं, उनमें तो वे एक ही औषधि को विभिन्न रोगों के लिए लाभदायक लिख सकते हैं परन्तु आप के लिए पर्याप्त प्रतिबन्ध लगा दिए गए हैं।

२—देसी औषधियों और चिकित्सकों को अब भी इस बात का गर्व है कि असाध्य माने जाने वाले रोगों को भी ये दूर कर सकते हैं और ऐसी औषधियाँ ही देसी चिकित्सकों की उदर पूर्ति का साधन है, अन्यथा पेट दर्द, दांत दर्द आदि रोगों की औषधियों से तो उनकी पूर्ति नहीं हो सकती। इस विधेयक के अनुसार निम्नांकित रोगों को नष्ट करने की औषधि का आप विज्ञापन नहीं दे सकते:—

> नपुंसकता आदि पुरुष-रोग; बांझपन, मासिक धर्म के विकारादि स्त्री-रोग, सोजाक, आतिशक आदि दुष्ट रोग; हृदय-रोग, रक्तचाप, अन्धापन ब्राइट्ज डिज़ीज़ (वृक्क विकार का शोथ) मोतिया बिन्द, मधुमेह, मृगी, अण्ड-वृद्धि, उन्माद, कुष्ठ, मोटापा इत्यादि किसी

औषधि को विज्ञापित करना हो तो गवर्नमेन्ट से आज्ञा ले लेनी होगी। आप यह भी सोच लीजिए कि उपर्युक्त अनुमति ऐसे डाक्टर किस प्रकार दे सकेंगे जो आयुर्वेदिक या युनानी चिकित्सा पद्धति से अनभिज्ञ हैं ?

३—इस ऐक्ट से पूर्व एक और ऐक्ट 'ड्रग्ज़ कंट्रोल ऐक्ट' पारित हो चुका है जिसके अनुसार स्त्रियों और पुरुषों के रोग केवल विज्ञापित नहीं किये जा सकते हैं अपितु आज्ञा-पत्र (Permit) के बिना आप बोर्ड भी नहीं लगा सकते कि अमुक रोगों की आप चिकित्सा करते हैं। कहा जाता है कि अनपढ़ लोग इस प्रकार के ऊटपटांग विज्ञापन दे देते हैं—उसी से ऐसे प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। किन्तु जब वैद्य और हकीम रजिस्टर होते हैं और उन्हें देख भाल कर ही रजिस्टर किया जाता है तो फिर उन पर ये प्रतिबन्ध क्यों लगायें जाते हैं और ऐसा क्यों समझ लिया जाता है कि जिन रोगों की चिकित्सा डाक्टर अभी नहीं कर सके, उनकी

चिकित्सा कोई और नहीं कर सकता। डाक्टरों की ओर से जो कुछ ऊटपटाँग आ जाता है वह रोक टोक के बिना प्रचलित हो जाता है। सल्फ़ा ड्रग्ज़ और ऐंटीबायोटिक्स ने अब तक न जाने कितनी जानें लेली होंगी। फिर भी, वह सब वैज्ञानिक हैं। गत वर्ष मेरी धर्मपत्नी की मृत्यु का कारण पैनिसिलिन के इंजैक्शन दिया जाना था जो कि एक मित्र डाक्टर के तीव्र अनुरोध पर दिये गये थे। इंजैक्शन देते ही हालत बिगड़ने लगी।

लण्डन के डाक्टर हार्वे बैञ्जमिन ने 'Health for All' नामक पत्र में इन ड्रग्ज़ को असंख्य रोगों का कारण लिखा है। उनका ही यह कहना है कि ऐंटीबायोटिक्स ने अनगिनत रोगी मृत्यु के घाट उतारे हैं। उनके लेख का शीर्षक है:—

"Wonder Drugs Or Blunder Drugs ?"

(आश्चर्यकारी औषधियां अथवा अनर्थकारी औषधियां ?)

उसका पूरा अनुवाद करने से यह लेख बहुत लंबा हो जायगा। अतः इसे यहीं समाप्त करते हुए वैद्यसमाज का ध्यान इस ओर इस प्रयोजन से आकर्षित करते हैं कि वे ऐसा यत्न करें कि जिससे ये ऐक्ट आयुर्वेद और युनानी चिकित्साओं पर लागू न रहें। अभी समय है समस्त भारत में इनके विरोध में उग्र आन्दोलन किया जाना चाहिये अन्यथा इन सब प्रतिबन्धों के रहते हुए वैद्य हकीमों को चिकित्सक का कार्य करना कठिन हो जायगा।

—ठाकुरदत्त शर्मा,
अमृतधारा, देहरादून

स्वास्थ्य विभाग किस ओर ?

बी. सी. जी. की देन

आज चिकित्सा समाज में जिसकी विशेष चर्चा है वह है बी.सी.जी. की असफलता और उसके दुर्गुणों का साक्षात्कार। किसी बात का भण्डा तभी फूटता है जब वह पराकाष्ठा तक पहुंच जाती है; बी. सी. जी. के विषय में डाक्टर प्राईस का यह कथन कि "यह कोई नहीं बता सकता कि मानव शरीर में प्रविष्ट होने के बाद जीवित क्षय कीटाणु पुनः उग्र नहीं हो जायेंगे" सत्य निकला। दक्षिण भारत में बी. सी. जी. की असफलता और उसके दुष्परिणामों के बीभत्स दृश्य विशेष स्पष्ट दिखाई दिये हैं। इसी लिए स्वस्थ मानव शरीर में इसके प्रवेश का विरोध अनेक व्यक्तियों विशेषतया भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल श्री राजगोपालाचार्य ने भी किया है। इस चर्चा का श्रीगणेश इस प्रकार हुआ—

१८ नवम्बर १९५४ को कोयम्बटूर निवासी ६ वर्षीय बालिका को बी. सी. जी. का टीका लगाया गया, टीका लगाने के दूसरे ही दिन उसको तेज बुखार हो गया साथ ही दोनों बाहें भी सूज गईं। डाक्टरों ने उसको क्षयजन्य गर्दनतोड़ ज्वर बताया,

चिकित्सा करने पर ३० दिन पश्चात् ज्वर उतार पर आया किन्तु बालिका अन्धी हो गई। बी. सी. जी. के इन दुष्परिणामों ने और भी पर्दाफाश करने का रास्ता साफ कर दिया है, कहा जाता है कि दक्षिण भारत में अनेक बच्चे जिन पर इसकी आजमाइश की गई है विभिन्न नेत्र, कर्ण और ज्वर रोगों से पीड़ित हो गये हैं, इसके यथार्थ उद्देश्य के विपरीत क्षय से ग्रसित भी हो चुके हैं—फिर भला इसको क्षय-निरोध का प्रयास कैसे कहा जा सकता है? उस बालिका को क्षयजन्य गर्दन-तोड़ ज्वर होना इसका स्पष्ट प्रमाण है और मेडिकल-आफिसर की रिपोर्ट भी क्षय के संक्रमण की पुष्टि ही करती है।

भारत में प्रसार

भारत में अमरीकी विशेषज्ञों की राय से केन्द्रीय स्वास्थ्यमन्त्रालय द्वारा क्षयनिरोध की आशा से बी. सी. जी. के टीकों के लगाने का कार्यक्रम सितम्बर १९४८ में चालू किया गया, तब से दिसम्बर १९५४ तक १ करोड़ २९ लाख ३७ हजार २८ व्यक्तियों के टीके लगाए गए। जनवरी १९५५ से प्रतिमास ४½ लाख व्यक्तियों के टीके लगाये जा रहे हैं।

बी. सी. जी. की अनुपयोगिता

इन टीकों की अनुपयोगिता सिद्ध करते हुए १९४९ में ब्रिटेन के प्रसिद्ध डाक्टर 'आर स्टीवन्सन डोहन' ने बताया कि "बी. सी. जी. के टीके ३ हजार व्यक्तियों के लगाये गये जिनमें ११८८ व्यक्तियों में इसकी प्रतिक्रिया हुई। यह रिपोर्ट १९४९ तक की है, उसके पश्चात् और कितने व्यक्तियों में इसकी प्रतिक्रिया हुई यह प्रकाशित नहीं हुआ। ज्ञात हुआ है कि अन्य देशों में तो इसके परीक्षण करने के पश्चात् धज्जियां उड़ चुकी हैं, दक्षिण भारत के समाचार इसकी अनुपयोगिता को और भी सिद्ध कर रहें हैं। हमारे भारत में १½ करोड़ निवासियों पर इसका भीषण परीक्षण करने के उपरान्त भी केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय का ध्यान इस सत्यता की ओर नहीं गया है—यह आश्चर्य की बात नहीं तो क्या है ?

क्षय की स्थिति

भारत में प्रतिवर्ष २५ लाख व्यक्ति क्षय रोग से पीड़ित रहते हैं जिनमें ५ लाख से अधिक तो स्वर्ग यात्रा कर जाते हैं। कहते हैं, अस्पतालों में ७½ हजार से अधिक रोगी स्थान नहीं पा सकते, अधिक स्थान बनाना बड़े खर्च का काम है। ८ हजार रुपये व्यय किए जायं तो अस्पताल में केवल १ रोगी का स्थान बने; १ हजार रुपये व्यय किए जायं तो १ रोगी को सामान्य औषधि व्यवस्था प्राप्त हो, और १ लाख रुपये व्यय किए जायं तो यक्ष्मा का एक साधारण चिकित्सालय खुले। अब यह सोचिए कि २४ लाख ९½: हजार व्यक्तियों के लिए स्थान बनवाये जायं तो कितने अरब रुपये व्यय करने होंगे ? और बी. सी. जी. की प्रतिक्रिया से क्षय रोग के बचाव के विपरीत बढ़ाव आरम्भ हो गया तो इन १½ करोड़ व्यक्तियों के लिए जिनके यह टीके लगा दिये गये हैं चिन्तित होना अनिवार्य है। यह तो स्पष्ट हो चुका है कि मूर्च्छित क्षय के कीटाणु शरीर को कमजोर और जीवनी शक्ति की अल्पता पाकर किसी भी समय अपना प्रभाव जमा कर क्षय पीड़ित कर सकते हैं। अब इन सबकी चिकित्सा की ओर ध्यान दिया जाय, विदेशी चिकित्सा पद्धति के अनुसार औषधि व्यवस्था की जाय तो दूसरी पञ्चवर्षीय योजना कागजों में धरी रह जायगी।

अन्य टीके भी अनुपयोगी

अभी १३ अप्रैल को अमरीका से साल्क टीके की घोषणा ने सबका ध्यान आकर्षित कर लिया था, जिसका २० लाख बच्चों पर संक्रामक बालपक्षाघात से बचाव के लिए सफलता प्राप्त करने का उल्लेख था, उसका भी ३० अप्रैल को पर्दाफास हो गया, समस्त संसार को मालूम हो गया है कि यह निरी थोथी विज्ञापनबाजी ही थी, ऐसी विज्ञापनबाजी आज के वैज्ञानिक कहे जाने वाले प्रतिदिन करते हैं और भारत में विज्ञान के नाम पर अन्धविश्वास करने वालों की भी कमी नहीं है। चेचक, फीलपांव, हैजा आदि संक्रामक रोगों के टीके भी प्रचलित हैं और लाखों व्यक्तियों के लगाए भी जा चुके है किन्तु इन रोगों के बचाव के लिए इन टीकों की कितनी आवश्यकता है इस विषय में हमारा स्वास्थ्य विभाग विदेशों से प्रेरणा ले सकता है। जापान और इटली जैसे देशों में जहां टीका लगवाना वैधानिक रूप से अनिवार्य है चेचक की भयानक महामारी क्यों फैली? दूसरी ओर आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड जैसे देश जहां टीका लगाने की कोई व्यवस्था नहीं है इस रोग से मुक्त क्यों हैं?

रोगों से बचाव के लिए

आज के क्षय, कैन्सर, नजला, हैजा फीलपांव, पायोरिया, बालपक्षाघात, कण्ठरोहिणी, रक्तचापवृद्धि, कण्ठशालूक, प्लेग, चेचक आदि रोगों से बचाव के लिए सही प्रयास करना है तो हर प्रकार से वातावरण को शुद्ध रखने का प्रयत्न किया जाय।

भारत में जनसंख्या की वृद्धि के साथ ही साथ खाद्य पदार्थों में मिलावट तेजी से बढ़ती जा रही है। दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुएं हल्दी, मिर्च, धनियां, नमक, आटा आदि पिसी हुई वस्तुओं में वृक्षों की छाल, लकड़ी का बुरादा, आम की गुठली, इमली के बीज व मट्टी आदि अस्वास्थ्यकर पदार्थों का मिश्रण किया जा रहा है। सोडा-वाटर, शर्बत, चुस्कियां, बर्फ आदि के निर्माण में भी असावधानियां बरती जाती हैं उनमें मच्छर, मक्खियां, कचरा आदि का होना कोई नई बात नहीं है। बाजारू मिठाइयां, फल, नमकीन, मच्छियां इत्यादि का सड़ा हुआ होना इन रोगों के प्रसार व जीवनीय शक्ति का ह्रास करने में विशेष सहायक हैं। शहर की गन्दी नालियां, कूड़ा कर्कट, शराब, धूम्रपान, व्यभिचार आदि इन रोगों की अधिकाधिक वृद्धि करते जा रहे हैं। इनमें सबसे खतरनाक है आज के वैज्ञानिकों की देन 'वनस्पति-घृत' और इससे बने खाद्य पदार्थ। इसके सेवन से मनुष्य की आंतें दिनों दिन कमजोर होती जा रही है, जीवनी शक्ति का ह्रास होता जा रहा है, रोग निरोधक शक्ति भी नष्ट होती जा रही है। क्षय कैन्सर आदि के रोगियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ने का प्रमुख कारण यह 'वनस्पति घृत' सेवन ही है चाहे इसमें कितनी ही मात्रा में विटामिन 'ए'व'डी' क्यों न मिला दिये जायें।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय का ध्यान इस ओर पुनः आकर्षित करना चाहता हूं कि क्षय, चेचक, हैजा, आदि के टीके, मिलावटी खाद्य, सड़ी-गली वस्तुएं, मद्य, धूम्रपान, व्यभिचार, वनस्पति घृत आदि अस्वास्थ्यकर पदार्थों का प्रचलन इन रोगों से बचने के लिए अविलम्ब बन्द करवा दिया ज़ाए।

आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त का सम्यग् प्रचार किया जाए।

—वैद्य मक्खनलाल शास्त्री, बीकानेर

वनस्पतियों का परीक्षण और शोध

भारत वनस्पति प्रधान देश है। यहाँ की भूमि सभी ऋतुओं में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों से आच्छादित रहती है। इसी कारण यहाँ के वासियों का जीवन से मरणपर्यन्त वानस्पतिक जगत से सम्पर्क बना रहता है। आर्यों का कोई भी क्रिया-कलाप वनस्पति के बिना सम्पन्न नहीं होता। तृण, तरु और गुल्मों के मध्य बसने के अभ्यस्त हम लोगों को कुछ काल तक यदि शुष्क मरु भूमि में ले जाकर छोड़ दिया जाय तो अपने इस सरस और हरित सहवासी के बिना हमारा जीवन सूना-सूना सा मालूम पड़ेगा।

जन्म लेते ही शिशु को वनस्पति की घुटी पड़ती है और जच्चा का प्रथम आहार भी वनस्पति गर्भित क्वाथ ही होता है। रोग ग्रसित होने पर वानस्पतिक प्राणियों के उपयोग से हम पुनः स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं। अवयवों के आयुर्वेद विज्ञान के निघण्टु ग्रन्थ इन वनस्पतियों के परिचय और उनके गुण-दोषों के विवेचन से पूर्ण हैं। इसका श्रेय हमारे पूर्व पुरुषों को है। उन्हीं के अनुसन्धान और परीक्षण के फल से हम लाभान्वित हो रहे हैं। आयुर्वेद का निघण्टु भाग या द्रव्यगुण शास्त्र यद्यपि पूर्ण है, तथापि इसमें कुछ दोष भी आ गए हैं। कोई भी विज्ञान क्यों न हो जब तक वह सतत प्रयोग में आता रहता है, उसमें जीवन रहता है तथा उसके प्रयोगात्मक रूपों से जनसमुदाय परिचित रहता है। प्रयोग में शैथिल्य आने पर विज्ञान की गति धीमी हो जाती है और वह केवल सैद्धान्तिक बन जाता है। आयुर्वेद के निघण्टुओं का परीक्षण और शोध शताब्दियों से रुका रहने के कारण वह केवल ग्रन्थ का विषय बना हुआ है। उन निघण्टुओं के कथन पर चलने वाले अब केवल लकीर पीटते चले आ रहे हैं। अतः आवश्यकता है उन निघण्टु ग्रन्थों में वर्णित वनस्पतियों के गुण-दोषों का परीक्षण कर उन्हें सम्पादित रूप देना और जो वनस्पतियाँ लुप्त सी हो गई हैं उनका शोध-कार्य प्रारम्भ करना।

जंगलों के अतिरिक्त गाँवों में भी बहुत सी ऐसी वनस्पतियाँ हैं जिनका ग्रामीण जनता केवल नाम ही जानती है या उनके एकाध प्रयोग मात्र का उन्हें ज्ञान होता है। ऐसी वनस्पतियों का भी परीक्षण और शोध आवश्यक सा है। इन कार्यों के लिए द्रव्य और परीक्षण गृह के अतिरिक्त राज्य संरक्षण की भी आवश्यकता है। तभी ये कार्य सुचारु रूप से अग्रसर हो सकते हैं।

—श्री गौरीशंकर गुप्त, काशी

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

क्या बी. सी. जी. का टीका लगाना लाभकर है?

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

"मनुष्य जब कोई विचार बना लेता है तो वह और सभी चीजों को ऐसा रूप देने का प्रयत्न करता है जिससे उस विचार की पुष्टि ही हो। और चाहे उस विचार के विरुद्ध अधिक और सबल तर्क हो तो भी वह या तो उनकी उपेक्षा कर देता है या उनके प्रति घृणा प्रकट करता है अथवा उन्हें ठुकरा देता है ताकि उसके पूर्व निष्कर्ष ज्यों के त्यों बने रहें।"

ये शब्द फ्रांसिस बेकन ने अपनी महान् पुस्तक "नोवम ओर्गेनम" में लिखे थे जिसमें उन्होंने प्रायोगिक विज्ञान की, जिसने आधुनिक विज्ञान का असाधारण विकास किया है, पद्धति बताई थी। वैज्ञानिक का काम है विज्ञान की पद्धति की रक्षा करते हुए व्यवस्थित तरीके से परीक्षण करना और रोगों के निवारण एवम् चिकित्सा के लिए नए और अधिक प्रभावकारी उपायों की खोज करना तो और भी बड़ा सत्कर्म है। कुछ लोगों की नजरों में इस कार्य के लिए बेजबान निरीह प्राणियों पर परीक्षण करना क्रूरता हो सकता है, किन्तु अब परम्पराएं ऐसी होगई हैं कि प्रकृति के रहस्यों की खोज करने वालों का यह विशेषाधिकार मान लिया गया है, इसलिए न चाहते हुए भी इसे बर्दाश्त करना पड़ता है।

मनुष्य पर प्रयोग

किन्तु मनुष्य के बच्चों पर खुद उनकी खातिर अथवा दूसरों के वास्ते निष्कर्ष निकालने के लिए ये परीक्षण करना उचित नहीं है और न यही उचित है कि रोगों की रोकथाम के लिए बच्चों को ऐसे टीके लगाये जायं, जिनकी निर्दोषिता और हानिरहितता के बारे में पूरा निश्चय न हुआ हो।

मैं इस विषय पर अपनी पसन्द या नापसन्द की दृष्टि से विचार नहीं कर रहा, इसलिए मैं अपने कथन के पक्ष में केवल प्रामाणिक पुस्तकों से ही उद्धरण देकर अपनी बातों की पुष्टि करूंगा। डा० प्राइस की सुप्रसिद्ध पुस्तक में बी० सी० जी० के सम्बन्ध में लिखा है :—

"यह ट्यूबरकुलर बैसिलस (क्षय के कीटाणु) से, जिसकी रोग उत्पन्न करने की शक्ति क्षीण कर दी गई है, तय्यार किया गया सजीव टीका है। फ्रांस में रोग की रोकथाम के लिए इसका काफी व्यापक उपयोग हुआ है। फ्रांस में करीब १ लाख बच्चों को, जिनमें मुख्यतः क्षय रोगग्रस्त माता पिताओं के बच्चे थे, ये टीके लगाये गए। इसके परिणामों का अभी से ठीक २ अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता किन्तु इस तरीके के सम्बन्ध में एक बड़ा एतराज है और वह यह कि इसमें सम्भावना रहती है कि बाद में मनुष्य के शरीर में जाकर कहीं यह दुर्बल कीटाणु फिर सबल न हो जाय।"

डा० प्राइस का अन्तिम वाक्य विशेषरूप से महत्वपूर्ण है। इस टीके में खतरा है, यह किसी टीका-विरोधी खब्ती की राय नहीं है, बल्कि एक प्रामाणिक चिकित्सा शास्त्री की राय है।

अनिश्चित सफलता

अब न्यूयार्क के कार्नेल युनिवर्सिटी मैडिकल कालेज के डा० डब्लू. जी. स्माइली द्वारा अपनी प्रमाणिक पुस्तक में प्रगट की गई राय भी सुनिये, उन्होंने लिखा है :—

"व्यक्तियों को क्षयरोग के प्रतिरोध की शक्ति प्रदान करने के लिए अनेक तरीके अजमाए गए हैं । मृत कीटाणुओं या निर्वीर्य कीटाणुओं से तैयार किये गये टीके जैसे कि बी० सी० जी०, अथवा क्षय कीटाणुओं के विखण्डन से तैयार की गई विभिन्न चीजें इस्तेमाल की गई हैं, किन्तु कोई आश्चर्यजनक सफलता नहीं पाई गई । इस विषय पर अभी और लाभकारी अनुसन्धान की आवश्यकता है ।

अनुसन्धान के लिए प्रयोग

इन दोनों उद्धरणों से ठीक स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता है । पहले उद्धरण से इन टीकों के खतरे का दूसरे से इन टीकों के गुण की सन्दिग्धता का संकेत मिलता है । अब अगर भारत में सामूहिक पैमाने पर इन टीकों के लगाने का प्रयोजन इनकी गुणकारिता के बारे में और अधिक लाभकर अनुसन्धान करना है तो यह बात जाहिरातौर पर कही जानी चाहिए और इसी बात को दृष्टि में रखकर ये परीक्षण किये जाने चाहिएं । खास तौर से बच्चों के माता-पिताओं को यह बात साफ तौर पर बता दी जानी चाहिये और साथ ही इन २ परीक्षणों के आंकड़े व अन्य जानकारी बाकायदा रखनी आवश्यक है ताकि उनसे होने वाला अनुसन्धान भारत के लिये उपयोगी भी हो और विश्वसनीय भी ।

अधिकार नहीं

किन्तु मैं यह मानकर चलता हूँ कि कोई भी यह स्वीकार नहीं करेगा कि हमारे देश में सामूहिक रूप में लगाये जा रहे टीके अनुसन्धान के लिये किए जा रहे परीक्षण हैं, बल्कि यह कहा जाएगा कि यह जन-कल्याण के लिये किया जा रहा बिना खतरे का काम है । भारत में बी० सी० जी० के टीके लगाने के आन्दोलन का उद्देश्य लोगों में बिना किसी खतरे के क्षय रोग के प्रतिरोध की शक्ति उत्पन्न करना है । हम परीक्षणों के लिए खरगोशों और गाय-बैलों पर प्रयोग कर सकते हैं, और क्षयग्रस्त व्यक्तियों की सन्तानों अथवा क्षयरोग के अस्पतालों के कर्मचारियों पर भी, जो हमेशा क्षयरोग के कीटाणुओं के सम्पर्क में रहते हैं, इन परीक्षणों का खतरा उठा सकते हैं, जैसा कि कुछ पश्चिमी राष्ट्रों में होता है । किन्तु यह बात कभी स्वीकार नहीं की जा सकती कि लाखों बच्चों को क्षयरोग के सजीव कीटाणुओं के टीके लगाये जायें, खास तौर से तब जब कि उसकी हानिरहितता के बारे में हमारे पास पर्याप्त पुष्ट प्रमाण न हों । जब कोई मेरे बच्चे के शरीर में किसी ऐसे कीटाणु के प्रवेश की बात, जो सिफलिस, कुष्ठ या क्षयरोग के उत्पादन के रूप में प्रसिद्ध हो, सिर्फ इस आधार पर कहता है कि उस कीटाणु को दुर्बल कर लिया गया है तो मेरा यह मांग करना स्वाभाविक है कि वह इस बात का पुष्ट और सही प्रमाण दे कि उससे कोई नुक्सान नहीं होगा । जब मुझे यह बताया जाता है कि रोग की प्रतिरोध शक्ति केवल सजीव कीटाणु से आती है, निर्जीव से नहीं, और साथ ही मैं एक प्रामाणिक पुस्तक में पढ़ता हूँ कि "इन कीटाणुओं के मानव देह में

जाकर पुनः सवीर्य हो जाने का भय है तो मैं यह अनुभव करता हूँ कि असंख्य बच्चों के शरीर में डालने की तो दूर, एक भी बच्चे के शरीर में यह कीटाणु नहीं डाला जाना चाहिये। मैं यह भी महसूस करता हूँ कि किसी माता-पिता को भी तब तक यह हक नहीं है कि वह अपने बच्चे के शरीर में इस कीटाणु के प्रवेश की अनुमति दे चाहे इसके लिए अधिकारी उस पर कितना ही दबाव डालें, जब तक कि वे स्वयं क्षयरोग से ग्रस्त न हों। इसके अलावा बी० सी० जी० का टीका लगाने में बड़ी निपुणता की आवश्यकता है और भारत जैसे देश में इसमें जरा-सी त्रुटि का रह जाना भी खतरनाक हो सकता है। सामूहिक रूप से बड़े पैमाने पर टीके लगाते हुए इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

यह याद रखना आवश्यक है कि बी० सी० जी० से प्राप्य क्षय रोग के प्रतिरोध की शक्ति की अवधि ५ वर्ष से भी कम मानी गई है। भारत में बी० सी० जी० के टीके वयस्कों को लगाने में कोई तुक नहीं है। वे बच्चों तक ही महदूद रहने चाहिएं और महदूद हैं भी। इस तरह उनसे होने वाला स्वल्पकालिक लाभ और भी महत्वहीन हो जाता है क्योंकि बच्चे के जीवन में ५ वर्ष हैं ही कितने, अन्ततः, यह बात तो सभी स्वीकार करते हैं कि हमें मुख्यतः क्षयरोग की रोकथाम के लिये कृत्रिम प्रतिरोध शक्ति के बजाय नैसर्गिक प्रतिरोध शक्ति पर निर्भर करना पड़ेगा, और यह भी स्वीकार किया जाता है कि भारतीयों में यह नैसर्गिक प्रतिरोध शक्ति काफी है। तब हमें अपने बच्चों के बारे में उस खतरे को उठाने की क्या जरूरत है जिसका डा० प्राइस ने जिक्र किया है।

अमरीकी डाक्टरों के जनमत ने सजीव पोलियो (शिशु पक्षाघात) विष का इन्जैक्शन लगाने का सफल विरोध किया है, हालांकि उसे दुर्बल और निर्वीर्य कर लिया जाता है और डा० अलबर्ट सेबिन ने इससे ४० वर्ष के लिये प्रतिरोध शक्ति होने का दावा किया है।

विचित्र नीति

यदि क्षय के कीटाणु की दुनिया से एक बार ही निर्वासित कर देने का हमारा इरादा है, तब निश्चय ही हम इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये एक अजीब रास्ते पर चल रहे हैं। हम जोर-शोर और धूमधाम के साथ इस कीटाणु को अपनी लाखों नई और स्वस्थ किशोर सन्तानों के शरीर में जबर्दस्ती पनाह दे रहे हैं। हम मानवसमाज के इस दुश्मन को भविष्य में भी करोड़ों शरीरों में, जो उसका मुकाबला करने के लिए प्रकृत्या समर्थ हैं, पनपने के लिये आश्रय दे रहे हैं। फिर मजे की बात यह है कि डाक्टर बी०सी०जी० के टीके की नली में इस कीटाणु को इस तरह सम्भाल कर रखते हैं कि उसके प्राकृतिक शत्रु हवा और धूप भी उस पर नहीं लगने पाते, गोया, इस कीटाणु की हिफाजत का पूरा इन्तजाम कर डाक्टर उसे सीधा इन्सान के शरीर में दाखिल कर देता है। फ्रांसिस बेकन ने तीन शताब्दी पूर्व विज्ञान के एक सबसे बड़े खतरे की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। उन्होंने लिखा :

"वैज्ञानिक अपने परीक्षणों से कोई सिद्धान्त निकालने का प्रयत्न करते हैं। किंतु सिद्धान्त निकालने के बजाय वे जल्दबाजी से भरी और बेमानी उत्सुकता के साथ उन परीक्षणों पर अमल शुरू कर देते हैं, और सिर्फ उस अमल के लाभों और फल की

खातिर ही नहीं, बल्कि अपने लिए यह आश्वासन पाने की गर्ज से कि उनके लिये इस काम में आगे बढ़ना उचित है और इस गर्ज से कि अपने आपको जगजाहिर कर अपने काम का इज्जत बढ़ाई जा सके ।"

अमरीका और ब्रिटेन दोनों ने ही अभी तक सामूहिक रूप से बी० सी० जी० के टीके लगाने का तरीका नहीं अपनाया है और यह बात ऐसी नहीं है कि उसे हल्केपन से उड़ा दिया जा सके ।

खतरा उठना अनुचित

यदि मेरी आपत्तियाँ और आशंकायें सत्य हैं तो सिर्फ यह दलील देकर कि हमें विदेशी संगठनों के साथ किये गये समझौते निभाने चाहिएं या दूसरों की परोपकार की मनोवृत्ति का अस्पष्ट युक्तियों से उपहास नहीं करना चाहिए, हमें उचित कार्यवाही करने से नहीं रुकना चाहिए । न ही इस युक्ति से कि अभी तक चिकित्साविज्ञों ने इसके विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं उठाई, मेरे द्वारा प्रदर्शित स्थिति में कोई अन्तर पड़ता है । हम किसी ऐसे सजीव कीटाणु के बारे में जिस की हानिरहितता और निर्दोषिता असंदिग्ध रूप से प्रमाणित नहीं हुई, खतरा नहीं उठा सकते ।

थोथा तर्क

केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय के क्षय सलाहकार डा० बेंजमिन का एक वक्तव्य मैंने देखा है जिसमें इन्होंने कहा है : "गाय की लसीका के टीके ने खूब अच्छा काम दिया है । वह भी एक सजीव विष है । इसलिये सजीव विषों के टीके लगाने में कोई निश्चित हानि नहीं है ।" यदि प्रमाण देने की जिम्मेदारी मुझ पर हो, क्षयरोग जैसी भयङ्कर बीमारी के कीटाणुओं को लाखों व्यक्तियों के शरीर में प्रवेश करने के समर्थकों पर न हो तो डा० वेंजमिन की यह युक्ति पर्याप्त हो सकती थी । किन्तु जबकि यह जिम्मेदारी सरकार पर है, जो सामूहिक रूप से ये टीके लगा रही हैं, तब सिर्फ गाय की लसीका के टीके का उदाहरण देने से काम नहीं चलेगा । गाय की लसीका का टीका चेचक या बी० सी० जी० के टीके से बिल्कुल भिन्न है ।

डा० वेंजमिन ने यह भी कहा है कि ब्रिटेन के स्कूलों में अब बी० सी० जी० के टीके लगाना अनिवार्य कर दिया गया है । मुझे भय है कि वस्तुस्थिति यह नहीं है । मैं इस बारे में और अधिक सही जानकारी चाहता हूँ ।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी,
विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता,
सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण
माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक
आदि सब प्रकार के खनिज
तथा वनौषधि द्रव्य थोक
व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें ।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७६६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड़, बम्बई

सुक्ष्मरूप में आक्सीजन-युक्त

चतुर्भुजरस की प्रस्तुत-विधि

योगीराज ब्रह्मचारी श्री गोपाल चैतन्यदेव पीयूषपाणि, बम्बई

[आयुर्वेद के ज्ञाताओं के लिए 'चतुर्भुज रस' कोई नवीन औषधि नहीं है। शास्त्रों में इसकी निर्माण विधि तथा गुणों का विस्तृत उल्लेख है, और वैद्य बन्धु इस महान् औषधि का अपने योगों में प्रायः प्रयोग करते हैं। किन्तु बम्बई निवासी ब्रह्मचारी श्रीगोपाल चैतन्यदेव जी ने विशेष परिश्रम तथा अनुसंधान द्वारा इसके निर्माण की विशेष विधि का पता लगाया है और उनका दावा है कि उनके द्वारा प्रस्तुत विधि से निर्मित चतुर्भुज रस शास्त्रोक्त विधि से निर्मित चतुर्भुज रस से अधिक गुण सम्पन्न तथा अपेक्षाकृत अधिक शीघ्रता से लाभ करने वाला है। गत मई मास में त्रिवेन्द्रम में सम्पन्न अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन ने स्वामी जी को इस औषधि के निर्माण के लिए २५१) रुपये प्रदान करने का निश्चय किया है। इस मूल्य की औषधि उनसे बनवाकर उसका परीक्षण यूनिवर्सल हैल्थ इन्स्टिट्यूट, बम्बई, में किया जायेगा। इसी अवसर पर पैप्सु के आयुर्वेद डायरेक्टर श्री पं० कान्तीनारायण मिश्र जी ने भी स्वामी जी को पैप्सु आने का निमंत्रण दिया है तथा यह घोषणा की है कि यदि स्वामी जी पैप्सु आयें तो उन्हें इस औषधि के परीक्षण तथा तत्सम्बन्धी आंकड़े इकट्ठे करने के निमित्त यात्रा व्यय के अतिरिक्त २०००) रुपये दिये जायेंगे। आशा करते हैं स्वामी जी इस अवसर का लाभ उठाकर स्वनिर्मित औषधि के गुणों को प्रमाणित कर आयुर्वेद की गौरववृद्धि करेंगे। पाठकों के लाभार्थ स्वामी जी द्वारा गवेषित चतुर्भुज रस की प्रस्तुत-विधि नीचे प्रकाशित करते हैं। वैद्य बन्धुओं से हमारा यह आग्रह है कि निम्न लेख में वर्णित रीति से चतुर्भुज रस का स्वयं निर्माण कर अथवा उसे स्वामी जी से मंगाकर प्रयोग करें तथा परिणामों को पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजें।--सम्पादक]

सर्वप्रथम मेरे गवेषित तथा अनुशोधित "चतुर्भुज-रस" तथा शास्त्रीय चतुर्भुज-रस के मूलयोग (Formula) में पार्थक्य क्या है, वह जान लेना उचित है। अतः दोनों का मूलयोग नीचे लिखता हूँ :

शास्त्रोक्त चतुर्भुज-रस का मूलयोग:—

सूत भस्म	तोला	दो
स्वर्ण भस्म	,,	एक
हरताल भस्म	,,	एक
शोधित मनः शीला	,,	एक
कस्तूरी	,,	एक
	कुल छः	तोला

सुप्त रूप में अक्सिजन युक्त गवेषित और अनुशोधित चतुर्भु ज रस का मूल-योग :—

सिद्ध मकरध्वज	तोला	दो
स्वर्ण भस्म	,,	एक
रस माणिक्य	,,	एक
शोधित मनः शीला	,,	एक
कस्तूरी	,,	एक

कुल छः तोला

मकान की स्थिति-स्थापकता जैसे उसकी नींव पर निर्भर करती है, तद्रूप रस-औषधि की स्थिति-स्थापकता, गुणत्व उसकी मातृभूमि पर निर्भर करती है। मेरी गवेषित चतुर्भु ज रस की मातृभूमि "सिद्ध मकरध्वज" है। सूत भस्म और सिद्ध-मकरध्वज के गुण का विश्लेषण करने से, अनुभव होता है कि सूत भस्म से सिद्ध मकरध्वज का गुण अतीव अधिक है। उसकी प्रस्तुत विधि निम्न प्रकार है :

हिंगुलुत्थ पारा को पहिले शास्त्रानुसार नैसर्गिक एवं कञ्चुका दोष-मुक्त कर लेना चाहिए। वही दोष-युक्त विशुद्ध-पारा तोला आठ के साथ विशुद्ध स्वर्णरेणु तोला चार को उत्तम पत्थर के खरल में मर्द्दन कर जब एक-रस बन जाय, तब उसके साथ विशुद्ध आमलासार गंधक आठ तोला, क्रमशः मिश्रित एवं मर्द्दन कर कज्जली बनाना चाहिए। तत् पूर्व समतल बोतल को सात बार कापड़-मिट्टी कर सुखा लेना चाहिए। उक्त कज्जली इस बोतल में भरकर रस-सिन्दूर वा मकरध्वज की विधि के अनुसार बालुका-यन्त्र द्वारा अग्नि-संस्कार करें। सांग शीतल होने के बाद औषधि बोतल से निकाल कर, पीस कर डमरू-यन्त्र के द्वारा पारा आर्कषण करलें। इस पारा में जल वा काञ्जी का स्पर्श न हो यह ध्यान रखें। फिर उक्त पारा आठ तोला, स्वर्णरेणु चार तोला, विशुद्ध आमलासार गंधक आठ तोला पूर्ववत् कज्जली कर बोतलस्थ कर अग्नि संस्कार करें। फिर डमरू यन्त्र से पारे का आकर्षण करें। इस प्रकार पाँच बार अग्नि-संस्कार करने से सिद्ध मकरध्वज प्रस्तुत होता है। ध्यान रखें कि पारे के निष्कासन एवं मर्द्दन में घृत-कुमारी के स्वरस के सिवाय दूसरी कोई भी वस्तु का स्पर्श न होवे; क्योंकि प्रतिवार अग्नि-संस्कार के बाद पारा क्रमशः दीप्तिशाली, शक्तिशाली और उग्र-गुणशाली बनता है। उस समय कोई भी धातु-उपधातु व जलादि का स्पर्श होने से यह पारा उनके गुणों को सत्वर ग्रहण कर स्वयं मलिन बन जाता है। यह सिद्ध-मकरध्वज का वर्ण सद्योजात बाल-सूर्य्य की भाँति अरुण वर्ण हो जाता है एवं मुलायम होता है। मेरे गवेषित चतुर्भुज-रस की मातृभूमि यही सिद्ध-मकरध्वज है।

पत्राख्य हरताल को शास्त्रानुसार शुद्ध करके "रस-माणिक्य" बना लें। रस-माणिक्य की प्रस्तुत-विधि प्रत्येक रस-वैद्य-बन्धु जानते ही हैं। शास्त्रोक्त चतुभु ज-रस में हरताल भस्म मिश्रित होता है; लेकिन मेरे अनुशोधित चतुर्भु ज-रस में हरताल का उत्तम संस्करण रस-माणिक्य मिश्रित किया जाता है। हरताल भस्म एवं रस-माणिक्य के गुणों में पर्याप्त अन्तर है। हड़ताल की जितनी औषधियाँ आयुर्वेद के भण्डार में विद्यमान हैं, उनमें से रस-माणिक्य गुणों में शायद सर्वश्रेष्ठ है। अतः मैं इसे ही मिश्रण करता हूँ।

मनःशीला को भी शास्त्रानुसार शाधन कर लें। धातु-उपधातु शास्त्रानुसार

शोधन जारण एवं अग्नि संस्कार होने से वह निर्दोष होता है ।

सर्वप्रथम सिद्ध मकरध्वज दो तोला उत्तम रूप से मर्दन कर (पत्थर के खरल में) स्वर्ण-भस्म एक तोला मिश्रित और मर्दन करें । तत्पश्चात् क्रमशः शोधित मनःशीला एवं कस्तूरी मिश्रित करें । साथ ही रस-माणिक्य एक तोला मिश्रित और मर्दन कर लें । आवश्यकता के अनुसार घृतकुमारी का स्वरस मिश्रण करें । स्मरण रखें कि "मर्दनं गुणवर्धनम्" मर्दन उत्तम रूप में होना चाहिए । सर्वसामग्री एक-रस होने के बाद एक गोला (लड्डू) बनाकर, एरण्ड पत्र के द्वारा उत्तम रूप से वेष्टन कर, सूत्र से बाँध लें एवं नवीन धान्यराशी के भीतर तीन अहोरात्र रखें। तदनन्तर औषधि निकाल कर एरण्ड-पत्र से मुक्त कर; पुनः घृत-कुमारी के स्वरस से मर्दन कर, छाया में सुखाकर उत्तम काँच के बर्त्तन में रखें । वाह्य हवा न लगे ।

इस दिव्यौषधि का गुण यावच्चन्द्र-दिवाकर नाश नहीं होता है । सिद्ध मकरध्वज प्रस्तुत करते समय प्राकृतिक नियम से ही उसमें प्राणवायु (Oxygen) का संचार होकर, उसमें सुप्त रूप में विद्यमान रहता है । सुप्त रूप में आक्सिजन-युक्त मेरा अनुशोधित, गवेषित चतुर्भुज-रस उदरस्थ होने के बाद, जीर्णांते, सुप्त-आक्सिजन व्याप्त होकर रक्त एवं वायु के साथ मिलकर, सर्व-शरीर में यहाँ तक कि शरीर के प्रत्येक अंश में, प्रत्येक अणु-परमाणु में पहुँच कर क्रमशः रोग नाशकर रोगी को स्वस्थ करता है । यह गंभीर-तत्व समझने के लिए "चतुर्भुज-रस का रासायनिक विश्लेषण" नामक पुस्तक पढ़ना चाहिए । इस छोटे से निबन्ध में उस गुप्त रहस्य सुप्त आक्सिजन की बात विस्तार से लिखना असम्भव है। इस चतुर्भुज रस की प्रयोग-विधि पर आगामी अंक में विस्तार से प्रकाश डाला जायेगा ।

कन्याओं को आयुर्वेद

आयुर्वेदाचार्य एवं वैद्यरत्न श्रेणी तक सर्वांग पूर्ण शिक्षा निःशुल्क दिलाने के निमित्त "कन्या गुरुकुल हरिद्वार" के स्वस्थ धार्मिक वातावरण में अपनी कन्यायें प्रविष्ट कराने के लिए शीघ्र लिखिये । यहाँ गार्हस्थ्य कला तथा धर्म शिक्षा के साथ साहित्य सम्बन्धी परीक्षाओं का भी पूर्ण प्रबन्ध है । प्रवेश फार्म तथा पूर्ण विवरण के लिए लिखिये ।

आचार्या
चन्द्रावती देवी शास्त्री प्रभाकर,
साहित्य रत्न, वैद्यविशारद ।

मलेरिया शत्रु—सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है । मूल्य आधा पौंड ६) रु० **सफेद कोढ़**-की पेटेन्ट दवा—मूल्य ५) रुपया दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर तथा हकीम धन-मान कमा रहे हैं । विवरण पत्र मुफ्त मंगाकर देखें ।

वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० आकोला
(बरार) म० प्र०

हींग

श्री लक्ष्मीनारायण पाण्डेय, आयुर्वेदाचार्य, जावरा (म. भा.)

संसार में जहाँ एक ओर विविध रोग हैं वहाँ उनके शमन के भी विविध उपाय या प्रयोग हैं।

प्रकृति ही मानव जाति की एक मात्र ऐसी सेविका है जो, निःस्वार्थ भाव से अहर्निश मानव जाति की सेवा करती आ रही है। मनुष्य यदि प्रकृति के अनुकूल आचरण करे या प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं का उपयोग करे तो वह शायद ही कभी रोगी हो। प्रकृति ने हमारे लिए, हमारे स्वास्थ्य को वनाए रखने के लिए ऐसी अनेक वस्तुएं उत्पन्न की हैं जो, अपने में अद्भुत गुण छिपाये हुए हैं। अधिकांश मनुष्य ऐसी वस्तुओं से परिचित होते हुए भी उनके अनेक गुणों से अपरिचित हैं। अतः यह आवश्यक है कि ऐसी वस्तुओं के गुणों को सर्वोपयोगी होने के लिए प्रकाश में लाया जाय।

आयुर्वेद शास्त्र में प्रत्येक औषधि के गुणधर्म के बारे में विशद प्रकाश है किन्तु संस्कृत में तथा सूत्रात्मक होने से सभी की समझ के बाहर है अतः वह पूर्ण 'होते हुए भी अपूर्ण है।

श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालंकार ने इस ओर बहुत छ प्रयत्न किया है जो सत्य है। किन्तु अन्य विद्वान भी इस ओर प्रवृत हों तो यह दुष्कर कार्य सुकर हो सकता है।

प्रस्तुत लेख में हींग के सम्बन्ध में स्थूल जानकारी देते हुए उसके कतिपय प्रयोगों से परिचित कराया गया है।

हींग एक ऐसी गुणकारी औषध है जिसका प्रत्येक रोग पर प्रयोग किया जाता है और जो सर्व सुलभ भी है।

हींग के पर्यायवाचक नाम:— हिन्दी हींग, अंग्रेजी Asafoctida, संस्कृत हिंगु, वंगला हिंगू, कर्नाटक फेसू, तैलगू इंगुवा, फारसी अंगुभ, देखेते अंगुभ खालिस, गुजराती हिंग।

हींग की उत्पत्ति:—इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में बहुत से लोगों का कथन है कि यह एक प्रकार का गोंद है और बहुत से इसे पत्तों का रस वताते हैं। वास्तव में यह पत्तों और छाल में चीरा देने से निर्गत जमाया हुआ रस है। जिसे हींग के पत्तों में अथवा वकरे की खाल में रखकर सुखाते हैं। इसकी पैदावार अफगानिस्तान और कावुल में बहुत है। इन देशों के निवासी प्रतिवर्ष भारत तथा अन्य देशों में जाकर स्वयं इसका व्यापार करते हैं या वहाँ से मंगाई जाती है। प्रायः अच्छी हींग व्यापारिक केन्द्र बने नगरों में पहुँचती है और वहाँ से सारे देश में।

आजकल 'हींग' का एक व्यापार सा चल पड़ा है। शुद्ध हींग में कई वस्तुएँ मिलाकर मिलवाटी हींग तैयार की जाती है और उसे शुद्ध हींग के नाम से बेचा जाता है। इसमें कई तरह के अनाजों का आटा पिसे पत्थर और भिन्न भिन्न वृक्षों के गोंद मिल सकते हैं। ऐसे व्यक्ति जो कि इस प्रकार का कुकृत्य करते हैं जन-स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ हीं नहीं करते वरन् देश की स्वास्थ्यसम्पत्ति

को भी नष्ट कर रहे हैं। ऐसे व्यक्ति देश को नाश की ओर ले जाने वालों में हैं। एकमात्र हींग ही नहीं वंशलोचन, पीपल, दालचीनी आदि अनेक ऐसी वस्तुएँ हैं जो शुद्ध रूप में प्रायः नहीं मिलती हैं।

रंगः—साधारणतः इसका रंग कुछ सुर्खी लिए हुए सफ़ेद चमकदार होता है।

वजनः—हल्कापन

स्वादः—चखने पर कसैला पन तथा कड़वापन ज्ञात होता है।

पहचान—(१) हींग के टुकड़े को लेकर दियासलाई लगावें यदि जलने लगे तो शुद्ध हींग समझना चाहिए।

(२) एक कांच के बरतन को पानी से भर दीजिए व उसमें हींग का टुकड़ा छोड़िए यदि पानी दूध की भांति सफेद हो जाय तो हींग को ठीक समझा जाय। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि नीचे कुछ जमे नहीं।

भेद—साधारणतः हींग के दो भेद बताए जाते हैं। प्रथम भोजनोपयोगी जिसे अफगान लोग नैब के नाम से पुकारते हैं तथा द्वितीय औषधोपयोगी जिसे मनाब के नाम से पुकारा जाता है।

प्रथम प्रकार की हींग सुगन्ध युक्त दूध की भांति सफेद कुछ गीलापन लिए हुए तथा भोजन को पचा देने वाली होती है इसे यदि पानी में डाला जाय तो दूध की भांति श्वेत (२) तीव्र गन्ध युक्त, रंग में किंचित् अरुणिमाभ, स्वाद मे अप्रिय, कीड़ों को मारनें में उपयोगी। किसान लोग इसका प्रयोग प्रायः सब्जियों के कीड़े मारने के हेतु करते हैं।

इस द्विप्रकारक हींग के कुछ प्रचलित नाम ये हैं:—हीरा हींग, नई चाल, सीहा बंदी, चरास, गलीलन। पर ये दोनों प्रकार की हींगें अलग अलग ही बेची जाती हैं। भोजन में प्रथम प्रकार की हींग ही उपयुक्त है। वैसे यह प्रसिद्ध है कि हींग एक तीव्रतम वायुनाशक औषध है किन्तु यह प्रायः सभी बीमारियों को दूर करती है।

स्वभाव (गुण धर्म):—यह उष्ण एवं रूक्ष होने के साथ ही सम भी है अतः किसी भी प्रकृति के विरुद्ध नहीं जाती है और सब को लाभप्रद है।

मात्राः—प्राचीन ग्रन्थों में इसकी मात्रा बहुत मानी गई है किन्तु देश वायु व स्थिति के अनुसार $\frac{१}{४}$ मा० से १ माशा तक उपयुक्त है। यह मात्रा देश, काला, प्रकृति, समय तथा बलाबल देखकर घटाई बढ़ाई जा सकती है।

यदि हींग का प्रयोग प्रतिदिन भोजन के साथ हो तो भी अत्युत्तम है क्योंकि यह तेज मिर्च मसालों की अपेक्षा अधिक लाभप्रद एवं सर्वथा निरापद है।

प्रयोग—हिंग्वष्टक चूर्णः—सोंठ, मीर्च (काली), पीपल, अजवायन, सेंधानमक, सफेद जीरा, काला जीरा और भुनी हींग, प्रत्येक बराबर किन्तु हींग आठवाँ भाग। हींग को घी के साथ भून लिया जाय। उक्त वस्तुओं का चूर्ण बना पश्चात् भुनी हींग मिलालें।

उपयोग—अजीर्ण, अपचन, मन्दाग्नि, हैजा, दस्त, वातशूल, गुल्म, आध्मान, वातज ग्रहणी तथा अन्य पाचन सम्बन्धी दोष।

मात्रा—२ से ४ मा० दिन में दो बार या आवश्यकतानुसार।

शिवाक्षार पाचन चूर्णः—ऊपर लिखा-चूर्ण, छोटी हरडका चूर्ण व सज्जी क्षार तीनों सममात्रा में लें मिलाकर प्रयोग करें।

उपयोग—कब्ज, हिचकी, वमन, अरुचि, शूल, कृमि, वायुशूल तथा अजीर्ण।

मात्रा—२ से ४ माशा दिन में २ बार या आवश्यकतानुसार।

हिस्टीरिया नाशकचूर्ण:—भुनी हींग २ तो०, जटामांसी २ तो०, कूठ ४ तो०, कालानमक ४ तो०, बायविडंग १६ तो०, चूर्ण बना लें।

मात्रा—१ से ३ माशा दिन में ३ बार।

उपयोग—हिस्टीरिया, उदरवात, कृमि, अनिद्रा।

रजःप्रवर्तकचूर्ण:—भुनी हींग ३ माशा, कालीमीर्च ७ माशा, भारंगी ७ मा०, पीपल ८ मा०, सौंठ ८ माशा, चूर्ण बनालें।

मात्रा—२ से ३ तो० ब्राह्मी १ तो० और काले तिल ५ तो० के क्वाथ के साथ मासिक धर्म से १० दिन पूर्व से।

उपयोग—मासिक धर्म की रुकावट, अनियमितता, कमर का दर्द, दूषित रक्त, अरुचि, बैचेनी आदि।

विशूचिकाहर वटी:—भुनी हींग २ तो०, अफीम १ तो०, कपूर २ तो०, सोहागे का फूल २ तो०, काली मीर्च २ तो०, सौंठ २ तो०, गन्धक २ तो०, सब को मिलाकर नींबू के रस में खरल कर गोलियां बना लें।

मात्रा—१ गोली प्रतिघण्टे आवश्यकतानुसार।

उपयोग—विशूचिका।

विशेष—१ सेर जल में तोला लौंग या जायफल मिलाकर उबालें और शीतल होने पर ११ तो० जल से पिलावें।

(क्रमशः)

शुद्ध लोह भस्म (बारीतर) २४) सेर

काश्मीरी शिलाजित, हमारे कारखाने में प्रतिवर्ष करीब २०० मन शास्त्र विधि अनुसार शुद्ध की जाती है। भाव-शुद्ध ३२) सेर, अशुद्ध पत्थर ८०) प्रति मन, वंग भस्म ३६), प्रवाल भस्म ३२), अभ्रक वज्रभस्म ४६), कांत लोह भस्म २८), स्वर्ण माक्षिक भस्म २८), रस सिन्दूर ८०), स्वर्णराज़ वंगेश्वर ८८), मंडूर भस्म २०), शंखभस्म ७), शृगं भस्म १४), कपर्दिक भस्म ८), मुक्ता शुक्ती भस्म १०), गोदन्ती भस्म ३।।।) चन्द्रप्रभा वटी २८), त्रिवंग भस्म ४८), कसीस भस्म १०) प्रति सेर। स्वर्ण सिन्दूर ३) प्रति तोला।

नोटः—इन भावों पर २० तोला से कम कोई वस्तु न भेजी जावेगी, सूचीपत्र मुफ्त।

च्यवनप्राश; ५ सेर का २१), १० सेर का ३८), २० सेर का ६५), रु०।

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स

(थोक आयुर्वेदिक औषधियों के बनाने का बड़ा कारखाना)

जी० टी० रोड, अमृतसर।

वैद्य बन्धुओ, अपनी आय बढ़ाओ

बिना पूंजी, बिना परिश्रम, बिना किसी व्यय के आय बढ़ाना चाहें, तो हम से पत्र व्यवहार करें। हमारा कारखाना भारत भर में थोक परिमाण में सस्ती एवं उत्तम सर्व प्रकार की आयुर्वेदिक औषधिएं सप्लाई करने में प्रसिद्ध है। कई प्रान्तीय गवर्नमेण्टें हमारी ग्राहक हैं। काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, अमृतसर।

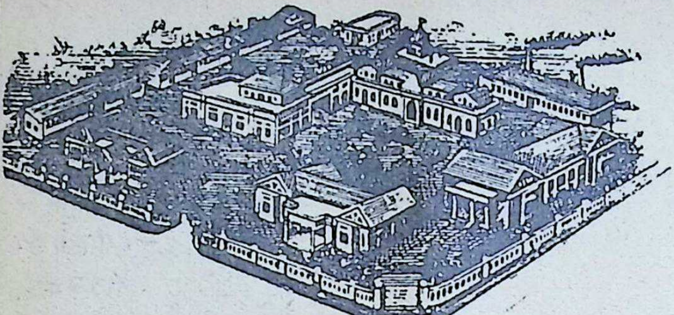

४५ वर्षों से विश्व
भर में प्रतिष्ठा प्राप्त
भारत की प्रमुख
आयुर्वेदिक औषध
निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम REGD.

गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, तैल, मलम, अंजन, अवलेह, आसवारिष्ट तथा पेटेंट वगैरह सैकड़ों आयुर्वेदिक औषधियाँ हाथ से तथा उपलों की अग्नि से बड़े जत्थे में तैयार की जाती हैं। यहां की दवाइयां सरकारी, म्युनिसिपल तथा धर्मार्थ दवाखानों आदि में तथा विदेशों में प्रचुर प्रमाण में जाती हैं। विद्वान वैद्य, हकीम तथा एलोपैथ डाक्टर गोंडल रसशाला की औषधियों के उपयोग से रोगियों को रोगमुक्त कर यश तथा धन कमा रहे हैं। प्रजा के हृदय में रसशाला ने विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। रोग के लिए सलाह मुफ्त दी जाती है, हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी सूचीपत्र आज मंगाइये। बम्बई की शाखायें :—

शाखा नं० १ गोंडल रसशाला औषधाश्रम,
छोटालाल भवन, ४१६ कालबा देवी रोड,
मुम्बई २।

शाखा नं० २ गोंडल रसशाला औषधाश्रम
१७ कोमरश्यल चेम्बर्स, मस्जिद बन्दर रोड,
जकरिया मस्जिद सामने, मुंबई ३।

चिकित्सकों व धर्मार्थ औषधालयों को

विशेष सुविधा

सभी प्रकार के उत्तम, गुणकारी भस्म, रस, मात्रा, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, गुग्गुलु, गुट्टिका, आसवारिष्ट, अवलेह आदि नित्योपयोगी औषधों के थोक व सस्ते भाव में मिलने का—

विश्वसनीय स्थान—

बोध चिह्न नवशक्ति आयुर्वेदालय भुसावळ

नवशक्ति आयुर्वेदालय
लिमिटेड, भुसावल.

शाखा—जब्बलपुर (म० प्र०)

आयुर्वेदीय स्वस्थवृत

श्री लक्ष्मीनारायण पचौरी आयुर्वेदाचार्य

[मई अंक से आगे]

उदाहरणार्थ—

तदाप्रभृति व्यवायं व्यायाममतितर्पण-मतिकर्शनं दिवास्वप्नं रात्रिजागरणं शोकं यानारोहणं भयमुत्कट्कासनं चैकान्तत: स्नेहादिक्रियां शोणितमोक्षणं चाकाले वेग-विधारणं च न सेवेत । सु० शा० ३

जब से स्त्री की सगर्भावस्था का निश्चय हो जाय, तब से मैथुन, व्यायाम, अतितर्पण, अतिकर्षण, दिन में सोना, रात को जागना, शोक, यानों पर सवारी करना, भीति, उकड़ू बैठना, इनको कदापि भी और स्नेहादि क्रिया, रक्तमोक्षण और वेगधारण इनको अकाल में सेवन न करे। ऐसा न करने का कारण बताते हुए सुश्रुत ने आगे लिखा है—

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या यो यो भाग: प्रपीड्यते ।
स स भाग: शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ।

चक्रपाणिदत्त कहते हैं—

माता च गर्भे प्रधानं कारणं, येन आसेकात्—प्रभृति प्रसव पर्यन्तं मातुरेव गुणदोषावनु विदधाति गर्भ: ।

आधुनिक विद्वान् भी इसकी पुष्टि करते हैं। वान डी वेल्डा अपनी Ideal Birth नामक पुस्तक में कहते हैं—

All the mother takes of food and drink, medicines and poisons from such things as tobacco, and lohocla, exercise an influence on the child's body, then does it not sum, following a law of logic, that likewise the psychical fare exercises an influence on the mind of an unborn child. To be sure we cannot prove this, but then there are many things between heaven and earth which we cannot prove—are they, therefore, less true?

इस प्रकार डा. निकोलस ने Esoteric Anthropology नामक अपनी पुस्तक में लिखा है—

An impression upon the mother, of any kind, acts upon the child. Children are born happy or miserable, according to the shape of their mothers during pregnancy, just as they are born healthy or diseased. The most extraordinary peculiarities are inflicted upon children by some temporary condition of the mother. There is abundant proof that this may extend to the body as well as mind.

इसी प्रकार का मत जेलेट ने अपनी Midwifery में लिखा है। गर्भिणी स्वस्थवृत्त तथा उसका मासानुमासिक आहार क्रम का वर्णन चरक, सुश्रुत और वाग्भट में और भी विस्तार से दिया है। किन्तु समय की दृष्टि से उसे छोड़ देना ही अच्छा है। इसी प्रकार सूतिका स्वस्थवृत्त का भी वर्णन दिया है और उसके पालन का विधान कम से कम डेढ़ माह बताया है—

अनेन विधिना अध्यर्धमासमुपसंस्कृता विमुक्ताहाराचारा विगतसूतिकाभिधाना स्यात् पुनरार्तवदर्शनादित्येके। सु० शा० १०

डेड़ माह में गर्भाशय संकुचित होकर अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है, इसलिये इतने समय तक शास्त्रोक्त नियमों को मानना चाहिये। जेलेट की Midwifery में लिखा है—

Strictly speaking, it(puerperium) lasts from the commencement of the third stage until the completion of the uterine involution—that is, for about six weeks.

पाश्चात्य देशों में भी प्रसूता को आराम देने की प्राचीन भारतीय पद्धति का महत्व जंचने लगा है, और वहां के प्रसव शास्त्रज्ञ प्रसूता को आराम देने की पद्धति के पक्ष में हो गये हैं। इसकी पुष्टि Ten Teachers' Midwifery में स्पष्ट शब्दों में की गई है:—

Straining and muscular effort with a bulky uterus and a relaxed outlet predispose to prolapse, and hence it is more often met with among those who resume their household duties or perhaps go out to daily work often ten days in bed and a few days convalescence. than in those who have a longer rest in bed followed by a further period in which fatigue and strain are avoided. There is, therefore. much to be said for the old-fashioned plan of waiting till the uterus has diminished in size and weight. and has sunk well down into the pelvis, and its muscular and ligamentary supports have recovered from the stretching and relaxaton of pregnancy and labour before permitting the assumption of the erect position.

इसी प्रकार शिशु सम्बन्धी स्वस्थवृत्त तथा उसका स्वास्थ्यकारक विधान जिससे बालक के स्वास्थ्य, वल, बुद्धि और आयु की वृद्धि हो—यह सब आयुर्वेद में विस्तार से वर्णित है।

प्राकृत स्वास्थ्य के वर्णन में यदि पाश्चात्य स्वास्थ्य विज्ञान द्वारा बहुभाषित रोगक्षमता (Immunity) के सम्बन्ध में कुछ न कहा जावे, तो यह उचित न होगा। जिस व्यक्ति में यह क्षमता कम होती है, उसे रोग के जीवाणु आक्रान्त करके उसमें रोग उत्पन्न कर देते हैं और जिसमें क्षमता अधिक होती है उसमें वे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं और रोगोत्पत्ति नहीं हो पाती। यह क्षमता आधुनिक शरीर क्रियाशात्र में वर्णित रक्तस्थ अनेक द्रव्यों पर आश्रित है जिनके नाम इस प्रकार हैं—Antibodies, phagocytes, bacteriolysins, antitoxins, agglutinins, precipitins, opsonins इत्यादि। यहाँ मैं यह बताना चाहता हूँ कि आयुर्वेद के कथनानुसार न केवल यह क्षमता किन्तु शरीर की सम्पूर्ण शक्ति, वल और उसका जीवन ओज पर आश्रित है। उपर्युक्त शरीर रक्षक पदार्थ ओज के अन्तर्गत आने वाले अनेक अज्ञात पदार्थों में से कुछ हैं; जिनकी खोज आधुनिक वैज्ञानिक कर सके हैं। ओज के सम्बन्ध में कथित कुछ उद्धरण मैं नीचे देता हूँ। जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि ओज पर ही शरीर की शक्ति, स्थिरता और क्षमता निर्भर हैं—

ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम् ।
विविक्तं मृदुमृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम् ॥
देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम् ।
तदभावाच्च शीर्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम् ॥
सु० सू १५।२३-२४

हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत्सपीतकम् ।
ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्ना विनश्यति ॥
च० सू० १७/७५

पाश्चात्य शास्त्र शरीररक्षक द्रव्यों की अवस्थिति केवल रक्त में मानता है; किन्तु आयुर्वेद की विशेषता यह है कि वह पाश्चात्य शास्त्र के ओज का स्थान धमनी में रक्त तो मानता ही है, यथा—

तेन मूलेन महता महामूला मतादश ।
ओजोवहाः शरीरेस्मिन् विधम्यन्ते समन्ततः ॥
चरक

किन्तु विशेष स्थान हृदयस्थ रक्त तथा सामान्य स्थान रक्तातिरिक्त अन्य सब धातुओं में भी मानता है जैसा कि ऊपर के ही श्लोकों से स्पष्ट है । हृदयस्थ ओज प्रधान ओज है और उसके नाश से मनुष्यका नाश तुरन्त हो जाता है जैसा कि आजकल हृदयाघात (Heart failure) के अनेक रोगियों में हो रहा है । यहाँ पर शंका हो सकती है कि हृदय ही से तो सम्पूर्ण शरीर में रक्त जाता है फिर हृदयस्थ रक्त और धमनीगत रक्त के ओज में यह अन्तर कैसे है। इस सम्वन्ध में यह कहना आवश्यक है कि हृदयस्थ रक्त का तात्पर्य ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों में स्थित रक्त से नहीं है किन्तु हार्दिक धमनी (Coronary arteries) तथा हृदय की मांसपेशी-गत रक्त से है । रक्तातिरक्त अन्य धातुओं में ये शरीररक्षक द्रव्य अथवा ओज होते हैं ऐसा आयुर्वेद मानता है; किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक भी इस ओर प्रयत्नशील हैं जैसा कि Halliburton physiology से विदित होता है—

Upto this point I have spoken only of the blood, but workers are steadily bringing forward evidence to show that other cells of the body may by similar measures be rendered capable of producing a corresponding mechanism.

ओज की एक और विशेषता है कि वह सम्पूर्ण रोगमात्र के प्रति क्षमता (Immunity) का हेतु है जिसमें जीवाणुजन्य रोग आ ही जाते हैं किन्तु एलोपेथी में वर्णित रोगक्षमता का सम्वन्ध सिर्फ जीवाणुजन्य रोगों तक ही सीमित है ।

यह विवेचन प्राकृत स्वास्थ्य से सम्वंधित है । अब मैं धनात्मक स्वास्थ्य पर कुछ प्रकाश डालूंगा । इसका तात्पर्य यह है कि प्राकृत स्वास्थ्य को स्थिर रखते हुए पातञ्जलि योग सूत्र में कथित शारीरिक सम्पत्तियों में वृद्धि करना जिससे शरीर हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर, सक्षम और वलिष्ठ वने ।

"रूप लावण्य बल वज्र संहननत्वानि कायसम्पत् ।"

योग सूत्र ।

इनकी प्राप्ति के लिए आधार रूपी प्राकृत स्वास्थ्य तो चाहिये ही और उसके लिए स्वस्थवृत्त के सामान्य नियमों का पालन करना चाहिए ; किन्तु विशेष रूप से व्यायाम करना अत्यावश्यक है । व्यायाम के सहयोगी के रूप में ब्रह्मचर्य, पौष्टिक आहार, प्राणायाम, आसन और अभ्यंग अपेक्षित हैं । इन क्रियाओं से और विशेष रूप से व्यायाम के द्वारा बाह्य दृष्टि से शरीर पुष्ट होता ही

है, किन्तु आन्तरिक दृष्टि से शरीर की स्वाभाविक सार्वरौगिक क्षमता बढ़ती है। एलोपैथिक चिकित्सा शास्त्र में शारीरिक क्षमता के लिए अनेक कृत्रिम उपाय काम में लाये जाते हैं; जो मनुष्य के पैदा होने के साथ ही उनके शैशव काल से प्रारम्भ हो जाते हैं यथा टेटेनस डिप्थीरिया, कुकरखांसी, चेचक, टी० ए० बी०, प्लेग, कालरा, बी० सी० जी० आदि के प्रतिरोधक टीके जो शरीर में भिन्न भिन्न रोगों के प्रति कृत्रिम क्षमता उत्पन्न करते हैं। यह क्षमता औषधि के प्रभाव के अनुसार अल्पकालीन तथा विशिष्ट रोग के लिए ही होती है; जबकि व्यायाम और उसकी सहयोगी क्रियाओं द्वारा प्राप्त क्षमता स्वाभाविक, सार्वरौगिक और दीर्घकालीन होगी। लाखों रुपयों का जो व्यय सरकार इन टीकों पर करती है वह यदि व्यायाम के प्रोत्साहन तथा व्यायाम शालाओं के निर्माण और पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए करे, तो स्वाभाविक सार्वरौगिक क्षमता प्राप्त होगी और लाखों रुपयों का व्यय बचेगा। मेरा तो यह विश्वास है कि यदि जितने औषधालय हैं उतनी व्यायाम शालाएं हो जावें तथा जितने रोगी औषधालयों में दवा लेने जाते हैं; उतने व्यक्ति व्यायाम शाला में जाकर नियमित व्यायाम करने लगें (इसका यह तात्पर्य नहीं है कि रोगी या शिशु व्यायाम करें) तो देश का स्वास्थ्य बहुत उन्नत हो. जावे और व्यक्ति तथा समाज की आर्थिक स्थिति में बहुत सुधार हो। अनागताबाधा प्रतिषेधनीय चिकित्सित अध्याय में सुश्रुत ने कहा है:—

शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा।।
श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यञ्चापि परमं व्यायामादुपजायते।।
व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्र मृगा इव।।

व्यायाम व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से दो प्रकार के हैं। सामूहिक व्यायाम में मनोरंजन भी होता है तथा इस कारण से अधिक समय तक किया जा सकता है। किंतु व्यक्तिगत व्यायाम में मनोशक्ति स्वशरीर पर केन्द्रित रहने के कारण थोड़े व्यायाम से भी अधिक लाभ होता है। देशी व्यायाम, वे व्यक्तिगत हो या सामूहिक, अल्पव्यय साध्य होते हैं, क्योंकि उनमें उपकरणों का सर्वथा अभाव या न्यून उपकरण और अल्प स्थान की आवश्यकता होती है, जबकि विदेशी व्यायाम इसके विपरीत हैं।

अब मैं चिकित्सकों तथा सरकार से उनके कर्त्तव्य के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहूँगा। वैद्यों से केवल यह कहना है कि हम रोग होने पर चिकित्सा करते ही हैं किन्तु जिन कुटुम्बों का भार हमारे ऊपर है या जिनके हम चिकित्सक हैं, उनको स्वस्थवृत्त के नियमों से समय समय पर अवगत कराते रहना चाहिये और उन नियमों का पालन करने के लिये उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिये। इससे हमारी कुछ आर्थिक हानि अवश्य होगी; किन्तु हम सामाजिक कार्यकर्ता हैं और हमारा उद्देश्य केवल अर्थोपार्जन न रहकर जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर इस प्रकार होना चाहिये—

सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।।

वैसे तो आयुर्वेद का प्रचार "नार्थार्थं नापिकामार्थमथभूतदयां प्रति" के मानव

सिद्धान्त के आधार पर हुआ है किन्तु मैं आपसे ऐसा नहीं कहता क्योंकि आज यह सम्भव नहीं है।

सरकार से मेरा यह निवेदन है कि लोक स्वास्थ्य की जिम्मेदारी व्यक्तिगत चिकित्सकों की अपेक्षा सरकार पर अधिक है इसलिये शासन को चाहिए की आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त की शिक्षा का प्रबन्ध स्कूलों में करे, शुद्ध दूध और घी के लिए उत्तम दुग्धशालाएं खोले, मादक द्रव्यों पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगावे, सिनेमा के समय और उसकी अश्लीलता में सुधार करे जिससे लोग ब्राह्ममुहूर्त में उठ सकें और ब्रह्मचर्य का पालन करें। होटलों की खाद्य व्यवस्था में सफाई और सामग्री की ताजगी का अधिक लक्ष्य रखे और बच्चों तथा प्रौढ़ों के लिये अधिक से अधिक बाल क्रीड़ा क्षेत्र तथा व्यायाम शालाएं (Childrens' Park and Gymnasium) बनवाए इत्यादि।

नागरिक एवं ग्रामीण स्वास्थ्यरक्षा व्यवस्था में आयुर्वेद पूर्ण सक्षम है अतः उसे यह अवसर अवश्य देना चाहिये और इसके लिये राज्य सरकार को स्वतन्त्र रूप से आयुर्वेद विभाग खोलना चाहिये। यह मैं इसलिये नहीं कहता कि आयुर्वेद भारतीय चिकित्सा पद्धति है अतः राष्ट्र प्रेमवश अथवा अन्य चिकित्सा पद्धतियों से सस्ती है इसलिये आर्थिक दृष्टि से उसके साथ पक्षपात किया जावे, जैसा कि प्रायः लोग कहा करते हैं! यह तो मनुष्य के जीवन का प्रश्न है इसलिये चिकित्सा पद्धति इन आधारों पर नहीं अपनाई जा सकती। मैं तो यह आशा उसकी योग्यता के आधार पर करता हूं और कह सकता हूं कि नई नई विषाक्त औषधियां निकाल लेने से स्वास्थ्य की रक्षा नहीं हो सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पाश्चात्य विज्ञान द्रुतगति से उन्नति कर रहा है तथा प्रत्येक को ज्ञान के क्षेत्र में सहिष्णुता एवं पारस्परिक आदान प्रदान की भावना रखना चाहिये। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि आयुर्वेद का भण्डार अभी इतना विस्तृत और गम्भीर है कि एलोपैथी को उससे बहुत कुछ सीखना है। इसलिये अन्त में सरकार से मैं एक बार पुनः निवेदन करता हूं कि वह आयुर्वेद को उसके करिश्मे बताने का अवसर अवश्य प्रदान करे।

(मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन नागपुर के अवसर पर आयोजित स्वास्थ्य परिषद् में दिया गया अध्यक्षीय भाषण)

रोग पर जादू की भांति तत्काल
असर करने वाले
मार्तण्ड के आयुर्वेदिक
इंजेक्शन

मार्तण्ड की समस्त वैज्ञानिक साधन सम्पन्न और आधुनिक मशीनों से सुसज्जित प्रयोगशाला में उच्च शिक्षित आयुर्वेदज्ञों और विदेशी रसायनज्ञों की देख रेख में निर्माण हुए ये आयुर्वेदिक इंजेक्शन अपना तत्काल असर करते हैं, इनका प्रभाव स्थाई होता है, रक्खे रहने पर भी ये कभी नहीं बिगड़ सकते, इनकी आशुगुणकारिता और शुद्धि की पूरी गारंटी है। सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगाइये।

निर्माताः **मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स,**
बड़ौत, उत्तर प्रदेश
रिसर्च इंस्टीट्यूट आफ इंडियन मेडिसिन्स

निखिल-भारतीय-आयुर्वेद-विद्यापीठ शिक्षासम्मेलनस्य त्रिवेन्द्रंनगरे चत्वारिंशदधिवेशने सभापतेः भि० वि० डेग्वेकरस्य

अध्यक्षीयं भाषणम्

(दि० २३-५-५५)

[गतांक से आगे]

(९) अनवस्थितत्वम् ।

(९) वायुद्रव्यं अनवस्थितम् । अनवस्थितमिति चलस्वभावम् (चक्रदत्त च० सू० १२-३) द्रव (liquid) सांद्रार्धघन (viscous) द्रव्याणि कस्मिन्नपि काचपात्रे अवस्थितानि विशिष्टोच्चतां यावत् अवतिष्ठन्ते । तदा तानि द्रव्याणि **अवस्थितानि** इति भण्यन्ते । तत् द्रवादिद्रव्यं तस्मिन् पात्रे सदा एव तद्विशिष्टोच्चतांयावत् अवतिष्ठेत् नन्यूनाधिकम् । किन्तु यदि क्लोरिनवत् (chlorine) हरितवर्णं वायुद्रव्यं कस्मिन् अपि काचपात्रे प्रतिष्ठापितं चेत्, तत् तस्मिन्पात्रे उपरि अधः गच्छत्, सर्वमपि पात्रं अल्पे अपि काले व्याप्नुयात् । तथा एव अन्ये वायवः अपि । वायुरूपद्रव्यस्य एषः धर्मः यत् यावन्तं विस्तीर्णं स्थानं तस्य व्याप्तये उपलब्धं भवेत् तस्मिन् सर्वस्मिन् अपि तत् झटिति प्रवेष्टुं समर्थम् । अतएव सुगन्धाः दुर्गन्धा वा वायुना स्थानात्स्थानं तात्कालमेव नीयन्ते । एवं सर्वं वायुद्रव्यम् अनवस्थितम् । तद्वदेव शारीरो वायुः ।

(१०) असंघातवत्वम् ।

(१०) वायुद्रव्यं असंघातवत् द्रव्यम् । न विद्यते संघातः परमाणूनां परस्परसंश्लेषः यस्य तत् असंघातवत् । "पित्तश्लेष्मवदवयवसंघातरहितम् असंघातमिति' चक्रदत्तः । पित्तश्लेष्माणौ द्रवद्रव्ये इति तयोः स्वरूपवर्णने निदर्शितमेव । यावन्ति घनद्रव्याणि जगति तानि सर्वाणि अवयवसंघातवन्ति । यतः तेषां परमाणवः परस्परं संश्लिष्टाः । घनद्रव्याणां तु ते एतादृशाः संश्लिष्टाः यत्तेषां विश्लेषणाय (यथा लोहस्य) अत्यधिकोष्णता आवश्यकी । द्रवद्रव्याणां परमाणुविश्लेषणं स्वल्पया उष्णतय एव । वायुरूपद्रव्याणां तु अतीव सरलतया भवति । विन्द्वैकरूपजलस्य वाष्पः तत्प्रमाणकः अन्यः वायुः वा कस्यचिदपि बृहदाकारकस्य पात्रस्य सर्वमप्यवकाशं व्याप्तुं समर्थः । प्रयोगस्य एतस्य कृते तस्मात् पात्रात् आदौ विद्यमानं सर्वं वायुद्रव्यं वायुनिष्कासनयंत्रेण आदौ निष्कास्यते । पश्चात्तद्विंदुरूपजलस्य वाष्पः तस्मिन्प्रवेश्यते ।

एवं प्राचीनाः आचार्याः टीकाकाराश्च सर्वैतद्विज्ञानज्ञानयुक्ताः आसन् इति निश्चीयते, अन्यथा वायुं "असंघातवान्" इति विशेषणयुक्तं तथा "असंघातवन्तम्" इति पित्तश्लेष्मवत् अवयवसंघातरहितं" इति विवरणं तैः कथं कृतं भवेत् ?

असंघातवान् इत्यस्य विरलसंघातवान् इत्यपि अर्थः ।

(११) दारुणत्वम् ।

(११) वायुद्रव्यं दारुणगुणयुक्तम् । चरक सू० १२-७ सूत्रस्य टीकायां चक्रदत्तः

"दारुणत्वं शोषणत्वात् काठिण्यं करोतीति'। वातः बाह्य वायु (air) द्रव्यम् इति तु कथितमेव। यथा बाह्यः वायुः आर्द्रवस्त्राणां द्रवतां संशोष्य तानि शुष्कीकरोति, तथैवेदं शरीरे विद्यमानं तदभिन्नं वायुद्रव्यं रसकफमेदादि शारीरद्रव्याणां समावस्थाधिकं द्रवत्वं संशोष्य शरीराद्बहिः निःसारयति।

एवमेतैः एकादशप्रमाणैः बाह्याश्रितानां गुणानां विवेचनं कृतम्। तेन अयं निश्चयः यदिदं आयुर्वेदीयं वातसंज्ञकं शारीरद्रव्यं संपूर्णगुणैः बाह्यवायुसंज्ञकद्रव्यात् (air) अभिन्नं। तथा तद्गुणयुक्तं अन्यत् शारीरद्रव्यं न उपलभ्यते, यत्सत्वे यत्सत्वं यदभावे यदभावः इति नियमात् बाह्यवायुरेव आभ्यंतरो वायुः इति मतं प्रतिष्ठापितम्।

बाह्यवायुसंज्ञकस्य अस्य द्रव्यस्य शारीरक्रिया-संचालनार्थं कीदृशी आवश्यकता इति विदितमेव सर्वेषां जीवधारिणाम्।

अस्य द्रव्यस्य कानि शारीरकार्याणि इति विवरणात् पूर्वं अस्मिन् वायुसंज्ञके बाह्यवायुद्रव्ये, केषां इतरवायुरुपद्रव्याणां संयोगः वर्तते इति यत् तस्य विश्लेषणेन आधुनिकैः विज्ञातं, तथा तद्घटकैः शरीरस्य कस्मिन् अवयवे किं कार्यं क्रियते इति विषयः विशदीकर्तव्यः।

(४) समीरणस्य विश्लेषणात्मकाःघटकाः।

समीरणद्रव्यं प्रतिक्षणं उच्छ्वासनिःश्वासद्वारा फुप्फुससंज्ञकअवयवद्वयेन देहे संशोष्यते। तच्च द्रव्यं प्राधान्येन वायुस्वरूपद्रव्यत्रयस्य समाहारः।

	आकारेण प्रतिशतम् (by volume)
१. आक्सिजनः वायुः—	२०.९६
२. नाइट्रोजनः वायुः—	७९.००
३. कार्बनडायाक्साइडः—	०.०४
	१००.००

निःश्वासक्रियाद्वारा यद्वायुरूपं द्रव्यं, फुप्फुसाभ्यां, मुखेन नासिकाच्छिद्रद्वयेनवा, शरीराद्बहिः निःसार्यते, तस्मिन्स्तु तस्यैव वायुरूपद्रव्यत्रयस्य प्रमाणं एतादृशम्।

१. आक्सिजनो वायुः —	१६.०३
२. नाइट्रोजनो वायुः —	७९.००
३. कार्बनडायाक्साइडः —	४.४०
अन्येसूक्ष्मांशाः वायवः—	०.५७
	१००.००

इत्थं शरीरे आक्सिजनो वायुः संशोष्यते। कार्बनडायाक्साइडश्च शरीराद्बहिः क्षिप्यते। जीवधारिणः जीवनक्रिया आक्सिजनसंज्ञकवाय्वावलम्बिनी। एषः बाह्यवायोः घटकः एव श्वसोच्छ्वास क्रियायां उपयुज्यते। तस्य प्रधानं कार्यं फुप्फुसयोः आक्सिजनस्य कार्बनडायाक्साइडवायौ परिवर्तनं एव। तथापि एवं संशोषितः आक्सिजनः संशोषणक्रियानंतरं अवशिष्टः (०.५३) रक्तसंवहनक्रियायां शरीरे संचरन् शरीरप्रचारात् मलिनीभूतं रक्तं संपूर्णशरीरावयवेषु शोधयति अस्यां शुद्धिक्रियायां पुनरस्यैव कार्बनडायाक्साइडवायोः निर्माणम् शरीरस्य सूक्ष्मानुसुक्ष्मावयवेषु। एवं देहस्य सूक्ष्मानुसूक्ष्मपरमाणौ आक्सिजनसंशोषणं कार्बनडायाक्साइडनिर्माणं इति क्रियाद्वयम् अविरतं संचाल्यते।

(५) अस्मिन्विषये 'वालर कृत' प्रयोगाः।

एवं देहस्थ सूक्ष्मातिसूक्ष्मांशोत्पन्नस्य कार्बनडायाक्साइडवायोः शारीरधमनीचक्रावयव (nervous System) समुदायस्य शाखाप्रशाखासु यत् विशिष्टपरिणामरूपं कार्यं भवति, तत्संबंधिनः प्रयोगाः 'वालर' नामक संशोधकेन कृताः, हेलिवर्टनलिखित शारीरक्रियाशास्त्रे (Halliburton's Physiology 4th edition 1902 Pages 187,188) उल्लिखिताः।

मंडूकसक्थ्न: दीर्घतमधमन्या अन्तौ, आदौ, तान्तौ पश्चात् काचनलिकाया: अंतयो: प्रतिबद्धौ मुद्रितौच (Sealed), वायुनिष्कासनयंत्रेण वायु: निष्कासित:। कोऽप्यन्यो वायु: तस्यां प्रवेष्टुं शक्यो भवेदिति व्यवस्था क्रियते। प्रयोगं कुर्वता नरेण आदौ विद्युत् संचार्यंते धमन्याम्। पश्चात् कार्बनडायाक्साइड वायु: प्रवेश्यते काचनलिकायाम्। यावत् विशिष्टप्रमाणक: कार्बनडायाक्साइडवायु: नलिकायां वर्तते तावत् सा धमनी उत्तेजिता दृश्यते। वायो: प्रमाणस्य क्रमेण वर्धनेन, तस्या: उत्तेजना क्रमेण क्षीणा भवति अंते तु नश्यत्येव। वायुनिष्कासनयंत्रेण वायुप्रमाणस्य क्षीणकरणेन पुनरपि सा उत्तेजना क्रमश: दृश्यते वर्धते च। प्रमाणस्यातिशयं क्षीणं करणेन पुनश्च सा उत्तेजना क्रमश: क्षीणा अंते नष्टा दृश्यते।

एवमनुमीयते यद्विशिष्टप्रमाणकस्य कार्बनडायाक्साइडवायोरावरणे एव धमनी कार्यक्षमा भवति न तु तदूनाधिके।

यया आक्सिजनो वायु: शरीरस्य श्वासोच्छ्वासक्रियां यथावत् संचालितुं क्षम:, तथैव कार्बनडायाक्साइडो वायु: देहस्य धमनी-चक्रसंचालने आवश्यक:। अतएव यानि शारीरकार्याणि देहे वायुना संचाल्यन्ते इति आयुर्वेदे वर्णितं तानि सर्वाणि धमनीचक्रद्वारा एव क्रियन्ते इति तु आधुनिकशास्त्रज्ञा: प्रतिपादेयन्ति। यथा सर्प: देवदत्त-हस्तस्थितेन दंडेन ताडितोऽपि देवदत्तेन मारित: इति परंपरया कथ्यते, एवमेव धमनीचक्रसंज्ञकेन शारीरावयवेन कृता: सर्वा: शारीरक्रिया:, येन वायुद्रव्येण तद्धमनीचक्रं प्रेरितं तेनैव क्रियंते इति प्राचीनाचार्या:।

आयुर्वेदे वातसंज्ञा वाह्यवायुकृते एव योजिता इति तु निर्दिष्टपूर्वम्। तस्य वायो: एक: घटक: आक्सिजनसंज्ञक: श्वासोच्छ्वासक्रियाद्वारेण शरीरोपकारक:। अपर:कार्बनडायाक्साइडसंज्ञक: शारीरधमनीनां उद्योजक:। तृतीय: नाइट्रोजनसंज्ञक: येन प्रमाणेन देहे प्रविशति तेनैव बहिर्निर्याति एवं अकिंचित्कर: शारीरक्रियासु।

(६) प्रयोगानां फलम्

आह हेलिबर्टन:।

"He (Waller) finds that the effect of Carbonic acid gas in large doses is to cause a diminution and finally the disappearance of the activity of the nerves. When the gas is replaced by air, the nerve recovers. Small doses of Carbonic acid gas increase the action currents, and Waller considers—that the progressive increase noted in the action currents of a nerve as a result of repeated stimulation is due to the evolution of this gas during activity."

(७) वायो: कर्माणि।

सर्वाणि धमनीचक्रकृतकार्याणि शरीरे वातकर्माणीति आयुर्वेदे वर्णितानि इति तु प्रतिपादितमेव।

तानि कर्मण्यत्र सौकर्यार्थं वर्ण्यन्ते।

उत्साहोच्छ्वासनि:श्वासचेष्टावेगप्रवर्तनै:।
सम्यग्गत्याच धातूनामक्षाणां पाटवेन च॥
अनुगृण्हात्यविकृत: (वायु:)।

अ० हृ० सू० ११-३

उत्साहोच्छ्वासनि:श्वासचेष्टा धातुगति:समा।
समो मोक्षो गतिमतां वायो: कर्माऽविकारजम्॥

च० सू० १८-४९

यानि तु वायो:......शरीरचरस्य शरीरेषु चरत: कर्माणि...भवन्ति तेषां अवयवान्···प्रवक्ष्याम:।

वायुस्तंत्रयंत्रधर: प्राणोदानसमानव्यानापानात्मा, प्रवर्तक: चेष्टानामुच्चावचानां, नियंता प्रणेता च मनस:, सर्वेन्द्रियाणामुद्योजक:, सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा, सर्वशरीरधातुव्यूहकर: संधानकर: शरीरस्य प्रवर्तको वाच:, प्रकृति: स्पर्शशब्दयो:, श्रोत्रस्पर्शनयोर्मूलम्, हर्षोत्साहयोर्योनि:, समीरणोऽग्ने:, संशोषणो दोषाणाम्, क्षेप्ता बहिर्मलानाम्, स्थूलाणुस्रोतसां भेत्ता, कर्ता गर्भाकृतीनाम्, आयुषोनुवृत्तिप्रत्ययभूत: भवत्यकुपित: ।

च० सू० १२-८

उपरिनिर्दिष्टानि सर्वाणि कार्याणि मस्तिष्कानुमस्तिष्कसुषुम्नाकांडज्ञानकर्मवहधमनीभि:, (Sensory and motor nerves of the Cerebro-Spinal System & Sympathetic nervous System) क्रियन्ते । तानि तु शरीरे विद्यमानाया: प्रधानप्रणाल्या: (Master System) कार्याणि इति तु विदितमेव आधुनिकानाम् ।

यस्य शारीरद्रव्यस्य प्रभावेन अस्या: प्रणाल्या: सर्वाणि कार्याणि संचाल्यन्ते तस्य विवरणं अलंकारिकभाषायां चरके इत्थम्—

स हि भगवान् प्रभवश्चाव्ययश्च, भूतानां भावाभावकर:, सुखासुखयो: विधाता, धाता, मृत्यु:, यम:, नियन्ता, प्रजापति:, अदिति:, विश्वकर्मा, विश्वरूप:, सर्वग:, वायुरेव भगवानिति ।

च० सू० १२-९

आह चक्रदत्त: सूत्रस्यास्य टीकायाम्—

'वायुरिह देवतारूपो अभिप्रेत: । तेन तस्य भूतरूपचतुर्युगान्तकरणं अविरुद्धम् । एवं यदन्यदपि अनुपपद्यमानं वायो: तदपि देवतारूपत्वेन एव समाधेयम् ।

विलक्षणशक्तियुक्तं वायुद्रव्यं भगवानादिषड्गुणैश्वर्यसम्पन्नस्य द्रव्यस्य विशेषणै: निबोधितमिति तु युक्तमेव । सर्वे जीवधारिण: तस्यावलम्बिन: । निर्दिष्टानि सर्वाणि लक्षणानि वाह्यवायुविषये प्रतीतानि भवन्ति । सर्वाणि विशेषणानि तस्य द्रव्यस्य शरीरे नितान्तावश्यकताद्योतकानि शारीरकार्यनिर्वाहणाय । भवतु तावत् ।

एकमेव द्रव्यं वायुरिति साधितं द्वितीयप्रकरणे । विभिन्नशारीरावयवेषु कार्यं कुर्वत: तत्तदवयवविशिष्टरूपयंत्रस्य निर्माणकौशल्यात् तस्य एकस्यैव द्रव्यस्य नामस्थानकर्माणि विभिन्नानि भवंतीत्युक्तपूर्वम् । न तावत् द्रव्यभिन्नताकारणम् ।

पित्ताकफयोरपि वातद्रव्यवत् गुणकर्मविवरणं अवश्यं कर्तव्यं भवेत् । विस्तारभयात् अत्रतु न क्रियते । वैद्यसम्मेलनपत्रिकायां क्रमश: कार्यमिति विचार: ।

समाप्तं तृतीयं प्रकरणम्

प्रकरणं चतुर्थम्

महास्रोतसि उत्पद्यमानानाम् बोधककफक्लेदककफपाचकपित्तापानवायुसंज्ञकानां शारीरद्रव्याणां स्थानगुणकर्मपुर:सरं विवरणं, प्राधान्येन प्रथमप्रकरणे अनुषंगेन तु द्वितीयतृतीययोरपि कृतम् ।

(१) शुक्रांता अन्नपरिणमनक्रिया ।

अन्नपरिणमनक्रियायास्तु आहारादन्नरसपरिणमनांत: उपक्रमो वर्णित: । तत्रैव तद्विषयकं समीकरणं अपि उद्धृतम् तदेतत् ।

(पृ० १५)

आहार: + पाचकपित्तम् = अन्नरस: +
शकृन्मूत्रे वायुश्च (३) (२) (४)

पाचकपित्तसंज्ञके पांचभौतिकद्रव्ये, पंचमहाभूताग्नीनां सप्तधात्वग्नीनां च अंतर्भाव: । एतेद्वादशाग्नय: एवं वर्णिता:—

भौमाप्याग्नेयवायव्याः पंचोष्माणः सनाभसाः ।
पंचाहारगुणान्स्वान्स्वान्पार्थिवादीन्पचंतिहि ॥
च० चि० १५-१३

सप्तभिर्देहधातारो धावतो द्विविधं पुनः ।
यथास्वमग्निभिः पाकं यांति किट्टप्रसादवत् ॥
च० चि० १५-१५

पाचकपित्तं पांचभौतिकं द्रव्यं व्यक्तस्वरूपं महास्रोतसि द्रष्टुं शक्यते। किंतु तस्यैते द्वादशांशास्तु सूक्ष्मत्वात् पृथग्दर्शयितुमशक्याः अनुमानग्राह्याश्च । संस्कारास्तु तेषां रासायनिकक्रियाभिस्तथैवानुमीयंते यथा प्रत्यक्षग्राह्यस्य समुदायात्मकस्य पाचकपित्तस्य ।

अन्नपरिणामनक्रियायाः शुक्रांतायाः दिग्दर्शनं समीकरणैः इत्थं क्रियते—

(१) अन्नरसः + रसाग्निः = रसधातुः + (अवलंबकः) कफः (६)
(२) रसधातुः + रक्ताग्निः = रक्तधातुः + (रंजकं) पित्तम् (५)
(३) रक्तधातुः + मांसाग्नि = मांसधातुः + खमलः (७)
(४) मांसधातुः + मेदोग्निः = मेदोधातु + स्वेद (१)
(५) मेदोधातुः + अस्थ्यग्निः = अस्थिधातु + केशनखलोमानि (८)
(६) अस्थिधातुः + मज्जाग्निः = मज्जधातुः + अक्षिविटत्वचाम् स्नेहः
(७) मज्जधातुः + शुक्राग्निः = शुक्रधातुः + ओजः

आहारस्यपरिणामनक्रियायां उत्पद्यमानानां मलानां निदर्शकानि सूत्राणीमानि ।

किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं, रसस्यच कफो, ऽसृजः ।
पित्तं, मांसस्य खमलाः मलः स्वेदस्तु मेदसः ॥
स्यात्किट्टं केशलोमास्थ्नोमज्ज्ञः स्नेहोऽक्षिविट्त्वचाम् ।

अथवा च. चि. १५-१८, १९

कफः पित्तं मलः खेषु प्रस्वेदो नखरोम च ।
स्नेहोऽक्षिविट्त्वचामोजो धातूनां क्रमशोमलाः ॥
अ. हृ. शा. ३-६३

अन्नपरिणामनक्रियायाः विवरणं चरके—

"···धातवो हि धात्वाहाराः प्रकृतिमनुवर्तन्ते । तत्राहारप्रसादाख्योरसः किट्टं च मलाख्यमभिनिर्वर्तते । किट्टात् (१) स्वेद (२) मूत्र (३) पुरीष (४) वात (५) पित्त (६) श्लेष्माणः (७) कर्णाक्षिनासिकास्यलोमकूपप्रजननमलाः (८) केशश्मश्रुलोमनखादयश्चावयवाः पुष्यंति । पुष्यंति ह्याहाररसात् रसरुधिरमांसमेदोस्थिमज्जशुक्रौजांसि·····अवयवाः । ते सर्वेएवधातवो मलाख्याः प्रसादाख्याश्च रसमलाभ्यां पुष्यंतः स्वमानमनुवर्तयंते यथावयवः शरीरम् । ···निमित्ततस्तु क्षीणवृद्धानां प्रसादाख्यानां धातूनां वृद्धिक्षयाभ्यामाहारमूलाभ्यां रसः साम्यमुत्पादयति आरोग्याय किट्टं च मलानामेवमेव··।"

अत्रांकैर्निर्दिष्टा मलाः समीकरणेष्वपि तैरेवांकैर्निर्दिष्टाः द्रष्टव्याः ।

क्षीणानां धातूनां वृद्धिः आहारमूलेन प्रसादधातुना भवति इति प्रथमप्रकरणे पाचकपित्तविवरणे (४) संज्ञके विभागे दृष्टव्यम् ।

एवं संक्षेपेण अन्नपरिणामनक्रिया रंजकपित्तस्यअवलंबककफस्याप्युत्पत्तिर्निदर्शिता ।

अवशिष्टानां नवसंख्याकवातपित्तश्लेष्मप्रकाराणां विवरणं न क्रियते विस्तारभयात् । तानि द्रव्याणि ग्रंथनिर्दिष्टतत्तत्स्थानेषु उत्पद्यन्ते इत्यवधेयम् । वैद्यसम्मेलन पत्रिकायां तद्विषयको लेखः दीयतेऽग्रिमवर्षे ।

अधुना शिक्षासंबंधिना कतिपयविषयाणां संक्षेपेण समालोचनं क्रियते ।

(२) शिक्षणं शुद्धं मिश्रं वा ।

यत्प्रकारकं मिश्रशिक्षणं सर्वप्रांतेषु अद्य दीयते तत्तु निश्चयेन आयुर्वेदस्य समूलोच्चाटनाय एव भविष्यतीति ज्ञातं बहुभिः प्रांतप्रधानमंत्रिभिः राज्यपालैः सर्वश्रेष्ठाधिकारिभिश्च । अतएव बंबइप्रांते शुद्धायुर्वेदीयः पाठ्यक्रमः स्वीकृतः स एवानुकरणीयः अस्मद्विद्यापीठेन आवश्यकपरिवर्तनयुक्तः ।

(३) विषयप्रधानग्रंथानां निर्माणम ।

विषयप्रधानाः ग्रंथाः अवश्यं लेखनीयाः । तेषु तु ग्रंथचतुष्टये विद्यमानानि तत्तद्विषयकानि सर्वाणि आधारवाक्यानि आदौ संकलनीयानि । ग्रंथास्तु सरलसंस्कृतभाषायामेव लेखनीयाः । पुनरुक्तिदोषापहरणाय नवीनानि वाक्यानि प्राचीनाधाराधिष्ठितानि रचयितव्यानि । आधुनिकशास्त्राणां यत्र उल्लेखाः आवश्यकाः ते प्रतिपृष्ठं रेखाधः देयाः गीर्वाणवाण्यामेव । एतत्कार्यं विद्यापीठेन झटित्येवांगीकार्यम् ।

(४) शारीरसंज्ञानिश्चितीकरणम् ।

संज्ञा निर्णयार्थमेका समितिः नियोजिता आसीत् । तया किं कार्यं कृतमिति न ज्ञातमस्माभिः । सुश्रुतशारीराध्यापने शिक्षकाः समर्थाः भवेयुः इति एक एव उद्देशः संज्ञानिर्णये साधनीयः । निर्णयार्थमेकः नियमः अंगीकर्तव्यः । ग्रंथचतुष्टये शब्दस्य तस्य योजना यत्र यत्र कृता तानि सर्वाणि वाक्यानि संकलय्य, तथा सुश्रुतेन सिरावर्णविभक्तिशारीरं धमनींव्याकरणशारीरमित्याद्यध्यायाः लिखिताः, तेषु योजना कस्मिन्नर्थेकृता इति विचार्य, अल्पपरिवर्तनावश्यकता यथा शब्दयोजनया भवेत्सा एव स्वीकार्या ।

(५) शिक्षणसंस्थानिर्माणम् ।

विद्यापीठस्य प्रधानं कार्यं स्नातकान् परीक्ष्य प्रमाणपत्रदानं इति तु न पर्याप्तम् । तत्तु आनुषंगिकम् । प्रधानं तु शिक्षणसंस्थानिर्माणम् । प्रत्यक्षशिक्षणस्य नितांतावश्यकता अस्मिन्शास्त्रे । सुश्रुतवर्णितं यंत्रशस्त्राणां निर्माणं अवश्यमेव कार्यम् । वैद्यरत्न पं० शिवशर्मामहोदयैः महासम्मेलनाध्यक्षैः तद्विषये प्रयत्नः कृतः । स नितान्ताभिनंदनार्हः । तथैव महासम्मेलनेन पुनः कर्तव्यः । शिक्षण संस्थासु छात्राः कृतयोग्या भविष्यन्ति एतद्विषये प्रयत्नः तदैव साध्यः भवेत् यदा एका सुसज्जिता शिक्षणसंस्था महासम्मेलनेनैव निर्मीयते । एतद्विषये शक्तिसर्वस्वं प्रयोज्यं सर्वैः विद्यापीठसदस्यैः । विद्यापीठमंत्रिणः आयुर्वेदमार्तंडाः रायबहादुराः श्रीदत्तशर्माणः अस्मिन्कार्ये दत्तचित्ताः सर्वैरपि अस्मादृशैः द्रव्येण तथा अन्योपायैराप सहायं कर्तव्याः ।

एतादृशानां अनेकानेकविषयाणां विचारः संमेलनेस्मिन् अवश्यमेव करणीयः । त्रिदोषसंज्ञकानां द्रव्याणां तु निश्चितीकरणं नितांतमावश्यकं छात्राणां आयुर्वेदशास्त्रविषये श्रद्धोत्पादनार्थमिति विचार्य भवत्पदारविंदेषु तद्विषयकविचारधारा समर्पिता ।

सम्मेलनस्योपरितने कार्यनिर्वाहणे श्रीमतामाशीर्वचनमपेक्षमाणः अत्रैव विरामं प्राप्नोमि ।

भिषजां साधुवृत्तानां भद्रभागमशीलिनाम् ।
अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ॥

पूर्ण प्रभावकारी एवं निर्दोष आयुर्वेदिक इन्जेक्शन्स प्राप्त करने के लिये
'वैद्यराज रसायनशाला गाज़ियाबाद यू.पी.' को सदैव याद रखिये !

संगीतेन स्वास्थ्य संलाभः

ले० आयुर्वेदाचार्यः पाण्डुरङ्गशास्त्री देशपाण्डे, पूना

संगीतेन स्वास्थ्यसंलाभो भवितुं शक्यो न वेत्युदियात्केषांचिन्मनसि शंका। संगीतस्य मरोरञ्जनपरत्वात्, संगीतं मनोरञ्जनमिति मान्यमेव। किन्तु किं नाभ मनोरञ्जनम् ?

तत्र रञ्जनं रागे धातुः। तेन रागो रक्तिरासंक्तिर्वा येन संजायते शरीरभावश्च सर्वथा विस्मर्यते तदेव नाम मनोरञ्जनम्। एवंप्रकारकं मनोरञ्जनं संगीतेन भवत्येव। शरीरभावे विस्मृतिं याते, शरीरस्य स्वस्थवृत्तात्मिकाः सर्वाः क्रिया निष्प्रतिबन्धं संचाल्यन्ते। प्रत्येकं महत्त्वपूर्णं कार्यं शरीरभावं विस्मृत्य तन्मना भूत्वैव कुर्यादिति खलु वर्तत एव महतामादेशः। भोजनसमये तन्मना भवेदित्यादिश्यते। तन्मनस्त्वप्राप्त्यर्थमेव किल "इष्टमिष्टै सहाश्नीयादित्या" दिश्यते प्राक्तनीयैरायुर्वेदीयैः। यतो हि मात्रयां पथ्यमप्युपभुक्तमन्नं चिन्तादिभिर्मनस्या पुते सति न सम्यग्जीर्यति। संगीतस्यापि भोजनकाले रञ्जनं शरीरभावविस्मरणं वेत्यर्थमुपयोगो भवतीति सर्वे जानन्ति। विशेषतो विवाहादिमंगलसमारोहेषु संगीतमेतदर्थमेव श्राव्यते। भोजनकालवदन्येष्वपि विविधश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तेषु विधिषु स्वनीद्वारा संगीतश्रवणं विधीयते। तत्र मनस ऐकाग्र्यं साध्नुवीतेत्ययमेव दृश्यते हेतुः। यद्यत्कर्म चिकीर्ष्यते तत्तच्छान्तमनसा वधूवराभ्यां वटुना वा विधीयेतेति हेतोरेव स्वन्यास्तत्र वादनं विधीयते। प्रत्यहं पूजासमयेऽपि बहुषु मन्दिरेषु श्रूयते स्वन्या गायकस्य वा संगीतम्। अस्माभिरपि देवपूजासमये प्रत्यहं किंचिदिव संगीतं विधीयते घण्टावादनरूपेण। "दण्डे धृत्त्वा टणत्कारबहुलं वादयेत्सुधीः" इतीयं संगीतरत्नाकरे घण्टावादनपद्धतिर्वर्ण्यते। "सा सर्वदेवतातज्ज्ञैर्वाद्यते देवतार्चने" इत्येतदपरं तत्कृतं वर्णनमस्माकं मन्त्रेण संयुज्यते। अस्माभिः प्रत्यहं पूजासमये "आगमार्थं तु देवानां गमनार्थं तु रक्षसाम्। कुर्वे घण्टारवं तत्र देवताह्वानलक्षणमित्येतत्पद्यं मन्त्रवदुच्चार्यते। तत्र ग्रामादिदेवतानां साकं शारीर्योऽपि सन्ति देवताः। यथा "चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत" इत्यनेन वैदिकवचनप्रामाण्येन शरीरमार्धवसन्त्यो याः सन्ति देवतास्तासामप्याह्वानं घण्टावादनेन क्रियते। सुश्रुतेनापि शारीरे प्रथमाध्याये उक्तम्, यथा—"—स्वश्चैषां विषयोऽधिभूतं, स्वयमध्यात्मं, अधिदैवतं तु बुद्धेर्ब्रह्मा, अहङ्कारस्येश्वरः, मनसश्चन्द्रमा दिशः श्रोत्रस्य, त्वचो वायुः, सूर्यश्चक्षुषः, रसनस्यापः, पृथिवी घ्राणस्य, वचोऽग्निः, हस्तयोरिन्द्रः पादयोर्विष्णुः, पायोर्मित्रः, प्रजापतिरुपस्थस्येति।"

(सु. शा.')

अर्थात्सर्वं शरीरं समनस्कं देवपूजासंलग्नमेव भवत्वित्येव वर्तते विशेषतो यो हेतुः, तदमर्थमेव संगीतमिति योजना। एवमयं मनोरञ्जनात्मकः संगीतस्योपयोगो भवति व्याख्यातः।

संगीतस्य शरीरे परिणामः

अथैतदनन्तरं मानवशरीरेऽपि सञ्जायमानः संगीतपरिणामो वर्ण्यते । मनोऽपेक्षयाऽपि तस्य शरीरे परिणामो महीयानिति । संगीतस्य शरीरे परिणामस्तावद्द्वेधा भिद्यते सांगीतिकेषु श्रोतृवृन्देषु चेति । सांगीतिकेष्वपि स पुनर्द्वेधा भिद्यते व्यायामरञ्जनभेदात् । तत्र तावदाद्य एवात्र व्याख्यायते, द्वितीयस्य सहजानुमेयत्वात् ।

सांगीतिका नामसंगीतव्यवसायिनो, ये दशद्वादशवर्षपर्यन्तं संगीतं महतापरिश्रमेणाभ्यस्य व्यवसायं यशस्वितया कुर्वन्तीति । तेषु मध्ये गायका, वादका, नर्तकाध्येति प्रकारत्रयं- वर्तते । तत्र नृत्यस्य वाद्यानुगामित्वाद्वाद्यस्य च गीतानुवृत्तित्वाद्गानमेव प्रधानं मन्यन्ते सांगीतिकाः प्राञ्चः । उक्तं च सङ्गीतरत्नाकरे यथा—"नृत्यं वाद्यानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवृत्ति च । अतो गीतं प्रधानत्वादत्रादावुपवर्ण्यते" इति। (सं. र. १।२४) परन्तु नर्तका वादका गायका वा भवन्तु सर्वेषामभ्यासे महान्त एव सञ्जायन्त आयासाः । विशेषतश्च वादकानाम् । नर्तकानामप्येवमेव । दृश्यन्तां नर्तकीनां पिण्डिकाः प्रगण्डाश्च । कियत्सुश्लिष्टा ते दृश्यन्ते इति । "विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते" इत्येतद्यदुक्तमायुर्वेदे तत्साध्वेव प्रतीयते नर्तकनर्तकीनां गात्राण्यवलोक्य ऐभ्यंगाराभिधानाः केचन प्रथितचरा नर्तका आसन्मद्रप्रान्ते । इदानीं कुत्रैते महाभागाः सन्तीति न ज्ञायते ! तैः साकं वार्ताहरेण संभाषां कृत्वा कथं नर्तका नर्तक्यश्च नर्तनेन व्यायामस्य संपूर्णं फलमवाप्नुवन्तीत्येतद्ववर्णनमारोग्यमन्दिराख्ये मासिकपत्रे सुविस्तृतमेकदा समायातमासीत् ।

अपि च गानेन विविधरूपो व्यायामः सञ्जायते इति तु महत्त्वपूर्णो विषयो मद्विषयसंवद्धः । गानेन हस्तयोः पादयोश्च व्यायामो न्यूनाधिकतया न भवेदिति न । किन्तु गानसमये हस्तपादविक्षेपणेन यः किल संजायते स एव । किन्तु ततोऽप्यधिकतरो यः संजायते स शरीरमध्यभागे शिरसि च । विशेषतश्च उरस्युदरे च । गानस्य जीवातुभूतः स्वर एव वर्तते इति किल सर्वैरेव ज्ञायते । स्वरोच्चारणमेतच्छास्त्रीयदृशा कथं करणीयमित्ययं स्वतन्त्र एव वर्तते विवेचन विषयः । सामान्यतश्च यथा भाषणे शब्दाः समुच्चार्यन्ते यथा वा लौकिकानि गीतानि सामान्यैर्गीयन्तेन तथा संगीते स्वरोच्चारणम् । किन्तु तत्रत्यात्स्वरोच्चारणादत्यन्तं भिन्नमेव स्वरोच्चारणं गाने विधीयते इत्युच्यते । 'आत्मा वुद्धया समेत्यार्थान्मनोयुक्ते विवक्षया । मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् । मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं संजनयेत्स्वरम् ॥' इत्यनेन पाणिनीशिक्षोक्तेन, "नाभिहृत्कण्ठमूर्धास्येष्वाविर्भावयतिध्वनिम्" इत्यनेन वा नारदीयशिक्षोक्तवचनेनकायाग्निस्थानान्नाम पाचकपित्तस्थानादर्थान्नाभितः स्वर उत्पद्यते इति सिध्यति । स च स्वरः समानवायुना प्रेर्यते । सोऽयं वायुरुरसि चरन्मंद्रं ध्वनि संजनयति । संगीते मन्द्रमध्यताराणीति स्वराणां स्थानत्रयं वर्तन्ते । अमरकोषेऽप्युक्तं "नृणामुरसि मध्यस्थो द्वाविंशविधो ध्वनिः । स मन्द्रः कण्ठमध्यस्थस्तारः शिरसि गीयते" इति ।

तत्र मन्द्रस्थानस्थाः स्वरा उरसि समुत्पद्यन्त इत्युक्तमेवेदानीम् । मध्यस्थानीयाः कण्ठादाविर्भवन्ति तारस्थानीयाश्च शिरसः समुत्पद्यन्ते । इत्येवं त्रयाणामेतेषां स्थानानामर्थान्नाभितः शिरःपर्यन्तं सर्वेषामन्तर्गतानामवयवानां बाढं व्यायामो भवति स्वराभ्यासेन । नाभिस्थानां स्वराणां समुच्चारण-

पद्धतिः कथं सामान्यानां जनानां स्वरोच्चारणपद्धतेर्भिन्ना वर्तते तथा च कथं बलवान्व्यायामः संजायते इति तु निपुणं सुधीभिर्विभावनीयम् । 'मद्दर्शितापद्धतिरपि सर्वेषु गानसम्प्रदायेषु न प्रचलति । किन्तु यत्र सा न वर्तते तत्र स्वराणां कर्कशो दुर्बलो वाऽविर्भाव इत्यतो न तद्गानं रंजकं भवितुमर्हति । तौम्बुरवाद्येऽपि स स्वरो न सम्पूर्णतया संमील्यते । गायकस्य व्यवसायात्मके कालेऽपि मन्द्रस्वराणामभ्यासः प्रत्यहं न्यूनतो न्यूनं घटिकाद्वयपर्यन्तं विधीयिते एव मन्द्रस्य स्वरसाधनायाः प्रधानाधारकत्वात् । का कथा तर्हि विद्यार्थिनाम् ? तैस्तावत्ततः परमालापानां सहस्राधिकानांच तानानां नित्यं घटनमावश्यकं भवति । नाभिस्थात्स्वरोच्चारणात्प्राणवायोरपि निधानं भवति । यथोक्तं शार्ङ्गधरेण, "नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्टवा हृत्कमलान्तरम् कण्ठाद्बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम् । पीत्वा चाम्बरपीयूषं पुनरायाति वेगतः ॥" इत्येतद्वर्णनं न्यूनाधिकं प्राणायामेन संवदति । एवं गानाभ्यासेन प्राणायामप्रचुरो व्यायामो जायते । प्राणायामप्रचुरो व्यायामस्तु सर्वासां व्यायामपद्धतीनां श्रेष्ठतमो, विशेषतश्च तस्य निरामयत्वदीर्घायुष्टवयोः संलभात् । दिवंगताः बालकृष्णब्रुवाः, वझेब्रुवाः, फैयाझाख्याः सभ्याः अल्लादियाख्याः सभ्याः, अब्दुलकरीमाख्याः सभ्याः इत्येतेषां निरामयं दीर्घायुर्गानाभ्यासमूलमेव ।

इदानीमवशिष्यतेऽन्तिमो विषयांशः । स एव खलु मन्मत्याऽतीव महत्वपूर्णः । संगीतेन स्वास्थ्यसंलाभस्य त्रयोंऽशा मया विहिताः । तत्र व्यायामात्मकोंऽशो गायकानां शरीरोपर्येव । श्रोतृणामुपरि तु तद्वर्ज्यं मनः शरीरयोर्द्वयोर्भवति । तत्र मानसिकः परिणामो मया प्रागेव विवेचितः । अथ श्रोतृणां शरीरोपर्यपि संगीतस्य परिणामो भवतीतीदानीं मदीयं विद्यते प्रतिपादनीयम् । तद्विना हि स्वास्थ्यसाधनानामसंपूर्णांगत्वामिति । मया तावत्तदर्थमेवायं विषयांश उपन्यस्यते । मदीया बुद्धिर्यावत्प्रचलति तावत्स निश्चयं प्रतिपिपादयिषे यत्संगीतस्य शरीरोपर्यपि परिणामो भवतीति ।

संगीतं स्वरमूलमिति नावश्यकमिदानीं पुनः प्रतिपादयितुम् । स्वरस्तावद्ध्वन्यात्मकः । ध्वनिस्तु शब्दपर्यायः । यथोक्तममरकोषे, शब्दे निनादनिनदध्वनिध्वानरवस्वनाः' इति । नैय्यायिकैस्तावच्छब्दध्वन्योः किंचित्पार्थक्यं कल्प्यते । यथोक्तं तर्कसंग्रहे, 'श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः । स द्विविधो ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्चेति । तत्र ध्वन्यात्मको भेर्याद्यै । वर्णात्मकः संस्कृतभाषादिरूपः' इति । अस्माभिस्तावच्छब्दध्वनिवर्णस्वराणां तत्वदृशा पर्यायत्वमेव मन्यते । सुवर्णाद्यथाऽलंकारास्तथा स्वरेभ्यः शब्दा ग्रथनसंस्कारेण निर्मीयन्ते । तथा चालंकाराणां यथाऽग्निना सुवर्णं, एवं शब्दानां पृथक्करेण स्वेरषु विलीनत्वमिति ।

ननु शब्दस्य शरीरोपरि परिणामः कथं भवितुं शक्यते । "श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्द"इति नैय्यायिकोक्तत्वात् । एवं शरीरोपरि शब्दस्य परिणामविषये केचन सन्धेक्ष्यन्ति, श्रोत्रस्य श्रवणेन्द्रियमात्रत्वात् । तत्रेदमुच्यते । त्वगभ्यन्तरे शब्दग्राहीणि सन्त्यसंख्यातानीन्द्रियाणि । यथोक्तं वाग्भटेन 'तत्र खात्खानि देहेऽस्मिन्श्छ्रोत्रं शब्दो विविक्तता' इति । एतच्चेदनुमन्यते शब्दग्रहणस्य श्रोत्रमात्रत्वे सत्यपि, एतानि त्वग्रन्ध्राण्यपि सर्वाणि श्रोत्राणीति कल्पना समुदियात् । शब्दस्तु नैय्यायिकैः

श्रोत्रमात्रग्राह्येऽप्याकाशगुणात्मक एवाभिवर्ण्यते । यथोक्तं तर्कसंग्रहे, "शब्दगुणकमाकाशमिति" । खानीमानि शारीरस्त्रोतांसि खान्नाम आकाशात्संजातानीतीदानीमेवोद्धृ ताद्वाग्भटवचनात्सर्वेषां ज्ञातचरं भवेत् । यथोक्तं बृहदारण्यकीये 'तस्माद्वा एतस्माद्वाऽऽत्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः' इति । अर्थादाकाशात्मकस्य शब्दस्य वायुः सहोदरसम्बन्धत्वेन मन्तव्यः । आकाशाद्धि यथा वायुस्तथा शब्दोऽपि । आकाशाद्द्रव्यरूपाच्छब्दश्चेद्गुणो, वायुर्द्रव्यमेव सञ्जायते । आकाशे पृथक्कृते वायुः शब्दश्चेति द्वेधा संभिद्येत । अर्थाद्यत्र वायुस्तत्र साहचर्यसम्बन्धाच्छब्दो, यत्र शब्दस्तत्रापि वायुरित्यनुमन्तव्यम् । अतः शब्दे समुत्पन्ने वायुरर्थादेवोत्पद्यते । शरीरेऽपि यदा यदा शब्दः प्रविशेत्तदा तदा वायुरपीत्येवं स्थितिः ।

वायोः कार्यं क्रियैवेत्यायुर्वेदीयाः । उक्तं च चरकेण यथा, "सर्वा हि चेष्टा वातेन स प्राणः प्राणिनां मत" इति । तेन यथा यथा वायुः शरीरमाक्रामति तथा तथा शरीरं चेष्टामयं प्राणयुक्तं च भवतीति सिद्ध्यति । नैय्यायिकैस्तु चलनात्मकं कर्म इति यदुच्यते तत्रापि कर्मणः पृष्ठे वायुरेव वर्तते, यद्यपि तैः स्पर्शवान्वायुरित्यादिश्यते । यः खलु नैय्यायिकानां स्पर्शः, सा आयुर्वेदीयानां गतिरेव, वायोर्गत्यात्मकत्वात् । उक्तं च चरकेण, यथा, 'रौक्ष्यं लाघवं शैत्यं वैशद्यं गतिरमूर्तत्त्वं चेति वायोरात्मरूपाणीति ।' गत्यैव वायोः कार्मुकत्वम् । अतो यत्र यत्र स्पर्शक्त्वं तत्र तत्र कर्मवत्वमेवावगन्तव्यम् । अपां शीतस्पर्शवत्वं तेजसश्चोष्णस्पर्शवत्वं नाभ शीतक्रिया उष्णक्रिया चेति । अर्थात्सा वायोः स्पर्शगुणवत्वादेव । न हि वायुना बिना काचित्क्रिया भवितुमर्हतीति ।

कफपित्तौ अप्तेजोमयौ । उक्तं च वृद्धवाग्भटेन, यथा 'वायोरात्मैवात्मा, आग्नेयं पित्तमम्भः पृथिवीभ्यां श्लेष्मेति ।' अतः खलु कफपित्तयोः क्रियावत्वं वाय्वाध्वनिमेव । शाङ्गंधरेणापि:—'पित्तं पङ्गुः कफः पङ्गुः पङ्गवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत्" इत्याख्यातम् । शारीराः क्रियाकरा दोषा वायुः पित्तं कफश्चेति । त्रिष्वप्येतेषु दोषेषु क्रियाकर्तृत्वेन वायुरेव प्रधानो भवति । अतः कफपित्तयोर्विक्रियायामपि यत्कफनाशनं पित्तनाशनमौषधमुपयुज्यते, तत्रापि वायुगुणस्यार्थाद्गत्याख्यगुणस्य वीर्यवत्ताया वा भवत्यावश्यकता ।

अथ संगीतं शब्दात्मकमिति प्रागेवास्माभिः प्रदर्शितम् । नन्वितरेऽपि नैकविधाः शब्दाः श्रूयन्ते वातावरणे । तेषु सत्सु संगीतस्यैव किमर्थं विवेचनं त्वया विधीयत इति चेदुच्यते । न हि संगीतं केवलं रूक्षः शब्दः । तत्रत्यः शब्दः खलु स्वरः । सोऽपि स्वरः प्राग्विवेचितवत्स्निग्धो रञ्जकश्च । स्निग्धत्वाद्रञ्जकत्वाच्च, शरीरे रूक्षगुणमयस्यापि वायोर्न मर्यादातिक्रमेणाभवृद्धिः किन्तु यावत्सुसह्यं भवति तावदेव । नेयं परिस्थितिराकृष्टादिशब्दानाम् । यतो तैः समुत्पन्नो वायुः स्वररूक्षाधिकगुणयुक्तत्वात्प्रमाणाधिकं वायुमुत्पाद्य शरीरे वातरोगानेव सञ्जनयेत् । संगीतेन च तेषां विनाशोऽपि भवितुं शक्यते । तदाश्रित्याग्रे विवेचयिष्यते । एवममुं विशेषमनुलक्ष्य लक्ष्यीकरणीयं संगीतप्रयोजनम् ।

अथ संगीतं रागमयमिति प्रागेवोक्तम् । ते च रागाः सामायिका रसात्मकाश्च । तेषु तेषु च समयेषु ते ते एवं रागा रञ्जका

भवन्ति। 'यथाकाले समारब्धं गानं भवति रञ्जक' मित्युक्तमेव संगीतिकैःप्राक्तनैः। तत्र प्रथमप्रहरमारभ्यान्तिमाष्टमप्रहरपर्यन्तं प्रतिप्रहरं गेयमानाः द्विशताधिका रागा इदानींतने काले प्रचलन्ति। संगीतरत्नाकरकर्मा शाङ्र्गदेवेन तावच्चतुष्टयाधिकाः शतद्वयसंख्याकाः रागाः कथ्यन्ते। यथोक्तं तेन 'रागाणां च शतद्वयम्। चतुःषष्टमधिकं ब्रूते शाङ्र्गी श्रीकरणाग्रणीः॥' इति। प्रत्येकं समये गेयमानानां रागाणां ते ते रसा अपि सन्ति। यथा दिनस्य प्रथमे प्रहरे गेयमानाः शान्ताः, द्वितीये करुणापराः, तृतीये वीरंभयाश्चतुर्थे च शृङ्गारिका इति। एवमेव रात्रौ।

मया ताद्वैयकेन संवादं चिकीर्षता किंचिन्मात्रमस्मिन्परिवर्तनं विधीयते। यथा प्रतिप्रहरस्थाने प्रातःकालीना माध्याह्निका आपराह्निकाश्चेति दिने रात्रौ च पूर्वरात्रीया अर्धरात्रीया प्रत्यूषस्याश्चेति। तथा च प्रातःकालीनानां शान्तत्वं, माध्याह्निकानां वीरत्वं, आपराह्निकानां शृङ्गारिकत्वं, रात्रौ तु पूर्वरात्रीयाणां रागाणां शृङ्गारिकत्वं, अर्धरात्रीयाणां वीरत्वं, प्रत्यूषस्यानां च करुणत्वमिति। एतत्तु परिवर्तनं न केवलं चिकित्साविषयमनुलक्ष्य, किन्तु सृष्टिस्वभावं विभाव्यापि। कथमिति चेत्पश्यन्तु पाठकमहाभागाः। शान्ता आल्हादकाः, अर्थाच्छीताः। वीररसात्मका उत्तेजका, अर्थादुष्णाः। शृंगारिकाश्च प्रेमभावोत्पादका अर्थाद्गत्यात्मकाः। एवमेव रात्रौ पूर्वमध्यरात्रयोः परिवर्तनं प्रचारं दृष्ट्वा यथा बाधकं न भविष्यतीति मया विहितम्। अथ यः सृष्टिस्वभाव इत्येवं मया वर्णितः सोऽपि समयानुसारं वायुमानं लक्ष्यीकृत्य वैद्यकाधारेणैव। यथोक्तं सुश्रुतेन—'तत्र पूर्वाह्णे वसन्तस्य लिङ्गं, मध्याह्ने ग्रीष्मस्य, अपराह्णे प्रावृषः, प्रदोषे वार्षिकं, शारदमर्धरात्रे, प्रत्युषसि हेमन्तमुपलक्षयेत्। एवमहोरात्रमपि वर्षमिव दोषोचयप्रकोपप्रशमैर्जानीयात्' इति। (सु. सू. ६१५)

अथायुर्वेदीयैः प्राकृतिकं च निखिलं कार्यं दोषभाषयैव विधीयते। उपरितनं षाड्विध्यमप्यनयैव भाषयातैर्विधीयते। प्रत्येकस्मिन्युक्तिरपि तत्र तत्रैव प्रदर्श्यते। यथा प्रातःकालीना रागाः शीता इत्यतस्ते कफजा, माध्याह्निका उष्णा इति पित्तजाः, आपराह्निकाश्च गत्यात्मका इति वातवर्धनाः। रात्रौ दिवसापेक्षया शीतलाधिक्यमतः पूर्वरात्रीया रागाः कफवातवर्धना, अर्धरात्रीयाः कफपित्तमयाः, प्रत्यूषयाश्च वातकफवर्धना, इति। अथ ये दोषा यद्गुणमयास्ते तत्प्रत्यनीकान्ह्रासयन्तीति सामान्यविशेषन्यायादवगन्तव्यम्। यथोक्तं चरकेण, "सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्। ह्रासहेतुर्विशेषश्च" इति। (च०सू० ७-४३) अतः खलु प्रातःकालीना कफवर्धना रागाः पित्तविकारान्, माध्याह्निकाः पित्तवर्धनाः कफविकारान्, आपराह्निकाश्चवातवर्धना वातपित्तजान्नाशयेयुरिति। एवमेवार्धरात्रीयाः कफपित्तवर्धनाः पित्तविकारान्नाशयेयुः अर्धरात्रीयाः कफपित्तजनका वातविकारान्नाशयेयुः प्रत्यूषस्याश्च कफवातवर्धनाः पुनर्वातपित्तजान्रक्तपित्तजान्वेति। तत्र तावत्कफजा विकाराः कासश्वास-क्षयाग्निमांद्योदराद्याः, पित्तजा ज्वराम्लपित्तातीसारमूर्च्छा-भ्रमदाहादयः. वातजाः कम्पाक्षेपकपक्षघातशूलादयः, कफवातजा आमवातोरुस्तम्भशोथादयो, वातकफजाः कफावृत्तवातजाः सामवातजा वा, वातपित्तजाः सन्धिगतवातधनुर्वातदाहहृद्रोगादयः कफपित्तजा कुष्ठविसर्पमसूरिकाग्रन्थ्यादिका, पित्तरक्तविकृतिजन्याश्च रक्तपित्तोरः

क्षतकाकणकुण्ठादयः । एतेषां विकाराणां कृते ते ते उपरिनिर्दिष्टा रागा गेयाः ।

ननु रोगनाशार्थं प्रातःकालीना रागा मध्याह्ने, माध्याह्निकाश्च प्रातःकाले सायंतनीया वा मध्याह्ने एवं रात्रावपि रागगाने समयपरिवर्तनं करणीयमापद्येत । समयानुसारं च गानं करणीयमित्यादिश्यते सांगीतिकैः उक्तमेव प्राग्यथा "यथाकाले समारब्धं गानं भवति रञ्जकमिति" चेत्तत्रैवं समाधीयते । यथा-धृतदृढसमयसंकेतेऽपि प्राक्तने काले "राजाज्ञया सदा गेया रङ्गभूमौ विशेषतः" इत्यासीत्परिस्थितिः । राजानः कदाऽपि कमपि रागं गायतेत्याज्ञापितवन्त आसन् । गायका स्तावत्समयत्संकेतभङ्गेऽनुत्सुकाः । अतोऽस्यां परिस्थितौ तैरेका युक्तिर्निरमयि । यथा-यदि रात्रीया रागाः प्रातःकाले गायनायाज्ञाप्यन्ते, तदा प्रातःकालीनरागव्यञ्जकस्वरमिश्रणेन ते रागा प्रातःकालीनवदेव परिवर्तनीयाः । एवमेव यदि प्रातःकालीना रात्रौ आज्ञापिता, रात्रिरागवतेऽपि परिवर्त्य गेयाः । अनेनैव पद्धत्या कियन्तो मिश्रा रागाः सञ्जाताः इति 'सुहा सुधराई' इत्येकस्य रागस्य नाम्ना दृश्यते । सुहानामकेन केनापि गायकेन सुधारितोऽयं रागः 'सुधराई' इत्याख्यां लब्धवान् । कानडाभिधो रात्रिगेयो रागः कस्मैचिद्गायकाय प्रातःकाले गीयतामित्याज्ञा कृताऽऽसीत्कदाचित् । तेन तावत्प्रातःकालीनरागवदस्य परिवर्तनं विधाय स रागः प्रातःकालीनो विहितः । एवं यमनीविलावलः भैरवबहारः इत्येते प्रातःकाले, गौडसारंगो मध्याह्ने, ललितागौरी सायंकाले, इत्यादयः । अनया पद्धत्या न चेद्राजाज्ञया, वैद्यादेशेन रागसमयानां परिवर्तनं किमर्थं न विधातुं शक्यते ? रुजापरिहारार्थमतोऽपि परिवर्तनं सत्यावश्यके करणीयमेव अस्माभिस्तु प्रहरार्धप्रहरस्यैवापेक्ष्यते परिवर्तनम् । अर्थादेतदपि स्मर्तव्यम् । अर्धप्रहरात्मकं परिवर्तनं गायकैरिदानींतनेऽपि काले विधीयते । यथा 'तोड़ी' 'असावरी' इत्यादयो रागाः प्रातरेकादशवादनपर्यन्तमपि गीयन्ते, गौडसारंगोऽपराह्णे, भीमपलाशी मुलतानी च पूर्वरात्रे, यमन-भूय-केदार-कामोद-हम्मीर-शुद्धकल्याण-श्यामकल्याणादयो रात्रौ, शंकरा-कानडा-काफी वागीश्वरी इत्यादयोऽर्धरात्रौ, मालव कौशिक-वसन्त बिहार-सोहन्यादयः प्रत्यूषसि, योगी-हिंडोल-बिभासादयश्च प्रातःकाले गेयमानाः श्रूयन्ते, यद्यप्येतेषां रागाणां प्रहरप्रहरार्धात्मकोऽर्वाक्तनीयः सम्प्रदायविहितो वर्तते समयः । परिस्थिति वशाच्छात्रपेक्षयां वा इत्थं समय परिवर्तनं गायका विदधत्येव । अतोऽस्माभिर्यदि रुग्णहितेहेतोरेतावदेव परिवर्तनं विधीयते चेन्नं तदसंमतं स्यात्कलावतामिति बादं विश्वस्यते ।

अथैतेषां रागाणां रोगिणामुपरि प्रयोगा भिषग्भिः । कलावतां साहाय्येनावश्यं विधेयाः । प्राचीनकालीना बहव उल्लेखा 'अतियावेगम' इत्यादिकानां ग्रन्थेषु सन्ति । इदानींतनेऽपि काले केचन गायका 'अमुममुं रोगिणममुकेनामुकेन रागेण स्वास्थ्यं लभ्ययिताऽहमभवमिति' कथिंतवन्तः सन्ति । परन्तु नैतावाद्विद्यते पर्याप्तं प्रमाणं यस्मिञ्शास्त्रीयं जगद्विश्वसेत पाश्चात्यैरेतत्सदृशा प्रयोगा विहिता एव । तदनुसारंच तत्र तत्र रुग्णालयेषु ध्वनिमुद्रिकाद्वारा रुग्णेभ्यः संगीतश्रवणं प्रचलत्यपि । केचिच्च ब्लडप्रेशरित्यादिषु व्याधिषु यशस्वितया विहिताः प्रयोगाः प्रसिद्धा अपि । परन्तु न पाश्चात्यसङ्गीतमस्मदुपकारकम् । अस्माकमेव संगीतं यथा रुग्णेभ्यो वेदनानिर्मोचनसाहाय्यकं न तथा पाश्चात्यानाम् । कदाचिद् दशवर्षाभ्यंतरे काले पाश्चात्यानामेव

संगीतप्रयोगास्तेषामौषधिसिद्धप्रयोगवत् भारतीयरुग्णालयेषु प्रचालयिष्यन्ते अतोऽस्माभिर्भिषग्भिरादावेव जागरूकैर्भवितव्यं, कथञ्चास्मत्सङ्गीतं रुग्णालयेषु प्रचालयिष्येतेतदर्थं प्रयत्ना आधेतव्याः। मया किंचिदिव प्रयोगात्मकोऽभ्यास कृतः, क्रियमाणोपि विद्यते स चाग्रिमे लेखे समर्पयिष्य इत्युक्त्वेदानीमहं जोषं भावं समाश्रये।

जिज्ञासाधिकरणम्

जिज्ञासा ३

तृणराजसमुत्पन्नं यः खादेद् दन्तधावनम्।
नरश्चाण्डालयोनिः स्याद् यावद् गङ्गां न पश्यति॥

एतत्पाठनावसरे एकेन अन्तेंवासिना जिज्ञासितम् खर्जूरादिवृक्षाणां दन्तधावनकरणेन का हानिः को वा रोगः ? इति। मया तु एवं विचारितं यत् वृक्षाणामेतेषां यवनैरेव विशेषेण उपयोगः क्रियते स्म। आक्रमणकाले भावप्रकाशरचनासमये तेषां सर्वथा विरोधः. (वायकाट) उचित आसीत् अतएव तद् दन्तधावनमपि निषिद्धम्। यथा परतन्त्रसमये आंगलदेशादागतानि वस्त्राणि दग्धानि परं नाद्यं दह्यन्ते। खर्जूरदन्तधावनमद्यापि यवनाः कुर्वन्ति। किञ्चिच्छेषं कृत्वा कतिपयदिवसपर्यन्तं एकमेव धावनं क्रियते। अरबदेशेयतो वृक्षाणां नैयून्यमतस्ते भारते इव नवनवं न प्रयोक्तुं शक्नुवन्ति। किञ्च यदि तैर्यदि रोगाशङ्का स्यात् तदा तैरपि रोगनामापि लिखितं स्यात्। तन्निवृत्तिरपि लिखिता स्यात्। प्रायश्चितरूपेण गङ्गास्नानं लिखितमतो ध्वन्यते तस्य सामाजिक बहिष्कार इति।

अन्यच्च चरकादिषु ईदृशानि वचांसि न लभ्यन्ते अनेनापि इदमेव पर्यवस्यति।

सर्वथा बहिष्कारस्य अन्यमुदाहरणमपि विद्यते। यथा-सायङ्काले यवनैः दन्तधावनं क्रियते" अतः आर्यैस्तत्परित्यक्तम् यद्यपि "आपोथिताग्नौ द्वौ कालौ सायं प्रातश्च बुद्धिमान" इति स्पष्टं निर्दिष्टः। यदि अत्र अन्यत् किमपि बीजं स्यात् तर्हि तत्वज्ञैः पत्रिकायां प्रकाश्य अनुग्राह्यः यथा सन्तोषः स्यात्। श्री राजेश्वरदत्तशास्त्रिद्रविडमहोदयद्वारा संग्रहीते स्वस्थवृत्तसमुच्चये।

"पूतिमांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट्।

इति भावप्रकाशोक्तप्रसिद्धश्लोकस्य हिन्दीभाषानुवादे प्रभातकालीनः सूर्य इति 'बालार्क' इत्यस्य अर्थः कृतोऽस्ति। अत्र किं विज्ञानात्मकं बीजम्। यतो हि उषःकालीनसूर्यस्य महिमा बहुशः ऋक्सूक्तेषु पठिता। तत्र सूर्यस्य प्रार्थनायाम् हरिमाणं च नाशय'

इति ऋक्सूक्ते उषःकाले सूर्यसेवनात् कुष्ठरोगनिवृत्तिरपि भवतीति ध्वन्यते। आधुनिकाः प्रतीच्या अपि सूर्यस्नानममोघफलदम् एवं स्तुवन्ति। ततो हानेः कथमाशङ्का विद्वद्भिरत्र स्वमतं लेख्यम्।

अत्र 'बालार्क' इत्यस्य 'कन्यार्क" इति यदि क्रियेत तर्हि समाधानात्मकं भवितुमर्हति। यतो ज्योतिः शास्त्रानुसारेण प्रायशः आश्वयुजि मासे भवति अस्मिन् मासे च विषमज्वर नेत्राभिष्यन्दादिरोगाः प्रादुर्भवन्ति। कन्यार्कः शरदृतौ भवति। शरदृतुश्च रोगबहुल। उक्तञ्च

"वैद्यानां शारदी माता पिता च कुसमाकरः" इति श्लोकार्धेनापि शरदृतु रोगप्रधानः। अवएव च वैद्यानां मातेव हितावहा पालनकर्त्री च। लोकेऽपि आश्वयुजि सूर्यरश्मयः परिहार्या इति श्रूयते। विषमज्वरप्रारम्भे च च सूर्यतापः पूर्वं प्रियो भवति पश्चात् कम्पनमिति दृश्यते। आशासे विज्ञा मर्मज्ञा अत्र प्रकाशं विधास्यन्तीति।

—पद्मनाभ शास्त्री, बीकानेर।

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ

१९५५ वर्षीय परीक्षाफलम्

१—आयुर्वेदाचार्य परीक्षाफलम्—

(क) आयुर्वेदाचार्य परीक्षोत्तीर्णाः—

१३ सुरेन्द्र कुमार गुप्त तृतीय । १७ ज्वाला प्रसाद शर्मा द्वितीय । २१ माखन लाल त्रिपाठी द्वि० ३३ रामकृष्ण शर्मा तृ० । ३५ हरनन्द राय ढ़ंढ़ू द्वि० । ३७ मदन लाल कोठारी द्वि० ६६ रामनारायण शुक्ल द्वि० । ७७ इसुकपल्लि सूब्रह्मण्य शर्मा द्वि० । ७८ गोदावरी चिकटे तृ० । ८० विट्ठल केशव देव तृ० । ८६ गोवर्धनलाल मिश्र द्वि० । ८८ बीरबल शर्मा तृ० । ८९ हनुमान प्रसाद द्वि० । ९० श्री निवासाचार्य द्विवेदी तृ० । ९४ दुर्गा प्रसाद शर्मा द्वि० । ९५ रामलषन मिश्र द्वि० (सर्वप्रथम) ९६ बनवारीलाल गोस्वामी द्वि० (सर्व द्वितीय) १०८ सूर्य प्रसाद पाण्डेय द्वि० । ११३ जगदीशनारायण त्रिपाठी द्वि० । ११७ वासुदेव द्विवेदो तृ० । १३३ वासुदेव व्यास द्वि० । १४० घोडो अन्तरकर द्वि० । १४३ गिरिधर शर्मा शास्त्री तृ० । १५५ मंगतूराम महर्षि तृ० । १५७ चिरंजीलाल सारस्वत द्वि० । १७८ सांवरमल तृ० । १८५ रेवाशंकर जोशी द्वि० । १८६ श्यामसुन्दर शर्मा द्वि० । १९२ शान्तिस्वरूप मिश्र द्वि० । २०७ बिहारी लाल द्वि० २१० गोपाल प्रसाद द्वि० । २११ शंकरलाल शुक्ल द्वि० । २१३ डूंगरमल शर्मा दाधीच द्वि० । २१४ विश्वेश्वर प्रसाद शर्मा द्वि० । २२८ लक्ष्मीदत्त शास्त्री तृ० । २३० मदनलाल प्रसून द्वि० । २३१ राधेश्याम शर्मा तृ० । २३२ हेमचन्द्र भट्ट तृ० । २३३ विश्वम्भरदयालु शर्मा तृ० । २३४ गजानन्द शर्मा द्वि० (सर्व तृतीय) । २४१ वंशीधर शर्मा द्वि० । २४२ रामदत्त शर्मा द्वि० । २५१ विश्रामलाल द्वि० । २५२ रामेश्वरलाल शर्मा तृ० । २५४ शिवनाथ शर्मा द्वि० । २५८ मदनलाल शर्मा द्वि० । २६३ दूधाराम स्वामी तृ० । २७३ राधेश्याम द्विवेदी द्वि० । २७८ श्रीनिवास उपाध्याय तृ० ।

(ख) आयुर्वेदाचार्य प्रथम खण्ड परीक्षोत्तीर्णाः—

२७ पूर्णानन्द व्यास । ३२ देवीलाल महात्मा । ३४ इन्द्रजीत शर्मा । ३९ रामनारायण त्रिपाठी । ७१ गोसुकोण्ड वेंकटराम शर्मा । ७६ नंगिराल सदाशिव शर्मा । ८१ वासुदेव शर्मा । ८३ महेशदत्त शर्मा । ८७ चन्द्र प्रकाश शास्त्री । १०४ विश्वेश्वर दयाल । १०५ मदनमोहन शर्मा । १०६ नारायणदत्त दीक्षित । १०७ विद्याभास्कर अवस्थी । १०९ उमाशंकर जोशी । १११ नाथूराम उपाध्याय । ११२ राजाभाई शर्मा । ११४ बद्रीविशाल शर्मा । ११५ रामग्होरी द्विवेदी । ११६ गोविन्द प्रसाद त्रिवेदी । १२१ शुकदेव प्रसाद । १२२ नरहरि प्रसाद । १२३ रणछोड़ । १२४ रमाकान्त । १२५ सुरेन्द्रनाथ । १२६ चिमनलाल । १२७ हिमतलाल । १२८ अमृतलाल । १२९ गोवर्धन भाई । १३४ रामचन्द्र वोरा । १४६ चिमनलाल शर्मा । १४९ रामनिवास मिश्र । १५२ देवीसहाय शर्मा । १५६ हनुमान शास्त्री । १५९ कुचि-

भोदल वेंकटेश्वर शर्मा । १६२ अमृतलाल । १६४ श्री निवास दत्तात्रेय जलूकर। १६७ तुलसीराम भारद्वाज । १६९ कृष्णदेव शर्मा । १७३ रामकिशोर शर्मा। १७५ चिदानन्द शर्मा । १८० प्रभुदयाल शर्मा । १८३ रामनिवास जोशी । १८४ सनत्कुमार शर्मा। १८९ रामकुमार शर्मा। २१६ शंकरलाल त्रिवेदी । २१७ रामधनदास शर्मा । २१९ गिरिधारीलाल । २२० मोहनलाल । २२२ मणिराम शर्मा । २२४ रामकेदार शर्मा । २२६ द्वारिका प्रसाद शर्मा। २२९ रघुवीर प्रसाद २३९ गोवर्धन शर्मा । २४७ मोतीलाल । २४८ राजेन्द्रकुमार जैन । २४९ धन्य कुमार जैन। २५० हरिश्चन्द्र जैन । २५६ नारायण दत्त शर्मा । २५७ गोपीनाथ शर्मा। २६१ भजनदास स्वामी । २७० राधेश्याम व्यास । २७२ सी० के० दिवाकरन । २७६ विनय कुमार ।

(ग) आयुर्वेदाचार्य परिशिष्ट परीक्षाधिकारिणः—

३ मदनलाल शर्मा काय० । ८ करुणाशंकर काय० । ९ पतंजलि भट्ट द्रव्य० । ३८ हनुमत् प्रसाद द्रव्य० । ४२ भवानी दत्त व्यास काय० । ११० वैष्णव दास द्रव्य० । ११८ रामनारायण द्रव्य० । १४२ सन्तरेणू उदासीन द्रव्य० । १८७ मदनलाल शर्मा काय० । १८८ हनुमान प्रसाद शर्मा काय० । १९७ कन्हैयालाल काय० । २१२ नागरमल शर्मा काय० । २१५ काशीदत्त शर्मा द्रव्य० । २२३ रामनिवास दाधीच द्रव्य० । २३६ ताराचन्द्र चतुर्वेदी द्रव्य० । २३७ पुष्करदत्त जोशी काय० । २४३ रामेश्वर प्रसाद द्रव्य० । २६४ धनीराम स्वामी काय० । २६९ जगदीश शर्मा द्रव्य० ।

विचाराधीनः—

९३ खेमराज शर्मा छांगाणी ।

२–वैद्याचार्य परीक्षाफलम्

(क) वैद्याचार्य परीक्षोत्तीर्णाः—१९ अम्बालाल पण्डया द्वि० (सर्वद्वितीय) । २० हनुमान प्रसाद शाह अग्रवाल द्वि० । २४ मदनलाल पारीक तृ० । २६ उदयलाल महात्मा द्वि० (सर्वप्रथम) । ३५ विष्णुदत्त वर्मा तृ० । ३६ रामचरण शर्मा तृ० । ६८ नीलकण्ठ शर्मा "विमल" तृ० । ७७ सोहनलाल शर्मा वत्स तृ० । ८२ लाभ शंकर द्वि० (सर्वतृतीय) । ८३ शंकर भाई तृ० । ८४ शिवकुमार द्वि० । ८९ साधुराम पाठक शर्मा द्वि० । १०६ मणिशंकर द्वि० । १०७ हिम्मतलाल तृ० ।१२० राधाकृष्ण शर्मा जोशी तृ० ।

(ख) वैद्याचार्य प्रथम खण्ड परीक्षोत्तोर्णाः—८ नत्थीलाल मिश्र। १० बैकुण्ठनाथ खन्ना । १६ नर्मदा प्रसाद दीक्षित । २१ भंवरलाल महात्मा । २२ श्री कान्ता टाली । २३ बालूराम जोशी । २९ ब्रजमोहन जोशी । ३१ मनमोहन जोशी । ३२ कालूराम व्यास । ३७ महेशचन्द्र शर्मा । ३८ ब्रह्मानन्द गुप्त । ३९ रमेशचन्द्र विशनोई । ४८ बालूराम चौऋषिया । ५६ ज्ञानचन्द जैन । ५७ मण्डलदत्त सी० ओझा । ५९ रामप्रसाद जोशी । ६१ गौरी शंकर व्यास । ६२ परशुराम । ६४ राजकुमार मदान। ६६ रघुनन्दन प्रसाद शर्मा । ६९ कृष्णगोपाल । ७० कृष्णलता ओहरी । ७१ सुशील कुमारी गिरधर । ७२ सुरेन्द्र खन्ना । ७३ वेदप्रकाश शर्मा । ७६ देवराज शर्मा । ७९ कुमारी सन्तोष चावला । ८० जुगल किशोर

शर्मा । ८५ रामचन्द्र नागदा । ८६ सत्यप्रकाश द्विवेदी। ९३ डी० ए० अनन्ताचार । ९४ शैलकुमारी । ९५ गिरधर शर्मा । ९८ भट्ट चन्द्रधर व्यास । १०२ रामदुलारे शर्मा । १०३ चन्द्रभानु शर्मा । १०४ विष्णुप्रसाद दवे । १०५ विठ्ठल भाई । १०८ रुक्षमणि देवी । १११ चूड़ामणि वर्मा । ११२ तेजनाथ खिचरिया । ११३ अनुसूया प्रसाद शुक्ल । ११७ रामगोपाल शर्मा । ११८ गणपतिलाल पारीक । १२१ दुर्गादेवी मिश्रा । १२२ नारायणदत्त पुजारी । १२५ प्रतिवादि भयंकर शठकोपाचार्य । १२६ मुश्ताक अहमद खां ।

(ग) **वैद्याचार्य परिशिष्ट परीक्षाधिकारिणः**—७ रमेशचन्द्र अग्रवाल द्रव्य० । ८७ सदाशिव अष्टुनकर द्रव्य० । ९१ देवदत्त शास्त्री प्रसूति० । ११० मुरलीधर शर्मा प्रसूति० ।

(३) आयुर्वेद विशारद परीक्षाफलम्

(क) **आयुर्वेद विशारद परीक्षोत्तीर्णाः**—३ हीरालाल शर्मा तृ० । ६ कल्याणशरण शर्मा तृ० । १२ पुरुषोत्तम शर्मा तृ० । १३ हेमचन्द्र त्रिवेदी तृ० । २३ श्रीकान्त शर्मा तृ० । ५४ रामेश्वर दयाल अवस्थी द्वि० । ७९ ओंमप्रकाश तृ० । ९० गिरजाशंकर जानी द्वि० । ९७ बसन्त जोशी द्वि० । १०० लक्ष्मीनारायण तृ० । १०१ भवानी शंकर द्वि० । १०७ काशीप्रसाद शुक्ल द्वि० । १०८ श्रीदत्त शर्मा द्वि० । १११ छत्रपति मिश्र द्वि० । ११५ देवीप्रसाद शर्मा द्वि० । ११६ श्री गिरधर शर्मा द्वि० । ११७ शंकर दत्तशर्मा द्वि० । ११८ भगवतीप्रसाद शर्मा द्वि० । ११९ महावीर प्रसाद भारद्वाज द्वि० । १२५ श्याम सुन्दरलाल शर्मा द्वि० । १३३ नवलकिशोर द्विवेदी प्रथम (सर्व द्वितीय) । १४६ कमल कुमार "कुमुद" तृ० । १५४ दत्तात्रेय शास्त्री द्वि० । १६२ सूर्यमल शर्मा तृ० । १६४ प्रभाकर त्रिपाठी द्वि० । १६५ रामशंकर द्विवेदी द्वि० । १६६ राम प्रसाद स्वामी द्वि० । १६७ छितानी प्रसाद त्रिपाठी द्वि० । १६८ नन्दराम द्विवेदी द्वि० । १६९ शिवकुमार द्विवेदी द्वि० । १७० नारायण प्रसाद पाण्डे द्वि० । १७२ सुदामा द्विवेदी द्वि० । १८६ पवनदेव शर्मा तृ० । १९७ रघुवीर प्रसाद शर्मा द्वि० । २०४ जगदीश चन्द्र शर्मा द्वि० । २१६ गंगाशरण शर्मा तृ० । २१९ राधेश्याम मिश्र तृ० । २२० रामनारायण उपाध्याय तृ० । २२८ नीलकण्ठ शर्मा तृ० । २३१ सोमनाथ मिश्र प्रथम (सर्व प्रथम) । २३२ रामजी पाण्डेय द्वि० । २३८ ज्वाला प्रसाद शर्मा द्वि० । २४० भालचन्द्र कौशिक द्वि० । २४१ भुवनकिशोर शर्मा तृ० । २५३ घनश्याम शर्मा तृ० । २५९ भुलऊ प्रसाद शर्मा द्वि० । २६२ लक्ष्मीनारायण शास्त्री द्वि० । २७३ रामजीयावन त्रिपाठी तृ० । २७४ सीताराम मिश्र तृ० । २७५ प्रयागनारायण तिवारी तृ० । २७६ हरिशंकर त्रिपाठी द्वि० । २८० हरिश्चन्द्र शर्मा तृ० । २८१ प्रभुदत्त शर्मा द्वि० । २८३ चिरंजीलाल शर्मा द्वि० । २८४ रामावतार शर्मा द्वि० । २८५ सज्जनलाल शर्मा द्वि० । २८७ रामनिवास चतुर्वेदी द्वि० । २८८ मामराज शर्मा द्वि० । २९१ चन्द्रशेखर शर्मा तृ० । २९५ लक्ष्मीनारायण शर्मा द्वि० । २९९ अमरनाथ शर्मा द्वि० । ३०० तुलसीदास वैष्णव द्वि० । ३०१ रुद्रमणि शर्मा द्वि० । ३०८ महेन्द्रकुमार पाण्डया तृ० । ३०९ जयरागदास स्वामी द्वि० (सर्व तृतीय) । ३१२ कस्तूरचन्द जैन द्वि० । ३१३ हुकुम चन्द जैन द्वि० । ३२१

बनवारीलाल शर्मा द्वि० । ३२५ अर्जुनलाल शर्मा तृ० । ३२६ मदनदास स्वामी तृ० । ३२८ रामेश्वरदास स्वामी तृ० । ३७२ सुरेश द्वि० । ३७३ रामतीर्थ द्वि० । ३७४ चन्द्रशेखर द्वि० ।

(ख) आयुर्वेद विशारद प्रथमखण्ड परीक्षोत्तीर्णाः—५ शिव प्रताप शर्मा । ९ विष्णुदत्त शर्मा । १४ चन्द्रभूषण ज्योतिषी । २० भूपाल लाल पुरोहित । २७ दुर्गाप्रसाद दीक्षित । ३३ बनमाली शर्मा वासिष्ठ । ३४ भगवान सहाय शर्मा । ४२ ओमप्रकाश गुप्त । ४७ राजा भइया त्रिपाठी । ८७ मनुभाई भट्ट । ९८ रामविलास शर्मा गौतम । ९९ छोटे लाल शर्मा । १०६ चिरंजीलाल जोशी । १०९ केदारनाथ ज़ोशी । १२१ राजकुमार शर्मा । १२२ प्रभुदयाल शर्मा । १२३ मदनलाल शर्मा । १३१ भोलानाथ पाण्डे । १३२ माहेश्वरी प्रसाद त्रिपाठी । १३४ मोतीलाल त्रिपाठी । १४० माणिक चन्द्र जैन । १४२ रतनचन्द्र जैन । १४३ धर्मचन्द्र जैन । १४४ रामानुज गर्ग । १४८ शम्भूनाथ मिश्र । १५० बाबूलाल त्रिपाठी । १५१ उपेन्द्रनारायण चौधरी । १५२ वैजनाथ प्रसाद दीक्षित । १७३ रामनाथ तिवारी । १७६ रामवचन त्रिपाठी । १७८ राघव प्रसाद मिश्र । १८२ अमरनाथ शर्मा । १८७ ओम प्रकाश शर्मा । १९८ सोहनलाल स्वामी । २०९ गोस्वामी हरिवल्लभ । २१३ पुष्पेश्वर गौड़ । २१५ चन्द्रभानु शर्मा । २२२ लाभशंकर शर्मा । २२७ देवीप्रसाद शर्मा । २२९ सरयुप्रसाद द्विवेदी । २३६ रामकुमार शर्मा । २३७ रमेशचन्द्र शर्मा । २४३ अश्विनीकुमार शर्मा । २४४ महावीर प्रसाद शर्मा । २४५ गिरधर प्रसाद शर्मा । २४६ नन्दकुमार शर्मा । २४७ बनवारी लाल शर्मा । २४८ राधेश्याम शर्मा । २४९ बजरंग लाल शर्मा । २५० राधेश्याम शर्मा । २५१ हरिशंकर शर्मा । २५२ सुरेन्द्रकुमार शर्मा । २६१ रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय । २६३ त्रिवेणी प्रसाद त्रिपाठी । २९७ इन्द्रदेव शर्मा । ३०२ रामेश्वर लाल शर्मा । ३०३ मूलचन्द्र शर्मा । ३०४ वाचस्पति शर्मा । ३१४ विरेन्द्र कुमार जैन । ३१५ पद्मचन्द जैन । ३१६ राजकुमार जैन । ३१७ धरणेन्द्र कुमार । ३१८ बनवारीलाल मिश्र । ३२९ गोविन्दराम स्वामी । ३३० गोपाल दास स्वामी । ३३४ सत्यनारायण शर्मा । ३३५ महावीर प्रसाद शर्मा । ३४१ प्रभातीलाल शर्मा । ३५० श्री निवास शर्मा । ३५५ बुद्धिप्रकाश जोशी । ३५६ हनुमानदास वैष्णव । ३५७ मदनलाल शर्मा । ३५९ भालीराम शर्मा । ३६१ नागर प्रसाद शर्मा । ३६२ घासीराम त्रिवेदी । ३६७ ब्रह्मानन्द शर्मा । ३७१ रामाचार्य कोल्हापुरी । ३७५ राधाकृष्ण । ३८२ बनवारीलाल शर्मा । ३८३ ज्वाला प्रसाद दाधीच ।

(ग) आयुर्वेद विशारद परिशिष्ट परीक्षाधिकारिणः—६८ मदनलाल शर्मा अष्टांग० । ८३ कृष्णदत्तशर्मा मौखिक । ९६ रतिरामशर्मा काय० । ११० श्री अवधेश त्रिपाठी काय० । १३६ कृष्णकुमार द्विवेदी अष्टांग० । १३७ शारदा प्रसाद त्रिपाठी अष्टांग० । १६३ रासस्वरूप शुक्ल काय० । २१८ राधाचरन वल्लभ अगद० । २३० कृष्णनन्दन मिश्र अष्टांग । २३४ बनवारीलाल चौमूवाला शारीर० । २८९ रामस्वरूप शर्मा अष्टांग० । ३०५ शिवलाल शर्मा अष्टांग० । ३१० प्रकाश चन्द्र जैन काय० । ३४४ पूर्णचन्द्र शर्मा अष्टांग० ।

वैद्य विशारद परीक्षाफलम्

(क) **वैद्य विशारद परीक्षोत्तीर्णाः**—५ चोइथराम तृ०। १७ मदनलाल शर्मा तृ०। २२ अर्जुनदान तृ०। २८ हरिश्चन्द्र भट्ट तृ०। २९ हरेकृष्ण त्रिपाठी तृ०। ३६ नन्दकिशोर केदावत द्वि०। ४७ छगनलाल वागडी तृ०। ५४ मुरलीधर शर्मा तृ०। ५९ ईश्वरशरण दूबे प्र० (सर्व तृतीय)। ६१ नन्दरानी देवी द्वि०। ६६ कैलासकुमारी द्वि०। ७५ देवकी नन्दन वत्रा द्वि०। ७८ देवकी नन्दन जोशी तृ०। ८६ जोधराज आर्य द्वि०। ११० भगवान दास शर्मा तृ०। ११४. बनारसी दत्त शर्मा द्वि०। ११६ गोविन्द तृ०। १२४ सुबोधचन्द्र तृ०। १६४ बी० आर० के० रंगाचार्य प्रथम (सर्व प्रथम)। १७१ हरिचन्द्र शर्मा द्वि०। १७४ दीनदयाल शर्मा द्वि०। १७७ रामप्रताप शर्मा तृ०। १८१ शिवदत्त शर्मा तृ०। १८३ रामगिरी गोस्वामी तृ०। १९३ जनार्दन लाथोड तृ०। १९४ मनोहर बहाकर तृ०। १९६ सुखदेव प्रसाद शर्मा तृ०। २१३ नेमचन्द शर्मा तृ०। २१४ वेदव्यास शर्मा तृ०। २१५ तुलजाशंकर द्वि०। २२९ ठाकुर प्रसाद सिंह द्वि०। २३१ के० टी० यन० दामोदरन नम्बियार प्र० (सर्व द्वितीय)। २३२ डाल चन्द वर्मा द्वि०। २४२ वंशीलाल अजेय द्वि०। २४७ आई० के० डवरी द्वि०। २४८ श्री मेरी बाई द्वि०। २४९ सौ० कमला बाई द्वि०।

(ख) **वैद्य विशारद प्रथमखण्ड परीक्षोत्तीर्णाः**—६ चन्दीराम। ८ शंकरलाल ठाकुर। ११ मनोहर रत्न पारखी। १२ नारायण। १३ हरबंश सिंह चावला। १४ मंगतराम शर्मा। १६ बाबूराम शर्मा। २३ नटवरलाल शुक्ल। २७ रामनाथ योगी। ३४ खूबीराम गुप्ता। ३७ शिवनारायण शर्मा। ३८ रामेश्वर जोशी। ३९ स्वामी दयाल शुक्ल। ४० अम्बालाल त्रिवेदी। ४३ रंगलाल महात्मा। ४४ गणपतलाल महात्मा। ४८ रेवाशंकर शर्मा। ४९ भंवरलाल व्यास। ५२ मांगीलाल शर्मा। ६० बालकेश्वरी। ६२ विमला कुमारी। ६३ कमला कुमारी। ६४ इन्दुमती कुमारी। ६७ रामचन्द्र गौतम। ७० हरिराजसिंह वर्मा। ७२ जयप्रकाश देव शर्मा। ७३ दीनदयाल शर्मा। ९६ बद्रीनारायण शर्मा। ९८ तुलसीराम शर्मा। ९९ शंकरलाल गुप्ता। १०५ सौभाग्य देवी। १०७ कमला गुप्ता। १०९ यशोदा देवी। ११२ रिपूसूदन शर्मा मिश्र। ११३ कैलाश नारायण मेहरा। ११५ जगन्नाथ। ११७ श्रीकृष्ण शर्मा। ११९ धारेश्वर द्विवेदी। १२५ कान्ता प्रसाद सिंह। १२७ पद्मावती शर्मा। १२८ हुकमचन्द शर्मा। १३० स्वर्णदत्त शर्मा। १३१ दरबारीलाल जैन। १३३ भगवानदास गर्ग। १३४ शरदचन्द्र मिश्र। १३८ मंगलदास। १३९ घनश्यामदास। १४० कर्मवीर आर्य। १४२ अम्बिका प्रसाद पाठक। १४६ रामसुन्दर शुक्ल। १४७ रणजीत सिंह। १४९ लेखराज शर्मा। १५२ भीमानन्द। १५६ जगजीत सिंह। १६० परशुराम। १६३ गजेन्द्र दत्त। १६५ कुलदीप सिंह। १६७ वृजभूषण शर्मा। १६९ सुखदेव कुमार। १७१ अमरनाथ शर्मा। १७५ बृजलाल शर्मा। १७६ जगदीश चन्द्र शर्मा। १७८ महेन्द्र सिंह। १७९ दुर्गा देवी। १८० सरदारीलाल। १८२ बलदेव प्रसाद पाण्डे। १८६ रामदास एकड़े। १९२ पाण्डूरंग किनगे। १९५ कन्हैयालाल। १९९ रामजीलाल मिश्र। २०१ रामहर्ष त्रिपाठी। २०२ वत्तूलाल शर्मा। २०५ प्रभातीलाल शर्मा। २०८ दीनदयालु "निर्मल"। २११ निरंजन सिंह उर्फ कंचन सिंह। २१२ ओंप्रकाश शर्मा।

२१८ रामचन्द्र शर्मा । २२२ देवधर द्विवेदी । २२५ श्याम किशोर द्विवेदी । २२६ रामसेवक अवस्थी । २३५ जगदीश प्रसाद शर्मा । २३६ कन्हैयादास साधु । २४१ मदनगोपाल शर्मा । २४४ प्रहलाद दास शर्मा । २५० किशोरीदास वर्मा । २५२ शिवबालक राम त्रिपाठी । २५३ लेखराज शर्मा । २५५ शुकदेव शर्मा । २५६ मूलशंकर । २५८ मधुकर जैन । २५९ महावीरप्रसाद महात्मा । २६१ प्रभाकर ।

(ग) वैद्य विशारद परिशिष्ट परीक्षाधिकारिणः—९ मार्तण्डराव मौखिक । २६ नवलकिशोर वर्मा रोग० । ४५ रामकिशन जोशी स्वस्थ० । ५० देवेन्द्रदत्त भट्ट अष्टांग० । ५३ दुर्गादेवी सोलंकी अष्टांग० । ६८ पूर्णानन्द शर्मा भट्ट अगद० । ७१ घनानन्द शर्मा द्रव्य० । ८० होशियार सिंह द्रव्य० । ८३ विश्वनाथ श्रीवास्तव द्रव्य० । १०८ रामशब्द मिश्र शल्य० । १२२ लालजी रामधारणा शल्य० । १३५ धनपाल सुतैल अष्टांग० । १५४ ब्रह्मानन्द द्रव्य० । १५७ हनुमानदत्त शारीर० । २०६ दामोदर प्रसाद शर्मा अष्टांग० । २२० रामदत्त मिश्र शल्य० । २४० बद्रीनारायण शर्मा शल्य० ।

(५) आयुर्वेद भिषक् परीक्षाफलम्—

(क) आयुर्वेद भिषक् परीक्षोत्तीर्णाः—२१ मोहनलाल आर्य प्रेमी तृ० । २२ गोरधन दास बाधवानी द्वि० । २३ उत्तम चन्द द्वि० । ५० ईश्वर सिंह कैत द्वि० । ५१ कुंजबिहारी शक्ति तृ० । ६२ ऋखीराम महता तृ० । ६३ रतनचन्द शर्मा द्वि० । ६७ जीवानन्द शर्मा तृ० । ६८ ज्ञान चन्द शर्मा तृ० । ६९ शान्ति स्वरूप सूद तृ० । ७१ संसार चन्द शर्मा द्वि० । ७२ तीर्थ राम तृ० । ७६ सरदारी लाल वर्मा तृ० । ८४ मोहम्मद नवाब तृ० । ९४ नर्मदा शंकर त्रिपाठी तृ० । ९८ शंकर देव वर्मा तृ० । ११२ ब्रजमोहन तृ० । १२५ रमल जैन द्वि० १३० । रामभरोसी लाल शर्मा तृ० । १३३ पन्ना लाल झा तृ० । १३९ हरिसिंह वर्मा द्वि० । १४२ राजेन्द्र कुमार बंसल द्वि० । १४९ कृष्णदत्त भटेले तृ० । १५० रघुनाथ वर्मा द्वि० । १५४ गुणवन्त राय तृ० । १७६ मधुसूदन जोशी तृ० । १७७ रिझाराम तृ० । १७८ अर्जुन दास द्वि० । १७९ सत्यपाल तृ० । १८० मदनलाल शर्मा तृ० । १८२ प्रभूदयाल शर्मा तृ० । १८४ हीरा लाल तृ० । २०२ केसर सिंह तृ० । २१० पन्ना लाल तृ० । २१५ रामदयाल शर्मा द्वि० । २२९ चन्द्र प्रकाश व्यास तृ० । २३३ पुरुषोत्तम शरण वर्मा द्वि० । २४६ खुशवती देवी द्वि० । २६७ धनीराम शर्मा द्वि० । २७६ विश्वभारती प्रथम (सर्व प्रथम) । २८४ गिरवर चन्द्र शर्मा द्वि० । २९३ सुदर्शन चन्द शर्मा द्वि० । २९५ करणलाल गंगवार तृ० । २९९ शरतचन्द्र शर्मा द्वि० । ३०० श्यामसुन्दर शर्मा द्वि० । ३९२ त्रिलोचन दास शर्मा तृ० । ३९४ महता हुकमचन्द द्वि० । ३९६ सरदारी लाल वैद्य द्वि० । ४०७ पुखराज शर्मा तृ० । ४२१ केशवलाल आचार्य तृ० । ४२३ लाभशंकर व्यास तृ० । ४४१ प्रहलाद दत्त हारीत तृ० । ४४९ काशीराम शर्मा तृ० । ४५३ गिरधारी लाल शर्मा तृ० । ४५४ शिवदत्त शर्मा तृ० । ४५६ श्याम लाल शर्मा द्वि० । ४६१ सन्तोषकुमारी द्वि० । ४६२ रामप्यारी द्वि० । ४६५ भूपेन्द्र कौर तृ० । ४६६ ओंप्रकाश शर्मा तृ० । ४७० विमलादेवी अग्रवाल प्रथम (सर्व द्वितीय) । ४७१ पुष्पाकुमारी गुप्ता द्वि० । ४७२ शकुन्तलादेवी द्वि० । ४७३ सूरजकान्ता चोपड़ा द्वि० ।

४७४ सुशीलादेवी द्वि० । ४७५ स्वच्छ लता द्वि० । ४८९ श्याम लाल लाठे द्वि० । ४९३ वासुदेव रोहिल तृ० । ४९५ पुष्पादेवी तृ० । ५०४ रामनाथ यादव तृ० । ५१५ उद्धवराव कोल्हे द्वि० । ५२४ जनक राज शर्मा तृ० । ५२९ रामेश्वरदत्त शर्मा तृ० । ५३० मायाराम शर्मा द्वि० । ५३६ तारादत्त शर्मा तृ० । ५४१ लीलाधर शर्मा तृ० । ५४३ दामोदर प्रसाद शर्मा तृ० । ५४६ लक्ष्मीनारायण शर्मा द्वि० । ५४७ निरंजन लाल बसंल तृ० । ५६६ कमला शंकर पाण्डेय तृ० । ५७४ शरदरंजन दवे तृ० । ५७५ नारायण प्रसाद पांडे तृ० । ५७६ सिद्धनाथ शर्मा तृ० । ५७७ लक्ष्मीकान्त शर्मा तृ० । ५७८ गणपत लाल व्यास द्वि० । ५७९ गिरधारी लाल व्यास तृ० । ५८० रमाकान्त शर्मा तृ० । ५८१ मदन लाल नागर द्वि० । ५८२ रामशंकर शाकल्ये तृ० । ५९२ वैद्य खेमाजी तृ० । ६०२ शिवकुमार पाण्डेय तृ० । ६०३ मिश्रीलाल यादव तृ० । ६०६ राजपति शुक्ल तृ० । ६१४ माणिक चन्द्र शुक्ल तृ० । ६१९ प्राणनाथ शर्मा तृ० । ६२० विट्ठल सावंत द्वि० । ६२५ हुबलाल सिंह तृ० । ६४० उजागर सिंह द्वि० । ६६० सत्यपाल सर्मा तृ० । ६६१ मोहन कौर सरीन द्वि० । ६६३ गणेश प्रसाद शर्मा तृ० । ६६७ रामभरोसे लाल उपाध्याय तृ० । ६६८ रामप्रकाश गुप्ता तृ० । ६९३ सैय्यदरसूल ममदापुर तृ० । ६९४ विष्णुपन्त कुलकरणी तृ० । ६९५ अब्दुलखादर ममदापुर तृ० । ६९६ मडिवालय्या स्वामी द्वि० । ७०७ के० श्री निवासाचार्यालू द्वि० । ७०८ कोंडा वेंकटय्या तृ० । ७१९ राजपाल जन्मेजय द्वि० । ७२० लालचन्द शर्मा तृ० । ७२७ भोजराज शर्मा द्वि० । ७२९ दलीपसिंह द्वि० । ७३१ जगन्नाथ गुप्ता द्वि० । ७३४ जसवन्त सिंह द्वि० । ७३५ राजाराम जोशी द्वि० । ७३८ दौलत राम वर्मा द्वि० । ७३९ राजाराम विश्नोई द्वि० । ७४० रामस्वरूप विश्नोई द्वि० । ७४१ मनफूल सिंह द्वि० । ७४७ हरिराम अरोड़ा द्वि० । ७५५ हिरामण खण्डेराव तृ० । ७५९ दत्तात्रय भट्ट तृ० । ७६६ मधुकर निम्बोले द्वि० । ७६७ ज्ञानदेव राऊल तृ० । ७६८ अर्जुन गाडगें द्वि० । ७६९ पुरुषोत्तम राणे द्वि० । ७७० गुलाब राव पाटील तृ० । ७७१ गणेशराव देशमुख तृ० । ७७२ दयाराम गायधने द्वि० । ७७३ रामभाऊ धनोकार द्वि० । ७७४ महादेव अम्बलकार द्वि० । ७७५ शामराव घांगरे तृ० । ७७६ विट्ठल भेले तृ० । ७७७ दादा राव देशमुख द्वि० । ७७८ पंजाब राव पाटिल द्वि० । ७७९ भानुदास जोशी द्वि० । ७८० जानार्दन पाचपोल तृ० । ७८३ एस० कृष्ण राव द्वि० । ७८४ के० अच्युत शेणे द्वि० । ७८५ वि० पुण्डलीक वालिगा द्वि० । ७८७ वि० वेंकटेश वालिगा तृ० । ७८८ जि० के० हनुमन्त प्रभु तृ० । ७९० वि० सुब्राय पण्डित द्वि० । ७९५ एम० जनार्दन तृ० । ८१० पीतम चन्द तृ० । ८१३ नन्द किशोर शर्मा द्वि०! ८२८ लेखराज सिंह राघव द्वि० । ८२९ कालीचरण शर्मा तृ० । ८३० शिवदत्त शर्मा तृ० । ८३१ राजपाल शर्मा तृ० । ८३२ नवीन चन्द गोस्वामी द्वि० । ८३६ नरेन्द्र मोहन भटनागर तृ० । ८४० हरिश्चन्द्र तृ० । ८४९ कैलाश चन्द्र शर्मा तृ० । ८६६ रघुनाथ सिंह तृ० । ८६९ किशनस्वरूप शर्मा तृ० । ८७४ प्रभु लाल तृ० । ८७५ शान्तिलाल तृ० । ८७९ भास्कर राव तृ० । ८८१ धर्मेन्द्र कुमार तृ० । ८८९ मगन लाल तृ० । ८९६ पारुपुडिराम सत्यनारायण मूर्ति तृ० । ९१० मथुरा प्रसाद शर्मा द्वि० । ९४० वाचस्पति मिश्र द्वि० । ९६६ घनश्याम चन्द्र शर्मा द्वि० । ९७१ बद्रीलाल शर्मा प्र० । ९७३ वंशीधर शर्मा तृ० । ९७४ राधेश्याम शर्मा द्वि० । ९७५ प्राणवती शर्मा द्वि० । ९८४ गंगासहाय शर्मा द्वि० ।

९९२ वंशीधर शर्मा तृ० । ९९८ गौरीशंकर त्रिवेदी तृ० । १००१ व्यास राम तृ० । १००३ महान्त देवरू तृ० । १००४ काशीनाथ शर्मा तृ० । १००५ टि० एन० तुलपुले द्वि० । १००८ नागप्पा तृ० । १०१७ माणिक राचप्पा भालके तृ० । १०३४ नागेश प्रसाद पाण्डेय द्वि० । १०३६ हजारीलाल गुप्ता तृ० । १०४० बलवन्त राय शर्मा तृ० । १०४१ दर्शनदास चोंपड़ा तृ० । १०४३ प्रकाश चन्द्र गुप्त द्वि० । १०४४ द्वारिका प्रसाद अग्रवाल तृ० । १०४५ रामपदार्थ मिश्र तृ० । १०४६ गोपाल मोहन मिश्र तृ० । १०४८ बृजनन्दन लाल गुप्त तृ० । १०६८ हरदेव शर्मा प्र० (सर्व तृतीय) । १०६९ होतृ नारायण मिश्र तृ० ।

(ख) आयुर्वेदभिषक् प्रथम खण्ड परीक्षोत्तीर्णाः—२ दामाराजूवेंकट सुब्बाराव । ४ श्री नारायण चतुर्वेदी । ५ देवेन्द्र शर्मा । १० शंकर दास निहालाणी । १३ खीयल दास दांदवाणी । १६ मोहनलाल तीरथानी । १७ मेठाराम । २६ जेठानन्द ईदराणी । २७ टीकमदास पहिलनानी । २८ नवलराम वाचाणी । २९ कीमतराई ठाकुर । ३० नारायण गिदवाणी । ३३ दाऊलाल शर्मा । ३८ भगवान डोमा जी ढोले । ३९ रामदेव कोल्हे । ४७ किशन राव । ५५ ज्ञानचन्द रम्पाल । ७३ गुरबचन सिंह शर्मा । ७४ कृष्ण गोपाल मोहन । ८८ रमा बहेन । १०५ मुकुन्दराय व्यास । १०९ भद्र कुमार । १११ वाडी लाल । ११५ मुरलीधर शर्मा । १२६ ईश्वर चन्द्र ऋषी । १२७ रामप्रताप । १२९ रामाधार शर्मा। १३४ राममूर्ति शर्मा। १३६ परमोली राम । १४८ सूरज प्रसाद अग्निहोत्री । १६२ पद्मनाभ जोशी । १८३ नन्दकिशोर । १८५ कान्तिलाल त्रिवेदी । १९६ गौरीशंकर त्रिवेदी । २३६ विद्यावती । २३७ सुदर्शन कुमारी । २३८ जगदीश प्रसाद वर्मा । २३९ राजेन्द्र प्रसाद। २४० देवदत्त शर्मा । २४१ जगदीश प्रसाद । २४२ ईश्वरदत्त । २४४ बनवारी लाल आर्य । २४५ धीर सिंह वर्मा । २४७ गोपाल पाठक । २४८ धर्मवीरदत्त शर्मा । २४९ रमेशदत्त गौतम । २५० धर्मवीर शर्मा । २५२ रामसिंह । २५४ जगत सिंह । २५५ उर्मिला कुमारी दिलावरी । २६० भीमसैन कपाही । २६५ रविदत्त शर्मा । २७० बलजीत सिंह राठौर । २७१ ओंमप्रकाश शर्मा । २७२ नेमीशरण शर्मा । २७७ मूलचन्द शर्मा । २७९ शिवकुमार दीक्षित । २८० वासुदेव प्रसाद दीक्षित । २८१ कृष्ण भरोसे । २८२ बाबूराम शर्मा । २८३ ठाठ सिंह । २८७ चन्डी प्रसाद शर्मा । २८८ रघुवीर शरण शर्मा । २८९ सुन्दर लाल शर्मा । २९० स्वामी ध्यान प्रकाश । २९१ बुन्दीलाल । २९२ सोमप्रकाश शर्मा । ३०१ त्रिवेदी जयदत्त शर्मा । ३४२ अश्विनी कुमार शर्मा । ३६४ श्री पुराणुवेंकट सुब्बाराव । ३६५ डे० सी० राजू सत्यवथी । २७१ अजमल खां । ३७३ किशोरीलाल त्रिपाठी । ३७४ गोपीराम दुबे । ३९० जगदीशराम । ३९१ गौतमदेव भागी । ३९३ शान्ति प्रसाद गुप्ता । ४०९ मांगीलाल वोहरा । ४१२ भट्ट किशनलाल । ४१४ वारोट देवीदान । ४१५ छगनदास निम्बार्क । ४२६ भगवानलाल ध्रुव । ४२७ यशवन्त राव भट्ट । ४३० जगदीश नारायण गोस्वामी । ४६७ स्वदेश कुमारी । ४७८ इन्द्र सिंह वर्मा । ४७९ ओंमप्रकाश शर्मा । ४८५ अविनाशी राम मल्होत्रा । ४८६ सुखदेवराज भास्कर । ४८७ चिरंजीलाल मेहताणी । ४८८ प्रेमदत्त सकलानी । ४९२ धर्म सिंह आर्य । ५०२ विठोवा धनुजी द्रव्यकार । ५१६ कुंजीलाल गुप्ता । ५२३ भुवनेश्वर मिश्र । ५२६ सुदर्शन

कुमारी । ५३१ राधाकृष्ण शर्मा । ५३२ श्रीकण्ठ शर्मा । ५३३ श्यामलाल शर्मा । ५३७ खुशीराम आर्य । ५४२ सीताराम शर्मा । ५५० सुरेन्द्र कुमार । ५५२ रामेश्वर प्रसाद पाठक । ५५८ शुकदेव प्रसाद मिश्र । ५६३ अमर बहादुर सिंह । ५६७ रामप्रसाद द्विवेदी । ५६९ प्रेमकृष्ण अरोडा । ५७२ नरेन्द्र कुमार । ५८३ देवशंकर । ५८४ रमेशचन्द्र । ५८५ इन्द्र प्रसाद । ५८८ चन्द्रकांत मेहता । ५८९ जयेन्द्र । ६०० ललिता प्रसाद त्रिपाठी । ६०४ उमाशंकर शुक्ल । ६०५ सूर्यनाथ सिंह । ६०७ गिरीशदत्त त्रिपाठी । ६०९ रामकृष्ण गुप्ता । ६१७ बाबाराम । ६१८ गीजूभाई जोशी । ६२१ काशीराम मोरजकर । ६२२ विश्वनाथ सावंत । ६२४ हरिहर छत्र सिंह । ६२६ मार्कण्डेय राम शर्मा । ६२७ राम सिंहासन मिश्र । ६२९ रुद्रपाल सिंह । ६३० दामोदर । ६३१ गजनन । ६३३ मदनलाल शर्मा । ६३९ करतार सिंह । ६४५ नत्थासिंह । ६४७ अमरनाथ शर्मा । ६५१ वेदप्रकाश कौशल । ६५२ देशराज शर्मा । ६५३ चण्द्रमणि शर्मा । ६५६ मदनलाल शर्मा । ६७१ रामावतार शर्मा । ६७६ रामाधार अवस्थी । ६७७ ललता प्रसाद । ६८१ चितरंजनदास राठी । ६८२ सूर्यप्रकाश राठी । ६८३ राम प्रकाश सोनी । ६८५ मदनलाल स्वामी । ६८८ सोमशेखर धोसरे । ६९० चन्द्रशेखर धोसरे । ६९७ मडिवालय्या सोप्पय्यन मठ । ६९८ लक्ष्मी नरसिंह कोडीहाल । ६९९ अब्दुल करीम मागी । ७०० चनवीरय्या कल्लीमठ । ७०१ मल्लैय्या कल्लीमठ । ७०२ गुरसीद्दय्या चौकीमठ । ७०३ अयोध्या श्रीरायलु । ७१० एस० जी० नरसिंह मूर्ति । ७११ एस० जी० अनन्त सुब्बाराव । ७१२ श्री एस० रंगा स्वामी । ७१५ प्रकाशचन्द्र शर्मा । ७१६ मोहर सिंह । ७२१ सत्यपाल । ७२३ रामचन्द्र शर्मा । ७३० जगदीशराज शर्मा । ७३२ सीतलदास । ७३७ मामराज पाटोदिया । ७४२ राधाकृष्ण वर्मा । ७४३ पतराम शर्मा । ७४८ रामस्वरूप । ७४९ तेजप्रकाशगिरी । ७५० मोतीराम उमाले । ७५१ बलराम त्रिपाठी । ७५४ हिम्मत सीताराम चिमोटे । ७६० प्रभाकर वडनेरकर । ७६१ बाबूराव पाण्डे । ७६२ परशुराम लुदरकार । ७६३ रामकृष्ण वराडे । ७६४ काशीराम पाटील । ७६५ प्रभाकर महाजन । ७८१ रामराव कराले । ७९२ रामदास मारुति । ७९४ चार्लस एच लोवो । ७९८ मट्टी गणपति प्रभु । ७९९ सी० गोविन्दन । ८०० नरेन्द्र आचार्य । ८०३ वि० पुण्डलीक नायक । ८०४ सी० पाण्डुरंग राव । ८०५ के० प्रभाकर । ८०६ एम० शंकर पण्डित । ८०७ अनन्त भट्ट एम । ८०९ क० श्री निवास कामत । ८१९ खेमचन्द शर्मा । ८२५ राजकुमार सिंह । ८२६ विद्याराम शर्मा । ८२७ रोशनलाल आर्य । ८३५ रामदयाल गोयल । ८३७ ओमप्रकाश आर्य । ८३८ कन्हैयालाल शर्मा । ८४४ रामदयाल शर्मा । ८४७ श्यामलाल । ८६१ रतनलाल । ८६२ बलदेवसिंह । ८६५ जगन्नाथ प्रसाद वर्मा । ८७० मदनसिंह वर्मा । ८७३ महावीर दत्त । ८८६ रमणीक लाल । ८८७ लालजी भाई । ८९० जयन्त कुमार शुक्ल । ८९२ मगनलाल डाह्यालाल पंडया । ८९७ वेक गौष मोहिद्दीन । ९०० महावीरप्रसाद दाधीच । ९०१ शंकर लाल शर्मा । ९०४ शंकर लाल गुप्ता । ९०७ विद्याधर शर्मा । ९११ रिपुसूदन प्रसाद मिश्र । ९१२ वेणीराम दुबे । ९१५ साधुराम देशमुख । ९१७ बृजभूषण शर्मा । ९१९ त्रयम्बकराव । ९२० रामनारायण शर्मा । ९२२ रामअवतार । ९२३ गिरजाशंकर

द्विवेदी। ९२५ रामचरण गर्ग। ९३२ प्रेमादेवी दीक्षित। ९४१ लक्ष्मीनारायण शर्मा। ९४२ इन्द्रसेनसिंह। ९४५ देवचन्द्रसेन। ९४९ रामदत्त अवस्थी। ९५४ किशोरीलाल गुप्ता। ९५५ कुंवर सिंह। ९५७ वैकुण्ठनारायण तिवारी। ९५८ इन्द्रजीत सिंह कुशवाह। ९७६ रामदयाल शर्मा। ९७७ हरफूल सिंह। ९८६ लादूदास स्वामी। ९९१ सुदर्शनप्रसाद शर्मा। ९९४ मुरलीदास स्वामी। ९९५ भीमराज शर्मा। ९९६ जगदीशनारायण शर्मा। ९९७ बजरङ्ग भारती। १०१२ तुलजा रामसिहे। १०१९ भगवान सिंह। १०३५ अमरनाथ पाण्डेय। १०३९ हरिवंश लाल शर्मा। १०४२ बलदेवराज शर्मा। १०४७ रामचन्द्र मिश्र। १०५१ नन्दलाल। १०५३ हरिश्चन्द्र द्विवेदी। १०५४ गणेशराम सक्सेना। १०६१ छाजूराम शर्मा। १०६५ राममूर्ति पाण्डेय। १०६७ श्रीकृष्ण शर्मा। १०७१ राम आज्ञाराम यादव। १०७२ राम भरोसे दीक्षित। १०७३ पन्नालाल। १०७४ वासुदेव। १०७५ बलीराम किशनाणी। १०७९ विजयलक्ष्मी।

(ग) आयुर्वेद भिषक् परिशिष्ट परीक्षाधिकारिणः—८ मदनगोपाल मिश्र शारीर०। ३७ मोहनलाल शर्मा शारीर०। ४० उत्तमदेशमुख रोगवि०। ५६ जगदीशचन्द्र शर्मा शारीर०। ६१ दलीप कुमार शारीर०। ६४ दर्शनलाल शारीर०। ७० द्वारिका नाथ शर्मा शारीर०। ८० शाह नवनीत लाल मौखिक०। ८५ भगीरथ स्वस्थ०। ९३ अरविन्द त्रिवेदी मौखिक०। ९६ अरविन्द कुमार स्वस्थ०। ९७ जोशी देवप्रसाद मौखिक। १०२ जयराम दास श्री वैष्णव काय०। ११० भोगीलाल त्रिवेदी काय०। ११३ जगदीश प्रसाद शर्मा शल्य०। १२३ विपिन कुमार जैन शारीर०। १३१ कृष्णदत्त शर्मा शारीर०। १५६ रामेश्वर व्यास शारीर०। १५८ गोपालदत्त त्रिवेदी शारीर०। १६० द्वारकाप्रसाद शर्मा शारीर०। १६८ गणेश शारीर०। १७२ सुन्दरलाल शर्मा शारीर०। १८५ गोविन्दराज कविश्वर शारीर०। १८७ पुष्पलाल शारीर०। २२४ खुमान सिंह शारीर०। २५७ ओमप्रकाश शर्मा द्रव्य०। २७५ महावीर सिंह रावत द्रव्य०। २८५ सच्चिदानन्द काय०। ३१९ मुन्नीदेवी मिश्रा अगद०। ३२३ प्रयाग नारायण काय०। ३३९ मदनलाल त्रिपाठी शारीर०। ३६७ वासुदेव शर्मा शारीर०। ३६८ बालकृष्ण शर्मा काय०। ३६९ बालकृष्ण शर्मा काय०। ३७९ बखत राम आसराणी शारीर०। ३८० थांवर दास राजपाल शारीर०। ३८६ मधुकर खेकाले मौखिक। ३८९ देवराज शर्मा काय०। ३९८ कान्ति चन्द शारीर०। ४०३ मदनलाल शर्मा शारीर०। ४०४ भानाराम स्याग शारीर०। ४०८ मोहनदास शारीर०। ४१० रमणीकलाल मौखिक। ४२९ माहेश्वर याज्ञिक काय०। ४३३ ओमप्रकाश शर्मा शारीर०। ४३४ बलवीर कुमार नारद शारीर०। ४४३ मदनगोपाल शर्मा शारीर०। ४५७ ओमप्रकाश शारीर०। ४५९ राजेन्द्र कुमारी शल्य०। ४६० ऊषा सेठी शल्य०। ४६३ अमृतकौर शल्य०। ४६४ दमयन्त कौर शल्य०। ४६९ नीलमकांता रानी शारीर०। ४८० नेमचंद जैन शारीर०। ४८२ ओमप्रकाश शर्मा शारीर०। ४९१ निर्मल कुमारी शारीर०। ४९६ राधावल्लभ हर्ष शारीर। ५०६ नरहरि ठोमरे शारीर०। ५१० सौ० सीताजोशी शल्य०। ५१८ गोविंदराव बरापाथे शारीर०। ५२० अरुणकुमार दीक्षित शारीर० ५२७ रामभक्त शर्मा औदीच्य शारीर०। ५२८ ओमप्रकाश शर्मा गालब शल्य०। ५३८ धर्म।

सिंह शारीर०। ५३९ श्यामलाल शारीर० । ५४० गिरधारी लाल शारीर०। ५४९ प्रभाधर शर्मा शारीर० । ५६८ राम अभिलाष तिवाड़ी शल्य० । ६५४ मग्घर सिंह स्वस्थ० । ६८० सन्तशरण अग्रवाल कौमार० । ६८४ श्यामसुन्दर वर्मा शारीर०। ६९२ चेनप्पा ऐहोली का०।७०४ अड्डुगड्डु नारायण स्वस्थ० । ७०५ दंडा पन्तुल वेंकटेश्वर शर्मा मौखिक०। ७४५ तोलाराम शर्मा रोग०। ७५६ कान्ति बाई रोग०। ७८९ यु० सुन्दर पंडित काय०। ७९७ पि० वरद्राय नायक शारीर०। ८०२ सर्वोत्तम शैणे एम० शारीर०। ८१८ घूरेलाल जैन द्रव्य ०। ९०३ श्रीनिवास दीक्षित शारीर०। ९५२ रामकृष्ण शुक्ल स्वस्थ०। ९९९ शिवप्पा स्वस्थ०। १०२२ रामचन्द मजावदिया शल्य०। १०४९ घनश्याम दास द्रव्य०। १०७८ वी० सीतारमैय्या स्वस्थ०।

(६) प्रजावैद्य परीक्षाफलम्

(क) प्रजावैद्य परीक्षोत्तीर्णाः—८ गोपी शेट्टी वेंकटेश्वरराव द्वि०। ९ चेवूल राम दास तृ०। १० काशी नाग लिंगापारी तृ०। ११ जून वोयिन कोटय्य तृ०। १२ ईमनिनर सिंह सोमयाजुलु तृ०। १३ जमुना बाई गान्धी तृ०। १४ पाण्डु रंग देवीदास महाराज तृ०। १६ बोलमूर्ति नरसिंह राव द्वि०।

(श्रीदत्त शर्मा)
विद्यापीठ मन्त्री

कन्याओं तथा महिलाओं के लिये आयुर्वेद पढ़ने का सुअवसर

श्री नांगिया आर्य आयुर्वेद कन्या महाविद्यालय में प्रवेशारंभ

आर्यसमाज बिरला लाइन्स सब्जीमण्डी में कन्याओं तथा महिलाओं के लिये आयुर्वेद विद्यालय पिछले दो वर्षों से चल रहा है। इस विद्यालय में "निखिल भारत वर्षीयायुर्वेद विद्यापीठ" की "भिषक्" और "विशारद" परीक्षाओं की तैयारी कराई जाती है। गत वर्ष सम्पूर्ण कन्याएँ परीक्षा में उत्तीर्ण हुई हैं।

इस वर्ष विद्यालय में नवीन छात्राओं का प्रवेश प्रारम्भ हो गया है। आयुर्वेद पढ़ने की इच्छुक कन्याएं तथा महिलाएं आर्यसमाज बिरला लाइन्स में दोपहर व दिन में २ बजे से ४ बजे तक अपने फार्म भरने के लिए आ जावें। उसी समय सभी प्रकार की पूछताछ भी की जा सकती है।

प्रधान—प्रबन्धक समिति
नांगिया आर्य आयुर्वेद कन्या महाविद्यालय
आर्यसमाज बिरला लाइन्स
सब्जी मण्डी, देहली

पताका गानम्

आयुर्वेदाचार्यः आर० पी० चिट्टेषम

जय धन्वन्तरि विजय पताके
जय मन्वन्तर विदित पताके
जय जय भारत पुण्य विपाके
जयताम् जयताम् आर्षपताके !

युग युग धर्म विशेष विलासो-
ल्लसित विकस्वर नव नव भावे
जनपद रोग विमोचन चतुरे
जय धन्वन्तरि विजय पताके !
......जय धन्वन्तरि ।

वाग्भट सुश्रुत चरक पराशर
गार्ग्य पुनर्वसु सेवित चरिते
आश्रित बहुजन कलपक कलिके
विश्वोत्तरमिह विजय पताके
......जय धन्वन्तरि ।

जय जय भारत शास्त्र विचारम्
जय जय वेद पुरातन सारम्
जय जय जगताम् आर्षविहारम्
जयताम् जयताम् आयुर्वेदम्
......जय धन्वन्तरि ।

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleton) आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल टिकयाँ व गोलियां बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकाल इन्स्ट्रूमेन्ट, आदि के मिलने का पताः—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स कं०
दयाल बाग़, (आगरा)

ज्ञान तंतुओं को बल देने वाला,
स्मरण शक्ति वर्धक उत्तम ब्रेन
टोनिक

सीरप शंखपुष्पी

शंखपुष्पी और ब्राह्मी तथा अन्य अनेक मेध्य औषधों के योग से तैयार किया गया हैं। इसके सेवन से स्मरण शक्ति बढ़ती है। ज्ञानतंतुओं को बल मिलता है। मस्तिष्क से कार्य करने वाले विद्यार्थियों, वकीलों,—आफीसर क्लार्क आदि के लिये अमृत समान है। विद्यार्थियों के लिये तो यह सचमुच आशीर्वाद समान है। किसी भी काम को करते समय मगज थक जाता हो और आगे कार्य करने में मन नहीं लगता हो तब इस सीरप के देने से मगज की थकावट दूर होती है। मगज हलका हो जाता है और फिर कार्य करने में उत्साहित होता है। किसी भी कारण से मस्तिष्क निर्बल हो गया हो और नींद न आती हो ऐसे रोगीके लिए यह अमृत समान है।

मूल्य शीशी १ का रु० १-४-०, १ रतल का ४-०-०।

ऊंझा फार्मेसी लि०
ऊंझा (गुजरात) जबलपुर,
(मध्य प्रदेश)

बैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ, जो अभी प्रकाशित हुआ है

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान

(पूर्वार्ध)

आयुर्वेद-मार्तण्ड वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य-बम्बई

किसी भी रोग की चिकित्सा के पूर्व रोगों के निदान का ज्ञान हाना परमावश्यक है। रोग के सम्यक् नियम के बिना रोगी की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

इसीलिए व्याधि-विज्ञान (निदान-रोग विनिश्चय) आयुर्वेद के प्रधान विषयों में सम्मिलित एक उपयोगी विषय है। इस ग्रन्थ में व्याधि विज्ञान के साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधियाँ कितने प्रकार की होती हैं; निज, स्वाभाविक और आगन्तुक व्याधियों में क्या भेद है, स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियों के स्वरूप क्या हैं; प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और समुत्थान भेद से १० प्रकार के रोगानीक कैसे हो जाते हैं; रोगों का आश्रय क्या है, आदि अनेक ज्ञातव्य बातें इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णित हैं। यह पूर्वार्ध खण्ड पांच अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें अध्ययन कर लेने के बाद निदान सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य सिद्धांत करामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं। आयुर्वेदीय प्रेमी विद्वान् और विद्यार्थी, दोनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है।

इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

डिमाई साइज के ११२ पृष्ठ की सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक का मूल्य मात्र २॥)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

खोज का आश्चर्यजनक परिणाम

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगान्तर से चला आ रहा है। खोजके ऊपर किसी कवि के ये शब्द स्वर्णाक्षरोंमें लिखे हुए हैं कि :-"जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ" त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मेघनाद के शक्तिबाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्च्छित पड़े हुए थे और रामचन्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय लक्ष्मणजीमें पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को सञ्जीवनी बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम स्वरूप लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों के इस महायुद्ध में, रोग द्वारा त्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोज में लगा हुआ है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

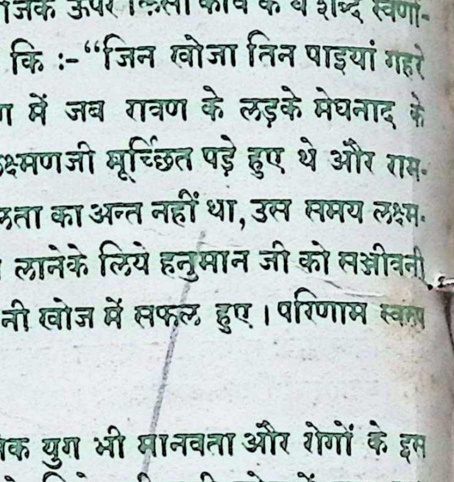

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सऔषध सेवारत हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है—डाबर कार्यालयका निरन्तर खोजका परिणाम! साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की क्रिया!! इसी खोज के परिणाम स्वरूप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के समक्ष औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

डाबर (डा॰ एस॰ के॰ बर्म्मन) लि॰ कलकत्ता-२९

अपूर्व गुणकारी आयुर्वैदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्माता

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन [illegible] द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—नया हिन्दुस्तान प्रेस दिल्ली।

अगस्त
४ १९५५

श्रावण
२०१२

आयुर्वेद
महासम्मेलन पत्रिका

c3.cc
901x172

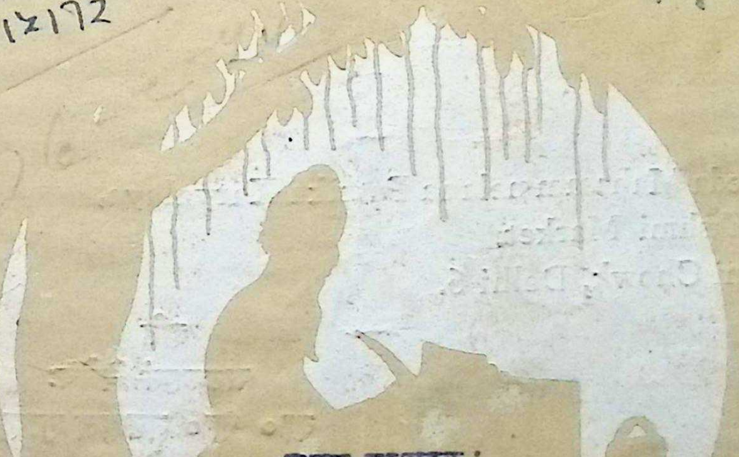

प्रधान सम्पादक :
कविराज स्वामी चेतनानन्द आयुर्वेदालंकार
संस्कृत-विभाग सम्पादक :
बा० बा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य :
उप-सम्पादक :
वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री

अवधेयम् विज्ञापनम्

सम्मेलनपत्रिकायां प्रकाशाय संस्कृतमया लेखाः संस्कृतविभागसंपादकाय श्री नटराजशास्त्रिणे त्रिचिनाप्पल्लीं, मद्रास स्टेट, इति सङ्केताय प्रेषणीया इति पूर्वं विज्ञापितमभूत । संपादकस्य अतिविप्रकृष्टदेशनिवासेन संस्कृतलेखानां मुद्रण संशोधनसंविधानादौ दुर्निवारास्त्रुटयः समापतन् । पत्रिकापाठकेषु बहुभिरपेक्षिता संस्कृतविभागाभिवृद्धिश्च न शक्य संपादाऽभवत् ।

अतः,देहलीमहानगरनिवासिनः पण्डितप्रकाण्डाः, कार्मुकाः श्री मोहनलालशास्त्रिमहोदयाः तिरुवनन्तपुरे सम्मेलनमहाधिवेशने संस्कृतविभागस्य उपसंपादकपदवीमलंकर्तुं वृताः सन्ति । एतेषां देहल्यां सम्मेलनकार्यालयसमीपे सान्निध्यं संस्कृतविभागस्य सर्वसमृद्धिकरं स्यात् यथा पाठकानां प्रमोदवर्धनम् ।

अतः, इतःपरं सर्वे संस्कृतलेखा अपि निम्ननिर्दिष्टसंकेताय सम्मेलनपत्रिकाकार्यालयाय साक्षात् प्रेषणीयाः ।

आङ्लमासीय २० तारिकायां पत्रिका बहिः प्रापणीया भवति । अतः आङ्लमासीय प्रथम पञ्चाहात् प्रागेव कार्यालयं यथा प्राप्नुयुस्तथा लेखा लेखकैः प्रेषणीयाः ।

इति

Ayurveda Mahasammelana Patrika Karyalaya,
Mahalakshmi Market,
Chandni Chowk, Delhi 6.

इति
पाठकानां विधेयः
वा० बा० नटराज शास्त्री ।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में विज्ञापन
देकर लाभ उठाइये

।। श्री धन्वन्तरयेनमः ।।

यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द आयुर्वेदालंकार
संस्कृतविभाग सम्पादकः—श्री वा० बा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
उप-सम्पादक—वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४२
अंक ८
दिल्ली, आषाढ़ २०१२, अगस्त १९५५
वार्षिक ५)
एकप्रति ।।)

विषय सूची

सम्पादकीय ४२०
मानम विज्ञानम् श्री बलदेव शर्मा ४२४
पंचवर्षीय्र योजनाएं और आयुर्वेद वैद्य श्री माखनलाल शास्त्री ४२७
औषध संकट श्री प्रभाकर चट्टोपाध्याय ४३५
अश्विनौ देवता श्री रघुवीर शरण शर्मा ४४२
चतुर्भुज रस की प्रयोगविधि श्री गोपाल चैतन्यदेव ४५०
आयुर्वेद प्रयोग साद्गुण्यम श्री हनुमत्सहाय शर्मा ४५५
आयुर्वेद पताके श्री गिरजादत्त पाठको वैद्य ४५७
यथा प्रवृद्धास्तैव क्षीणा अपि दोषा विकारान् जनयन्तीति सिद्धांतः श्री महावीरप्रसाद मिश्र ४५९
अवधानमितोपि दीयताम् श्री ओंकारशास्त्री ४६२
आयुर्वेद लोक ४६३

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय ऋषिकेश से देहली परिवर्तित

वैद्य समाज एवं आयुर्वेद जगत की विशेष जानकारी के लिये सूचित किया जाता है कि ४० वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, त्रिवेन्द्रम के प्रस्तावानुसार नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय ऋषिकेश से देहली परिवर्तित हो गया है । विद्यापीठ कार्यालय का पता भविष्य में निम्नलिखित होगाः—

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ,
महालक्ष्मी मार्केट
चांदनी चौक, देहली ६

श्रीदत्त शर्मा
विद्यापीठ मंत्री

सम्पादकीय

मेरी प्रार्थना

मुझे प्रधान सम्पादक बने हुए तीन ही मास बीते हैं; इस समय में मेरे कई कृपालु मित्रों ने मुझे ऐसे कई पत्र लिखे हैं जो महासम्मेलन पत्रिका की नीति से बिल्कुल ही विरुद्ध हैं और कई मित्र महानुभावों ने महासम्मेलन पत्रिका की नीति के विरुद्ध पत्र तथा लेख भेंज कर छापने के लिए आग्रह किया है जिसे देखकर स्वाभाविक विचार उत्पन्न होता है कि कर्त्तव्य पालन बड़ा या मित्र स्नेह बड़ा ? सम्पादक का उत्तरदाबित्व ऐसे समय में बहुत ही नाजुक अवस्था में पहुँच जाता है । निःसन्देह मेरे मित्र मेरे प्रति कुछ असन्तुष्ट होंगे । मेरा उनसे नम्र निवेदन है कि आप लोगों ने ही इस कार्यभार को महासम्मेलन की नीति के अनुसार चलाने और निभाने का कार्य मुझे सौंपा है । यदि उसे उसी नीति के अनुसार पूरा न करूँ तो आप ही असन्तुष्ट होने में देर न लगायेंगे । हम दोनों के कर्तव्य बड़े महत्वपूर्ण हैं । यदि लेखक महा सम्मेलन की नीति जो आयुर्वेद के सर्वांगीण उत्थान की है, के अनुसार अपने लेख तथा रचनायें भेजने का कष्ट करेंगे, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उनकी रचनाओं को निश्चय ही सत्कारपूर्ण स्थान प्राप्त होगा। आशा है कि मेरी इस प्रार्थना पर विद्वत समाज अवश्य ध्यान देने का कष्ट करेगा । कई महानुभावों ने अपनी रचनायें जो आयुर्वेद तथा महासम्मेलन की शोभा के अनुरूप हैं, भेजने की कृपा भी की है । और भविष्य में भी भेजने का विश्वास दिलाया है । मैं उनका हार्दिक आभारी हूँ । आशा है भविष्य में वे विद्वत् गण आयुर्वेद समाज को सुसंगठित करने तथा आयुर्वेद के उत्थानार्थ अपनी मौलिक रचनायें तथा लेख भेजने का कष्ट करेंगे । और मुझे मेरे कर्त्तव्य पालन में सहायता प्रदान करके इस कर्तव्य को निभाने का मौका देंगे ।

दाइयों का निर्माण

पता चला है कि केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग २५,००० दाइयों को प्रशिक्षण देने जा रहा है जिससे सार्वजनिक रूप में वे स्त्री समाज के अन्दर सेवा का कार्यभार वहन कर सकें । जिस पद्धति का प्रचार करने के लिए यह प्रशिक्षण स्वास्थ्य विभाग देने जा रहा है वह केवल तीन मास का है । बहुत से सद्गृहस्थियों को इन बड़े-बड़े सरकारी अस्पतालों में जाकर देखने का मौका मिला होगा कि जिन दाइयों ने तीन २ चार २ वर्ष का विदेशी ढंग का प्रशिक्षण प्राप्त किया है और वे कार्य करती हैं, उसका परिणाम क्या निकलता है, न तो उन जच्चाओं के शरीर की इस ढंग से परिचर्या होती है कि जिससे उनके शरीर शीघ्र ही स्वस्थ होकर अपने नवजातशिशु का पालन पोषण कर सकें । बल्कि इस विदेशी पद्धति के अनुसार उपचार से इतने उपद्रव उस जच्चा में उत्पन्न हो जाते हैं कि जिसको आयु भर उसे चीखते चिल्लाते वहन करना पड़ता है । बच्चे की पालना जिन दुग्ध ग्रंथियों से होती है, पेट पूरी तरह मलकर न बांधने के कारण वे दुग्ध ग्रंथियाँ दुग्धहीन हो जाती हैं जिससे बच्चों को बाजारू डब्बों

पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इस भांति खानपान की भारतीय जलवायु और प्रकृति के प्रतिकूल देने के कारण उनमें स्फूर्ति तथा चेतना का अभाव हो जाता है। इससे माता के संस्कार जो परम्परा को लिए हुए होते हैं, उन बच्चों में नहीं आने पाते और न स्वास्थ्य ही अच्छा रहता है। इधर पूरी सफाई न होने के कारण जच्चा को प्रदर, अफारा और मासिक विकृति आदि कई रोगों का शिकार होना पड़ता है। इन सारी घटनाओं तथा अनुभवों को देखकर हम भी स्वास्थ्य मन्त्राणी जी को यह हितकर परामर्श देगें कि वे कृपया विदेशी पद्धति के प्रचारार्थ हमारी भारत की पूँजी को बरबाद इस तरह न करें जिससे भारत की नींव, जो स्त्री जाति है, वह रोगी और कमजोर होने न पाये। देशी पद्धति जो हमारे भारत को हजारों वर्ष से स्वस्थता प्रदान करती आयी है तथा हमारे जलवायु के अनुकूल है उसका प्रशिक्षण दे सकती हैं। इससे देशी पद्धति का सत्यानाश जो कई वर्षों से केन्द्रीय सरकार द्वारा क्रिया में आया है वह भी रुक जायगा और स्वदेशी पद्धति का उत्थान भी होगा तथा पैसा भी बच जायगा और स्त्री समाज भी पूर्ण निरोगता को प्राप्त करके स्वस्थ तथा सुदृढ़ सन्तान को जन्म देगी। उसमें दोनों का हित है।

प्रान्तीय आयुर्वेदिक बोर्डों के प्रति

प्रायः हर प्रान्त में आयुर्वेदिक बोर्ड का निर्माण हो चुका है जो प्रतिनिधि महानुभाव उनमें जाकर काम करने लगे हैं चुनावों से पूर्व उनके बड़े-बड़े पोस्टर और प्रतिज्ञायें छपती हैं परन्तु जब वह अन्दर जाकर बैठते हैं तब उनका मानसिक वातावरण कुछ और ही हो जाता है। न तो वे अपने वैद्य समाज की वहाँ की कोई पूर्ण सूचना दे पाते हैं और न ही अपनी की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार उनके सामने वे शर्तें होती हैं बल्कि भाषा ही बदल जाती है। हमारी भारतवर्ष के आयुर्वेदिक तथा यूनानी बोर्डों के सदस्यों से प्रार्थना है कि आयुर्वेद तथा वैद्य समाज का भविष्य इस समय उनके हाथों में है यदि वे सावधान होकर मानत्यागी और दक्ष रहें तो अवश्य उनको आयुर्वेद सेवा में सफलता प्राप्त होगी और स्वयं उनका भविष्य उज्जवल होगा। मेरी उनसे प्रार्थना है कि जो जो बोर्ड में कार्यवाही हो वह लिख कर महासम्मेलन पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजने का कष्ट करें। लोगों में बोर्डों की कार्यवाही ठीक ठीक प्रकाशित न होने के कारण सन्देह तथा भ्रम उत्पन्न होता जा रहा है जिससे प्रतिनिधि महानुभावों के प्रति सहयोग तथा सद्भावना कीं कमी होती जा रही है। जिससे आयुर्वेद समाज की मानसिक अनस्थिरता बढ़ने की सम्भावना बढ़ती जा रही है। यदि समय पर बोर्डों की गतिविधि प्रकाश में आती रही तो प्रतिनिधियों को सहयोग तथा सहकार का बल भी मिलता रहेगा। और गलतफहमी भी न होगी।

माननीय राजाजी की सत्यवादिता

२८ जुलाई को माननीय श्री राजगोपालाचारी ने फिर सिंह गर्जना की कि हाल ही में मदनबल्ली में भारत की स्वास्थ्य मन्त्राणी श्री राजकुमारी अमृतकौर ने कहा है कि मैं बी० सी० जी० के विरुद्ध आन्दोलन के मामले में सम्मति देने का अधिकार नहीं रखता। परन्तु मैं स्पष्ट कहता हूँ कि सरकार

गलत दिशा में जा रही है और गलत प्रक्रिया अपना रही है। केवल अच्छे इरादे होना ही पर्याप्त नहीं !! उसके परिणाम भी परीक्षा में ठीक उतरने चाहियें, साथ में यह भी कि विशेषज्ञ चाहे कितने समझदार हों पर उनपर सारा फैसला छोड़ना बड़ा खतरनाक है। आगे चलकर श्री राजा जी कहते हैं "यदि मेरी तरह के सामान्य व्यक्ति जो चिकित्सा विषय से बिल्कुल ही अनभिज्ञ हैं केन्द्र तथा राज्यों में स्वास्थ्य मन्त्री हैं, बी० सी० जी० के बारे में न केवल बोल सकते अपितु व्यापक आन्दोलन भी कर सकते हैं तब मुझे भी जो किसी सरकारी पद पर नहीं इस मामले में अपनी सम्मति देने का अधिकार है।"

भारत का छोटे से छोटा बच्चा भी जानता है कि सब प्रकृतियों की बनावट एक सी नहीं हैं। कोई भी औषधि आहार विहार तथा साधन सबके लिए एक से मुकर्रर नहीं किये जा सकते। कफ प्रकृति को बैंगन तथा मिर्च आदि बड़ा सुखकर होता है परन्तु पित्त प्रकृति वाले के लिए वही पदार्थ अहितकर होता है। पित्त प्रकृति वाले के लिए दही सुख रूप होगी मगर कफ प्रकृति के लिए दुखकर अर्थात् भारी तथा कफ़ वृद्धिकारी होगी तो कैसे माना जावे कि दोनों पर एक सा प्रभाव होगा !! तो कोई बताये कि बी० सी० जी० के टीके सब के लिए कैसे एक से स्वास्थ्यप्रद होंगे। साधारण समझ का भी जहाँ अभाव हो उनसे सार्वजनिक स्वास्थ्य की आशा कैसे रखी जा सकती है। हम समझते हैं कि शासक वर्ग आज भले ही इस साधारण व्यक्ति श्री राजाजी की युक्ति युक्त माँग को स्वीकार न करे परन्तु देर सवेर स्वास्थ्य विभाग को इस लानत को हटाना ही पड़ेगा। अच्छा है कि समय रहते इस ओर ध्यान दिया जाये। हम श्री राजा जी को बधाई दिये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने सुदृढ़ होकर पूरे मनोबल से भारतीय स्वास्थ्य के साथ चल रही खिलवाड़ का मुकाबिला करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की है भगवान धन्वन्तरि उनको इसमें पूरी सफलता प्रदान करें। यही हमारी शुभ आशा है। —स्वामी चेतनानन्द

आयुर्वेद विद्यापीठ पर भ्रष्टाचार का आरोप

सम्पादक के नाते मुझे बहुत से ऐसे पत्र तथा समाचार प्रकाशनार्थ मिले हैं जिनमें नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के कुछ अधिकारियों के प्रति भ्रष्टाचार के आरोप लगाए गए हैं। इन कथित आरोपों में सत्य का अंश कितना है यद्यपि यह तो अभी कहा नहीं जा सकता किन्तु विद्यापीठ जैसी महान् एवं सम्मान्य संस्था के प्रति कुछ व्यक्तियों में असन्तोष की ऐसी भावना का उदय होना ही हमारे लिए अत्यन्त लज्जा और दुख का विषय है— इससे विद्यापीठ के गौरव तथा लोकप्रियता को भारी आघात पहुँचेगा। अतः मैं श्री विद्यापीठाध्यक्ष वैद्यराज श्री भीकाजी विनायक डेग्वेकर तथा अन्य अधिकारियों का ध्यान इस ओर अवश्य दिला देना अपना कर्तव्य समझता हूं कि वे अविलम्ब उन कारणों की खोज करें जिनके कारण विद्यापीठ पर ऐसे आरोप लगाने का कुछ लोगों को अवसर मिला है और उनके निवारण के लिए पग उठायें, जिससे इस महान संस्था की मान-मर्यादा और प्रभाव की रक्षा हो सके। आशा है विद्यापीठ तथा महासम्मेलन अधिकारी इस ओर तुरन्त ध्यान देकर इस दुखदायी परिस्थिति का निवारण करेंगे।

सूचना प्रेषकों से मेरा निवेदन है कि वे धैर्य रखें—उनकी प्रत्येक शिकायत की भली प्रकार जांच-पड़ताल कराने का यत्न किया जायगा। सत्य पर आधारित सूचनायें जो भविष्य में भी प्राप्त होंगी उन पर आवश्यक कार्यवाही करने का प्रयत्न जारी रहेगा।

स्व० श्री ज्ञानेन्द्रनाथ सेन

समस्त वैद्यसमाज ने यह समाचार बड़े दुख के साथ सुना होगा कि वैद्यप्रवर आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान, विद्या वयोवृद्ध आचार्य श्री ज्ञानेन्द्रनाथ सेन का स्वर्गवास गत मास को हो गया है। स्वर्गीय आचार्य जी नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के अध्यक्ष रह चुके थे तथा उनकी गणना आयुर्वेद के कुछ इने गिने मर्मज्ञों में की जाती थी। ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज के आप बहुत वर्षों तक निरन्तर प्रिंसिपल रहे थे। आपके निधन से वैद्यसमाज तथा आयुर्वेद को हुई क्षति की पूर्ति सहज ही सम्भव नहीं है। समस्त वैद्यसमाज की ओर से हम उनके शोक सन्तप्त परिवार के साथ सहानुभूति संवेदना प्रकट करते हुए भगवान श्री धन्वन्तरि से उनकी वियुक्त आतमा की चिरशान्ति की कामना करते हैं।

—स्वामी चेतनानन्द

शुद्ध लोह भस्म (बारीतर) २४) सेर

काश्मीरी शिलाजित, हमारे कारखाने में प्रतिवर्ष करीब २०० मन शास्त्र विधि अनुसार शुद्ध की जाती है। भाव-शुद्ध ३२) सेर, अशुद्ध पत्थर ८०) प्रति मन, वंग भस्म ३६), प्रवाल भस्म ३२), अभ्रक बज्रभस्म ४६), कांत लोह भस्म २८), स्वर्ण माक्षिक भस्म २८), रस सिन्दूर ८०), स्वर्णराज बंगेश्वर ८८), मंडूर भस्म २०), शंखभस्म ७), शृगं भस्म १४), कपर्दिक भस्म ८), मुक्ता शुक्ती भस्म १०),गोदन्ती भस्म ३।।।) चन्द्रप्रभा वटी २८), त्रिवंग भस्म ४८), कसीस भस्म १०) प्रति सेर। स्वर्ण सिन्दूर ३) प्रति तोला।

नोटः—इन भावों पर २० तोला से कम कोई वस्तु न भेजी जावेगी, सूचीपत्र मुफ्त।

च्यवनप्राश; ५ सेर का २१), १० सेर का ३८), २० सेर का ६५), रु०।

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स

(थोक आयुर्वेदिक औषधियों के बनाने का बड़ा कारखाना)

जी० टी० रोड, अमृतसर।

वैद्य बन्धुओ, अपनी आय बढ़ाओ

बिना पूंजी, बिना परिश्रम, बिना किसी व्यय के आय बढ़ाना चाहें, तो हम से पत्र व्यवहार करें। हमारा कारखाना भारत भर में थोक परिमाण में सस्ती एवं उत्तम सर्व प्रकार की आयुर्वेदिक औषधिएं सप्लाई करने में प्रसिद्ध है। कई प्रान्तीय गवर्नमेण्टें हमारी ग्राहक हैं। काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, अमृतसर।

मानस विज्ञानम्

श्री बलदेव शर्म्मा आयुर्वेदाचार्य, शास्त्री, आयुर्वेद बृहस्पति,
D. Sc.A., M.I.P.A. (Vienna), M.N.M.S. (Berlin)

[मानसविज्ञानमधिकृत्य प्रस्तुतेऽस्मिन्निबन्धसंग्रहे सूत्ररूपेण प्रतिपादितमस्ति विषयमिदम्। उद्धरणैश्च प्राक्तन शास्त्रान्तर्गतैरेव पारिभाषिकाः संज्ञाः निर्धारिताः सन्ति। न खलु नूतनाः शब्दरचना अस्मिन् प्रयतिताः; यथाऽस्त्याधुनिकानां विदुषां प्रवृत्तिः।

निबन्धनिर्मात्रा चाऽद्यतनीन मानसविज्ञानसाहित्याध्ययनमपि यौरोपे विहितम्। तदपि समाविष्टमस्यां लेखमालायामध्ये स्यन्ति पाठकाश्चरमेष्वध्यायेषु।]

१—सत्त्व प्रतिष्ठानम्

(प्रथमः परिच्छेदः)

१—उक्तं हि चरक तन्त्रेः—

"त्रिविधमौषधम्। दैवव्यपाश्रयम्, युक्तिव्यपाश्रयम्, सत्त्वावजयश्च।"

अथ चः—

(२) 'सत्त्वमात्माशरीरञ्च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्'। अनेन देहे, देहिव्यतिरिक्तं सकलमेव मानसं, सत्त्वमिति व्यपदष्टम्।

(३) मानसं च सकलं, मनो, मनोऽर्थो, बुद्धिश्चेति।

(४) 'अतीन्द्रियं पुनर्मनः सत्त्वसंज्ञकं चेत इत्याहुरेके' इति चरकोक्तौ मनसोऽपि सत्त्वनाम्ना व्यपदेशः। 'तदर्थात्मसंपदायत्तचेष्टं चेष्टा प्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम्' इत्यपि च चरक तन्त्रे।

(५) 'मनस्तु चिन्त्यमर्थः। तत्र मनसोः बुद्धेश्च त एव समानातिहीनमिथ्यायोगाः प्रकृतिविकृतिहेतवो भवन्ति।' इति चरके समासेन प्रतिपादितं सत्त्वावजयाय प्रक्रियात्मकं कृत्यम्।

(६) धीधृतिस्मृतयो बुद्धिः।

(७) धिया हिताहिते निश्चिनोति।

(८) धृत्या नियमनमहितादर्थात्।

(९) स्मृत्या प्रागनुभूतानामर्थानां विषयाणाञ्च यथेच्छं स्मरणम्। उत वा मनोऽनुबन्धाभ्यासनिमित्तरूपग्रहणसादृश्यविपर्ययादिभिः प्रबोधनहेतुभिः, अभिलषितमनभिलषितं वा, यथा प्रबधोनम् स्मरणम्।

तथा च चरके :—

'वक्ष्यन्ते कारणान्यष्टौ स्मृतिर्यैरुपजायते।
निमित्तरूपग्रहणात्सादृश्यात्सविपर्ययात् ॥
सत्त्वानुबन्धादभ्यासाज्ज्ञानयोगात्पुनः श्रुतात्।
दृष्टश्रुतानुभूतानां स्मरणात्स्मृतिरुच्यते ॥'

(१०) धीधृतिस्मृतिपूर्विका बुद्धिः।

(११) मनोधीधृतिस्मृतीनामुत्तरोत्तरं प्रभुत्वम्।

(१२) स्मृतिरेवाधारभूता धी धृत्योः। स्मृतियोगेनैव शक्यं, प्रागनुभूतानां भावानां परिणामित्वे हितमहितं वेति विवेचनम्, नवारम्भेषु च तुलनात्मिका बुद्धिः, अहितेभ्यो नियमनञ्च।

(१३) 'सर्वारम्भेषु स्मृतिपूर्विकैव प्रवृत्तिः' इत्युक्तं चरके। स्मृतिर्हि संस्कार-

निधिः । यथोक्तं योगसूत्रेः—'स्मृति संस्कारयोरेकरूपत्वात्' । व्यासभाष्ये च 'वृत्तिसंस्कारचक्रमनिशमावर्तते' इत्युक्तम् । अतश्च स्मृतिनिहितसंस्कारैश्चित्तवृत्तयोऽनुशास्यन्ते इति प्रतिपादितम् ।

(१४) स्मृतेः समयोगेनैव साध्यं मनोबुद्धिसमाधानं । मनसो बुद्धेश्च समानातिहीनमिथ्यायोगाः स्मृतियोगबलाधीना एव ।

(१५) देही चासौ पुरुषश्चेतनाधिष्ठानः, सकलं मानसं यन्त्रं तन्त्रयतीव; अक्रियावानपि कुरुते, भुङ्क्ते, पश्यति च सर्वम् ।

(१६) परं, धीधृतिस्मृतियोगेनैवैष आत्मा गुणैरेभिर्विशिष्यते । यथोक्तं चरके :—

'आत्मा ज्ञः करणैर्योगाज्ज्ञानं त्वस्य प्रवर्तते' योगसूत्रे च :—

'द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः'

(१७) गुणाश्चेमे धीधृतिस्मृतिष्वेव मूर्त्तिमन्तः; प्रतिबिम्बमात्मनस्तत्र । यथा च योगसूत्रम् 'चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ।'

अन्यत्र च "द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्" (यो० सू०)

(१८) धीधृतिस्मृतयः स्वप्रकृतिस्था एव मनोऽर्थानुपभोक्तुं, नियन्त्रयितुं, उपद्रष्टुं वा क्षमाः, नेतरथा ।

(१९) नियमनमिन्द्रियाणां मनसि, मनसश्च बुद्धौ, बुद्धेश्चात्मनि, इति प्रकृतिः ।

(२०) आवरणञ्चात्मनो बुद्ध्या, बुद्धेश्च मनसा, मनसश्चेन्द्रियै इति विकृतिः । आवरणमभिभवनमिति ।

(२१) इन्द्रियार्थेभ्यो मनोऽर्थानां सारूप्यं, सारूप्यं च धियो मनोऽर्थेभ्यः, इति विकृतिहेतुत्वम् ।

(२२) स्मृत्याधिकृता धीः, धियाधिकृतं मनः, मनसश्चाधिकृतानीन्द्रियाणीति प्रकृतिहेतवः ।

(२३) स्मृतेः सर्वोत्कृष्टत्वम् । 'स्मृतिनाशाद्विनश्यति' इत्युक्तं गीतायामपि ।

(२४) स्मृतिर्हि परमात्मनो लिङ्गं मानवेषु; भावानां साक्षिरूपत्वेनास्याः स्थितेः । सन्निकर्षाच्चात्मनः ।

(२५) स्मृतियोगेनैव खलु प्राधान्येन पुरुषः पश्यति पश्यँश्च स्वभावं भावानां, संस्कारान् साक्षात्कुरुते । सत्त्वावजयञ्च । यथोक्तं चरके 'स्मृत्वा स्वभावं भावानां स्मरन्दुःखात्प्रमुच्यते' । एतदपि चः—

'मनोबुद्धिसमाधानमर्थतत्त्वपरीक्षणम्
तत्त्वस्मृतेरुपस्थानात्सर्वमेतत्प्रवर्तते'

योगसूत्रे चः—

'श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्'

छान्दोग्योपनिषदि चः—

'संप्रजन्यं तदा याति न च यात्यागतं पुनः
स्मृतिर्यदा मनोद्वारे रक्षार्थमवतिष्ठति'

पुनश्च चरकेः—

'यत्रैकः स्मृतिविभ्रंशस्तत्र सर्वमसाधुवत्'

(२६) ज्ञानवृत्तिविशिष्टा च स्मृतिर्नोपलभ्यते मनुष्ययोनिमन्तरा ।

(२७) स्मृत्यैव प्रसंख्यानं क्लिष्टानां चित्तवृत्तीनां प्रतिप्रसवहानञ्च । प्रतिपादितञ्च व्यासभाष्ये ।

'हानोपायः सम्यग्दर्शनम्' (यो० सू० भा०) अन्यत्र च 'ख्याति पर्यवसानं हि चित्तचेष्टितम्' ।

(योगसूत्र भाष्य)

योगसूत्रञ्चः—'हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ।'

अन्यच्च 'पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेरिति ।'

व्यासभाष्ये चोक्तम्—'न च देशकालनिमित्तानुभवैर्विना तेषामस्ति साक्षात्कारः' (तेषां—संस्काराणामिति) स्मृत्यैव साधयितुं शक्यते, हेतुफलाश्रयालम्बनसंवेताना वासनासमुदायस्य देशकालनिमित्तानां, साक्षात्कारस्ततश्च तद्गुणानां प्रतिप्रसवः, पुरुषार्थहानञ्च, इत्येव च प्रसंख्यानवत्त्वम् यद्योगदर्शने प्रतिपादितम् ।

टिः—परिच्छेदेऽस्मिन् प्रतिपादितानां विषयांकुराणां भूयोऽपि स्पष्टीकरणमागामिषु परिच्छेदेषु प्राप्स्यन्ति विदुषः । विषयप्रतिष्ठानमितोऽवधि । (अनुवर्ति)

परीक्षाफल शुद्धि-पत्र

गत जुलाई मास की पत्रिका में प्रकाशित आयुर्वेद विद्यापीठ के १९५५ वर्षीय परीक्षा परिणाम में कुछ अशुद्धियां रह गई थीं । नीचे उनका शुद्धि पत्र प्रकाशित है जिसके अनुसार परीक्षा परिणाम का पाठक संशोधन कर लें ।

आयुर्वेदाचार्य

अशुद्ध	शुद्ध
१८८ हनुमान प्रसाद शर्मा	१८८ हनुमत्प्रसाद शर्मा
२५० हरिश्चन्द्र जैन	२५० हरिश्चन्द्रो जैन

वैद्य विशारद

१४९ लेखराज शर्मा	१४९ लेखराम शर्मा
१७१ अमरनाथ शर्मा	१७२ अमरनाथ शर्मा
२५० किशोरी दास वर्मा	२५० किशोरी लाल वर्मा

भिषक्

१३ खीयालदास दान्दवाणी	११ खायालदास दांदवाणी
१५८ गोपाल दत्त त्रिवेदी	१५८ गोपालदत्त द्विवेदी
१८५ कान्तिलाल त्रिवेदी	१९५ कान्तिलाल त्रिवेदी
२७५ महावीर प्रसाद रावत	२७४ महावीरप्रसाद रावत
२७१ अजमल खां	३७१ अजमल खां
४०४ भानाराम स्याग	४०४ थानाराम स्याग

वैद्य विशारद

क्रमांक ९ मार्त्तण्डराव तृतीय श्रेणी उत्तीर्ण

सामयिक विचार

पंचवर्षीय योजनाएं और आयुर्वेद

वैद्य श्री मक्खनलाल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, सोनगिरी चौक, वीकानेर

पंचवर्षीय योजनाओं में भारतीय चिकित्सा पद्धति "आयुर्वेद" के उत्थान, विकास और प्रसार की उपेक्षा का रूप आज आयुर्वेद समाज में चर्चा का गंभीर एवं प्रमुख विषय बन गया है। स्वाभाविक है कि वैद्य समाज में इस ओर उत्सुकता हो, आवश्यक भी है कि अपने समाज व देश के हितार्थ इस पद्धति के विकास के लिए प्रयत्नशील रहे।

कोई भी वर्ग उसी समय तक उन्नति प्राप्त करता है—अग्रसर होता है, जब वह अपनी समस्याओं के हल के लिए प्रयत्नशील रहे। आयुर्वेद-समाज का संगठन दिन प्रति दिन प्रगति पर रहा है, समय समय पर देश के लिए स्वास्थ्य सेवाओं में विदेशी चिकित्सा पद्धति 'एलोपैथी' को अयोग्य प्रमाणित कर देश के लिए भारतीय चिकित्सा पद्धति को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के स्थान पर आसीन करने के लिए केन्द्रीय व प्रांतीय स्वास्थ्य विभागों का ध्यान आकर्षित भी करता रहा है।

सर्वाङ्गीण विकास के लिए शासन का कार्यक्रम

देश के सर्वाङ्गीण विकास के लिए शासन ने पंचवर्षीय योजना के आयोजन के लिए सन् १९५१ में योजना आयोग की नियुक्ति की थी, आयोग ने योजना की रूप रेखा तैयार कर संसद के समक्ष रख कर स्वीकृति प्राप्त की। प्रथम पंचवर्षीय योजना जुलाई सन् १९५१ से आरंभ की गई जो मार्च सन् १९५६ में समाप्त होगी।

इसके पश्चात् द्वितीय पंचवर्षीय योजना सत्र प्रारम्भ होगा जिसकी रूप रेखा अभी निर्माणाधीन ही है—जोकि, निर्माण होने पर अक्टूबर के अन्तिम या नवम्बर के प्रथम सप्ताह में संसद के समक्ष, सार्वजनिक जानकारी व आलोचना के लिये प्रकाशित की जायगी। आवश्यक परिवर्तनों के पश्चात् मार्च के अन्तिम सप्ताह में द्वितीय योजना अन्तिम रूप में आजायगी, अप्रैल सन् १९५६ से इसका श्रीगणेश किया जायेगा।

आयुर्वेद ही उपयुक्त

योजनाओं का आयोजन देश के सर्वाङ्गीण विकास के उद्देश्य से किया गया है—इस आयोजन में स्वास्थ्य सेवाओं का भी क्रम आता है। यह निश्चित है कि भारत जैसे निर्धन देश में जिसके ९२ प्रतिशत नागरिक ऋण ग्रस्त हैं, किसी भी मंहगी चिकित्सा व्यवस्था की योजना सफल नहीं हो सकेगी; उदाहरण के तौर पर—भारत में हर वर्ष २५ लाख व्यक्ति क्षय से पीड़ित रहते हैं; उनमें प्रति वर्ष ५ लाख तो स्वर्ग यात्रा ही कर जाते हैं जबकि समस्त स्वास्थ्य सदनों में ७॥ हजार से अधिक रोगी स्थान नहीं पा सकते, अधिक स्थान बनाना बड़े खर्चे का काम है। ८ लाख रुपये व्यय किये जायें तो १०० रोगियों के लिए एक स्वास्थ्य सदन बने

और ३ हजार रुपये व्यय किये जायं तो एक रोगी को विदेशी चिकित्सा पद्धति के अनुसार सामान्य औषधि व्यवस्था प्राप्त हो। अब यह देखिए कि इन २४ लाख ९२।। हजार क्षय रोगियों के लिए स्थान बनवाये जायं तो १९९४ करोड़ रुपये व्यय करने होंगे। व्यय किए जाने के पश्चात् भी क्या निश्चित है कि चिकित्सा में सफलता मिलेगी ही ? वस्तुतः क्षय रोग की चिकित्सा और रोकथाम के विदेशी साधन (स्ट्रेप्टोमाइसिन, पैरा-एमिनो-सेलिसेलिक एसिड व बी. सी. जी. आदि) निरर्थक व तीव्र विष प्रमाणित भी हो चुके हैं।

भारत में प्रति वर्ष १० करोड़ व्यक्ति मलेरिया से पीड़ित होते हैं, जिनकी चिकित्सा व्यवस्था पर कमसे कम ३० करोड़ रुपया व्यय आता है फिर भी १० लाख से अधिक तो यमपुरी ही पहुंच जाते हैं। कुष्ठ का प्रसार भी भारत में अत्यधिक हो रहा है—संसार में कुष्ठ के जितने रोगी हैं उनका ५वां भाग अर्थात् १० लाख कुष्ठरोगी तो भारत में ही वर्तमान हैं। इसी प्रकार कैन्सर और नज़ले आदि घातक रोगों के रोगी लाखों की संख्या में विद्यमान हैं, इन रोगों की रोकथाम और चिकित्सा के असफल विदेशी प्रयत्नों में अर्बों रुपये व्यय कर स्वास्थ्य सेवाओं का विकास नहीं किया जा सकेगा।

यह स्पष्ट है कि जब तक देश का आर्थिक स्तर ऊंचा न होगा तब तक पौष्टिक खाद्य पदार्थों का अभाव ही रहेगा—कहते हैं कि आयके अनुपात से देश के ३० प्रतिशत नागरिक ही पौष्टिक भोजन खाने की सामर्थ्य रखते हैं। पौष्टिक खाद्य पदार्थों की हीनता ही दिन प्रति दिन जीवन शक्ति व रोग प्रतिरोधक शक्ति को कम करती जा रही है, यही कारण है कि इन घातक रोगों के रोगियों की संख्या भारत में निरन्तर बढ़ती जा रही है। हमारे देश में कम और असन्तुलित भोजन की समस्या व्यापक रूप से छाई हुई है, जब तक इस समस्या को हल नहीं किया जाता, तब तक रोगों की बाढ़ को नहीं रोका जा सकेगा।

रोग प्रतिरोधक शक्ति व जीवनशक्ति को कम करने का एक निश्चित कारण विदेशी चिकित्सा पद्धति की जीवाणुनाशक औषधियां भी हैं, एक ओर यह औषधियां अल्प समय के लिए रोगों को रोक देती हैं साथ ही शरीर के विभिन्न निर्माण कोषाओं पर घातक प्रभाव भी डालती हैं, दूसरी ओर भारत की अपनी ही चिकित्सा प्रणाली 'आयुर्वेद' की औषधियाँ रोगों को दूर करने के साथ ही जीवन शक्ति व रोग निरोधक शक्ति को उत्पन्न करती हैं।

यह स्पष्ट है कि विदेशी चिकित्सा पद्धति मनुष्य को शरीर तन्तु नाशक रोगों की ओर ले जा रही है और 'आयुर्वेद' इसी नाश के प्रति क्षमता प्रदान करने में सर्वोत्कृष्ट पद्धति है। 'आयुर्वेद' के आधार पर अत्यल्प समय व अल्प व्यय में ही समस्त देश में चिकित्सा सेवायें विकसित की जा सकती हैं। एक ओर 'आयुर्वेद' रोगों की रोक थाम व चिकित्सा का सुन्दर प्रयास हैं, दूसरी ओर विदेशी औषधियों पर होने वाले व्यय को रोकने व देश के आर्थिक विकास के प्रयत्नों का महत्वपूर्ण सहायक भी है।

आर्थिक और शारीरिक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए सभी चिकित्सा पद्धतियों के मन्थन करने पर यही निष्कर्ष निकला है

कि वस्तुतः भारत के लिए भारत की चिकित्सा पद्धति 'आयुर्वेद' ही उपयुक्त है। औषध निर्माण और जलवायु के लिहाज से अनुकूल भी 'आयुर्वेद' ही है।

विचार-विमर्श

द्वितीय पँचवर्षीय योजना के विषय में विचारने से पूर्व यह देखना है कि प्रथम पंचवर्षीय कार्यक्रम के अन्तर्गत केन्द्रीय शासन द्वारा चिकित्सा व स्वास्थ्य सेवाओं के लिए कितनी धन राशि स्वास्थ्य विभाग के अधीन रखी गई, उसमें से आयुर्वेदीय स्वास्थ्य व्यवस्थाओं के लिए कितना धन व्यय किया गया? किस प्रकार की योजनाओं का विज्ञापन किया गया था? किस प्रकार की योजनाएं कार्यान्वित की गईं?

अनुचित विषमता

३५ करोड़ ६९ लाख जन संख्या के इस देश में प्रथम पंचवर्षीय योजना की पूर्ति के लिए समस्त धन २०६९ करोड़ रुपये था, इसका करीब २०वाँ भाग अर्थात् १०० करोड़ रुपये स्वास्थ्य सेवाओं के लिए रखे गये, इसमें से केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने एक ओर जहाँ ९९ करोड़ ६२ लाख ९५ हजार रुपयों के व्यय की विदेशी चिकित्सा पद्धति के प्रसार की योजनाएं बनाईं, दूसरी ओर भारतीय चिकित्सा पद्धति व अन्य समस्त पद्धतियों के विकास के लिए सम्मिलित रूप में केवल ३७ लाख ५ हजार रुपये स्वीकृत किए।

एक ओर भारत के १० प्रतिशत नागरिक भी 'विदेशी चिकित्सा पद्धति' द्वारा जिसके केवल ३५ हजार ही चिकित्सक हैं पूरा स्वास्थ्य लाभ नहीं कर पाते—९९॥ प्रतिशत से भी अधिक धन राशि की योजनाओं का बनाया जाना, दूसरी ओर ९० प्रतिशत नागरिकों की चिकित्सा व्यवस्था करने वाली 'भारतीय पद्धति' के विकास के लिए जिसके ५ लाख चिकित्सक हैं आधा प्रतिशत से भी कम धन स्वीकार किया जाना—कहां तक विकासशील प्रयत्न है?

आयुर्वेद विकास योजनाओं का स्वरूप

"पहली पंचवर्षीय योजना" (जनता संस्करण) में 'देशी तथा अन्य चिकित्सा प्रणालियां' शीर्षक के अन्तर्गत आयुर्वेद विकास योजनाओं का निम्न रूप रखा गया था :

(१) अनुसन्धान—"यह जरूरी है कि देशी दवाइयों के अनुसन्धान का कार्य बाकायदा हो ताकि ठीक से परीक्षण किया जा सके, उनके नामों का पता लग सके, उनका उत्पत्ति स्थान निश्चित हो सके, तथा किस भाग में जड़ीबूटी सफलतापूर्वक पैदा की जा सकती है।

जड़ीबूटियों को जमा करने, उनको बांटने के तरीकों में जल्द ही सुधार किया जाना जरूरी है"।

(२) शिक्षण—"भारतीय ढंग से चिकित्सा शास्त्र को सफल बनाने के लिए जरूरी है कि वैद्यों की ट्रेनिंग का सिलसिला बाकायदा निश्चित हो। फिलहाल तो इन देशी चिकित्सा स्कूलों में कहीं भी एक से पाठ्यक्रम का अनुसरण नहीं किया जा रहा है, इस विषय में जो पाठ्यक्रम बनाया जाय, वह ऐसा होना चाहिये जिससे विद्यार्थी इस चिकित्सा प्रणाली के इलाज करने में दक्ष हो जायं।

यह चिकित्सा शास्त्र विदेशी चिकित्सा शास्त्र की उपेक्षा नहीं कर सकता। यह स्पष्ट है कि इस पाठ्यक्रम में आयुर्वेदिक प्रणाली को आयुर्वेदिक चिकित्साचार्यों की

सलाह से विशेष रूप से सुदृढ तथा सार्थक बनाना होगा, कुछ चुनी हुई संस्थाओं का स्तर तो इतना उठा दिया जाना जरूरी है कि उनमें उच्चकोटि का अनुसन्धान कार्य किया जा सके"।

(३) चिकित्सा—"इस बात की जरूरत है कि काफी तादाद में और उचित मूल्य पर अच्छी दवाइयों तथा चिकित्सा के अन्य उपकरणों का उत्पादन बढ़ाया जाय"—

(क) "आयुर्वेद की दवाइयों को इस तरह बनाया जाय कि वे नुस्खे के रूप में दी जा सकें, इस ध्येय के लिए 'एलोपैथिक अनुसन्धान समिति' ने एक जड़ीबूटी परीक्षण कमेटी की स्थापना की है"।

(ख) "भारत के स्वास्थ्य विभाग ने औषधि गवेषणाशाला में इन जड़ी बूटियों के परीक्षण के लिए तथा बाजारू दवाइयों में मिलावट की जांच करने के लिए एक 'औषधि परीक्षण विभाग' खोल दिया है"।

(ग) "औद्योगिक अनुसन्धान परिषद' ने लखनऊ में एक गवेषणाशाला की स्थापना की है जोकि रोजमर्रा काम में आने वाली जड़ी बूटियों की जांच करेंगे ताकि उपयोगी जड़ी बूटियों का उत्पादन खास खास जगहों पर बढ़ाया जा सके"।

(घ) "भारत सरकार ने एक कमेटी नियुक्त की है जो कि देश के लिए अनुकूल फार्माकोपिया (वैद्यक शास्त्र) तैयार करेगी इस फार्माकोपिया में एलोपैथिक दवाइयों व भारतीय जड़ी बूटियों की संक्षिप्त सूची होगी"।

(ङ) "भारत सरकार ने एक खास सिन्कोना कमेटी नियुक्त की है, ताकि सिन्कोना उद्योग की समस्या की जांच करे, पश्चिमी बंगाल और मद्रास प्रतिवर्ष १ लाख पौण्ड कुनैन का उत्पादन करते हैं, यह जरूरी है कि कुनैन का उत्पादन बढ़ाकर १॥ लाख पौण्ड तक पहुंचा दिया जाय"।

उक्त योजनाओं के विषय में १३ मार्च सन् १९५५ को लोक सभा में प्रसारित केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय के प्रतिवेदन में बताया गया था कि—"१५ लाख रुपया जाम नगर गवेषणाशाला पर खर्च करने के लिए अलग कर दिया गया है, बाकी २२ लाख ५ हजार रुपया विभिन्न गवेषण सँस्थाओं को आर्थिक सहयोग देने मे खर्च होगा"।

योजनाएं या सुझाव

देश के सर्वाङ्गीण विकास के अन्तर्गत स्वास्थ्य सेवाओं के लिए यह आवश्यक है कि 'भारतीय चिकित्सा पद्धति' के प्रसार—विकास' के लिए प्रयत्न किए जायें, इस कार्य में शासन का सहयोग अत्यावश्यक है, बिना सहयोग विकास योजनाएँ नहीं चलाई जा सकतीं।

एक ओर देश में प्रत्येक समस्या के हल को ढूंढने का प्रयत्न किया जा रहा है, दूसरी ओर हमारा स्वास्थ्य विभाग जान-बूझ कर स्वास्थ्य सेवाओं के प्रश्न को उलझाता रहा है, चाहिए तो यह था कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के शीघ्र पश्चात् ही 'भारतीय चिकित्सा प्रणाली' को राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली के रूप में अपनाता, किन्तु इसकी सर्वथा उपेक्षा की गई—आज से १० वर्ष पूर्व परतन्त्रता के युग में विदेशी शासन भारत की उत्कृष्ट वस्तुओं को हेय और विदेशी हेय वस्तुओं को उत्कृष्ट समझता था, वही हाल हमारे स्वास्थ्य विभाग का है, उसका रवैया स्वतन्त्रता प्राप्ति के ८ वर्ष पर्यंत भी नहीं बदला—यह आश्चर्यजनक बात है!

यह स्पष्ट है कि उक्त घोषित की गई योजनायं नहीं बल्कि सुझाव हैं। मगर सुझाव भी किसके लिए ?—केवल कागजी घुड़दौड़ के लिए ?

क्या ये विकास योजनाएँ हैं ?

आयुर्वेद विशेषज्ञों की यही राय है कि आज अनुसन्धान की अपेक्षा इसके अष्टाङ्गों के विकास का प्रयत्न किया जाय। इसका विकास स्वतः अनुसन्धान व विदेशी चिकित्सा पद्धति की शल्य, शालाक्यादि चिकित्सा विधियों की पूर्तिकार्य का मार्ग बन जायेगा। इस योजना के निर्माण से स्पष्ट है कि यह योजना आयुर्वेद से अनभिज्ञों द्वारा बनाई गई है।

—केवल जड़ी बूटियों के नाम का पता लगाना, उनका उत्पत्ति स्थान निश्चित करना, उन्हें जमा करने, उन्हें बांटने के तरीकों के बारे में सोचना—यह अनुसन्धान कार्य है ?

क्या जामनगर केन्द्रीय अनुसन्धान संस्था में इसी कार्य के लिये उक्त राशि व्यय की जा रही है ? वस्तुतः इस अनुसन्धान संस्था में भारतीय चिकित्सा पद्धति के लिए नहीं बल्कि विदेशी चिकित्सा पद्धति के लिए भारतीय चिकित्सा पद्धति का स्वीकृत धन व्यय किया जा रहा है।

"कुछ चुनी हुई संस्थाओं का स्तर ऊँचा करने के लिये जल्द ही कदम उठाना पड़ेगा, कम से कम एक संस्था का स्तर तो इतना ऊंचा उठा दिया जाना जरूरी है कि उसमें उच्च कोटि का अनुसन्धान कार्य किया जा सके"—यह आयुर्वेद की शिक्षण योजना है ? योजना है तो कितनी संस्थाओं में कार्यान्वित की गई ? कितने वैद्यों ने स्नातकोत्तर शिक्षण प्राप्त किया है ?

योजना काल के ३ वर्ष पश्चात् जामनगर में केन्द्रीय अनुसन्धान संस्था का संचालन शुरू किया गया, वह भी विदेशी चिकित्सा-विज्ञों के हाथों न कि आयुर्वेद विशेषज्ञों द्वारा। जो व्यक्ति आयुर्वेद से अनभिज्ञ हैं, साथ ही घृणित व्यवहार करने पर भी तुले हुये हैं—कैसे विश्वास हो कि इस पद्धति के लिए कार्य कर सकेंगे ?

इसी तरह योजना काल के समाप्त-प्रायः ५ वें वर्ष में केन्द्रीय उपस्वास्थ्य मंत्राणी महोदया द्वारा यह घोषित किया गया था कि—"केन्द्रीय सरकार ने सौराष्ट्र सरकार के सहयोग से जामनगर में एक केन्द्र खोला है, जहाँ आयुर्वेदिक स्कूलों के स्नातक तथा आधुनिक डाक्टरी के स्नातक आयुर्वेद का अध्ययन कर सकेंगे।"

उक्त योजना के अनुसार स्वास्थ्य विभाग ने भारतीय चिकित्सा पद्धति के विकास की अपेक्षा इसे विदेशी चिकित्सा पद्धति में मिश्रण कर पथ भ्रष्ट करने का प्रयास किया है—स्वास्थ्य विभाग के उच्चाधिकारियों से पूछा जाय कि क्या आयुर्वेद के रस भस्म आसव, गुटिका, अवलेह, घृत आदि की वस्तुएं (द्रव्य) पृथक रूप में दी जा सकेंगी ? नहीं, तो फिर आयुर्वेद से अनभिज्ञों की कमेटी की स्थापना इस कार्य में व्यर्थ व्यय करने के लिये की गई है ?

स्वास्थ्य विभाग आयुर्वेद विकास के लिए तो केवल सुझाव ही रखता है किन्तु विदेशी चिकित्सा प्रणाली के असफल प्रयत्नों (बी. सी. जी. व मच्छर मक्खीमार औषधियों) पर लाखों रुपये निरन्तर व्यय कर रहा है।

कुनैन के उत्पादन को बढ़ाने का प्रयत्न करना, जड़ी बूटियों की सूचियां तैयार करना—आयुर्वेद विकास योजना है ?

'पहली पंचवर्षीय योजना' के अन्तर्गत प्रकाशित की जाने वाली आयुर्वेद विकास सम्बन्धी योजनाएं, आयुर्वेद विकास के लिए नहीं बल्कि जड़ी बूटियों का उत्पादन बढ़ाकर इनके स्थानों का निश्चय कर इन वनस्पतियों को निर्यात करने के लिए 'औद्योगिक परिषद' द्वारा प्रस्तुत किए गए सुझावों का एक रूप है। जनता इस भ्रम में रहे कि आयुर्वेद के लिए कुछ किया जा रहा है और स्वास्थ्य मन्त्रालय ने आयुर्वेद के विकास के लिए किंचित् भी व्यय नहीं किया बल्कि इसे बदनाम करने का प्रयत्न ही किया है।

राज्यों की आयुर्वेद योजनाएं

पंचवर्षीय कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्यों में चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा सम्बन्धी योजनाओं पर ३९ करोड़ रुपये व्यय करने की व्यवस्था की गई थी, इनमें से केवल १ करोड़ ८९ लाख २३ हजार रुपये आयुर्वेद, यूनानी आदि चार चिकित्सा पद्धतियों के अध्ययन, ट्रेनिंग और चिकित्सालयों के संचालन कार्यों पर व्यय करने स्वीकृत किये गये।

केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग की तरह स्वास्थ्य के क्षेत्र में राज्यों ने भी आयुर्वेद की उपेक्षा ही की है। आयुर्वेद के लिए कुछ किया जा रहा है यह बताने के लिए केवल ग्रामों में कुछ साधारण प्रकार के औषधालय खोले गये। इन औषधालयों से स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार होगा यह कहना उपहासास्पद ही नहीं बल्कि आश्चर्यजनक भी ह। उदाहरण के लिए—एक राज्य ने आयुर्वेदिक औषधालय के संचालन का वार्षिक व्यय १ हजार ९० रुपया स्वीकृत किया है, इसमें से औषधियों पर दैनिक व्यय ८ आने मात्र रखा गया है। सभी राज्य स्वास्थ्य विभागों ने लगभग इसी प्रतिमान के औषधालय चालू किए हैं। एक ओर जहाँ विदेशी पद्धति के चिकित्सालय पर वार्षिक व्यय १० लाख रुपये व साधारण चिकित्सालय के लिए १७ हजार रखे, दूसरी ओर आयुर्वेदिक औषधालयों के लिए उक्त अल्पतम राशि रखी गई—भला देश में इनसे स्वास्थ्य सेवाओं का कितना विस्तार होगा, नागरिक क्या लाभ प्राप्त करेंगे ?—यह स्पष्ट विदित है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना समाप्ति पर

प्रथम योजना काल समाप्त होने जा रहा है द्वितीय पंचवर्षीय योजना का समय निकट आ रहा है। यह उल्लेखनीय है कि गत मास स्वास्थ्य मन्त्राणी राजकुमारी अमृतकौर महोदया ने 'मेडिकल एसोशिएशन' की शिमला शाखा में आयुर्वेद की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए बताया कि, "एलोपैथी और आयुर्वेद दोनों एक साथ रहेंगी; चीरफाड़ के मामलों में एलोपैथी अनिवार्य है, अन्य बीमारियों में आयुर्वेद अच्छी है"। इस कथन के अनुसार यह देखना है कि स्वास्थ्य विभाग द्वितीय योजना में आयुर्वेद के विकासार्थ किस प्रकार की योजनाएं बना रहा है ? कितनी राशि व्यय करने का सुझाव योजना आयोग के समक्ष रख रहा है या केवल जनता को भ्रम में डालने के लिए 'आयुर्वेद' की प्रशंसा मात्र ही कह रहा है ?

आयुर्वेद विकास योजना की रूप रेखा

यह निश्चित है कि आयुर्वेद विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों में इसके विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तुत योजनाएं ही स्वीकृत कर कार्यान्वित की जायें, इस सम्बन्ध में शिक्षण, अनुसन्धान

और चिकित्सा केन्द्र चालू किए जायं। इन केन्द्रों का संचालन और कार्य इस पद्धति के सिद्धान्तानुसार ही किया जाय।

शिक्षण—भारतीय चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन के लिए चालू किए जाने वाले विद्यालयों, महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों में निम्न विषयों के ८ विभाग स्थापित किए किए जायं—

(१) शल्य तन्त्र, (२) शालाक्य तन्त्र, (३) कायचिकित्सा, (४) मानस रोग, (५) कौमार भृत्य व प्रसूति, (६) विष-तन्त्र, (७) रसायन तन्त्र और (८) वाजीकरण तन्त्र।

अ—आवश्यकतानुसार इन विभागों को उपविभागों में विभाजित किया जाय।

आ—प्रत्येक शिक्षणार्थी को ३ वर्ष तक इस पद्धति के आठो अंगों का सामान्य ज्ञान कराया जाय, पश्चात् एक वर्ष तक किसी एक वांच्छित विषय का विशेष अध्ययन कराया जाय।

इ—प्रत्येक विभाग में कर्माभ्यास के समस्त साधनों को एकत्रित किया जाय जिससे विद्यार्थी इसके प्रत्येक तन्त्र को पूर्ण रूप से समझ सकें, उन आधुनिक यन्त्रों की भी व्यवस्था हो जो आयुर्वेद पद्धति के विकास में सहयोग दे सकें।

ई—स्नातकोत्तर शिक्षण चालू किया जाय—यहाँ वैद्यों को शल्य शालाक्यादि विधियों का कर्माभ्यास कराया जाय।

उ—शिक्षा संस्थाएं वहाँ स्थापित की जायं जहां अष्टांग आयुर्वेद चिकित्सालय हों जिससे शिक्षार्थी प्रत्यक्ष कर्माभ्यास कर सकें।

अनुसंधान और चिकित्सा—यह सभी आयुर्वेदज्ञ स्वीकार करते हैं कि अनुसंधान कार्य और चिकित्सा संस्थाएं दूर दूर नहीं रखी जायं बल्कि एक दूसरे से सम्वद्ध रखी जायं। तीन प्रकार के चिकित्सालय चालू किए जायं—

(१) प्रथम श्रेणी, (२) द्वितीय श्रेणी और (३) तृतीय श्रेणी।

प्रथम श्रेणी का चिकित्सालय—प्रति लाख जन-संख्या पर एक के हिसाब से। इसे दो विभागों में विभाजित किया जाय—

(१) अन्तरंग (२) बहिरंग

अन्तरंग विभाग में निम्न ८ उपविभाग हों—

(क)—रसायन शाला, (ख)—आतुरालय, (ग)—औषधालय, (घ)—शालाक्य, (ङ)—शल्य, (च)—यन्त्र, (छ)—अनुसंधान शाला, (ज)—कौमार रोग व प्रसूति।

बहिरंग विभाग में निम्न २ उपविभाग हों—

(क)—औषध चिकित्सा, (ख)—सामान्य शल्य-चिकित्सा।

द्वितीय श्रेणी का चिकित्सालय—प्रति ५० हजार जन संख्या पर एक। इसे दो विभागों में विभाजित किया जाय—

(१) अन्तरंग, व (२) बहिरंग

अन्तरंग विभाग में २ उपविभाग हों—

(क)—सामान्य रोग आतुरालय, (ख)—संक्रामक रोग आतुरालय।

बहिरंग विभाग में ३ उपविभाग हों—

(क)—औषधालय, (ख)—औषध चिकित्सा, (ग)—शल्य, शालाक्य चिकित्सा।

तृतीय श्रेणी का चिकित्सालय—५ हजार से कम जन संख्या के लिए। इसमें ३ विभाग हों—

(१) औषधालय, (२) आतुरालय, (३) शल्य, शालाक्य, काय चिकित्सा।

स्वास्थ्य सेवाओं के विकास के लिए उक्त प्रकार के आयुर्वेद विकास केन्द्र चालू किए जाएं तो विदेशी चिकित्सा पद्धति की समस्त आवश्यकताएँ पूरी होंगी. विदेशों द्वारा देश का शोषण रोका जा सकेगा ।

द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना का प्रारूप

आजकल द्वितीय योजना का प्रारूप भी स्पष्ट रूप में किन्तु धीरे धीरे हमारे सामने आ रहा हैं । इस योजना की समस्त धन राशि ५६ सौ करोड़ के अनुमानित है, इसमें से केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग ने योजना आयोग के समक्ष २०८ करोड़ २९ लाख रुपयों के व्यय की योजनाएं रखी हैं जिसमें विदेशी चिकित्सा प्रणाली के लिए २०७ करोड़ ४ लाख रुपये व्यय करने का और शेष केवल १। करोड़ रुपये आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथी और प्राकृतिक आदि चारों चिकित्सा पद्धतियों पर व्यय करने का प्रस्ताव है ।

आयुर्वेद विकास के लिए द्वितीय योजना में प्रथम योजना के अनुरूप ही अनुसन्धान केन्द्र व गवेषणा संस्थाएं चलाने का प्रस्ताव है । इन प्रस्तावों को देखते हुए स्वास्थ्य सेवाओं के विषय में यही कहा जाना उचित है कि केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय आज भी विदेशी चिकित्सा पद्धति के चक्कर में है और विदेशों को देश का धन लुटाने के कार्य में ही व्यस्त दिखलाई देता है । यह स्पष्ट हो गया कि मेडीकल एसोसियेशन की शिमला शाखा में—केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्राणी जी का उक्त कथन स्टन्ट मात्र था । इन योजनाओं से आयुर्वेद विकास कैसे सम्भव है ? सचमुच वैद्य समाज के सामने आयुर्वेद की उपेक्षा का प्रश्न आज गंभीर और प्रमुख विषय बन गया है ।

आयुर्वेद विकास के लिए तीव्र घोष

स्वास्थ्य सेवाओं में आयुर्वेद का विस्तार अत्यावश्यक है, अतः राष्ट्रीय विकास परिषद, औद्योगिक अनुसन्धान परिषद, और अङ्क व अर्थशास्त्रियों तक इन तथ्यों एवं वास्तविकताओं को तीव्र घोष से पहुंचा देना चाहता हूँ कि वे केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के उच्चाधिकारियों और भारत सरकार के अङ्क परामर्शदाता, द्वितीय पंचवर्षीय योजना के निर्माता माननीय 'डा० पी. सी. महालानोविस' का ध्यान आयुर्वेद के विकास की ओर आकर्षित करें ताकि द्वितीय योजना में इसे उचित स्थान मिले जिससे देश की स्वास्थ्य सेवाओं का अल्प समय व सही रूप में विस्तार हो सके ।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी,
विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता,
सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण
माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक
आदि सब प्रकार के खनिज
तथा वनौषधि द्रव्य थोक
व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें ।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७९६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड़, बम्बई

औषध संकट

राजवैद्य प्राणाचार्य कविराज डाक्टर श्री प्रभाकर चट्टोपाध्याय
एम० ए०, डी० एस० सी०, आयुर्वेद वृहस्पति

आयुर्वेद महामहोपाध्याय श्री मद्भाव मिश्र ने कहा है कि मनुष्य के बिना देश नहीं है एवं कोई मनुष्य भी निरोग नहीं रह सकता है; इसलिये भिषक्वृत्ति चिरकाल ही है और चिरकाल ही रहेगी, क्योंकि शरीर व्याधि का मन्दिर है। वैदिक युग में शरीर अस्वस्थ होने पर साधारणतः द्रव्य-बहुल औषध व्यवहृत नहीं होते थे। औषध के स्थल में पंचकर्म अर्थात् कफ में वमन, पित्त में विरेचन, वात में बस्ति, शिरोरोग में नस्य लेना और वातव्याधि में स्वेद प्रयोग, जप, पूजा, होम, बलि-प्रदान, मन्त्रपाठ, मन्त्रपूत जलपान, कवच धारण और वृक्षादि का मूलधारण, साधु संसर्ग, साधु का दर्शन एवं देवता, गाय, ब्राह्मण और गुरुजनों की पूजा आदि के द्वारा मनुष्य रोग से छुटकारा पाते थे। किन्तु कालक्रम से वैदिक युग के अन्त में देखा गया कि उन सब प्रक्रियाओं द्वारा व्याधि आरोग्य नहीं होते थे। काल के प्रभाव से मनुष्य की आयु-शक्ति और वीर्य क्षीण होने लगा। ऋषिगणों की तत्त्वज्ञानलाभमूलक साधना में क्रमशः विघ्न उपस्थित होने लगा। इसलिए उन लोगों ने क्वाथ, अवलेह, चूर्ण, गोली, प्राश, मोदक, आसव, अरिष्ट, सुरा, घृत, तेल आदि, अनेक प्रकार के संशोधक, संशमन, वृंहन, रसायन और बाजीकरण औषधों की परिकल्पना कर काय, शल्य आदि मिलाकर अष्टांग आयुर्वेद शास्त्र की सृष्टि की। किन्तु कुछ समय बाद देखा गया कि इनसे भी रोग दूर नहीं होते थे। तब औद्भिज्य और प्राणिज भेषज छोड़कर ऋषिगण धातु जगत से भेषज द्रव्य अन्वेषण करना आरम्भ किये। इस अनुसंधान के कारण पारद, गन्धक, लोह, अभ्रक, सोना, चांदी, तांबा, सीसा, जस्ता, गेरू मिट्टी, मक्षिकादि धातूपधातु, रसोपरस, विषोपविष आदि द्रव्यों का व्याधि विनाश के लिए व्यवहार किया जाने लगा। जिस समय से पारद, गन्धक, मणि, मोती, हीरा, प्रवाल आदि द्रव्यों का प्रयोग होना आरम्भ हुआ था वह समय आयुर्वेदीय भेषज समूह के क्रम विकास के इतिहास का स्वर्ण युग है। कारण, धातव औषध के व्यवहार के समय ऋषिगण परीक्षा कर समझ गये थे कि औद्भिज्य और प्राणिज औषध के प्रयोग से जो सब व्याधि बहुत दिनों तक असाध्य बोलकर परिगणित हो रहे थे, रस, गन्धक, लोह, अभ्रक, प्रवाल, मोती, हीरकादि के द्वारा वे सब अति सहजसाध्य प्रमाणित हुए।

चरक, सुश्रुत और वागभट्ट प्रणीत तीन प्रधान ग्रन्थों में इस रस चिकित्सा के सम्बन्ध में किसी प्रकार की आलोचना नहीं की गई है। पारद, गन्धक, लोह, अभ्रक, मणि, पुखराज, हीरा, मोती आदि के गुणागुण से उक्त संहिता ग्रन्थों के लेखक परिचित नहीं

थे, यह अधुनालब्ध ऐतिहासिक प्रमाणों के द्वारा सिद्ध नहीं होता है।

अति प्राचीन काल से कायचिकित्सकगण एवं रसचिकित्सकगणों के बीच में विद्वेष की अग्नि धधक रही थी। कारण, रसचिकित्सकगण कायचिकित्सकगणों के प्रधान उपजीव्य त्रिदोष सिद्धान्त के ऊपर तादृश निर्भरशील नहीं थे। परन्तु वे विभिन्न द्रव्यों के एवं विभिन्न द्रव्य संयोग से उत्पन्न गुणों के विशेष प्रभाव के ऊपर विश्वास रखते थे। कायचिकित्सकगण बहुत दिनों की अभिज्ञता के फलस्वरूप एक सिद्धान्त ठीक किए थे कि नवज्वर में अमावस्या के समय कोई भी औषध प्रयोग करना उचित नहीं है। औषध प्रयोग करने से ज्वर तो अच्छा होता ही नहीं है, बल्कि अधिकांश क्षेत्रों में बढ़कर रोगी का प्राणसंहारक होता है। किन्तु रसचिकित्सकगण, अर्थात् पारद, गन्धक, लोह, अभ्रक, मीठा विष, लांगली विष और कृष्णसर्प विषादि द्रव्यों को भेषज रूप में व्यवहार करने वाले, ज्वर के प्रारम्भ में ही औषधियों की व्यवस्था करते थे। वे ऊँची आवाज से घोषणा किए "आज ज्वर हुआ है, आज ही औषध दो, रोगी सत्त्वर निरामय हो जायगा"। ग्रहणी रोग में शोष रक्तहीनता, औदरिक क्षत और क्षय उपस्थित होने पर असाध्य समझ कर कायचिकित्सकगण जब रोगी को छोड़ देते थे, तब रसचिकित्सकगण पारद, गन्धक और सुवर्ण के संयोग से प्रस्तुत स्वर्णपर्पटी प्रयोग कर उसी रोग को आरोग्य कर देते थे। कायचिकित्सकगणों को चमत्कृत कर देते थे। इसके फल से कायचिकित्सकगणों की बहुत दिनों की चिन्ताधाराके मूलमें कुठाराघात हुआ। कायचिकित्सकगण रसचिकित्सकगणों को ढोंगी, पाखण्डी, पाषाणवैद्य, मूर्ख, दर्शनशास्त्र से अनभिज्ञ, त्रिदोष विज्ञान से अनभिज्ञ आदि नाना प्रकार के विशेषण से दोष देकर उनसे सब प्रकार का सम्बन्ध तोड़ लिये। किन्तु रस चिकित्सकों द्वारा आविष्कृत औषधियों में वैज्ञानिक युक्ति थी। रसचिकित्सकगण द्रव्यों की आणविक सूक्ष्म शक्ति के ऊपर आस्था रखते थे। अति प्राचीन काल में वे हिन्दु दर्शन शास्त्र से आविष्कृत विज्ञान के अति सूक्ष्म तत्त्व, यथा, स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की शक्ति अनन्तगुण अधिक, इस सत्य को अच्छी तरह से जान गये थे। इसलिए उनके व्यवहृत प्रत्येक द्रव्य को वे अति सूक्ष्मरूप में परिणत करने के पक्षपाती थे एवं सूक्ष्म औषध प्रयोग करके ही वे स्थूल की अपेक्षा सहस्रगुण अधिक फल पाने लगे थे। इस सूक्ष्म दृष्टिबल से वे अभ्रक, लोह, स्वर्णादि को अति सूक्ष्मरूप में परिणत कर मानव शरीर में अवस्थित सूक्ष्म आत्मा के साथ संमिश्रित करने में समर्थ हुए थे।

रसचिकित्सकों का प्रधान उपजीव्य विषय था गन्धक। इस गन्धक के विभिन्न मात्रा में विभिन्न प्रकार के प्रयोग के फलस्वरूप वे रससिन्दूर और मकरध्वज बना सके थे। गन्धक की सहायता से पारद रसक्रिया द्वारा भावान्तरित होकर मकरध्वज रूप में परिणत होता है। रसतांत्रिकगण पारद को शिव का वीर्य एवं गन्धक को पार्वती की रजः बोलकर वर्णन किये हैं। असल में हरवीर्य गौरी तेज के साथ संयुक्त न हो सकने पर उत्कृष्ट फल उत्पन्न नहीं कर सकता है। आयुर्वेद में जिन सब क्षेत्रों में पारद के व्यवहार का उल्लेख है उन प्रत्येक क्षेत्रों में ही गन्धक का व्यवहार है।

गन्धक के बिना पारद कहीं भी प्रकृष्ठ फल प्रदर्शन नहीं कर सकता है।

प्राचीन काल में भारतवर्ष में प्रचुर परिमाण में पारद और गन्धक मिलता था विशेषरूप से काश्मीर में पारद, गन्धक और हिंगुल की अति उत्कृष्ट खदानें थीं और अभी भी है। पूर्वकाल में काश्मीर से ये तीन द्रव्य भारत के विभिन्न स्थानों में भेजे जाते थे एवं वैद्यगण प्रभूत परिमाण में खनिज पारद, हिंगुल और गन्धक व्यवहार कर अति उत्कृष्ट शक्तिशाली विशुद्ध आयुर्वेदीय औषध प्रस्तुत करते थे। शुकपुच्छ, नवनीताक्ष खनिज आमलासार गन्धक ही प्राचीन वैद्यगण औषधार्थ व्यवहार करते थे।

आयुर्वेद शास्त्रानुसार शाधित आमलासार गन्धक सर्वरोगनाशक, रसायन, बाजीकरण, वृंहन और विशेषकर सब रोगों के बीजाणु का नाश करने वाला है। रसतांत्रिकगणों के मतानुसार संसार में ऐसा कोई रोग नहीं है, जो कि गव्यघृत शोधित आमलासार गंधक के गाय के दूध द्वारा सेवित होने पर आरोग्य नहीं होता है। गन्धक की क्षय और क्षतनाशक शक्ति विचित्र है। बौद्धयुग के बहुत आगे आर्य-ऋषि-गण गन्धक के इस अपूर्व प्रभाव से परिचित हो गये थे एवं अनेक विधियों से इसका प्रचार किये थें। किन्तु पाश्चात्यगण आचार्य सर प्रफुल्लचन्द्रराय की विलायत यात्रा के पहले तक पारद और गन्धक के संयोग से जो कज्जली तैयार होती है, वह नहीं जानते थे (That the combination of Mercury and Sulphur forms an amalgam was unknown to the west before the advent of Sir P.C. Roy in England)। भारतीयगण किन्तु ३००० वर्ष पहले—मेहन्जोडेरो की खुदाई के बाद आधुनिक प्रत्नतात्त्विकगण के मतानुसार १२००० हज़ार नर्ष पूर्व—पारद और गन्धक के संमिश्रण से औषध उत्पन्न होकर मनुष्य का जो अशेष कल्याण साधन कर सकता है उस विषय से परिचित हो गये थे। वर्त्तमान समय में क्या आयुर्वेद क्या ऐलोपैथी, क्या होमियोपैथी, सब क्षेत्रों में गन्धक ही सर्वश्रेष्ठ औषध के रूप में परिगणित होती है। बृटिश फारमाकोपिया के सल्फा ग्रुप के औषध आजकल पृथ्वी के बाजारों में सर्वत्र छा गये हैं। महाशक्तितेज सम्भूत पार्वतीरजः ही औषधिजगत में सम्राज्ञीरूप में प्रतिष्ठिता हुई है।

ऋषि बंकिमचन्द्र ने कहा है कि, जिस दिन से पाश्चात्य विद्वानों ने, विशेषरूप से जर्मन विद्वानों ने संस्कृत विद्या सीखना आरम्भ किया वह दिन भारतवर्ष के लिये अति खराब दिन है। कारण, ये जर्मन पण्डितगण संस्कृत सीख कर भारत का वेद वेदान्त, दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद, रसायन आदि संस्कृत विद्या के अंगीभूत सब शास्त्र आयत्त कर भारतीयगण जो विद्या एवं ज्ञान-विज्ञान के विषयों में पृथ्वी के सब जातियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं यह जान गये और ईर्ष्या की अग्नि में जलने लगे। एवं बान, रोम केम्ब्रिज और आक्सफार्ड, इन चार विश्वविद्यालयों द्वारा शिक्षा प्रचार का काम आरम्भ कर भारतीय सभ्यता बाईबिल-प्रदर्शित सभ्यता से नीचा है, यह प्रमाणित करना सबके लिये आवश्यक किया गया। और साथ ही साथ भारतीय रसायन विज्ञान-वर्णित भेषज द्रव्यों को कृत्रिम उपाय से प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई और

उसमें वे कामयाब हुए। उन्होंने भारतीय रसायन शास्त्र में वर्णित अधिकांश औषध द्रव्यों को कृत्रिम उपाय से तैयार किया। इससे जैसे जगत के अनेक अत्याचार और अनाचार निवारित हुए हैं वैसे अनेक खराब परिणाम भी हुए हैं। जर्मनों के रासायनिक नील बनाने के परिणाम स्वरूप भारत के नील बनाने वालों का अत्याचार दूर हुआ है। किन्तु आजकल के व्यवसाइयों द्वारा कृत्रिम उपाय से गन्धक बनाये जाने के कारण आयुर्वेद औषध के प्राणस्वरूप शुकपुच्छ, नवनीताक्ष, आमलासार गन्धक पृथ्वी के बाजारों से दूरीभूत हो गये हैं। आधुनिक अर्थशास्त्र प्रचारित एक तथ्य में (Principle of General Economics) कहा गया है कि, एक साथ असली और नकली रुपये को बाजार में प्रचलित करने पर थोड़े दिनों के भीतर ही देखा जाता है कि, असली रुपया बाजार से बाहर हो गया है और नकली रुपया बाजार में फैल गया है (Bad money drives good money out of the market)। व्यापारिक सब विषयों में ही यह सुचिन्तित लक्ष्य ठीक तरह से लागू होता है और यह प्रमाणित भी हुआ है। हम लोग बराबर देख रहे हैं कि भारत में, केवल काश्मीर के खदान को छोड़ कर, दूसरे किसी भी जगह के कोई भी दुकान में विशुद्ध गन्धक नहीं मिलता है। इसलिये विशुद्ध गन्धक के अभाव में आयुर्वेदीय औषध की प्राणशक्ति विनष्ट हो गई है। शीघ्र ही इसका प्रतिकार न होने से विशुद्ध औषध के अभाव में समूचे देशवासियों का बहुत नुकसान हो जायगा। सभी कृत्रिम गन्धक द्वारा औषध तैयार कर कृत्रिम औषध बच रहे हैं। यह संवाद अति दुःखदायक होने पर भी सच्ची बात है। सभी चिकित्सक प्रतिदिन अनुभव कर रहे हैं कि शास्त्र के निमयानुसार औषध प्रस्तुत कर वे शास्त्र में लिखे हुए औषधि के फल के समान उसका फल नहीं पाते हैं। लेकिन कोई भी इस भूल की ओर ध्यान नहीं देते हैं। इसके प्रतिकार का उपाय भी उनके आधीन नहीं है इसलिये वे मजबूर हैं। विशुद्ध गन्धक के अभाव और कृत्रिम गन्धक के प्रचार में अमेरिका और बृटिश का स्वार्थ जड़ित है। पश्चिम पाकिस्तान और काश्मीर प्रदेश में रसायन शास्त्र के सर्वोत्तम औषध जैसे, हिंगुल, पारद, गन्धक, सीसा, टीन, शिलाजीत, स्वर्ण, चांदी, जाफरान, मृगनाभि आदि सुलभ हैं। प्राचीन काल में ये सब औषध प्रचुर परिमाण में विदेश को भेजे जाते थे। भारतवासियों के व्यवहार के लिये ये सब द्रव्य प्रायः नहीं प्राप्त होते हैं। हिन्दु रसायन शास्त्र से विशेष अभिज्ञ एक वैद्य थोड़े दिन हुए काश्मीर से लौट कर मुझे बोले थे कि हाल ही में भारत सरकार ने काश्मीर के विभिन्न स्थानों में कुछ गन्धक के खदानों का आविष्कार किया है। सुना जाता है कि इनसे लगभग २ लाख टन विशुद्ध खनिज गन्धक प्राप्त होगा। भारत सरकार से हमारा अनुरोध है कि, वे इस गन्धक को विदेश में न भेज कर भारतीयगणों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये भारत के बाजारों में ही वेचने का प्रबन्ध करें।

केवल वैद्यगणों की ही ऐसी दुर्दशा नहीं हुई है, ऐलोपैथवालों की भी ऐसी ही अवस्था है। वे कृत्रिम गन्धक द्वारा औषध तैयार करने को मजबूर हो रहे हैं एवं उनके प्रयोग का फल भी आशानुरूप नहीं पा रहे हैं। विशुद्ध गन्धक का अभाव इतना

मारात्मक और विपदजनक है कि गवर्नमेन्ट को इसका प्रतिकार इतनी तत्परता के साथ करना चाहिए जितनी तत्परता के साथ घर में आग लगने पर या बाढ़ आने पर उसके प्रतिकार के लिये किया जाता है। किन्तु वर्तमान समय में भारतवासियों के दुर्भाग्य-वशतः वह नहीं किया जा रहा है।

गन्धक की तरह लोह, अभ्रक, मण्डूर एवं मोती प्रवालादि में भी प्रभूत परिमाण में कृत्रिमता दिखाई देती है। बाजार में जो लोहभस्म बिक्री होता है उनमें ७५ प्रतिशत भाग तीक्ष्ण लोह या कान्तलोह से नहीं बनाई जाती है। ज्यादातर मुण्ड लोह अर्थात् ढलाई लोहा से तैयार किया जाता है। सिद्ध नित्यनाथ आदि रस सिद्धगणों के मतानुसार इस प्रकार का लोह खाने से उदर में कीड़े उत्पन्न होते हैं। अधिकाश क्षेत्र में ऐलोपैथ-गणों द्वारा व्यवहृत फेरस या लोह चूर्ण को अनेक ही आयुर्वेद लिखे हुए लोहभस्म के स्थान में व्यवहार करते हैं। इससे फल विपरीत होता है। ऐसे लोहचूर्ण को सेवन करने से अतिशय कोष्ठबद्धता होती हैं। बाजार में जो मण्डूरभस्म बिक्री होता है वह भी शास्त्रोक्त प्रकृत मण्डूर नहीं है। अधिकांश क्षेत्र में व्यवसायिगण लोहचूर्ण के भस्म को मण्डूरभस्म बोल कर बिक्री करते हैं। बंगभस्म कहला कर जो बाजार में बिक्री हो रहा है वह काले पत्थर की थाली और कटोरी के भस्म को छोड़कर और कुछ भी नहीं है। जस्ता और सीसक भस्म के विषय में भी इस प्रकार की कृत्रिमता होती है। आजकल बाजार में काफी मात्रा में कृत्रिम प्रवाल और मोती मिलते हैं। व्यवसायिगण प्रायः उन्हें ही असली मोती और प्रवाल बोल कर बाजार में चला रहे हैं। रोगियों को अधिक मूल्य देकर इन सब चीजों को खरीदना पड़ता है किन्तु वे इसका सुफल नहीं पाते हैं चिकित्सकों को भी इन सब द्रव्यों के द्वारा औषध तैयार करना पड़ता है किन्तु इन द्रव्यों के द्वारा दवाई बनाकर वे मन में शान्ति अनुभव नहीं करते हैं एवं अपनी बनाई हुई औषध के ऊपर भी अपना विश्वास नहीं रख सकते हैं।

जो कलकत्ते, बम्बई आदि शहरों में कम जगह पर औषध की दूकान खोल कर चिकित्सा की व्यवस्था कर रहे हैं, उस कम जगह में नाना प्रकार के भस्मादि प्रस्तुत कर औषध तैयार करने में समर्थ न होने के कारण उन्हें बाजार की औषधों पर सम्पूर्ण रूप से निर्भर रहना पड़ता है। वे बिक्री की हुई औषध यदि विशुद्ध और असली न हों तो उक्त चिकित्सकगण चिकित्सा कर उनका उपयुक्त फल कैसे पायेंगे और अनेक वैद्य इच्छा रहने पर भी अपने हाथ से औषध नहीं बना सकते हैं क्योंकि समय और स्थानाभाव के कारण ही उपयुक्त मात्रा में औषध तैयार करना सम्भव नहीं होता है। इसलिये उन चिकित्सकों को बड़ी बड़ी औषधियों के लिये कारखानों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। इसलिये बड़े-बड़े दवाई के कारखानों में जिनमें सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा विशुद्ध उपकरण विशिष्ट विशुद्ध औषध शास्त्रानुमोदितरूप से तैयार होती हो, उस ओर लक्ष्य रखना चाहिए। किंतु विगत ८-१० वर्षों से भारत में असली गंधक नहीं मिल रहा है। लेकिन इस विषय में बड़े-बड़े कम्पनी के मालिकों के पास से कोई भी बात नहीं सुनी जाती है। इन ८-१० वर्षों से लेकर ही बराबर इन कृत्रिम औषधियों का व्यवहार चल रहा है। लेकिन

इसके विरुद्ध में औषध बनाने वाले कुछ भी नहीं बोलते हैं। प्रत्येक कारखाने और औषधालय के अलमारी नकली औषधियों द्वारा भरे हुए हैं। इसका फल ऐसा भयानक हो रहा है कि पाठकगण कल्पना करने से विस्मित हो जायेंगे।

इसका पहला परिणाम-इन सब औषधों के प्रति देशीय चिकित्सकों की आस्था कम हो गई है। द्वितीय परिणाम—स्वदेशीय औषध के ऊपर विश्वास कम होकर विदेशीय औषध व्यवहार करने की आकांक्षा क्रमशः बढ़ रही है। तृतीय परिणाम—यह सुअवसर पाकर विदेशीय बड़े बड़े औषध कम्पनियों के मालिक विशुद्ध गन्धक, विशुद्ध हरिताल, विशुद्ध हिंगुल आदि विशुद्ध द्रव्यों द्वारा औषध प्रस्तुत कर उनसे भारत के बाजारों को ढक दिये हैं। चतुर्थ परिणाम—आयुर्वेद नाश के महायज्ञ की जो अग्नि बृटिश साम्राज्य के अवसान के कुछ समय पूर्व प्रज्वलित हुई थी, उस महाग्नि का धूम्रजाल भारत के समग्र आकाश में फैल गया है। वह यज्ञाग्नि ही आजकल धधक कर जल रही है एवं आयुर्वेद के नाश के साथ इस यज्ञ की पूर्णाहुति होगी।

द्वितीय महायुद्ध के समय विशुद्ध गन्धक ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत से दूर कर दिया गया था। उस समय हमारा देश दूसरों के ऊपर निर्भरशील था एवं तब इस विषय के गुरुत्व को हमारे देशवासी नहीं समझ सके थे और अभी भी नहीं समझ सके हैं। इसीलिये टाईफाइड ज्वर होनेपर अपने देश के सूतिकाभरणरस, त्रिदोषनीदार सूर्यरस, मेघविनोदरस, त्रिदोषदावानल कालमेघ रस आदि विख्यात औषधों का व्यवहार न कर भारतीय-जनसाधारण क्लोरोमाईसेटिन खरीद कर कोई भी प्रकार के म्यादी ज्वर में बिना किसी हिचकिचाहट के प्रयोग कर आपाततः-मधुर फल पाकर हमेशा के लिये अपने शरीर को अनेक प्रकार के अश्रुतपूर्व अदृष्टपूर्व रोगों का शिकार बना डालते हैं। एवं यक्ष्मारोग में अपने बसन्त तिलक रस, हरिताल भस्म, त्रैलोक्य चिंतामणि रस, बृहत् कांचनाभ्ररस, कनक सुन्दर रस, बृहत् रसेन्द्र गुठिका, सुवर्ण समीरपन्नगरस आदि का व्यवहार न कर विदेशीय व्यापारियों की विज्ञापित आपाततः-मधुर और परिणाम में विषमय औषधावली, यथा स्ट्रेप्टोमाइसिन, आरोमाइसिन, टि-बी जाइड आदि औषधियों को, दुर्भिक्ष पीड़ित, भूखे-प्यासे, लालची आदमियों की तरह दोनों हाथों से निगल रहे हैं। देश के अगण्य जनसाधारण के मनोभूमि से परिणाम-सुखावह देशीय औषधियों के नाम तक विस्मृति के अतल गह्वर में विलुप्त हो गये हैं। हाय भारतवासी ! कितने दिनों में तुम्हारा ज्ञान लौटेगा ?

धातव औषध के क्षेत्र में जिस प्रकार कृत्रिमता प्रवेशकी है इसके अतिरिक्त प्राणिज औषध निर्माण के क्षेत्र में भी वह किसी अंश में कम नहीं है।

किस कुक्षण में परिभाषा—प्रदीपकार गोविन्द दास अभाव में द्रव्य ग्रहण का विषय उल्लेख कर लिख गये थे, "मधु यत्र न विद्येत तत्र जीर्ण गुड़ोमत" अर्थात् मधु न मिलने पर पुराना गुड़ दिया जा सकता है। आजकल ऐसा सुनने में आता है कि, बड़े बड़े औषध कारखाने के मालिकगण च्यवनप्राश बनाते समय कच्चे उबाले हुए आंवलें के अभाव में सैकड़ों मन शांकालु (मीठाकन्द) सिद्ध प्रयोग करते हैं।

महर्षि चरक लिखते हैं कि जगत के समुदय

द्रव्यों में कोई द्रव्य भी अभेषज नहीं है, अर्थात् जगत के सब द्रव्यों को ही औषधरूप में व्यवहार किया जा सकता है। इसलिये इस रत्नपरिपूर्ण भारत में द्रव्य पहचान लेने पर एवं द्रव्यों के गुण के विषय में ज्ञान हो जाने से विशुद्ध औषध तैयार करने में कोई कठिनाई नहीं होती है। बंगला में एक प्रबाद है—"कलमें कायेत चिनि, गोपे चिनि राजपुत। चिकित्साय कविराज चिनि, जार औषध मजबूत।" अर्थात् कलम से कायस्त की, मूंछ से राजपूत की और चिकित्सा से प्रभावशाली औषधवाले वैद्य की पहचान होती है। अतएव चिकित्सा के कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये सब समय ही असली औषध प्रयोग करना चाहिए। लेकिन बर्तमान समय में विशुद्ध औषध द्रव्य नहीं मिल रहा है। इस विषय में बहुत कुछ लिखना था। किन्तु स्थानाभाव के कारण सब बातें इस प्रबन्ध में लिखना सम्भव नहीं हुआ। आशा करता हूं हमारे देश में जिससे विशुद्ध औषध द्रव्य सहज ही प्राप्त हो सके उसके लिये चिकित्सक, व्यवसायी सरकार और जनसाधारण सब ही मिलकर चेष्टा करेंगे।

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleton), आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल टिकयाँ व गोलियां बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकाल इन्स्ट्रूमेन्ट, आदि के मिलने का पता:—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स कं०

दयाल बाग़, (आगरा)

ज्ञान तंतुओं को बल देने वाला, स्मरण शक्ति वर्धक उत्तम ब्रेन टोनिक

सीरप शंखपुष्पी

शंखपुष्पी और ब्राह्मी तथा अन्य अनेक मेध्य औषधों के योग से तैयार किया गया है। इसके सेवन से स्मरण शक्ति बढ़ती है। ज्ञानतंतुओं को बल मिलता है। मस्तिष्क से कार्य करने वाले विद्यार्थियों, वकीलों,—आफीसर क्लार्क आदि के लिये अमृत समान है। विद्यार्थियों के लिये तो यह सचमुच आशीर्वाद समान है। किसी भी काम को करते समय मगज थक जाता हो और आगे कार्य करने में मन नहीं लगता हो तब इस सीरप के देने से मगज की थकावट दूर होती है। मगज हलका हो जाता है और फिर कार्य करने में उत्साहित होता है। किसी भी कारण से मस्तिष्क निर्बल हो गया हो और नींद न आती हो ऐसे रोगीके लिए यह अमृत समान है।

मूल्य शीशी १ का रु० १-४-०, १ रतल का ४-०-०।

ऊंझा फार्मेसी लि०

ऊंझा (गुजरात) जबलपुर,
(मध्य प्रदेश)

अश्विनौ देवता

श्री रघुवीरशरण शर्मा, आयुर्वेद वाचस्पति, रसायनशाला, बुलन्दशहर

[आयुर्वेद जगत के विद्वानों की समीक्षार्थ इस लेख को प्रकाशित किया जाता है। उचित प्रकाश डालने की कृपा करेंगे।]

—सम्पादक

अश्विनी कुमार सूर्य[१] के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सुरेयु-सरण्यु अथवा संज्ञा था। वैवस्वत मनु[२] और यम[३] इनके सहोदर भ्राता थे। अश्विनीकुमार वेद, आयुर्वेद अध्यात्म शास्त्र के ज्ञाता तथा अनेक मंत्रों के दृष्टा थे।[४] अश्विनी कुमार ने अध्यात्म शास्त्र ऋषि आकर्षण दध्मङ् से प्राप्त किया था। "इदं वै तन्मधुदध्यङ्ङाथर्वणो अश्विभ्यामुवाच। वृ० आ० उ० २।५।१६-१९)

अश्विनी कुमारों ने आयुर्वेद की शिक्षा अपने पिता सूर्य से प्राप्त की थी जिसका उल्लेख ब्रह्म वैवर्त पुराण में है—

भास्करश्च स्व शिष्येभ्यः आयुर्वेदं स्वसंहिताम्।

प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितांस्ततः ।११।

तेषां नामानि विदुषां तंत्राणि च तत् कृतानि च।

धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशिराजोऽश्विनी सुतौ ।१२।

नकुलः सहदेवार्किश्च्यवनो जनको बुधः।

(ब्रह्म० बै० पु० अ० १६)

सूर्य ने ब्रह्मा से आयुर्वेद का अध्ययन करके धन्वन्तरि, दिवोदास, यम, च्यवन,[१] बुध और अश्विनी कुमार आदि १६ शिष्यों को पढ़ाया था। अश्विनी कुमारों ने चिकित्सा सार नामक तंत्र की भी रचना की थी। अश्विनी कुमारों ने अपने नाम की अश्विनी कुमार संहिता का भी निर्माण किया था जिसके उदाहरण नवनीतकम् आदि ग्रंथों में मिलते हैं। अश्विनी कुमारों ने प्रजापति दक्ष से भी आयुर्वेद का अध्ययन किया था। 'ब्रह्मा प्रोवाच ततः प्रजापतिरधिजगे तस्मादश्विनौ।" (सु० सू० १।१८) अश्विनी कुमारों ने आयुर्वेद का अध्ययन पितामह ब्रह्मा से भी किया था।

सुखोपविष्ट ब्रह्माणमश्विनौवाक्यम् च तुः।

---

(१) सूर्य यजुर्वेद अ० ८ मं ३६-३७ का और अथर्व का० १९ सू ९० का ऋषि है।

(२) मनु यजुर्वेद अ० ३३ मं० ९१-९४ तक ऋग्वेद ८।२७ ८।२८।८।२९।८।३०।८।३१ सूक्तिका ऋषि है।

(क) जलप्लावन की घटना के बाद मनु ने भारत में आकर अयोध्यापुरी का निर्माण किया और यहीं बस गये थे।

(३) वैवस्वत यम ऋ० १०।१४ का और अथर्व के लगभग २० सूक्तों का ऋषि है।

(४) यजु० अ० २७ मं० १२-२३ के अश्विनी कुमार ऋषि हैं।

[१] ऋषि च्यवन अनेक मंत्रों का ऋषि है।

२ बुध ऋ० १०।१०१ सू० तथा यजु० १२।६७-६८ का ऋषि है।

अश्विनोर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् (गद निग्रह)।

अश्विनी कुमारों ने ही अपने पितृव्य (चाचा) देवराज इन्द्र को आयुर्वेद की शिक्षा दी थी। "अश्विभ्यामिन्द्रः" (सु०सू०१।१८)। चरक संहिता के कथन से ज्ञात होता है कि अश्विनी कुमारों ने इन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं पढ़ाया था।

अश्विभ्यां भगवान् शक्रः प्रतिपेदे हि केवलम्। (च०सू०१।५)

स्मरण रहे अविश्नी कुमारों के देवराज इन्द्र पितृव्य (चाचा) थे। क्योंकि अश्विनी कुमारों के पिता सूर्य और इन्द्र सहोदर भ्राता थे। अश्विनी कुमारों ने आयुर्वेद को अपनी जीविका का व्यवसाय बना लिया था जबकि इनके पूर्वज ब्रह्मा इन्द्र विष्णु[1] तथा इनके सहोदर भ्राता यम ने आयुर्वेद का अध्ययन केवल ज्ञान तथा उपकारार्थ ही प्राप्त किया था। अतः इनके परिवार ने अश्विनी कुमारों का बहिष्कार कर दिया था। इनको यज्ञों का भाग भी नहीं देते थे। इनकी गणना शूद्रों में होती थी हालांकि तपस्वी तथा जन्म से ब्राह्मण थे।[2] 'अश्विनौ तु मतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समाहितौ" (म० भा० शा-म० २०२।२३)। अश्विनी कुमार देवलोक में रहते थे और देवों के चिकित्सक थे "स्ववैंद्यावश्विनी सुतौ" (अमरकोश) किन्तु इनका आना जाना भारत में भी रहता था। और भारत में भी चिकित्सा करते थे।

अश्विनी कुमारों के प्रयोग

अश्विनी कुमारों ने चिकित्सासार तंत्र और अश्विनी कुमार संहिता आदि ग्रंथों की रचना की थी किन्तु दौर्भाग्य से आज वे उपलब्ध नहीं हैं। किन्तु इनके रोगनाशक प्रयोग आयुर्वेदीय ग्रन्थों में आज भी सुरक्षित हैं जिनके उदाहरण ये हैं—

(१) कूष्माण्ड रसायन। कासरोग पर।

अश्विभ्यां विहितं हृद्यं कूष्माण्डक रसायनम्।

(२) फल घृत-सन्तान दाता।

नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम्। (भैषज्य रत्नावलि)

(३) अमृत प्राश-रसायन।

अमृतप्राशमित्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम्। (भाव प्र० यक्ष्माधिकार)

(४) हिंग्वादि चूर्ण। आश्विन संहिताका।

शूलानि नाशयति वातवलासजानि हिंग्वाद्यमुक्तमिदमाश्विनसंहितायाम्। (गदनिग्रह भा० १ पृ० ६१)

(५) च्यवनप्राश—यह प्रयोग अश्विनी कुमारों ने ऋषि च्यवन को दिया था।

चिकित्सा

अश्विनी कुमार उच्च श्रेणी के चिकित्सक थे। इन्होंने जिसकी चिकित्सा की थी उनके उदाहरण ये हैं।

(१) अश्विनी कुमारों ने वृद्ध ऋषि च्यवन को पुनर्योवन प्रदान किया था।

युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः। (ऋ०१।११७।१३)

(२) अश्विनी कुमारोंने राजा 'खेल' की पत्नी विश्पला जिसकी जंघा रणक्षेत्र में कट गई थी उसकी पूर्ति लोहे की जंघा से की थी।[1]

---

[1] तैलमेतद् भगवता विष्णुना परिकीर्तितम्। चक्रदत्त वात चिकित्सा श्लो० ८०।

[2] ऋषि कश्यप के पौत्र थे।

[1] ऋ० १।११६।१५।

(३) अश्विनी कुमारों ने राजर्षि ऋज्राश्व को जो कि अन्धे थे दृष्टि प्रदान की थी।[2]

(४) अश्विनी कुमारों ने अन्धे कण्व को दृष्टि और वधिर नार्षद (नृषद पुत्र) को श्रवण शक्ति प्रदान की थी।[3]

(५) नपुंसक पति का राजपुत्री वध्रिमती को पुत्र प्रदान किया था।[4]

(६) ऋषि कक्षीवती की पुत्री घोषा के कुष्ठरोग का निवारण किया था।[5]

दक्षयज्ञ

त्रेतायुग के आरंभ में दक्ष प्रजापति ने कनखल (जि०-सहारनपुर) में यज्ञ किया। इसमें दक्ष ने अपनी पुत्री सती तथा दामाद शिव को निमंत्रित नहीं किया। फिर भी दक्षपुत्री सती अपने पिता के घर बिना बुलाए ही पहुँच गई। इस पर भी दक्ष ने अपनी पुत्री का यथोचित सत्कार नहीं किया। इस व्यवहार को सती न सह सकीं और वहीं अपने को भस्म कर लिया। सती की मृत्यु का समाचार महादेव ने सुना परिणाम स्वरूप महादेव और दक्ष प्रजापति के समर्थक विष्णु इन्द्र और रुद्र आदि देवों में युद्ध छिड़ गया। स्मरण रहे कि रुद्र महादेव से पृथक् थे इनकी गणना देवों में हैं।

महादेव की सेना भूत प्रेत ने यज्ञ कुंड में मूत्र त्याग किया। पूषा के दांत तोड़े, भगदेव के नेत्र फोड़ें, दक्ष का शिर काट लिया। इस युद्ध में जो देवता क्षतविक्षत होने के कारण रोगी हो गये थे उनकी चिकित्सा अश्विनी कुमारों ने की थी।

ज्वरैस्तु पीड़ितान् देवान् दृष्ट्वा विष्णुर्हसन्निव।

देवाश्विनौ तदाहूय व्याधीन् हन्तुं तदा भृतिम्।

ददौ ताभ्यां प्रयत्नेन गणयित्वा सुबुद्धिमान्।

विज्वरानथ देवांश्च कृत्वा मुमुदतुश्चिरम्।

स्कन्द पुराण माहेश्वरी खंड केदार खंड अ० १३।६६-६७

रोगों का कारण

दक्ष यज्ञ में देवता रोगी हुए अश्विनी कुमारों ने चिकित्सा की, ठीक है किन्तु रोगी होने के कारण क्या थे इस पर विचार करना है।

भागवत में लिखा है कि महादेव की सेना ने त्रिशूल आदि अस्त्रों से देवों को छिन्न-भिन्न कर दिया था जिससे यज्ञ के सभासद और ऋत्विक् आदि भी भयभीत हो गये थे। "संछिन्नभिन्न सर्वांगाः सर्त्विक् सभ्या भयाकुलाः।" (भा० ४।६।१-२)। स्कन्द पुराण में लिखा है कि महादेव की सेना ने त्रिशूल खड्ग और परशु (फरसा) से किसी देव को बीच से दो टुकड़े किये और किसी किसी के सैकड़ों टुकड़े, किसी किसी के खंड खंड किये थे और किसी किसी को मुद्गर से कुचल दिया था।[1] इस प्रकार देवों की दुर्गति हुई। कुछ मारे गये और कुछ युद्ध

---

[2] ऋ० १।११६।१६।

[3] ऋ० १।११७।८।

[4] ऋ० १।११६।१३।

[5] ऋ० १।११७।७।

[1] शूलाघातैश्च ते सर्वे गणान् देवान् प्रजघ्निरे।१५।

केचिद् द्विधाकृताः खड्गैः मुद्गरैश्चापि पोथिताः। परश्वधैः खंडशश्च कृताः केचिद्रणाजिरे।१६।

छोड़ कर भाग गये थे। ऐसी स्थिति में जहां प्राणों के जाने का भय हो, अंग भंग हो, रक्तस्राव हो ज्वरादि रोगों का होना स्वाभाविक है। और सेप्टिक-विषाक्त होना भी स्वाभाविक है जिसका परिणाम सान्निपातिक लक्षण और मृत्यु भी है। आयुर्वेदीय काश्यप संहिता में भयार्दितों की स्थिति को कुछ अधिक स्पष्ट कर दिया है उसमें लिखा है :—

"दक्षयज्ञे वधत्रासाद् देवर्षीणां पलायताम्। रोगाः सर्वेसमुत्पन्ना सन्तापाद्देहचेतसोः।२४।

ज्वरोगुरुत्वाद् गुल्मस्तु धावतां प्लवनात् प्लीहा। भ्रमो विषादाद्विड्भेदो धावतां वेग धारणात्।२५।

तृष्णा च रक्तपित्तं च श्रमादुष्णे च धावताम्। हिक्काश्वासौकफाधिक्याद् धावतां पिवतां जलम्।२६।

प्रागुत्पत्तिस्तथान्येषां रोगाणां परिकीर्तिता।कृत त्रेतान्तरत्वेन प्रादुर्भूता यथा नृणाम्।

(काश्यप संहिता पृ० १९०)

अर्थात् सतयुग और त्रेता की सन्धि में दक्ष प्रजापति की यज्ञ में महादेव जी की सेना द्वारा बध होने के (मारे जाने) भय से देवता और ऋषि इधर उधर भागे। इस प्रकार भय का प्रभाव मन और शरीर पर पड़ने के कारण उनको बहुत से रोग हो गये थे। जैसे—ज्वर, गुल्म, प्लीहा, भ्रम (चक्कर) अतीसार, तृष्णा, रक्तपित्त हिक्का और श्वास आदि। इसीको अल्पान्तर से चरक संहिता में इस प्रकार लिखा है—तस्मिन् हि दक्षाध्वरोध्वंसे देहिनांदिक्षु विद्रवतामतिसरणप्लवनलंघनाद्यैर्देहविक्षोभनैः पुरागुल्मोत्पत्तिरभूत्। हविष्प्राशनात् मेहकुष्ठानां तमोपवासशोकैः उन्मादानां विविधभूताऽशुचिसंस्पर्शादपस्माराणाम्।"

(च० नि-स्था ८)

इस प्रकार ऋषि आत्रेय पुनर्वसुने प्रमेह, कुष्ठ, उन्माद और अपस्पार का और उल्लेख किया है। किन्तु इन सबके अतिरिक्त भगवान् शिव ने देवों के संहार के लिये और रोगी बनाने के लिये रोगों को भी उत्पन्न किया था। जिसका उल्लेख स्कन्द पुराण में है। इसमें लिखा है कि—

"गणान् पराङ्मुखान् दृष्ट्वा सर्वे ते व्याधयो भृशम्। रुद्रकोपात् समुद्भूता देवांश्चापि प्रदुद्रुवुः।"

(स्क० पु० मा० रव० के ख० ४)

महादेव जी ने जब यह देखा कि मेरे नन्दी भृंगी आदि गण देवों के भय से युद्ध क्षेत्र से पराङ्मुख अर्थात् भाग रहे हैं तब महादेव जी ने विषाक्त (जहरीली) औषधियों द्वारा बहुत से रोगों को उत्पन्न किया वे रोग फिर देवों के पीछे भागे अथवा लगे अर्थात् उन रोगों ने भी देवों को रोगी बनाया था। पाठकगण रोगों के उत्पन्न करने की बात पर सम्भवतः आश्चर्य करेंगे किन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात ही नहीं है। यह रोग को उत्पन्न करने की पृथा प्राचीन काल की है। इसका नाम कृत्या है।[1] जिसको अथर्ववेद ने १५३ प्रकार की

शूलैः भिन्नाश्च शतशः केचिच्च शकली कृताः। एवं पराजिताः सर्वे पलायनपरायणाः।१७।

स्कन्द पुराण माहेश्वरी खंड केदार खंड अ० ४।

[1] १ लेखक ने कृत्या और अभिचार नाभक पुस्तक में कृत्या का वर्णन विस्तार से किया है। (अप्रकाशित)

लिखा है। सुश्रुत में भी कुछ अन्न जल आदि खाद्य, पेय आदि पदार्थों को विषाक्त तथा रोगकारी करने और उसके प्रतिकार करने का उल्लेख है। आचार्य कौटिल्य ने भी अधिकरण १४ में अन्धा, बहरा करना, कुष्ठ, उन्माद, शोष आदि रोगों को उत्पन्न करना तथा मारण आदि के प्रयोग लिखे हैं। ये सभी कृत्या के रूप हैं। कृत्या का वर्णन ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, भागवत, मनुस्मृति, कौटिल्य अर्थ शास्त्र, सुश्रुत, और चरक संहिता में भी है।

अश्विनौ देवभिषजौ यज्ञवाहाविति-स्मृतौ। दक्षस्य हि शिरश्छिन्नं पुनस्ताभ्यां समाहितम् ।४०।

प्रशीर्णाः दशनाः पूष्णो नेत्रे नष्टे भगस्य च। वज्रिणश्च भुजस्तंभस्ताभ्यामेव चिकित्सितः ।४१।

चिकित्सितस्तु शीतांशुः गृहीतो राजयक्ष्मणा। सोमाभिपतितश्चन्द्रः कृतस्ताभ्यां पुनः सुखी ।४२।

भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन् विकृतिं गतः। वीतवर्णस्वरोपेतः कृतस्ताभ्यां पुनर्युवा ।४३।

एतैश्चान्यैश्च बहुभिः कर्मभिर्भिषगुत्तमौ।
वभूवतुर्भृशं पूज्यौ इन्द्रादीनां महात्मनाम्। च० चि० १

अश्विनी कुमारों ने दक्ष का कटा हुआ शिर को जोड़ा। पूषा देव के दांत जोड़े। भगदेव अन्धे हो गये थे उनको पुनः ज्योति प्रदान की। इन्द्र के भुजस्तंभ को ठीक किया। चन्द्रमा के राजक्ष्यमा रोग को दूर किया। भार्गव ऋषि. च्यवन वृद्ध थे इतने कि उनका वर्ण, स्वर भी नष्ट हो गया था फिर भी अश्विनी कुमारों ने उनको पुनः युवा बनाया था। इनके अतिरिक्त और भी अश्विनी कुमारों के चमत्कार पूर्ण कार्य हैं जिनके कारण इन्द्रादिक देवता भी इनकी पूजा अर्थात् सन्मान करते थे। चरक संहिता में दूसरे स्थान पर लिखा है कि—

दिवौकसां कथयतामृषिभिर्वै श्रुता कथा।
कामव्यसनसंयुक्ता पौराणी शशिनं प्रति।
प्रसादं कृतवान् सोमस्ततोऽश्विभ्यां
चिकित्सितः। (च० चि० ८।१-६

ऋषि पुनर्वसु आत्रेय ऋषि अग्निवेश से कहते हैं कि ऋषियों से देवों की कथा को सुना हैं कि प्रजापति दक्ष की २७ पुत्रियां थीं। दौर्भाग्य से उन सबका ही विवाह अत्रि पुत्र चन्द्रमा से हो गया। किन्तु चन्द्रमा रोहिणी नाम की पत्नी से अधिक प्रेम करते थे। अहर्निश विषय भोग में फंसे रहते थे, परिणाम स्वरूप चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोग हो गया। तब चन्द्रमा अपने श्वसुर दक्ष प्रजापति के पास गये। और समस्त इतिहास सुनने के बाद दक्ष ने स्वयं चिकित्सा न करके अपने शिष्य अश्विनी कुमारों को चिकित्सा का भार सौंपा। तब अश्विनी कुमारों ने चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोग से छुड़ाया था।

सुश्रुत में लिखा है कि "श्रूयते हि यथा यज्ञस्य शिरश्छिन्नमिति। ततो देवा अश्विनामभिगम्योचुः। भगवन्तौ नः श्रेष्ठतमौ युवां भविष्यथः भवद्भ्यां यज्ञस्य शिरः सन्धातव्यम्। तानूचुरेवमस्तु इति। अथ तयोरर्थे देवा इन्द्रं यज्ञभागेन प्रासादयन्। ताभ्यां यज्ञस्य शिरः संहितमिति।

(सु० सू० १।१५)

---

२ अथर्व वेद में ५ हजार नौ सो ७७ मंत्र हैं उनमें कृत्या का ७१ मन्त्रों में उल्लेख है।

काशिराज दिवोदास ने सुश्रुत[1] से कहा था कि सुनते हैं रुद्र ने दक्ष का शिर काट दिया था, तब देवता अश्विनी कुमारों के पास गये और उनसे दक्ष के शिर को जोड़ने की प्रार्थना की। अश्विनी कुमारों ने प्रार्थना को स्वीकार तो कर लिया किन्तु साथ में यह शर्त कि हमको भी यज्ञों में भाग मिलना चाहिये लगा दी थी। तब देवों ने इसके लिये देवराज इन्द्र को राजी किया और शर्त को स्वीकार कर लिया। शर्त के स्वीकार करने पर अश्विनी कुमारों ने दक्ष के शिर को जोड़ दिया।

ऋषि च्यवन के यज्ञ में उपद्रव

भृगु ऋषि के एक पुत्र ऋषि च्यवन भी थे। च्यवन ने वृद्धावस्था में राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या से विवाह किया। विवाह के बाद च्यवन को वृद्धावस्था खटकी उन्होंने तरुण होने का विचार किया। अश्विनी कुमारों से च्यवन ने चिकित्सा कराई फलस्वरूप च्यवन पुनः तरुण हो गये। कुछ दिन बाद ऋषि च्यवन ने यज्ञ की इसमें इन्द्रादिक देवता भी आये और अश्विनी कुमार भी। ऋषि च्यवन ने अपने उपकारी अश्विनी कुमारों को यज्ञ में भाग देने का विचार किया। किन्तु इन्द्र ने इसको पसन्द नहीं किया। इस सम्बन्ध में ऋषि च्यवन और इन्द्र का संवाद इस प्रकार है—

उभावेतौ न सोमार्हौ नासत्याविति मे मतिः।
भिषजौ दिवि देवानां कर्मणा तेन नाऽर्हतः।९।
महोत्साहौ महात्मानौ रूपद्रविणवित्तरौ।
यौ चक्रतुर्मां मघवन् वृन्दारकमिवाजरम्।१०।
ऋते त्वां विबुधाश्चान्यान् कथं वै नार्हतः सवम्।
अश्विना वापि देवेन्द्र देवौ विद्धि पुरन्दर।११।
चिकित्सकौ कर्मकरौ कामरूपसमन्वितौ।
लोके चरन्तौ मर्त्यानां कथं सोममिहार्हतः।१२।
अनादृत्य ततः शक्रं ग्रहं जग्राह भार्गवः।
आभ्यामर्थाय सोमं त्वं ग्रहिष्यसि यदि स्वयम्।
वज्रं ते प्रहरिष्यामि घोररूपमनुत्तमम्।१५।
एवमुक्तः स्मयन्निन्द्रमभिवीक्ष्य स भार्गवः।
जग्राह विधिवत्सोममश्विभ्यामुत्तमं ग्रहम्।१६।
ततोऽसौ प्राहरद् वज्रं घोररूपं शचीपतिः।
तस्य प्रहरतो बाहुं स्तम्भयामास भार्गवः।१७।
(म० भा० वन० प० १२४)

जब ऋषि च्यवन अश्विनी कुमारों को सोम देने लगे तब इन्द्र ने कहा कि ये दोनों देवलोक में देव जाति के चिकित्सक हैं अतः ये सोमपान के अधिकारी नहीं है। इस पर ऋषि च्यवन ने कहा कि हे इन्द्र दोनों अश्विनी कुमार बड़े महात्मा उत्साही रूप और धन से सम्पन्न हैं। इन्होंने मुझे वृद्ध से देवों के समान तरुण बनाया है। तुम और तुम्हारे साथी देवों को यज्ञ भाग मिले और ये उससे वञ्चित रहें ऐसा क्यों? आखिर वे भी तो देवता ही हैं। इस पर इन्द्र ने कहा कि ये दोनों चिकित्सक हैं और साथ ही मनुष्य लोक में भी रहते हैं। फिर सोम के अधिकारी कैसे हो सकते हैं। इतनी बात होने के बाद ऋषि च्यवन इन्द्र की बात का अनादर करके अपने उपकारी अश्विनी कुमारों को सोम देने लगे। तब इन्द्र ने कहा कि हे च्यवन यदि मेरी बात का अनादर करके तुम इनको सोम दोगे तो मैं तुम पर घोर वज्र प्रहार करूंगा।

---

[1] सुश्रुत यजुर्वेद अ० ३ मं० २ का ऋषि है।

इन्द्र के ये वाक्य सुन च्यवन इन्द्र की तरफ देख करकुछ हंसे और अश्विनी कुमारों को सोम दे ही दिया। जब सोम दे दिया तब इन्द्र ने क्रुद्ध होकर ऋषि च्यवन पर वज्र प्रहार कर दिया। बज्र प्रहार करते ही च्यवन ने इन्द्र की बाहु को स्तंभित कर दिया। अन्तमें इन्द्र के भुजस्तंभ को भी अश्विनी कुमारों ने ठीक किया। किन्तु इस कथानक से स्पष्ट है कि देवता लोग जोकि चरित्र में मानवों से ऊंचे नहीं बल्कि कुछ नीचे ही थे किन्तु शक्ति संपन्न होने के कारण मानवों को तुच्छ समझते थे। इन्द्र का कथन कितना गर्वपूर्ण और मानवों के प्रति हेय भाव का द्योतक है इस पर जरा विचार कीजिये। इन्द्र कहता है कि—"लोके चरन्तौ मर्त्यानां कथं सोममिहार्हतः" ये मनुष्यलोक में भ्रमण करते हैं अतः सोम के अधिकारी कैसे हो सकते हैं। अस्तु इस घटना और दक्ष शिर के जोड़ने के बाद अश्विनी कुमारों को भी यज्ञमें भाग मिलने लगा था इसके प्रमाण वेदों में भी मिलते हैं।

प्रातर्युजा विवोधयाश्विनावेह गच्छताम्। अस्य सोमस्य पीतये। (ऋ०१।२२।१) प्रातः काल को सोमपान के लिये अश्विद्वयों को सावधान करो ताकि वे उस सोम को पीने के लिये आवें। मालूम ऐसा होता है जिस प्रकार वर्तमान समय में शिक्षित समाज अपने मित्रों को प्रातःकाल चाय पर आमन्त्रित करता है उसी प्रकार वैदिकयुग में सोम पर किये जाते थे। अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुना आदित्यैरुद्रेभिर्वसुभिःस चा भुवा सजोषसा उषसा उषसा सूर्येण सोमं पिवतमश्विना। (ऋ० ८।३५।१) इस मंत्र में सोम पान के लिये अकेले इन्द्र अथवा अश्विद्वयों को निमन्त्रण नहीं है बल्कि ३९ देवों को है जिनके नाम ये हैं—अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु, १२ आदित्य, ११ रुद्र, ८ वसु ऊषा, सूर्य और दोनों अश्विनी। सोम औषधि वैदिक युग की प्रधान वस्तु थी। इससे बल, वीर्य, पराक्रम, उत्साह, तथा आयु की वृद्धि होती थी। इसका क्रय विक्रय भी होता था[1]। जब इस का व्यवहार बढ़ गया तो ऐसी भी स्थिति आ गई कि इसका मिलना दुर्लभ हो गया था। इसकी प्राप्ति के लिये देवों में प्रतिस्पर्धा भी होती थी। ब्राह्मण काल में सोम का मिलना और भी दुर्लभ हो गया था। तब उसके अभाव में संभवतः दूर्वा (दूव काली घास) का व्यवहार होता था। सोम का उल्लेख चारों वेद, शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, और अष्टाङ संग्रह आदि में भी मिलता है।

सैनिक अश्विनी कुमार

अश्विद्वय न केवल सफल चिकित्सक थे अपितु शस्त्रास्त्रवेत्ता और सैनिक भी थे। देवासुर संग्रामों में जो कि युगानुयुग चले हैं उनमें देवों के साथ असुरों से युद्ध किया करते थे। जिनके उदाहरण ये हैं—आद्य त्रेतायुग के आरंभ में हिरण्यकशिपु दैत्य की मृत्यु के बाद उसके पुत्र प्रहलाद ने स्वर्ग पर अधिकार करने के लिये अपने पुत्र विरोचन, पौत्र वलि और प्रपौत्र वाण के साथ देवों पर आक्रमण कर दिया। यह युद्ध बड़ा ही भयंकर था। इसमें समस्त दैत्य दानव और पाताल वासी गरुड़ एक पक्षमें थे। दूसरे पक्षमें समस्त देव और नाग जाति के मनुष्य थे[2]। इस युद्धमें युद्ध-

---

[1] मनस्मृति में सोम विक्रयी को अपराधी माना है।

[2] नाग और गरुड़ आदि जातियों का वर्णन लेखक ने पाताललोक नाम की पुस्तक में विस्तार से किया है।

स्थल मेरू पर्वत रक्त रंजित हो गया था। रक्त की नदियाँ बही थीं और दोनों पक्षों की असंख्य सेना मरी थी। "नान्तं समभिगच्छन्ति निहतानां सुरासुरैः। हरिवंश ३।५५।१०। इस युद्ध में अश्विनी कुमारों ने भी भाग लिया था। अनायुषायाः पुत्रस्तु वृत्रोनाम महासुरः। अश्विभ्यां देववैद्याभ्यां सहयुध्यत संयुगे। (हरिवंश ३।५५।१६)

एक बार लंकापति रावण ने देवलोक पर आक्रमण किया था। यह भी युद्ध बड़ा भयंकर था। इसमें भी अश्विद्वय ने वरुण और आदित्य और मरुतों के साथ साथ रावण के विरुद्ध युद्ध किया था। ततो रुद्रा सहादित्यां वसवो मरुतोऽश्विनौ। संनद्धा निर्ययुस्तूर्णं राक्षसानमितः पुरात्। (वालमीकि रामायण उत्तरकांड २७।२२)

इस प्रकार के अनेक उदाहरण हैं जिनमें अश्विद्वयों ने भाग लिया था किन्तु उन सब का लिखना अनावश्यक है।

वैदिक अश्विनी कुमार

निरुक्त वैदिक साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रंथ है, उसमें अश्विद्वय के संबन्ध में इस प्रकार लिखा है—तत् कावश्विनौ द्यावा पृथिव्यावित्येके। अहोरात्रावित्येके। सूर्याचन्द्रमसावित्येके। राजानौ पुण्यकृतौ इति ऐतिहासिकाः। (निरुक्त १२।१ पृ०७०७)

अश्विनी कुमार कौन हैं इस प्रश्न के उत्तर में एक ऋषि का मत है कि द्यावा पृथिवी हैं, दूसरे का मत है कि सूर्य चन्द्रमा हैं तीसरे का मत है कि रात और दिन हैं। इस प्रकार तीन अर्थ हुए। ऐतिहासिक इनको पुण्यकर्मा राजा मानते हैं। इनके अतिरिक्त अश्विनी शब्द के विद्वान, ज्ञानी अध्यापक, उपदेशक, वैद्यशल्यचिकित्सक, राजा रानी, स्त्री पुरुष, सभापति, सेनाध्यक्ष, वायु और विद्युत् आदि अर्थ भी होते हैं।

नोट—यह लेख लेखक की देवता नामक पुस्तक का एक अंश है ग्रंथ अप्रकाशित है अतःसर्वाधिकार सुरक्षित है।

मलेरिया शत्रु—सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य आधा पौंड ६)रु० **सफेद कोढ़**-की पेटेन्ट दवा—मूल्य ५) रुपया दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर तथा हकीम धन-मान कमा रहे हैं। विवरण पत्र मुफ्त मंगाकर देखें।

वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन
मु० पो० मंगरूलपीर, जि० आकोला
(बरार) म० प्र०

कन्याओं को आयुर्वेद

आयुर्वेदाचार्य एवं वैद्यरत्न श्रेणी तक सर्वांग पूर्ण शिक्षा निःशुल्क दिलाने के निमित्त "कन्या गुरुकुल हरिद्वार" के स्वस्थ धार्मिक वातावरण में अपनी कन्यायें प्रविष्ट कराने के लिए शीघ्र लिखिये। यहाँ गार्हस्थ्य कला तथा धर्म शिक्षा के साथ साहित्य सम्बन्धी परीक्षाओं का भी पूर्ण प्रबन्ध है। प्रवेश फार्म तथा पूर्ण विवरण के लिए लिखिये।

चन्द्रावती देवी शास्त्री प्रभाकर,
साहित्य रत्न, वैद्यविशारद।

सुप्तरूप में आक्सीजन-युक्त

चतुर्भुजरस की प्रयोग-विधि

योगीराज ब्रह्मचारी श्री गोपाल चैतन्यदेव पीयूषपाणि,
C/o एस० मित्रा एण्ड क०, २१०, गिरगांव रोड केलेवाडी, बम्बई ४

मेरे अनुशोधित और गवेषित चतुर्भुजरस का प्रयोग के पहिले आयुर्वेद-विज्ञान के इस महान् सत्य उपदेश पर ध्यान रखकर यथाविधि एवं यथोपयुक्त अनुपान के साथ मर्दन कर प्रयोग करने से प्रायः ही पश्चाताप करना न पड़ेगा। वह सुउपदेश यह है, किः—

"अनुपान विशेषेण करोति विविधान् गुणान्"

अर्थात् भिन्न-भिन्न अनुपान के साथ मर्दन कर सेवन कराने से रसौषधि भिन्न-भिन्न गुणशाली बनकर, भिन्न-भिन्न रोगों को शमन करने में समर्था होती है। चतुर्भुज-रस उच्च कोटि की औषधि है। उसे भिन्न-भिन्न अनुपान के साथ मर्दन कर सेवन कराने से, वह भिन्न-भिन्न रोग नाश करता है। यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है।

मात्रा

शास्त्रोक्त चतुर्भुज-रस की मात्रा तीन रत्ती है; लेकिन मेरे गवेषित एवं अनुशोधित चतुर्भुज-रस की मात्रा केवल एक रत्ती ही है। अति गंभीरावस्था में, जिसे मुमुर्षु-अवस्था मानी जाती है, ऐसी संकटावस्था में मेरे गवेषित चतुर्भुज-रस को दो रत्ती मात्रा से देना चाहिए। यह पूर्ण मात्रा है। सगर्भा-रमणी को अर्धमात्रा एवं बालकों के लिए अवस्थानुसार मात्रा में दें।

पूर्णतया निर्दोष

यह पूर्णतया निर्दोष-औषधि है। सद्योजात शिशु से लेकर मरणोन्मुख अतिवृद्ध तक को निःसंकोच सेवन करायी जा सकती है। केवल इतना ही नहीं पूर्ण स्वस्थ मानव भी अपनी शारीरिक शक्ति, मस्तिष्क की शक्ति, धी-धृति-स्मृति एवं कर्म-शक्ति को तीव्रतर करने के लिए भी मेरा गवेषित चतुर्भुज-रस शंका-शून्य होकर सेवन कर सकते हैं। रोगी-भोगी-योगी यानी सबके लिए ही यह समभाव सम्पन्न गुरु जैसा है। देश-काल-पात्र-ऋतु-वातावरण आदि पर विचार कर आवश्यक-मात्रा में यथोचित अनुपान के साथ मर्दन कर सेवन करें।

सेवनांते प्रतिक्रिया हो तो

यह त्रिदोष नाशक योगवाही रसायन है। शरीरस्थ वायु पित्त कफ पर ध्यान रखकर तत् साम्य कारक अनुपान के साथ प्रायः सर्व रोग में ही इसे सेवन कराया जा सकता है। अत्यधिक-मात्रा में सेवित होने से साधारण वायु + पित्त का उपद्रव हो सकता है। वह वायु + पित्त का उपद्रव फलों का रस व नींबू के रस का शर्बत का सेवन से साम्य हो जाता है अथवा तत् साम्यकारक दूसरी औषधि भी दे सकते हैं।

महाप्रलाप

सर्व चिकित्सक-मंडली को ही मालूम है कि प्रायः सर्व प्रकार के रोगों की अन्तिम अवस्था में प्रायः ही मस्तिष्क की विकृति होकर प्रलाप शुरू हो जाता है। अधिकंतु टाईफायेड, मेनिनजाईटीस आदि रोगों की

अन्तिम-अवस्था में प्रलाप-महाप्रलाप होना अनिवार्य है। ऐसी स्थिति में चतुर्भुज-रस अनोखा काम करता है। प्रलाप का सूक्ष्म कारण त्रिदोष की विकृति होने पर भी उसमें वायु ही प्रधान है। वायु सौम्य व शांत होते ही प्रलाप-महाप्रलाप अच्छा हो जाता है। सिद्ध मकरध्वज का उल्लेख शास्त्रीय श्लोक में भी मिलता है, कि

"वायु वहुविध हन्ति ध्वजभंग विशेषतः।
सेवनादस्य नश्यन्ति सर्वरोगा न संशय।।
अपितुः—
"विधिवत् सेवितो ह्येष मुमुर्षुऽपि जीवयेत्।
स्वेच्छाहार विहारोऽपि न कदाचित विपद्यते।।"

चतुर्भुज-रस की मातृभूमि सिद्ध मकरध्वज होने से वहुविध वायु-रोग को तो वह शांत करने में समर्थ है ही अधिकंतु ध्वजभंग को भी अच्छा करता है। शास्त्रोक्ति यह भी है, कि इसके सेवन से सर्वरोग नाश होता है इसमें शंका नहीं रखना। अपितु विधिवत यदि इसे सेवन कराया जाय तो मुमुर्षु-मानव भी नव-जीवन लाभ करता है। रसौषधि होने पर भी आनन्द की बात तो यह है, कि स्वेच्छानुसार आहार-विहार करने से भी किसी प्रकार के आपद-विपद का सामना करना न पड़ेगा।

सिद्ध मकरध्वज की शास्त्रोक्ति ऊपर में संक्षेप में वर्णन किया है। यही सिद्ध-मकरध्वज मेरे अनुशोधित चतुर्भुज रस की मातृभूमि होने से उपर्युक्त शास्त्र के श्लोकों की मर्यादा सुचारु रूप में सुसम्पन्न होती है।

मुख्य दो बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये

यह तो मैंने बारंबार परीक्षा करके देखा है कि महाघोर प्रलाप में मेरा अनुशोधित चतुर्भुज-रस सेवन कराने से आज तक मुझे अपयश नहीं मिला है। उस समय केवल दो बात पर ध्यान रखना चाहिए। पहिली बात यह है, कि रोगी का नाड़ी-स्पन्दन, हृदय-स्पन्दन यदि अत्यधिक हो, साथ ही श्वास-प्रश्वास यदि शीघ्र एवं दीर्घ हो यानी ४०-५० से या उससे अधिक हो एवं हाथ-पैर यदि शीतल न हों, साथ ही ज्वर यदि १०४ डिग्री से ऊपर हो तो चतुर्भुज रस अर्ध-मात्रा में देते जाना चाहिए। क्योंकि चतुर्भुज-रस सेवन के बाद वह रक्ताभिसरण क्रिया को तीव्र कर देता है। अतः पूर्णमात्रा में देने से रोगी को कष्ट हो सकता है, लेकिन अर्ध-मात्रा में देने से रोगी को कष्ट न होकर क्रमशः उपसर्ग कम होता जाता है। ऐसी अवस्था में प्रति दो-तीन-चार घण्टों में एक-एक मात्रा सेवन कराना चाहिए। आवश्यकता हो तो अवसाद Collaps के समय दश-दश मिनट अन्तर से भी सेवन कराया जा सकता है।

अनुपान

अनुपान में तालगोला का अन्तस्थ जल वा कच्चे नारियल का जल उत्तम होता है। लेकिन सर्वदेश में वह मिलना असंभव है । अतः वेदाना व मीठा अनार, दाड़िम का स्वरस भी उत्तम होता है। वह भी न मिले एवं कफ का विकार-उपद्रव न रहे तो गाय का उष्ण-दूध अन्दाज आधा तोला मोटा एलचा (स्यूलैला) का चूर्ण ४-६ रत्ती और थोड़ा सा मिश्री के साथ मर्दन कर सेवन करा सकते हैं।

भीषण संकटावस्था

दूसरी बात यह है कि उपर्युक्त अवस्था की ठीक विपरीत अवस्था होवे यानी रोगी

की स्थिति निराशाजनक Hopeless होवे अर्थात रोगी के हाथ-पैर शीतल होते जावें नाड़ी स्पन्दन, हृदय-स्पन्दन, श्वासोच्छवास में विकृति-विशृंखलता शुरू हो जावे, नाड़ी-स्पन्दन, हृदय-स्पन्दन बीच-बीचमें बन्द होकर फिर चलने लगे, सर्व-शरीर में स्वेद (पसीना) निकलने लगे तो इसे भीषण-संकटावस्था माना जाता हैं। ऐसी स्थिति में मेरे गवेषित सुप्त रूप में आक्सिजन युक्त चतुर्भुज रस पूर्ण मात्रा में देना चाहिए। उस समय यदि प्रवाल-भस्म प्रतिवार एक रत्ती मिलाया जाय तो अति सुन्दर फल-लाभ होता है। उस अवस्था में सहिले चतुर्भुज-रस को मधु (शहद) के साथ पीसलें। बाद में तुलसी का स्वरस वा अद्रक का स्वरस, सुविधा हो तो दोनों का स्वरस एक चमच Tea spoon उसके साथ मिश्रित कर, मर्दन कर सेवन कराना चाहिए। ऐसी अति गंभीरावस्था में आवश्यकता के अनुसार दस-दस मिनट में औषधि सेवन कराना चाहिए, जब तक रोगी की अवस्था में सुधार मालूम न पड़े। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे अनुशोधित चतुर्भुज रस की तीन-चार मात्रा उदरस्थ होने से रोगी की अवस्था में अवश्य सुधार मालूम पड़ेगा। रोगी की अवस्था में परिवर्तन होने से फिर शीघ्र औषधि न देकर क्रमशः समय दीर्घ करना चाहिए। क्रमशः २-३-४-६ घण्टा अंतर से औषधि दें।

एक प्रत्यक्ष उदाहरण

आप सज्जनों के आनन्दवर्द्धनार्थ एवं उत्तेजनार्थ केवल दो ही रोगियों का उदाहरण यहां देता हूं। एक सुप्रसिद्ध डाक्टरी रुग्णालय में ६० वर्ष से ऊपर उम्रवाले एक रोगी का ब्लड प्रेशर क्रमशः कमती होते होते ९५ हो गया था। उसे डाक्टरी विज्ञानानुसार सर्व प्रकार की चिकित्सा की गई, फिर भी उसकी स्थिति क्रमशः खराब हो रही थी उस रुग्णालय के प्रसिद्ध डाक्टर साहेब ने मुझे रोगी बताया। अहोरात्र में केवल चार पूर्ण मात्रा चतुर्भुज रस शहद के साथ (क्योंकि रुग्णालय के डाक्टरसाहेब ने दूसरा अनुपान देने को स्वीकार नहीं किया) सेवन करानेको बोल कर आया। दूसरे दिन १२ बजे उक्त डाक्टर साहेब के साथ पहुंचा तो मालूम पड़ा कि केवल पहिली मात्रा के सेवन के बाद से ही ब्लड-प्रेशर उतरना बन्द हो गया यानी अवसाद Collaps होना बन्द हो गया एवं ब्लड-प्रेसर क्रमशः बढ़ने लगा दूसरे दिन १२ बजे ब्लड प्रेशर ११० एवं तीसरे दिन ११८ हो गया। रोगी ने स्वस्थ होकर रुग्णालय त्याग किया। Low Blood Pressure में एवं Collaps में वास्तव में ही चतुर्भुज-रस अनोखा काम करता है, मानो सद्गुरु का स्नेहाशीष है।

दूसरा उदाहरण

अति प्रसिद्ध एक डाक्टरी रुग्णालय के ऐसिस्टैंट मेडिकल आफिसर डाक्टर साहेब की स्त्री को टाईफायेड typhoid हुआ उन्हें स्पेशल रूम में रखकर क्लोरोमाईसीटिन (Chloromycetin) दिया। तीसरे दिन ज्वर उतर गया लेकिन चौथे दिन से प्रलाप शुरू हुआ। ऐसिस्टैण्ट मेडिकल आफिसर की स्त्री होने से डाक्टरी विज्ञान की विधि के अनुसार प्रलाप शांत करने के लिये सर्व प्रयत्न व्यर्थ गया। प्रलाप इतना गंभीर था कि नासिका गह्वर में रबर की नली डालकर ग्लोकोज का जल पीलाया

जाता था। उससे सात अहोरात्र में जब लाभ नहीं हुआ तो मुझे बुलाया। मैंने सातवें-रोज शाम को पहुँचकर रोगिणी की स्थिति देखकर अपना अनुशोधित चतुर्भुज रस दूध + शक्कर के साथ सेवन कराने को कह कर आया। दूसरे दिन १२ बजे पहुँच कर देखा कि रोगिणी का प्रलाप शांत हो गया, वह पूर्ण चैतन्यावस्था में थी। मुझ से स्नेहपूर्वक बात की एवं बोली कि "रात में ही मुझे होस आया तथा रबर की नली निकाल दी; सवेरे चाय और मोसम्बी का रस मख से पिया।" तत् पश्चात् औषधि और पथ्य मुख से लेने लगी। उसमें एक खराबी यह थी कि वह हर वक्त थूकती थी प्रलाप अवस्था में।

सुविचार्य्य बात एवं आयुर्वेद का विशेषत्व

सुधी-स्वधर्म्मी-भ्रातृवृन्द ! अब आप सज्जन ही स्थिर-चित्त से सुविचार कर देखिए कि वर्तमान समय के प्रगति-शील डाक्टरी विज्ञान के सर्वप्रकार प्रयत्न से जो डाक्टर साहेब की सहधर्मिणी प्रायः सात अहोरात्र अज्ञानावस्था में प्रलापोक्ति करती थी, वही रोगिणी को मेरा अनुशोधित एवं गवेषित सुप्त रूप में आक्सिजन युक्त चतुर्भुज रस केवल १६-१७ घण्टे में ही चैतन्यावस्था में ला दिया। यह सत्य स्वरूप आयुर्वेद विज्ञान का विशेषत्त्व एवं अनोखा महत्व है। सत्य है, कि मैंने सुदीर्घ ३६ वर्ष तक सती साध्वी की भाँति मेरा सर्वस्व स्वाहा कर इसकी गवेषणानुशोधन में व्यतीत किया है, फिर भी इस विशेषत्व का मालिक तो आयुर्वेद-विज्ञान ही है न ? इसकी सुप्रेरणा तो मुझे अतुल स्नेहमय श्रीश्री सद्गुरु महाराज की अहेतुकी-अनुकंपा से ही मिली है न ? सद्गुरु सबका स्नेहमय परमपिता है। आयुर्वेद विज्ञान सर्वदेश का सर्व मानव-मण्डली का आरोग्य दाता है। अतः आप भी सत्य संकल्प लेकर आयुर्वेद-विज्ञान में नवीन-नवीन आविष्कार वा अनुशोध के लिये तन-मन-धन से प्रयत्न कीजिये। अवश्य सच्चिदानन्द स्वरूप सद्गुरु की अनुकम्पा अलक्ष्य से आप के सिर पर वर्षित होगी, आप धन्य हो जायेंगे। सर्व मानव समाज का कल्याण हो जायगा।

सर्व-रोग की अन्तिम अवस्था में

शास्त्र में चतुर्भुज-रस उन्मादाधिकार में वर्णित है। अवश्य उन्माद-रोग में इससे लाभ होता है—होगा भी; लेकिन मेरा अनुशोधित-गवेषित चतुर्भुज-रस प्रायः सर्व-रोग में (अनुपान भेद से) एवं विशेष करके सर्वरोग की अन्तिम अवस्था में यथा-समय, यथा-मात्रा एवं यथोपयुक्त अनुपान के साथ मर्दन कर सेवन कराने से प्रायः ही पश्चाताप का अवसर उपस्थित नहीं होगा। फिर भी ध्रुव-सत्य है, कि मर-जगत् में अमर कोई नहीं हुआ—न होगा; एक दिन मैं भी काल के गाल में पहुँच जाऊँगा। अतः ऐसा मिथ्याभिमान नहीं रखना कि विश्व के प्रत्येक मानव को ही चतुर्भुज-रस स्वस्थ कर देगा। हां,—मर-जगत् में अन्तिम अवस्था के लिए जितनी औषधियाँ वर्तमान में प्रचलित हैं, मुझे विश्वास है, कि उनमें से यह औषधि श्रेष्ठ होगी।

पाश्चात्य औषधियों के साथ टक्कर लेने के लिए आप मेरे साथी बनें

एक बात और है कि कोरामीन वा तत्सम गुणयुक्त औषधियाँ प्रतिवर्ष भारत-भूमि से लगभग एक करोड़ रुपया आत्मसात् कर परदेश में भेजती हैं। उनका यह रुपया-कर्षण को रोकने के लिए में दृढ़ प्रयत्न कर

रहा हूँ। उस शुभ काम में आप मेरे साथी बनिए। कोरामीन व तत्सम गुण सम्पन्न औषधियाँ केवल मात्र हृदय और मस्तिष्क को साधारण उत्तेजन करना जानती हैं—रोग नाश नहीं कर सकतीं; लेकिन मेरी अनुशीलित तथा गवेषित सुप्तरूप में आविसजन युक्त चतुर्भुज रस फुफ्फुस (Lungs) हृदय, नाड़ियों, स्नायुओं और मस्तिष्क पर शीघ्र-प्रभाव डालकर क्रमशः उनके विकार, विशृंखलता नाश कर मूल रोग को शमन करता है। यहां तक कि महाघोर सन्निपात, प्रलाप का भी शमन करता है।

आपका कर्त्तव्य

उस दिव्यौषधि का सारा तत्त्व, गुणावगुण, वर्त्तमान् के आयुर्वेद विज्ञान के उज्ज्वल-भास्कर श्रद्धेय वैद्यरत्न पंडित श्री युत शिवशर्म्मा जी महोदय को सविस्तार सुनाया है एवं रुग्णालयों की रिपोर्टादि भी बतायी है। उनकी ही अनुज्ञा से चतुर्भुज-रस की प्रस्तुत-विधि और प्रयोग-विधि लिपिवद्ध कर आप लोगों की पवित्र सेवा में भेज रहा हूँ। मेरा अनुरोध है, कि आप लोग चतुर्भुज-रस बनाइये तथा गंभीरावस्था के रोगी को विधि-अनुसार सेवन कराइये एवं प्रत्येक रोगी का विवरण सविस्तार लिख रखिए। उसी परीक्षित विवरण (Clinical report) की एक प्रति प्रधान-मन्त्री महाशय के समीप (आयुर्वेद महासम्मेलन, महालक्ष्मी मार्केट, चाँदनी चौक, दिल्ली) एवं एक प्रति मेरे पास भेजते जाइए। इसका कारण यह है, कि कोरामीन व तत्सम गुण युक्त औषधियों का रुपयाकर्षण रोकने के लिए एवं भारत-भूमि से उसका बिस्तरा बाँधने के लिये हम विशेष प्रयत्न कर रहे हैं। कोरामीन व तत्सम गुणसम्पन्न औषधियों का रुपयाकर्षण बन्द होने से आप ही आप पाश्चात्य विज्ञान शास्त्रिओं के मन में हल-चल मच जाएगी। वे आप ही आप इसका कारण अनुसंधान में लिप्त होंगे एवं चतुर्भुज-रस की कीर्त्ति से वे उद्भासित हो जायेंगे। उससे आयुर्वेद-विज्ञान का सत्य-सुप्रचार आप ही आप पाश्चात्य भूमि में होता जायगा। वे स्वयं ही समझेंगे कि आयुर्वेद-विज्ञान गुण्डे के "गुण्डत्व" से पूर्ण नहीं है,—उसके दिव्य गर्भ में सहस्र-सहस्र अनोखी औषधियाँ सुप्तावस्था में छिपी पड़ी हैं। अतः वे आयुर्वेद के अनुशीलन में व्रती हो जायेंगे।

कोई सज्जन को कोई बात पर शंका हो तो उत्तर के लिये अपना शिरोनामा-युक्त लिफापा (डाक टिकिट सह) भेजें, मैं अवश्य उत्तर दूँगा जिससे आपकी शंका नाश हो। आप लोगों की शंका नाश के लिये मैंने "चतुर्भुज-रस का रासायनिक विश्लेषण" पुस्तक लिखी है। उसे पढ़ने से फिर शंका की उत्पत्ति ही नहीं होगी। अर्थाभाव के कारण अभी तक वह प्रकाशित नहीं हुई है। जल्दी प्रकाशित होगी।

सर्व प्रकार के आक्षेप तथा हिक्का में भी चतुर्भुज-रस उत्तम काम करता है। अवस्थानुसार अनुपान का योग करें। सर्व-प्रकार ज्वर, खास करके टाईफायेड और मिनिनजाइटीस में नियमित सेवन कराने से वह रोग समूल नाश होता है, ध्यान रखें कि चतुर्भुज-रस गुरु जैसा है, उससे गुरुत्व में व्यवहार करें। लघुत्व यानी हल्का-हल्का रोग नाश के लिये इसे काम में न लेना ही ठीक होगा।

एक भारी रोग के साथ उसके नौकर चाकर-रूप अनेक उपसर्ग आते ही हैं। साधारण उपसर्ग नाश के लिये दूसरी-औषधि दें। दोनों औषधियों का अन्तर दो-तीन घण्टा होना चाहिए।

आयुर्वेद प्रयोग साद्गुण्यम्

श्री हनुमत्सहाय शर्मा, भिषगाचार्य, सीकर

इस विषय में चिकित्सा के लिए वर्तमान समय में नाना पैथियाँ हैं और सब पैथियाँ अपनी २ चिकित्सा के सिद्धांत भिन्न २ रखती हैं। परन्तु केवल एक आयुर्वेद ही ऐसा है जिसका कि इतिहास अति प्राचीन या यों कहें कि जो सब से आदि का है और जिसके आर्ष योगों के प्रयोग अति निरापद एवं सद्गुणों से युक्त हैं।

इस पैथी में किसी रोगी विशेष के लिये किसी योग विशेष का पालन कराते समय उसकी प्रकृति, दोष, बल आदि अनेक विषयों को समक्ष रखकर योग्य चिकित्सक किसी योग का पालन कराने का निर्णय कराता है। इसी कारण से वह योग उसके लिए सब दोषों से उन्मुक्त होता है। इस पैथी में यह नहीं है जैसे अन्य पैथियों में हृदय आदि के लिये हानिकर होते हुये तथा विभिन्न प्रकृति, दोष, बल आदि होते हुए भी सब व्यक्तियों को एक औषध का प्रयोग आंख मीचकर अन्धा-धुन्ध करते हैं जैसे कि मलेरिया (विषमज्वर) में "क्विनाइन" ऊर्ध्वाङ्ग, शूल में "एस्प्रीन" तथा पूय संचार देखकर "पैनिसिलिन" के प्रयोग से सर्वत्र समान चिकित्सा की जाती है। आयुर्वेद में तो स्पष्ट लिखा है :—

दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः।
सत्वं सात्म्यं तथाहारमवस्थाश्च पृथग्विधा॥
सूक्ष्म सूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषध निरूपणे।
यो वर्तते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित॥

प्रत्यक्ष भी देखा जाता है कि किसी व्यक्ति को प्रकृतितः ही गन्ने के रस से, उष्ण जल से, दूध से और त्रिफला आदि मृदु द्रव्यों से ही सम्यक् विरेचन हो जाता है और किसी को इनसे विरेचन नहीं होता। अतः उन व्यक्तियों पर एक ही औषध का प्रयोग करना कहां तक संगत हो सकता है यह सभी अनुमान लगा सकते हैं। ऐलोपैथी के सद्यः फल दर्शाने वाले प्रयोग एक व्याधि को तो शमन करते हैं परन्तु अन्य व्याधि को उत्पन्न कर देते हैं! इस प्रकार के योग आर्ष ग्रन्थों में नाम मात्र भी नहीं हैं। इसीलिए विशुद्ध प्रयोग के लक्षणों में लिखा है :—

प्रयोगः शमयेद् व्याधिमेकं योन्यमुदीरयेत्।
नाऽसौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद् यो न कोपयेत्॥

अब यहाँ पर कुछ आर्ष प्रयोगों का वर्णन करना प्रसंगानुकूल होगा। चिकित्सा के लिहाज से चरक चिकित्सा स्थान सर्वोत्तम है। इस स्थान में सूत्ररूप से अनेक व्याधियों की अमोघ चिकित्सा वर्णित है। चिकित्सा स्थान की ३० अध्यायों में भी गुल्म, ग्रहणी और पाण्डुरोगाध्यायों में तो चिकित्सा का बहुत सुन्दर रहस्य भरा हुआ है। इन एक एक अध्याय में अनेकों रोगों की चिकित्सा का समावेश बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। ग्रहणी चिकित्सा अध्याय में एक मन्दाग्नि की चिकित्सा को लक्षित कर हेतु विशेष को ध्यान में रखते हुये अनेक चिकित्सा लिखी हैं। यथाः—

अतिस्नेहात्तु मन्देग्नौ चूर्णरिष्टासवा हिताः ।
भिन्ने गुदोपलेपात्तु मले तैल सुरासवाः ॥
उदावर्तात्तु मन्देग्नौ निरूहाः स्नेह वस्तयः ।
दोष वृद्धया तु मन्देग्नौ शुद्धो दोष विधिं चरेत् ॥
व्याधि युक्तस्य मन्देतु सर्पिरेवाग्नि दीपनम् ।
उपवासाच्च मन्देग्नौ यवागूभिः पिवेद्घृतम् ॥

इसी प्रकार रक्ताल्पता जन्य व रक्त दोष जन्य सभी रोगों की चिकित्सा पाण्डुरोगाध्याय में वर्णित है। जैसे नवायस लोह जैसे साधारण योग को ही देखिये :—

त्र्यूषणं त्रिफलामुस्तविडंगचित्रकाः समाः ।
नवायो रजसो भागास्तच्चूर्णं क्षौद्र सर्पिषा ॥
भक्षयेत् पाण्डु हृद्रोग कुष्ठार्शः कामलापहम् ।

आर्ष योगों के अन्त में जो अनेक व्याधिशमन का उल्लेख है वह भी अलंकारिक नहीं समझना चाहिए बल्कि उनका वर्णन साभिप्राय किया गया है। इसी नवायस लौह का पाण्डुरोग, हृद्रोग व कामलादि शामक बताना यह दर्शाता है कि ये रोग पाण्डुरोग के उपद्रव भूत हो सकते हैं। इसी प्रकार गुल्माधिकार में पिप्पल्यादि घृत के गुण वर्णन में लिखा है :—

सिद्धमेतैर्घृतं सद्यो वातगुल्मं व्यपोहति ।
योनिशूलं शिरःशूलमर्शांसि विषमज्वरम् ॥

यहाँ पर योनिशूल, शिरःशूल, अर्श और बिषमज्वर का शमन करना यह बतलाता है कि ये सब गुल्म दोष के उपद्रव हैं इन सबको यह घृत शान्त करता है। इसी प्रकार प्रयोगों में अनेक रोग शामक फलस्तुति जो मिलती है उनकी बुद्धि से चिन्तना करनी चाहिये। स्नायुविकृति व वाततन्तुओं के विकारों में स्वर्ण के योग अप्रतिम लाभ करते हैं। श्वास रोगों में ताम्र के योग चमत्कार दर्शाते हैं।

आयुर्वेद के योग निस्वार्थ केवल लोकहित के लिये त्रिकाल ज्ञान सम्पन्न ऋषियों से निर्मित हैं अतः निरापद व व्याधि को निर्मूल करते हैं। इन पर आधुनिक समय में श्रद्धा को रखते हुये विशेष अनुसन्धान होना चाहिए इसका पक्षपाती मैं भी हूँ। इस पैथी में ज्वर को तत्काल नष्ट करने वाले "एस्प्रीन" या "एमिडोपाइरीन" जैसे हृदयावसादक व हृदय कार्यावरोधक योग नहीं हैं। अतएव आयुर्वेद के योग माता के दुग्ध के समान एकान्ततः लाभप्रद कहे गये हैं।

दीन पल्भ

विशुद्ध वनस्पतियों से निर्मित यह महौषधि यकृत से पित्त के आंतों में उचित मात्रा में न पहुँचने से उत्पन्न होनेवाले विकारों तथा कोष्ठबद्धता, शरीर का विषयुक्त होना, किसी काम में मन न लगना, उदासी, दुर्बलता, हाथों पैरों तथा कमर आदि में दर्द, हृदय में जलन घबराहट इत्यादि में अत्यन्त लाभप्रद है। दीन पल्भ के तीन सप्ताह के सेवन से ही रक्त का प्रवाह ठीक होकर सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं। यह औषधि २ माशा से लेकर ६ माशा तक आवश्यकतानुसार दूध या जल से प्रातःकाल अथवा सायंकाल सोते समय सेवन की जाती है। विशेष विवरण के लिये लिखें।

दीनबन्धु कैमिकल वर्क्स
तुमसर, मध्यप्रदेश
मध्य प्रदेश के प्रमुख विक्रेता :—
वैद्य ब्रदर्स, इतवारी, नागपुर।

आयुर्वेद-पताके !

जयसि पताके ! जयसि पताके !!

मानव-मानस-मंजु मराले !, भव्यभावना-भूषित-भाले ! ।
सुरभित-सुमनः-सज्जितमाले !, स्वास्थ्य-सुधाकर सितकर जाले !
विश्ववन्दिते ! दिव्याऽलोके ! ॥१ ॥ जयसि० ॥

विश्रुतदोषत्रयस्वरूपे !, समुचित सित-हरिताऽरुण रूपे ! ।
गदगजराज निपातन कूपे !, विविध-विधान-विनोदित-भूपे ! ॥
रस-गुण-वीर्य-विभाव-विपाके ! ॥ २ ॥ जयसि०

मंजुल-मंगल-मोद-विधायिनि !, मधुर-मनोहर-मिलनविमोहिनि ! ।
वैद्यबन्धुताबन्धन-कारिणि !, ह्यामयतापत्रयविनिवारिणि ! ॥
आयुर्वेद-सुविमल-विवेके ! ॥ ३ ॥ जयसि० ॥

एहि समुन्नति-दायिनी ! मातः !, दर्शनपथ-मनुपल-मनुप्रातः ।
वैद्यक-विद्या-विदित-विभातः, समनुभवामो नीरुजताऽतः ॥
जीवनतत्वे ! प्रशमित-शोके ! ॥ ४ ॥ जयसि० ॥

पादपयोज-पराग-प्रसंगे, प्रेम-पवित्र-पयोधि-तरंगे ।
संस्मृति-विस्मृति-संसृति-संगे, वरद-करं कुरुदेवि ! वरांगे ॥
आयुर्वेदाऽगम-प्रतीके ! ॥५॥ जयसि पताके० ॥

श्री गिरजादत्त पाठको वैद्यः शास्त्री
कविरत्नः साहित्यायुर्वेदाचार्यः विद्याविनोदः
श्री कालिकेश्वर कार्यालय, पत्रालयः बक्सर,
मण्डल, शाहाबाद ।

पूर्ण प्रभावकारी एवं निर्दोष
आयुर्वेदिक इन्जेक्शन्स
प्राप्त करने के लिये
'वैद्यराज रसायनशाला गाज़ियाबाद यू.पी.' को सदैव याद रखिये !

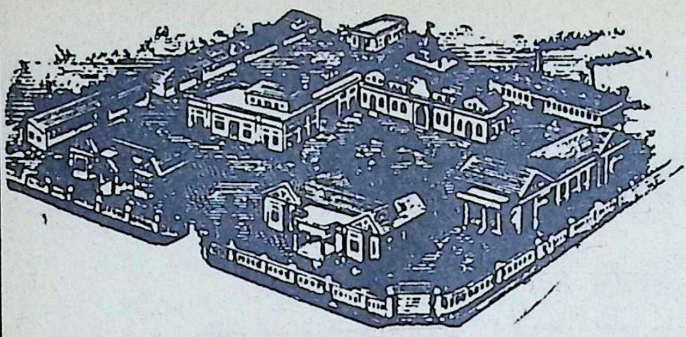

४५ वर्षों से विश्व
भर में प्रतिष्ठा प्राप्त
भारत की प्रमुख
आयुर्वेदिक औषध
निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम REGD.

गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, वगैरह सैकड़ों प्रकार की हाथ से बनी औषधियाँ तैयार रहती हैं। हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रदेश में और चीन फीजी आफ्रिका अमेरिका युरुप में भी जाती है। सब भाषा के सूचीपत्र मुफ्त भेजते हैं।

ऋद्धिखडः—वादिखडः

नित्यनाथ सिद्ध का यह धातुवाद सुवर्ण सिद्धिका अद्भुत अप्राप्य ग्रन्थ संवत १७८५ साल की हस्त लिखित प्रति के आधार से प्रसिद्ध किया है। पत्र २०० पक्का जिल्द २० उपदेश हैं। धातुवाद में रस लेने वालों के लिए संग्राह्य है। मूल श्लोक मात्र हैं।

गोंडल रसशाला औषधाश्रम शाखा नं० १
वसंत वाडी के सामने, ४१६ कालवा देवी रोड, मुम्बई २।

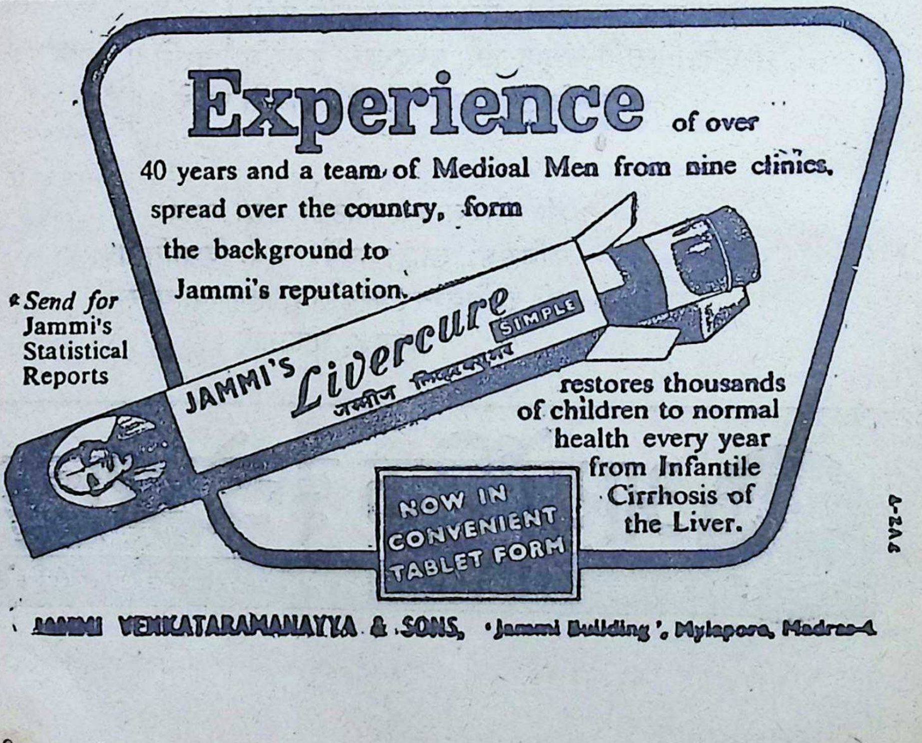

Experience of over 40 years and a team of Medical Men from nine clinics, spread over the country, form the background to Jammi's reputation.

*Send for Jammi's Statistical Reports

JAMMI'S Livercure SIMPLE
जम्मीज लिव्हरक्यूर

restores thousands of children to normal health every year from Infantile Cirrhosis of the Liver.

NOW IN CONVENIENT TABLET FORM

JAMMI VENKATARAMANAYYA & SONS, 'Jammi Building', Mylapore, Madras-4

यथा प्रवृद्धास्तथैव क्षीणा अपि दोषाः विकारान् जनयन्तीति सिद्धान्तः

[वैद्य महावीर प्रसाद मिश्र, आयुर्वेदरत्न, बम्बई,]

क्षीणदोषरोगकारणवादे दोषक्षयस्य रोगकारणत्वं खण्डयितृणां प्रमाणवाक्यानां मध्ये बहूनां समाधानपूर्वकं दोषक्षयस्य रोगकारणत्वरूपं स्वपक्षं समर्थयन्ति एतन्निबन्धकाराः। इयन्तं कालं उभयपक्षीयैरपि अप्रदर्शितं दोषक्षयस्याहेतुत्वप्रतिपादकं प्रामाणिकटीकाकारद्वयवाक्यं समुद्धृत्य वैद्यराज श्री ओंकारशास्त्रिभिः प्रहितं एतन्निबन्धान्ते प्रकाशितमस्ति यदुपर्यपि भूयो जिज्ञास्यं भवत्यभियोगेन।

इदमिदानीं प्रस्फुटं यद् दोषक्षयस्य व्याधिहेतुत्वे साधकानि बाधकानि च प्रमाणवचांसि प्राचीनग्रन्थेषु प्रायः समानि दृश्यन्ते। दोषाणां रोगाणां च कूलंकपनिष्कृष्टसिद्धान्तविज्ञानमेव दोषक्षयः रोगजनको वा नवेति निर्णेष्यति। दोषविज्ञाने आप्तोपदेशानां प्रत्यक्षप्रमाणानुविधायित्व प्रदर्शनपर्यन्तं नास्मादृशां जिज्ञासूनां तृप्तिः संभाविनी। अतस्तस्यां दिश गवेषणा इतः परमस्माभिः कर्त्तव्येति।

वा० बा० न० शास्त्री

सम्प्रति वातपित्तकफानां त्रयाणां दोषाणां प्रवृद्धानां क्षीणानां च विषये रोगकर्तृत्वमरोगकर्तृत्वं विवादो प्रचलति स्म। एषः सर्वमूलः सिद्धान्तो यत् व्यपदेशस्तु भूयसा प्राधान्यानां भवति प्रधानस्तु स्वोत्कर्षकर्मणा यः प्रवृद्धः स एव भवति। स एव विशेषानिष्टं कर्तुं प्रभवति। तस्यैव प्रधानतया वर्णनं भवति। यश्च स्वकर्मणा क्षीणः स न किंचित् स्वकीयया शक्त्या विकारं कर्तुं समर्थों भवति। किन्तु स एव क्षीणो दोष अन्याश्रयेण विकारं जनयति। अनुबन्धमेन माचक्षन्ते कुशलाः। अनुबन्धे सति दोषाणां न विकाराभिनिर्वृत्तिः। यथा चरके (सू० अ० ४।४) "अथवा कालप्रकर्षादबलीयाँसोऽथवाऽनुबन्धन्ति न तदा विकाराभिनिर्वृत्तिः"। अत्रैव चक्रपाणिः—'अबलीयांसोऽथवाऽनुन्धन्तीति निदानं यदाल्पं भवति तदा स्तोकदोषं करोति, दोषश्च स्तोकः स्तोकं च दूष्यं दूषयतीत्यादि'। अत्र स्तोको दोषः स्तोकं दोषं करोति दूषयति तेन विकारमापद्यते। विकारकर्त्ता हि स्तोको दोषः अतः स एव विकारस्य जनकः। 'जनकं हि निदानमुच्यत इति चक्रपाणिः'। अत्रानुबन्धत्त्वेन रोगोत्पादकत्वात् क्षीणानां दोषाणां विकारकर्तृत्वमिति स्पष्टं प्रतीयते।

ये च "दोषाः प्रवृद्धाः स्वं लिङ्गं दर्शयन्ति यथाबलम्, क्षीणा जहति लिंगं स्वं समाः स्वं कर्म कुर्वते" पद्यममुमाश्रित्य प्रवृद्धदोषाणां विकारकर्तृत्वं क्षीणानां चाविकारकर्तृत्वं च मन्यन्ते। अत्र क्षीणा जहतिलिंगं स्वमिति विवेच्यम्। पद्यमदश्च चिन्त्यम्। यथा-दोषाणां त्रिविधा एव गतयो भवन्ति क्षयात्मिका, प्रवृद्धात्मिका स्वस्थानसंश्रयात्मिका च। यथा चरके (सू०अ०१७।१२)

"क्षय: स्थानं च वृद्धिश्च दोषाणां त्रिविधा-गति:" इति। तत्र प्रवृद्धानां दाषाणामेतादृश्यो गतयो भवन्ति यथा ते यथाबल प्रवृद्धानुसारेण स्वं लिंगं स्वकीयमात्मलिंगं मध्यबल अल्पबल-प्रवृद्धबलानुरूपं दर्शयन्ति प्रकटयन्ति। क्षीणाश्च यथावलं यथा सामर्थ्यं "स्थौल्य-सामर्थ्यसैन्येषु बलमित्यमर:" स्वं लिंगं स्वकीयं प्राकृतं लिंगं जहति त्यजति। समा: स्वस्थानस्थाश्च स्वं कर्म स्वकीयं स्वकीयं कर्म कुर्वते। अत्र दोषणां प्रवृद्धभावत्वं क्षीणभावत्वमेव वैषम्यम्। वैषम्यमेवविकार: "विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते"। दोषाणां धातूनांच यत् वैषम्यं तदेवरोग:। यथाष्टांगहृदये (सू० अ० १।२०) "रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता"। अत्ररुणदत्त:-'दोषाणां वातादीनां वैषम्यं स्वप्रमाणादेकस्य द्वयोस्त्रयाणां वा वृद्धि:क्षयो वा रुजाकरत्वाद्रोग एव वैषम्यं,विषमता स्वरूपाच्च्याव:। तत: कार्यकारणयोरभेदेन पठितो रोग इति'। रोगानीके विमानस्थानेऽपि "द्वे रोगानीके निमित्तभेदेन स्वधातुवैषम्यनिमित्तमागन्तु निमित्तंचेति। अत्र हि एकत्वं तावदेकमेव रोगानीकं दुःखसामान्यात्"। अत्र चक्रपाणि:—'दु:ख सामान्यादिति दु:खकर्तृत्वेन सर्वरोगानुगतेन साधारणेन रूपेण सर्वएवरोगा एकरूपा भवंति' इति। अत्र प्रवृद्धारपि दोषा:दु:खकर्तारो भवन्ति क्षीणारपि शक्त्यपकर्षत्वेन दु:खकर्त्तारो भवन्ति अत्र च क्षीणानां दोषाणां स्वलिङ्ग जहत्स्वरूपमेवविकार:। चक्रपाणिरपि'लिङ्ग स्वं जहतीत्यनेन क्षीणानां प्रकृतिलिङ्गक्षयव्यतिरिक्तं विकारकर्तृत्वं नास्तीति'। अनेनापि स्वलिङ्गक्षयस्वरूपं विकारं तु स्वीकृतमेव। विकारकर्तृत्वं नास्तीत्यत्र चक्रपाणेरपि व्यामोह: संजात:। यथा सम्प्रति प्रत्यक्षेणाप्तोपदेशेनाप्यनुभूयते बालानां रिकेट्स्-अस्थिक्षयो बालशोष: फक्क इत्यादयो रोगा: क्षयेणैव भवन्ति। पक्षाधातश्च वातक्षयेणापि भवति। अतो पद्येऽस्मिन्स्तु प्रवृद्धा: दोषा: स्वं रूपं दर्शयन्ति क्षीणाश्च स्वं रूपं जहतीत्येव दर्शितं न हि तावद् विकारकर्तृत्वाकर्तृत्व विषये किञ्चिदपि प्रतिपादितमाचार्येण। तत्तु समीचीनमेव। सर्वएव प्रवृद्धा: स्वोत्कर्षं दर्शयन्ति क्षीणाश्च स्वोत्कर्षाच्च्यवन्तीति।

ये प्रवृद्धानां दोषाणां रोगकारणत्वमुक्तं तदपि चिन्त्यम्-यथा"सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता:मला:। तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम्" इति। अत्रासात्म्यविविधाहारविहारादिना कुपितानां विकृतिमापन्नानां मलिनीभूतानां दोषाणामेव रोगकारणत्वमुक्तम्। न च प्रवृद्धा एव दोषा: प्रकुपिता: सन्ति। दोषाणां प्रवृद्धत्वमन्यत् प्रकुपितत्वमन्यदिति। स्वयोनिद्रव्याणां विशेषेण सेवनेन दोषाणां स्वगुणानां वर्धनं भवति, विरुद्धाशनादिसेवनेन च दोषाणां प्रकोपो भवति। प्रकुपितत्वेन विकृतिमापन्ना ये दोषास्त एव ज्वरकुष्ठादीन् रोगान् जनयन्ति। ये च स्वयोनिद्रव्यविशेषसेवनेन प्रवृद्धास्ते स्वकीयप्रवृात्मकं लिङ्गमेव दर्शयन्ति। यथा शरीरादिशक्त्युत्कर्षेण प्रवृद्धोजन: न कस्याप्यपकारं करोति किन्तु स एव जन: केनापि कारणेन क्रुद्धश्चेत् प्रकृतौ विकृतिमापन्नश्चेत्तदान्यस्य सर्वशक्त्यापकारं कर्तुं समर्थो भवति। तथैव प्रवृद्धानां दोषाणां विकृतिमापन्नानां मलानां विषये विधिर्ज्ञेय:। प्रवृद्धत्वप्रकुपितत्वयोर्भिन्ननिदानत्वात्। यथा प्रवृद्धानां दोषाणां निदानं स्वयोनिद्रव्याणां विशेषेण सेवनम्। प्रकुपितानां त्वसात्म्येन्द्रियार्थादय:। यथाचरके (वि. अ. ६।६) "तत्र खल्वेषां द्वयानामपि दोषाणां त्रिविधं प्रकोपणं तद्यथा असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग:, प्रज्ञापराध:, परिणामश्चेति" इति।

पुनश्च प्रवृद्धानां विकाराः परिसंख्येयाः, प्रकुपितानां त्वपरिसंख्येयाः। यथा प्रवृद्धानां परिसंख्येयाः (अ. हृ.सू. अ. ११।५) "वृद्धस्तु कुरुतेऽनिलः ॥५॥ कार्श्यकार्ष्ण्योष्णकामत्वकम्पानाहशकृद्ग्रहान्। बलनिद्रेन्द्रियभ्रंश प्रलापभ्रमदीनताः ॥६॥ पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक्क्षुत्तृड्दाहाल्पनिद्रता। पित्तम् श्लेष्माग्निसदनप्रसेकालस्यगौरवम् ॥७॥ श्वैत्यशैत्यश्लथाङ्गत्वं श्वासकासातिनिद्रताः" इति। पुनश्च वृद्धिक्षयसमतादिकृतानां विकाराणां द्विषष्टिभेदत्वेन परिसंख्येयत्वम्। प्रकुपितानामपरिसंख्येयाः, यथा (च. वि. अ. ६।७) "प्रकुपितास्तु खलु ते प्रकोपणविशेषाद् दूष्यविशेषाच्च विकारविशेषानभिनिर्वर्तयन्त्यपरिसंख्येयान्' इति। अतो दोषाणां प्रवृद्धत्वं प्रकुपितत्वं च भिन्नमेव। प्रकुपितास्तु रोगान् प्रवृद्धास्तु विकारविशेषान् जनयन्ति। विकारविशेषाणां जनकास्तु यथा प्रवृद्धास्तथैव क्षीणा अपि भवन्तीति।

ये चैवंमन्यन्ते वातक्षये पित्तश्लेष्माणौ प्रवृद्धौ भवतस्ताभ्यां वृद्धपित्तश्लेष्माभ्यामेव विकारोत्पत्ति नैव क्षीणवातेनेति तदपि चिन्त्यम्।

स्वभाविकत्वेन वातादीनां गुणाः परस्परोपघातकाः भवन्ति तथापि ते परस्परं नोपघ्नन्त्यन्येषां गुणान्। स्वप्रकृतिस्थाः स्वस्थानस्थाश्चदोषाः स्वं स्वं कार्यं निर्वर्तयन्त्येव। एक दोषस्य वृद्धौ सत्यां द्वयोरेकस्य वा क्षीणतेति न युज्यते। तथैवैकदौषस्य क्षीणे द्वयोरेकस्य वा वृद्धिरपि न युज्यते। यश्च स्वस्थानप्रकृतिस्थो क्षीणः स क्षीण एव विकारकर्ता, यश्च स्वस्थानप्रकृतिस्थो प्रवृद्धः स प्रवृद्ध एव विकारकर्ता। न च प्रवृद्धे क्षीणः क्षीणे प्रवृद्ध इति। येषां परस्परोपघाताभावात्। यथा "विरुद्धैरपि नत्वेते गुणै घ्नन्ति परस्परम्। दोषाः सहजसात्म्यत्वाद् घोरं विषमहीनिव" इति। पुनश्च पाञ्चभौतिकेद्रव्ये पञ्चानां भूतानां गुणाः सन्त्येव। येषां पार्थिवादित्वेन व्यपदेशस्तु भूयसा भवति। न च ते परस्परोपघातकाः भवन्ति। यथा पाञ्चभौतिकानि द्रव्याणि प्रभवन्ति तथैव पाञ्चभौतिकाः वातादयो दोषाः भवन्ति। येषां परस्परोपघाताभावे समानस्थाः स्वं कर्म कुर्वते, प्रवृद्धाः क्षीणाश्च विकारं जनयन्त्येव। अतरेवोक्त (च० सू० अ० १७।४३, ४४) "यथा वृद्धैस्तथा क्षीणैर्दोषैः स्युः पञ्चविंशतिः। वृद्धिक्षयकृतश्चान्यो विकल्प उपदेक्ष्यते।४३। वृद्धिरेकस्य समता चैकस्यैकस्य संक्षयः। द्वन्द्ववृद्धिः क्षयश्चैकस्यैकस्यवृद्धिर्द्वयोक्षयः इति अत्र ह्वल्वणैकोल्वणैरित्यनुवर्त्य यथा क्षीणानां पञ्चविंशतिविकाराः समुत्पद्यन्ते तान् दर्शयति चरकोपस्कारे योगीन्द्रनाथसेनः। यथा—'वृद्ध्या पञ्चविंशतिमुक्त्वा क्षयेऽपि पञ्चविंशतिं दर्शयति। यथा वृद्धैर्दोषैः पञ्चविंशतिस्तथा क्षीणैरपि पञ्चविंशतिर्विकाराः स्युः। यथा संनिपाते त्रयोदश, संसर्गे नव, पृथक् त्रयश्चेति। तद्यथा-वातः क्षीणः पित्तश्लेष्माणावतिक्षीणौ १, पित्तं क्षीणं वातश्लेष्माणावतिक्षीणौ २, श्लेष्मा क्षीणः, वातपित्ते अतिक्षीणे ३, इतिक्षीणानां संनिपतितानां मध्ये द्वयोरतिशये त्रयः। वातपित्ते क्षीणे श्लेष्मा अतिक्षीणः १, पित्तश्लेष्माणौ क्षीणौ वातोऽतिक्षीणः २, वातश्लेष्माणौ क्षीणौ पित्तमतिक्षीणम् ३, इति एकस्यातिशये त्रयः। श्लेष्मांक्षीणः पित्तं क्षीणतरं वातः क्षीणतमः १, वातः क्षीणः श्लेष्माक्षीणतरः पित्तं क्षीणतमम् २, पित्तं क्षीणं श्लेष्माक्षीणतरो वातः क्षीणतमः ३, श्लेष्मा क्षीणो, वातः क्षीणतरः, पित्तं क्षीणतमम् ४, वातः क्षीणः पित्तं क्षीणतरं श्लेष्मा

क्षीणतमः ५, पित्तं क्षीणं वातः क्षीणतरः श्लेष्मा क्षीणतमः ६ इति हीनमध्याधिकैः षट्। क्षीणाः वातपित्तश्लेष्माण इति, समैः क्षीणैरेकः एते त्रयोदशसन्निपाताः। संसर्गेण नव। तत्र क्षीणयोरेकस्यातिशये षट्-तद्यथा-वातः क्षीणः पित्तं क्षीणतरम् १, पित्तं क्षीणं वातः क्षीणतरः २, वातः क्षीणः श्लेष्मा क्षीणतरः ३, श्लेष्माक्षीणः वातः क्षीणतरः ४, श्लेष्मा क्षीणः पित्तं क्षीणतरम् ५, पित्तं क्षीणं श्लेष्मा क्षीणतरः ६,। तुल्य क्षीणाभ्यां त्रयः, तद्यथा-क्षीणे वातपित्ते १, क्षीणौ पित्तश्लेष्माणौ २, क्षीणौ वातश्लेष्माणौ ३, इति संसर्गेणनव। पृथक्त्रयः—वातः क्षीणः १, पित्तं क्षीणम् २, श्लेष्मा क्षीणः ३, एवं क्षीणैः पञ्चविंशतिः।

सन्निपतित्तानां दोषाणां युगपद् वृद्धिक्षयकृतोऽन्यो विकल्पो भेद उपदिश्यते'। इत्यादि विकल्पसहिताः दोषाणां द्विषष्टिविकाराः समुत्पद्यन्ते। यथा वृद्धैः पंचविशतिः क्षीणैः पंचविंशतिः। एवं पञ्चाशत्। वृद्धिक्षयसमताकृता षट्, वृद्धिक्षयकृताश्च षट, एवं द्विषष्टिः परिसंख्येयाः विकाराः। अनेनाप्येवं ज्ञायते यथा वृद्धाः दोषाः विकारां जनयन्ति तथैव क्षीणा अपि विकारांँजनयन्तीति सिद्धान्ततः।

ये च "वाते पित्ते कफे चैव क्षीणे लक्षणमुच्यते। कर्मणः प्राक्द्धानिर्वृद्धिर्वापि विरोधिनाम्॥ इत्यस्मिन्पद्ये वृद्धिर्वापि विरोधीनामित्यवलम्ब्य कथयन्ति यदेकदोषे क्षीणे सति-अन्यस्य वृद्धिर्भवति तदप्यसत्। अत्र हि चक्रपाणिः—'इह प्राकृतकर्महानौ सत्यांँ नावश्यं विरोधिकर्मवृद्धिरत उक्तं वृद्धिर्वेत्यादिः, न ह्यवश्यमुत्साह हानावल्पमात्रायां सत्यां विषादो वर्धते, अलोभन्यूनत्वे वा मनाग्लोभो वर्धते, किंवा, उत्साहाद्यभावेनाभावमुमुखेन ज्ञानार्थं "कर्मणः प्राक्ताद्धानिः" इत्युक्तं, विषादादि वृद्ध्या तु विधिमुखेन ज्ञानार्थं "वृद्धिर्वापि विरोधिनाम्", इत्युक्तम्। यदुच्यते—वृद्धिर्वापि विरोधिनामिति विरोधिदोषाणां यथा—पित्तवृद्धौ श्लेष्मक्षयो जायते, इत्येवमादिः तन्न, यतोऽन्यदोषवृद्धावन्यस्यावश्यं ह्यपायो भवति, तथाहि सति पित्तवृद्धौ सत्यां सर्वदा श्लेष्मक्षयः स्यात्, न च दोषाः परस्परधातका इति प्रागेव प्रतिपादितम्, प्रदेशान्तरेऽपि दोषाणां स्वलक्षणहानिरेव परं क्षयलक्षणमिति'।

आचार्याणां बहून्येतादृशानि प्रमाणानि सन्ति तान्यवलोक्य क्षीणानां दोषाणां विकारकर्त्तृत्वं ज्ञात्वा, साम्प्रतिके समयेऽपि प्रत्यक्षेण क्षीणत्वेन ये ये रोगाः समुत्पद्यन्ते तान् दृष्ट्वा, शास्त्रार्णवस्यागाधत्वं ज्ञात्वा कूपत्वं च परिहृत्य, तेषां मुखमर्दो विधेयो ये चाधुनिकाः-—आयुर्वेदशास्त्रविज्ञानस्यापूर्णतां प्रत्यन्ति। तेषामेव दृशावायुर्वेदस्य कूपतां द्योतयति। अतएवायुर्वेदस्य कूपतां परिहृत्यार्णवत्वञ्च सम्पादयन्तो विद्वांसो वैद्या आयुर्वेदस्य सर्वविज्ञानसम्पूर्णत्वं प्रकटयन्तु। पद्यमिदमवलम्ब्य विरमामि। पुनश्च यथावश्यकमस्मिन् विषये स्वविचारं प्रकटयिस्यामि—

आयुर्वेदमहाब्धिरत्ननिचयो-
प्रोद्वाह्यते सर्वदा
सर्वैः सामयिकैः चिकित्सकवरैः-
रन्विष्यमाणो वुधैः।
हं हो वै गुणिनस्तु रत्न-
निचयं कुर्वन्ति तस्मिन्मुदा
शास्त्राकण्ठविभूषणैः परि-
जनैः प्रस्तीर्यंते चार्णवः॥१॥

आयुर्वेदविदोविदश्च जगत—
श्चार्तस्य वै त्राणकाः
विद्यन्ते भुवि भारतेऽतिविरलाः
शास्त्रस्य ये कोविदाः ।
सन्ति स्वार्थपरेण लब्धयशसः
शास्त्रस्य वै वञ्चकाः
आत्मानं सततं गृणन्ति बहवो
वार्ताभयाः पण्डिताः ।।२।।

इति

अवधानमितोपि दीयताम्

ओंकार शास्त्री आयुर्वेदाचार्यः, ककराना राजस्थान

महासम्मेलन-पत्रिकायाम्बहोः कालात् प्रचलन्ति क्षीणदोष-कारणवाद-प्रतिवादाः। प्रकाशितानि च तत्तन्मन्तव्यपोषकानि विदुषाम्भिषजामाल्हादकराणि सुबहूनि लेखनानि, मूलग्रन्थटीकाकृतां चक्रपाणिडल्हणादिनां च वचनसंयुतानि । परन्नकेनाऽपि विदुषाऽद्यावधि हेमाद्रिप्रणीतया अष्टाङ्गहृदयस्य आयुर्वेदरसायनाख्यया टीकया किंचिदुट्टंकितम् । किन्तु सावधानेनान्वेषकधिया पठतामया सम्प्राप्तं यत्-हेमाद्रिरपि क्षीणदोषकारणतावादे पराङ्मुख एव, इति । प्रमाणयति अग्निस्वरूपं विबृण्वता तेन अधोन्यस्तम् तदीय वचनम्, "वैषम्यं च वृद्धिरेव, क्षीणानामीदृक्कार्यादर्शनात्" (अ, हृ, सू १।८)

नाहमेकतरमतपोषको, अतः लेखकानां कृते प्रमाण-साहाय्य प्रदानार्थमेवाऽस्मदीयोऽयम्प्रयासः । अहं तु क्षीणदोषंरोगकारणतावादे निमित्तमात्रमेवमन्ये इति ।

किञ्च माधवनिदानीय गलगण्डादिप्रकरणे मधुकोशव्याख्यायाम् "वातादयोमांसमसृक्प्रदुष्टा, + + + + + +" इति श्लोक व्याकुर्वन कण्ठरवेण श्री श्रीकण्ठदत्तोऽपि पूर्वं प्रदर्शितं हेमाद्रि वचनमिवेव न किंतु ततोऽपि स्फुटं क्षीणदोषं रोगकारणतावादे निरसति, अन्यत्र निमित्तकारणात् ! बचनं च तस्य- "वातपित्तकफा प्रत्येकं दुष्टाः, दुष्टिश्चात्र बृद्धिरेव न क्षयः, क्षीणानां विकारकरणाक्षमत्वात् । यद्येवं तर्हि कथं वातादिक्षये मन्दचेष्टादयः ? उच्यते, तत्क्षये विरोधिदोषकोपात्; यथा मधुरस्निग्धादिभिर्वाते क्षीणे तत्समानत्वाच्छ्लेष्माप्रकुप्यति । वचनं हि— "बृद्धिश्चापि विरोधिनामिति" ।

पश्यन्तु मनाक् प्रियपाठकमहोदयाः ! भ्रमनिरसनार्थं कियति बलवत्युद्घोषणा श्रीमदाचार्यस्येति तदीय वचनावन्यासनैव प्रतीयते, नात्रविस्तारापेक्षा ।

रोग पर जादू की भांति तत्काल
असर करने वाले
मार्तण्ड के आयुर्वेदिक
इंजेक्शन

मार्तण्ड की समस्त वैज्ञानिक साधन सम्पन्न और आधुनिक मशीनों से सुसज्जित प्रयोगशाला में उच्च शिक्षित आयुर्वेदज्ञों और विदेशी रसायनज्ञों की देख रेख में निर्माण हुए ये आयुर्वेदिक इंजेक्शन अपना तत्काल असर करते हैं, इनका प्रभाव स्थाई होता है, रक्खे रहने पर भी ये कभी नहीं बिगड़ सकते, इनकी आशुगुणकारिता और शुद्धि की पूरी गारेंटी है । सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगाइये ।

निर्माताः **मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स,**
बड़ौत, उत्तर प्रदेश
रिसर्च इंस्टीट्यूट आफ इंडियन मेडिसिन्स

आयुर्वेद लोक

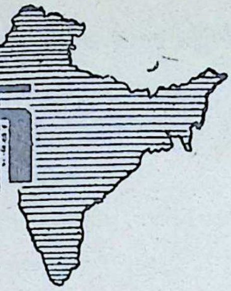

क्षय-निरोधक टीका का विरोधी क्यों ?

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने कल सायंकाल यहां एक सार्वजनिक सभा में क्षय-निरोधक टीकों (बी. सी. जी.) पर बोलते हुए कहा कि बड़े पैमाने पर क्षय-निरोधक टीके लगाने का सवाल ऐसा है जिसका निर्णय विधान मंडल या सुपरिचित जन-मत द्वारा किया जाना चाहिए, केवल विशेषज्ञों द्वारा नहीं। ऐसे मामलों में विशेषज्ञों को निर्णय का अधिकार सौंपना खतरनाक होगा।

उन्होंने कहा कि परीक्षण के लिए टीकों के सीमित पैमाने पर लगाए जाने के मैं विरुद्ध नहीं हूं। किन्तु देश में जिस प्रकार का सामूहिक आंदोलन चल रहा है, उसका कोई रिकार्ड नहीं रखा जा रहा। यह अपराधपूर्ण है और भीड़ पर गोली चलाने के समान है।

अन्त में श्री राजगोपालाचार्य ने अपनी इस मांग को फिर दुहराया कि कोयम्बटुटर की लड़की के मामले की विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट प्रकाशित करदी जाए।

सभा के अन्त में २७ पृष्ठों की एक पुस्तिका बाँटी गई जिसका शीर्षक था—क्षय-निरोधक टीका, मैं उसका विरोध क्यों करता हूँ। उसमें विशेषज्ञों के मत दिए गए हैं।

आचार्य विनोबा बी. सी. जी. आंदोलन के विरुद्ध

आचार्य विनोबा भावे ने यहां एक प्रार्थना-सभा में बी. सी. जी. (तपैदिक का टीका) आंदोलन की निन्दा की। उन्होंने कहा कि मैं इस प्रकार के धुआँधार आन्दोलनों के पक्ष में नहीं हूँ विशेषकर जबकि विशेषज्ञों का उनकी सफलता के बारे में मतभेद हो। यदि यह भी मान लिया जाए कि अधिकांश विशेषज्ञ पक्ष में हैं और थोड़े से विपक्ष में, तो भी सरकार के लिए ऐसा उपाय अपनाना अनुचित है जिसके बारे में जरा भी असहमति या सन्देह हो। जनता का स्वास्थ्य सुधारने के लिये निश्चित उपाय अपनाने पर ऐसे आपत्तिजनक उपायों की आवश्यकता नहीं रहेगी।

आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली के आलोचकों को डा० जयकर का मुंहतोड़ उत्तर

पूना विश्वविद्यालय के उप-कुलपति डा० एम० आर० जयकर ने आयुर्वेद महाविद्यालय जो पूना विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है के नए वर्ष के पाठ्यक्रम का उद्घाटन करते हुए वैद्यों को चेतावनी दी कि वह आयुर्वेद प्रणाली के साथ साथ एंलोपैथिक प्रणाली की औषधियों का प्रयोग न करें।

डाक्टर जयकर ने कहा है कि आयुर्वेद और एलोपैथिक प्रणालियों का एक सामान्य प्रयोग करने से आयुर्वेद प्रणाली पर एलोपैथिक प्रणाली छा जायगी और सम्भव है कि अन्त में आयुर्वेद प्रणाली समूल नष्ट हो जाय।

आपने इस बात पर जोर दिया कि

आयुर्वेद के विद्वान मौलिक-सिद्धांतों पर आधारित आयुर्वेद का अध्ययन व अनुसंधान करें। भले ही इसके लिए उन्हें आधुनिक औजारों और मशीनरी का प्रयोग करना पड़े।

आयुर्वेद के आलोचकों को उत्तर देते हुए कहा कि यह विश्वास करना मूर्खता है कि आयुर्वेद एक चिकित्साशाला नहीं और भारतीय वैद्य शारीरिक रोगों का निदान नहीं कर सकते जब कि शताब्दियों पूर्व भारतीयों नें चाँद-तारों आदि की खोज की थी और वे पहलें हीं उनकी गतिविधि का पता लगा लेते थे।

डाक्टर जयकर ने कहा कि इस में कोई सन्देह नहीं कि आयुर्वेद प्रणाली उन दिनों पराकाष्ठा पर पहुंच चुकी होगी, परन्तु दुर्भाग्य से जब देश विदेशी शक्तियों का गुलाम बना तो उस गुलामी के युग में इस चिकित्सा को सख्त धक्का लगा।

आयुर्वेद-योजना समिति

अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन के ४० वें वार्षिक अधिवेशन में जो मई में त्रिवेन्द्रम में सम्पन्न हुआ था एक प्रस्ताव द्वारा आयुर्वेद-योजना समिति का निर्माण किया गया था जिसके अध्यक्ष व संयोजक क्रमशः श्री कान्तिनारायण मिश्र, डाईरेक्टर आयुर्वेद, पटियाला तथा श्री पुरषोत्तमदेव मुलतानी प्रधान वैद्य, राजकीय-आयुर्वेद चिकित्सालय, हैदराबाद दक्षिण, नियुक्त किए गए थे। उनके अतिरिक्त श्री पी. वी. ईश्वर वारियर (कालीकट) इसके अन्य सदस्य थे।

भारत सरकार के योजना-आयोग के उपप्रधान श्री गुलजारीलाल नन्दा ने एक पत्र द्वारा महासम्मेलन के अध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा जी को भारतवर्ष में आयुर्वेद की विकास की विस्तृत-योजना बना कर भेजने को लिखा था इसका ज़िक्र अध्यक्ष महोदय ने त्रिवेन्द्रम में हुई महासम्मेलन की स्थायी समिति की बैठक में किया एवं उन्हीं के सुझाव पर इस समिति का निर्माण किया गया था। यह समिति शीघ्र ही अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को भेज देगी।

प्रांत के हर स्थान पर स्वास्थ्य केन्द्रों की आवश्यकता

मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्य मंडल के अध्यक्ष आयुर्वेदाचार्य पं० गुलराज शर्मा मिश्र ने राज्य सरकार के आयुर्वेद के उत्थान सम्बन्धी प्रयत्नों का हार्दिक स्वागत करते हुए प्रान्तीय शासन के सम्मुख इस विषय का एक विशिष्ट सुझाव प्रस्तुत करते हुए कुछ माँगें पेश की हैं। उनका वक्तव्य निम्नलिखित है:--

"नागपुर प्रान्त की राजधानी है। शासन कुछ वर्षो से आयुर्वेद के उत्थान के प्रति जिस प्रकार रुचि ले रहा है उससे इस प्रांत में आयुर्वेद का भविष्य और उत्थानमय होगा। शासन जो कुछ कर रहा हैं, उसमें सभी आयुर्वेद के विद्वानों का सहयोग आवश्यक है। मध्यप्रदेश अग्रगामी वैद्य मंडल के सम्मेलन ने निश्चय किया है कि नागपुर में आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना हो। प्राँतीय शासन शीघ्र ही यदि इस ओर सचेष्ट हो तो इस प्रदेश की आयुर्वेद सम्बन्धी एक महत्व पूर्ण कमी दूर हो सकती है। साथ ही मैं शासन का ध्यान सम्मेलन के उस प्रस्ताव की ओर आकर्षित करना आवश्यक समझता हूँ जिस प्रस्ताव में समस्त प्रान्तीय वैद्यों ने प्रांत में आयुर्वेद चिकित्सालयों की मांग की थी। इन चिकित्सालयों

में आउटडोर-इनडोर पद्धति का रहना अनिवार्य है तथा प्रत्येक औषधालय में कम से कम १०० विस्तरों का रहना आवश्यक है। ये चिकित्सालय प्रथमतः प्रांत के प्रमुख चार स्थानों (नागपुर, अमरावती, जबलपुर, अकोला) में होना चाहिए। इसी सम्मेलन के एक अन्य प्रस्ताव में शासन से राज्य मजदूर बीमा योजना के अंतर्गत चलाये जानेवाले चिकित्सालयों में आयुर्वेद को भी स्थान देने की मांग की गई थी। आशा है, शासन इस ओर समुचित कदम उठाकर जनता को आयुर्वेद चिकित्सा से लाभ उठाने का अवसर देगा।

“आयुर्वेद की चिकित्सा प्रणाली प्रदेशीय जनता के लिए एक आवश्यक वस्तु है, इस तथ्य का भली प्रकार स्पष्ट ज्ञान कराने के लिए आवश्यक है कि समय-समय पर वैद्यगण तत्सम्बन्धी प्रयत्न करते रहें।

“आयुर्वेद भारतीयों की अपनी पुरातन चिकित्सा प्रणाली है। जबकि अन्य चिकित्सा प्रणालियों की सामग्री अत्यधिक जटिल एवं खर्चीली है तब आयुर्वेद में इतनी विशाल सामग्री है कि उसका उपयोग भलीभाँति आयुर्वेद का ज्ञान अर्जन करने के बाद कोई भी साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति सरलता से कर सकता है। मेरी अपील है कि समस्त वैद्यगण व्यक्तिगत भेदभावों को भूल जावें और जनता के आरोग्य के महत्व को लक्ष्य में रखते हुए अपने संगठन को सुदृढ़ बनाकर प्रांत में हर स्थान पर ऐसे स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना करें।

“उक्त स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना प्रांतीय संगठन के अनुरोध पर प्रत्येक जिला, तालुका और स्थानीय वैद्य सभाओं द्वारा होना चाहिए।

अग्रगामी वैद्यमण्डल की योजना

“इस विषय में म. अ. वैद्य मंडल ने एक योजना का निर्माण किया है यह योजना शीघ्र ही कार्यरूप नें 'परिणित हो, इस हेतु विचार विमर्श चल रहे हैं। आशा है, वैद्य मण्डल की समस्त शाखा सभाओं एवं सम्बन्ध संस्थाओं का पूर्णतः सहयोग प्राप्त होगा। मैं अपने प्रान्तीय वैद्य बन्धुओं से अपील करता हूँ कि उनके उत्साह और ज्ञान का जनता-जनार्दन को अधिकाधिक लाभ मिले इस हेतु वे आगे आवें। प्रान्त का ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां वैद्य न हो। ऐसी दशा में हर स्थान पर वैद्यगण इस योजना को बल प्रदान करें।”

देशी चिकित्साओं पर १.५५ करोड़ का व्यय

द्वितीय पंच वर्षीय योजना में आयुर्वेद, यूनानी, होमियोपैथी तथा प्राकृतिक चिकित्सा के विकास पर १.१५ करोड़ रुपये खर्च किये जायेंगे। स्वास्थ्य पर कुल २०८ करोड़ रुपये खर्च करने का कार्यक्रम बनाया गया है।

भारतीय बच्चों को बी० सी० जी का टीका

संयुक्त राष्ट्र संघ शिशुकोष कार्यक्रम समिति की एक घोषणा के अनुसार इस वर्ष के अन्त तक भारत के ६ करोड़ ६६ लाख बच्चों में राजयक्ष्मा की जांच की जायेगी। १९५५ के अन्त तक २ करोड़ ५० लाख बच्चों को बी० सी० जी० के टीके लगाये जाने की योजना बनाई गई है तथा इसके लिये भारत सरकार को १९५६-५७ में ८८ हजार डालर की रकम देने के लिये समिति ने सिफारिश की है।

तीन चिकित्सा प्रणालियों की जांच

संघ सरकार ने आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक और यूनानी चिकित्सा प्रणालियों की

जांच के लिये एक समिति नियुक्त कर दी है। यह समिति इन प्रणालियों के अध्ययन और व्यवहार के बारे में एक सा स्तर प्राप्त करने के साधन और तरीके भी सुझायेगी। इस समिति की बैठक जामनगर में हुई। बैठक की अध्यक्षता सौराष्ट्र के स्वास्थ्यमंत्री श्री डी० एफ० दवे ने की जो समिति के अध्यक्ष हैं। बैठक में बम्बई, पश्चिमी बंगाल और त्रावणकोर कोचीन के स्वास्थ्य मंत्रियों ने भाग लिया।

वैद्यों का रजिस्ट्रेशन—बीकानेर वैद्य समाज में असन्तोष

स्थानीय वैद्यों में "भारतीय चिकित्सा पन्जीयन बोर्ड" (राजस्थान) के सम्बन्ध में असन्तोष प्रकट किया जा रहा है, क्योंकि करीब ६३ वैद्यों में से केवल ४ वैद्यों को ही "अ" श्रेणी में रखा गया है।

मई सन् १९५४ को राजस्थान में वैद्यों के पन्जीयन का एक्ट बनाया गया था, पन्जीयन सम्बन्धी कार्य के लिए "भारतीय चिकित्सा पन्जीयन बोर्ड" की स्थापना की गई।

राजपत्र के अनुसार पन्जीयन की ३ श्रेणियां रखी गई हैं: (१) "अ" (२) "ब" और (३) "सूचीबद्ध"। "अ" श्रेणी में वे व्यक्ति जो पन्जीयन बोर्ड द्वारा स्वीकृत महाविद्यालय या विश्वविद्यालय की स्नातक परीक्षोत्तीर्ण हैं अथवा अनुसूची "ब" (ख) के अनुसार ऐसे वैद्य जो परीक्षोत्तीर्ण नहीं हैं किन्तु चिकित्सा क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, जिनको १५ वर्ष की चिकित्सा का अनुभव हो, एवं आयु ४० वर्ष हो "अ" श्रेणी में रखे जाने का नियम है।

बीकानेर से जितने भी आवेदन पत्र भेजे गये हैं उनमें परीक्षोत्तीर्ण वैद्यों के अलावा करीब ३५ वैद्य "अ" श्रेणी में आने चाहियें, जब कि ४ वैद्य ही इस श्रेणी में रखे गये हैं। इसीलिए यहां के आयुर्वेद क्षेत्र में असन्तोष की कटु लहर फैल रही है।

इस सम्बन्ध में वैद्य मक्खनलाल शास्त्री आयुर्वेदाचार्य द्वारा असन्तोष को दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

उ० प्र० वैद्य सम्मेलन का अधिवेशन

उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन का १८ वां अधिवेशन लखनऊ में अक्टूबर मास के अन्तिम सप्ताह में होना निश्चित हुआ है।

वैद्यों को सूचना

१. उत्तर प्रदेशीय वैद्यों को सूचित किया जाता है कि सम्मेलनाध्यक्ष के लिए मताभिलाषी व्यक्तियों के नाम दि० १६ अगस्त, ५५ तक आ जाने चाहिए।
२. नाम लौटाने की अवधि ३१ अगस्त तक होगी।
३. दि० १ सितम्बर से सदस्यों के पास मतपत्र भेजे जावेंगे।
४. मतदाता सज्जन दि० ३० सितम्बर तक लौटा देवें।
५. दि० १ अक्टूबर को मतपत्र गणना कर परिणाम घोषित किया जावेगा।
६. वैद्य सम्मेलन का वृहद अधिवेशन अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में लखनऊ में होगा।
७. मताभिलाषी आवेदनपत्र और सदस्य नामावलि पुस्तक पत्र आने पर भेजी जावेगी।

निवेदक

अमरनाथ वैद्यशास्त्री, संयोजक तथा निर्वाचक,
उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन, वनस्पति भवन,
देहरादून।

सीकर जिला वैद्य सभा

ता० ३-७-५५ को सम्पन्न जिला वैद्य सभा की एक मीटिंग में वैद्य अर्जुनलाल जोशी लक्ष्मणगढ़ को श्रद्धांजलि अर्पित की गई तथा एक प्रस्ताव पास कर रामगढ़ कालेज के स्थगित होने पर खेद प्रकट करते हुए उसके संचालकों से कालेज को पुनः चालू करने का अनुरोध किया गया। आगामी वर्ष के लिए पदाधिकारियों का निर्वाचन इस प्रकार हुआ :—सभापति श्री विजयचन्द्र यति (फतेहपुर), उप-सभापति, श्री विश्वेश्वर प्रसाद (श्री माधोपुर) तथा श्री रामसुख मिश्र (फतेहपुर), प्रधानमंत्री, श्री पूर्णानन्द शास्त्री (श्री माधोपुर), स० मंत्री, श्री हनुमत्सहाय (सीकर) तथा श्री शिवदत्त (नीम का थाना) तथा कोषाध्यक्ष श्री प्रभुदत्त शास्त्री (सीकर)।

चुरु जिला वैद्य सभा का अधिवेशन

दि० १३-७-५५ को चुरु जिला वैद्य सभा की कार्य समिति का अधिवेशन सुखदेव जी वैद्य (सुजानगढ़) की अध्यक्षता में हुआ। इसमें सभा के मंत्री सोहन लाल आयुर्वेदाचार्य ने राजस्थान में सम्प्रति हो रहे रजिस्ट्रेशन के सम्बन्ध में विस्तार से प्रकाश डाला। विचार विमर्श के बाद ५ व्यक्तियों की एक पञ्जीयन सहायक समिति का निर्माण किया गया जो जिले के समस्त वैद्यों की रजिस्ट्रेशन सम्बन्धी व्यवस्था करेगी। इस समिति के संयोजक वैद्य सोहन लाल (सरदार शहर) निर्वाचित किये गये।

आगामी वर्ष के लिये जिला सभा के अध्यक्ष पद पर पं० ऋषिदेव जी सुजानगढ़ चुने गये।

राजस्थान आयुर्वेद विकास बोर्ड के अध्यक्ष का अभिनन्दन

श्री धन्वन्तरि मन्दिर रतनगढ़ में राजस्थान आयुर्वेद विकास बोर्ड के अध्यक्ष आचार्य गौरी शंकर जी का चुरु जिला वैद्य सभा, श्री धन्वन्तरि मन्दिर तथा रतनगढ़ के नागरिकों की ओर से दिनांक १३-७-५५ को अभिनन्दन किया गया। अभिनन्दन पत्र वैद्य प्रवर श्री मणिराम जी द्वारा समर्पित किया गया जिसमें आचार्य जी की प्रशस्ति के साथ राजस्थान की आयुर्वेद सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिये अनुरोध किया गया था। अभिनन्दन का उत्तर देते हुए आचार्य जी ने कहा कि सर्वसाधारण समाज तथा वैद्यों का कर्त्तव्य है कि वे अपने देशीय चिकित्सा विज्ञान को अपना गौरवपूर्ण स्थान दिलाने का यत्न करें। अन्त में आपने बताया कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में राजस्थान सरकार आयुर्वेद विश्वविद्यालय खोलने की योजना बना रही है जिसमें सर्वसाधारण विशेषतः धनी मानी व्यक्तियों को उदारतापूर्वक सहयोग देना चाहिये।

समारोह की सफलता के लिये अनेक शुभ कामनाओं के सन्देश भी प्राप्त हुए जिन्हें चुरु जिला वैद्य सभा के मंत्री आयुर्वेदाचार्य सोहन लाल शास्त्री ने प्रारम्भ में पढ़ कर सुनाया।

तहसील सूरतगढ़ वैद्य सभा का चुनाव

सूरतगढ़ (श्री गंगानगर) तहसील वैद्य सभा का चुनाव ता० १०-६-१९५५ को वैद्य श्री बालक राम जी स्वामी के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। निम्न पदाधिकारी चुने गये।

१. सभापति वैद्य श्री बद्री प्रसाद जी शर्मा भिषग्रत्न, २. उप सभापति वैद्य श्री विष्णु राम जी, ३. मन्त्री वैद्य श्री राम कृष्ण जी, ४. उपमन्त्री वैद्य श्री बलवन्त सिंह जी, ५. कोषाध्यक्ष वैद्य श्री कुंभाराम जी स्वामी।

वैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ, जो अभी प्रकाशित हुआ है

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान

(पूर्वार्ध)

आयुर्वेद-मार्तण्ड वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य-बम्बई

किसी भी रोग की चिकित्सा के पूर्व रोगों के निदान का ज्ञान होना परमावश्यक है। रोग के सम्यक् नियम के बिना रोगी की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

इसीलिए व्याधि-विज्ञान (निदान-रोग विनिश्चय) आयुर्वेद के प्रधान विषयों में सम्मिलित एक उपयोगी विषय है। इस ग्रन्थ में व्याधि विज्ञान के साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधियाँ कितने प्रकार की होती हैं; निज, स्वाभाविक और आगन्तुक व्याधियों में क्या भेद है, स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियों के स्वरूप क्या हैं; प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और समुत्थान भेद से १० प्रकार के रोगानीक कैसे हो जाते हैं; रोगों का आश्रय क्या है, आदि अनेक ज्ञातव्य बातें इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णित हैं। यह पूर्वार्ध खण्ड पांच अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें अध्ययन कर लेने के बाद निदान सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य सिद्धांत करामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं! आयुर्वेदीय प्रेमी विद्वान् और विद्यार्थी, दोनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है।

इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

डिमाई साइज के ११२ पृष्ठ की सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक
का मूल्य मात्र २॥)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

खोज का आश्चर्यजनक परिणाम

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगान्तर से चला आ रहा है। खोजके ऊपर किसी कवि के ये शब्द स्वर्णाक्षरोंमें लिखे हुए हैं कि :-"जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ" त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मेघनाद के शक्तिबाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्छित पड़े हुए थे और रामचन्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय लक्ष्मणजीमें पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को सञ्जीवनी बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम स्वरुप लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों के इस महायुद्ध में, रोग द्वारा त्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोज में लगा हुआ है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

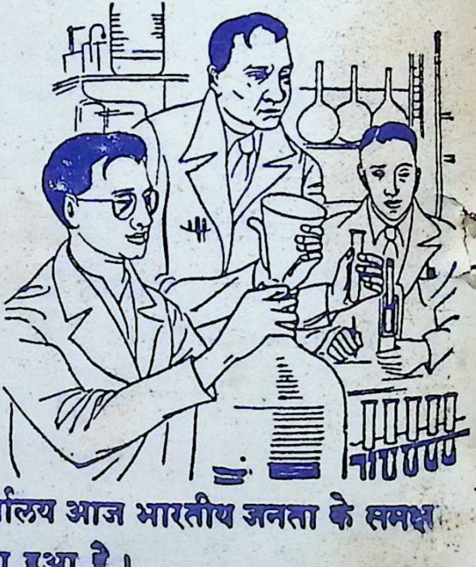

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सऔषध सेवारत हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है—डाबर कार्यालयका निरन्तर खोज का परिणाम! साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की क्रिया!! इसी खोज के परिणाम स्वरुप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के समक्ष औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

डाबर (डा॰ एस॰ के॰ बर्मन) लि॰ कलकत्ता-२९

अपूर्व गुणकारी आयुर्वेदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्माता

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए [illegible] द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—नया हिन्दुस्तान प्रेस दिल्ली।

८४४४
९२
23-9-55

सितम्बर
१९५५

भाद्रपद
२०१२

आयुर्वेद
महासम्मेलन पत्रिका

वाचनालय,
गुरुकुल कांगड़ी

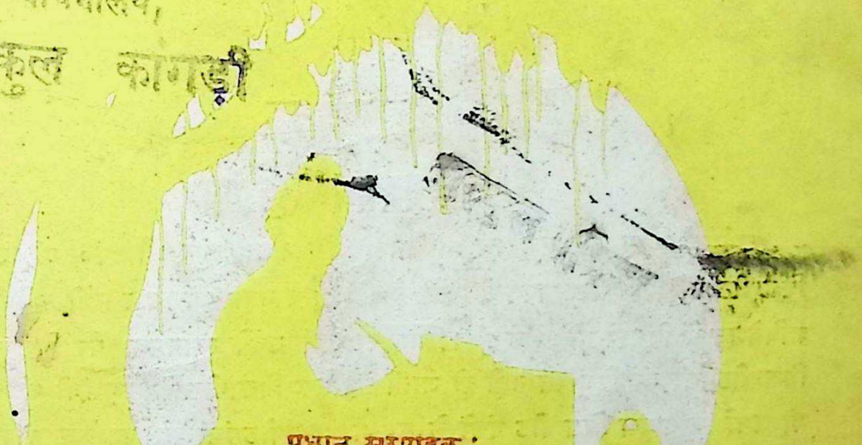

प्रधान सम्पादक:
कविराज स्वामी चेतनानन्द आयुर्वेदालंकार
संस्कृत-विभाग सम्पादक:
वा० वा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य:
उप-सम्पादक:
वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री

विषय-सूची

1	Ayurveda in the II Five Year Plan		४६९
२	जीवन शास्त्र-आयुर्वेद की आवश्यकता क्यों हुई ?	श्री गिरिजादत्त पाठक	४७७
३	नागबला	श्री घनानन्द पन्त	४८३
४	सैंटोनीन	श्री रामेम बेदी	४८७
५	फक्क रोग ...	श्री सोमदेव शर्मा सारस्वत	४८९
६	जरानाशक उपायों का वर्णन	श्री पं० नानकचन्द्र शास्त्री	४९४
७	गृष्टिका	क० प्रतापसिंह	४९७
८	शरीर क्रिया विज्ञान के लेखक से	श्री पद्मनाभ शास्त्री	४९९
९	अश्मन्तक क्या है ?	श्री उदयलाल महात्मा	५०२
१०	आयुर्वेदे भूतादिशब्दैः रोगोत्पादक-सूक्ष्मजीवाणूनां ग्रहणम्	श्री शंकरलाल शर्मा	५०३
११	वनस्पतिगुणकर्मविज्ञानम्	श्री वेणीमाधव जोशी	५०९
१२	आयुर्वेद लोक		५१३
१३	विद्यापीठ में उत्पन्न विवाद		५३८

आवश्यक सूचना

सर्व साधारण की सूचनार्थ निवेदन है कि रायबहादुर श्री पं० श्रीदत्त जी शर्मा ने विद्यापीठ मन्त्रित्व से त्यागपत्र दे दिया है जिस पर महासम्मेलन स्थायी समिति के आगामी अधिवेशन में विचार हो रहा है। अब जब तक उनके त्यागपत्र पर विचार हो कर नये विद्यापीठमंत्री की नियुक्ति नहीं हो जाती तब तक विद्यापीठ के उपमंत्री श्री पं० नानकचन्द जी शर्मा स्थानापन्न विद्यापीठ मंत्री के रूप में विद्यापीठमंत्री का कार्य वहन करेंगे।

वामनराव दीनानाथ वैद्य, प्रधानमंत्री,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में विज्ञापन
देकर लाभ उठाइये

॥ श्री धन्वन्तरयेनमः ॥
यत्प्रभापटलोद्भासि भासतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम्॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द आयुर्वेदालंकार
संस्कृतविभाग सम्पादकः—श्री वा० बा० नटराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः
उप-सम्पादक—वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली ।

वर्ष ४२
अंक ९
दिल्ली, भाद्रपद २०१२, सितम्बर १९५५
वार्षिक ५)
एकप्रति ।।)

AYURVED IN THE SECOND FIVE YEAR PLAN

It was resolved at the Trivandrum Session of the All India Aurvedic Congress to submit to the States and Central Governments a Five-year Ayurvedic Plan incorporating therein the schemes for the all-round development of Ayurvedic Medicine, Education and Training, preparations of Ayurvedic Medicines, Development of Ayurvedic Botanical Gardens and Herbariums, Ayurvedic Health Service, etc., and a Committee was formed to formulate these schemes. The Committee discussed the matter threadbare with Vaidyaratana Pt. Shiv Sharma. Later, coming to Bombay, he is consultation with Shri Pt. Hari Dutt ji Shastri, Director of Ayurveda, Bombay State, evolved 14 schemes. Out of these, schemes No. 12 and 13 are meant for Bombay State only. Schemes No. 1 to 11 have been drawn up in two phases; the first phase applies to the Schemes which should be started by the Central Government, and the second phase is meant for adoption by the Bombay Government. These plans have been sent to the Central and Bombay Governments last month accompanied by appropriate letters.

Hereunder, we are publishing only Scheme Nos. 1 to 11 forwarded to the Bombay Government. The advantage of this will be that Ayurvedic organisations in various States can amend and alter these Schemes in accordance with the needs of their States and submit them to their respective Governments accordingly. The Schemes submitted to the Central Government have generally been evolved on the same basis. We have come to know from usually reliable sources that the Bombay Government will start implementing most of these Schemes in the near future. The Hindi translation of these Schemes will be published in the next month's issue of the Ayurveda Mahasammelan Patrika.

Chief Editor

Scheme No. 1

RESEARCH

1. Name of the Scheme: Research in Ayurveda.

2. Brief description and justification for the scheme: At present there are no arrangements for carrying on Pharmacological Research in the Ayurvedic System of Medicine. It is therefore proposed to start Pharmacological Research through experiments on animals at the Haffkine Institute, Bombay, which is a scientific system of research.

3. Location and area to be benefited: (i) Haffkine Institute, Bombay, (ii) Whole Bombay State will be benefited by this scheme.

4. Employment, direct and indirect, likely to be provided by the scheme: 2 Ayurvedic Research Scholars @ Rs. 300 p.m. fixed.

5. Approximate cost of the scheme including materials, equipment etc.:

First year.		Rs.
(i) Scholarship to Scholars	...	7,200
(ii) Contingencies	...	3,000
Total	...	10,200

Cost of the scheme for 5 years.

10,200×5 = 51,000

6. Remarks: In some of the schemes of development of Ayurveda, many of the items of research have been included as shown below.

(1) Preparation of Text-Books and Dictionery.
(2) Standardisation of drugs in Pharmacy.
(3) Decision on doubtful drugs in Pharmacy.
(4) Collection of data by Mobile dispensaries.
(5) Opening of Ayurvedic beds in District Hospitals.

Since all these items form part of Research in Ayurveda, the grants earmarked or sanctioned for Research can be utilised for implementing these Schemes.

Scheme No. 2

RESEARCH

1. Name of the Scheme: Research in Veterinary Treatment in Ayurveda.

2. Brief description and justification for the Scheme: At present there are no facilities for Veterinary treatment in Ayurveda in Bombay State. It is therefore proposed to appoint one Committee consisting of some Ayurvedic Scholars to collect information from Granthas as well as practical methods followed by the public and suggest some suitable methods of Veterinary treatment on Ayurvedic lines for the benefit of the Public since the veterinary treatment on Ayurvedic lines would definitely be cheaper than the Allopathic treatment.

3. Location and area to be benefited: (1) The place may be decided later on. (2) Whole Bombay State will be benefited.

4. Employment direct and indirect likely to be provided by the Scheme: This cannot be judged at present.

5. Approximate cost of the Scheme including materials, equipment etc.: At present it is estimated that this scheme is likely to cost Rs. 25,000.

6. Remarks: Nil.

Scheme No. 3

PHARMACY

1. Name of the Scheme: Maintenance of an Ayurvedic Botanical Garden.

2. Brief Description and justification for the Scheme: It is proposed to maintain an Ayurvedic Botanical Garden in the State of Bombay in which all kinds of herbs and shurbs will be grown which are required for preparation of Ayurvedic medicines and study of Ayurveda. This garden will be very useful to the Ayurvedic Medical Colleges, Ayurvedic Pharmacies and Public. This garden will also afford facilities to the Research workers for carrying out research in Ayurveda. As there is no such garden anywhere in Bombay State, nay in India, it is quite essential to maintain such a garden for the reasons stated above.

3. Location and area to be benefited: It may be located near the National Park at Borivali in Thana District or at some other convenient place that may be decided by Government. The whole State will be benefited by this Scheme.

4. Employment, direct and indirect, likely to be provided by the Scheme: Staff required for working out the Scheme.

1 Garden Superintendent	... Rs.	300-20-500.
1 Clerk	... Rs.	55-3-85-4-125-5-130.
5 Gardeners (Mali)	... Rs.	35-1-40.
1 Peon	... Rs.	30-½-35.
1 Sweeper		—do—

5. Approximate cost of the Scheme on account of the staff, equipment, materials etc.: The land required for the garden should

be supplied by Government free of cost. No expenditure on this account may therefore be taken into account. The details of other expenditure are shown below :

First Year Recurring

Staff.	Pay. Rs.	D.A. Rs.	Expenditure. Rs.
(i) 1 Garden Superintendent	300	60	4,320
(ii) 1 Clerk	55	45	1,200
(iii) 5 Gardeners	35	35	4,200
(iv) 1 Peon	30	35	780
(v) 1 Sweeper	30	35	780
			11,280

Contingencies :

(i) Expenditure for plants, seeds, manure etc.	5,000
(ii) Contingencies	2,000
	7,000

Non-recurring.

(i) Cost of Building for office, store house, quarters for staff and digging one big well for the garden including-barbed wire-fencing	80,000
(ii) Water pumps and Electric installation	5,000
(iii) Purchase of tools and implements	1,000
	86,000
Total expenditure for one year	1,04,280

Second Year.

(i) Staff	11,280
(ii) Contingencies	7,000
(iii) Miscellaneous expenditure for using insecticide for the garden	1,000
	19,280

Third Year	The same as for the second year.
Fourth Year	—do—
Fifth Year	—do—

Total expenditure for 5 years Rs. 1,81,400

6. Remarks Nil.

Scheme No. 4

PHARMACY

1. Name of the Scheme: Storage of Ayurvedic Herbs and Shrubs.

2. Brief description and justification for the Scheme: In order to give an encouragement to Ayurveda and indigenous drugs, it is in the first instance proposed to take a survey of indigenous herbs and shrubs, collect them, store them and later on sell them to the public, private pharmacies and private medical practitioners for preparing Ayurvedic medicines. There will be a committee to supervise the storage work and it will suggest the ways and means ;

(i) to cultivate and encourage the growth of these herbs and shrubs.

(ii) collection and storage and preservation of herbs and

(iii) supply and sale of the above herbs to the public and profession.

3. Location and area to be benefited: The Ayurvedic medicinal herbs and shrubs that may be collected, should be stored in the store house attached to the buildings of the proposed Botanical Garden or in the proposed Ayurvedic Museum or in the proposed Pharmacy or at any other place that may be decided by Government.

The whole State will be benefited by this Scheme.

4. Employment, direct and indirect, likely to be provided by the Scheme :

Staff	Scale Rs.
1 Senior Store Keeper	150-10-250
1 Store Keeper	120-8-200-10-220
1 Clerk	55-3-85-4-125-5-130
1 Peon	30-½-35
2 Hamals	-do-
1 Sweeper	-do-

5. Approximate cost of the Scheme including materials, equipment, staff etc. :

First Year
Recurring.

Staff	No.	Pay	D. A.	Total annual expenditure
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
1 Senior Store Keeper	1	150	50	2,400
2 Store Keeper	1	120	50	2,040
3 Clerk	1	55	45	1,200
4 Class IV servants	4	30	35	3,120
				8,760

Contingencies.

		Rs.
(i)	Expenses for direct collection of herbs from the forest	8,000
(ii)	Contingent expenditure of the office and store-house	3,000
		11,000

Non. recurring.

(i)	Cost of a building for the store-house, office, and quarters for the staff If no building is constructed then rent at Rs. 300/- p. m. for the building may be calculated. The annual rent will be Rs. 3600/-	80,000
(ii)	Cost of Containers including furniture	13,000
		93,000
	Total expenditure for the first year...	1,12,760

Second Year.

		Rs.
(i)	Staff	8,760
(ii)	Contingencies	11,000
		Rs. 19,760

	Rs.
Third Year	19,760
Fourth Year	19,760
Fifth Year	19,760
Total for 5 years...	1,91,800

6. Remarks : Nil

Scheme No. 5

PHARMACY

1. Name of the Scheme: Establishment of an Ayurvedic Pharmacy in Bombay State.

2. Brief description and justification for the Scheme: It is proposed to give encouragement to the use of indigenous Ayurvedic drugs. However, in many cases genuine Ayurvedic drugs and other rare medicines are not at present available in the existing Pharmaceutical concerns. In order to improve the existing position, it is proposed to establish an Ayurvedic Pharmacy in Bombay State which could manufacture genuine and rare Ayurvedic drugs so that these drugs will be available for use in Ayurvedic Institutions in urban and rural areas at moderate rates.

3. Location and area to be benefited: It would be a very convenient, cheap and time saving arrangement if the proposed Pharmacy is located within the compound of or near about the proposed Botanical Garden.

4. Employment, direct and indirect; likely to be provided by the Scheme:

Staff	Scale Rs.
1 Pharmacy Superintendent	500-20-700EB-25-850
1 Assistant Pharmacy Superintendent	300-15-450-EB-20-510
1 Pharmacist (For Asawarishta Sarbat etc.)	200-10-300
1 Pharmacist (for Bhasmas Rasayanas etc.)	do
1 Pharmacist (for gugul, churna, leha, oil etc.)	do
1 Sales Manager	300-20-500

Office Staff	Scale Rs.
1 Office Superintendent	200-10-300
1 Head Clerk	150-10-200
2 Senior Clerks	100-8-140
3 Junior Clerks	55-3-85-4-125-5-130
1 Head Accountant	200-10-300
1 Assistant Accountant	150-10-200
1 Store Keeper (for Raw materials)	do
1 Store Keeper (for finished Goods)	do

2 Laboratory Technicians	100-8-140-20-200
2 Laboratory Assistants	55-3-85
1 Sales Inspector	150-10-200
Cl. IV Servants	Scale.
4 Peons.	30-½-35
5 Pharmacy servants (for Asawarishta Section)	35-1-40
10 Pharmacy servants (for oil, ointment etc. section)	
10 Pharmacy servants (for Rasayan section)	
6 Pharmacy servants (for Bhattis)	
10 Pharmacy servants (for packing section)	
2 Laboratory Attendants.	
1 Mukadam	45-1-55
5 Sweepers	30-½-35
2 Delivery servants	35-1-40
1 Motor Driver	50-2-60
1 Cleaner	30-½-35

5. Approximate cost of the Scheme including materials, equipment, staff etc :

Expenditure for 1st Year

Non-recurring	Rs.
(i) Buildings	2,00,000
(ii) Equipment including machinery, motor car etc.	1,00,000
	3,00,000
Recurring	
(i) Staff (including pay and allowances of the above staff)	1,03,320
(ii) Contingencies for purchasing raw materials etc.	50,000
(iii) Contingencies for miscellaneous expenditure of the Pharmacy	10,000
Total for the first year ...	1,63,320

Expenditure for Second Year :

(i) Staff (pay and allowances)	1,03,320
(ii) Contingencies for raw materials	30,000
(iii) Contingencies for the Pharmacy office etc.	10,000
Total for second year ...	1,43,320

(*Continued on page 521*)

जीवन शास्त्र--आयुर्वेद की आवश्यकता क्यों हुई ?

श्री गिरिजादत्त पाठक वैद्य, शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य, वक्सर

विश्व की विभूति व्याधि व्याध के विशिख से विद्ध होकर गिरिगह्वरों में छिप रही थी; गद गजराज मानव के मानसवन में अपना चीत्कार कर रहे थे; सबके शारीरिकबल, तेज एवं प्राण का विनाश हो रहा था; मानवता के प्रतीक तप, उपवास, व्रत, ब्रह्मचर्य तथा आयु का विलोप होता जा रहा था; सर्वत्र हाहाकार मच रहा था, भूलोक के जीवगण विषम विभीषिका से विकल-प्राण एवं म्रियमाण हो रहे थे। ऐसे समय में भारत के, भारतीयता के, भारत की संस्कृति के प्रतिमूर्ति मुनिगण हिमाचल के प्रांजल अंचल में अपने एक महान समागम द्वारा विचार-विमर्श करने के लिये एकत्रित हुए थे—मनुष्य के सुख, सौभाग्य, आरोग्य, तथा आयुष्य के व्यापक साधन का अन्वेषण कर रहे थे। ये महर्षि ब्रह्म-ज्ञान के निधि थे, यम नियम के पालन करने वाले थे; एवं तपस्या के तेज से प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशमान थे। आज कल के पाश्चात्यमत के परिपोषक विद्वानों की भांति इनके आहार विहार और विचार असंयत, अनियन्त्रित, उच्छृंखल एवं अनिश्चित नहीं थे। ये सबके सब संसार के परम पुरुषार्थ प्राप्त करने वाले उसके अन्वेषणों से आत्म-प्रकाश के द्वारा निःसंशयज्ञान सम्पन्न तथा भूत, भविष्य, वर्तमान के ज्ञाता थे। इन्हें अपने विरोधियों का पूर्ण परिचय, प्रतिकारोपाय, तथा अपुनरावर्तन का ज्ञान प्राप्त कराने वाले किसी विशेषज्ञ विद्वान की गुरु की आवश्यकता प्रतीत हुई; जो आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञान का विशेष अध्ययन, मनन, तथा कर्माभ्यास से निःसंशयज्ञान का उपदेश दे सकें तथा उन तत्वों का प्रत्यक्षीकरण करा सकें। रोग जर्जर शरीर एवं मन आत्म-ज्ञान के, तत्व ज्ञान के अधिकारी नहीं हो सकते हैं। "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" के अनुसार आरोग्य साधन मोक्ष साधन का प्रथम सोपान है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल कारण आरोग्य ही है। रोग आरोग्य का नाश करने वाला अर्थात् आरोग्य का अभाव माना जाता है। रोग कल्याण और जीवन का अन्त करने वाला प्रबल शत्रु है। जब यह प्रकट होता है तब सब क्रिया का लोप हो जाता है।

"वह समय आ गया है। संसार रोग-ग्रस्त होकर अल्पायु-अल्पप्राण हो रहा है। इसकी शान्ति के निश्चित उपाय की खोज करना ही ऋषि परिषद् का सर्व प्रधान विषय है; ऐसा प्रस्ताव सभा में रखा गया और सब ध्यान मग्न हो गये। ध्यान में योगज्ञान के द्वारा मुनियों को ज्ञान हुआ कि देवराज इन्द्र रोगों की शान्ति का उपाय जानते हैं; क्योंकि उन्होंने स्वयं अश्विनी कुमारों से आयुर्वेद शास्त्र का—जीवन शास्त्र का—पूर्ण ज्ञान और अभ्यास किया है। अश्विनी कुमारों ने प्रजापति से तथा प्रजापति ने ब्रह्मा जी से इस विद्या को पाया है। ब्रह्मा जी ने भी पूर्वकालिक संस्कार के बल से इसे

स्मरण द्वारा प्राप्त किया है। इसलिये देवराज इन्द्र ही इस विद्या के ऐसे ज्ञाता हैं जिन्होंने अपने शिष्यों को इस विद्या का उपदेश अभी तक योग्य शिष्यों के अभाव में नहीं किया है। उनकी विद्या गुरु ऋण ग्रस्त है, क्योंकि शिष्यों में विद्या प्रदान किये बिना किसी की भी विद्या फलवती नहीं होती है। नृसिंह तापनीयोपनिषद् में कहा है कि "योहि गुरुभ्यः सम्यगादाय विद्यां न प्रयच्छायन्तेवासिभ्यः स खलु ऋणी गुरुजनस्य महदेनो विन्दति"। अतः भरद्वाज ऋषि ने इन्द्र से इस विद्या को प्राप्त करने का निश्चय महर्षि मण्डल को सुनाया, और सबकी इच्छा से अमरावती पुरी में जाकर इन्द्र से जीवन शास्त्र-स्वास्थ्य सिद्धान्त आयुर्वेद विद्या को पढ़कर अभ्यास कर लौट आये तथा महर्षि मण्डल को इसका उपदेश दिया। इस प्रकार इस जीवन शास्त्र आयुर्वेद के मूल में परमर्षियों के चिन्तन, परिशीलन तथा परोपकार के सुस्वादु फल का आस्वाद प्राप्त होता है। जिससे प्राणी मात्र अमरत्व प्राप्त करके जरारोग विनिर्मुक्त होकर सुखमय जीवन का—परम पुरुषार्थ मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

यह शास्त्र नित्य है—शाश्वत है, भाव स्वभाव सिद्ध है, सिद्धान्तित है। सांख्यकार महर्षि कपिल इसकी प्रामाणिकता के विषय में कहते हैं कि "मन्त्रवच्चायुर्वेद वच्च" अर्थात् इस सांख्य शास्त्र का प्रमाण मन्त्रों के समान तथा आयुर्वेद शास्त्र के समान सिद्ध एवं निश्चित है। इसीलिये भारतीय जीवन शास्त्र देवगण सम्मत, सम्मानित तथा अपौरुषेय माना जाता है।

महर्षियों का कथन है—विश्वास है कि कल्प प्रतिकल्प के पूर्ववर्ती ब्रह्मा वेद की भांति आयुर्वेद का स्मरण करके अपने परवर्ती प्रजापति जैसे अधिकारी को इस ज्ञान का उपदेश देते हैं। अतः वेद के समान अथर्ववेद का उपवेद भारतीय जीवन विज्ञान है इसे मानने में कोई आपत्ति नहीं। स्मरण और उपदेश से भिन्न आयुर्वेद की उपलब्धि अन्य साधन से नहीं मानी जाती है। यही बात वेदों के लिये भी प्रमाणित की जाती है। अथर्ववेद में जिस प्रकार बलि, होम, प्रायश्चित, उपवास तथा अन्य विविध अनुष्ठानों से स्वधातु वैषम्य निमित्त एवं आगन्तुज निमित्त द्विविधाश्रय सम्पन्न शारीर मानस व्याधियों के दूर करने का विचार देखा जाता है उसी प्रकार आयुः शास्त्र में भी पाया जाता है। वेदान्त शास्त्र में पंच महाभूतों का पञ्चीकरण जिस प्रकार माना गया है वैसा ही इस जीवन विज्ञान में भी कहा गया है। उसके उपयोग की उपादेयता रोग ज्ञान में—चिकित्सोपयोगी प्रकरण में किस प्रकार सम्बन्धित होती है इसका विशेष विवेचन मिलता है। इसमें हमें सृष्टि के संयोग, वियोग तथा विकास के क्रम का पूर्ण ज्ञान उपलब्ध होता है। इससे सूक्ष्मतर जीवन तत्वों का ज्ञान आयुष्य वृद्धि के उपायों का ज्ञान तथा स्वास्थ्य वर्धन पुरःसर मोक्ष साधनोपयोगी ज्ञान का प्रयोजन परिलक्षित होता है। जो ज्ञान प्रत्येक बुद्धिमान मानव के लिये-जीव के लिये आवश्यक है।

हमारे शरीर और मन का किस पदार्थ के साथ कैसा समन्वय है यह जानना प्रत्येक व्यक्ति के लिये परमावश्यक है। प्रत्येक पदार्थ के गुण दोष का परिचय प्राप्त करके हित-सेवन द्वारा सुख तथा अहित सेवन द्वारा दुःख की प्राप्ति से अपने को—दूसरे को

बचाना ही इसका प्रयोजन है, आयुर्वेद का प्रयोजन रोग को दूर करके आरोग्य साधनों का—स्वास्थ्य के नियमों का एवं जीवन विज्ञान के सूक्ष्म साधनों का तथा अन्त में मोक्ष-प्राप्ति के प्रकारों का समुचित विशद विवेक ही माना गया है। यही इसकी विशेषता है। इसीलिये इस शास्त्र की आवश्यकता हुई।

दुःखियों के दुःख को दूर करना, रोगियों को रोगपाश से मुक्त करना, सुख शान्ति के द्वारा जीवन बिताना, तथा शरीर, मानस सम्बन्ध विच्छेद करना ही इसका मुख्य ध्येय है। महर्षि चरक के सिद्धान्तानुसार "धातुसाम्यक्रियाचोक्ता तन्त्रस्यास्य प्रयोजनम्" अर्थात् धातुओं वात, पित्त, कफ, रस, रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा, शुक्र के साम्यावस्था को स्थापित करना और उसके द्वारा आरोग्य एवं आयु को चिरस्थायी बनाने तथा उसके सम्वर्धन के उपायों के अतिरिक्त निवृत्ति मार्गोपदेश द्वारा मुक्ति के साधन का लाभ देना ही इस शास्त्र का मुख्य प्रयोजन है।

रोग दोष के संसर्ग का—सम्बन्ध प्रकार का समुचित परिचय न होने से ही रोग का दोष के साथ क्या सम्बन्ध है ? धातु शब्द से बात, पित्त, कफ का बोध कैसे माना जाता है ? आपके इस प्रकार के प्रश्न का समाधान आचार्य के उपदेश वाक्य हैं

"धारणाद्धातवः प्रोक्ता मलिनीकरणान्मलाः।।
देहसन्दूषणाद्दोषा वातपित्तकफास्त्रयः ।।

अर्थात् वात, पित्त, कफ ये तीन दोष शरीर संचालक यन्त्रों को अपनी साम्यावस्था में स्थापित करने से धातु, शरीर को मलिन करने से मल, तथा शरीर को दूषित करने से दोष कहे जाते हैं। रोग-दोष का समानार्थ वाचकत्व भी रोग दोष को परस्पर अन्योन्याश्रयत्व प्रदान करता है। रोग और दोष एक के बिना रहते ही नहीं। दोष का—वैषम्य रोग है—रोग की शान्ति दोष साम्यावस्था है। जहां दोष साम्य आरोग्य देता है उसी प्रकार प्रकृति साम्य सर्वत्र समत्व का अनुभव कराता, मुक्ति प्राप्ति का कारण बन जाता है। "दोषसाम्यमरागता" इस वाक्य में अरोगता पद से रोगाभाव सर्वत्र स्वास्थ्य संचार से पापरूप रोग का मूलोच्छेदकर-निष्पाप कर शारीर मानस के कार्यों का एकीकरण करता हुआ मुक्ति का साधक बन जाता है। रोग दोष में विशेषता यही है कि रोग विकृत दोष हैं; आरोग्य-समत्व मुक्ति तक देने वाले प्रकृतिस्थ दोष की संज्ञा से बोधित किये जाते हैं। इस प्रकार धातुसाम्य क्रियापद से केवल औषध शास्त्र ही महर्षियों को अभिप्रेत नहीं है, अपितु जिन क्रियाओं से धातुसाम्यरूप मोक्ष-अपुनरावर्तन भी हो यह भी उनका अभिप्राय सिद्ध होता है। हमें इसे आयुर्वेद का प्रयोजन स्वीकार करने में कोई आपत्ति भी नहीं दीखती।

हमारा अभिप्राय सांख्य योग की ओर है। इसीलिये आप देखेंगे कि जब महर्षि आत्रेय ने अपने शिष्यों को आयुर्वेद ज्ञान का जिज्ञासु देखा उनमें उपदेश ग्रहण की योग्यता देखी तब सर्व प्रथम सृष्टि के सर्जन पालन तथा विलयन के क्रमिक इतिहास के रूप में सामान्य विशेष गुण, कर्म, द्रव्य समवाय आदि दार्शनिक तत्वालोक का समुचित समन्वय करते हुए इसके अलौकिकत्व, नित्यत्व, शाश्वततत्व का संकेत सूत्र रूप से उपदेश के रूप में प्रदान कर संसार को अपना ऋणी

बना लिया। भारतीय जीवन शास्त्र का यह अपूर्व महत्व है।

(१) जिस धर्म से एकता की प्राप्ति होती है उसे सामान्य कहते हैं। हम "सामान्य मेकत्व करम्" सूत्र से महर्षि के जीव ब्रह्म के एकत्व का तद्रूप मुक्तिका संकेत करते पाते हैं। उनकी पैनी दृष्टि वहाँ भी पहुँच गई है। जैसे ब्राह्मण शब्द से सामान्य रूप में—किसी भी भेदक भावके अभाव में ब्राह्मण जाति का बोध होता है। इसे ही सामान्य धर्म कहते हैं। द्रव्य गुण कर्म के साथ समवाय समन्वित होता है। द्रव्य, गुण, कर्म के साथ सामान्य का नित्य सम्बन्ध है। जैसे ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व के साथ।

(२) जिस धर्म से सामान्य के भेदभावों का ज्ञान हो उसे विशेष कहते हैं। हमें "विशेषस्तु पृथक्त्व कृत्" के रूप में इसके भेदकतत्व का परिचय मिलता है। सामान्य में भेद उत्पन्न करके उसके विविध रूपों के विस्तार करने वाले धर्म विशेषण, भेदक, अवच्छेदक, आदि शब्द से व्यवहार में एकार्थवाचक के रूप में आते हैं। इसी गुण के कारण एक कारण वाले इस विश्व का विकास अनन्त अनादि रूप में—विविध अवस्था में परिणत होकर भी एकत्व को प्राप्त करने तक यह विशेष अपनी विशेषता सिद्ध करता है। इसी से जीवन शास्त्र, आयुः-शास्त्र, आयुर्वेद एकार्थ वाचक हैं समानार्थक हैं। जीवन काल को—शारीर, मन, इन्द्रिय तथा आत्मा के संयोग काल को आयु मानना जीवन-शास्त्र आयुर्वेद की विशेषता है। यहाँ भी अन्य पद्धतियों से भारतीय जीवन शास्त्र-का भेद प्रदर्शन आधिक्यरूप विशेष के कारण ही परिलक्षित होकर प्रचलित अनेक पद्धतियों का—सिद्धान्तों का आविर्भाव तिरोभाव इसके प्रत्येक परिचय में प्राप्त होता रहता है। यह भी इसी विशेषतत्व की कृपा है।

(३) द्रव्य पद से महर्षि का अभिप्राय कितना सूक्ष्म तथा व्यापक है इसको देखिये। जिसमें कर्म और गुण हों जो समवायी कारण हो उसे ही द्रव्य कहते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, तथा मन को द्रव्य माना है। न्याय शास्त्र ने भी यही माना है। सांख्यादि का भी यही सिद्धांत है। दर्शन के साथ जीवन की घनिष्ठ संगति अथवा जीवन विज्ञान की भित्ति के मूल में हमें' दर्शन शास्त्र का अध्यात्मवाद विकासपूर्ण परिलक्षित होता है। द्रव्य चेतन तथा अचेतन भेद दो प्रकार के होते हैं। इन्द्रियों से सम्पन्न को चेतन एवं इन्द्रियों से रहित को अचेतन कहते हैं। सेन्द्रिय-चेतन द्रव्य में मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि जंगम सृष्टि है। निरीन्द्रिय-अचेतन द्रव्य में हरितक्यादि वनौषधि वर्ग हैं। इस प्रकार जड़ जंगम सृष्टि मात्र द्रव्य हैं। स्थावर वर्ग द्रव्य के तीन प्रकार के होते हैं। कोई द्रव्य दोष को शमन करते हैं, कोई द्रव्य दोष धातु को दूषित करते हैं, तथा कोई द्रव्य स्वास्थ्य प्रवृत्ति को स्थिर करके जीवन का, आनन्द का, आयुष्य का, तथा सुख का मार्ग प्रशस्त करते हैं। जंगम, भौम, और औद्भिद् भेद से तीन प्रकार के द्रव्यों का वर्णन है। जंगम द्रव्य से मधु, गोरस, पित्त, वसा, चर्वी, रक्त, मांस, मलमूत्र, चर्म, शुक्र, अस्थि, स्नायु, सींग, नख, बाल, रोएँ तथा रोचन (गोरोचन मोहरा मुक्ता आदि) का ग्रहण होता है। भौम द्रव्य से सोना, चांदी, तांबा, पीतल-लौहादि धातूपधातु, खनिज द्रव्य का ग्रहण किया गया है। औद्भिद् द्रव्य से हरीतकी, आमलकी, सहदेवी आदि वनस्पति,

वानस्पत्य, औषधि प्रभृति द्रव्यों का ग्रहण किया है । विशेष बातें जानने के लिये संहिता ग्रंथ देखना योग्य है । अथवा मैं ही कभी सेवार्थ उपस्थित कर दूंगा । समय की प्रतिक्षा करें ।

(४) जो द्रव्य के साथ नित्य समवाय सम्बन्ध से चेष्टा शून्य या चेष्टा के विरुद्ध निश्चेष्ट कारण हो उसे गुण कहते हैं । अर्थात् द्रव्य के साथ आधेय सम्बन्ध से रहने वाला— एक देश में रहने वाला, अतएव आकाश आदि व्यापक तथा निष्क्रिय द्रव्यों से भिन्न, चेष्टा शून्य होने से द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहने वाला, कर्म से भिन्न, कारण शब्द से अकारण, सामान्य विशेष समवायरूप पदार्थों से भिन्न क्रिया-विशेष को गुण कहा गया है । गुण सामान्य वैशेषिक तथा आत्मभेद से तीन प्रकार का माना गया है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये वैशेषिक गुण विशेष करके नियत द्रव्य वृत्ति हैं । गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मन्द, तीक्ष्ण, स्थिर, सर, स्थूल, सूक्ष्म, सान्द्र, द्रव, मृदु, कठिन, विशद, पिच्छिल, श्लक्षण, खर, ये बीस गुण सामान्य गुण हैं । इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रायत्न, बुद्धि चिनय, विचार्य, ध्येय, एवं संकल्प्य आत्म गुण हैं । पर, अपर, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथकत्व, परिमाण, संस्कार तथा अभ्यास ये सामान्य गुण होते हुए भी, बुद्धि प्रधान होते हुए भी आत्मगुण की कोटि में आते हैं ।

(५) कर्म शब्द से जो संयोग एवं वियोग में कारण द्रव्य में रहवा हो कर्तव्य की क्रिया हो उसी का ग्रहण किया गया है । दूसरी जो वमनादि क्रिया हैं आँखों की शक्ति से परे होने वाली क्रिया हैं, उनका इस कर्म रूप क्रिया के साथ कोई सम्बन्ध नहीं; क्योंकि वे पदार्थरूप कर्म से भिन्न हैं । विशेष जानना चाहें तो ग्रंथ पढ़ें ।

(६) समवाय शब्द से जो पृथ्वी, जल वायु, तेज, और आकाश आदि के गुणों से अलग न रह सके अर्थात् पृथिव्यादि में नियत वृत्ति से नित्य सम्बन्ध से बना रहे, उसका ग्रहण किया गया है । द्रव्य के साथ नित्य रहने वाले धर्म को समवाय कहते हैं । यह तीन प्रकार का होता है । इन सबों का विस्तार देखना हो तो जीवन शास्त्र आयुर्वेद शास्त्र का गम्भीर अध्ययन करें । साथ ही साथ भारतीय दर्शनों का ज्ञान भी आवश्यक है । इस प्रकार यह जीवन शास्त्र-आयुर्वेद शास्त्र चिकित्सा शास्त्र या औषध शास्त्र मात्र न हो कर जीवन के गूढ़ तत्वों का मूल सिद्धाँतों का, आयु के भेदों का, आयु के ज्ञान का, उसके विशिष्ट तत्वों का तथा उसके बढ़ाने वाले विविध उपायों का निश्चित—निःसंशय ज्ञान प्रदान करने वाले शास्त्र के रूप में हमारे सामने उपस्थित होता है । यही इसके अनुरूप प्रतिष्ठा का पद है। इसे ही इसे शोभित करने का पूर्णाधिकार प्राप्त है ।

जो लोग इसे चिकित्सा शास्त्र मात्र मानने का व्यर्थ प्रयास करते हैं; अथवा जिनकी दृष्टि में यह अवैज्ञानिक प्रतीत होता है उन्हें इसका दृष्टिकोण अपना कर अपने हृदय से पूछना चाहिये कि विज्ञान कहां है ? कौन अवैज्ञानिक है ? जिन लोगों ने इसको निकट से देखने का प्रयत्न नहीं किया है या देखने पर भी जो अपने अगाधगुण के कारण नहीं देखा जा सका है; उनको दूसरों से सुनी सुनाई बातों पर विश्वास कर के महाकवि कालिदास के ''मूढ़ः परप्रत्ययनेय बुद्धिः ''अर्थात् जो दूसरे की बातों पर विश्वास करके वस्तु

स्थिति को बिना जाने अपनी बुद्धि का उपयोग करते हैं वे मूर्ख हैं, का उदाहरण नहीं बनना चाहिए। अतः हमें भारतीयता के नाते अपने जीवन तत्वों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, उसका मनन करना चाहिये, एवं उसका प्रचार करके जीवन के स्तर को समुन्नत बनाना चाहिये। महाकवि की उक्ति के अनुसार मूर्ख न बनकर बुद्धिमान बनना चाहिए।

हम आयुर्वेद शास्त्र को जीवन शास्त्र इसलिए भी मानते हैं कि रोगों का अपुनर्भव शरीर मन के सम्बन्ध विच्छेद से ही होता है, तथा वेदना का ज्ञान मन एवं इन्द्रियों के सम्बन्ध के बिना नहीं होता है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन इस शास्त्र में बड़ी गम्भीरता के साथ किया गया है। योगियों को शरीर या मानस रोगों का ज्ञान नहीं होता है; क्योंकि उनका मन, उनकी आत्मा शरीर के—इन्द्रियों के सम्बन्ध से परे रहा करते हैं। "वेदनानामधिष्टानं मनोदेहश्च सेन्द्रिय": एवं "शरीरसत्यप्रभवाविकारास्तयोरवृत्या न भवन्ति भूयः" के द्वारा सर्ववेदना निवृत्ति तथा सर्व बन्धन विच्छेदपूर्वक शाश्वत, नित्य, मोक्षतत्व को प्राप्त कराने वाले शास्त्र को जीवन शास्त्र न कह कर केवल चिकित्सा शास्त्र कहना नितान्त अनुचित होगा। अतः ऐसे शास्त्र की आवश्यकता तो होनी ही चाहिये। इसलिये महर्षियों को भी इसकी आवश्यकता हुई। उन्होंने शान्त हृदय एवं सुपुष्ट मस्तिष्क से इसके तत्वों का पदार्थों का विचार किया, योगज ज्ञान से प्रत्यक्ष करके लोक कल्याण कामना से अधिकारी व्यक्तियों में उपदेश देकर इसे समुन्नत किया।

कालक्रम से सर्मय के प्रवाह में पड़कर, संघर्षों के संघर्षण से घिस कर इसके कुछ कल पुर्जे बदलने योग्य हो गये हैं। हमें उनको परिष्कृत रूप में सजाने के लिये उत्साह, उद्योग एवं साहस से आगे आना चाहिये। इस शास्त्र के जीवन का जीवनत्व आप के कर कमलों में सुरक्षित है। दूसरे इसके विनाश के लिये अहर्निश कटिवद्ध हैं। आप भी इसके विविध-विज्ञानों को विविध विचारों द्वारा—समन्वयों द्वारा और परीक्षणों द्वारा जनता जनार्दन की सेवा के लिये उपस्थित करने में बद्ध परिकर क्यों नहीं हो रहे हैं? आइये हम अपने विरोधियों से स्पष्ट घोषणा कर दें "जीवन शास्त्र का प्रतीक आयुःशास्त्र हमारी राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति है। इसके सिद्धान्त से संसार के किसी कोने में किसी काल में किसी व्यक्ति के लिये इसका ज्ञान आवश्यक है। केवल चिकित्सा शास्त्र अवैज्ञानिक होता है, परिवर्तनशील सिद्धांत विज्ञान सम्मत नहीं माना जा सकता है। प्रगति का अर्थ जिस अर्थ में लिया जाता है वह भ्रान्त पथ है, विनश्वर है। इस शास्त्र के सिद्धांत से मानव मात्र—प्राणीमात्र—जड़मात्र सभी के स्वास्थ्य का संरक्षण जीवन रक्षा के उपाय चित्रण का चिरन्तन चिन्तन उपलब्ध होता है। यथार्थ में आज की एलोपैथी, होम्योपैथी जल चिकित्सा, दुग्ध चिकित्सा, सूर्यरश्मि चिकित्सा, मिट्टी चिकित्सा, उपवास चिकित्सा प्रकृति सभी चिकित्सा पद्धतियों के मूलसिद्धांत भारतीय जीवन विज्ञान राष्ट्रिय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद में विशद रूप से वर्णित हैं। उन्हें देखिये, सुनिये, पढ़िये, विचार कीजिये। फिर तो आप भी हमारी बातों से अपनी सहमति प्रकट करने में विलम्ब न करेंगे।

नागबला

साहित्याचार्य वैद्य घनानन्द पन्त, विद्यार्णव, D.sc., आयुर्वेदबृहस्पति, देहली

आयुर्वेद के प्रत्येक अङ्ग पर पुनः अनुसन्धान की आवश्यकता है विशेषकर रसायनों पर जो कि दीर्घायुष्य को देने वाले हैं क्योंकि अन्य चिकित्साओं में इस प्रकार के आयुष्य रसायनों का वर्णन नहीं मिलता है। कुछ लोग रसायनों के सैकड़ों हजारों वर्ष आयु बढ़ाने वाले वाक्यों पर सन्देह करते हैं। यद्यपि चरक और महाभाष्य से 'यःखलु सर्वथा चिरंजीवति स वर्षशतं जीवति' इस वाक्य से १०० वर्ष की आयु प्रतीत होती है। इसी प्रकार मीमांसा दर्शन में भी—'सहस्रसम्वत्सरं तदायुषामसम्भवान्मनुष्येषु' यहां हजार वर्ष के यज्ञ प्रकरण में—

'अहानिवाऽभिसंख्यानात्'—इस उत्तर सूत्र में सहस्रसम्वत्सर हजार वर्ष का अर्थ हजार दिन निश्चित् किया है अर्थात् जिन यज्ञों को हजार वर्ष में करना समझा जाता है यहां एक सम्वत्सर शब्द का अर्थ एक दिन मानकर हजार दिन में यज्ञ पूरण करना है। तथापि रसायनों के प्रकरण में सम्वत्सर शब्द दिनपरक असम्बद्ध ही रहता है। 'वृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं शब्दपारायणं प्रोवाच'—इत्यादि महाभाष्य के वाक्य से वृहस्पति इन्द्रादि का शत वर्ष से अधिक जीवित रहना रसायनों से ही सम्भव है। प्रकृत में क्षय रोग पर नागबला रसायन का हम प्रसङ्ग देते हैं। काश्यप संहिता चिकित्सा स्थान यक्ष्मचिकित्साप्रकरण में (पृष्ठ ७६ यादव जी द्वारा प्रकाशित)

शरन्मुखे नागबलामूलान्युद्धृत्य शोषयेत् ॥
सन्निधाय नवेभाण्डे ब्रह्मचारीजितेन्द्रियः ।
स्त्रीशूद्रवर्जी विजने चूर्णं क्षीरेण पाययेत् ॥
प्रथमे दिवसे कर्षं ततश्चोर्ध्वं विवर्धयेत् ।
ततः पलं पलं नित्यं पाययेत् पयसा शुचिः ॥
जीर्णे तस्मिन् पिबेत् क्षीरं भक्तोदकविवर्जितः ।
मासात् सोपद्रवं शोषं हन्ति नागबला नृणाम् ॥
प्रजामायुर्बलं मेधां प्रयताय ददात्यपि ।
षण्मासेन श्रुतधरः सर्वरोगविवर्जितः ॥
अशीतिकोऽपि च युवा भवेत् संवत्सरान्नरः ।

यहां 'मासात् सोपद्रवं शोषं हन्ति नागबला नृणाम्' अर्थात् उपद्रव सहित शोष (क्षय) को अन्न जल का त्याग कर केवल दुग्ध पथ्य से एक मास में श्वासकासादि उपद्रव युत दूर करती है।

सुश्रुत में भी—

'रसोनयोगं विधिवत्क्षयार्तः क्षीरेण वा नागबलाप्रयोगम्' सु. उ. तं. अ. ४१.।

ऐसा मिलता है।

चरक में रसायनों में नागबला का प्रयोग निम्न प्रकार है—

'…अबालान्यजीर्णान्यधिगतवीर्याणि शीर्णपुराणपर्णान्यसंजातान्यपर्णानि तपसि तपस्ये वा मासे…नागबलान्युद्धरेत्। तेषां सुप्रक्षालितानां त्वक्पिण्डमाम्रमात्रमक्षमात्रं

वा श्लक्ष्णपिष्टमालोड्य पयसा प्रातः प्रयोजयेत्, चूर्णीकृतानि वा पिबेत् पयसा, मधुसर्पिर्भ्यां वा संयोज्य भक्षयेत् जीर्णे च क्षीरसर्पिर्भ्यां शालि-षष्टिकमश्नीयात् । संवत्सरप्रयोगादस्य वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति' च. चि. अ. १ पा. २ । यदि रसायन सेवन करना हो तो साथ में शालि (धान) षष्टिक (सट्टी) का भी सेवन कर सकते हैं । तथा—

'पिबेन्नागबलामूलमर्धकर्षविवर्धितम् ।
पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरवृत्तिरनन्नभुक् ॥
एष प्रयोगः पुष्ट्यायुर्बलारोग्यकरः परः ।'
च. चि. अ. ११ ।

यहां क्षतक्षीण पर जो कि एक प्रकार क्षय के समान ही है—

'क्षीरवृत्तिरनन्नभुक्'—अन्न को छोड़ कर केवल दूध का ही पथ्य दिया है ।

जतूकर्ण ने भी—

'नागबलामूलमर्धकर्षवृद्ध्यापलमानं मासं पेयं क्षीरमात्रवृत्तिना' इति चरक चक्रपाणि टीका।

उपरोक्त अभिप्राय का समर्थन किया है ।

वाजीकरण औषधियों में भी नागबला का प्राधान्य है । अन्यान्य औषधियों में घृत, तैल, चूर्ण आसवादिकों में स्वतन्त्र भी इसके प्रयोग मिलते हैं ।

शार्ङ्गधर में—

खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्कालं पूरितो व्रणः ।
गाङ्गेरुकीमूलरसैर्जायते गतवेदनः ।

आज कल गुरु परम्परा प्राप्त सङ्केतवाली नागबला नहीं मिलती । इस पर हमने वाहर के विद्वानों की जो सम्मतियाँ एकत्र की हैं वे निम्न हैं—कलकत्ते के कविराज श्री प्रभाकर चट्टोपाध्याय M. A., Dsc. ने जो आदर्श भेजा है वह कुछ कुछ नागबला के १६ नामों में से सादृश्य रखता है । बंगाल के कविराज उक्त आदर्श को ही लेते हैं । बंगला में इसें गोरक्ष चाकुले कहते हैं ऐसा लिखा है ।

श्री भागीरथ स्वामी जी लिखते हैं (फर्रुखाबाद)—

नागबला फरीद बूटी को कहते हैं, खरैंटी खड़ी होती है नागबला की लता फैलती है यह तीन तीन चार चार हाथ की हो जाती है इसमें भी खरैंटी ही की भांति पत्ते, फल, फूल होते हैं और लोग इसको घोट कर पुष्टि के लिये गर्मी के दिनों में बहुत पीते हैं और दिल्ली में भी यह फरीद बूटी ही के नाम से प्रसिद्ध है ।

लेख लिखते समय बाजार से ताजी फरीद बूटी मंगा कर देखा तो वह पाठा के किस्म की बेल है नागबला के चिन्ह इसमें नहीं मिलते ।

काशी विश्वविद्यालय के श्री बलवन्त सिंह जी एम. एस. सी. लिखते हैं कि—नागबला निःसन्देह अभी तक सन्दिग्ध ही है परन्तु मेरी धारणा है जो वनस्पति विन्ध्यप्रदेश में 'गुलशकरी' के नाम से प्रचलित है वही नागबला है । वैद्य वापालाल जी भी इसे ही नागबला मानते हैं मध्य भारत के जंगलों में इसे ही गनगेर भी कहते हैं । स्वर्गीय कविराज धर्मदास जी भी इसे ही नागबला मानते थे ।

पं० पी. एस. राम शर्मा श्री निवासपुरम, करूर से लिखते हैं—

अत्रापि नागबलाविषये भिषजां संशय एव । केरलेपु नागबला नाम काचन मूलिका उपयुज्यते । द्राविडेषु तु अन्या । गुणश्च न शास्त्रदृष्टः अनुभूयते ।

इस पर मैं आगे भी पत्र व्यवहार कर

रहा हूँ। खर्पर की तरह वैद्यक समुदाय में नागबला पर सन्देह ही है। खर्पर का तो कुछ वर्ष पूर्व मैंने विचार कर पत्रों में निश्चय निकाल दिया था कि यशद का मूल धातु खर्पर है खर्पर के अभाव में यशद को व्यवहार में लाना इत्यादि। खर्पर का विशेष विवरण मैंने अपने रसेन्द्रसार संग्रह की टीका में दिया है। पर नागबला अभी अनिश्चित ही है।

हरमेखला जिसका मूल प्राकृत में है, संस्कृत में भी इसका अनुवाद है। अन्त में हरमेखला में आये हुए शब्दों का निघण्टु दिया है, वहां इस प्रकार है—ना अबला = गंगीतई। नागबला = गंगेतकी। हरमेखला निघण्टु पृ० ८३ पंक्ति ४।

अमरकोष में भी—'गांङ्गेरुकी नागबला झषा ह्रस्व गवेधुका'—इस प्रकार नागबला का पर्य्याय है। यह नाम हरमेखला के नामों से सादृश्य रखता है। श्री अन्तूभाई जी ने भी अपने वनस्पति परिचय निघण्टु में नागबला का प्रसरणशीललता रूप में चित्र दिया है पर वे स्वयं ही सन्दिग्ध हैं।

कैयदेव निघण्टु की भाषा में—नागबला का अभी कुछ निश्चय नहीं ऐसा लिखा है।

श्री यादवजी ने—'नागइव बलते सञ्चलति इति नागबला....' जमीन पर फैलने वाली भूमिबला को नागबला कह कर श्री भागीरथ स्वामी जी के निर्णय की पुष्टि की है। परन्तु अमरकोष की रसाला टीका में—
गाङ्गं जलमीरयति गाङ्गेरुः सैव गाङ्गेरुकी
नागानां हस्तिनां बला नागबला
झषति वातमिति झषा
कटुतिक्ता च वातघ्नी। रा. नि.। वातघ्न गुण निघण्टु ने भी कहा है। (झषधातु हिंसार्थक एवं दूसरा झष धातु झष आदान संवरणयोः ये दोनों भुवादि हैं) गविभूमावेधते गवेधुः सैव गवेधुका ह्रस्वा चासौ गवेधुका चेति चत्वारि 'कंकही' गगेरन इति ख्याताया:। ऐसा मिलता है।

गाङ्गं जलमीरयतीति और नागानां हस्तिनां बला—यह व्युत्पत्ति ध्यान देने योग्य है।

पञ्जाब में यह भी कहावत है कि नागबला की बेल मकान में लगाने से सर्प का भय नहीं रहता यह बेल वृक्षारोही होती है। पं० नृसिंह प्रसाद जी वैद्य।

राजनिघण्टु में—

भद्रौदनी नागबला खरगन्धा चतुष्फला।
महोदया महाशाखा महापत्रा महाफला।
विश्वदेवा तथाऽरिष्टा खर्वा ह्रस्व गवेधुका।
देवदण्डा महादण्डा घण्टेत्याह्वास्तुषोडश॥
रा. नि.

ये सोलह नाम नागबला के दिये हैं। यहां चतुष्फला चार फल वाली सम्भवतः इसके फल चार एक दण्ड पर लगे रहते हों। महाशाखा बड़ी शाखा वाली, महापत्रा बड़े पत्तेवाली, महाफला बड़े फल वाली। शाखा, पत्र, फल का महत्व अन्य बलाओं की अपेक्षा जानना चाहिये। महादण्डा—इससे विदित होता है अन्य बलाओं की अपेक्षा इसका तना मोटा होता है। घण्टा शब्द से घण्टाकार पुष्प होना सम्भव है। इन विशेषणों से नागबला जमीन में फैलने वाली लता नहीं विदित होती है एवं चरक के—त्वक्पिण्डमाम्रमात्रम्—यहां त्वक् पिण्ड शब्द से नागबला की त्वचा का मोटा होना विदित होता है।

कर्नल चोपड़ा ने इण्डिजिनस ड्रग्स में नागबला Sida Spinosa Linn. सीडा स्पिनोसा लैटिन नाम दिया है। अपने वर्णन में बला के आठ भेद लिखे हैं।

U. C. Dutta ने नागबला को S, Alba कहा है। WATT ने S. Spinosa। वनौषधि दर्पण।

चरक मधुरस्कन्द में बला के छै भेद हैं इनमें नागबला भी है।

एक प्रसङ्ग हम यहां देते हैं—हमें प्रतिदिन भ्रमण करने में रायबहादुर प्यारेलाल जो कि भारत सरकार के किसी डिपार्टमैंट में बड़े औफीसर थे चिकित्सा प्रसंग में कहने लगे कि हमारे दफ्तर का एक दफ्तरी जो बहुत दिन से ज्वर खांसी से पीड़ित था आखिर उसकी डाक्टरों के बोर्ड ने परीक्षा कर क्षय निर्णय किया और एकदम छै मास की लम्बी छुट्टी दिला दी। वह काङ्गड़े की तरफ अपने गाँव में चला गया। वहां अपने ग्राम के वैद्य जी की चिकित्सा की। वैद्य जी ने ३०-३५ दिन में केवल दूध पिलाकर निरोग कर दिया। ठीक छै माह पूरे होने पर निश्चित तारीख पर वह हाजिर हो गया। लोगों को अचरज हुआ। फिर डाक्टरों का बोर्ड बैठा। बोर्ड ने रोगमुक्त करार दिया और वह नौकरी करने लगा।

कहीं उक्त वैद्यजी ने नागबला का कल्प ही न कराया हो? क्योंकि अब भी कहीं ग्रामों में गुरुपरम्परागत उत्तम चिकित्सक हैं। किसी भाई को नागबला का गुरु परम्परागत संकेत प्राप्त पता हो तो हमें लिखने की कृपा करें।

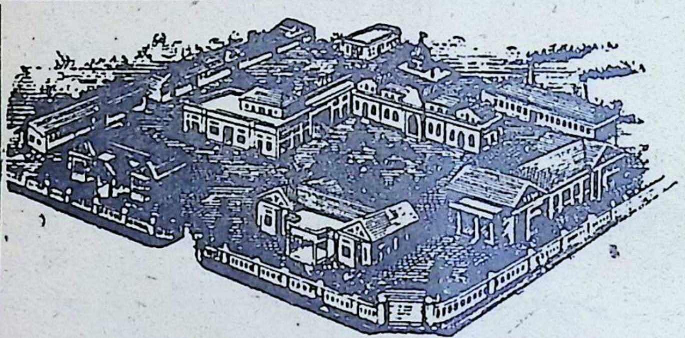

४५ वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम REGD.

गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, वगैरह सैकड़ों प्रकार की हाथ से बनी औषधियाँ तैयार रहती हैं। हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रदेश में और चीन फीजी आफ्रिका अमेरिका युरुप में भी जाती हैं। सब भाषा के सूचीपत्र मुफ्त भेजते हैं।

ऋद्धिखड:—वादिखड: मूल्य ३) रुपया

नित्यनाथ सिद्ध का यह धातुवाद सुवर्ण सिद्धिका अद्भुत अप्राप्य ग्रन्थ संवत १७८५ साल की हस्त लिखित प्रति के आधार से प्रसिद्ध किया है। पत्र २०० पक्का जिल्द २० उपदेश हैं। धातुवाद में रस लेने वालों के लिए संग्राह्य है। मूल श्लोक मात्र हैं।

गोंडल रसशाला औषधाश्रम शाखा नं० १
वसंत वाडी के सामने, ४१६ कालबा देवी रोड, मुम्बई २।

व्यापारिक महत्व की कृमिनाशक दवा--सैंटोनीन

श्री अनुकूल चन्द्र दे और श्री रामेश बेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार,

सैन्टोनीन एक प्रसिद्ध कृमिघ्न औषध है। यह आर्टिमीज़िया जातीय एक छोटे क्षुप के कई भेदों में उसकी अप्रस्फुटित मंजरी से प्राप्त होती है। यह क्षुप रूसी तुर्किस्तान में प्रचुर पाया जाता है। इसका औद्भिदीय नाम है—आर्टिमीज़िया सीना। भारत में इसी जाति का एक और क्षुप भी पाया जाता है जिसमें से यह औषधि प्राप्त होती है, उसका लैटिन नाम आर्टिमीज़िया ब्रेवीफ़ोलिया है। यह क्षुप गढ़वाल से लेकर काश्मीर तक ४०० से १२००० फीट की ऊंचाई तक आभ्यन्तरिक हिमालय में मिलता है।

यद्यपि इस क्षुप का प्रसार पर्याप्त है, परन्तु इसके प्रत्येक भेदोपभेद में सैन्टोनीन तत्व नहीं प्राप्त होता। काश्मीर, जम्मू का किश्तवाड़ प्रदेश जो चन्द्रभागा नदी के किनारे पर है वहां के प्रत्येक भेद में यह क्रियाशील अंश मिलता है। चम्बा-पांगी के किसी-किसी स्थान में केवल एक हरितवर्ण के क्षुप में यह तत्व उपलब्ध है, पर रोमयुक्त श्वेतवर्ण पौधे में नहीं मिलता। लाहौल में भी वैसा ही है, केवल हरितवर्ण वाले पौधे में है। बुशहर के प्रदेश में आर्टिमीज़िया के किसी भी भेद में अभी तक सैन्टोनीन नहीं पाई गई है। गढ़वाल इलाके में जोशीमठ के मलौरी नामक स्थान के कुछ क्षुपों में सैन्टोनीन पाई गई है।

इसी कारण सैन्टोनीन का निष्कासन केवल जम्मू के किश्तवाड़ प्रदेश में और काश्मीर के गुरेज इलाके में हो रहा है। अन्य स्थानों में नहीं। इसकी खेती हिमालय में असम्भव है। यह केवल उसी स्थान में पनप सकता है जो आभ्यन्तरिक हिमालय के वर्षा-विहीन प्रदेश हैं।

वर्णन

आर्टिमीज़िया ब्रेवीफ़ोलिया—एक छोटा सा क्षुप है, जो १८ इंच से ३६ इंच ऊंचा होता है। यह क्षुप श्वेतरोमों से आवृत है या धूसर रोम युक्त है। पल्लव श्वेत या हरे होते हैं। इस में अति-तीव्र कर्पूर जैसी सुरभि है। क्षुप के ऊपरी भाग हिमपात के कारण शुष्क हो जाते हैं, परन्तु वसन्त ऋतु में पुरानी जड़ों से नये पल्लवों के सहित छोटे-छोटे कोंपल निकल आते हैं।

शरद ऋतु में पुष्प-दल निकलते हैं तथा शिशिर के प्रारम्भ में बीज पकने लगते हैं। पत्ते इसके नागदौन या दावना क्षुप के समान कटे हुये रहते हैं। पुष्प हरित, पीत तथा दोनों के मिश्रण के पाये जाते हैं।

विभिन्न नाम

अफ़सन्तीन (अरब), मुरीन (काश्मीर) सेस्की (जम्मू, चम्बा, लाहौल), बिऊर, (चीनी,, बुशहर), पर्चा (गढ़वाल)।

उपयोगी भाग

अप्रस्फुटित मञ्जरी तथा अपक्व पल्लव। गुच्छेदार पल्लवों में भेषजीय अंश नहीं रहता है। इसको संग्रह करने का ठीक समय जून के मध्यभाग से अगस्त के अन्त तक या नवपल्लवित अंकुर के उगने से लेकर पुष्प प्रस्फुटित होने के पहले तक है।

रासायनिक संघटन

भारतीय क्षुप में क्रियाशील पदार्थ सैन्टोनीन १ से २ प्रतिशत पाया जाता है।

उत्पत तेल ०.५ से १ प्रतिशत। इसकी गन्ध कर्पूर तथा काजुपुट तेल जैसी है। सैंन्टोनीन रङ्गविहीन, अभ्रक जैसा कण-मय एवं स्वाद में तिक्त पदार्थ है। सूर्य-प्रकाश से पीले रङ्ग का हो जाता है, इसी कारण इसको काले रङ्ग की शीशी में रखा जाता है। मात्रा—वयस्कों के लिये १ से ३ ग्रेन; १ साल तक के बालक के लिए १|४ से १|२ ग्रेन; ५ साल वाले बालक के लिए १ से १½ ग्रेन।

उपयोग

सैंन्टोनीन का प्रयोग गोल कृमियों को मारने के लिये किया जाता है। तंतुकृमियों पर इसका प्रभाव कम होता है। अन्य कृमियों तथा चपटे कृमि एवं अंकुश-मुख-कृमि पर इसका प्रभाव नहीं के बराबर है। इसका प्रयोग सोने से पहले रात्रि में ही करना चाहिये। दूसरे दिन प्रातः कोई जुलाब दे देना चाहिये।

अधिक मात्रा में इसका प्रयोग करने से वमन, अतिसार, कम्प, शिरःशूल, अरुचि एवं स्वेदाधिक्य आदि उपद्रव पैदा हो जाते हैं। अतः इसका प्रयोग अति सावधानी से करना चाहिये।

निष्कासन पद्धति

अप्रस्फुटित मञ्जरी दल को शुष्क करने के पश्चात् चूर्ण कर लेते हैं। इस चूर्ण का उत्पत तेल भाप द्वारा निकाल लेते हैं। तेल निकालने के पश्चात् चूर्ण की लुगदी को चूने के पानी में डालकर उबाला जाता है। उबालने पर लुगदी का पानी छान कर निकाल लिया जाता है, और उस पानी में थोड़ा कास्टिक सोडा डाल दिया जाता है।

फिर कार्बन डाइऑक्साइड गैस उस पानी में छोड़ देना चाहिये। इससे चूना सब जम जायेगा। उस चूने को छान कर निकाल लेते हैं। छाने हुए पानी को गरम कर तेजाब डाल देते हैं। फिर ठण्डाकर लेते हैं। ठण्डा करने पर सैन्टोनीन नीचे तह में जमा हुआ रहता है। इसको सुरा से घोल लेते हैं और कोयले से रङ्गहीन करके स्फटिक बना लेते हैं। इस प्रकार शुद्ध, सैन्टोनीन प्राप्त हो जाता है।

व्यवसायिक महत्व

सैंन्टोनीन की पैदावार में रूस मुख्य है। रूसीतुर्किस्तान में यह निकलता है। पाकिस्तान में भी यह बनता है। भारत में केवल काश्मीर में ही सैन्टोनीन का उत्पादन होता है। भारत की वार्षिक मांग है दो हज़ार पौंड, पर केवल एक हज़ार पौन्ड ही इस समय बन पा रहा है। इस कमी को पाकिस्तान या रूस से पूरा किया जा रहा है।

सैन्टोनीन का दाम इस समय ४०० रुपया प्रति पौन्ड है। इसको यदि विधिपूर्वक भारत में उगाने तथा निष्कासन करने का प्रयत्न किया जाय तो अच्छा व्यवसाय खड़ा हो सकता है, जो पर्याप्त लाभदायी रहेगा।

सहायक पुस्तकें

वेल्थ ऑफ़ इन्डिया, प्रथम भाग। दि इन्डियन फार्मास्युटिकल कोडेक्स, १९५३। दि ब्रिटिश फार्मास्युटिकल कोडेक्स, १९५४। मेडिसिनल प्लान्ट्स ऑफ़ इन्डिया ऐन्ड पाकिस्तान, जे एफ़. दस्तूर। इन्डीजिनस ड्रग्स ऑफ़ इन्डिया, रामनाथ चोपड़ा। भारतीय भेषजतत्व, कार्त्तिक बसु (बङ्गला)।

[गुरुकुल पत्रिका से सांभार।]

फक्करोग [Rickets]

श्रीसोमदेव शर्मा सारस्वत, साहित्यायुर्वेदाचार्य, ए०एम०एस०, डी० एस० सी० (आ०)
संकरी टोला, चौक, लखनऊ

आयुर्वेद साहित्य में प्रचलित एवं प्रसिद्ध बृहत्त्रयी (चरक, सुश्रुत, और वाग्भट की संहितायें) और लघुत्रयी (माधव निदान, भाव प्रकाश, और शार्गंधर संहिता) तथा अन्य संग्रह ग्रन्थों और प्राचीन टीकाओं में कहीं भी इस रोग का उल्लेख नहीं मिलता है। केवल नेपाल से उपलब्ध अत्यन्त प्राचीन कौमार भृत्यतन्त्र की काश्यप संहिता अथवा वृद्ध जीवकीय तन्त्र में ही इसका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

परिचय—

यह प्राय: एक वर्ष के, माता, या धाय का दूध पीने वाले 'क्षीरप'[1] शिशुओं का होने वाला 'कफज' रोग है, जो कि विशेषतया कफ से दूषित माता या धाय का दूध पीने से शिशुओं को उत्पन्न हुआ करता है।

महर्षि कश्यप ने कफ से दूषित हुये दूध धाय की 'फक्क दुग्धा'[2] सञ्ज्ञा लिखी है, उसके कफ से दूषित हुये दूध को पीने से शिशु के रसवाही स्रोत रुक जाने के कारण, रक्त आदि धातुओं के क्षीण होने पर शिशु की अस्थि भी क्षीण होने लगती है, जिससे वह शिशु कृश हो जाता है और एक वर्ष का हो जाने पर भी चलने में असमर्थ होने के कारण धीरे-धीरे चलता (सरकता) है इसलिये 'फक्कति-मन्दं गच्छति इति 'फक्क:' इस व्युत्पत्ति के आधार पर वह एक वर्ष का शिशु 'फक्क[3]' कहलाता है और उसको होने वाला यह रोग 'फक्क रोग' कहलाता है और पाश्चात्य एलोपैथिक चिकित्सक इसको रिकेट्स (Rickets) नाम से पुकारते हैं।

फक्क रोग के भेद—

यह फक्क रोग क्षीरज, गर्भज और व्याधिज फक्क के भेद से तीन प्रकार का माना गया है।

१—क्षीरज फक्क—

यह माता या धाय के कफ से दूषित दूध के पीने से शिशु को उत्पन्न होता है।

२—गर्भज फक्क[4]—

यह गर्भवती माता या धाय के दूध के पीने से शिशु को उत्पन्न होता है।

---

[1] १—तेऽपि (बाला) त्रिविधा: क्षीरपा:, क्षीरान्नादा, अन्नादा इति। तेषु **'संवत्सरपरा: क्षीरपा:'** द्विसंवत्सरपरा: क्षीरान्नादा: परतोऽन्नादा इति।
(सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान, अध्याय ३५।३३)

[2] २—धात्री श्लैष्मिक दुग्धा तु 'फक्क दुग्धेति' सञ्ज्ञिता:। तत्क्षीरपो बहुव्याधि: कार्श्यात् फक्कत्वमाप्नुयात्॥
(काश्यप संहिता)

[3] ३ बाल: संवत्सरापन्न: पादाभ्यां यो न गच्छति। स **'फक्क'** इति विज्ञेय स्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम्॥ (काश्यप संहिता)

[4] ४ गर्भिणीमातृक: क्षिप्रं स्तन्यस्य विनिवर्तनात्। क्षीयते म्रियते वाऽपि स फक्को गर्भपीड़ित:॥

३—व्याधिज फक्क[1]—

यह जीर्णज्वर आदि निज तथा आगन्तुक व्याधियों से कृश शिशु को उत्पन्न होता है।

फक्क रोग का स्वरूप (रूप)—

उपर्युक्त तीन प्रकार के फक्करोग में फक्कता अर्थात् शिशु में चलने फिरने की असामर्थ्य (Inability to walk) अवश्य होती है। इस रोग का यह ही रूप (मुख्य चिन्ह) है। साथ में अरुचि, खांसी, मन्दाग्नि, वमन, कृशता, विभ्रम, उदर, शिर और मुख की वृद्धि, नितम्ब, भुजा और वक्षस्थल का सूखना, आँखों में पीलापन, रोमांच होना, मलमूत्र का परित्याग, शरीर के कटि से नीचे के भाग की क्षीणता, मलिनता, मृतप्रायता, चिड़चिड़ापन, नखवृद्धि, श्वास वृद्धि, नेत्र और नाक से मल निकलना यह अन्य लक्षण भीन्यूनाधिक होते हैं। क्षीणता एवं कृशता के कारण अस्थियां दुर्बल हो जाने से शिशु चलने में असमर्थ हो जाते हैं और यदि ऐसी अवस्था में भी जब वे चलने का प्रयत्न करते हैं या उनके माता पिता उनको चलाते हैं तो चलने से उनकी अस्थियों पर दबाव पड़ने के कारण वह अस्थियां वक्र (तिरछी) हो जाती हैं।

फक्क रोग के यह सब लक्षण पाश्चात्य एलोपैथिक चिकित्सा शास्त्र में प्रसिद्ध रिकेट्स (Rickets) रोग में भी न्यूनाधिक देश काल आदि के भेद से मिलते हैं। इस लिये इस फक्क रोग को एलोपैथिक चिकित्सा शास्त्र के अनुसार रिकेट्स (Rickets) रोग मानना उचित ही है।

पाश्चात्य (एलोपैथिक) चिकित्सक इस रोग का कारण चूना और जीवद्रव्य (या खाद्योज vitamin विटामिन) डी० की न्यूनता मानते हैं। गर्भस्थ भ्रूणका शरीर अन्तिम दो मास में खटिक लवण को एकत्रित करता है इस कारण अप्रगल्भ शिशुओं में उचित मात्रा में खटिक की राशि एकत्रित होने नहीं पाती और उनकी तीव्रता से वृद्धि के कारण फक्करोग हो जाता है। पर्याप्त सूर्य प्रकाश का अभाव, दरिद्रता एवं अस्वास्थ्यकर निवास भी इस रोग की उत्पत्ति में प्रधान कारण हैं परन्तु यह निश्चित है कि यह रोग सहज नहीं होता है और चार मास से पहिले तथा तीन वर्ष से अधिक अवस्था में इस फक्क रोग का सुनिश्चित लक्षण अपवाद रूप में ही मिलता है। यद्यपि फक्कावस्था में रक्तगत खटिक (कैलसियम Calcium) की राशि कम हो जाती है तथापि अधिकतर रोगियों में रक्तगत खटिक प्राकृत सीमा में रहता है। रक्तगत खटिक की न्यूनता के कारण उत्पन्न हुये फक्करोग में टिटैनी (Tetany) स्वरयन्त्र की कर्कशता तथा आक्षेप आदि वात प्रधान उत्पन्न हो जाया करते हैं। साधारणतया बढ़ती हुई अस्थियों में फास्फेट की उपस्थिति में कैलसियम फास्फेट (Calcium phosphate) के संचय से अस्थियों के निर्माण का कार्य सम्पन्न हुआ करता है। फक्क से पीड़ित शिशुओं में फास्फेट प्राकृत अवस्था में प्राप्त होता है। अतएव यह सोचा जाता है कि रक्त से अस्थियों को जिस प्रक्रिया द्वारा कैलसियम फास्फेट प्राप्त हुआ करता है उस प्रक्रिया में विकृति होती है। कैलसियम फास्फेट के न पाये जाने के निम्नलिखित अनेक कारण हो सकते हैं—

१—आहार में समुचित मात्रा में खटिक (कैलसियम) और फास्फेट न हो।

---

[1] निर्जरागन्तुभिश्चैव…… ज्वरादिभिः।
अनाथः क्लिश्यते बालः क्षीणमांसबलद्युतिः॥
इत्येतैं कारणैर्विद्याद् व्याधिजां फक्कतां शिशोः॥ (काश्यप संहिता)

२—अन्त्र द्वारा शोषण के कार्य में विकृति हो ।

३—जिस प्रक्रिया द्वारा अस्थि के तन्तुओं के निर्माण के लिये रक्त से कैलसियम और फास्फेट लिया जाता है उसमें बाधा हो। अशोसित खटिक मल द्वारा निकलता रहता है यह सोचा जाता है कि कैलसियम (खटिक) का यन्त्र द्वारा शोषण होता है परन्तु जब अस्थियाँ अपने विकास के लिये उसको ग्रहण नहीं करती हैं तब वह फिर अन्त्र में उत्सृष्ट हो जाता है तथा फास्फेट का मूत्र द्वारा परित्याग होने लगता है ।

फक्करोग में सब लक्षण एक साथ न होकर क्रमशः प्रकट होते हैं । पूर्वावस्था में शिशु उद्विग्न एवं क्षुब्ध रहता है और उसकी स्वाभाविक चपलता कम हो जाती है । हेमन्त, शिशिर और बसन्त ऋतु की रात्रि में भी पुरः कपाल में पसीना निकलता रहता है । साधारणतया शिशु पहिले स्थूल और अधिक स्वस्थ प्रतीत होता है परन्तु स्नायु ढीली और पेशियां दुर्बल हो जाती हैं, इस फक्करोग में अस्थिगत परिवर्तन विशेषमहत्व का होता है । शिशु की करोटि में अस्थि भवन कार्य देरी से तथा अनियमित रूप से होता है । पुरः और पार्श्वकपाल के अस्थिभवन केन्द्र के चारों ओर उभार दृष्टिगोचर होता है । साधारणतया शिशुओं का ब्रह्मरन्ध्र १½ वर्ष के भीतर बन्द हो जाता है, किन्तु फक्करोग से आक्रान्त शिशु का विलम्ब से बन्द हो जाता है । सावधानी से स्पर्श करने पर पश्चात् कपालास्थि में कोमलता पाई जाती है तथा करोटि चौकोर हो जाती है । प्रायः दूध के दांत भी देरी से निकलते हैं पहिला दांत दूसरे वर्ष तक भी नहीं निकलता । गर्भाशय में रहने के समय जो शिशु खटिक एकत्रित कर लेते हैं उनके दूध के दांत समय पर भी निकल आते हैं परन्तु वे आकृति विहीन एवं समय से पहले गिरने वाले होते हैं । इस फक्क रोग का बुरा प्रभाव दूसरी बार निकलने वाले दाँतों पर भी पड़ता है । सब से सामान्य एवं पूर्वावस्था में मिलने वाला चिह्न फक्कीयमाला (Rickety rosary) है जो पसलियों और उनकी तरुणास्थियों (कार्टिलेजों) के सन्धि स्थल अधिकतर चौथे पांचवे एवं छठे में मिलते हैं । कोमल पसलियाँ पीछे की ओर दब जाती हैं तथा उरः—फलक ऊपर हो जाता है जिससे शिशु कपोतवक्ष दृष्टिगोचर होता है । मेरुदण्ड को बाँधने वाली स्नायु एवं प्रधानतया पेशियों की शिथिलता के कारण तथा अंशतः कशेरुकाओं की कोमलता के कारण पृष्ठवंश टेढ़ा हो जाता है । कन्याओं की त्रिकास्थि आगे की ओर उभर जाती है जिससे उनको प्रसव के समय कष्ट होता है । फक्क रोग बढ़ने पर लम्बी अस्थियों का शिखर प्रान्त बढ़ जाता है यह मणिबन्ध और गुल्फ में अधिक स्पष्ट होता है, सन्दिग्धावस्था में एक्सरे द्वारा परीक्षा करा लेनी चाहिये । चलने में भार पड़ने के कारण पैर की लम्बी अस्थियाँ टेढ़ी हो जाती हैं । रोगी को रक्ताल्पता भी हो जाती है । प्रायः अल्पमात्रा में श्वेताणुओं की वृद्धि पाई जाती है । स्नायुओं की शिथिलता के कारण रोगी को चलने और बैठने में देरी होती है । उदर प्राचीर की पेशियों की तान (Tone) में कमी होने के कारण आहाराधिक्य से उदर में दूषित वायु उत्पन्न होने से उदर में आध्मान हो जाता है एवं यकृत् प्लीहा छूने पर प्रतीत होते हैं ।

उपद्रव—फक्करोग बढ़ने पर अतिसार एवं श्वसन मार्ग का संक्रमण बहुत मामूली होता है। शालूक (Adenoid एडेनोइड) वृद्धि के कारण जब वक्षस्थलमें वायु के प्रवेश में रुकावट होती है तब वक्षप्राचीर में विकृति हो जाती है। क्लोमनली का आक्रमण बार बार होता है।

फक्करोग से आक्रांत बालक की जब रोग क्षमता न्यून हो जाती है तब प्रायः उत्फुल्लिका (Branko Pneumonia ब्रांको न्यूमोनिया) का भयंकर आक्रमण हुआ करता है। यदि रोगी शिशु के आहार में स्टार्च (starch निशास्ता) की अधिकता होती है तब प्रबल अतिसार हो जाता है जिससे अन्त्र की पेशियों की दुर्बलता और आध्मान रहने से कभी-कभी शिशु की मृत्यु भी हो जाती है।

सापेक्षिक रोगनिश्चिति

अस्थियों का स्पर्शासहत्व—यह फक्करोग के अतिरिक्त बच्चों के स्कर्वी (Infantile scurvy) रोग में भी होता है परन्तु इस रोग में स्पर्श से शूल भी होता है जो कि फक्क रोग में नहीं होता है।

अस्थि वक्रता—यह चिन्ह फक्क रोग के अतिरिक्त स्वस्थ शिशुओं में भी अंशतः पैर की वाह्य धारा में वसा के संचय के कारण से प्राकृतिक रूप से सम्पूर्ण पैर में हो जाती है परन्तु यह वक्रता शिशु के चलने से स्वयंमेव दूर हो जाती है इसके विपरीत फक्क रोग की अस्थिवक्रता जंघास्थि के नीचे के प्रान्त में ही होती है।

साध्यासाध्यता (Prognosis)

उपद्रव रहित फक्क रोग साध्य होता है। गम्भीर रोगियों में अस्थियों की विकृति फक्कावस्था के अनन्तर भी बहुत समय तक रह जाती है। पसलियों की वक्रता प्रायः मिट जाती है। रोग क्षमता की न्यूनता से रोमान्तिका, इन्फ्लूञ्जा (श्वसनक ज्वर) कुकर खांसी (Whooping cough हूपिंग कफ) आदि संक्रामक रोग उपद्रव स्वरूप होने से रोगी शिशु की दशा चिन्ता जनक हो जाती है और प्रबल अतिसार एवं उत्फुल्लिका (डब्बा रोग, पसली चलना, ब्रांको निमोनिया) से मृत्यु भी हो जाती है।

चिकित्सा

१—रोगी शिशु और उसको दूध मिलाने वाली माता अथवा धाय को सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु का पर्याप्त सेवन करावें।

२—माता या धाय के कफ से दूषित दूध को चरकसंहिता की दुग्ध शोधक पाठा आदि दस औषधियों को क्वाथ या अन्य कफ नाशक औषधियों का क्वाथ माता अथवा धाय को मिला कर शुद्ध करें।

३—फक्क रोग से पीड़ित शिशु को सर्वप्रथम कल्याणक घृत अथवा षट्पल घृत चटाकर उसके रसवाही स्रोतों को शुद्ध करें और फिर निशोथ से पकाये हुये दूध को पिला कर विरेचन करावें और तदनन्तर उसका कोष्ठ शुद्ध हो जाने पर उसको ब्राह्मी घृत पिलावें तथा एरण्ड, शालपर्णी, बेलगिरी आदि दश औषधियों के कल्क तथा जौ, बेर और कुलथी के क्वाथ और दही से तिल का तैल पकाकर बनाये गये 'राजतैल'[1] की

---

[1] एरण्डांशुमती बिल्व.................।
.............कार्या दशपलाः पृथक् ॥
यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं-प्रस्थं समावपेत्।
अपां पचेच्चतर्द्रोणे कषायं पादशेषितम् ॥
तैलप्रस्थं दधिप्रस्थं कषायं न पुनः पचेत्।
तत्सिद्धं गोपयेद्यत्नात् सर्वथा सम्प्रयोजयेत् ॥ (काश्यपसंहिता चिकित्सा)

शिशु के शरीर पर मालिश करावें, यदि वातज उपद्रव हों तो उस शिशु को वस्ति, स्नेहपान, स्वेद, और उद्वर्त्तन (उबटन) का प्रयोग करावें, कफ की अधिकता होने पर गाय के दूध में गोमूत्र मिला कर पिलावें। इस चिकित्सा में घृत और दुग्ध आदि का प्रयोग प्रधान है। पाश्चात्य चिकित्सक भी काडलिवर आइल (cod liver oil) और दूध का प्रयोग कराते हैं। यदि शिशु को अतिसार हो तो उसको दूर करने का सर्वप्रथम उपाय करें। अष्टांग हृदय में लिखा हुआ प्रीणन[1] मोदक तथा दीपन[2] संग्राही मोदक दें।

आहार

शिशु को रास्ना और मुलहठी द्वारा अथवा पृश्निपर्णी (पिठवन) या एरण्ड तथा सौंफ द्वारा अथवा मुनक्का, पीलु तथा निशोथ द्वारा क्षीरपाकविधि से पकाया हुआ दूध पिलावें। मूंग का यूष और शाली चावलों का भात खिलावें।

विहार

इस प्रकार की चिकित्सा और आहार के प्रयोग से लाभ होने पर बालकों को पैरों चलने में सहायता देने के लिये एक तीन पहिये की छोटी गाड़ी (त्रिचक्रक-फक्करथ)[3] के द्वारा शिशु को चलने का अभ्यास नित्य प्रति कराना चाहिये और उसको शुद्ध वायु तथा सूर्य प्रकाश का सेवन कराते रहना चाहिये।

उपसंहार

उपर्युक्त आहार विहार और चिकित्सा द्वारा फक्क, (Rickets) रोग से शिशु मुक्त होकर स्वास्थ्य का लाभ प्राप्त कर सुखी हो जाता है।

---

[1] प्रियालमज्जामधुकमधुलाजसितोपलैः।
अपस्तन्यस्य संयोज्यःप्रीणनो मोदकःशिशोः।

[2] दीपनो बालबिल्वैलाशर्करालाजसक्तुभिः।
संग्राही धातकीपुष्पशर्करालाजतर्पणैः ॥~
(अष्टांग हृदय उत्तर स्थान अ० १)

[3] त्रिचक्रं फक्करथकं प्राज्ञः शिल्पिकनिर्मितम्।
विदध्यातेन शनकैर्गृहीतो गतिमभ्यसेत् ॥
(काश्यपसंहिता, चिकित्सा स्थान)

चिकित्सकों व धर्मार्थ औषधालयों को

विशेष सुविधा

सभी प्रकार के उत्तम, गुणकारी भस्म, रस, मात्रा, कूपीपक्व रसायन, पर्पटी, गुग्गुलु, गुट्टिका, आसवारिष्ट, अवलेह आदि नित्योपयोगी औषधों के थोक व सस्ते भाव में मिलने का—

विश्वसनीय स्थान—

बोध चिह्न

नवशक्ति आयुर्वेदालय भुसावळ

नवशक्ति आयुर्वेदालय
लिमिटेड, भुसावल.

शाखा—जब्बलपुर (म० प्र०)

जरानाशक उपायों का वर्णन

श्री पं० नानकचन्द्र, वैद्य शास्त्री, देहली

आज कल मनुष्यों का आहार तथा व्यवहार नियमपूर्वक न होने से जरा (बुढ़ापे) का प्रादुर्भाव शीघ्र ही देह पर दृष्टिगोचर होने लगता है अतः यहां उन नियमों को जनता के लाभार्थ वर्णन करते हैं जिनको प्रयोग करने से मनुष्य जरा तथा व्याधियों से मुक्त होते हैं। भगवान् विष्णु ने अपने भक्तों के कल्याण के लिये उन उपायों का वर्णन किया है जिनसे जरा व्याप्त नहीं होती।

विष्णुरुवाच—

मृत्युकन्यासुताश्चैते जरातस्याश्चकन्यका।
जरा च भ्रातृभिः सार्द्धं शश्वद् भ्रमति भूतले॥

अर्थात् चौसठ प्रकार के रोग मृत्यु के पुत्र हैं और जरा उसकी (मृत्यु की) कन्या है। जरा भाइयों के साथ मिलकर निरन्तर पृथ्वी पर भ्रमण करती है।

एते चोपाय वेत्तारं न गच्छन्ति च संयतम्।
पलायन्ते च तं दृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः॥

अर्थात्—जो इन वल्यमाण उपायों को जानने वाला है और संयम से रहता है तो उस व्यक्ति को यह उक्त रोग तथा जरा व्याप्त नहीं होती, तथा उस मनुष्य को देख कर रोग ऐसे भागते हैं जैसे गरुड़ को देख कर सर्प भागते हैं।

के च ते उपायाः—

चक्षुर्जलं च व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम्।
कर्णयोर्मूर्ध्नितैलञ्च जराव्याधिविनाशनम्॥

अर्थात्—नेत्रों में जल छिड़कना अर्थात् मुख में जल भर कर नेत्रों में जल के छींटे देना, व्यायाम नित्य करना, पैरों के नीचे तेल लगाना, तथा कानों में और मस्तक पर भी तैल लगाना ऐसा करने से जरा का नाश होता है। कहा भी है "अभ्यंगमाचरेत् नित्यं स जराश्रमवातहः" इति वाग्भटः।

बसन्ते भ्रमणं वन्हिसेवां स्वल्पां करोति यः।
बालाञ्च सेवते काले जरा तं नोपगच्छति॥
प्रातः शीतोदकस्नायी सेवते चन्दनं द्रवम्।
नोपयाति जरा तं च निदाघेऽनिलसेवकम्।
प्रावृष्युष्णोदकस्नायी धनतोयं न सेवते।
समये च समाहारी जरातन्नोपगच्छति॥

अर्थात् बसन्तऋतु में भ्रमण, तथा अल्पाग्नि सेवन को जो करता है तथा युक्त समय पर (ऋतु में) जो अपनी पत्नी को सेवन करता है उसे जरा नहीं आती। प्रातः काल शीत जल से स्नान तथा जो चन्दन का मर्दन करता है उसे वृद्धावस्था नहीं आती और ग्रीष्म में वायु का सेवन करता है अर्थात् प्रातः या सायंकाल शुद्ध वायु का सेवन करने वाला वृद्ध नहीं होता। प्रावृट् ऋतु में अर्थात् आषाढ़, श्रावण मास में उष्ण जल का स्नान करना तथा मेघों के जल को सेवन न करना, समय पर न अधिक न न्यून भोजन करने वाला जरा को प्राप्त नहीं होता। यहाँ उष्ण जल का स्नान लिखा है जो युक्त ही है यतः प्रावृट् अर्थात् वर्षा ऋतु में अग्नि मन्द होने तथा वात के कुपित होने

से उष्ण जल का उपयोग युक्त ही है। उक्तञ्च स्वास्थ्यसंहितायाम्-श्रृतं चाम्भो भोजनं त्वति दुर्दिने।" यहाँ भी श्रृत जल का ग्रहण किया है।

"शरद्रौद्रं न गृह्लाति भ्रमणं तत्र वर्जयेत्।
खातस्नायी समाहारी जरा तं नोपगच्छति ।।
खातस्नायी न हेमन्ते काले वह्नि च सेवते।
भुङ्क्तेनवान्नमुष्णञ्च जरा तं नोपगच्छति ।।
शिशिरेंऽशुक वह्नि च नवोष्णान्नं च सेवते।
यत्र चोष्णोदकस्नायी जरा तं नोपगच्छति।"

अर्थात् शरद् ऋतु में जो धूप का सेवन तथा भ्रमण का त्याग कर देता है और प्रातः काल स्नान करता है तथा सम आहार करता है उसे जरा व्याप्त नहीं होती। हेमन्त ऋतु में उष्ण जल का स्नान तथा जो अग्नि का शीत काल में सेवन करता है तथा ताजा बना हुआ उष्ण अन्न सेवन करता है उसे जरा नहीं आती। शिशिर ऋतु में शीताधिक्य होने से गरम कपड़े, अग्नि, ताजा अन्न तथा जो गरम जल से स्नान करता है वह वृद्ध नहीं होता।

"सद्यो मांसं नवान्नञ्च बालास्त्रीक्षीरभोजनम्।
घृतं च सेवते यो हि जरा तं नोपगच्छति।
भुंक्ते सदन्नं क्षुत्काले तृष्णायां पीयते जलं।
नित्यं भुंक्ते च ताम्बूलं जरा तं नोपगच्छति।
दधि हैयंगवानं च नवनीतं तथा गुडम् ।।
नित्यं भुंक्ते संयमी योजरा तं नोपगच्छति।"

अर्थात् ताजा मांस, ताजा अन्न, षोडशवर्षिया स्त्री, दुग्ध तथा घृत जो सेवन करता है वह वृद्ध नहीं होता। जो व्यक्ति स्निग्ध तथा उष्णान्न भूख लगने पर खाता है और तृष्णा लगने पर पवित्र जल पीता है और नित्य ताम्बूल का सेवन करता है वह वृद्ध नहीं होता। दधि, घृत, मक्खन तथा गुड़ जो व्यक्ति सेवन करता है तथा संयम से रहता है उसे जरा नहीं आती।

शुष्कमांसं स्त्रियं वृद्धां बालार्कं तरुणं दधि।
संसेवन्तं जरा याति प्रहृष्टाभ्रातृभिः सह।
रात्रौ ये दधि सेवन्ते पुंश्चलीश्च रजस्वला।
तानुपैति जराहृष्टा भ्रातृभिःसह सुन्दरि।

अर्थात्—सूखा मांस, वृद्धास्त्री, उदय होता सूर्य, दिन में जमाया दधि, जो व्यक्ति इन पदार्थों का सेवन करता है उसमें जरा अनेक रोगों सहित व्याप्त होती है। तथा जो रात्रि में दधि खाता है तथा व्यभिचारिणी रजस्वला का सेवन करता है उसे जरा अनेक भाइयों के (रोगों के) साथ प्राप्त होती है। अतः ऐसा पाप मनुष्य को कदापि नहीं करना चाहिये। अधुना दीर्घायु तथा जरानाशक औषधियों का वर्णन करते हैं।

१. यथा चोक्तं स्वाः संहितायाम्—पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्य पिष्टं पिवेद्यः पयसार्धमासम्। मासद्वयं तत्त्रिद्गुणं समां वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात्।।

अर्थात् पुनर्नवा की जड़ को जो ताजी हो उसको पीस कर अर्धपल की मात्रा में दुग्ध के साथ नित्य १५ दिन से वर्ष पर्यन्त पीने से वृद्ध पुरुष भी फिर युवावस्था को प्राप्त हो जाता है। वक्तव्य-इस प्रकार की रसायन द्रव्यों के उपयोग से पूर्व मनुष्य को वमन, विरेचन आदि से अपना शरीर शुद्ध कर लेना चाहिये तभी इन का विशेष लाभ हो सकता है।

२. समूलं भृंगराजं च छायाशुष्कं तु कारयेत्।
तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिता भवेत्।
पलैकं भक्षयेच्चैतद् वल्यं मृत्युजरापहम्।।

अर्थात् भृंगराज को समूल लेकर छाया में सुखाकर चूर्ण कर उसके बराबर त्रिफले

का चूर्ण मिलाकर तथा सब के समान शर्करा मिलाकर एक पल मात्रा में वा बलाबल देखकर खाने से मृत्यु तथा जरा को नष्ट करता है।

३, सूक्ष्मं कृतं भृंगनृपस्य चूर्णम्,
कृष्णास्तिलैरामलकैश्च सार्द्धम् ॥
सितायुतं भक्षयतां नराणाम्
न व्याधयो नैव जरा न मृत्युः ॥

अर्थात् पूर्व भांगरे को छाया में सुखा कर तत्समान कृष्णतिल तथा आमलक का चूर्ण मिलाकर सबके समान चीनी मिलाकर सेवन करने वाले व्यक्ति को न कोई रोग होता है न बुढ़ापा तथा सहसा मृत्यु भी नहीं होती।

प्रज्ञाकराण्याह—४.

कुष्टाश्वगन्धे लवणाजमोदे
द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा।
मांगल्यपुष्पा च समानचूर्णं
कृत्वा च चूर्णेन वचोद्भवेन ॥
तुल्येन युक्तं वहुशो रसेन
तद्भावितं ब्रह्मविनिर्मितायाः।
सर्पिर्मधुभ्याञ्च ततोऽक्षमात्रं
लिह्यान्नरः सप्तदिनं हिताशी ॥
ऐश्वर्य्यमिच्छन्मनसश्च धैर्यं
मेधां तथेच्छन्द्विगुणं च कालम् ॥
पठेन्नरः श्लोकसहस्रम् ह्नस्तद्वत्
प्रयोज्यं द्विगुणञ्च कालम् ॥

अर्थात्—कूठ, असगन्ध, सैन्धवलवण, अजवायन, अजमोद, दोनों जीरे, त्रिकटु, पाठा, शंख पुष्पी का चूर्ण सब समान भाग लेकर वचके क्वाथ की अनेक बार भावना दें। वह ब्रह्मा का निर्माण किया हुआ चूर्ण १ तोला सात दिन तक घृत तथा मधु के साथ ऐश्वर्य, धैर्य आदि को चाहने वाला दोनों समय सेवन करे। जो व्यक्ति १४ दिन निरन्तर इसका सेवन करे तथा हित भोजन करे तो वह एक दिन में एक सहस्र श्लोक स्मरण कर सकता है।

५. गिलोय, अपामार्ग, वायविडंग, शंखाहुली, ब्राह्मी, वच, सुण्ड, शतावरि इनका समान भाग चूर्ण घृत के साथ सेवन करने से मनुष्य तीन दिन में सहस्र श्लोक धारण कर सकता है।

६. मालकंगनी का तैल १ रत्ती से बढ़ा कर १ तोले तक जो पीता है और सूर्य ग्रहण में जल में रहता है वह मनुष्य बुद्धिमान तथा कवि हो जाता है।

७. मालकंगनी के तैल से रजत की लेखनी द्वारा जिस सद्योजात शिशु की जिह्वा पर ऐं ३ बीज लिख दिया जाता है वह चिरायुः तथा कवि हो जाता है।

उक्त जितने प्रयोग जरानाशक तथा प्रज्ञावर्द्धक वर्णन किये हैं उनको सेवन करने की इच्छा करने वाला जो व्यक्ति सर्व प्रथम अपने शरीर को स्नेहन स्वेदन, वमन, विरेचनादि द्वारा पवित्र करके फिर उक्त औषधियों का सेवन करेगा वही इन प्रयोगों में कहे हुए गुणों का लाभ उठा सकेगा।

———

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleton) आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल टिकयाँ व गोलियां बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकल इन्स्ट्रूमेन्ट, आदि के मिलने का पता:—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स कं०
दयाल बाग़, (आगरा)

अष्टिका (गेंठी)

श्री वैद्यरत्न क० प्रतापसिंह रसायनाचार्य, Dsc. (A) आयुर्वेद वृहस्पति, वनारस

[माननीय वैद्यरत्न श्री क० डा० प्रतापसिंह जी के शुभ नाम से सारा आयुर्वेद जगत सुपरिचित है। आप सम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान तथा विशेष आधार स्तंभों में से हैं। आप के विचार और गवेषणाएं गम्भीर विचार धारा से ओत-प्रोत होती हैं। मेरे बहुत आग्रह पर आपने अपना मौलिक गवेषणापूर्ण लेख भेज कर अनुगृहीत किया। आशा है आयुर्वेद जगत इस लेख पर पूर्ण गम्भीरता के साथ विचार करेगा तथा अपने अनुभवों को पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजने का कष्ट करेगा। मुझे आशा है कि वैद्यरत्नजी अपनी इस पत्रिका को अपने बहुमूल्य खोजपूर्ण विचारों से कृतार्थ करते रहेंगे। प्र० सम्पादक]

यह अत्यन्त खेद का विषय है कि आजकल सर्वत्र आयुर्वेद की उन्नति के लिये तो सभा सुसायटियां करने का यत्न हो रहा है और विविध प्रकार के प्रस्ताव पास कर दिये जाते हैं पर वास्तविक आयुर्वेद के ज्ञान के लिये प्रयत्न नहीं हो रहा है।

आयुर्वेद का ज्ञान केवल पुस्तक के पठन पाठन से नहीं हो सकता है आयुर्वेद तो प्रत्यक्ष शास्त्र है, जब तक प्रतिदिन शास्त्रीय चिकित्सा विधियों का और उनमें प्रयुक्त होने वाले द्रव्यों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होगा तबतक चिकित्सा कार्य में सफलता नहीं मिलेगी।

चिकित्सा में सफलता मिलने ही से आयुर्वेद जीवित रह सकता है और अपनी अक्षुण्णता रख सकता है। आज के वैद्य स्वयं बनों में जाकर औषधि संग्रह नहीं करते हैं। न इस समय के जीवन में यह संभव ही है ऐसी दशा में हमारा औषधि संग्रह का सारा भार पंसारियों के सड़े गले संग्रह पर निर्भर है। पंसारी भी बिचारे बनबासियों की सहायता से इधर उधर से समय असमय में संग्रह कर अपनी आजीविका चलाते हैं। परिणाम यह है कि हमारी चिकित्सा दिनो दिन हीन दशा को प्राप्त हो रही है।

आयुर्वेद महामंडल विद्यापीठ का यह कर्तव्य है कि वह सर्व प्रथम आयुर्वेदोक्त द्रव्यों का एक प्रदर्शनालय बनावे ताकि द्रव्य प्राप्ति में सन्देह होने पर उसका वहाँ से निर्णय हो सके एवं द्रव्यों कि प्राप्ति कहाँ कहाँ से हो सकती है उसकी सूची भी सहज में मिल सके ताकि वैद्य उपयुक्त द्रव्य शास्त्रीय विधि से संग्रह किया हुआ उचित मूल्य से प्राप्त कर सकें। यह कार्य विद्यापीठ के अधिकारियों के लिये अति कठिन नहीं है; केवल एक वैद्य को रखकर सारे देश को अपनी शाखाओं से उनके प्रान्त के पन्सारियों के पते मंगा लें और उनके पास प्रान्तीय औषधियों की सूची भेजकर मूल्य और नमूने मंगाकर एक वृहत् सूची पत्र तय्यार करलें। नमूने प्रदर्शनालय में रख लें और सूची का प्रकाशन सयम समय पर महासम्मेलन पत्रिका में कर दिया करें जिससे सहज में सब वैद्यों को सूचना मिल जावे और बिना व्यय के उत्तम प्रदर्शनालय का भंडार भरता जावे जिससे प्रान्तीय

औषधिओं का स्वरूप ज्ञान कर लिया जावे और संदिग्धता का निर्णय सम्मेलनों के अवसर पर कर लिया करें । यह कार्य केवल श्रमसाध्य हैं । आशा है इस परामर्श पर अधिकारी ध्यान देंगे ।

गृष्टिका

गृष्टिका का उल्लेख सुश्रुत संहिता में कुष्ट चिकित्सा के प्रकरण में महातिक्तघृत में आया है । यह क्या द्रव्य है इसकी खोज मैं बरसों करता रहा । अनेक निघण्टुओं का परिशीलन किया पर विशेष कुछ हाथ न लगा । पूज्य यादवजी महाराज ने द्रव्य गुण विज्ञान का अत्यन्त सुन्दर संकलन किया है पर उसमें भी ढूंढने पर इस वनस्पति का परिचय नहीं मिला । इत्तिफाक से एक पर्वतीय ज्योतिषी से भेंट हो गई और उन्होंने एक लता का उल्लेख किया और उसका नाम "गेंठी" वताया । मुझे गेंठी और गृष्टिका शब्द की साम्यता विदित होने से मैं इसकी खोज में लग गया एवं ईश्वर की कृपा से इस वनस्पति की प्राप्ति भी हो गई; अब मैंने इसे अपने उपवन प्रताप पार्क में लगा दिया है ताकि सब प्रकार से उसका अन्वेषण किया जावे । यह लता बहुत ही सुन्दर हरितवर्ण के पत्र की है । इसके पत्तों की आकृति नागवल्ली (नागरवेल) के पत्ते के सदृश नोकदार गोल व सलदार होती हैं । तना पतला रस्सी सा बहु शाख वाला होता है । इस का फैलाव बहुत होता है । एक ही बेल सारे मकान को छा देती है इसके फल गठीले भूरे रंग के होते हैं, जिसपर पतला सा छिलका चढ़ा रहता है और बीच में अंकुर होता है । वहीं से जमीन में लगाने पर अंकुरित होती है ।

इसके फल मधुर और तिक्त होते हैं । अधिकांश में मधुर ही फल पाये जाते हैं जिन्हें भूनकर पहाड़ के लोग ज्वरादि के अन्त में पथ्य में देते हैं एवं काटकर सुखा कर भी रखते हैं और आवश्यकता पर पका कर खाते हैं । तिक्त फलों को काट कर बहते हुये पानी में रख देते हैं । ४-६ घंटे के बाद उनमें से तिक्तता साफ हो जाती है तब भोजन में प्रयोग करते हैं ।

इसका गृष्टिका शब्द सार्थक मालूम होता है । कारण कि इसका गूदा सद्य प्रसवा गौ के गाढ़े दुग्ध के जैसा मधुर होता है । रंग धूसर । आशा है वैद्य महानुभाव अपना २ अनुभव पत्रिका द्वारा प्रकाशित कर वनस्पति के ज्ञान के प्रचार में सहायक होंगे ।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें ।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७९६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड़, बम्बई

शरीर, क्रिया, विज्ञान के लेखक से (२)

भिषक् भिषजा सह सम्भाषेत

वैद्य श्री पद्मनाभ शास्त्री, बीकानेर

कुछ समय पूर्व "शरीर क्रिया-विज्ञानके लेखक से" इस शीर्षक से उक्त ग्रन्थ के एक दो स्थलों के विषय में विचार विमर्श किया गया था। आज के उद्भट विद्वान श्री रणजितराय देसाई ने जिस प्रकार तथ्य ग्राहकता का परिचय दिया उससे मुझे प्रेरणा मिली कि अन्य विचारणीय विषयों को लेखक महोदय के सम्मुख उपस्थित करूँ। अच्छा तो यही होता कि मैं इसे आपके सामने व्यक्तिगत रूप से उपस्थित करता परन्तु अन्य विद्वान् भी इस दृष्टिकोण से परिचित हो सकें अथवा उनके द्वारा भी शास्त्रसम्मत और प्रशस्त पथ मिल सके इसके लिए "पत्रिका" में प्रकाशित करना अधिक उपयुक्त समझा गया। चरक प्रतिपादित उपरिलिखित महावाक्यके आशय को आदर्श मानकर एवं विद्वान् लेखक के प्रति श्रद्धा रखते हुए यह लेख लिखा जा रहा है।

शरीरक्रिया-विज्ञान प्रथमावृत्ति पृष्ठ १६५ पर आपने अपान वायु शब्द का ओषजनयुक्त शुद्धवायु जो मुख और नासिका के द्वारा प्रविष्ट होता है ऐसा अर्थ किया है जो आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धान्तों के अनुकूल प्रतीत नहीं होता। जहाँ तक अपान शब्द का अर्थ "ऐसे प्रसङ्गों में अपान वह नहीं हो सकता जिसके अधीन मलमूत्र आदि की क्रिया है। न वह विकृत वायु हो सकता है जो गुदा मार्ग से वाहर निकलता है।" इन वाक्यों से हमारी पूर्णसहमति है क्योंकि "यत्तु पायुमार्गाधो निःसरति सोऽपानः मुखात्तु प्राणः इति केचिदाहुस्ते त्वायुर्वेदसिद्धान्ताऽनभिज्ञा एव" पं० हरिप्रपन्न जी का यह वाक्य आज भी गुञ्जित है। परन्तु प्राण शब्द से मुख नासिका विनिर्गत अशुद्ध, मलिन वायु कैसे सम्भव है, यह वात विचारणीय है। आपने स्पष्ट शब्दों में लिखा है, "पर इसका (प्राण) का शास्त्र शुद्ध अर्थ श्वास क्रिया में निकला दूषित वायु है जिसे कार्बन डाइआक्साइड (कार्बनिकाम्ल गैस, C02) कहते हैं। श्वसन क्रिया के प्रकरण में प्राण का अर्थ अशुद्ध वायु तथा अपान का अर्थ शुद्ध वायु (ओषजन) होता है।"

इसके समर्थन में भगवद्गीता के 'अपाने जुह्वति प्राणं' की श्रीधराचार्य कृत टीका का हवाला दिया है। जिसका अर्थ भी मेरी क्षुद्र बुद्धि से इस प्रकार किया जा सकता है अपान वृत्ति में अवरुद्ध अपान में प्राण का हवन करते हैं ऐसा हो सकता है। परन्तु श्रीधराचार्य कहीं भी आयुर्वेद और शरीर के विज्ञ नहीं माने गये अतः उनका वाक्य आयुर्वेद प्रामाणिक नहीं माना जाना चाहिए। कर्मकाण्ड के पण्डित तो थोड़े से शब्द साम्य से अन्यत्र मन्त्र सम्बन्ध लिखते देखे गये हैं। 'यथा शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये' इस मन्त्र का सम्बन्ध जल से है परन्तु

'शन्नो' में कुछ शनि शब्द की ध्वनि देख कर शनि के शांति मन्त्र के रूप में विनियोग किया जाता रहा है । इसके विपरीत आयुर्वेद में इस प्रकार का अर्थ कर्णगोचर नहीं होता ।

यदि वेद में भी देखा जाय तो प्राण शब्द का अर्थ प्राण वायु या शरीर में मुखनासिका द्वारा प्रविष्ट होने वाला शुद्ध वायु ही प्रतीत होता है ।—

प्राणमाहुर्मात रिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते । मातरि अन्तरिक्षे श्वसिति वर्तते स मातरिश्वा अर्थादाकाशे वर्तमान औक्सिजन (Oxygen) विशुद्धात्मा वायु स्तं प्राणख्यमाहुः ।

'प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे'प्रभृतिसूक्तो में प्राण शब्द से आक्सीजन युक्त शरीर में प्रवेश करने वाला वायु ही ध्वनित होता है ।

संहिता के आधार पर भी शुद्ध वायु ही प्राण माना जाना उचित है 'वायु र्यो वक्त्रसंचारी स प्राणो नाम देहधृक् सोऽन्नं प्रवेशत्यन्तः प्राणांश्चाप्यवलम्बते" इति श्लोक में सुश्रुत का संशयरहित अर्थ ध्वनित होता है कि जो भोजन को अन्दर प्रविष्ट करता है एवं प्राणों का अवलम्बन करता है वही प्राण है । फन्दा आदि लगाकर जो व्यक्ति मरते हैं उन्हें प्राण (ओषजन) मिल नहीं पाता और प्राण टिक नहीं पाते । भाव प्रकाश और शार्ङ्गधर संहिताओं में भी ऐसे ही वाक्य मिलते हैं ।

तर्कसंग्रह में भी 'शरीरान्तः संचारी वायुः प्राणः' यह सूत्र उपलब्ध होता है जिसका मुख के अन्दर संचार करने वाला वायु ही प्राण है ऐसा अर्थ होता है ।

व्याकरण की दृष्टि से व्युत्पत्ति की जाय तो प्र शब्द का अर्थ उत्कृष्ट होने से प्राण का अर्थ उत्कृष्ट वायु अर्थात् ओषजन ही उपयुक्त और संगत होता है । अप उपसर्ग का अर्थ निकृष्ट याने (co2) कार्बन डाइओक्साइड होना चाहिए ।

इन सबके अतिरिक्त उपरिलिखित पुस्तक में ही तैंतालीसवें अध्याय में जहाँ वायु का वर्णन किया गया है प्राण वायु के स्थान कर्म एवं रोग में स्पष्ट लिखा है, "इन में प्राण वायु का स्थान मुख, मूर्धा, कण्ठ, जिह्वा नासिका तथा उरस् (छाती) है । इसके कर्म आहार को आमाशय में पहुँचाना ।" यदि प्राण का अर्थ निःश्वास लिया जाता है तो वह अन्नप्रवेश किस प्रकार कर सकता है यह चिन्त्य स्थल हो जाता है ।

यदि इसके विपरीत व्याकरण, तर्क, वेद, आयुर्वेद और लोक के अनुसार प्राण का अर्थ विष्णुपदामृतसंयुक्त शुद्धवायु जो मुख में प्रवेश कर रक्त शुद्ध करता है लिया जाय तो कहीं भी व्याघात नहीं होता ।

वस्तुतः प्राण वायु का ही दूसरा रूप अपान है जैसे शुद्ध रक्त ही भ्रमण करते २ सिराओं में प्रविष्ट होने की अवस्था में अशुद्ध कहलाता है । उसे जीव संज्ञा भी नहीं दी जाती ।

प्राण अपान मिले जुले हैं इसकी पुष्टि भी प्राणाऽपानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते । यवे ह प्राण आहितापानो व्रीहिरुच्यते ।

पंडितवर हरिप्रपन्न जी की व्याख्या इस स्थल में विशेष द्रष्टव्य है । ईसकी व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है ।

प्राणाऽपानौ प्रवेशनापनोदनकर्माणौ वातौ व्रीहियवौ ताभ्यां तुल्यौ यज्ञनिष्पत्तिमिव शरीरक्रियानिवर्तकौ । प्राणवायोराकाशामृतरूपेणशुद्धत्वाद् यथास्थितस्वरूप एव कार्यकारी भवति तस्मिन् त्याज्यांशस्य विशेष-

तोऽभावोऽस्ति अतः स यवशब्देनोपमितः फुफ्फुसाभ्यां हृदयमभिगमनकालापथ चामाशयादेरसायनीयस्रोत अभिगमनसमयादेव अपाने स्थले २ प्रत्यवयवे आकृष्टस्यामृतस्योपक्षीणत्वात् दुष्टवाष्पाणां च संसर्गात् कालुष्य सत्वात्त्याज्यांशयुक्ततया व्रीहिशब्दोपमादत्ता। नन्वेवं शारीरक्रियानिवर्तने को विशेषतयोपकारीति प्रश्ने उत्तरयति अनड्वान् इति यद्यपि प्रवेशनक्रियाया अभ्यर्हितता भवति तथाऽप्येकेन तेन क्रिया निष्पत्तिर्न भवति यतः स अनड्वान् अतः शरीररूपं शकटं वहतीति अनड्वान् एकोऽस्ति। द्वितीयस्थले अपान एव धुरां वहति।

आचार्यों ने 'प्रवेशनाकर्माधिकृतः प्राणः, अपनोदनकर्माधिकृतश्चापानः।' यह मोटे रूप में लक्षण किया है। इसलिए विद्वान् लेखक महोदय से अनुरोध है कि केवल पाश्चात्य समन्वय को दृष्टि में रख कर धर्माचार्यों को प्रमाण न बनायें अन्यथा वैद्य विदग्ध अर्थ विज्ञवैद्य हो जायगा। वारि शब्द से पानी और जलद से केवल बादल अर्थ ही निकल सकेगा। (क्रमशः)

शुद्ध लोह भस्म (बारीतर) २४) सेर

काश्मीरी शिलाजित, हमारे कारखाने में प्रतिवर्ष करीब २०० मन शास्त्र विधि अनुसार शुद्ध की जाती है। भाव-शुद्ध ३२) सेर, अशुद्ध पत्थर ८०) प्रति मन, वंग भस्म ३६), प्रवाल भस्म ३२), अभ्रक वज्रभस्म ४६), कांत लोह भस्म २८), स्वर्ण माक्षिक भस्म २८), रस सिन्दूर ८०), स्वर्णराज़ बंगेश्वर ८८), मंडूर भस्म २०), शंखभस्म ७), शृगं भस्म १४), कपर्दिक भस्म ८), मुक्ता शुक्ती भस्म १०),गोदन्ती भस्म ३।।।) चन्द्रप्रभा वटी २८), त्रिवंग भस्म ४८), कसीस भस्म १०) प्रति सेर। स्वर्ण सिन्दूर ३) प्रति तोला। नोटः—इन भावों पर २० तोला से कम कोई वस्तु न भेजी जावेगी, सूचीपत्र मुफ्त। च्यवनप्राश; ५ सेर का २१), १० सेर का ३८), २० सेर का ६५), रु०।

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स
(थोक आयुर्वेदिक औषधियों के बनाने का बड़ा कारखाना)
जी० टी० रोड, अमृतसर।

वैद्य बन्धुओ, अपनी आय बढ़ाओ

विना पूंजी, विना परिश्रम, विना किसी व्यय के आय बढ़ाना चाहें, तो हम से पत्र व्यवहार करें। हमारा कारखाना भारत भर में थोक परिमाण में सस्ती एवं उत्तम सर्व प्रकार की आयुर्वेदिक औषधिएं सप्लाई करने में प्रसिद्ध है। कई प्रान्तीय गवर्नमेण्टें हमारीग्राहक हैं। काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, अमृतसर।

वैद्यों से परामर्श

अश्मन्तक क्या है ?

वैद्याचार्य उदयलाल महात्मा, देवगढ़ (राजस्थान)

पूज्य आचार्य देवों की सेवामें निवेदन है कि चरक अ० १ श्लोक ११३ में वर्णित 'वमनेऽश्मन्तकं विद्यात्' के अश्मन्तक का स्वरूप, अन्य भाषाओं के नाम, प्राप्ति स्थान आदि मेरी समझ में नहीं आये न मिले, इसलिये आप से विनय है कि आप 'पत्रिका' द्वारा पूरा परिचय दिलाकर और हो सके तो सचित्र वर्णन शीघ्र प्रकाशित कराने का कष्ट करें जिससे वमन में इस द्रव्य का उपयोग वैद्य समाज करे।

मैंने इस बारे में निम्न ग्रंथों में निम्न बातें पाई हैं जो चरक वर्णित अश्मन्तकः की ओर भ्रान्ति ही पैदा करती हैं; इसी वास्ते धन्वन्तरि कल्प मनीषियों से प्रार्थना है कि शीघ्र इसको असंदिग्ध बना दें।

वमनेऽश्मन्तकं विद्यात्स्नुही क्षीरं विरेचने।
क्षीरमर्कस्य विज्ञेयं वमने स विरेचने ॥११३॥

चरक अध्याय १

भावार्थ—वमन में अश्मन्तक का दूध, विरेचन में स्नुहीक्षीर (सेहुण्ड का दूध) तथा विरेचन और वमन दोनों में अर्क क्षीर (मदार का दूध) जानना चाहिए। अर्थात् वमन आदि कर्म में अश्मन्तक आदि के दूध का प्रयोग होता है।

चरक तन्त्रार्थ दीपिका, जयदेव-विद्यालंकार कृत।

चरक (जामनगर) द्वितीय भाग अध्याय १ श्लोक ११५ की अंग्रेजी व्याख्या में उन्होंने अश्मन्तक को (Heart leaved fig) लिखा है।

कैयदेव निघण्टु— अश्मन्तकः (कुद्दालकः कोविदार भेदेः) हिन्दी नाम-सफेद छोटी कचनार जिसको राजस्थानी में (झिझा) कहते हैं, किया है और गुण कचनार तुल्य बतलाया है। द्रव्य गुण शिक्षा (बंगला) संकलन कर्त्ता—कविराज नगेन्द्रनाथ सेन कलकत्ता—के पृष्ठ १७ में अश्मन्तक (Colenus Amboinicus-syn. Colenus Aromaticus) बंगला में अश्मन्तक, देश भेद से पाथर कूचा, लोहाचूर, हिम सागर। हिन्दी नाम बताते हुए पाथर चूर कहे हैं। संस्कृत नाम पाषाण भेदक बतलाया है जो चरक वर्णित अश्मन्तक के नहीं हो सकते। इसमें चरक में वर्णित न तो क्षीर निकलती है न ये वामक ही हैं। इसी प्रकार कैयदेव वर्णित कोविदार भी अश्मन्तक कदापि नहीं हो सकती।

नालन्दा शब्द कोष—अश्मन्तक, अश्मन्तक (संज्ञा पु०) (सं०) वर्णन में मूंज की सी एक घास जिसमें प्राचीन काल में ऋषि लोग करधनी या मेखला बनाते थे।

ये भी वर्णन चरक के गुण दर्शाने के अनुसार नहीं है इसीलिए अनुसंधान प्रिय और उसमें लगे वैद्यों से पुनः प्रार्थना है कि आयुर्वेद के पत्रों द्वारा शीघ्र यथोचित स्पष्टीकरण करें।

आयुर्वेदे भूतादिशब्दैः रोगोत्पादकसूक्ष्मजीवाणूनां ग्रहणम्

श्री वैद्य शंकर लाल शर्मा, भिषगाचार्य, फ़तेपुरम् ।

जनवरीमासीयपत्रिकायां "रोगोत्पत्तौ वातादिदोषा जीवाणवो वा उभयं वा निदानानि" इति विषयकोमदीयोनिबन्धः प्रकाशितोऽभूत् । तत्र श्रीमद्भिः सम्पादकमहाभागैः स्वाभिप्रायेलिखितम् यदस्मिन् विषये अन्येऽपि विबुधभिषजः स्वलेखनीं व्यापापारयन्तु इति । परं तु न केनाऽपि विदुषाभिषजा अद्यावधि उक्तविषये स्वलेखनी व्यापारिता, अतोऽहमपि प्रार्थयामि विदुषो भिषजो यदस्मिन् विषये स्वविचारान् शास्त्रयुक्तिभ्यां समलंकृत्य प्रेषयन्तु । श्रीमद्भिः सम्पादकमहाभागैः स्वाभिप्राये मामभिलक्ष्य लिखितम् यत्—"अथर्ववेदेऽपि ज्वरादिव्याधीनां हेतुत्वेन जीवाणव प्रतिपादिता एव परमत्र विस्तरभयान्न लिख्यते" इत्युपसंहृतं युष्माभिः । माभूद्वो विस्तरभीतिः । अथर्ववेदे अन्येषु च वेदेषु स्मृतिषु पुराणेषु च व्याधिसामान्यं प्रति व्याधिविशेषं वा प्रति जीवाणूनां कारणत्वं यत्र-यत्र यावत् प्रपञ्चितं संसूचितं वोपलभ्यते तदखिलं कृपया संकलय्य प्रेषयत । वैद्यकविज्ञानस्य महदुपयोगिनं तादृशं विषयमतिविस्तृतमपि प्रकाशयितुमियं सम्मेलनपत्रिका सदा सोत्कण्ठा भवति ।

किञ्च, यदुच्यते युष्माभिः । चरकसुश्रुतादिसंहितासु रक्षःशब्देन सूक्ष्मा जीवाणव एवाभिप्रेता इति तस्य प्रमाणं शास्त्रयुक्तिभ्यां सर्वप्रकरणसामञ्जस्येन समालोच्य, भूतरक्षः जीवाणुशब्दानां शक्तीः विविच्य निबन्धाननुप्रेषयत प्रेक्षावतां प्रीत्यै इति ।

अथर्ववेदे जीवाणूनामस्तित्वप्रतिपादका अधोलिखिता मन्त्राः सन्ति । यथा—

"अन्वान्त्रं शीर्षण्यमथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्"

ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वौषधिषु पशुष्वप्स्वन्तः ।

येऽस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम् ।

यो अक्ष्यौ परिसर्पति यो नासे परिसर्पति

दतां यो मध्यं गच्छति तं क्रिमिं जम्भयामसि"

ते च क्रिमयो दृष्टादृष्टभेदेन द्विविधा स्तेषां नामानि चानेकविधानि सन्ति, तथाहि—

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम्

अलगण्डून सर्वान् छलूकान् क्रिमीन वचया जम्भयामसि उत पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा

दृष्टश्च घ्नन् अदृष्टांश्च सर्वांश्च प्रमृणान् क्रिमीन्

दृष्टाश्च हन्यताम् क्रिमिरुतादृष्टश्च हन्यताम्

हतासो अस्यवेशसो हतास परिविशसः
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते किमयो हता
इन्द्रस्य या मही दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी

तया पिनष्मि संक्रिमीन् दृषदा खल्वा इव

अन्येऽपि मन्त्रा जीवाणुविषयकाः सन्ति तान् रक्षः पिशाचादीनां समालोचनावसरे लिखिष्यामि ।

आयुर्वेदस्य अष्टस्वपि अङ्गेषु भूतविद्यानामा एकमङ्गं पृथगेव स्वास्तित्वं रक्षति । तथा च सुश्रुते—"इह खल्वायुर्वेदं नामोपाङ्गमथर्ववेदस्य......ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वं चावलोक्य नराणां भूयोऽष्टधा प्रणीतवान् । तद् यथा शल्यम्, शालाक्यम्, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्यम्, अगदतन्त्रम्, रसायनतन्त्रम्, वाजीकरणतन्त्रमिति । तत्र भूतविद्यानाम—"देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शान्तिकर्मबलिहरणादिग्रहोपशमनार्थम्" इति । अस्य सूत्रस्य श्रीडल्लनकृत व्याख्या—असुरा दैत्याः, गन्धर्वा देवगायकाः, यक्षाः धनदादयः, रक्षांसि रावणप्रभृतीनि, पितरः अग्नीष्वात्तादयः, पिशाचापिशिताशना एते ग्रहणात् ग्रहा प्रोच्यन्ते । सुश्रुतोत्तरतन्त्रेऽपि

हिंसाविहारा ये केचिद् देवभावमुपाश्रितः ।
भूतानीति कृता संज्ञा तेषां संज्ञाप्रवक्तृभिः ॥
ग्रहसंज्ञानि भूतानि यस्माद् वेत्यनयाभिषक् ।
विद्यया भूतविद्यात्वमत एव निरुच्यते ॥

तत्र देवादिशब्दानां यदि व्याकरणदृष्ट्या समालोचनां कुर्मस्तदा देवशब्दस्योत्पत्तिः दैवादिकात् "दिवुक्रीडा विजगीषामोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु" इत्यर्थकाद्धातोर्भवति । तत्र देवशब्दस्य क्रीडादयो वहवोऽर्था भवन्ति । अन्यच्च धातूनामनेकार्था इतिनियमेनापि एकस्यैव धातोः प्रकरणवशात् तथोपसर्गादिना अनेका अर्था भवन्ति अतो देवशब्दस्य यदि रोगोत्पादकजीवाण्वर्थं कुर्मस्तदा न काचिदपि क्षतिः यतः दिव्धातोः गत्यर्थोऽपि भवति तेन दिव्यन्ति गतिं कुर्वन्ति इति देवा इत्यर्थे देवशब्दो रोगोत्पादकजीवाणुवाचकोऽपि भवितुं शक्यते । विपुलशक्तिशालिनः दिव्याकृतिविशेषाः देवादयस्तु न मनुष्यशरीरं प्रविशन्ति तेषां कृते मानवशरीरस्य मलिनत्वात् । तथा च सुश्रुतोत्तरतन्त्रे—

"न ते मनुष्यैः सह संविशन्ति न वा
मनुष्यान् क्वचिदाविशन्ति ।
ये त्वाविशन्तीति वदन्ति मोहात्ते
भूतविद्याविषयादपोह्याः ।
तेषां ग्रहाणां परिचारका ये कोटी—
सहस्रायुतपद्मसंख्याः ।
असृग्वसामांसभुजः सुभीमाः
निशाविहाराश्च तमाविशन्ति"

एवमेवासुरशब्दस्यापि असून् प्राणान् क्षिपन्तीति असुरा इति व्युत्पत्तौ असुरा अपि जीवाणुवाचका एव यतः शक्त्यपेक्षया यद्येतेषामाधिक्यं भवेत्तदा तेऽवश्यमेव हन्ति । एवं गन्धर्वशब्दस्य गां वाणीं धारयन्तीति गन्धर्वा इत्यर्थे गन्धर्वशब्दस्यापि पूर्वोक्त एवार्थः । एवमेव यक्षन्ति मनुष्यजीवनेन सह क्रीडन्ति इति यक्षा इति व्युत्पत्तौ यक्षशब्दोऽपि जीवाणुवाचक एव । रक्षश्शब्दस्य अथर्ववेदे वहुत्र प्रयोगो.वर्तते तथा आयुर्वेदेऽपि । तत्राथर्ववेदे अधोलिखितमन्त्रेषु रक्षश्शब्दस्य प्रयोगोवर्तते ।

"उत सूर्यो दिव एति पुरोरक्षांसि निर्जुवन् ।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥

अस्मिन् मन्त्रे दृश्यानदृश्यांश्च रक्षःपिशाचादीन् नाशयति सूर्यः स्वतेजसा इत्युक्तम् । आधुनिका अपि मन्यन्ते यत् सूर्यतेजसा क्रिमयः (जीवाणवः) सहसाम्रियन्ते । अतएवाऽस्माकं पूर्वजैरुपदिष्टं यत्प्रत्यहं सूर्योपस्थापनं विधेयम् तथा च—"ये सूर्य न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवः अरापान् वस्तवा-

सिनो दुर्गन्धीन् लाहितारापान् ममकान् नाशयामसि।" अग्रे अन्येऽपि मन्त्राःसन्ति येषु पिशाचादीनां वर्णनन्तथा तन्नाशाय भेषजवर्णनमपि वर्तते। ते यथा—

यौ ते मातोन्ममार्ज जाताया पतिवेदनौ।
दुर्णामा तत्रमागृधदलिंश उत वत्सय॥
पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलीम्लुचं
पलीजकम्।
आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमीलिनम्॥
मासं वृतो मोप सृप उरु माव सृपोऽन्तरा।
कृणोम्यस्यै भेषजं वजं दुर्णामचातनम्॥
दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छत।
अरापानयः हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम्॥
यः कृष्णः केश्यसुरस्तम्वज उत तुण्डिक।
अरापानस्या मुष्काभ्यां भंससोप हन्मसि॥
अनुजिघ्रं प्रमृशन्तं क्रव्यादभुत रेरिहम्।
अरापांछ्व किष्किरण बजः पिङ्गो अनीनशत्॥

अस्य मन्त्रस्य श्री सायणाचार्यकृत भाष्यम्—

अनुजिघ्रतीति अनुजिघ्रः आघ्रायैव हिंसकमित्यर्थः, तथा प्रमृशन्तं प्रमृश्यैव हन्तारम्। क्रव्यादम् मांसभक्षकम् उत अपि च रेरिहम् लीढ्वैव हन्तारम्। उक्तव्यतिरिक्तानन्यान् अरापान् अधनान् अलक्ष्यीकरांश्च अरापविशेषणं किष्किरण इति नित्यं हिंसकमित्यर्थः पिङ्ग पिशङ्गवर्णः बजः सर्षपः अनीनशत् भृशं नाशयतु।

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च
बजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपान् तिरीटिनः
यस्त्वां स्वपन्तीं त्सरति यस्त्वादिप्सति
जाग्रतीम्

छायामिव प्रतान्त्सूर्यः परिक्रामन्ननीनशत्
यः कृणोति मृत्वत्सां वतोकामिमां स्लियम्
तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम्
ये शालाः परिनृत्यान्ति सायं गदर्भनादिनः
कुसूला ये च कुक्षिलाः ककुभाः करूमाः स्रिमाः
तानोषधे त्वं गन्धेन विषूचीनान् विनाशय
यस्ते गर्भं प्रतिमृशाज्जातं वा मारयति ते
पिङ्गस्तमुग्रधन्वा कृणोतु हृदयाविधम्
योऽम्लं ज्ञातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते
स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान् वातो अभ्रमिवाजतु

अत्र गन्धर्वा रक्षः पिशाचादयः।

परिसृष्टं धारयतु यद्धितं माव पादि तत्
गर्भं त उग्रौ रक्षताम् भेषजौ नीविभार्य्यौ
ये आमं मांसमदन्ति पौरुषेयञ्च ये क्रविः
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि
पिङ्गं कक्ष जायमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्
अण्डादो गर्भान् मा दभन् वाधस्वेति किमीदिनः

उक्तेषु मन्त्रेषु स्त्रियः विभिन्नावस्थासु रक्षः पिशाचादीनामाक्रमणत्वं वर्णितम् तथा तेषां नाशार्थं पीतसर्षपस्य प्रयोगोऽपि विहितः। अत्र यदि रक्षः पिशाचादिशब्दैः भयंकराकृतयः केचन प्राणिविशेषाः गृह्यन्ते तदा एकाकी पीतसर्षप एव कथं तान्नाशयितुं शक्नुयात्। अतएव रक्षः पिशाचादिभिरत्र सूक्ष्मा जीवाणव एव गृह्यते। पुरा जीवाणुनाशार्थं पीतसर्षपस्य प्रयोगञ्चक्रुः आधुनिकास्तु विभिन्नानि द्रव्याण्यन्यानि प्रयुञ्जते।

आयुर्वेदेऽपि चरकसुश्रुतादिसंहितासु बहुत्र रक्षः शब्दस्योल्लेखो वर्तते तस्यापि जीवाणुवाचकत्वमेव। यदि हि रक्षः पिशाचादीनां जीवाण्वतिरिक्तार्थः स्यात्तदा कथन्न तेषामस्तित्वं वर्तते। न च "दर्पणादीन् यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा। स्वमणि भास्कराचिश्च यथा देहञ्च देहधृक् विशन्ति न च दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणः" इत्यार्षोक्त्या तेषामदृश्यत्वात् प्रत्यक्षीकर्तुं मानवचक्षुषी असमर्थे, लक्षणैरेवानुमातुं शक्यम् यतो न केवलं प्रत्यक्षमेव प्रमाणमपि तु अनु-

मानाप्तोपदेशावपि प्रमाणे स्तः । यत्प्रत्यक्षेण न सिद्ध्यति तदनुमानेन, आप्तोपदेशेन च साधयितुं शक्यम्, आयुर्वेदशास्त्रमेवाप्तोपदेशस्तत्र ग्राहाणां वर्णनमस्त्येव अत आप्तोपदेशेन ग्रहाणामस्तित्वं सिद्ध्यति न च ग्रहैर्जीवाणवोऽभिप्रेताः शास्त्रकृतामिति चेन्न, तत्र गृह्णन्तीति इति व्युत्पत्तौ सूक्ष्मजीवाणवोऽपि मनुष्यादिशरीरं गृह्णन्त्येव । न च तदा क्रिमिवर्णनप्रसङ्ग एव तेषामपि वर्णनं कथन्न कृतम् क्रिमिभिः स्थूलक्रिमीणामेव ग्रहणं ग्रहैस्तु सूक्ष्मातिसूक्ष्मक्रिमीणामपि ग्रहणं भवति । यदि ग्रहैः सूक्ष्मक्रिमीणां ग्रहणन्नभवेत्तदा "कदाचिदव्यापन्नेष्वपि ऋतुषु कृत्याभिशापरक्षः क्रोधाधर्मैरुपध्वस्यन्ते जनपदाः, विषौषधिपुष्पगन्धेन वा वायुनोपनीतेनाक्रम्यते यो देशस्तत्र दोषप्रकृत्यविशेषेण कासश्वासवमथुप्रतिश्यायशिरोरुग्ज्वरैरुपतप्यन्ते" इति सौश्रुतसन्दर्भे कृत्याभिशापरक्षः क्रोधाधर्मैः कासश्वासादय उपद्रवाः कथं भवन्ति यत रक्षआदिग्रहाविष्टलक्षणन्तु "गुह्यानागतविज्ञानमनवस्थाऽसहिष्णुता । क्रिया वाऽमानुषी यस्मिन् स ग्रहः परिकीर्त्यते" इत्यादीनि लक्षणानि प्रतिपादितानि शास्त्रे । तथा विषमज्वर कारणेषु—

"परो हेतुः स्वभावो वा विषमे कैश्चिदीरितः ।
आगन्तुश्चानुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे ।।

अस्य व्याख्यायाम् श्रीडल्लनः परो भूतादिहेतुः कारणं स्वभावो वेति विषमज्वरे हेतुरित्यर्थः । अत्रापि विषमज्वरस्य हेतु—भूतादिः प्रतिपादितः । परन्तु न कश्चिद्रोगी एतादृगद्यावधि दृष्टः श्रुतो वा यः विषमज्वरी गुह्यानागतादिलक्षणानि कुर्यात् । तथा सुश्रुताचार्येणैव पुष्पवस्त्ररतु पादत्रादीनां धारणं रक्षोघ्नं किमर्थं प्रतिपादितम् । तथाहि—

रक्षोघ्नमथ चौजस्यं सौभाग्यकरमुत्तमम्
सुमनोऽम्वररत्नानां धारणं प्रीतिवर्धनम्
।।चि० ।।२४।। ७१

पादरोगहरं वृष्यं रक्षोघ्नं प्रीतिवर्धनम्
सुखप्रचारमोजस्यं सदा पादत्रधारणम्
।।चि०।। ।।२४।। ७१

उक्तपद्ययोरपि रक्षश्शब्दस्य जीवाण्वर्थे प्रयोगो नो चेत् वहवः पुरुषाः विनोपानद्भ्यामपि पर्यटन्ति परं न कोऽपि रक्ष आदिभिर्गृहीतो दृष्टः श्रुतो वा । आचार्य भावमिश्रेणापि—

"सुगन्धि पत्रपुष्पाणां धारणं कान्तिकारकम् ।
पापरक्षोग्रहहरं कामदं श्रीविवर्धनम्
वासःशृंगाररत्नानां धारणं प्रीतिवर्धनम्
रक्षोघ्नमर्थ्यमोजस्यं सौभाग्यकरमुत्तमम्
सततं सिद्धमन्त्रस्य महोषध्यास्तथैव च
रोचनासर्षपादीनां माङ्गल्यानाञ्च धारणम्
आयुर्लक्ष्मीकरं रक्षोहरं मङ्गलदं शुभम् ।।

यदि ग्रहैः सूक्ष्मजीवाणनां ग्रहणन्नभवेत्तदा "निशाचरेभ्यो रक्ष्यस्तु नित्यमेव क्षतातुरः" इत्यपि कथं वक्तुं शक्यते यतो न कोऽपि व्रणी सम्प्रति चिकित्सालयेषु (अस्पताल) निशाचरैः रक्ष्यते न च कश्चिदपि व्रणी निशाचरगृहीतो दृष्टः ।

चरकाचार्येणापि जनपदोध्वंसनीऽध्याये प्रतिपादितम्––"रक्षोगणादिभिर्वा विविधैर्भूतसंघैस्तमधर्ममन्यद्वाप्यपचारान्तरमुपलभ्याभिहन्यन्ते" अस्य व्याख्यायाम् श्रीचक्रपाणिनोक्तम् रक्षोगणेत्यादि । अन्यद्वा अपचारान्तरं—यथोक्ताधर्मकारणादन्यदधर्मकारणम् अशोदीत्यर्थः । रोगोत्पादकसूक्ष्मजीवाणवश्चाशुद्धिप्रियाः । यत्र सर्वथा शुद्धिस्तत्र तेषांस्थितिरसम्भवा । यत्र च दौर्गन्ध्यं वर्तते तत्र

तेषां स्थितिः प्रचुरा । चरके आत्मनः पर्यायेषु धारिजीवितनित्यगानुबन्धाश्शब्दाः प्रयुक्ताः । तत्र "धारि" इत्यस्य धारयतीति शरीरं पूतितां गन्तुं न ददातीति धारि । अतएव आर्यधर्मावलम्बिभिर्मृतस्य वन्हि संस्कारो विधीयते अग्निना दग्धे सति न किञ्चिदपि पूतित्वमवशिष्टं भवति नो चेत्तस्य पूतित्वं जनानामस्वास्थ्यं कुर्यात् । एतदभिलक्ष्यैवाऽस्माकं पूर्वजैः विभिन्नानां शुद्धीनामादेशः कृतः । तथाच पराशरस्मृतौ—

"अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शुद्धि पराशरोदिताम्
सूतके वाऽप्यशौचे वा यथावत्तां निवोधत
प्रसवं सूतकं प्राहुरशौचं शावमुच्यते"

इत्यादिना प्रकरणेन वहव्यः शुद्धय अभिहिताः । एतासां शुद्धीनामिदमेव प्रयोजनं यत्प्रसवादिषु या अशुद्धयो भवन्ति तासां सम्यक्तया शुद्धिर्विधेया नोचेत् तत्संसर्गोऽन्यजनानपि अपवित्रान् कुर्यात् । अशुद्धिश्च शुद्धिविपरीता । सा च कारणेन भवितुं शक्या तच्च कारण केचन जीवाणुविशेषा एव स्युः । कार्यं दृष्ट्वा कारणानुमानमपि करणीयमेव तन्निवृत्यर्थं नोचेच्छुद्ध्यशुद्धयोः समानत्वात् शुद्धिकरणमेव व्यर्थं स्यात् । महर्षीणामादेशश्च विरुद्धोभवेत् अत अशुद्धौ कारणं जीवाणुविशेषा एव । तथा सुश्रुताचार्येण प्रसङ्गादिभिः कारणैः कुष्ठादीनां व्याधीनां नरान्नरं संक्रमणमभिहितम् तत्राऽपि सूक्ष्मजीवाणव एव कारणानि । केचन भिषज इत्थं त्तिगदन्ति यज्जीवाणवस्तमेव पुरुषं व्याधितं कर्तुं समर्था भवन्ति यस्य प्राक्कालिको दोषसंचयो भवेत्, यस्य तु शरीरं स्वस्थं भवति तस्य शरीरे प्रविष्टा अपि जीवाणवस्तं व्याधितं नकुर्वन्ति सत्यं परं जनपदोध्वंसकाले युगपदेव स्वस्था अपि प्रतीयमाना कथं रूग्णा भवन्ति । प्रायेण वहुधा दृष्टं यत्कालातीसारस्य मारकरूपेण प्रादुर्भूते सति स्वस्था अपि व्याधिता भवन्ति अत एव स्मृत्यादिषु अपवित्रवस्तुस्पर्शनं निषिद्धं प्रतिपादितम् ।

सुश्रुते अमानुषोपसर्गीयेऽपि प्रोक्तम्—

"अशुचि भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाऽक्षतम् हिंस्युर्हिंसाविहारार्थं सत्कारार्थमथापि वा"

अत्राऽपि अशुच्यादीनि कारणानि किं सूचयन्ति ?

सम्पादकीय टिप्पणी :

नव्य पाश्चात्यवैद्यके रोगाणां विशिष्ट कारणत्वेन प्रतिपादितानां "Bacilli" इति आङ्गलभाषायां परिभाषितानां, पौरस्त्यैर्नव्यैः कैश्चनायुर्वैदिकैः स्वग्रन्थेषु संस्कृते 'जीवाणुः" इति नव्या संज्ञा कल्पितेति सुविदितं विदुषाम् । ऋगादिवेदेषु आयुर्वेदप्राचीनसंहितासु च भूतरक्षः पिशाचग्रहशब्दैः पूर्वनिर्दिष्टा जीवाणव एव महर्षीणामभिमता इति स्वपक्षसमर्थकं प्रबन्धं अस्मदभ्यर्थनानुरोधेन दयया प्रकाशितवद्भ्यः वैद्यराजश्रीशङ्करलालशर्म भिषगाचार्येभ्यः समर्पयामो धन्यवादान् ।

नवीनजीवाणुपदस्य आविष्कर्त्ता श्री गणनाथसेनमहाशयेन तदनुयायिभिरन्यैश्च कैश्चिन्नव्यैः पण्डितैः । भूतशब्दस्य प्राचीनसंहिता प्रयुक्तस्य जीवाणुपरत्वेन क्वचित् क्वचित् अर्थो वर्णित एव । परं प्राचीनैः यत्र यत्र-भूतरक्षः पिशाचग्रहाः शब्दितास्तत्र सर्वत्रैव जीवाणुरेवाभिप्रेयो नान्य इति, न केवलं भूतादिपदस्य अपितु देवपदस्यापि जीवाणुरिति पक्षं स्वीयं उपन्यस्तवन्तोऽत्र निबन्धारः ।

अस्य पक्षस्योपरि भूयो विमर्शनविलेखनेन प्रीणयन्तु जिज्ञासून् भिषजः—इति परीक्षककुशलान् भिषजः सानुनयं प्रार्थयामः ।

वा० वा० न०शास्त्री

वनस्पतिगुणकर्मविज्ञानम्

वैद्य श्री वेणीमाधव जोशी शास्त्री, नागपुर

सभापति महाशयाः सभ्याश्च अत्र वनस्पति गुणकर्मविज्ञानस्य संक्षेपतः विचारसंग्रहः प्रदर्श्यंते । यथा गर्भाशयस्थशिशोः नालोत्पत्तिपूर्वं मातृशरीरेण सह सर्वतोव्याप्तः संबंधः गर्भाशयद्वारा भवति । गर्भस्थ बाह्यशरीरावरणे गर्भाशयगता अंतस्त्वक् अन्नवहस्रोतोभिः संपन्ना स्वसंसृष्टं शिशुं तदीय सर्वांगाणि अभिव्याप्य पोषणरता भवति तथैव भूमातायाः प्राणिसर्गस्य च उपजीव्योपजीवकभावः संबंधः । गर्भशिशुरिव एष प्राणिसर्गः मातृशरीरगत एव स्वपोषणं लभते । वनस्पत्यौषधिरूपाणि हरितवर्णानि अन्नवहानि स्रोतांसि स्ववपुषि निर्माय धारयित्वाच वात्सल्येन पूर्णा इयं धरणिः सकलं प्राणिसर्गं प्रीणयति प्राणयतिच । मानवशरीरस्य वनस्पतिवर्गस्यच विशेषतः अयमेवच पोष्यपोषकभावः संबंधः । वनस्पतिसर्गगुणकर्मणां इष्टश्चानिष्टश्च विविधः परिणामः मानवशरीरेणानुभूयते एव । तथाचोक्तं 'आहारसंभवं वस्तु रोगाश्चाहारसंभवः' । प्राधान्येन रोगित्वमरोगत्वं वा शरीरस्य आहाराश्रितं वनस्पत्यादि बहुविधाहारगुणकर्माधीनं भवति इत्यतः वनस्पतिगुणकर्मविचारः कर्तव्यो भवति ।

जगति जिज्ञास्यो विषयोऽनंतो यद्यप्यस्ति तथापि सामान्यरूपेण परिगणनेन वर्गीकृत्य वा ते सप्त संपद्यन्ते । ते पदार्था इत्युच्यन्ते वैशेषिक नये । तेषु सप्तसु पदार्थेषु प्राधान्येन पदार्थाभितयविचारः आयुर्वेदमनुगृण्हाति । ते द्रव्याणि गुणाः कर्माणि चेति । द्रव्याणि आयुर्वेदसमयप्रयोजनमुद्दिश्य जडानिचेतनानिचेति द्विविधानि । चेतनेष्वापि प्राणिनः वनस्पतयश्चेति द्वैविध्यम् । अत्र विशेषतः वनस्पतयः एव विचारविषयाः क्रियन्ते वनस्पतिद्रव्याणां तदीयगुणकर्मणाँच ऊहापोहार्थम् ।

अयं विमर्शः उपकरणगोचरोस्ति । उपकरणंच अधिकरणमपेक्षते । यादृशमधिकरणं तादृशः तदनुरोधिवा उपकरणविचारो भवति । अधिकरणंचात्र मानवशरीरं इत्यनुसंधाय अयं द्रव्यगुणकर्मविचारः प्रवृते भवति । किन्नाम अधिकरणम् । यश्चिकित्सा विषयः? प्राणिभोग्यानामनिष्टविकाराणां नाशनोपायश्चिकित्साअधिकरणभेदेन वैद्यकभेदो भवति । यथा गोवैद्यकमश्ववैद्यकं गजवैद्यकं वनस्पतिवैद्यकंचेति । एवं प्रतिवैद्यकं गौः अश्वः गजः वनस्पतयश्चेति अधिकरणानि विद्यन्ते । आयुर्वेदश्च अधिकरणविशेषमनुरुध्य मानववैद्यकमिति वक्तव्यः । मानवशरीरमुद्दिश्य वनस्पतिप्राण्यादीनि भौतिकद्रव्याणि, मनः बुद्धिः इत्याद्यभौतिकद्रव्याणि रागः द्वेषः इत्यादयोऽमूर्तभावाः, पंचमहाभूतानि इत्यादि बहुविधः विषयसमूहः मानववैद्यके परामृश्यते । अतः मानवः आयुर्वेदचिकित्साधिकरणम् इत्युच्यते ।

मानवस्य सर्वजगदेवोपकरणं भवति । स्वस्थं रोगोपहतं वा शरीरं यां यां अवस्थामनुभवति ताः सर्वाअवस्थाः जगदधीनाः सन्ति । मानवः सृष्टेरंश एव । तस्यामेव

तस्योत्पत्तिः जीवनं, स्थितिः, पोषणं, वृद्धिः, अपकर्षोविनाशश्च तस्य भवति । पृथ्वीजलतेजोवाय्वादीनां वनस्पतिप्राणिनां उपभोगाधीनमिदं शरीरमिति । अतः इदं सर्व मेव जगत् सर्वावस्थानुगतं शरीरमुपकरोतीति इदं जगत् उपकरणमित्युच्यते ।

स्वशरीरेतर गानवशरीराण्यपि तां तां स्वशरीरावस्थां यया कया च विधया चिकित्सकरूपेणोपचारकरूपेण वा उपकुर्वंत्येवेति तान्यपि मानवशरीराणि उपकरणेष्वंतर्भवन्ति । स्वशरीरमपि स्वोपकरणं भवति वेगावरोध वेगोदीरण कर्माणियात्मकृतानि अनिष्टं परिणाममावहन्ति, युक्ताहारविहार क्रियाश्च स्वास्थ्यं जनयन्तीति स्वात्मा स्वेतरच्च सर्वं जगत् उपकरण स्थानीयमितिमन्तव्यमिति ।

सृष्टद्रव्याणि परस्परं संबध्यमानानि अभिसंवादेन उपकार्योपकारकभावेन सहभावेनैव तिष्ठन्ति सौंदर्यं समतां वा आविष्कुर्वन्ति । कार्यान्तराणिच विचित्राणि सहकारितया जनयन्तीति केचिन्मन्वानः सौंदर्यवादिनो विश्वसर्गेऽनुकूलसंबंधमेव पश्यन्ति । तदेतन्नसमर्थयितुं शक्यते । विरुद्धोऽविरुद्धश्च संबंधः सृष्टपदार्थेषु प्रतीयते । अनुकूलभावं प्रतिकूल भावं च तत्र तत्र पदार्थयोर्मध्येऽनुभूयते । वध्यघातकभावश्च केषुचित् प्रतीयते । नदीसरस्तडागादयो जलाशया रसपुष्ठाश्च वनस्पतयो भास्करप्रखरदीधितीभिः निदाघे शुष्यन्ति । वायुः औष्ण्यमपकंर्षति । प्रतिकूलं संबंधस्य परिहारेण अनुकूलसंबंधस्यच स्वीकारेण जीवच्छरीराणि आत्मरक्षणार्थं यतन्ते । प्राणवन्तः सृष्टपदार्थाः स्वशरीरगतं औष्ण्यपरिमाणं स्वात्मानुकूलमर्यादामेव रक्षयन्ति सर्वत्रौष्ण्यौत्कर्षेऽपि जीवनानुकूलमेव औष्ण्यपरिमाणं मर्यादीकृत्य जीवितुं जीवच्छरीराणि यतन्ते । बुद्धिमन्तः प्राणिनश्च प्रतिकूलसंबंधपरिहारार्थं अनुकूलानिसाधनानि अन्वेषयन्ति विरचयन्तिवा यथा औष्ण्यातिरेकात् स्वशरीररक्षणार्थं तरुछायां, वनं, दरीं, गुहां वाश्रयन्ति, गृहाणि अन्तर्गृहाणि गभीरगृहाणि, जलमंदिराणिच विरचय्य औष्ण्याघातं परिहरन्ति । शरीरगतौष्ण्याभिवृद्धेः परीहारश्च शरीरघातुः स्वेदमुत्पाद्य औष्ण्यसमतां साधयति । जीवसृष्टौ सृष्टेर्विनाशकरो नैसर्गिकः पांचभौतिकः पदार्थविचयो महत्तरोऽतीवगरीयान् जीवसृष्टेरभिवाय विनाशायच सततं सन्नद्धा अविरतं प्रवर्तमाना क्षणमपि न विराममुपयाति । जीवच्छरीरं च लघीयोऽपि सूक्ष्मतरमपि स्वजीवशक्तेः प्रभावेण स्वात्मरक्षणं कर्तुं प्रभवति, नाऽभिभवति च । एवंच जीवसृष्टेः जडसृष्टेश्च परस्परसंबंधः प्राधान्येंन विरुद्धोस्ति । जडसृष्टिर्जीवानां विनाशाय सन्नद्धतरेव दृश्यते । जीवश्च प्रतिकरोति, साफल्यमपि प्राप्नोति ।

विजातीय जीवश्रेणयः सामर्थ्यतारतम्येन वर्तमानाः विग्रहावस्थायां स्थिताः परस्परमभिभवितुं घातयितुं भक्षयितुंवा नित्यं प्रवर्तमानाः उपलभ्यन्ते, जीवोजीवस्य जीवनमिवि शास्त्रमेतदेव सूचयति । जीवजातयः यथा परस्परं विरुध्यन्ते तथा तस्यां तस्यां जीवजातौ समाविष्टाः व्यक्तयोऽपि कदाचिद्विरुध्यमानाः कदाचिच्च सहर्कारं कुर्वाणा दृश्यन्ते ।

प्राणिनः अन्ने स्वत्वं स्थापयितुं यतन्ते । अन्नं स्वायत्तं कृत्वा सर्वथानुकूलमत्वा भुंजन्ति । परंतु तदाहाररूपमन्नं न नियमेनमित्रत्वेन वर्तते । अपरिमितं सेवितमन्नं असहत्वं गौरवं जाड्यं वा करोति वेदनां वा जनयति वमनंवा भवति । तत्सेवितमन्नं शरीरस्य शत्रुरिव प्रवर्तते । परिमितंच सेवितं आनुकूल्येन प्रवर्तते । एतादृशएव सर्वेषामुपकरणानां जीवच्छरीरेण सह संबंधो मन्तव्यइति ।

ईदृश एव उपकार्योपकारकभावरूपः दूष्यदूषकरूपश्च शरीरान्तर्गत घटकत्रयस्याऽपि द्विविधः संबंधो ज्ञातव्यः । आहाररूपेण शरीरगतानि द्रव्याणि पचनक्रियया विभागमापद्यन्ते । विभक्तः कश्चिदंशः मलरूपः उपसृज्यते शरीरोपकारकश्चांशः शरीरे संचीयते । स संचितः उपकारकः 'प्रमाणाधिक्येन शरीरेस्थित्वा बाधको भवति । तस्य उष्णतैक्ष्यादि गुणानां तीव्रत्वे सति ते त्रासयन्ति शरीरम् । स समप्रमाणश्च शरीरगत उपयुक्त आहारांशः समत्वादेव कारणात् शरीरं पुष्णाति वर्धयतिच । तस्य प्रमाणेन न्यूनत्वेऽपि बाधां जनयति । सोऽयं शरीरगत उपकारक अंशः उपकारकत्वधर्मयुतोऽपि प्रमाणसाम्यवैषम्याभ्यां आनुकूल्यं प्रातिकूल्यंच यथायथं भजते । प्रमाणवैषम्ये सतिदूषकत्वात् त्रासजनकत्वाद्वा बाधजनकाद्वा स शरीरघटक आहारांशः दोष इति अभिख्यातः शास्त्रकारैः । प्राधान्येन व्यपदेशः इति न्यायेन अस्वास्थ्यकारणजिज्ञासायाः संदर्भे तेषां शरीरधारकत्वेऽपि दोष इति संज्ञाकृता शास्त्रकृद्भिः । अस्वास्थ्यनिवृत्तिरेव प्रधानप्रयोजनमितिकृत्वा अस्वास्थ्यनिवृत्तिरुद्देशप्रधानभूतेशास्त्रे ते अमित्राः शत्रवः वा इति कथिताः । श रीरगतत्वात् नित्यसान्निध्येन 'नित्यं सन्निताऽमित्रम् इत्युच्यते ।

उपकरणराशिर्हि विश्वात्मकः पुनर्द्विधा विभज्यते परिहार्यो दुष्परिहार्यश्चेति बलतारतम्यमपेक्ष्य । अधिकरणं शरीरं पुरुषो वा यं उपकरणराशिमधिष्ठातुं स्वायत्तीकर्तुं स्वेच्छातंत्रंवा कर्तुं शक्नोति तस्य बाधकत्वाबाधकत्वविवेके सति स परिहार्योराशिरिति ख्यायते । यत्र यदा येनांशेन यः परिहार्यराशिकतः पदार्थः बाधकत्वेन ज्ञातो भवति तं पुरुषः तदा परिहर्तुं शक्नोतीति परिहार्य संज्ञाकरणमुपपद्यते । अस्त्यन्यः उपकरणराशिः यदन्तर्गतो बाधकः पदार्थः परिहर्तुं इष्टोऽपि तं परिहर्तुं पुरुषः वहुधा परिहर्तुं न शक्नोति यदाच शक्नोति तदा महान्तं यत्नं आकस्मिकी परतंत्रा साधनानुकूलताच दैवाद्यदि संपद्यते तदैव परिहर्तुं शक्नोति इति दुष्परिहार्य इति संज्ञा कृता, स दुष्परिहार्यो राशिश्चतुर्विधो निर्दिष्टः । वातोजलं कालोदेशइति अत्र उत्तरोत्तरं दुष्परिहार्यत्वं गरीयो भवति । वाताज्जलं जलाद्देशं देशात्कालं स्वभावतः । विद्याद्दुष्परिहार्यत्वाद्गरीयस्तरमर्थवित् ।

उपकरणराशेः परिहार्यदुष्परिहार्यभेदभिन्नस्य शरीरेण साक्षात् संबंधः योग इवि कथ्यते । दुष्परिहार्यद्रव्यराशेः योगस्तु नित्योऽस्ति शरीरेण । परिहार्य द्रव्यराशेः संबंधस्तु ऐच्छिको भवति । योगश्च सुखदुःखकारणम् ।

सुखदुःखे च इंद्रियाणामर्थानांच समुच्चित्य परस्परं संसर्गात भवतः । अतएवोक्तम् नेंद्रियाणि नचैवार्थाः सुखदुःखस्य हेतवः । हेतुस्तु सुखदुःखस्य योगो दृष्टश्चतुर्विधः विषयसंसृष्टाणींद्रियाण्येव सुखं दुःखं वा जनयन्ति । परस्परमसंसृष्टानां इंद्रियाणामर्थानांच सान्निध्येऽनसुखदुःखोद्भवः सन्निहिदपिहिदगंधवत् । तथाचोक्तम्—सन्तींद्रियाणि सन्त्यर्थाः योगो नच नचास्तिरुक् । न सुखं कारणं तस्मात् योग एव चतुर्विधः ।

अयं इंद्रियाणां योगः समहीनमिथ्याऽतियोगभेदैः चतुर्विधो भवति । समः सुखहेतुः अन्येच दुःख हेतवः । अत्र सुखमारोग्यं दुःखं च रोगः । तथा चेदमुक्तं कालार्थकर्मणां योगो हीनमिथ्यातिमात्रकः । सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम् । सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेवच ।

अथद्रव्यगुणकर्माण्युच्यन्ते । अधिष्ठानभूतशरीरेण उपकरणस्य योगेसति य उपकर-

णपरिणाम उपपाद्यते स गुणकर्मभ्यां प्रयुक्तः। शास्त्रे प्राधान्येन द्रव्याश्रिता गुणाः विंशतिः परिगणिताः गुरुमंदहिमस्निग्धश्लक्ष्णसाँद्रमृदुस्थिराः। गुणाः सुसूक्ष्मविशदाः विंशतिः सविपर्ययाः। एते गुणा अधिष्ठान द्रव्ये उपकरण द्रव्येच उभयोस्तिष्ठन्ति। अधिष्ठान द्रव्यस्य शरीरस्य गुणानां साम्यं वृद्धिः क्षयश्च उपकरणगुणानुसारेण भवति। तथाचाहुः 'गुणाय उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा। स्थान (साम्य) वृद्धिक्षयास्तस्माद्देहिनां द्रव्यहेतुकाः। अत्र द्रव्यपदमुपकरणपरम्।

सचेतनमचेतनं चेति द्विविधं द्रव्यमुपलभ्यते। भूतसूक्ष्मं केवलं भूतमिति अभिहितं भवति। यदा केवलं सूक्ष्मं भूतं भूतांतरानुप्रविष्टं इंद्रियग्राह्यगुणवत् संजायते, साक्षात् प्रत्यक्षविषयो भवति तदा महाभूतमिति अभिधीयते। शास्त्रांतरादयं अन्यविधः संज्ञाप्रकारः इति न विस्मर्तव्यम्। सचेतनानि शरीराणि च पांचभौतिकान्यपि पंचमहाभूत विकारा इत्युच्यन्ते। शरीरघटकाऽपि तथैवाऽभिधीयन्ते शास्त्रकारैः। अतएव शरीरं पंचमहाभूतविकारसमुदायः इत्यपिवक्तुं, युज्यते। इदमेवाभिप्रेत्य कथितं "तत्र शरीरं नाम... पंचमहाभूतविकारसमुदायात्मकं समयोगवाहि।" च-शा-६।४ गर्भोप्येवमेव विवृतःयथा एवमनयायुक्त्या पंचमहाभूतविकारसमुदायात्मको गर्भ...इति। शरीरंच दोषधातुमलसमुदायात्मकम्। दोषधातुमलाश्च पंचमहाभूतविकाराः। यथा च अष्टांगसंग्रहे, तत्रयदामपक्वाशयमध्यगं पंचमहाभूतात्मकत्वेऽपि तेजोगुणोत्कर्षाक्षपितसोमगुणं...पित्तमन्नं पचति। चक्रदत्तोप्याह पंचानां महाभूतानां विकारा रसादय इति।

अथ अधिष्ठानपुरुषोपकरणपुरुषयोः साम्यमुच्यते। तथाच शास्त्रं एवमयं लोकसंमितः पुरुषः। यावन्तोहिलोके मूर्तिमन्तो भावविशेषाः तावन्तः पुरुषे यावन्तः पुरुषेतावन्तो लोकेइति। च-शा-१३-४ एतस्मादनुमीयते मानवभिन्नाः लोकगताः उपकरणरूपाः प्राणिवनस्पत्यादयः ये पदार्थाः तेषां मानवपुरुषेण साम्यं उपलभ्य पुरुषत्वमस्तीति। तत्र च मानवपुरुषेण यत् साम्यमुपलभ्यदेतत्तरतमभावेन तिष्ठति। जडद्रव्यात् वनस्पतौ मानवेन सह अधिकं साम्यं। वनस्पतितः प्राणिवर्गे मनुष्येणसह सात्म्योत्कर्षः। तथाच रसरक्तमांसमेदादयो धातवः प्राणिसर्गगताः वनस्पत्यपेक्षया मानवपुरुषेण सह अधिकं साम्यं भजन्ते इति। मानवेन स्वीकृतः प्राण्याहारः वनस्पत्याहारापेक्षया उपकारातिशयं करोति।

अन्यच्च वनस्पतिप्राण्यादीनां घटकीभूताः रसरक्तादिधातवः प्रत्येकं आहारकर्तृं मानवपुरुषगतं ससदृशं तं तं धातुं पुष्णन्ति उत्कर्षातिशयेन इतरधातूनामपेक्षया। एवमेवाहुः "एवमेवसर्वधातुगुणानां सामान्ययोगाद्वृद्धिः विपर्ययाद्ह्रासः। तस्मान्माँसमाप्यायते मांसेन भूयस्तरमन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः, तथा लोहितं लोहितेन, मेदोमेदसा वसावसया, अस्थितरुणास्थ्ना, मज्जामऽज्ञा शुक्रं शुक्रेण, गर्भस्त्वामगर्भेण" च. शा. १०।६।

यद्यपि वनस्पतिषु प्राणीभिर्न्यूनतरं साम्यं, तथापि येषां पंचभूतविकाराणां मानवशरीरघटकानां पोषणं अभिमतं भवति तेषां सर्वेषां प्राणिशरानुकूल्येन संस्थितिः वनस्पतिशरीरेष्वनुभूयते, तस्मादेव वनस्पतयः प्राणिशरीराणां मानवशरीराणांच सम्यक् पोषणाय प्रभवन्ति। एतदेव अभिसंधीय रोहिण्याः वनस्पतेः महिमानं धातुसंधानसामर्थ्यरूपं अथर्ववेदः स्तौति 'संते मज्जा मज्ज्ञा भवतु

समुते परुषाः परुः। संते मांसस्य विस्त्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु। मज्जा मज्ज्ञा संधीयतां चर्मणाचर्म रोहतु। असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु। लोम लोम्ना संकल्पया त्वचा संकल्पया त्वचम्। असृकते अस्थि रोहतु छिन्नं संधेत्द्योषधे। अथर्ववेद १२।४।

एतत्सर्वमभिप्रेत्य धातुवृद्धिनियमउक्तः वृद्धिः समानैः सर्वेषामिति। विपरीदगुणैर्महाभूतविकारैः युक्तस्य वनस्पतिप्राण्याद्याहारस्य उपादाने स्वगतविकारगुणानां विपर्ययः भवति। विपर्ययोनाम क्षयः ह्रासो वा। शुष्कमांसस्य वनस्पतेराहारेण आहारकारिणः पुरुषस्याऽपि मांसं स्वमांसपुष्टि जहाति। शुष्कः संपद्यते। अनेन च एतदपि निर्णीयते शरीरे उपकरणविकाराः पचनोत्तरं शरीरगतसमानमहाभूतविकारेषु प्रभवन्ति स्वानुरूपं कार्यं च कुर्वन्ति। उपकरणगतः तत्तद्दोषः तत्तद्धातुः तत्तन्मलः तत्तदवयवः तत्तदिंद्रियं अधिष्ठानशरीरे स्वसमानं तत्तत् प्राप्य स्वानुरूपं कार्यं कुरुते।

अयं विचारः सात्म्यसिद्धान्तमनुगृण्हाति उपकरणसाम्याधिक्ये समानविकारधर्मैः उपकृतः पुरुषः उपकरणे सात्म्यमनुभवति अल्पीयसि काले। एतत्वत्र अवधार्यं, विसदृश पंचमहाभूतविकारोऽपि गुणसाम्येन विसदृश विकारपोषको भवति। यथा दुग्धस्य सर्पिषश्च शुक्रसदृशस्यगुणसाम्येन शुक्रवृद्धिकरत्वं दृष्टम्। विकारसमानत्वाभावेऽपि दुग्धसर्पिषोः समानगुणभूयिष्ठादेव शुक्रवृद्धिकरत्वं शास्त्रकारैरभिहितम्। तथा च शास्त्रम्। तस्य समानगुणाः (सर्वधातुगुणानां सामान्य योगात्) स्युः आहारविकारा असेव्याश्च, तत्र समानगुणभूयिष्ठानामन्यप्रकृतीनामप्याहारविकाराणामुपयोगःस्यात्। तद्यथा शुक्रक्षये क्षीरसर्प्रिषोरुपयोगः। च०शा०१७।६

समानो महाभूताविकारः उपकरणगतः समानगुणः इत्युच्यते यतः मांसं मांसेन समानगुणामिति। विसदृशोमहाभूतविकारश्च गुणसाम्येन विसदृशविकारपोषकः समानगुणभूयिष्ठ इत्युच्यते। यथा दुग्धं सर्पिर्वा शुक्रेणसमानगुणभूयिष्ठामित्युच्यते।

एतानि समानगुणानि समानगुणभूयिष्ठानि च द्रव्याणि यानि शरीरहितमाचरन्ति तानि एकान्तहितकराणीति वदन्ति। एतत्तु अनुसंधेयं यत्समानगुणभूयिष्ठमपिविपरीतगुणसामर्थ्ययुक्तं भवेत् तदेकान्तहितकरं न वक्तव्यम्। तत् हिताहितकरद्रव्येषु परिगणनीयम्। किंच यत् विपरीतगुणभूयिष्ठ भवति तद्गुणाश्च तीव्राः सन्ति तद्रव्यं एकान्ताहितकरं द्रव्यमिति वक्तव्यम्। एतदेव विषमित्युच्यते।

हितकरद्रव्यजातीनां साक्षादाहारार्थमुपादानाय केवलं हितकरत्वधर्मेण प्रवृत्तिर्नोचिता। तत्रास्ति विवेकः। एतदनुसंधायैव शास्त्रे उक्तम्। 'महाशरीरेषु अल्पशरीराः अल्पशरीरेषु महाशरीराः प्रधानतमाः। स्त्रियश्च तुष्पात्सु, पुमांसो विहंगेषु, एवं एकजातीयानां महाशरीरेभ्यः कृशशरीराः प्रधानतमाः। (क्रमशः)

मलेरिया शत्रु—सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। मूल्य आधा पौंड ६) रु० **सफेद कोढ़**-की पेटेन्ट दवा—मूल्य ५) रुपया दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर तथा हकीम धनमान कमा रहे हैं। विवरण पत्र मुफ्त मंगाकर देखें।

वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन

मु० पो० मंगरूलपीर, जि० आकोला
(बरार) म० प्र०

आयुर्वेद लोक

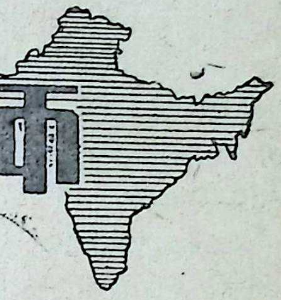

उत्तर प्रदेश की स्वास्थ्य योजना

उत्तर प्रदेश ब्रिटेन के समान स्वास्थ्य योजना काम में लाना चाहता है। इस योजना के अनुसार रोगीको चिकित्सक की फीस और दवा का दाम नहीं देना पड़ेगा। चिकित्सक रोगी की परीक्षा कर नुसखा लिख देगा, औषधि विक्रेता से उसे दवा मिल जायगी। दाम सरकार चुकाती रहेगी। पहले कुछ जिलों में परीक्षार्थ यह प्रयोग जारी होगा। सफल होने पर अन्यत्र विस्तार किया जायगा। स्वास्थ्य रक्षा और चिकित्सा सम्बन्धी खर्च द्वितीय पंचवर्षीय योजना में दूना हो जावेगा। इसमें ६ अरब ७० करोड़ रुपयों का खर्च होगा। प्रत्येक पांच मील की दूरी पर औषधालय या अस्पताल होगा। ५०० मातृसदन और शिशु केन्द्रों की भी स्थापना होगी। प्रत्येक जिले के अस्पताल आधुनिक यन्त्रोपकरणों से सज्जित कर दिये जायँगे। ग्रामीण क्षेत्रों में सफाई की व्यवस्था होगी। मलेरिया की रोक और बच्चों के स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जायगा। सातवीं कक्षा तक के बालकों को स्कूल में प्रतिदिन पाव भर दूध राज्य की ओर से दिया जायगा।

वैद्यों हकीमों को सहायता

आयुवद और यूनानी को प्रोत्साहन देने के लिये उत्तर प्रदेशीय सरकार देहात में बस कर वैद्यक करनेवाले वैद्यों और हकीमों को सहायतार्थ पहले वर्ष ६०), दूसरे वर्ष ४०) और तीसरे वर्ष २०) मासिक, सहायता देना चाहती है। प्रथम दो वर्ष तक सामान, औषधि आदि के लिये ५०) मासिक, फर्नीचर आदि के लिये २५०), औषधि संग्रह के लिये ३५०) तथा इसके बाद औषधि के लिये २५०) मिलेगा।

आयुर्वेद अधिक वैज्ञानिक

उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री डाक्टर संम्पूर्णानन्द जी ने लखनऊ में घोषित किया है कि एलोपैथिक पद्धतिकी अपेक्षा आयुर्वेदिक पद्धति अधिक वैज्ञानिक है। अयुर्वेदिक यूनानी चिकित्सकों का सम्मेलन चार दिनों तक हुआ, उसीके उद्घाटन में आपने यह बात कही। आपने कहा कि आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सकों को चिन्ता नहीं करनी चाहिये। अपनी हीनता की भावना त्यागकर आत्मविश्वास उत्पन्न करते हुए उन्हें ज्ञानार्जन करना चाहिये। प्रान्तीय सरकार की नीति एलोपैथी और देशी पद्धति दोनों को सुविधा प्रदान करना है।

आयुर्वेदिक इन्जैक्शन्स को राज्य मान्यता प्राप्त

इधर लगभग तीन वर्षों से झाँसी के आयुर्वेद बृहस्पति डा० राधागोविन्द मिश्र

डी० एस० सी० ए० द्वारा आविष्कृत आयुर्वेदिक इन्जैक्शनों का प्रश्न विवादग्रस्त बना हुआ था। विभिन्न स्थानों पर प्रचलित नकली आयुर्वेदिक इन्जैक्शनों से यह समस्या उत्पन्न हो गई थी। हाल ही में उत्तर प्रदेश सरकार के स्वास्थ्य विभाग ने आयुर्वैदिक पद्धति पर निर्मित और प्रयुक्त होने वाले इन्जैक्शनों को भी ड्रग्स एकट के अन्तर्गत लेकर उन्हें राजमान्यता देदी है और निर्माताओं को लाइसेन्स देना आरंभ कर दिया है। आयुर्वेदिक क्षेत्र में इस समाचार से हर्ष और सन्तोष हुआ है। और इस प्रकार आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में इन्जैक्शन चिकित्सा का एक नया अध्याय जुड़ गया है।

दिल्ली में धमार्थ चिकित्सालय का उद्घाटन

१२ अगस्त १९५५ को दुआ बिल्डिंग बहादुर गढ़ रोड दिल्ली में जनता धमार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय का उद्घाटन बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। श्रीमती सविता बहिन म्युनिस्पिल कमिश्नर ने आयुर्वेद के पक्ष में बड़ा ही ओजस्वी भाषण देकर इसका उद्घाटन किया। वैद्य गुरुदत्त जी एम० एस-सी० तथा पं० रामगोपाल शास्त्री वैद्य भूषण ने भाषण देकर इस बात पर जोर दिया कि आयुर्वेद की पद्धति ही परम लाभकारी है। और इस समय भी भारत के करोड़ों नर-नारियों को स्वास्थ्य प्रदान कर रही है। दोनों वैद्य महोदयों ने श्री बनवारी लाल जी दुआ तथा अन्य दानी महानुभावों का हार्दिक धन्यवाद किया। इसके पश्चात श्री बनवारी लाल जी ने सब वक्ताओं का धन्यवाद किया और कार्यवाही समाप्त हुई। इस चिकित्सालय के प्रधान वैद्य कविराज कृष्ण गोपालजी एम० ए० नियुक्त हुये हैं।

श्री हरनन्दराय रूइया आयुर्वेद कालेज, रामगढ़ (सीकर) का दुःखद अवसान

रामगढ़ जिला सीकर (राजस्थान) का उपर्युक्त सुप्रसिद्ध कालेज दिनाङ्क १ मई १९५५ को ग्रीष्मावकाश के लिए बन्द हुआ था, वह सदा के लिए ही बन्द हो गया। इस सम्बन्ध में मैंने अब तक कोई भी वक्तव्य नहीं दिया था। किन्तु कालेज के संचालक सेठ श्री राधाकृष्ण जी रूइया बी. ए. तथा उनके लघुभ्राता सेठ श्री सुशीलकुमार जी रूइया मेरे उपनयन संस्कार के शिष्य हैं और अब तक मैंने उनका सदैव हितचिन्तन किया है। अतएव उनकी निन्दा मुझे सह्य नहीं। इस लिए यह स्पष्टीकरण प्रकाशित किया जाता है।

उक्त कालेज माघ १२ सं० १९६१ से पृथक् दो पाठशालाओं के रूप में, का. कृ. धन्वन्तरित्रयोदशी सं० १९७३ से (व्याकरण, साहित्य और आयुर्वेद विषयों के) संस्कृत कालेज के रूप में और १५ जुलाई १९४७ से आयुर्वेद कालेज के रूप में कार्य कर रहा था। बिजली, पानी के नल, सुन्दर फर्नीचर तथा मुफ्त नौकरों से युक्त छात्रावास के साथ रसायनशाला, अन्तर्द्वारिक चिकित्सालय (इनडोर अस्पताल), बहिर्द्वारिक चिकित्सालय (आउटडोर), ग्रामसेवक चल औषधालय, औषधोद्यान, भेषजप्रदर्शनी, विक्रय विभाग, गवेषणा और ग्रन्थलेखन, पुस्तकालय, शवच्छेदनालय, अनात्मीय शारीर और क्रियाशरीर, शल्यविभाग, प्रसवागार, साइंस लेबोरेटरी, पैथोलोजिकल लेबोरेटरी, आदि सुसम्पन्न और सुव्यवस्थित विभागों से युक्त यह कालेज राजस्थान में सर्वप्रथम गणनीय संस्थाओं में से एक था। स्वर्गीय सेठ रामनारायण जी रूइया जे. पी. और स्वर्गीय सेठ

सूरजमल जी रूइया ने अपने पिता योगीराज सेठ हरनन्दराय जी रूइया की स्मृति में इसे संस्कृत और आयुर्वेद की अभिवृद्धि के लिए संचालित किया था। सन् १९२० से यह जयपुर सरकार तथा विद्यापीठ से रिकोग्नाइज्ड था। सन् १९२३ में १०००००) एक लाख रुपये का स्थायी कोष रजिस्टर्ड ट्रस्ट के अधीन कर इसकी नींव स्थिर की गई थी, जिसके व्याज से तथा सेठों के दूसरे ३० लाख के ट्रस्ट के अनुदान से इसका कार्य चल रहा था। दो वर्ष से २५ प्रतिशत सरकारी सहायता भी मिल रही थी। कालेज के निजके दो भवन थे। इस प्रकार के सुव्यवस्थित कालेज से संस्कृत और आयुर्वेद की बहुत बड़ी सेवा अब तक हुई। हजारों छात्रों ने वहां शिक्षण पाया और एक हजार से कुछ ऊपर परीक्षोत्तीर्ण हुए। स्नातक बने हुए विशिष्ट विद्वानों और वैद्यों की संख्या ५०० से कम न होगी, जो भारत के कोने कोने में प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं। अनेक स्नातक कालेजों के प्रिंसिपल, प्रोफेसर, प्रधान चिकित्सक, डाक्टर, न्यायाधीश, तहसीलदार, जिलाधीश, वकील आदि हैं और इस कालेज को अपना विद्यातीर्थ मानते हुए संचालकों का पुण्य और यश बढ़ा रहे हैं। मैं स्वयं, वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के मालिक वैद्यराज श्री रामनारायण जी, श्री विद्याधर जी शास्त्री एम. ए. आदि इसी संस्था के स्नातक हैं। शिक्षण के अतिरिक्त चिकित्सा द्वारा जनता की पर्याप्त सेवा इस संस्था द्वारा हो रही थी। १८-१९ हजार रोगी यहां से वर्ष भर में आरोग्य और जीवन का लाभ लेते थे। ८-१० की औसत से इनडोर वार्ड में कठिन से कठिन रोगग्रस्त लोगों को लाभ हो रहा था। ५०-६० पर्पटी के कल्प पिछले पांच वर्षों में कराये जा चुके थे। अच्छे से अच्छे योग्य विद्वान् वैद्यों द्वारा गवेषणाबुद्धि से समस्त कार्य हो रहा था और आशा थी कि वह कालेज आयुर्वेद के पुनरुत्थान में कंधे से कंधा भिड़ा कर कार्य करने में किसी से पीछे न रहेगा। परन्तु दुर्भाग्यवश सहसा जैसे हार्ट फैल होता है, वैसे संस्था का कार्य ठप्प हो गया। ता० १४ मई ५५ को सूचना मिली कि संस्था को इण्डस्ट्रियल ट्रेनिंग सेण्टर के रूप में परिवर्तित किया जायगा।

इंण्डस्ट्रियल ट्रेनिंग सेण्टरों की देश को आवश्यकता है और सेठ लोग ऐसी संस्था पृथक् भी खोल सकते थे। संचालक लोग सुशिक्षित, प्रसिद्ध कोट्याधीश और उदार हैं। उनकी ओर से रामगढ़ में ही इस कालेज के अतिरिक्त इण्टर कालेज और कन्या मिडिल स्कूल वे चला रहे थे। केवल बात यही जान पड़ी कि सेठों को अपने कारोबार से देश में आने का अवकाश ही नहीं मिलता है। ८-१० वर्ष से कभी कभी उनके आने का संयोग होता हैं। इस संस्था के वर्तमान समृद्ध रूप को तथा हमारे अथक परिश्रम को उन्होंने कभी नहीं देखा। कुछ लोगों ने उन्हें सुझाया कि वर्ष भर में १६-१७ हजार रुपये आयुर्वेद कालेज में ३० छात्रों पर खर्च होते हैं, इसकी अपेक्षा किसी इण्डस्ट्री का काम सिखाया जाय तो बहुत से छात्रों को लाभ होगा। सेठ लोग इन सलाहों से प्रभावित हो गये और मुझे या अन्य किसी आयुर्वेद भक्त को सूचित किए बिना ही कालेज को बन्द करने का निर्णय कर इण्टर कालेज के प्रिंसिपल श्रीराधेश्याम जी मिश्र से इण्डस्ट्रियल ट्रेनिंग सेन्टर की योजना उन्होंने बनवा ली। आयुर्वेद कालेज को जीवित रख कर भी इण्डस्ट्रियल ट्रेनिंग सेण्टर खोलने की प्रार्थना करते हुए रामगढ़, फतह-

पुर, रतनगढ़ आदि की जनता ने सैकड़ों हस्ताक्षर करा करा कर मेमोरेण्डम भेजे तथा अन्य भी उद्योग हुए, परन्तु सफलता नहीं मिली। कुछ संस्थाओं के संचालकों ने फर्नीचर तथा सामान अपनी संस्थाओं में ले जाने तथा कालेज के रुपयों से अपने छात्रों को वृत्ति देने की भी प्रार्थनाएं कीं। क्या उत्तर मिला तथा उन्हें कितनी सफलता मिली, भगवान् जाने। सुना गया है कि फर्नीचर इण्टर कालेज को ऋण के रूप में दिया गया है तथा २ हजार पुस्तकों का सुन्दर पुस्तकालय भी उसे दे दिया गया है।

यह सब होते हुए भी अभी तक कुछ नहीं बिगड़ा है। फर्नीचर और पुस्तकालय वापिस आ सकता है। शेष व्यवस्था अभी तक ज्यों की त्यों पड़ी है। आयुर्वेद की रक्षा करने वाली अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन (कांग्रेस) जैसी संस्थाओं को इस आयुर्वेद निधि की रक्षा के लिए प्रयत्न करना चाहिए। सेठ लोग समझदार हैं, उदार हैं और लक्ष्मी की उन पर कृपा है। यदि उनके ध्यान में आ जाय तो कोई असंभव वस्तु नहीं हैं। वे इसे पुनः चालू कर सकते हैं। रिकोग्नीशन और सरकारी सहायता भी पुनः प्राप्त हो सकती है। मैं पृथक् रह कर भी इसकी सेवा में सहयोग देने को उद्यत हो सकता हूँ। जहाँ सरकारी सहायता के साथ धनी मानी लोगों से सहायता लेकर आयुर्वेद के अभ्युत्थानार्थ हमारे सार्वदेशिक और सामूहिक प्रयत्न हो रहे हैं, वहाँ पचास वर्ष पुरानी, हजारों वैद्यों की श्रद्धाभाजन तथा सुव्यवस्थित एक संस्था का अकारण ही उठा दिया जाना बड़े ही दुर्भाग्य का विषय है। आशा है हमारी आयुर्वेद कांग्रेस तथा इसके कर्णधार इधर तत्परता से कार्य करेंगे।

वैद्य हनुमत्प्रसाद शास्त्री साहित्यायुर्वेदाचार्य, प्रिंसिपल उक्त कालेज।

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन के चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन का विवरण।

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन ४-५ जून को चम्बा में बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। यह अधिवेशन सम्मेलन के इतिहास में अद्वितीय है। चम्बा नगरी रावी नदी के तट पर बसी चम्बा नरेश की राजधानी थी। अब यह जिला का केन्द्र है। प्राकृतिक दृष्टि से यह स्थान हिमाचल प्रदेश में एक रम्यतम स्थान है।

अधिवेशन के मण्डप का आयोजन चम्बा नरेश के विशाल भवन में किया गया था। यह एक राजस्व भवन है जिसमें इस स्टेट के दरबार हुआ करते थे।

इसमें नगरपालिका सरकारी व अन्य जनसाधारण का सहयोग प्राप्त था। इसका उद्घाटन श्री राजा बजरंगबहादुर सिंह, उपराज्यपाल, हिमाचल प्रदेश ने किया और सभापतित्व श्री ओमदत्त, आचार्य, दयानन्द आयुर्वेदिक महाविद्यालय जालन्धर ने किया। इनके अतिरिक्त इस अधिवेशन में श्री पं० पद्मदेव, गृहमन्त्री हिमाचल प्रदेश, जिला के सब उच्चाधिकारी, नगरवासी, पंजाब व पैप्सू के वैद्यगण तथा हिमाचल के सब जिलों के प्रतिनिधियों ने बड़ी संख्या में भाग लिया।

सर्वप्रथम श्री भीमदत्त मन्त्री, हि० आ० सम्मेलन ने सम्मेलन की ओर से उपराज्यपाल महोदय को पढ़कर मानपत्र भेंट किया जिसके उत्तर में आपने मधुर व जनप्रिय शब्दों में आयुर्वेद की गरीयमा का वर्णन करते हुए कहा :

"आयुर्वेद संसार में एक पुरातनतम चिकित्सा पद्धति है। इस विज्ञान में बड़ी २

औषधियों का उल्लेख है। हमारा सारा परिवार सदा से आयुर्वेद चिकित्सा ही कराता है विशेषतया बच्चों का इलाज तो किसी दूसरे चिकित्सक से कराते ही नहीं। इसमें परिश्रम और अन्वेषण की आवश्यकता है। यह ठीक है कि एलोपैथी को २०० वर्षों से राज्याश्रय प्राप्त है जिससे वह आज बढ़ा चढ़ा दिखाई देता है। जबकी इसके विपरीत आयुर्वेद को इतने ही दिनों से पछाड़ा गया है। वनस्पतियां जिनसे दवाइयां तैयार की जाती हैं विशुद्ध नहीं मिलतीं तथा पुरानी होने के कारण गुणहीन होती हैं। इसके सुधार की आवश्यकता है।

स्वागताध्यक्ष श्री पं० पद्मदेव जी, गृहमन्त्री हिमाचल प्रदेश, ने अपने भाषण में अपने भविष्य के कार्यक्रम में त्रिसूत्री योजना का उल्लेख किया जो इस प्रकार है—

१. आयुर्वेद की पूर्ण शिक्षा का प्रबन्ध २. औषध निर्माण सुधार तथा ३. राज्यसत्ता का प्राप्त करना।

श्री ओमदत्त आचार्य का अध्यक्षीय भाषण—बड़ा प्रभावशाली तथा सारगर्भित रहा।

श्री देवगुण कन्सरवेटर का भाषण—आपने कहा—एक ही वनस्पति के कई नाम हैं और एक नाम कई वनस्पतियों के लिए प्रयोग किया जाता है तथा एक चीज के बहुत भेद हैं। इन सबका ध्यान व ज्ञान उस काम के लिए कितना आवश्यक है इसका किन शब्दों में वर्णन करूं यह आप स्वयं विचार करें। जो औषधियां पन्सारी लोग रखते हैं वे इतनी गलत और दूषित हैं कि उनसे बनी दवाईयां स्वतः ही गुणहीन होती हैं। जब तक इसका समुचित सुधार नहीं होता आयुर्वेद के चमत्कार सीमित होंगे। इससे यह अनुभव होता है कि वनस्पतियों का संग्रह पन्सारियों द्वारा नहीं होना चाहिए अपितु एक विशेषज्ञ के द्वारा होना चाहिए। आपने बहुत सी वनौषधी का परिचय दिया। आपने इस बात पर भी प्रकाश डाला कि वनौषधियों के ग्रहण काल की बड़ी महत्ता है। जब पूर्ण रसवीर्य सम्पन्न वनस्पति हो तो उस समय उनसे यथेच्छित मान में एल्कलायड प्राप्त हो सकता है। आपका भाषण अत्यन्त उपयोगी था।

प्रस्ताव—आयुर्वेद को राष्ट्र चिकित्सा पद्धति घोषित करने की मांग तथा अन्य कई प्रकार की मांग राज्य सरकार से की गई।

सम्मेलन का निर्वाचन—निम्न प्रकार से रहा।

प्रधान—श्री पं० पद्मदेव जी गृहमन्त्री, हिमाचल प्रदेश, शिमला।

मन्त्री—श्री भीमदत्त सिरमौर नाहन।

सहायक मन्त्री—श्री अनिरुद्ध शर्मा चम्बा आयुर्वेदिक निरीक्षक हि० प्र०—श्री लक्ष्मीनारायण शिमला।

कोषाध्यक्ष—श्री यशवन्तराय पांऊंटा (सिरमौर)।

कार्यकारिणी की घोषणा फिर की जावेगी।

श्री गौरीप्रसाद स्वास्थ्य मन्त्री हिमाचल प्रदेश संरक्षक। प्रथम दिवस में कार्यक्रम के बाद चाय सम्मेलन की ओर से दी गई जिसमें सब अतिथि सम्मिलित हुए।

संगीत सम्मेलन के साथ अधिवेशन समाप्त हुआ।

पंजाब राज्य आयुर्वेद सम्मेलन

सरकूलर न: १९

गत सरकूलर नं० १८ के साथ जो पत्रक भेजा गया था उन मांगों में से केवल एक मांग नं० ५ अर्थात् आयुर्वेद डायरैक्ट्रेट (Creation of new post of-Director of Health Services Ayurveda) के सम्बन्ध में असिस्टैंट (Assistant Director) की नियुक्ति के लिए पंजाब सरकार की ओर से विज्ञापन निकला है और वह भी आयुर्वेद हित के दृष्टिकोण से अधूरा ही है क्योंकि इस पद के उम्मीदवारों के लिए जो शर्तें लगाई गईं हैं वह पंजाब के दोनों आयुर्वेदिक कालेजों के स्नातक पूरा नहीं कर सकते ।

मांग नं० ३ : औषधोपयोगी अहिफेन (Medicinal opium) के संबंध में सरकार की ओर से एक्साइज कमिश्नर (Excise Commissioner) महोदय का उत्तर आया है कि बिना लाइसैंस के वैद्यों को यह दवाइयें प्रयोग करने की आज्ञा नहीं दी जा सकती । इसी प्रकार मांग नं० ४ स्टेट एम्पलाईज हैल्थ इन्शोरेंस स्कीम (State Employees Health Insurance Scheme) के सम्बन्ध में सैक्रेट्री मैडिकल डिपार्टमैंट पंजाब का उत्तर आया है कि इस स्कीम में वैद्यों तथा हकीमों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता ।

१२ अगस्त १९५५ को माननीय स्वास्थ्य मन्त्री ने बोर्ड आफ आयुर्वेदिक एन्ड यूनानी सिस्टम्ज आफ मैडिसिन (Board of Ayurvedic and Unani Systems of Medicine) की मीटिंग बुलाई है जिसमें रीन्यूल फी (Renewal fee) आदि विषयों पर विचार किया जायेगा अत:

ज्ञान तंतुओं को बल देने वाला,
स्मरण शक्ति वर्धक उत्तम ब्रेन
टोनिक

सीरप शंखपुष्पी

शंखपुष्पी और ब्राह्मी तथा अन्य अनेक मेध्य औषधों के योग से तैयार किया गया है। इसके वन से स्मरण-शक्ति बढ़ती है। ज्ञानतंतुओं को बल मिलता है। मस्तिष्क से कार्य करने वाले विद्यार्थियों, वकीलों,—आफीसर क्लार्क आदि के लिये अमृत समान है। विद्यार्थियों के लिये तो यह सचमुच आशीर्वाद समान है। किसी भी काम को करते समय मगज थक जाता हो और आगे कार्य करने में मन नहीं लगता हो तब इस सीरप के देने से मगज की थकावट दूर होती है। मगज हलका हो जाता है और फिर कार्य करने में उत्साहित होता है। किसी भी कारण से मस्तिष्क निर्बल हो गया हो और नींद न आती हो ऐसे रोगीके लिए यह अमृत समान है।

मूल्य शीशी १ का रु० १-४-०, १ रतल का ४-०-०।

ऊंझा फार्मेसी लि०

ऊंझा (गुजरात) जबलपुर,
(मध्य प्रदेश

आप साथ लिखे प्रस्ताव तथा सरकूलर नं० १८ के साथ भेजे हुए पत्रक की मांगें पुनः पास करके माननीय स्वास्थ्य मन्त्री, सैक्रेट्री मैडिकल डिपार्टमैंट पंजाब सरकार, डायरैक्टर हैल्थ सरविसिज़ पंजाब, कसौली, प्रैजीडैंट तथा रजिस्ट्रार बोर्ड आफ आयुर्वेदिक एन्ड यूनानी सिस्टम्ज़ आफ मैडिसिन अमृतसर तथा अपने इलाके के 'बोर्ड' के सदस्यों को भेज देवें और यथा सम्भव 'बोर्ड' के सदस्यों को मिलकर कहें कि वे होने वाली मीटिंग में हमारी सब मांगें सरकार से मंजूर करवायें।

(२) प्रत्येक मण्डल से प्रार्थना है कि वह वार्षिक शुल्क भेज दे और एक २ दिन का सम्मेलन करने की योजना बनावे।

रामेश्वर सिंह कुंवर, प्रधान मन्त्री

रोग पर जादू की भांति तत्काल
असर करने वाले
मार्तण्ड के आयुर्वेदिक
इंजेक्शन

मार्तण्ड की समस्त वैज्ञानिक साधन सम्पन्न और आधुनिक मशीनों से सुसज्जित प्रयोगशाला में उच्च क्षिक्षित आयुर्वेदज्ञों और विदेशी रसायनज्ञों की देख रेख में निर्माण हुए ये आयुर्वेदिक इंजेक्शन अपना तत्काल असर करते हैं, इनका प्रभाव स्थाई होता है, रक्खे रहने पर भी ये कभी नहीं बिगड़ सकते, इनकी आशुगुणकारिता और शुद्धि की पूरी गारंटी है। सूचिपत्र और रिसर्च का रोचक साहित्य मुफ्त मंगाइये।

निर्माता: **मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स,**
बड़ौत, उत्तर प्रदेश
रिसर्च इंस्टीटयूट आफ इंडियन मेडिसन्स

दीन पल्भ

विशुद्ध बनस्पतियों से निर्मित यह महौषधि यकृत से पित्त के आंतों में उचित मात्रा में न पहुँचने से उत्पन्न होनेवाले विकारों तथा कोष्ठबद्धता, शरीर का विषयुक्त होना, किसी काम में मन न लगना, उदासी, दुर्बलता, हाथों पैरों तथा कमर आदि में दर्द, हृदय में जलन घबराहट इत्यादि में अत्यन्त लाभप्रद है। दीन पल्भ के तीन सप्ताह के सेवन से ही रक्त का प्रवाह ठीक होकर सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं। यह औषधि २ माशा से लेकर ६ माशा तक आवश्यकतानुसार दूध या जल से प्रातःकाल अथवा सायंकाल सोते समय सेवन की जाती है। विशेष विवरण के लिये लिखें।

दीनबन्धु कैमिकल वर्क्स
तुमसर, मध्यप्रदेश
मध्य प्रदेश के प्रमुख विक्रेता :—
वैद्य ब्रदर्स, इतवारी, नागपुर।

तार—इन्जैक्शन—झाँसी एल० नं० २ एस० सी० पी० फोन नं० ५६३

मिश्रा आयुर्वेदिक इन्जैक्शन्स तथा पेटेन्ट औषधियां
सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त

वैज्ञानिक रसायनशाला में सरकारी मान्यता प्राप्त, ट्रेन्ड वैज्ञानिकों, कैमिस्टों की देख रेख में निर्मित होते हैं। लगभग एक लाख की पूंजी द्वारा आधुनिक विद्युत यंत्रों से सुसज्जित विशुद्ध, प्रमाणिक, निरापद, असली और चमत्कारिक गुणकारी हैं। विवरण पत्रिका मुफ्त मंगायें। सर्वप्रथम आविष्कर्ता व लाइसेन्स प्राप्त :—जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी,
श्री भैरवनिकुंज, झांसी नं० १०३

AN APPEAL TO LOVERS OF AYURVEDA

THE AYURVEDIC ENCYCLOPEDIA—AYURVEDA VIGNAANA SARWASWAM

1. It has been decided to publish a Commemoration Volume-**Abhinandan Grantha**-containing selected articles contributed by reputed scholars from the several States of India and outside, as a symbolical offering (YAGNA) to God for his having bestowed upon me this youthful enthusiasm and clearness of intellect at this age of 75.

2. It is my desire to bring out the Commemoration Volume in as many Provincial Languages of India as possible besides Sanskrit, English, and Telugu. Cheap editions will also be printed so as to make the Volumes easily available to the public.

General Plan of the Work

3. THE BOOK WILL BE PUBLISHED IN TWO PARTS:—**Part 1**. The theoretical portion dealing with the Scientific Basis of Ayurveda. This will be called "**Ayurveda Vignaanam.**"

Part II Called " **Ayurveda Chikitsa Saaram**" will deal with the Practice of Ayurveda.

It is expected that each part will be completed within 500 pages, double crown 16. The books will be published in two qualities of paper and binding.

The response from the contributors is very encouraging. Their articles are very exhaustive. I have therefore decided to name the Commemoration Volume, the Ayurvedic Encyclopedia (Ayurveda Vignaanam Sarwaswam) and to include in it uptodate information on all important subjects relating to **Ayurveda.**

Pre-publication Price

4. The superior quality publication will be priced at Rs. 10 each part (i.e.) Rs, 20-for the two parts. Those who pay Rs. 15-before the completion of the printing will get the two parts of the superior quality free of postage.

The two parts of ordinary quality are priced at Rs. 7-8-0 each part. To those who send Rs. 10-0-0 only as pre-publication price, the two parts will be sent free of postage.

Donations

5. It was resolved to raise donations for the initial expenditure.

The work is already in progress and in order to complete it quickly, I appeal for liberal donations from Vcaidyas and lovers of Ayurveda. Remittances of pre-publication price and donations may be sent to the Secretary, Ayurveda Sabha, 43, Harris Road, Mount Road, Madras—2.

1st September 1955

A. LAKSHMI PATHI

(*Continued from page 476*)

Expenditure for third year		1,43,320
Expenditure for fourth year		1,43,320
Expenditure for fifth year		1,43,320
Total cost of the Scheme for 5 years	...	10,36,600

6. Remarks : The land required for the Pharmacy will be given by Government free of cost.

Scheme No. 6

PHARMACY

1. Name of the Scheme : Starting of an Ayurvedic Museum.

2. Brief description and justification for the Scheme : At present there is no Ayurvedic Museum maintained anywhere in Bombay State. It is quite essential to maintain one Ayurvedic Museum for the study and advancement of Ayurveda. There should be one Committee consisting of eminent Vaidyas to supervise the work of Museum and check the use of Spurious herbs and drugs and encourage genuine drugs.

3. Location and area to be benefited : In Bombay or elsewhere which Government would decide.

4. Employment, direct and indirect likely to be provided by the Scheme :

	Scale Rs.
1 Curator	300-20-500
1 Assistant Curator	200-15-350
1 Pharmacy Assistant	85-5-140-6-200
1 Clerk	55-3-85-4-125-5-130
1 Museum Attendant 1 Peon	35-½-40

5. Approximate cost of the Scheme including materials equipment and staff :

First Year.
Recurring.

Staff.	No.	Pay Rs.	D. A. Rs.	H. R.	Com. A.	Total expenditure Rs.
1. Curator	1	300	60			4,320
2. Asst. Curator	1	200	55			3,060
3. Pharmacy Asst.	1	85	45			1,560
4. Clerk	1	55	45	15	7-8-0	1,470
5. Museum Attendant 6. Peon	1 1	35	35	—	—	1,680
						12,090

Contingencies :

	Rs.
1. Contingencies for miscellaneous expenditure including cost of herbs, minerals etc.	10,000
Non-Recurring.	
(i) Cost of the Building	1,00,000
(ii) Equipment for the Museum including furniture.	22,000
	1,22,000
Total for first year...	1,44,090
Second Year	22,090
Third Year	22,090
Fourth Year	22,090
Fifth Year	22,090
Total for 5 years...	2,32,450

Remarks : It is proposed that the Garden Superintendent I/C of the Botanical Garden proposed in the Botanical Garden Scheme, should work, as Curator of the Museum. The scale of pay of both the posts as proposed is equal and there will be no difficulty in carrying out suggestion. If this is accepted then there will be saving on account of pay and allowances proposed for the curator's post. In the later case, the Garden Superintendent will have to be sanctioned some special pay, say of Rs. 100/- p. m. for doing additional duties.

Scheme No. 7

MEDICAL RELIEF

1. Name of the Scheme : Starting of Ayurvedic first-aid dispensaries in Gram-Panchayats under the Rural Medical Relief Scheme.

2. Brief description and justification for the Scheme : As there are no facilities of medical treatment provided either by Government or local bodies in good many villages in Bombay State, it is proposed to provide with one well-equipped first-aid box containing Ayurvedic medicines for general use to the Gram-panchayats in villages in Bombay State. The Secretaries of the Gram-Panchayats will be given instructions for the use of the medicines supplied in the box and treatment of patients at dispensaries for a period of a fort-night or so. The Secretaries of the Gram-Panchayats after receiving the required training will start giving medicines to the people of the respective villages allotted to them according to the diseases they are suffering from and they will keep a register of patients treated by them. A monthly return of patients treated and

cured will be submitted by the Secretaries to the Surgeon General or the Director of Ayurved as the case may be for information. Where there will be no Gram-Panachayat, the medicine Chest will be given to the Village school-master. They may be given an additional remuneration of Rs. 10/- p. m. for doing this additional work.

3. Location and area to be benefited : (i) In every village in Bombay State. (ii) Whole Bombay State will be benefited by this Scheme.

4. Employment direct or indirect.

5. Approximate cost of Scheme including materials, equipment and on account of staff : As an experimental measure, it is proposed to provide 500 medicine boxes to the villages in the first instance. The approximate cost of the scheme is shown as under :—

First Year

Non-recurring.

(i)	Cost of medicine box (body only) @ Rs. 15/- each.	= Rs. 15×500	= Rs. 7500

Recurring.

(ii)	Cost of medicines to be provided in the box @ Rs. 10/- p. m.	= Rs. 500×10×12	= Rs. 60,000
(iii)	Remuneration to be paid to the Secretaries or School masters at Rs. 10/- p. m.	= Rs. 500×10×12	= Rs. 60,000
(iv)	Contingencies for miscellaneous expenditure at Rs. 25/- per box per annum.	= Rs. 500×25	= Rs. 12,500
	Total cost of the first year...		Rs. 1,40,000

Second Year.

The expenditure of the first year minus expenditure on medicine boxes shall be the approximate expenditure for the second year............ Rs. 1,32,500

Third Year	1,32,500
Fourth Year	1,32,500
Fifth Year	1,32,500
Total for five years...	6,70,000

6. Remarks. Nil.

Scheme No. 8

DETAILS OF THE PROPOSED SCHEMES.

Medical Relief and Research.

1. Name of the Scheme : Starting of Ayurvedic Mobile dispensaries.

2. Brief description & justification for the Scheme : It is proposed to start Mobile Dispensaries for the benefit of villages at the rate of one such dispensary in each district. The Mobile dispensary will be moving from place to place where there are no dispansaries and render medical aid to the village people. The Medical Officer I/C Mobile Dispensaries will also impart training to the Gram-Vaidyas in the treatment of patients according to the recent developments in medical Science. They will also take a survey of the Ayurvedic herbs, shrubs etc. in the rural area. They will also take preventive measures in the villages whenever necessary.

3. Location and area to be benefited : (*i*) One such mobile dispensary for each district in Bombay State. (*ii*) The whole Bombay State will be benefited by this Scheme especially the rural and backward area.

4. Employment direct and indirect likely to be provided by the Scheme : The following staff will be necessary for each such mobile dispensary :

Designation	Scale of pay
1 Driver	Rs. 50-2-60.
1 Cleaner	Rs. 30-½35.
I Vaidya (Medical Officer)	Rs. 80-5-100-EB-6-160EB-8-240 for a D.A.S.F. candidate
1 Female Vaidya (M.O.)	—do—
1 Compounder	Rs. 55-3-85EB-4-125-5-130.

5. Approximate cost of the Scheme including materials, equipment, staff etc.

Recurring

(Expenditure for one Mobile Dispensary for one year)

Establishment	Post	Pay	D.A.	T.A.	C.L.A. for loss of P.P.	Amount of Expenditure
(1) Driver	1	50	35	15	—	Rs. 1,200
(2) Cleaner	1	30	35	15	—	Rs. 960
(3) Medical Officer (Vaidya)	1	80	45	40	10	Rs. 2,100
(4) Female (Vaidya)	1	80	45	40	10	Rs. 2,100

(5) Compounder	1	55	45	25	—	Rs. 1,500
						Rs. 7,860

Contingencies:

(i) Medicines	6,000
(ii) Petrol & repairs	18,000
	24,000

Non-Recurring

(i) Purchase of Motor Van	25,000
Total expenditure per dispensary for one year	56,880
Cost of one mobile dispensary for 5 years	1,59,300
Cost of 20 Mobile Dispensaries for 5 years	31,86,000

6. Remarks : Nil.

Scheme No. 9

MEDICAL RELIEF

1. Name of the Scheme : Opening of 20 Ayurvedic Beds in each District Hospital in Bombay State.

2. Brief description & Justification for the Scheme: At present there are no Ayurvedic Hospitals in this State run at Govt. cost nor any beds for Ayurvedic treatment have been provided in the Civil Hospitals. In order to provide facilities of medical treatment to the public at cheaper costs, it is proposed to open Ayurvedic beds in each District Civil Hospital in Bombay State.

3. Location & area to be benefited : (i) In all District Civil Hospitals (ii) Whole Bombay State will be benefited by this Scheme.

4. Employment direct & indirect likely to be provided by the Scheme : Staff for one ward of 20 Ayurvedic beds.

	Scale.
1 Ayurvedic Medical Officer (G. F. A. M. candidate 1/C)	Rs. 120 to 300
1 Assistant Medical Officer (D. A. S. F. candidate)	80 to 240
3 Nurses	80-5-100
1 Compounder	55-130
4 Ward Servants	$30-\frac{1}{2}-35$
3 Sweepers	—do—

5. Approximate cost of the Scheme including materials, equipment, staff etc : Expenditure for one ward of 20 Ayuvedic beds.

First Year. Recurring.	Rs.
(i) Staff	15,423
(ii) Medicines & Instruments	9,000
(iii) Diet to patients	18,000
(iv) Clothing to patients	7,800
(v) Nursing Estt. contingencies	1,000
	51,223
Non-recurring	
(i) Construction of a ward & quarters for the staff	80,000
(ii) Furniture	5,000
(iii) Equipment	15,000
	1,00,000
Total for first year...	1,51,223
Second Year	
The whole recurring expenditure of the first year ...	51,223
Third year ...	51,223
Fourth year ...	51,223
Fifth year ...	51.223
Total for 5 years.	3,56,115

During the second five year plan 10 such Units of 20 beds each are proposed to be opened in 10 District Civil Hospitals in Bombay State. The expenditure for 10 units for 5 years will be as shown below:

3,56,115×10=Rs. 35,61,150.

5. Remarks

Nil.

Scheme No 10.

MEDICAL RELIEF & RESEARCH

1. Name of the Scheme: Opening of special wards of 20 beds each at the Ayurvedic College Hospitals at Bombay, Poona & Surat for the treatment of T.B. Patients on Ayurvedic lines.

2. Brief description and justification for the Scheme: At present in the treatment of T.B. patients, generally very costly Allopathic medicines are used & the poor people cannot efford this. It is possible to cure the T.B. patients with Ayurvedic medicines

within cheaper cost. The All India Ayurvedic Congress, therefore recommended that Government should establish a sanatorium for T.B. patients to be seen on Ayurvedic lines. Before venturing on such a big Scheme, it is, to start with, proposed to open special wards of 20 beds each, one ward at each of the Ayurvedic College-Hospitals at Poona, Surat & Bombay for the treatment of T.B. patients with Ayurvedic medicines. It is also proposed to give practical training to Ayurvedic Vaidyas in the treatment of this disease.

3. Location and area to be benefited : Bombay, Poona & Surat.

4. Employment, direct & indirect likely to be provided by the Scheme : Staff for one ward of 20 beds.

Staff	Scale
1 Ayurvedic medical officer (G.F.A.M. or Ayurvedacharya candidate)	120 to 300
1 Assistant Medical Officer (Ayur.) D.A.S.F. candidate.	80 to 240
3 Nurses	80-5-100
4 Ward Servants	30-½-35
3 Sweapers	—do—
1 Compounder	55 to 130

5. Aproximate cost of the Scheme including staff, materials & equipment : Expenditure for one ward of 20 Ayurvedic T.B. beds.

First Year Recurring.

(i) Staff	Rs. 15,423
(ii) Medicines & Instruments	Rs. 9,000
(iii) Diet to patients	Rs. 18,000
(iv) Clothing to patients	Rs. 7,800
(v) Nursing contingencies	Rs. 1,000
	Rs. 51,223

Non-Recurring

(i) Construction of a ward and quarters for the staff	Rs. 80,000
(ii) Furniture	Rs. 5,000
(iii) Equipment	Rs. 15,000
	Rs. 1,00,000
Total for first year...	Rs. 1,51,223

Second Year.

The whole recurring expenditure of the	Rs.
First Year	51,223
Third Year	51,223
Fourth Year	51,223
Fifth Year	51,223
Total for 5 years for one ward only...	3,56,115
Total cost for 5 years for 3 T.B. wards 3,56,115 x 3 =	10,68,345

6. Remarks: Since the Ayurvedic College-hospitals at Poona and Surat are private institutions, it is suggested that these institutions be paid grant-in-aid at 55% basis by Government towards meeting the expenditure over the T.B. wards and the 50% expenditure be borne by them as is being done at present. If this is accepted there will be proportionate reduction in the total expenditure on account of two wards only shown for this scheme.

Scheme No. 11

AYURVEDIC EDUCATION

1. Name of the Scheme: Preparation of Text-Books for the study of Ayurveda.

2. Berief description & justification for the Scheme: There are at present no regular prescribed Text-Books for the study of Ayurveda, it goes very difficult for the teaching staff in the Ayurvedic Colleges & teaching institutions to teach the courses in Ayurveda, for want of any prescribed texts. the Ayurvedic students also find it difficult & inconvenient to carry on their regular studies. It is therefore quite essential to prepare text-books on each Ayurvedic subject in order to make the study of Ayurveda easy systematic and understandable. Books may be prepared. as per list attached.

3. Principles on which the Text-Books may be prepared:

(i) All the necessary sentences be collected according to the subjects from the old sanhita granthas and most important sentences be incorporated at the proper places in the books.

(ii) The reference of page No. etc. of books from which these sentences are picked and reproduced should also be mentioned against each of them.

(iii) There will be no repeatition of quotation in the books.

(iv) Necessary foot-notes will be given in the books under the relevant points.

4. Minimum staff required and cost involved in this Scheme and the machinery to work out the Scheme.

Government of Bombay has constituted a Board of Research in Ayurveda consisting of 6 eminent persons who have a great aptitude and interest in the study of Ayurveda. One of the tasks entrusted to this Board is the preparation of authoritative book for reference and study purposes on each subject. It would therefore be appropriate to entrust the work of preparation of the proposed Text-Books to this Board. At present, the minimum staff viz. 1 clerk in the grade of Rs.100-8-140 and a peon in the grade of Rs.35½-40 has been sanctioned. Since the clerical work of this Board will increase because of this additional work, some additional staff may be appointed to cope up with the increased liability. As the work of preparation of Text-books etc. will, it is believed, take 4 to 5 years, the staff will have to be engaged at least for 5 years. The staff & expenditure that would be required is detailed below:—

First Year

Staff.

Designation of the post.	No, required.	Scale of pay.	D.A.	C.A.	H.R.	Expenditure for the first year.
Scholars	20	Rs. 200/- p.m. fixed.	Rs. 55			Rs. 61,200
Clerks						
(i) Head Clerk	1	Rs. 150-10-200	55	15	20	Rs. 2,880
(ii) Librarian	1	Rs. 100-8-140	45	12-8	15	Rs. 2,070
(iii) Junior Clerk	1	Rs. 55-3-85-4-125-5-130.	45	7-8	15	Rs. 1,470
(iv) Peons	2	Rs. 35-½-40	35	—	—	Rs. 840
						Rs. 68,460

Contingencies.

Non-Recurring.

	Rs.
(i) Books for Library including manuscript.	50,000
(ii) Furniture.	5,000
(iii) Typewriter.	1,000
Recurring.	
Contingencies including office rent, Stationery, & other contingencies.	10,000
	67,000
Total for the first year...	1,35,460

Second Year.

(i) Staff-The same as for the first year + expenses of 10 additional scholars,	99,060
(ii) Contingencies.	
Non-recurring	
for Books & manuscript.	10,000
Recurring.	
Contingencies for office expenditure.	10,000
Total for the 2nd year...	1,19,060

Third Year.

The same expenditure as for the second year excluding books.

(i) Staff.	99,060
(ii) Contingencies.	10,000
Total for the third year...	1,09,060

Fourth Year.

The same as that for the third yaer.	1,09,060

Fifth Year.

The same expenditure as for the third year.
+ Rs. 50,000 for printing of Books.

(i) Staff.) (ii) Contingencies (Recurring))	1,09,060
Non-recurring expenditure for printing of Books @ Rs. 1000/- per book.	50,000
Total for the fifth year...	1,59,060
Total expenditure for 5 years....	6,29,700

(6) Remarks: The Scholars will select and prepare the material for the text books and will get it approved section by section or chapter by chapter by the Board of Research or by the Committee that will be appointed by the Board in this behalf. After completion of the each book on the subject allotted by the Scholars, the whole book in manuscript (typewritten) will again be reviewed by the Board or the Committee and then it will be given for printing. The books should be written in Sanskrit, or Marathi, Hindi or English or Gujarat or Kanadi as will be decided by the Board.

Sampadaniya grantha nirdesha.

1. Ayurved Paribhasha.
2. Sharira Pratyaksham Marmasangrahashcha.

3. Sukshma Shariram Atmavivekashcha.
4. Dosha-dhatu malavigyanam.
5. Manoviveka Indriyavivekashcha.
6. Dravyagunarasa viryavipak pramikadi Vigyanam.
7. Dravyaguna sangraha vistruta.
8. Dravyanam Vividh Namanukramanika.
9. Rasa Shastram paribhashach.
10. Parad-viveka.
11. Gandhak-viveka.
12. Dhatupahatu-viveka.
13. Vishopvisha-viveka.
14. Ratnoparatna-viveka.
15. Rasayoga sangraha (Rasayoga sagaravashistha.)
16. Kwatha churna vatika sangraha.
17. Grut Taila sangraha.
18. Asavarishta sangraha.
19. Avalehpak sangraha.
20. Malahara lep sangraha.
21. Rasayana kalpa sangraha.
22. Gham virta sangraha.
23. Kshara sangraha.
24. Prakirnka sangraha.
25. Pathyapathya vivekaha.
26. Swastha vrutam vaiyaktikam.
27. Swathavrutam samajikam.
28. Bhojana vidnyanam.
29. Vyavaharayurveda.
30. Agad-tantram (Navyavishasametam)
31. Rog-samanya vigyanam.
32. Nadi-vigyanam.
33. Arishthadhyaya.
34. Rog-vishesha vigyanam.
35. Kayachikitsa samanyavigyanam. (Panchakarma vigyanashcha)
36. Kaya-chikitsa visheshavigyanam
37. Shalya vigyanam
38. Shalakya vigyanam. Dantavigyansametam. (Navya paribhashopetam)

39. Kaumar-bhrutyam. (Prasutitantram-ch samavparibhasham)
40. Bhuta vidya vigyanam. manasrog vigyanam-ch
41. Rasayana vigyanam
42. Vajikarana-tantram
43. Ayurvediya-padarthavigyanam
44. Tantra-yukti vichamaha
45. Ayurveda-suktayaha
46. Ayurveda-vruhachhbdakosha
47. Ayurvedetihasaha.
48. Sandigdha vastunirnayaha
49. Sidhayog-sangraha
50. Ayurvedanusandhana-padhati.

Scheme No. 12

EDUCATION

1. Name of the Scheme: Starting of Post-Graduates Courses in Ayurveda.

2. Brief description and justification for the Scheme: At present there are no post-graduate courses in every branch of Ayurvedic medicine mainly because there are no well-trained teachers in each speciality. If arrangements are made to train teachers for post-graduate courses it would immediately help to start post-graduate courses in each subject and thus to produce specialists in every branch. These specialists can be engaged as teachers in the Ayurvedic Colleges in Bombay State and this will fulfil the long-felt want of the State. With this end in view, it is proposed to institute post-graduate courses of 2½ years' duration in each subject in Bombay, Poona and Surat and admit 10 students in each college in a year at a time. They will be trained according to the Ayurvedic principles as well as Allopathy (modern science), thus they will have knowledge of both the Systems of Medicines viz. Allopathy and Ayurveda. These trained personnel can be utilised in Ayurvedic Colleges and they will take the place of teachers who possess Allopathic qualifications only.

3. No. of subjects in which post-graduate courses should be instituted:

(1) Kaya Chikitsa
(2) Shalya
(3) Shalakya
(4) Kaumar-Bhrutya
(5) Rasayan-Kaya Kalpa.
(6) Vasikaran
(7) Agad-Tantra (Vish-Vigyan)
(8) Manas-Rog.

4. The Institutions in which the courses will be started:

(i) R. A. Podar Medical College. (ii) Ayurved Mahavidyalaya, Poona. (iii) Shri O. H. Nazar Ayurveda Mahavidyalaya, Surat.

5. Minimum staff required and cost involved in this Scheme: Instead of instituting post-graduate courses in all the above 8 subjects, it is suggested that these courses may be started in the following subjects in the first instance.

(1) Kaya Chikitsa	(3) Shalakya
(2) Shalya	(4) Kaumar Bhrutya.

As the above 4 subjects are major and important, it is considered very essential to start courses in them in the first instance. The question of starting such courses in the remaining subjects can be considered in due course, after gaining experience in the experiment. Instead of starting all the specialised courses (i.e. 4 in number) in all colleges, it is suggested that (i) Kaya-Chikitsa may be started at the Ayurveda Mahavidyalaya, Poona, (ii) Shalya and (iii) Shalakya may be started at the R. A. Podar Medical College, Bombay and (iv) Kaumar Bhrutya may be started at the O. H. Nazar Mahavidyalaya, Surat. The teachers who will be entrusted with the task of preparing students for post-graduate examinations may be paid an Honorarium of Rs. 300 p. m. each and the students admitted for the post-graduate courses may be paid scholarships at Rs. 100 p.m. each. The total cost of the Scheme in question will be as under:

	Rs.
(i) Honorarium to 8 teachers (at the rate of 2 teachers per subject) at Rs. 300/- p.m.	28,800
(ii) Scholarships to the post-graduate students (40 in number at Rs. 100/- p.m.)	48,000
Expenditure for one year ...	76,800
Expenditure for 5 years: 76,800×5 ...	3,84,000

6. Remarks: Nil.

Scheme No. 13

AYURVEDIC EDUCATION

1. Name of the Scheme: Starting of Ayurvedic Medical College and Hospital at Ahmedabad.

2. Brief description and justification for the Scheme: There is no college for teaching of Ayurveda and no Ayurvedic Hospital for treatment yf patients on Ayurvedic lines at Ahmedabad. Although there is one Allopathic Medical College there, it is considered necessary that there should also be one Shudha Ayurvedic College and Ayurvedic Hospital at Ahmedabad as it is the second

largest city in Bombay State and moreover it is one of the biggest industrial cities in India. The Ayurvedic treatment is considered to be cheaper than Allopathic. It is therefore considered necessary to afford benefit of Ayurvedic treatment to the industrial labourers and poor people as it would be within their means to get the benefit of this treatment. Besides it is the policy of Government to encourage the Ayurvedic System of Medicine. It should be run purely on Shudha Ayurvedic lines.

3. Location and area to be benefited: It should be located at Ahmedabad. The whole Bombay State will be benefited by this Scheme.

4. Employment direct and indirect likely to be provided by the Scheme: Staff required for the Shudha Ayurvedic College admitting 60 students every year.

	Designation.	No. of posts.	Scale of pay.
			Rs.
1.	Principal and Superintendent	1	530-30-650-45-785
2.	Lecturer in Sharir Rachana	1	100/- p. m. fixed
3.	Lecturer in Dosh-Dhatu Mala-Vidnyan	1	150/- p. m. fixed
4.	Lecturer in Dravyaguna and I/C Ayurvedic Pharmacy	1	200-10-350
5.	Lecturer in Rasashastra	1	150/- p. m. fixed
6.	Demonstrator in Dravyaguna and Assistant Rasashastra	1	150/- p. m. fixed
7.	Lecturer in Rog-Nidan and Physician to the Hospital	1	200-10-350
8.	Lecturer in Kaya-Chikitsa and Physician to the Hospital	1	200-10-350
9.	Tutor in Rog-Nidan and Kaya-Chikitsa and Registrar to the Hospital	1	150-10-250
10.	Lecturer in Swasthawritta	1	100/- p. m. fixed
11.	Lecturer in Sanskrit and Padarthavidnyan	1	100-10-200
12.	Lecturer in Ashtang	1	150/- p. m. fixed
13.	Lecturer in Santik Streerog and Balrog	1	135/- p. m. fixed
14.	Lecturer in Shalya-Shalakya and I/C Surgical O. P. D.	1	135/- p. m. fixed
15.	Lecturer in Nidan-Panchak & Sarvarog Samprapti Vidnyan	1	150/- p. m. fixed
16.	Lecturer in Vishatantra	1	100/- p. m. fixed

			Rs.
17.	Head Clerk		100-48-140
18.	Clerks	2	55-3-85-EB-4-125-5-130
19.	Peons	4	30-½-35
20.	Hamals	2	—do—
21.	Sweeper	1	—do—
22.	Watchman	2	—do—
23.	Malis	2	35-1-40
24.	Pharmacy Servants	3	30-½-35

Staff required for Ayurvedic Hospital of 60 beds.

	Designation	No. required.	Scale of pay.
1.	Surgeon	1	100/- p. m. (Honorarium)
2.	Obstetrician and Gynaecologist	1	—do—
3.	Pathologist	1	—do—
4.	Physician	1	200-10-350
5.	Anaesthetist	1	100/- p. m. fixed
6.	Radiologist	1	—do—
7.	Housemen	5	70/- p. m. fixed
8.	Sisters	3	125-5-150-10-200
9.	Staff Nurses	12	80-5-100
10.	Senior Clerk	1	100-8-140
11.	Clerks	3	55-3-85-4-125-5-130
12.	Compounder	3	—do—
13.	Laboratory Asstt.	1	55-3-85
14.	X-Ray Asstt.	1	—do—
15.	Laboratory Servant	1	30-½-35
16.	X-Ray Servant	1	—do—
17.	Dressers	3	45-1-55
18.	Peons	3	30-½-35
19.	Operation Theatre Servant	1	40-1-50
20.	Ward Servants	25	30-½-35
21.	Sweepers	11	—do—
22.	Cooks	2	30-½-35
23.	Watchmen	2	—do—
24.	Malis	2	35-½-40
25.	Dhobis	2	30-½-35
26.	Electric Servant	1	—do—
27.	Barber-cum-servant	1	—do—

5. Approximate cost of the Scheme including staff equipment materials etc.

First Year.

Non-Recurring.

Building	Rs.
1. Building for the College & Hospital Library, Museum, Laboratory & Pharmacy.	5,00,000
2. Quarters for staff	1,00,000
3. Hostel for students	50,000
	6,50,000

Equipment	
1. Equipment for the Panch Karma Treatment	5,000
2. Equipment for the Hospital for 60 beds (Rs. 100/- per bed approximately)	60,000
3. Furniture for Hospital	10,000
4. Equipment of the College	10,000
5. Furniture for the College	10,000
6. Equipment of the Library, Museum, Laboratory & Pharmacy	1,00,000
	1,95,000

Recurring.

Pay	
(i) Pay & Allowances of staff (Hospital)	1,27,000
(ii) Pay & Allowances of staff (College)	69,000
Contingencies :	
(i) Medicines & instruments (Hospital)	10,000
(ii) Diet to patients	20,000
(iii) Clothing to patients	10,000
(iv) Nursing contingencies	1,000
(v) Contingencies of the Hospital	10,000
(vi) Contingencies of the College	10,000
(vii) Contingencies of the Pharmacy etc.	10,000
	2,67,000
Total for first year...	11,12,000

	Rs.
Second Year	2,67,000
Third Year	2.67,000
Fourth Year	2,67,000
Fifth Year	2,67,000
Total for 5 years...	21,80,000

6. Remarks : Nil

Scheme No. 14

MEDICAL AID FOR RURAL INDIA

The total population of India is 36 crores. The village population is 30 crores. The brief scheme given below proposes to cover 50% of India's village population i.e. 15 crores.

It is proposed that out of 2 lakhs of Vaidyas in the country, 50,000 village Vaidyas may be enrolled on the scheme which shall consist of a subsidy of Rs. 300 per annum per Vaidya. Each Vaidya shall be required to look after 3,000 persons. He shall be permitted to charge 1 pice per day per patient to supplement his income and to cut down unnecessary demand on his time.

The total cost of the scheme for one year shall be 1½ crores. The total expenditure for five years shall amount to 7½ crores. A list of Ayurvedic medicines which can cover the majority of diseases for which treatment is required in the villages and the cost of which can be met within the low expenditure envisaged in the scheme shall be submitted immediately after the scheme has been accepted by the Government and incorporated in the second Five Year Plan.

सूचना:—ऊपर उन १४ आयुर्वेदिक योजनाओं को प्रकाशित किया गया है जो अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के त्रिवेन्द्रम अधिवेशन के प्रस्ताव सं० २ के अनुसार महासम्मेलन की ओर से केन्द्रीय तथा बम्बई सरकारों को भेजी गई हैं। इनमें से योजना नं० १२ तथा १३ तो केवल बम्बई सरकार के लिये ही हैं। शेष १ से ११ तक की योजनायें भी यद्यपि बम्बई सरकार को भेजी गई हैं किन्तु राज्यीय दृष्टिकोण हटाकर इन्हें ही केन्द्रीय सरकार को भी भेजा गया है। इन्हीं योजनाओं को अन्य राज्यों में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर क्रियान्वित किया जा सकता है। इनका हिन्दी अनुवाद पत्रिका के आगामी अंक में प्रकाशित किया जायेगा। —सम्पादक

विद्यापीठ में उत्पन्न विवाद

महासम्मेलनाध्यक्ष श्री डा० वाई० पार्थनारायण पण्डित के नाम वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा का पत्र

बम्बई, ११ सितम्बर, १९५५

प्रिय श्री वाई० पार्थनारायण पण्डित,

इस पत्र के साथ मेरे उस पत्र की प्रतिलिपि प्रेषित है जो मैंने कांग्रेस अध्यक्ष को लिखा था। उनका कोई उत्तर न मिलने के कारण रविवार ११ सितम्बर को टेलीफोन पर मैंने उनसे देहली में सम्पर्क स्थापित किया और उन्होंने इस विवाद में मध्यस्थ बनने की कृपापूर्ण स्वीकृति दे दी है।

मैंने अपने पत्र में मध्यस्थता के लिये मानदेय (फीस) देने का जो प्रस्ताव किया था उन्होंने उसको एकदम अस्वीकार कर दिया है। महासम्मेलन को इस संकट से बचाने की जो स्वीकृति उन्होंने दी है उसकी मूल में उनकी एक मात्र यही इच्छा है कि एक राष्ट्रीय संस्था को मुकदमेबाजी की चट्टान से टकराकर डूबने से बचाया जाय।

भवदीय शुभेषु
शिवशर्मा

कांग्रेस अध्यक्ष श्री ढेबर भाई के नाम श्री पं० शिवशर्मा जी का पत्र

श्री मान् जी,

मैं अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का एक पुराना सदस्य हूँ। इस संस्था की सहायता से आयुर्वेद अनेक संकटों को पारकर जीवित रह सका है और यह गत अर्धशताब्दि से आयुर्वेद व्यवसाय की एक अद्वितीय प्रतिनिधि संस्था रही है।

आज कुछ सदस्यों के मतभेद के कारण इस संस्था का जीवन ही खतरे में पड़ गया है और यदि देश का कोई महान् नेता इस आसन्न सर्वनाश से उसकी रक्षार्थ आगे नहीं आता तो असमाप्य मुकदमेबाजी, बैंकों को बिल तथा कार्यालय कर्मचारियों के मासिक वेतन आदि के न भुगतान करने की आज्ञाओं से कार्यालय के बन्द होने तथा गुण्डागर्दी के परिणामस्वरूप होने वाले गतिरोध से यह संस्था शीघ्र ही अपने महान् एवं उपादेय कर्त्तव्यों के निर्वाह में असमर्थ हो जायेगी।

इस संस्था के शिक्षा विभाग की एक सभा में जिसे इसके प्रधान ने अवैध तथा मंत्री ने वैध घोषित किया था इस विवाद ने बड़ा विकृत रूप धारण कर लिया। हाथापाई तथा गाली गलौच के असम्मान पूर्ण दृश्यों के अतिरिक्त कार्यालय के रजिस्टर तथा पत्रों आदि के लिये छीना-झपटी हुई। इस प्रकार पत्रादि दो हिस्सों में बंटकर विभिन्न पक्षों के हाथ में तो गए ही, साथ ही विभिन्न पदाधिकारियों ने कार्यालय कर्मचारियों को विरोधी आदेश

दिये हैं। उदाहरणतया विद्यापीठ मंत्री ने उनके द्वारा इस वैध कही जाने वाली मीटिंग के २४ घन्टे पश्चात् कार्यालयाध्यक्ष को पद्च्युत कर दिया और आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रधानमंत्री ने उस आदेश को अमान्य करते हुए कार्यालयाध्यक्ष को अपने पद पर कार्य करते रहने का आदेश दिया। इस समय परिस्थिति अत्यन्त गम्भीर है।

इस प्रकार की परिस्थिति पर इस महान् संस्था के उन भक्तों को जिन्होंने संस्था की उन्नति में सहायता दी है तथा उसके वर्तमान विकसित स्वरूप को देखा है अत्यन्त दुखी हैं। इस विषय पर अत्यन्त गम्भीर विचार करने के उपरान्त मैं इस निश्चय पर पहुंचा हूँ कि यदि किसी विशेष चरित्र (Integrity) के ऐसे व्यक्ति को जिसका संस्था से कोई सम्बन्ध न हो और जिसके प्रति हर व्यक्ति का गहरा आदर भाव हो, पंच बनने तथा दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात् अपना फैसला देने के लिये तैयार किया जा सके तो इस सर्वनाशी मुकदमेबाजी की अन्धकारमय सम्भावना को रोका जा सकता है। अतः घोर सन्ताप और असहायावस्था में मैं आपके समीप यह निवेदन करता हूं कि यदि दोनों पक्ष आपके फैसले को स्वीकार करने को तैयार हों तो आप पंच बनना स्वीकार कर लें। आपकी स्वीकृति मिलने की आशा करते हुए मैं आपके देश तथा इसकी महान् संस्थाओं के प्रति प्रेम तथा आपकी इस अनुभूति कि अपना थोड़ा सा समय इस समस्या के लिये देकर आप अपने देशवासियों के एक वर्ग को अत्यधिक हानि, कष्ट तथा खर्चे से बचा सकते हैं, पर निर्भर करता हूँ। आपका उत्तर शीघ्र मिलने पर मैं दोनों विवादी पक्षों से मध्यस्थता स्वीकार करने की प्रार्थना करूंगा। इस समय मेरी प्रार्थना आपसे केवल इतना ही सूचित करने की है कि यदि दोनों पक्ष आपसे मध्यस्थता के लिये प्रार्थना करें तो आप उसे स्वीकार कर लेंगे।

यदि दोनों पक्ष मध्यस्थता के लिये सहमत हुए तो मैं दोनों को लिखित रूप में अपना अपना पक्ष आपके समक्ष रखने के लिये कहूंगा और उनका अध्ययन करने के पश्चात् आप दोनों पक्षों के दो दो प्रतिनिधियों को अपने अपने प्रमाण उपस्थित करने के लिये बुला सकते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप सहज ही सत्य तक पहुंच जायेंगे और आपके निर्णय का हर व्यक्ति सम्मान करेगा।

मेरा यह प्रस्ताव है कि प्रतिनिधियों से मिलते समय आपको १००) प्रति घण्टे के हिसाब से मानदेय दिया जाये जिसका ५०% आयुर्वेद सम्मेलन तथा २५,२५% विवादी पक्ष दें। जो पक्ष निर्दोष हो उसे मध्यस्थ के निर्णय के पश्चात् उसका रुपया लौटा दिया जायेगा। मध्यस्थ यदि इस विषय के लिये दिये गए अपने अमूल्य समय की इस साधारण क्षतिपूर्ति को स्वयं न स्वीकार करना चाहें तो वे किसी अच्छे उद्देश्य के लिये उसे दे सकते हैं। यदि कोई पक्ष इस क्षतिपूर्ति के लिये सहमत न होगा तो मैं स्वयं उसकी ओर से रुपया देने का बचन देता हूँ।

मैं बहुत सम्मानपूर्वक यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह मानदेय मध्यस्थ को उसके मूल्यवान समय के जो वे इस विषय के लिये देंगे, क्रयार्थ नहीं दिया जा रहा है बल्कि इस अनुभूति के साथ एक सम्मानपूर्ण भेंट है कि आप जैसे व्यक्ति के मूल्यवान समय की

क्षतिपूर्ति तो धन के द्वारा नहीं की जा सकती तथापि जिन संस्थाओं का आप प्रतिनिधित्व करते हैं और आयुर्वेद महासम्मेलन के विवाद की ओर ध्यान देते समय आपके द्वारा अपने साधारण कार्यक्रम के स्थगित किये जाने के कारण जिन्हें हानि पहुंचेगी उसकी अंशतः पूर्ति की जानी चाहिये।

जैसा कि मैं परिस्थिति को समझता हूँ, इस कार्य में किसी भी अवस्था में १० घण्टे से अधिक समय नहीं लगेगा। वास्तव में मुझे तो यह आशा है कि यदि लिखित वक्तव्यों को पढ़ने के पश्चात आप प्रतिनिधियों से भेंट करें तो यह कार्य ३।४ घन्टे में ही समाप्त हो जायेगा।

अन्त में मेरी आपसे हार्दिक विनती है कि संस्था के हित में आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करने की कृपा करें।

भवदीय
बम्बई शिवशर्मा
४-९-५५ भूतपूर्व अध्यक्ष
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

महासम्मेलनाध्यक्ष श्री डा० वाई० पार्थनाराण पण्डित का प्रधानमंत्री श्री वामनराव जी के नाम पत्र

प्रिय वामन राव जी,

कृपया संलग्न ७ पत्रों को इस पत्र के प्रारम्भ में दिये गये ७ व्यक्तियों के नाम उनके पतों पर भिजवा दीजिये। कृपया यह ध्यान रखें कि ये पत्र रजिस्टर्ड लिफाफों में एकनालिजमेन्ट डियू के साथ भेजे जावें। किन्तु प्राप्ति की रसीद पर पता मेरा होना चाहिये ताकि यह रसीदें सीधी मेरे पते पर मुझे मिलें। इन रसीदों के तथा विवादियों के उत्तर मिलने पर मैं इस विषय में आगे कार्यवाही करूंगा। इस बीच आप हस्तलेख विशेषज्ञ की (१) पण्डित श्रीदत्त जी के तथाकथित त्याग पत्र पर उनके हस्ताक्षरों की वास्तविकता अथवा अवास्तविकता तथा (२) पैंप्सु की उत्तर पुस्तक में जोकि झगड़े का कारण बन गई है, तथाकथित गड़बड़ की सत्यता अथवा असत्यता के विषय में अधिकृत सम्मति लेलें। यदि आवश्यक हो तो इन पत्रों के चित्र ले लिये जायें ताकि यदि कोई भी विवादी पक्ष इन्हें नष्ट अथवा दूषित करना चाहें तो प्रमाण सुरक्षित रह सकें।

भवदीय
वाई० पार्थनारायण पण्डित
अध्यक्ष अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

विवादी पक्षों को महासम्मेलनाध्यक्ष की ओर से भेजे गए पत्र की प्रतिलिपि

सेवामें,

श्री भी० वि० डेग्वेकर, जबलपुर, श्री वामनराव डी० वैद्य, बम्बई, पंण्डित श्रीदत्त शर्मा, कनखल, श्री कान्तिनारायण मिश्र, पटियाला, श्री नित्यानन्द सारस्वत, पिलानी श्री तिलकराम शर्मा, देहली।

प्रिय मित्र,

२८ अगस्त को देहली में जो दुखदायी घटना हुई उसने निम्न समस्यायें उत्पन्न करदी हैं :

१. क्या पण्डित श्रीदत्त शर्मा द्वारा मीटिंग करना उचित था जबकि प्रधान ने बार-बार अपनी अनुमति के बिना मीटिंग न किये जाने का आग्रह किया था ?

२. क्या मीटिंग वैध थी अथवा अवैध, जबकि अध्यक्ष श्री भी० वि० डेग्वेकर ने उसे विशेषतया अवैध घोषित कर दिया था और सभास्थल से उठकर चले गये थे ?

३. क्या प्रधान के द्वारा मीटिंग अवैध घोषित किये जाने के पश्चात् मीटिंग करने वाले व्यक्तियों ने अनुशासन को भंग किया ?

४. क्या पण्डित श्रीदत्त शर्मा मीटिंग से पूर्व प्रधान से मिलने की स्वीकृति देकर भी (१) जान बूझकर अलग रहे (२) आकस्मिक कारणवश उनसे मिलने में असमर्थ रहे अथवा (३) क्या यह कथन ही कि उन्होंने अध्यक्ष से मिलना स्वीकार किया था, असत्य है ?

५, क्या उन व्यक्तियों द्वारा जो मीटिंग के अवैध किये जाने के पश्चात् भी मीटिंग करने का आग्रह कर रहे थे पत्र, फाइले, रजिस्टर्ज आदि का छीना जाना, अपने पास रखना तथा उसे कार्यालय को न लौटना उचित था ?

६. क्या पण्डित श्रीदत्त ने विद्यापीठ मंत्रित्व से अपना त्याग पत्र दिया था और पश्चात् उस त्याग पत्र को अस्वीकार करने का निश्चय कर लिया अथवा जैसा कि उनका दावा है, क्या उनके कृत्रिम हस्ताक्षर बनाये गए हैं ? (दोनों ही अवस्थाओं में यह अत्यन्त ही गम्भीर बात है और इसकी पूर्ण जांच की जानी चाहिये)।

७. क्या उत्तर पुस्तक को जो दूषित किया गया है ? यदि हाँ तो क्या यह उचित होगा कि उस उत्तर पुस्तक में रुचि रखने वाले कथित पक्षों के हाथों में उसे रहने दिया जाय ? (रिकार्ड दूषित करना अथवा दूषित करने का झूठा आरोप लगाना दोनों ही विषय गम्भीर हैं तथा पूर्ण जांच की अपेक्षा रखते हैं।)

८. क्या आयुर्वेद महासम्मेलन और विद्यापीठ की एक संयुक्त बैठक से इन कठिन समस्याओं का समाधान हो सकता है या इन विषयों को अन्तिमरूपेण स्पष्ट करने के लिये मतदान सम्बन्धी धारा को लागू किया जाये ?

यह प्रश्न हैं जिनके कारण मैं २८ तारीख की मीटिंग के विवाद का समाचार मिलने के पश्चात् से असमञ्जस में पड़ गया हूँ।

इस किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की अवस्था में तथा इस भय से कि हमारी महान् संस्था एक बार फिर मुकदमेबाजी के चक्कर में पड़ने वाली है, मैंने अपने विख्यात पूर्वाधिकारी पण्डित शिव शर्मा जी से यह प्रार्थना की कि वे इस विवाद पर अपना निर्णय देने के लिये एक तीसरे व्यक्ति को बतायें जिसकी सवर्था निष्पक्षता तथा निर्लिप्तता पर सब भरोसा कर सकें। जैसा कि पण्डित शिवशर्मा जी के द्वारा मेरे नाम लिखे गए पत्र से स्पष्ट है इस विवाद की मध्यस्थता के लिये भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रधान श्री उ० न० ढेबर जैसे व्यक्ति की स्वीकृति प्राप्त कर वे पुनः एक बार इस महान् संस्था की रक्षार्थ आगे आये हैं।

देश का कोई भी अच्छे से अच्छे न्यायाधिकारी अधिक से अधिक श्री उ० न० ढ़ेबर के समान ही निष्पक्ष तथा निर्लिप्त हो सकते हैं। किन्तु उनमें से कोई भी श्री ढेबर के समान हितैषी तथा सुविधापूर्वक मिलने योग्य नहीं हैं। क्योंकि उन्होंने मध्यस्थता के लिये कोई मानदेय लेना अस्वीकार कर दिया है, अतः इससे अधिक सस्ता न्याय प्राप्त नहीं किया जा सकता। देश के तथा उसकी संस्थाओं के ऐसे महान् हितैषी व्यक्ति के समीप जाना सर्वथा उपयुक्त है और केवल दोषी व्यक्ति ही उनके समक्ष जाने से भयभीत होंगे।

अब मेरा आपसे यह निवेदन है कि आप मुझे अपनी लिखित सहमति देने की कृपा करें कि आप श्री उ० न० ढेबर की मध्यस्थता को स्वीकार करते हैं और उनके निर्णय को स्वीकार करेंगे। यदि आप इस मध्यस्थता से सहमत न हों तो भी कृपया अपने निर्णय से मुझे सूचित कर दें। मैं इस पत्र को रजिस्टर्ड ए.डी. पोस्ट से भेज रहा हूँ ताकि यह ठीक आपके पास पहुँच जाये। यदि इस पत्र की प्राप्ति के ८ दिन के अन्दर अन्दर आपका कोई उत्तर मुझे न मिला तो मैं यह समझ लूंगा कि आप कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा मध्यस्थता किये जाने से सहमत हैं।

भवदीय
वाई० पार्थनारायण पण्डित
अध्यक्ष अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

पुनर्लेखः—यह निश्चय होने तक कि विवादी पक्ष मध्यस्थता कराने को प्रस्तुत है या नहीं मैं यह सलाह दूंगा कि इस विवाद पर विचार विनिमय करने के लिये कोई मीटिंग न की जाय क्योंकि ऐसा करने से और अधिक कठिनाइयां उत्पन्न होंगी। पूर्व समस्याएँ छोड़ते हुए भविष्य की सभाओं के लिये मेरा यह आदेश है कि कोई भी मीटिंग यदि सभापति के आदेशों के प्रतिकूल बुलाई जायेगी तो वह अवैधानिक तथा अमान्य होगी।

भूतपूर्व महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्यरत्न श्री पं० शिव शर्मा की सम्मति

महासम्मेलन में एक बार फिर भयंकर मतभेद हुआ है। इसका शीघ्र अन्त नहीं हुआ तो संस्था की भारी हानि होगी।

मेरे हाथ बंधे हुए हैं। एक ओर निकट सम्बन्धी हैं, दूसरी ओर घनिष्ट मित्र। दोनों के प्रति स्नेह और सद्भावना के भाव के सिवा इस समय महासम्मेलन में मेरा कोई अधिकार भी नहीं।

इसीलिए विशेष प्रयत्न और प्रार्थना द्वारा श्री ढेबर भाई को दोनों पक्षों की बात सुनकर न्यायपूर्ण निर्णय देने के लिए राजी किया है।

दोनों पक्षों से यह नम्र निवेदन करना चाहता हूँ कि श्री ढेबर भाई तो संस्था की रक्षा के लिए थोड़ा बहुत अपराध क्षमा भी कर देगें। परन्तु एक बार बात अदालत में चली गई तो अबकी बार ऐसे आरोप और प्रत्यारोप लगाए जा चुके हैं कि बिना दण्ड के अपराधी नहीं छूट सकेंगे। अतएव अच्छा होगा यदि दोनों पक्ष कल्याणकारी मार्ग ग्रहण करेंगे। मुझे किसी प्रकार का आग्रह नहीं है। अपना निर्णय अपनी बुद्धि से करें।

शिवशर्मा
१२-९-५५

नोट—आशा है सम्बन्धित महानुभाव इस सुझाव पर गम्भीरता तथा दूरदर्शिता पूर्वक विचार करेंगे। —सम्पादक

भारतीय प्राचीन
कला और शास्त्र
वैसे ही
धूतपापेश्वर औषधियाँ

●

'कुमारी आसव नं० ३'
बच्चों के सर्दी, खाँसी, बदहजमी
आदि विकारों पर
गुणदाता

धूतपापेश्वर इण्डस्ट्रीज लि०
पनवेल—बम्बई।
देहली—वैद्य वेदप्रकाश,
धूतपापेश्वर आयुर्वेदिक औषधालय,
३६ E, कमला नगर, गोल चौक।

बोध चिन्ह

हमारा क्या बनेगा ?

कविविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य, अमृतधारा, देहरादून।

मैं दीर्घकाल से आयुर्वेद महासम्मेलन और आयुर्वेद विद्यापीठ में आना जाना बन्द कर चुका हूँ। कारण जहाँ झगड़े होते हों वहाँ से मैं उपराम हो जाता हूँ। बीच बीच में कभी देखने को जी कर आता है तो पुनः निराशा हो जाती है।

अभी की बात। २८ अगस्त १९५५ को मारवाड़ी औषधालय दिल्ली में आयुर्वेद विद्यापीठ की बैठक थी। उसमें सम्मिलित होने को जी चाहा। इस प्रयोजन से जब मैं वहां गया तो अधिवेशन की कार्यवाही आरम्भ हुई। एक घण्टा तक बड़े जोरों से यही शास्त्रार्थ होता रहा कि यह अधिवेशन वैधानिक है या नहीं। बात बहुत साधारण सी थी परन्तु पार्टीबन्दी से बात और की और हो जाती है। यह साधारण बात भी बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक जा पहुँची कि कार्यालय के क्लर्क के साथ लड़ाई छिड़ गई। उनका कहना था कि क्लर्क ने किसी सदस्य को अपशब्द कह दिया है, जिससे क्लर्क को पीटने के लिए यह आक्रमण किया गया है। अन्य व्यक्तियों ने बड़ी कठिनता से रोका। इस गड़बड़ में श्री प्रधानजी तो उठकर चले गये, तदनन्तर अन्य कई सदस्य उठकर चले गये। मैं भी चला आया। इसके पश्चात् क्या हुआ मुझे ज्ञात नहीं।

इस लेख द्वारा मैं किसी का दोष निकालने की चेष्टा नहीं करता। मेरा प्रयोजन केवल इतना है कि ऐसी स्थिति में वैद्य समाज का क्या बनेगा ? जब हमारा संगठन ही विशृंखलित है तो हम किस प्रकार कृतकार्य हो सकते हैं ? अंग्रेजी प्रभुत्व के समय से भी बढ़कर आजकल हमारे सम्मुख अनेक बाधायें खड़ी हो गई हैं। नये-नये विधेयक और कानून बनते जा रहे हैं जिनकी विद्यमानता में आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सकों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। उनकी विकट अवस्था की ओर हमारा तनिक भी ध्यान नहीं, वरन् छोटी-छोटी बातों पर परस्पर झगड़ रहे हैं। अखिल भारतीय संस्था की यह दशा ?

इधर कई प्रान्तीय शाखाओं में इससे भी बढ़चढ़ कर झगड़े देखे जाते हैं। जब तक हम निजी स्वार्थ को त्यागकर आयुर्वेद की सामूहिक उन्नति का ही ध्यान नहीं करेंगे, उसी के लिये कृतसंकल्प नहीं होंगे, तब तक हमें कुछ भी उपलब्धि नहीं होगी। इने-गिने भद्रपुरुष भले ही अपने कार्य में उच्च पदवी प्राप्त करलें, किन्तु सर्वसाधारण वैद्य बन्धुओं की तो दिनानुदिन अवनति होती जायगी और वे चिकित्सक रहते हुए भी अपना जीवन निर्वाह न कर सकेंगे।

यदि हमारे कर्णधार इस चिन्तनीय समस्या को तन, मन और धन लगा कर सुलझायें तो परिवर्तन सम्भव है। अन्यथा आप लड़ते झगड़ते रहें। आयुर्वेद भले ही रसातल को चला जाय।

HELP FLOOD-STRICKEN ORISSA !

We are appending hereunder an Appeal issued by the Vaidyas of Orissa, along with the views of Shri Radhanath Rath, Minister for Finance and Education, Orissa, and of Dy. Minister for Health, Orissa, Shrimati Basant Manjari Devi. The cause is very humanitarian and we appeal to the Ayurvedic Profession of the country as also the Ayurvedic Pharmacies to help the afflicted people of Orissa and do their best by donating money or medicine and sending it directly to the Secretary, Ayurvedic Medical Relief Committee, and Secretary, All Orissa Ayurvedic Conference, Cuttack (Orissa).

—Editor

An Appeal for Medicines for Checking Epidemics in the Flood Affected Areas in Orissa

Dear Friends,

Words fail to describe the pitiable plight of millions of people in the coastal districts of Orissa as a result of the devastating floods which have no parallel in the history of Orissa. Innumerable persons have been rendered homeless and destitute though it is not possible to ascertain the total lives lost in the floods but it is obvious that the floods have taken a heavy toll of lives in those areas. Another problem causing great anxiety is the condition of the people rescued and to be rescued. There is every liklihood of outbreaks of epidemics and as a matter of fact epidemics have already broken out in certain places. Consequently, over and above the people who have been drowned and found a watery grave, a large number of people are likely to perish on account of the epidemics. It is feared that the loss of human lives caused by the epidemics may far outnumber the loss caused by floods. What is URGENTLY NEEDED AT PRESENT IS MEDICAL RELIEF TO THE UTMOST EXTENT.

The Nikhil Utkal Vaidya Sammelan (All-Orissa Ayurvedic Conference) is trying to do all that it can but without all out co-operation of pharmacists and Ayurvedists it is not possible to cope with the situation.

We, on behalf of the conference, appeal to all pharmacists and Ayurvedists and the generous public all over India to contribute medicines necessary for fever, dysentry, diarrhoea, Cholera, Pneumonia, Cough and Cold etc. and funds in large quantity to meet the situation and to send their contributions to Kaviraj Shree Laxminarayan Acharaya, Nayasarak, Cuttack-2, who has been appointed stockists and treasurer for the purpose.

We appeal to you to save the lives of thousands and thousands of suffering humanity by generous contributions of medicines and funds immediately.

May God Bless You !

Dated Cuttack
10 September 1955.

Yours faithfully,
Sd/- B. Das,
Secretary,
Ayurvedic Medical Relief Committee
&
General Secretary, All Orissa Ayurvedic
Conference.

Views of Shri Radhanath Rath, Minister, Finance and Education, Orissa.

There have been devastating floods in Orissa caused by heavy rainfall within a period of three days following a serious drought affecting the whole State. The floods are unprecedented and the danger caused is terrible. About 15 to 20 lakhs of people have become homeless and thousands of villages are submerged. The human miseries and sufferings are indescribable. The scene is heart-rending. Men, women and children have been marooned for days together, as many areas have become unapproachable. All possible efforts are being made to render relief to people but the magnitude of the distress is so great that no amount of relief could be adequate.

The greatest danger is an out-break of epidemics and fever as the after-effect of flood. Immediate steps are to be taken to provide medical relief to these suffering people. Government of Orissa are trying to do their best. But the non-official help and co-operation are greatly needed, I understand, the All Orissa Ayurvedic Conference are organising medical relief. It would be really a matter of great relief if such help could be organised and it forthcoming. I associate myself with the efforts of the Ayurvedic Conference and I hope that the response would be ready and prompt.

Sd/- R. N. Rath.

Views of Shrimati Basantmanjari Devi, Deputy Minister, Health, Orissa.

I am glad to hear that the Kavirajas of Orissa have formed a Committee for the purpose of collecting medicines for free distribution amongst the people who have been affected due to the recent devastating floods. I must say that the cause is most humanitarian. The Government will be too glad to utilise this co-operation offered by them.

I take this opportunity of appealing to the local medical suppliers and pharmacies in India to give their full co-operation and contribute their mite at this critical juncture when thousands and thousands of human lives are in distress.

Sd/ B. Devi.

THE 41st ALL-INDIA AYURVEDIC CONGRESS, KURNOOL

CIRCULAR NO. 1.

Appeal To The Vaidyas of The Andhra State

The Narsapur Ayurvedic Conference has shown what a great influence Sri Vaidyaraj Vastad Venkataswamy Naidu Guru has and how sincere he is in his efforts for the progress of Ayurvada. I am glad that he has been unanimously elected President of the Andhra Vaidya Mandali once again.

We have invited the 41st All-India Ayurvedic Congress this year and we have decided to hold it at Kurnool during the last 3 days of December this year. We have to consolidate all our resources and should exhibit all our energy in the material, literary and scientific fields. The scholars, the soldiers, and the lovers of Ayurveda have to unite and work together at this juncture.

It is our good luck that Sri Alluri Satyanarayana Raju Garu, the President of the Andhra Provincial Congress Committe has agreed to be the Chairman of the Reception Committee of the Ayurvedic Congress.

We must all take advantage of this opportunity and make the Ayurvedic Congress a unique success. We must bring glory to the Andhras.

Madras 2 **A. LAKSHMI PATHI**

15-9-55.

पुस्तकालय
०२९५२४

वैद्यनाथ प्रकाशन

आयुर्वेदीय-साहित्य का अमूल्य ग्रन्थ, जो अभी प्रकाशित हुआ है

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान

(पूर्वार्ध)

आयुर्वेद-मार्तण्ड वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी, आचार्य-बम्बई

किसी भी रोग की चिकित्सा के पूर्व रोगों के निदान का ज्ञान होना परमावश्यक है। रोग के सम्यक् निदान के विना रोगी की चिकित्सा सफल नहीं हो सकती।

इसीलिए व्याधि-विज्ञान (निदान-रोग विनिश्चय) आयुर्वेद के प्रधान विषयों में सम्मिलित एक उपयोगी विषय है। इस ग्रन्थ में व्याधि विज्ञान के साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधियाँ कितने प्रकार की होती हैं; निज, स्वाभाविक और आगन्तुक व्याधियों में क्या भेद है, स्वतन्त्र और परतन्त्र व्याधियों के स्वरूप क्या हैं; प्रभाव, बल, अधिष्ठान, निमित्त और समुत्थान भेद से १० प्रकार के रोगानीक कैसे हो जाते हैं; रोगों का आश्रय क्या है, आदि अनेक ज्ञातव्य बातें इस ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में वर्णित हैं। यह पूर्वार्ध खण्ड पांच अध्यायों में विभाजित है, जिन्हें अध्ययन कर लेने के बाद निदान सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य सिद्धांत करामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं। आयुर्वेदीय प्रेमी विद्वान् और विद्यार्थी, दोनों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है।

इस ग्रन्थ के लेखक के सम्बन्ध में कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

डिमाई साइज के ११२ पृष्ठ की सुन्दर छपी हुई सजिल्द पुस्तक
का मूल्य मात्र २॥)

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,

कलकत्ता : पटना : झांसी : नागपुर।

खोज का आश्चर्यजनव

परिणाम

079528

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगा चला आ रहा है। खो[illegible]र किसी कवि के ये शब् क्षरोंमें लिखे हुए हैं कि :- "जिन खोजा तिन पाइ पानी पैठ" त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मेघ शक्तिबाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्छित पड़े हुए थे औ चन्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय णजीमें पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को स बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों महायुद्ध में, रोग द्वारा त्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोज में लगा है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सऔषध संवारन् हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है— डाबर कार्यालय का निरन्तर खोज का परिणाम! साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की क्रिया!! इसी खोज के परिणाम स्वरूप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के ल औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

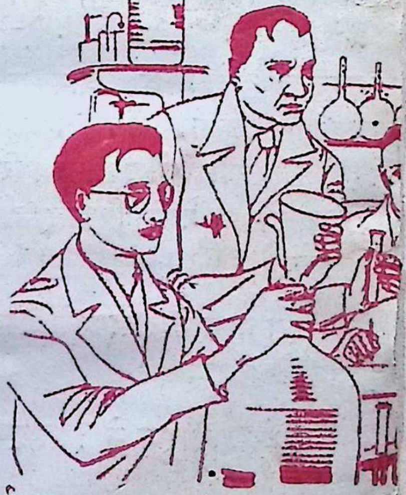

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि० कलकत्ता-२९

अपूर्व गुणकारी आयुर्वेदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्माता

अ० भा० [illegible] के लिए कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित
[illegible] नया हिन्दुस्तान प्रेस दिल्ली।

Stock Verification-2024

Compiled
1999-2000